महाभारत — पहिला हिस्सा

भीष्म-प्रतिज्ञा

—रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—

महाभारत पुस्तकालय, अजमेर.

दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर में मुद्रित.

तृतीय बार १५०० | सन् १९३९ सम्वत १९९६ | मूल्य ।)

भूमिका

प्रिय पाठक वृन्द! मैं आपके सन्मुख वह प्रसिद्ध ग्रन्थ "महाभारत" लेकर उपस्थित हुआ हूँ जिसका आदर हिमालय-पर्वत से लेकर कन्या-कुमारी तक तथा सिन्धुनद से लेकर ब्रह्मपुत्रा तक ही नहीं बल्कि विदेश में भी है। सामान्यतय महाभारत का विषय महाप्रतापी चन्द्रवंशी सम्राट भरत के वंशज कौरव औ पांडवों का युद्ध, पांडवों की विजय तथा राज्यशासन है परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से जां करने पर इसमें धर्म, नीति, तत्त्वज्ञान, राज्यशासन आदि २ महत्त्व पूर्ण विषयों व अवसर २ पर इतना सरल विवेचन किया गया है कि पढ़ने वाले के चित्त पर एक अद्भुत प्रकाश पड़ता है, जिससे उसका हृदय इतना विशाल हो जाता है कि अनेक कठिनाईयां के उपस्थित होने पर उसे किस प्रकार का वर्ताव करना चाहिये, तथा इहलोक व परलोक कैसे सुधारना चाहिये इत्यादि प्रश्नों को वह सहज ही हल कर लेता है।

इस ग्रन्थ को जो पांचवें वेद की पदवी मिली है वह यथार्थ ही है, स्वयं महर्षि द्वैपायनजी महाराज ही इस ग्रन्थ के विषय में कहते हैं कि जो इसमें है वह सारे संस्कृत साहित्य में है और जो इसमें नहीं है वह संस्कृत साहित्य में कहीं नहीं है।

यह महाभारत समस्त भारतवासियों का प्रधान इतिहास ग्रन्थ है जिसका पूर्णतया जान लेना प्रत्येक मनुष्य का फर्ज है, परन्तु दुःख है कि चन्द विद्वान् पुरुषों के अतिरिक्त साधारण मनुष्य इससे बहुत कम परिचित हैं।

आजकल भारतवर्ष को एक सूत्र में बांधने के सैंकड़ों प्रयत्न हो रहे हैं परन्तु खेद की बात है कि कई हजार वर्ष से जो सर्वोत्तम ग्रन्थ हिन्दु समाज को । करने में प्रमाणित हो चुका है उसकी तरफ बहुत कम ध्यान है। कुछ दिनों से पुरुष महाभारत का पूर्ण अनुवाद करने तथा उसे संक्षिप्त बना प्रचार करने का प्रयत्न कर रहे हैं, कई गद्य पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं परन्तु अभी तक शोचनीय स्थिति रूपी रात्री का अन्त नहीं हुआ, जिसका मुख्य कारण यह है कि गद्य में लिखी पुस्तक को एक ही मनुष्य एक समय पढ़ सकता है अथवा दस बीस मनुष्यों को सुना सकता है इसलिये ऐसी पुस्तक का प्रत्येक मनुष्य के हृदय में ज्ञान उत्पन्न होने में बहुत विलम्ब लग जाता है परन्तु यदि वही पुस्तक पद्य में हो और वह भी यदि हारमोनियम तथा तबले पर गाई जा सके तो एक ही समय में सैंकड़ों मनुष्य सुन सकते हैं।

इस पुस्तक में कहीं कहीं उर्दू के शब्द आये हैं जिनको जान बूझकर रक्खा गया है क्योंकि प्रचलित भाषा हिन्दी व उर्दू मिली हुई है।

समस्त आर्यवर्त में इसका प्रचार बहुत जल्द हो जाय यह सोच कर प्रत्येक हिस्से का मूल्य भी थोड़ा रक्खा है।

अन्त में सर्व व्यापक जगदीश्वर से मेरी यही प्रार्थना है इस महत्त्व पूर्ण ग्रन्थ का कथा-वाचक प्रेम पूर्वक गायन करें, श्रोतागण सादर सुनें, पढ़ें और मनन करें जिससे उन्हें यथार्थ लाभ हो।

अजमेर
कृष्ण जन्माष्टमी
१२ अगस्त सन् १९२५

श्रीलाल खत्री

द्वितीय आवृत्ति

दो शब्द

प्रिय पाठकवृन्दों !

श्री मन्महर्षि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यासजी निर्मित हिन्दु जाति के प्राचीन इतिहासिक काव्य ग्रन्थ "महाभारत" की द्वितिया वृत्ति पाठकों के सन्मुख रखते हुये दो शब्द कहना अनुचित न होगा। सर्वेश्वर, पूर्णब्रह्म, परमात्मा, भगवान श्रीकृष्ण की अपार अनुकंपा से यह अवसर आया देखकर जो परम आनन्द का समुद्र मेरे हृदय प्रदेश में उमड़ रहा है वह लिख कर बतलाया नहीं जा सकता, अनुभव गम्य है। मेरे सदृष्य तुच्छ मनुष्य के लिए इस समुद्र रूपी ग्रन्थ का मथन करना कष्ट साध्य ही नहीं वरन् असाध्य सा था परन्तु धन्य है उस परम पिता जगदीश्वर को जिसने अपनी असीम कृपा से इस कार्य को सरल बना दिया।

जब दयालु सर्वेश्वर की कृपा दृष्टि हुई तो "जापर कृपा प्रभू की होई, तापर कृपा करहिं सब कोई" इस गोस्वामी तुलसीदासजी के वचनानुसार कथावाचक, पुस्तक विक्रेता, अध्यापक व अध्यापिकायें, विद्यार्थी, विदुषी स्त्रियाँ बालक व बालिकायें आदि आदि समस्त भारतवासियों ने कश्मीर से कन्या-कुमारी तक, तथा अटक कटक तक इस ग्रन्थ को अपना कर जो अपार प्रेम दरसाया है उनका मैं सच्चे हृदय से अनुगृहीत हूँ।

वैसे तो कीर्तन कलानिधि पं० राधेश्यामजी कथावाचक ने जिस समय अजमेर में पदार्पण कर अपनी बनाई हुई तर्ज में तुलसी कृत-रामायण को गाया था तभी से महाभारत को भी इसी तर्ज में लिखने का अंकुर हृदय में जम गया था परन्तु जिस प्रकार अंकुर को वृक्ष बनाने में जल छिड़कने वाले की आवश्यक्ता रहती है उसी प्रकार इस हृदयांकुर में भी किसी महानुभाव के उपदेश रूपी अमृत जल की आवश्यक्ता थी जिसको भगवान ने जिन महात्मा द्वारा पूर्ण किया उन प्रातःस्मर्णीय महामना पं० मदन मोहनजी मालवीय की कृपा का मैं पूर्णरूप से आभारी हूँ जिन्होंने घर बैठे गंगा के समान अजमेर नगर में पधार कर स्थानीय आर्य-समाज भवन में जुलाई १९२५ को एक प्रभावशाली एवं सार गर्भित व्याख्यान दिया जिसमें आपने बतलाया कि महाभारत हिंदू जाति का प्रधान इतिहासिक तथा धार्मिक ग्रन्थ है जिसका प्रत्येक भारतवासी के गृह में रहना नितान्त आवश्यक है। यदि भारतवासी अपना कल्याण करना चाहते हैं, इहलोक तथा परलोक सुधारना चाहते हैं तो श्रद्धा पूर्वक इसका पठन पाठन करें आदि आदि उत्तमोत्तम बातें अपने अमुल्य समय के दो घंटे खर्च कर बतलाई थीं। बस इस व्याख्यान ने ऐसा उत्साहित किया कि उसी रोज से उक्त ग्रन्थ के रचनात्मक कार्य का श्री गणेश हो गया और यथा समय यह कार्य पूर्ण भी हुआ।

जिन जिन महानुभावों ने इस ग्रन्थ को अपनाया है उनको [illegible] की गणना सर्व प्रथम है। इन्होंने निजय पुरुष [illegible] द्वारा, [illegible] नगरों में इसका प्रचार किया है। अतएव उनको हृदय से धन्यवाद है। [illegible] विक्रेताओं का भी यह हृदय अनुग्रहीत है जिन्होंने देश के प्रत्येक [illegible] में इसका [illegible] कर प्रचार किया है। अध्यापक गण व अध्यापिकाओं का भी मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने स्वयं इस ग्रन्थ को पढ़कर विद्यार्थियों में भी पढ़ने का प्रेम [illegible] कर उनको कर्त्तव्य पथ दिखाया है। पढ़ी लिखी विदुषी स्त्रियों ने भी इस ग्रन्थ को पढ़कर जो प्रेम व उत्साह दिखलाया है वह सराहनीय है।

यदि पाठक पाठिकायें इसी प्रकार का उत्साह दिखाते रहेंगे तो शीघ्र [illegible] भी जिसकी मांग भारतवर्ष की चारों दिशाओं से आ रही है शीघ्र ही उनको सेवा में पहुँचाने का प्रयत्न करूँगा।

अन्त मे श्रीमान् [illegible] लूणियाँ मालिक [illegible] प्रेस, अजमेर को कोटिशः धन्यवाद है जिन्होंने [illegible] व हर प्रकार की सहूलियत प्रदान कर इस विस्तृत ग्रन्थ को अल्प समय मे छापकर पूर्ण किया।

यह ग्रन्थ सब ग्रन्थो का सार है, वर्णाश्रम धर्मों का खजाना है, नवरसों का भण्डार है, मानवी जीवन को दैवी जीवन बनाने वाला है प्रत्येक स्त्री पुरुष बालक बालिका इससे शिक्षा ग्रहण कर सकते है, अस्थिर जीवन मे लोक कल्याण के लिये जो कुछ अल्प सेवा मुझ से हो सकी है वह की है इसे सफल करने का काम तो उसी प्रभु के हाथ मे है जो सर्व सत्ताधारी है अस्तु उस प्रभु को प्रेम पूर्वक प्रणाम है।

अजमेर,
शिवरात्रि, ६ मार्च सन् १९३२

श्रीलाल खत्री

[तृतीय आवृत्ति]

श्री सच्चिदानंद, आनंदकंद, परात्पर परब्रह्म, परमात्मा के चरण की शरण ग्रहण करके हिन्दु जाति के गौरवस्थंभ, प्राचीन इतिहास, नीतिशास्त्र, धर्मग्रंथ, व पांचवें वेद श्री "महाभारत" के प्रथम भाग की तृतियावृत्ति सहृदय पाठको के सन्मुख रखने से पहिले जो कुछ निवेदन करना है वह यही है कि जिस उत्साह से आप महानुभावों ने इस ग्रथ को अपनाया है वो सराहनीय है और यही कारण है जो इस अल्प समय में इसका तीसरा संस्करण निकल रहा है। अखिल विश्व के आधार भूत, समग्र चराचर केस्वामी भगवान श्रीकृष्ण से मेरी यही प्रार्थना है कि उक्त ग्रंथ का प्रचार भारतवासियों के प्रत्येक घर मे हो जाय जिससे वे भारत की प्राचीन गौरव पूर्ण सभ्यता

को अपूर्व दृश्य, ब्रह्मचर्य की शक्ती, स्वार्थ त्याग का आदर्श, पितृ प्रेम, जितेन्द्रियता का सच्चा नमूना, पूर्वजों के बाहुबल का परिचय, प्रतिज्ञा पालन का अनुराग व स्वधर्म पर बलिदान होने की झलक अपने हृदयों पर अंकित कर सकें तथा नीतिधर्म व आत्मतत्त्व के गूढ़ विषयों को सरलता पूर्वक समझ कर इहिलोक व परलोक सुधार सकें।

सज्जनो ! जीवन एक यात्रा है। इस यात्रा मे मनुष्य को अनेक प्रकार के परिवर्तनो का अनुभव होता है परन्तु संसार में लगे हुये अर्थात् प्रवृतिमय जीवन को निर्वृतिमय बनाने की इच्छा करना ही मनुष्य का परम कर्त्तव्य है। जीवन क्षण भंगुर है ऐसा जानकर निश्चेष्ट होकर बैठ जाना आपका ध्येय नहीं है बल्कि इस नर शरीर में जो अनंत शक्तियाँ समाई हुई हैं इनको जानने व विकशित करने के लिये आपको अहर्निशि प्रयत्न करना चाहिये। साधारण मनुष्य की बुद्धि इन बातों का गूढ़ रहस्य समझने के लिये असमर्थ है इसीलिये इस ग्रंथ की रचना अति सरल काव्य मे की गई है कि मनोरंजन के साथ साथ जन साधारण की बुद्धि उन महा शक्तियों के प्राप्त करने में समर्थ हो सके।

परमात्मा सब की बुद्धि का प्रेरक है उसकी ही इच्छानुसार मनुष्यों को सद्गुण का मार्ग गृहण करने के लिये और उनमें उच्च भावनाओं का बीज बोने के लिये मैंने यह प्रयत्न किया है। अतएव उसी सर्वाधार परमपिता से मेरी यही हार्दिक प्रर्थना है कि अपनी असीम कृपा दृष्टि द्वारा पाठकों को अपने चरण की शरण दे।

अजमेर
(संवत् १९९६. वि० चैत्रपूर्णिमा)

श्रीलाल खत्री

इस ग्रन्थ की रचना जिन जिन महानुभावों को आदरणीय हुई है उनके पत्र मेरे पास आये हैं परन्तु स्थानाभाव के कारण उनमें से कुछ प्रशंसा पत्रों नकल पाठक पाठिकाओं के अवलोकनार्थ प्रकाशित करता हूँ।

विश्वम्भरप्रशादजी माथुर प्रोफेसर गवर्मेन्ट कॉलेज, अजमेर से लिखते हैं:—

मुझे महाभारत के कुछ भाग पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। बाबू श्रीलाल ने अपने ग्रन्थ को मनोरंजक बनाने मे बड़ी सफलता प्राप्त की है। यह ग्रन्थ हिन्दी भाषा की बड़ी कमी की पूर्ती करता है। जैसे श्री तुलसीकृत रामायण ने श्री राम—चरित्र के ऊँचे आदर्शों को सर्व साधारण भारत वासियों के हृदय पट पर अंकित कर दिया है वैसे ही आवश्यक है कि श्री माहाभारत जैसे उच्च ग्रन्थ का जो भारत का पांचवाँ वेद कहलाता है उसका प्रचार हो और उसके उपदेश जनता मे उसी तरह प्रचलित हों। इस ग्रन्थ का छन्द गायन अति सुन्दर है भाषा भी मनोहर है। आशा है कि यह ग्रन्थ सर्व प्रिय होकर देश के उत्थान मे सहायक होगा।

(Sd.) बिश्वम्भर प्रसाद माथुर.

उसी महाभारत के मुख्य २ आख्यानों को लाला श्रीलालजी खत्री ने २२ खण्डों में हिन्दी के सरल पद्य में इस खूबी से दर्शाया है कि पाठक जन मीठे रस से गावें अथवा भजनीक मण्डलियाँ गा बजा कर ताल स्वर से उस पवित्र कथा को भारी २ सभाओं को अमृतमय उपदेशों का पान करावें इस प्रकार से यह सदुपयोगी कथा शीघ्र ही देश २ में फैल जायगी और उच्च प्रभाव पैदा करेगी। श्रीलालजी की रचना अति सराहनीय है। हिन्दी के यह होनहार कवि हैं। मैं आशा करता हूँ कि उनकी पुस्तकों को हिन्दी जानने वाली जनता पूरा २ आदर करेगी और अपना तथा सर्व देश का हित बढ़ावेगी।

अजमेर,
माघ शुक्ला ६ सं० १९८८ वि० (Sd.) चन्द्रिकाप्रशाद तिवारी.

श्रीमान् पं० शिवदत्तजी त्रीपाठी काव्यतीर्थ शिवसतई, श्रीदुर्गाचरित्र, भाषा छन्दों बद्ध सामवेद, भाषा भोज प्रबन्ध, आदि २ ग्रन्थों के रचियता व हैड पंडित गवर्मेन्ट हाईस्कूल अजमेर, लिखते हैं:—

बाबू श्रीलालजी खत्री सन् १९१२ के आस पास मेरे पास हाई स्कूल अजमेर में हिन्दी पढ़ते थे। उस हिन्दी का ज्ञान इनके लिये कल्पवृक्ष स्वरूप हुवा। पहले मैंने सबलसिंह चौहान रचित महाभारत दोहे चौपाई ग्रन्थित देखा किन्तु उसका प्रचार अधिक नहीं हुवा। कारण दोहे चौपाई का सर्वोच्च आसन तो महा कवि तुलसीदासजी को ही मिला है। आज कल जनता की रुचि गाने बजाने की ओर अधिक होने के सबब से यह पुस्तक अत्यन्त लाभ दायक एव सर्व हितकारी है इससे भक्ति और ज्ञान दोनों ही प्राप्त होते हैं। यदि ऐसे २ ग्रन्थों का सर्वत्र प्रचार होगा तो अवश्य धर्म की उन्नति होती रहेगी। अब मैं भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि वह ऐसी कृपा करें जिससे ग्रन्थ कर्त्ता द्वारा अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हों और देश का पूर्ण हित हो।

पौषी पूर्णीमा स० १९८८ वि० (Sd) शिवदत्त त्रीपाठी.

आयुर्वेद महा महोपाध्याय वैद्य कल्याणसिंहजी लेट सीनियर प्रोफेसर ऑफ आयुर्वेद पंजाब युनिवर्सिटी व एकजामिनर आय्युर्वेद विभाग डी ए वी कॉलेज लाहौर, लिखते हैं:—

महाभारत छन्दो बद्ध जो पं० राधेश्यामजी कथावाचक की रामायण की तर्ज पर गाने योग्य सुन्दर कविता मे बनाया गया है इसे पढ़ कर मेरा चित्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ। ग्रन्थ कर्त्ता श्री बाबू श्रीलालजी को इसे यह रूप देने मे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। और इसके लिये मैं उनका अभिनन्दन करता हूँ। मुझे यह जान कर बहुत हर्ष हुवा कि यह पुस्तक सर्व साधारण मे बहुत ही लोक प्रिय हुई है यहां तक की ग्रामीण लोगो, सीपाहियों, स्त्रियों और छोटे २ बच्चों तक ने भी अपनाया है। इसकी कथाओ को प्रेम और चाव से पढ़ा और सुना है और भारतीय इतिहास के प्राचीन वीरों के महत्त्व पूर्ण कारनामो से जानकारी प्राप्त की है। मैं इस उद्योग की पूर्ण सफलता इस रूप मे चाहता हूँ कि कोई भारतीय घर इस ग्रन्थ से खाली न रहे।

(Sd.) वैद्य कल्याणसिंह।

उसी महाभारत के मुख्य २ आख्यानों को लाला श्रीलालजी खत्री ने २२ खण्डों में हिन्दी के सरल पद्य में इस खूबी से दर्शाया है कि पाठक जन मीठे रस से गावें अथवा भजनीक मण्डलियाँ गा बजा कर ताल स्वर से उस पवित्र कथा को भारी २ सभाओं को अमृतमय उपदेशों का पान करावें इस प्रकार से यह सदुपयोगी कथा शीघ्र ही देश २ में फैल जायगी और उच्च प्रभाव पैदा करेगी। श्रीलालजी की रचना अति सराहनीय है। हिन्दी के यह होनहार कवि हैं। मैं आशा करता हूँ कि उनकी पुस्तकों को हिन्दी जानने वाली जनता पूरा २ आदर करेगी और अपना तथा सर्व देश का हित बढ़ावेगी।

अजमेर,
माघ शुक्ला ६ सं० १९८८ वि०　　　　(Sd) चन्द्रिकाप्रशाद तिवारी.

श्रीमान् पं० शिवदत्तजी त्रीपाठी काव्यतीर्थ शिवसतई, श्रीदुर्गाचरित्र, भाषा छन्दों बद्ध सामवेद, भाषा भोज प्रबन्ध, आदि २ ग्रन्थों के रचियता व हैड पंडित गवर्मेन्ट हॉईस्कूल अजमेर, लिखते हैं:-

बाबू श्रीलालजी खत्री सन् १९१२ के आस पास मेरे पास हाई स्कूल अजमेर में हिन्दी पढ़ते थे। उस हिन्दी का ज्ञान इनके लिये कल्पवृक्ष स्वरूप हुवा। पहले मैंने सबलसिंह चौहान रचित महाभारत दोहे चौपाई ग्रन्थित देखा किन्तु उसका प्रचार अधिक नहीं हुवा। कारण दोहे चौपाई का सर्वोच्च आसन तो महा कवि तुलसीदासजी को ही मिला है। आज कल जनता को रुचि गाने बजाने की ओर अधिक होने के सबब से यह पुस्तक अत्यन्त लाभ दायक एव सर्व हितकारी है इससे भक्ति और ज्ञान दोनों ही प्राप्त होते हैं। यदि ऐसे २ ग्रन्थों का सर्वत्र प्रचार होगा तो अवश्य धर्म की उन्नति होती रहेगी। अब मैं भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि वह ऐसी कृपा करें जिससे ग्रन्थ कर्त्ता द्वारा अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हों और देश का पूर्ण हित हो।

पौषी पूर्णीमा स० १९८८ वि०　　　　(Sd) शिवदत्त त्रीपाठी.

आयुर्वेद महा महोपाध्याय वैद्य कल्याणसिंहजी लेट सीनियर प्रोफेसर ऑफ आयुर्वेद पंजाब युनिवर्सिटी व एकजामिनर आय्युर्वेद विभाग डी ए वी कॉलेज लाहौर, लिखते हैं:—

महाभारत छन्दो बद्ध जो पं० राधेश्यामजी कथावाचक की रामायण की तर्ज पर गाने योग्य सुन्दर कविता में बनाया गया है इसे पढ़ कर मेरा चित्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ। ग्रन्थ कर्त्ता श्री बाबू श्रीलालजी को इसे यह रूप देने में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। और इसके लिये मैं उनका अभिनन्दन करता हूँ। मुझे यह जान कर बहुत हर्ष हुवा कि यह पुस्तक सर्व साधारण में बहुत ही लोक प्रिय हुई है यहां तक की ग्रामीण लोगों, सीपाहियों, स्त्रियों और छोटे २ बच्चों तक ने भी अपनाया है। इसकी कथाओं को प्रेम और चाव से पढ़ा और सुना है और भारतीय इतिहास के प्राचीन वीरों के महत्त्व पूर्ण कारनामों से जानकारी प्राप्त की है। मैं इस उद्योग की पूर्ण सफलता इस रूप में चाहता हूँ कि कोई भारतीय घर इस ग्रन्थ से खाली न रहे।

(Sd.) वैद्य कल्याणसिंह।

श्रीमान् राय साहब कृष्णलालजी बाफणा बी० ए०, अजमेर से लिखते हैं:—

A foreword in English for a literature in Hindi will look very queer, but there is a tendency these days to appreciate a book if it carried a recommendation or were introduced by remarks in English. The English knowing public is taken to be more rational, logical and scientifically fit, for opining than other Savants. This idea is due to the fact that English System of investigation and observation is analytical and thorough. Respecting the tendency noted above I make bold to scribe these few lines.

It is in no way an easy task to represent fine, noble, high and sublime ideas in common parlance and still more difficult it is to express them with impressiveness in poetical meters. The common folk remains generally disappointed in their climb up. One who helps them in having an approach to the loftier thoughts is of course their true Friend and Sympathiser. Babu Shrilal in rendering a translation in common dialect of Hindi the great Sanskrit epics of Shrimad-Bhagwat & The Mahabharat has done a remarkable public service. His rendering though brief, concise & compact, is tuneful, attractive, mostly accurate & easy. I congratulate B. Shrilal for his pains in taking which he has killed 3 birds in one shot (this English expression is though ugly here). He has added to the Hindi literature, has served the public & has himself fully enjoyed the most rare relish of Bhagwad-Bhakti. May God bless him & may the translations find a place in the heads and hearts of the poor public of Hindu India to elevate and expand them.

AJMER,
31-8-39.

(Sd.) Rai Sahib Kishenlal Bafna,
B. A.

गोण्डल स्टेट के श्रीयुत् वी० जी० वसावडा लिखते हैं:—

Babu Shreelalji has tried very successfully to give to the Hindustani knowing public the popular versions of popular epics of India viz. the Mahabharat & the Shrimad Bhagwat. These epics with their dramatic events are very well suited to the melodious and flowing Radheyshyam Terz and the author has used the tarz to advantage. This will surely bring this world-famed epics to the doors of masses, and I will not wonder if in years to come it is heard from the mouth of every wandering minstrel and every Updeshak and Kathavachak adopts it as his vehicle.

One more redeeming and commendable feature of the books is its language. It breaks through the tradition of using highly sanskritized language for such books and uses the language of people for the the people. It is fairly sprinkled with Urdu and persian words and hence the language approaches the "Hindustani" standard in its naturalness.

Both works, the Mahabharat and the Shrimad Bhagwat are useful additions to Hindu Religious literature and must be read by all those who are desirous to have a peep in our rich heritage of epic literature with minimum cost and minimum labour.

(Sd.) V. G. Vasavda

प्रार्थना

नमो एक दंतम् गजानन गणेशं,
नशावन सकल दुःख विघ्नं कलेशं।
सुशोभित सुआभूषणं रक्तवस्त्रं,
परावेष्टितं ऋद्धि सिद्धिं हमेशं॥
सुभग मूषकं वाहनम् शीशछत्रं,
करें नित्य पूजन मनुज, देव, शेषं।
रखो लाज जन की दयामय दयानिधि,
चरण की शरण हूं उमासुत सुवेषं॥

मङ्गलाचरण

रक्ताम्बर धर विघ्न हर, गौरीसुत गणराज
करना सुफल मनोर्थ प्रभु, रखना जन की लाज॥
सृष्टि रचन, पालन, हरन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश।
बानी, रमा, उमा सुमिल, रक्षा करहु हमेश॥
बन्दहुं व्यास बिशाल बुधि, धर्म धुरंधर धीर।
महाभारत रचना करी, परम रम्य गम्भीर॥
जासु बचन रवि जोति सम, मेटत तम अज्ञान।
बन्दहुं गुरु शुभ गुण भवन, मनुजरूप भगवान॥

नारायणं नमस्कृत्य, नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं, ततो "जय" मुदीरयेत् ॥

प्रस्तावना ।

भारत में विख्यात थी, इन्द्रप्रस्थ रजधानि ।
जन्मेजय नृप थे जहां, रूप राशि गुणखानि ॥
एक दिवस आये तहां, ऋषि मुनि गण ले संग ।
पूर्ण तपस्वी व्यास मुनि, ऋषि-कुल-कमल-पतंग ॥

"राकेश" रैन के भूषण अरु, "दिनकर" दिन के कहलाते ज्यों ।
ऋषिमुनि भूषण शीतल स्वभाव, "श्री व्यास" ध्यान में आते त्यों ॥
सच्चे, सतवादी, सरल, शान्त, संयमी सत्य उपदेशक थे ।
परदुःख दुखी पर सुःख सुखी, परमारथि थे, परपोषक थे ॥
थे श्रद्धावान दयाधारी, वैराग्य, विवेक विनयरत थे ।
वक्ता थे वेद पुराणों के, परमारथ में नित तत्पर थे ॥
उस समय में, इनकी सानीका, ऋषिमुनी नज़र नहिं आता था ।
वो बढ़ा हुआ था तप प्रभाव, कोई नहिं दृष्टि मिलाता था ॥
थे कृष्णवर्ण, कृशगात मुनी, सिर पर जटाऐं थीं बंधी हुई ।
यज्ञोपवीत तन भस्म रमी, रुद्राक्षी माला पड़ी हुई ॥
मस्तक पर था त्रिपुन्ड तिलक, दबरही बगल में मृगछाला ।
बहु शिष्यों से परिवेष्टित थे, जपते थे कृष्ण नाम माला ॥

प्रार्थना

नमो एक दंतम् गजानन गणेशं,
नशावन सकल दुःख विघ्नं कलेशं ।
सुशोभित सुआभूषणं रक्तवस्त्रं,
परावेष्टितं ऋद्धि सिद्धिं हमेशं ॥
सुभग मूषकं वाहनम् शीशछत्रं,
करें नित्य पूजन मनुज, देव, शेषं ।
रखो लाज जन की दयामय दयानिधि,
चरण की शरण हूं उमासुत सुवेषं ॥

मङ्गलाचरण

रक्ताम्बर धर विघ्न हर, गौरीसुत गणराज
करना सुफल मनोर्थ प्रभु, रखना जन की लाज ॥
सृष्टि रचन, पालन, हरन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश ।
बानी, रमा, उमा सुमिल, रक्षा करहु हमेश ॥
बन्दहुं व्यास विशाल बुधि, धर्म धुरंधर धीर ।
महाभारत रचना करी, परम रम्य गम्भीर ॥
जासु वचन रवि जोति सम, मेटत तम अज्ञान ।
बन्दहुं गुरु शुभ गुण भवन, मनुजरूप भगवान ॥

नारायणं नमस्कृत्य, नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं, ततो "जय" मुदीरयेत् ॥

प्रस्तावना ।

भारत में विख्यात थी, इन्द्रप्रस्थ रजधानि ।
जन्मेजय नृप थे जहां, रूप राशि गुणखानि ॥
एक दिवस आये तहां, ऋषि मुनि गण ले संग ।
पूर्ण तपस्वी व्यास मुनि, ऋषि-कुल-कमल-पतंग ॥

"राकेश" रैन के भूषण अरु, "दिनकर" दिन के कहलाते ज्यों ।
ऋषिमुनि भूषण शीतल स्वभाव, "श्री व्यास" ध्यान में आते त्यों ॥
सच्चे, सतवादी, सरल, शान्त, संयमी सत्य उपदेशक थे ।
परदुःख दुखी पर सुःख सुखी, परमारथि थे, परपोषक थे ॥
थे श्रद्धावान दयाधारी, वैराग्य, विवेक विनयरत थे ।
वक्ता थे वेद पुराणों के, परमारथ में नित तत्पर थे ॥
उस समय में, इनकी सानीका, ऋषिमुनी नज़र नहिं आता था ।
वो बढ़ा हुआ था तप प्रभाव, कोई नहिं दृष्टि मिलाता था ॥
थे कृष्णवर्ण, कृशगात मुनी, सिर पर जटाऐं थीं बंधी हुई ।
यज्ञोपवीत तन भस्म रमी, रुद्राक्षी माला पड़ी हुई ॥
मस्तक पर था त्रिपुन्ड तिलक, दवरही वगल में मृगछाला ।
वहु शिष्यों से परिवेष्टित थे, जपते थे कृष्ण नाम माला ॥

खड़े हुऐ आ सभा में, सीधे सरल सुभाय।
देखा चारों ओर को, दृष्टी तनिक घुमाय॥

देखा, वह सभा मनोहर है, मणिमय खंभे हैं खड़े हुऐ।
मन हरण दृष्य गिरि नदियों के, दीवारों पर हैं बने हुऐ॥
मणियों की कान्ति रत्नों का तेज, लख चकाचौंध सी आती है।
जिस तरफ दृष्टि जा पड़ती है, बस वहीं अटक रह जाती है॥
एक तरफ अमीर उमराओं में, है क्षात्रतेज चमचमा रहा।
और तरफ दूसरी मुनियों में, है ब्रह्मतेज दमदमा रहा॥
भूपति के लिये मध्य में इक, कंचन से जड़ा सिंहासन है।
जिसके समीप ही रत्न जटित, मृगचर्म सहित गुरु आसन है॥
महाराज परिक्षित के सुपुत्र, जन्मेजय अति छवि छाये हुये।
सिंहासन पर हैं टिके हुये, मंत्रियों सहित हर्षाये हुये॥
उन्नत लिलाट, आजान बाहु, ऐश्वर्यवान नृप शोभित यों।
मानों बैठे हैं घिरे हुये, महाराज इन्द्र सुरगणों में ज्यों॥

व्यासदेव का जब लखा, अति तेजस्वी रूप।
उठे सभासद गण सहित, इन्द्रप्रस्थ के भूप॥

आगे आ तुरत प्रणाम किया, और पूजन अर्घ प्रदान किया।
फिर गुरु आसन पर बिठलाया, सब प्रकार से सन्मान किया॥
इसके उपरान्त कुशल पूछी, फिर बोले किम आगमन हुआ।
हे नाथ हुक्म है क्या मुझको, दर्शन कर चित्त प्रसन्न हुआ॥

यथा योग्य सन्मान से, खुशी हुये मुनि नाथ।
आशिर्वाद प्रदान कर, फेरा सिर पर हाथ॥
कौरव पांडव वंश में, रहा न कोई वीर।
पुत्र तुम्हारा बच रहा, केवल एक शरीर॥

तुम्हें देखने को सुवन, तरस रहे थे नैन।
इसी लिये आया हुं मैं, खबर तुम्हारी लैन॥
गद् गद् हो भूपाल ने, चरणों शीश नवाय।
कहा एक संदेह है, सो प्रभु देहु मिटाय॥

"भगवन्! मैं सुनता आता हूं, पूर्वज मेरे बल वाले थे।
थे समर भयंकर अचल अजय, ऐश्वर्यवान् गुण वाले थे॥
सारे भूमंडल पर उनका, परचंड प्रताप चमकता था।
पूरब, पश्चिम उत्तर दक्षिण, इक उन्हींका डंका बजता था।
ऐसे उत्तम पुत्रों को पा, भारत भूमी हुलसाती थी।
उनका जप तप दृढ़ नेम देख, मन ही मनमें सुख पाती थी॥
थे दंभ रहित स्वाधीन सदां, निजगुण सुनकर सकुचाते थे।
थे सबसे प्रीति करने वाले, अरु धर्म मूर्ति कहलाते थे॥
फिर किस कारण हे मुनीराज, आपस में घोर संग्राम हुआ।
सब भारत ग़ारत हुआ प्रभो, कैसा खराब अंज़ाम हुआ॥
अपने हाथों बर्बाद हुये, क्या होनी सिरपर आई थी।
कुछ गर्व किया या फूट पड़ी, क्योंकर ये हुई लड़ाई थी॥
उस समय पर आप उपस्थित थे, निज नयनों देखा नज़्ज़ारा।
इसलिये कृपा करके स्वामी, अब हाल कहो उसका सारा॥

महाभारत के पूर्व था, भारत का उत्थान।
अब तो इसका हो गया, सबविधि पतन महान्॥

महिपाल "युधिष्ठिर" सरिस कहां, जो धर्म मूर्ति कहलाते थे।
हा! कहां हैं "यदुनंदन यदुपति", जो सत्युपदेश सुनाते थे॥
वो कहां गये भट "अर्जुन" से, आचार्य "द्रोण" सम गये कहां।
भिक्षुक प्रति पालक दयावान, महादानि "करण" सम रहे कहां।

अरु कहां दृष्टि में आते हैं, "भीषम" से बाल ब्रह्मचारी ।
सुन जिनकी हांक रण कंपित था, हैं कहां वे "भीम" गदाधारी ॥
गये किधर पितामह "अभिमन्यू", नव युवक प्राण देने वाले ।
वो हिम्मत वर, वो ताक़त वर, वो पुरुषारथि कुव्वत वाले ॥
अन उपस्थिती में अर्जुन की, जिनचक्रव्यूह ❀ को भेदा था ।
दे उचित दंड अपमानों का, शत्रुओं के सिर को छेदा था ॥
ऐसे हि और भी अमित वीर, जो धनुर्वेद में शिक्षित थे
थे शिल्प कला में अति प्रवीण, अरु सब भेदों से परिचित थे ॥

गये कहां सब वीरवर, जन्म भूमि को त्याग ।
रुदन करत भारत मही, देख आपनो भाग ॥

शानों शौकत यश, कीर्ति, विजय, धीरता, वीरता संग गई ।
हिम्मत, जुर्रत, कुव्वत, ताक़त, आपस के रन से भंग भई ॥
ऐसे सत्यानाशी मत का, किस नर द्वारा आह्वान हुआ ।
जिससे सरसब्ज़ अरु स्वर्ग तुल्य, ये आर्य देश वीरान हुआ ॥

गाना ।

छोड़ भारत को गये हाय वे बलवीर कहां ।
जिनसे रण कांपता था हाय वे रणधीर कहां ॥
किया था देश को वैकुंठ जिन्हों ने सत से ।
गये वे सत्य के अवतार तज शरीर कहां ॥
हुई है किस कदर दुर्बल ये हमारी जननी ।
मदद करते थे सदा इसकी अब वे तीर कहां ॥

❀ चक्रव्यूह को महाबली "अभिमन्यु" ने किस प्रकार तोड़ा था इसका सम्पूर्ण वृत्तान्त जानने के लिये पाठकों को 'अभिमन्यु' बध नामक १७ वां भाग देखना चाहिये ।

बात जो मुंह से कही पूर्ण ही करके छोड़ी ।
धर्म के हेतु सहे दुख वे धरमवीर कहां ॥

यों कहते कहते हुये, अति उदास नरनाथ ।
हितकारी मीठे बचन, बोले तब मुनिनाथ ॥
"धीर धारिये भूपवर, नीतिवान गुणवान ।
सोचो तो क्या दिन सभी, होते एक समान ॥

हे पुत्र ! यहां ऐकसी सदां, हालत न किसी की रहती है ।
दुनियां परिवर्तन शील है ये, पल पल में रंग बदलती है ॥
ऐसा विचार कर ज्ञानी जन, नित शांत भाव से रहते हैं ।
रखते हैं प्रभु में प्रीति अटल, अज्ञान न आने देते हैं ॥
जिस समय तुम्हारे परदादा, श्री धर्मराज भूनायक थे ।
तब यहां के दृश्य स्वर्ग से भी, अति बढ़कर आनन्दायक थे ॥
हम आर्यवर्त में रहें सदा, ये चाहते थे सुरपुर वासी ।
क्योंकि ये बुद्धि और बल में, था चढ़ाबढ़ा अरु सुखरासी ॥

भू मंडल के भूप सब, थे इसके अधीन ।
रहते थे हरदम सभी, सेवा में लवलीन ॥

उत्थान की अंतिम सीढ़ी पर, जिस समय देश ये जा पहुंचा ।
तब प्राकृतिक नियमानुसार, गिरने का दिन भी आ पहुंचा ।
उल्टी वायू चल पड़ी यहां, लोगों की बुद्धी भ्रष्ट हुई ।
निज धर्म पै अश्रद्धा छाई, परमार्थ लालसा नष्ट हुई ॥
सर्वत्र गर्व का नशा चढ़ा, उन्मत्त होगये नरराई ।
सन्मान बड़ों का दूर हुआ, गो द्विज की सेवा बिसराई ॥
शुभ औषधि अच्छी लगे नहीं, जिस प्रकार मरने वालों को ।
त्योंही हित वचन ज्ञानियों के, अच्छे न लगे चंडालों को ॥

इससे यहां पर संग्राम मचा, वह महा भयंकर भयकारी।
जिससे इस देश वासियों की, बस पलट गई क़िस्मत सारी॥

हुआ नष्ट वैभव सकल, छाया कष्ट अपार।
स्वर्ग तुल्य भारत तुरत, बना नरक आगार॥

ये उदय अस्त उत्थान पतन, होता रहता है ज़माने में।
मिटना इसका है अनिवार्य, क्या रक्खा है दुख पाने में॥
ये मत समझो इस भूमी का, उत्थान कभी नहिं होवेगा।
धीरज रक्खो निश्चय इक दिन, ये सब दुर्बलता खोवेगा॥
होगया पतन जिस तरह शुरू, उत्थान पूर्ण हो जाने पर।
त्यों पूर्ण पतन के होते ही, उत्थान शुरू होगा सत्वर"॥

इतना कह ऋषिराज फिर, बोले वचन रसाल।
सावधान होकर सुनो, "महाभारत" का हाल॥
बुलवाया निज शिष्य को, मुनि ने अति हर्षाय।
कहा "महाभारत" कहो, राजा को समझाय॥
वैश्यमपायन नाम था, शिष का परम अनूप।
गुरु आज्ञा पाकर कहा, सुन जन्मेजय भूप॥
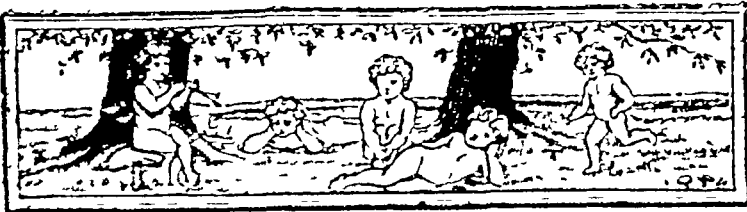
कथा प्रारंभ ।

जय गिरिजा सुत गणपते, जय त्रिपुरारि महेश ।
जय जय वेदव्यास मुनि, जय गुरु बुद्धि दिनेश ॥
महाभारत गायन करों, चरण बंदि सब केर ।
करहु कृपा सज्जन सकल, विनय सुनावहुं टेर ॥

श्रोतओं ! महाभारत के समय, गंगा तट पर हस्तिनापुर था ।
था सब सुःखों से परि पूरन, मानो भूमी का सुरपुर था ॥
थे चन्द्रवंशि यहां के राजा, सब चक्रवर्ति कहलाते थे ।
कर देते थे सब भूप उन्हें, आदर से शीश झुकाते थे ॥
सब से प्रतिभाशाली गुणज्ञ, भूपाल भरत सम्राट हुये ।
अतुलित बाहू बल होने से, भूमंडल में विख्यात हुये ॥
वो धर्मराज स्थपित किया, यश दिशाओं में भरपूर हुआ ।
इनके हि नाम से आर्यवर्त, बस भरतखंड मशहूर हुआ ॥

आगे इनके वंश में, हुये 'कुरू' नरनाथ ।
हुआ इन्हीं के नाम से, कौरव कुल विख्यात ॥

❀ दुष्यन्त के पुत्र, सम्राट भरत की पांचवी पीढ़ी में हस्ती नाम का एक राजा हुआ, जिसने अपने नाम से गंगा तटपर लगभग मेरठ के पास हस्तिनापुर नाम का एक नगर बसाया और उसे अपनी राजधानी नियत किया तब से हस्तिनापुर चन्द्रवंशियों की राजधानी हुआ ।

द्वापर युग का जब अंत हुआ, अरु कलियुग ने गद्दी पाई ।
बस उसी समय कौरव कुल में, प्रगटे नृप "शान्तनु" सुखदाई ॥
था मृगया का अत्यन्त शौक़, दिन रात बनों में रहते थे ।
हिंसक खूंख्वार जन्तुओं का, वध घूम घूम कर करते थे ॥
एक दिन मृगया से क्लान्त होय, श्रम खोने को गंगा तटपर ।
महाराज शान्तनू जा बैठे, होगये मग्न शोभा लखकर ॥
तट पर के वृक्षों का समूह, वायू द्वारा लहराता था ।
सुन्दर जल का कल कल निनाद, आनंद की लहर बहाता था ॥
जिसके ऊपर रवि की किरनें, पड़ अद्भुत छटा दिखातीं थीं ।
हो मग्न बहुत सी कोयलियां, मीठी बोलियां सुनातीं थीं ॥

अति रमणीक स्थान लख, हुये खुसी सरकार ।
श्रम मिटाय घर जानको, तुरत भये तैयार ॥

इतने में सहसा नूपुर ध्वनि, भूपति के कानों में आई ।
जिससे विस्मित हो चौतरफा, झट लगे देखने नरराई ॥
क्या लखा किनारे के समीप, नव यौवन विद्युत कान्तिमई ।
अनुपम लावण्य मई सुमुखी, एक बाला आकर खड़ी भई ॥
[illegible] तरह सुशोभित होती है, विजली अति सघन घटाओं में ।
त्यों उसका मुख दरसाता था, बालों की श्याम छटाओं में ॥
दिव्याभूषण रवि ज्योती में, अद्भुत प्रकाश फैलाते थे ।
वायू द्वारा सुन्दर कपड़े, सुन्दरता से लहराते थे ॥
तरु लताएँ निज कोमल कर रख, वह कनक-लता मुसकाती थी ।
बांकी चितवन से बार बार नृप को विलोकती जाती थी ॥
उसकी अनुपम सुन्दरता लख, वह राजऋषी आवाक् हुआ ।
चंचल व मन हरन आंखों से, तत्काल हृदय सब चाक हुआ ॥

हो रहित निमेष लगा लखने, लेकिन लोचन नहिं तृप्त हुये ।
जितना उसको ज्यादा देखा, उतने हि अधिक संतप्त हुए ॥
कुछ देर देख फिर निकट जाय, नृप प्रेम सहित बोले बानी ।
तुम देवि, किन्नरी, गंधर्वी, अप्सरा हो या हो क्षत्रानी ॥
किस कुल में जन्म लिया तुमने, किस जातिका मान बढ़ाया है ।
है ऐसा कौन भाग्यशाली, जिसको तुमने अपनाया है ॥

हो यदि तुम अविवाहिता, तो सुनलो धर ध्यान ।
भारत का सम्राट ये, मांगत प्रीती दान ॥

कहदो सुमुखी सुन्दरी कहदो, मुझको क्या क्या करना होगा ।
मंगवाउं कौनसी वस्तु अभी, किस तरह तुम्हें वरना होगा ॥
इस निर्जन जंगल को तजके, महलों में चलकर वास करो ।
मन मुग्ध हुआ तुम पर देवी, इस दास की पूरन आस करो ॥
राजा के मधुर वाक्य सुनकर, नारी का मन भी पिघल गया ।
उस ब्रह्मचारी का तेज देख, झट हृदय हाथ से निकलगया ॥
परितृप्त न नेत्र हुये उसके, दर्शन कर राजा के मुखका ।
मनको मन्मथ ने मथडाला, उपजा विचार भावी सुखका ॥
बोली, मैं धन्य हुई राजन्, तव श्रीमुख का दर्शन पाया ।
लख तुम्हरा निश्चल शुद्ध प्रेम, मैं करूँगी वह जो फरमाया ॥
पर एक प्रतिज्ञा करो प्रथम, फिर मुझको अपना पावोगे ।
"मैं शुभ व अशुभ चाहे सो करूँ, उससे न रोकने पावोगे" ॥
यदि भूल से भी मम कारज में, कुछ बाधा का संयोग हुआ ।
तो मेरा तुमसे उसी रोज़, बस जानो सत्य वियोग हुआ ॥

मोहित थे नृप शान्तनू, सुन्दरता को देख ।
अनुचित उचित विचार का, रहा न तनिक विवेक ॥

जब मनुष्य प्रीति में फंसता है, सारी बुद्धी खो देता है।
प्यारी का ध्यान छोड़ उसको, कोई भी काम न रहता है॥
जप, तप, व्रत, पूजन, आराधन, सब कुछ वोही बनजाती है।
संयोग तो प्रान दान देता, और वियोग में जां जाती है॥
सम्राट शान्तनू भी उसके, मुख चन्द्र के पूर्ण चकोर हुये।
मृगया के समय और ही थे, अब प्रेम में और के और हुये॥
बोले, "बाधा नहिं डालूंगा, मैं प्रण करता हूं सुन लेना।
जो ऐसा हो तो प्रिये शीघ्र, तुम मुझे छोड़ कर चल देना॥

पूर्ण हुई इच्छा तेरी, अब लो कहना मान।
भोगो सुख सयराज का, बन कर मम पटरानि"॥

सहमत होगई सुन्दरी वह, राजा को परमानन्द हुआ।
ले उसे नगर में आ पहुंचे, तत्काल दूर दुख द्वन्द हुआ॥
प्रण के माफिक पटरानि बना, सुख से दिन रात बिताने लगे।
ऐसे अनुरक्त हुये, पल सम, अन गिनत महीने जाने लगे॥
स्त्री भी निज परिचर्या से, इनको सन्तुष्ट बनाती थी।
करती थी सद् व्यवहार सदा, अरु सच्चा प्रेम दिखाती थी॥

यों ही आनन्द चैन से, बीतगये कई माह।
गर्भवती रानी हुई, खुशी हुये नरनाह॥
अवधि गर्भ की जब हुई, पूरी उस ही काल।
तेजाकृति धारन किये, प्रगटा सुन्दर बाल॥

अवसर पाते ही सुतको ले, रानी गंगा तटपर धाई।
उसको गंगाजल में बहाय, हर्षित हो लौट चली आई॥
पत्नी का ये व्यवहार देख, नृप दुखी हुये सिर वज्र गिरा।
पर, प्रेम और प्रण के कारन, सब कष्ट शान्ति से सहन करा॥

जो जो बच्चा पैदा होता, गंगा में रानि बहाती थी ।
यों नाश सुतों का होते लख, राजा की फटती छाती थी ॥
मन में तो गुस्सा होता था, प्रीतीवस सब पीजाते थे ।
ये मुझे छोड़ चल दे न कहीं, इस डर से वे दहलाते थे ॥
पर इसका अनुचित काम देख, गुस्सा नित बढ़ता जाता था ।
और प्रेम भाव भी क्षीण होय, क्रम क्रम से घटता जाता था ॥
यों सात पुत्र होगये नष्ट, फिर अष्टम की बारी आई ।
उसका भी जीवन हरने की, रानी ने मन में ठहराई ॥

हो अधीर सुत शोक से, बोल उठे भूपाल ।
ख़बरदार जल में कहीं, इसे न देना डाल ॥

ओ पुत्र घातनी हत्यारी, ये भ्रूण हत्या क्यों करती है ।
तू किसकी कन्या है डायन, पापों से भी नहिं डरती है ॥
निरपराध सातों बच्चों का, ये खून वृथा नहिं जायेगा ।
पा समय यही तूफां बनकर, तुझ को मझधार डुबायेगा ॥
मारे हैं सात पुत्र तू ने, इसको न मारने दूंगा मैं ।
तुझ से विछोह होजाने का, सारा संकट सहलूंगा मैं ॥
यदि प्रेम है कुछ मेरे ऊपर, बालक का पोषण भरन करो ।
रक्खे हैं सुत-कहां बार बार, इसलिए प्राण मत हरन करो ॥

हंसी आगई रानि को, सुन नृपवर की बात ।
बोली अब इस पुत्र का, नहीं करूंगी घात ॥

लेकिन प्रण के माफिक तुमको, हे नृप में अवश्य बिसारूंगी ।
उस समय जहां से आई थी, इस समय वहीं पग धारूंगी ॥
जिस हेतु देह धारन की थी, वह काम आज सम्पूर्ण हुआ ।
इसलिए भविष्यत् में यहां पर, रहने का दिन भी पूर्ण हुआ ॥

निज पुत्रों की मृत्यु का, करो न दुख लवलेश ।
सब रहस्य समझाय कर, कहूँ सुनो अवनेश ॥
भूतकाल में एक दिन, अष्ट 'वसू' सानन्द ।
गिरी सुमेरू पर गये, ले निज पत्नी वृन्द ॥

सुन्दर वन उपवन लता कुञ्ज, अवलोक वसूगण ललचाये ।
मिल क्रीड़ा करने लगे सभी, आनन्द मग्न मन हर्षाये ॥
इसके ही निकट वशिष्ठ मुनी, एक कुटी बनाकर रहते थे ।
संयम से वृत, जप, होम, यज्ञ, पूजन, आराधन करते थे ॥
थी इनके सुन्दर शुभ लक्षण, "नंदनी" नाम की गौ माता ।
देती थी पय अमृत समान, पी जिसे पुष्ट तन हो जाता
वो हृष्ट पुष्ट सुन्दर कपिला, फिरती थी तहं निर्भय होकर ।
जो उसे देख मोहित न होय, ऐसा न जीव था सृष्टी पर ॥

क्रीड़ा में मदमस्त थे, सकल वसू जिस ठौर ।
दैवयोग से नंदनी, चली गई उस ओर ॥

जिस समय नंदनी को देखा, 'द्यो' नाम वसू की नारी ने ।
मोहित हो अपने भर्ता से, कर जोड़ कहा सुकुमारी ने ॥
ऐसी गैया देखी न सुनी, जैसी ये सुघड़ सलोनी है ।
बहता है पय इसके थन से, क्या खूब दुधारू धैनी है ॥
वृक्षों की नई कोपलों सम, है लाल रंग इसके तनका ।
अरु कैसा सुन्दर लगता है, सिर सुफेद गुच्छा केसन का ॥
मानो आरक्त सुसंध्याने, नवोदित चन्द्रमा छिपाया है ।
हे प्रीतम हर ले चलो शीघ्र, मन इसे देख ललचाया है ॥

मौन हुआ सुन द्योवसू, प्राण प्रिया के बैन ।
सकते की हालत हुई, बन्द किये दोउ नैन ॥

फिर बोला, प्रिये! नंदनी को, मुनि ने मेहनत से पाली है।
बिन जाने उनका स्वभाव क्यों, अन उचित बात कह डाली है॥
वैसे तो हैं मुनि शान्त चित्त, पर जो कहिं गरमा जायेंगे।
तो नृप, जल, अग्नी के सदृश्य, दम भर में रंग दिखायेंगे॥
ये मेरे लिये असम्भव है, मुनि की प्रिय गाय चुरालाऊँ।
और उनकी कोपानल में पड़, मानिन्द पतंग के जल जाऊँ॥
पर, स्त्रीने निज स्वामी की, बातों पर तनिक न ध्यान दिया।
कितने तेजस्वी हैं वशिष्ठ, इसका नहिं कुछ अनुमान किया॥
उसको न ध्यान इसका आया, गौ हरने का क्या फल होगा।
कर क्रोध उन्हों ने शाप दिया, तो फिर बचना मुस्किल होगा॥
हठ के वस हो कर कोप कहा, चूड़ियां पहन घर में जाओ।
इक विप्र से इतना डरते हो, क्यों मर्द कहाते शरमाओ॥
ताना सुन अपनी पत्नी का, द्यो वसू क्रोध से गरमाया।
कुछ शुभ व अशुभ का ध्यान न कर, जा शीघ्र गाय को हर लाया॥

सांझ हो गई नंदनी, पहुंची नहिं मुनि पास।
सूना आश्रम देखकर, हुये वशिष्ट उदास॥

आखिर मुनिवर सब काम छोड़, उसको तलाश करने धाये।
अति ढूंढा फिर भी मिलने के, आसार न कुछ दृष्टी आये॥
तब दिव्य चक्षुओं के द्वारा, झट सारा पता लगाय लिया।
वसुगन ने यहां आय छल से, गैया को आज चुराय लिया॥
मिलते ही सुधि ऋषिके तन में, फौरन एक आँधी सी आई।
चट लगे फड़कने होठ दोऊ, आँखों में झट लाली छाई॥
अपने कर में पानी लेकर, बोले ये शाप हमारा है।
तुम जन्मोगे भू मंडल पर, भोगोगे कष्ट अपारा है॥

सुनी शापकी बात जब, वसू गये घबराय ।
हो व्याकुल कर जोड़कर, पड़े चरन में आय ॥

मुनिराज ! वशिष्ट क्षमा करिये, इसमें न हमारा दोष प्रभू ।
हम असली अपराधी हैं नहीं, करते हैं वृथा क्यों रोष प्रभू ॥
द्यो वसु ने गाय चुराई है, ये ही उसका फल पावेगा ।
हमतो उसके साथी हैं क्या, हमको भी शाप नचावेगा ॥
मुनि बोले वसुओं वाक्य मेरे, अन्यथा नहीं हो सकते हैं ।
अनहोनी चाहे हो जावे, पर वचन नहीं टल सकते हैं ॥
पर जाओ मेरा शाप तुम्हें, जल्दी ही मुक्ति दिलावेगा ।
द्यो वसू किन्तु कई वर्ष बाद, अपने घर वापिस आवेगा ॥
द्यो वसुने भी मुनि चरण पकड़, अति विनय करी पर व्यर्थ गई ।
हो निराश आखिर सबके सब, मुझ पै आये और बात कही ॥
हम सब लोगों की नैया को, मैया तुम पार लगाओगी ।
यदि तुम चाहोगी शीघ्र हमें, मुनिशाप से मुक्ति दिलावोगी ॥

हम सबकी जननी बनो, विनय हमारी मान ।
जन्म देन कहं भूमि पर, शीघ्रहि करो पयान ॥

एक प्रतिज्ञा करो मातु, पैदा होते ही वध करना ।
यों मृत्यु लोक के दुखों से, जल्दी छुटकारा दे देना ॥
केवल द्योवसू रहेगा वहां, रहकर कुछ काल बितायेगा ।
जब शापकी अवधि पूर्ण होगी, तब वापिस यहां आजायेगा ॥
उन लोगों की विनती सुनकर, मानव तन मैंने धार लिया ।
जग में तुमको ही श्रेष्ठ जान, अतिहितसे निज भर्तार किया ॥

नाम मेरा भागिरथी, तरन तारनी गंग ।
प्रसव किये सारे वसू, हे नृप मिल तुम संग ॥

बस पूर्व प्रतिज्ञा के कारन, सातों का जीवन नष्ट किया।
तज सोच फिकर राजा मुझको, अब क्षमा करो जो कष्ट दिया॥
ये अष्टम पुत्र बड़ा हो कर, कौरव कुल शान बढ़ावेगा।
और धनुर्वेद की शिक्षा में, यह यकता माना जावेगा॥
इसको मैं खुद ही पालूंगी, अरु क्षत्री धर्म सिखाऊंगी।
सब प्रकार सामर्थवान बना, कुछ बड़ा हुये दे जाऊंगी॥

ले कुमार गंगा तुरत, हो गई अन्तरध्यान।
स्त्री पुत्र वियोग से, भूप हूये हैरान॥

आखिर दुख शोक मिटाने को, लग गये काज में नरराई।
यों बहल गया इनका हृदय, दोनों की ही सुधि बिसराई॥
निज राज काज करते करते कुछ समय बिताया राजा ने।
फिर एक दिन मृगया करने का, सामान सजाया राजा ने॥
इनके बाणों से अनगिनती हिन्सक जीवों का निधन हुआ।
एक हिरन तीर से घायल हो, इनके सन्मुख से हिरन हुआ॥
धाये पीछे पीछे ये भी, जा पहुँचे गंगा के तट पर।
आश्चर्य किया अरु चकित हुये, उसको जल से खाली लखकर॥
इस अद्भुत घटना का कारन, ढूंढन को ये तैयार हुये।
आगे बढ़ते ही इनके दृग, एक बालक से दो चार हुये॥
तेजस्वी इन्द्र सदृष्य सुन्दर, वह बालक दिव्य रूपधारी।
कर रहा बान वर्षा जिससे, होगई बंद धारा सारी॥

ऐसा अद्भुत कार्य लख, विस्मत हुये नृपाल।
एक वृक्ष की आड़ में, खड़े रहे कुछ काल॥

ये वोही बालक था जिसको, गंगा नृप से ले आई थी।
कर पालन पोषण बड़ा किया, सब धनु विद्या सिखलाई थी॥

बस एक बार ही देखा था, इसलिये न राजा चीन्ह सके ।
पर पुत्र प्रेम उमड़ा उसको, ये किसी तरह से पी न सके ॥
चाहा झट गले लगा इसको, मुख चूंम प्रेम से प्यार करूं ।
सोचा ये कुपित न होजाये, जो मैं ऐसा व्यवहार करूं ॥
यदि मेरे आज पुत्र होता, वो भी इसके हमसर होता ।
इस समय मैं जितना हर्षितहूँ, कहिं अधिक उसे लखकर होता ॥
सुत आठ हुये घर एक नहीं, किस्मत का खेल निराला है ।
कुछ खबर नहीं विधिकी विधिकी, आगे क्या होने वाला है ॥
मैं हूँ उस तरुवर के समान, जिस में न एक भी फल उपजे ।
या व्यर्थ हुँ उस घनके समान, जिससे न बूंद भर जल बरसे ॥

गाना

बिना सुत सुना सब संसार ॥

भाई बहन हो घर, हो, जर हो, पतिव्रता हो नार ।
सब सुख हो यदि पुत्र न हो तो, जीवन है भूभार ॥
सुत है अंध भवन का दीपक, नाम चलावन हार ।
इसही के कारण नर जग में, जप तप करें अपार ।
पुत्र रहित नर का नहिं होता, पितु ऋण से उद्धार ।
सुत ही है सब सुख का दायक, अंत मुक्ति दातार ॥
बिन जल बादल वृथा है जैसे, तरु फल बिन बेकार ।
वैसे ही बिन पुत्र मनुष्य का, जीना है निःसार ॥

दांयां अंग फड़कन मोरा, लखा है जब से बाल ।
पूछूं तो जाकर ज़रा, है ये किस का लाल ॥
यों कह बालक की तरफ, नृपने किया पयान ।
इन्हें देख ते ही तुरत, हुआ वो अंतर ध्यान ॥

विस्मय, फिर विस्मय पर विस्मय, हैरत में शान्तनू आये ।
कर नेत्र बन्द ख़ामोश हुये, दुख से सारे अंग मुरझाये ॥
इतने में उस जल से गंगा, धर मानव तन बाहिर आई ।
गोदी में बालक लिये हुये, कर दिव्यरूप अति छविछाई ॥
उसकी आहट पा राजा के, लोचन खुलगये शीघ्रता से ।
पत्नी को पुत्र सहित लखकर, आगे बढ़ कहा धीरता से ॥
प्यारी ! क्या ये वोही सुत है, जिसको था मैंने तुम्हें दिया ।
है धन्य धन्य किस्मत मेरी, ईश्वर ने घर का "दिया" दिया ॥

पुत्र तुम्हारा है यही, रूप शील गुण खान ।
हुआ जो अष्टम गर्भ से, इसको लो पहिचान ॥

मैंने तो जननी का कर्तव, नृप अच्छी तरह निभाया है ।
कर धनुर्वेद में दक्ष इसे, फिर धर्म ज्ञान सिखलाया है ॥
दुनिया में ऐसा है न कोई, जो रण में इससे जय पाये ।
यक बार तो सन्मुख आकर के, सुर असुर कोई हो थक जाये ॥
लो प्राण सदृष्य बालक को लो, निशिदिन निजआंख तले रखना ।
यहां तक तो मैंने निभा दिया, अब तुम आगे की सुधि लेना ॥

अति स्नेह से पुत्र को, रखना श्रीमहाराज ।
जाओ अब निज राजको, जाय सम्भालो काज ॥

इस तरह गंगसुत प्रगट हुये, जो आगे भीषम कहलाये ।
पान्डव व कौरवों के दादा, धनुवी तेजस्वी छवि छाये ॥
सूरज सम सुन्दर कान्तिवान, देदीप्यवान लड़का पाकर ।
नृप भाग्य बड़ाई करन लगे, आनन्द मग्न मन पुलकाकर ॥
वापिस रजधानी में आये, एक जलसा आलीशान किया ।
युवराज बनाया भीषम को, भाटों ने मिल यश गान किया ॥
गंगा देवी ने सभी तरह, इनको धनुवेद सिखाया था ।
त्रिभुवन में सबसे बड़ा वीर, धनुधारी इन्हें बनाया था ।

तो भी राजा ने सर्वोत्तम, धनु वेदाचार्य बुलाय लिये।
शास्त्रोक्त रीति से भीषम को, उन सब के शिष्य बनाय दिये॥
सब गुरुओं से अधिकतर, परसुराम महाराज।
सिखलाते थे भीष्म को, रन करने का साज॥
इस तरह इन्होंने अति उत्तम, रन करने की शिक्षा पाई।
लख अपने सुत को महावीर, होगये अनन्दित नरराई॥
नित सुखसे प्रजा पालते थे, रहते थे आनन्द मंगल में।
फिर एक रोज मृगया करने, चल दिये तुरत उठ जंगल में॥
मन माना खूब शिकार किया, फिर यमुना के तट पर आये।
धो हाथ पांव जल पीकर के, प्राकृतिक दृष्य लख हर्षाये॥
अस्त्र शस्त्र सब खोल नृप, करते थे आनन्द।
इतने में आई तहां, अद्भुत महा सुगन्ध॥
जिसने पल भर में दिल दिमाग, राजा का ताज़ा बना दिया।
वैसेहि सुखी थे नरराई, इसने ज्यादा सुख बढ़ादिया॥
सोचा इस जगह कहीं पर भी, उद्यान न क्यारी दिखलाती।
फिर कहां से मन हरने वाली, ये अति उत्तम सुगन्ध आती॥
दुनियां के खुशबूदार पुष्प, इसकी न हमसरी कर सकते।
यहां तक सुरपुर के पारिजात, मनको इतना नहिं हर सकते॥
ये सोच भूप उस तरफ चले, ये गन्ध जिधर से आती थी।
ज्यों ज्यों ये आगे बढ़ते थे, तबियत खुश होती जाती थी॥
आखिर चलते चलते तटपर, धीवर की एक कन्या देखी।
सुध बुध से रहित नृपाल हुये, मानो सचमुच कमला पेखी॥
था आनन पूर्ण चन्द्रमा सम, लाली होठों पर छाई थी।
नव-यौवन-पूरित अंगों में, बेहद कोमलता आई थी॥
तिष्ठित थी सुन्दर नौका पर, पतवार हाथ में लिये हुये।
मानो यमुना ही बैठी हो, मानव तन धारन किये हुये॥

इसके ही तनकी खुशबू से, बस महक रहा था बनसारा ।
सोना व सुगंध एकत्रित लख, नृप ने सब धीरज तजडारा ॥
जा निकट शीघ्र ही कहा कि तुम, किसकी कन्या सुखदाई हो ।
हैं कहाँ तुम्हारे मात पिता, किसलिये विपिन में आई हो ॥

देख भूप के रूप को, सकुचाई वह बाल ।
नम्र कंध कर अंत में, बोली बचन रसाल ॥
दासराज की पुत्रि हूं, सत्यवती है नाम ।
करें पास ही ग्राम में, माता पिता कयाम ॥

मैं उनकी आज्ञा पालन कर, यहां निशिदिन नाव चलाती हूँ ।
राहीगीरों को बिठला कर, धर्मार्थहि पार लगाती हूँ ॥
यदि आप पार जाना चाहें, तैयार हुँ ले चलने के लिये ।
तन मन से हाजिर हूँ भूपति, सब विधि सेवा करने के लिये ॥

उसके सुन्दर रूप में, तन्मय थे नरनाह ।
पार उतरने की नहीं, थी बिल्कुल भी चाह ॥

अस्तू कुछ उत्तर दिया नहीं, घोड़े पर चढ़कर चले वहाँ ।
धीवर की सुन्दर कन्या के, पितु का था वासस्थान जहाँ ॥
वहाँ जा निज इच्छा प्रगट करी, सुन दासराज मन मुस्काया ।
बोला ब्याह करना ही होगा, कन्या का युवा काल आया ॥
पर एक कामना है मेरी, महाराज उसे पूरी कीजे ।
हैं आप सत्यवादी प्रण कर, फिर मेरी कन्या वर लीजे ॥

(१) पाठकगण! सत्यवती को धीवर की कन्या न समझें। सत्यवती असलियत मे 'उपरिचर' नाम के राजा की पुत्री थी जो एक कारणवश धीवर के हाथ लग गई थी और इसी ने पालन पोषण कर बड़ा किया था। इसका सम्पूर्ण वृत्तान्त महाभारत, आदि पर्व, अध्याय ६३ मे देखें, स्थानाभाव से यहां नहीं लिखा गया।

अभिलाषा पूरी होते ही, मैं अपनी सुता विवाहूंगा ।
जग में तलाश करने पर भी, नृप आप सरिस कहां पाऊंगा ॥
इच्छा है "मम पुत्रि से, पैदा हो जो बाल ।
बाद आपके हे प्रभू, बने वही भूपाल ॥
उसका ही राज्यभिषेक होय, उत्तराधिकारी बने वही ।
चाहे तुम्हरे कई लड़के हों, पर राज किसी को मिले नहीं" ॥
मैं अपने नाती को राजन्, राजा करवाना चाहता हूं ।
बस यही काम पूरा कीजे, ये ही अभिलाष जताता हूं ॥
सत्यवती की चाह में, वेकल थे भूपाल ।
तो भी निजसुत भीष्म का, आया उन्हें खयाल ॥
सोचा इससे ऐसा प्रण कर, हरगिज न अनर्थ कमाऊंगा ।
उस हृदय के टुकड़े भीषम को युवराज से नहीं हटाऊंगा ॥
चाहे यह मुझे मिले न मिले, अपने मनको समझा लूंगा ।
सुज्ञान के जल से सींच सींच, सब विरह का आग बुझा लूंगा ॥
ऐसा गुन विना जवाब दिये, आये महलों में नरराई ।
इक सुघड़ सुकोमल सैया पर, लेटे पर शान्ति नहीं आई ॥
प्रिय सत्यवती की याद उन्हें, बस बारम्बार सताने लगी ।
उस सुंदरी की सुन्दर मूरत, आखों के सन्मुख आने लगी ॥
प्रेम रंग में जो फसा, हुवा तुरत वीरान ।
दशा बावलों सम हुई, छुटा खान अरु पान ॥
इस प्रेम में सुख मिलता न कभी, ये दुख ही दुख दिखलाता है ।
जब नर इस में फंस जाता है, तब पागल उसे बनाता है ॥
सुधि देह गेह की छुटती है, तप धर्म नष्ट हो जाता है ।
बुद्धी घट जाय नेम छूटे, ननहा रहना खुश आता है ॥
जग में कोई न दिखाई दे, मन रटा करे हरदम उस को ।
निशिदिन खयाल में गर्क़ रहे, और याद करे दम दम उसको ॥

जंगल की ख़ाक छानते हैं, बस्ती उजाड़ मालुम होती ।
दिनतो फिरने में कट जाता, पर निशि पहाड़ मालुम होती ॥
गूंगा बहिरा बन जाता है, आखिर को सुन्न हो जाता है ।
ये प्रेम भी प्रेमी लोगों को, कई तरह के नाच नचाता है ॥
इसी प्रेम में घुल गया, नृप का सकल शरीर ।
रात दिना कल नापड़े, झरे नैन से नीर ॥
व्याकुलता देख पिताजी की, भीषम के दुःख हुआ तन में ।
इसका सब हाल जानने की इच्छा उत्पन्न हुई मन में ॥
जा निकट गंगसुत ने पितु को, सन्मान पूर्वक सिर नाया ।
आज्ञा पा आसन पर बैठे, कुछ देर बाद यों फरमाया ॥
हे तात कहो क्या बात हुई, यों चिन्ताकुल क्यों रहते हो ।
क्या मुझ से कुछ अपराध हुवा, क्यों नहीं साफ तुम कहते हो ॥
ये पीतवर्ण चहरा क्यों है, क्यों लम्बी स्वासें आय रहीं ।
मृगया का शोक गया कितको, किसलिये शक्ल मुरझाय रही ॥
दिल खोल के सच्चा हाल कहो, सारे दुख दूर करूँगा मैं ।
चाहे हो काम कठिन से कठिन, उसका प्रतिकार करूँगा मैं ॥
असली हाल छिपाय कर, बोले यों भूपाल ।
पुत्र तुम्हारा ही मुझे, रहता है नित ख्याल ॥
मेरे आठों पुत्रों में से, एक तुम्हीं दृष्टि में आते हो ।
और तुम भी शस्त्र चलाने में, अपना सब समय बिताते हो ॥
यदि तेरा कभी अनिष्ट हुआ, तो कौरव कुल नस जायेगा ।
मैं इसी सोच में व्याकुल हूं, इस राज को कौन चलायेगा ॥
सुन वचन गंगसुत ने सोचा, नृप असली हाल छिपाते हैं ।
अपने दुख का सच्चा कारण, नहिं साफ़ साफ़ बतलाते हैं ॥
आखिर मंत्री के निकट, जाय कहा सब हाल ।
फिर पूछा पितुशोक का, हाल कहो तत्काल ॥

कुछ सोच मंत्रि ने भीषम को, वह राम कथा कहदी सारी ।
सुन सच्चा हाल पिताजी का, लड़के को दुःख हुआ भारी ॥
सोचा "पितु मेरे ही निमित्त, ये सारा कष्ट उठाते हैं ।
और विरह अग्नि में निज तनकी, आहूती देते जाते हैं ॥
हे पितु क्या तुमको ज्ञान नहीं भीषम इतनी शक्ती रखता ।
बस केवल एक इशारे पर, ये असाध्य साधन कर सकता ॥
फिर तुमने क्यों मुझसे नाहक, ये सच्चा हाल छिपाया है ।
है धन्य तुम्हें जो सत्य प्रेम, मुझपर इतना दरसाया है ॥
इस नेह के लायक हूं या नहीं, अच्छा यह अभी दिखा दूंगा ।
जिस तरह बनेगा पिता शीघ्र, मैं सारा कष्ट मिटा दूंगा ॥

धर्म यही है पुत्र का, दुख में आड़े आय ।
नहीं तो उसका भूमिपर, जीवन व्यर्थ कहाय ॥

सब से उत्तम कर्त्तव्य है ये, बलिदान हो तन परमारथ में ।
जीवन का सत्युपदेश यही, कुछ धरा नहीं है स्वारथ में ॥
भीषम! भीषम!! कटिबद्ध हो अब, अपने कर्तव्य का पालन कर ।
निज पितुकी प्यास बुझा जल्दी, जल आत्मत्याग का संचयकर ॥
बस तजो! तजो!! हे नेत्र तजो, गद्दी के लखने की आशा ।
ओ कानो! बहरे बन, छोड़ो, नृप शब्द सुनन की अभिलाषा ॥
इस सिंहासन पर चढ़ने का, हे पावों! तुम नाता तोड़ो ।
यहां खड़े खड़े क्या करते हो, दौड़ो कर्तव्य करने दौड़ो ॥

गाना

पितु की सेवा में मेरा गर ये बदन लग जायेगा ।
तो जहां में जन्म का लेना सुफल कह लायेगा ॥
जगत सागर से तरने को नाव पितु की भक्ति है ।
जो कोई दृढ़ हो चढ़े वह डूबने नहिं पायेगा ॥

होम, जप, तप, यज्ञ, तीरथ व्रत से जो मिलता है फल ।
उसमे कितना ही अधिक पितु भक्ति मे मिल जायेगा ॥
धिक्कार है उस जीव को पितु नाम जिसने जपा नहीं ।
सिर न चरणों में झुका तो वह वृथा कहलायेगा ॥
धन्य है किस्मत मेरी अवसर मिला पितु भक्ति का ।
अब ये निश्चय है मेरा आवागमन मिट जायगा" ॥

मौनावस्था देख कर, बोल उठा दीवान ।
सोच रहे क्या गंगसुत, कहां लगाया ध्यान ॥

भीषम बोले मेरे होते, इस तरह से पिता दुखी होवें।
धिक्कार है मेरे जीवन पर, मैं चैन करूं वे जां खोवें॥
जब तक उनका ये कष्ट मंत्रि, मैं जड़ से नहीं हटाऊँगा ।
तबतक कुछ भी न करूंगा मैं, यहां तक के अन्न न खाऊँगा ॥
जाओ बस हो आओ तैयार, झट दासराज के भवन चलो ।
महाराज के कष्ट मिटाने का, जलदी से आज हि यत्न करो ॥

चले गंगसुत शीघ्र ही, मन्त्री को ले संग ।
धीवर के घर पहुंचकर, कहा समस्त प्रसंग ॥

फिर बोले, धीवर सोच छोड़, अपनी इच्छा को बतलाओ ।
मैं उसे पूर्ण कर डालूंगा बोलो बोलो मत दहलाओ ॥
पितु की रुग्नावस्था लखकर, ये हृदय बहुत घबराया है ।
उनका ही हित साधन करने ये पुत्र यहां तक आया है ॥
जब तलक रोग की उनके मैं, औषधि अमोघ नहिं पाऊंगा ।
तुम ये मन में सच्ची जानो, वापिस न लौट घर जाऊंगा ॥
तेरी कन्या का विवाह नहीं, अवसर है फर्ज़ निभाने का ।
निज पितु के ऋण से उऋण होय, भवसागर से तर जाने का ॥
अवसर पितु सेवा करने का, कोई लड़का ही पाता है ।
विरला ही पुष्प जगत्पति के, चरणों पर रक्खा जाता है ॥

उनका सब दुःख मिटे जल्दी, है मेरा दृढ़ संकल्प यही ।
उसमें चाहे ये जान जाय, लेकिन इसकी परवाह नहीं ॥
जिसने केवल मेरी खातिर, अपना सब बदन घुला डाला ।
मुझको ही सुख पहुंचाने को, निजका सब सुःख भुलाडाला ॥
ऐसे हितकारी के हित में, यदि मेरा तन बलिदान हुआ ।
तो हुई कौनसी बात बड़ी इसमें क्या मम अहसान हुआ ॥
अस्तु कहो धीवर तुरत, मती लगाओ बार ।
हूं पितु सेवा के लिये, तन मन से तैयार ॥
सुनतेहि चोधरी हर्ष उठा, आगे आकर मस्तक नाया ।
सब भांति कुंवर का आदर कर, इक स्वच्छासन पर बिठलाया ॥
फिर कहा हे कौरव कुल दीपक, लख तुम्हें हृदय हरषाना है ।
है हाथ तुम्हारे ही सब कुछ, तुमसे ही प्रण करवाना है ।
हे वीर तुम्हारे सम जिसका, जग में सोतेला भाई हो ।
कैसे वह सुख का भोग करे, उसकी किस तरह भलाई हो ॥
जिसपर तुम क्रोधित हो जाओ, फिर उसको कौन बचा सकता ।
किसकी ताक़त है दुनियां में, जो खाकर ज़हर पचा सकता ॥
यदि तुम सच्चा प्रण कर डालो निज राज से हाथ उठाने का ।
और सत्यवती के लड़के को, हक़ अपना सकल दिलाने का ॥
तब तो कन्या का मुझे, है विवाह मंजूर ।
पितुपरयदि कुछ भक्ति है, करो यही दस्तूर ॥
कहा भीष्म ने ध्यान धर, सुनलो धीवर राज ।
पितुहित साधन के लिये, करता हूं प्रण आज ॥
मैं सच्चा क्षत्री हूं धीवर, मुझको तुम कायर मत जानो ।
जो कुछ बातें मैं कहता हूं, उनको सब तरह सत्य मानो ॥
चाहे ये जान चली जावे, पर आन नहीं छोड़ूंगा मैं ।
जब तक दम में दम बाक़ी है, नहि प्रण से मुंह मोड़ूंगा मैं ॥

यौवन की तरंग गर्क हो तू, अय हृदय अब मत चक्कर खा ।
ओ राज लोभ सूरत न दिखा, तृष्णा तू भी बिल्कुल नसजा ॥
अय दिल वज्जर होजा झटपट, ओ प्यारी जिह्वा प्रण करले ।
ओ तन मन कांपे स्थिर हो, भीषम निर्मल जीवन करले ॥
आओ आओ देवों आओ, बलदो मुझको बल हीन हुं मैं ।
सच्चा त्यागी अरु सन्यासी, करदो मुझको अतिदीन हुं मैं ॥
है साक्षी ये आकाश पवन, सुरगण भूमी मंडल सारा ।
अरु परमपिता जगदीश ईश, सर्वत्र व्याप्त सबसे न्यारा ॥
प्रण है " निज पैतृक सम्पति से, रक्खूंगा कुछ भी काम नहीं ।
होगा नृप सत्यवती सुतही, भोगूं मैं राज आराम नहीं " ॥

पितु पर ऐसी भक्ति लख, हर्षे देव तमाम ।
गंगा-नंदन को दिया, तुरत 'देवव्रत' नाम ॥

गाना

धन्य है धन्य तू भारत जनम जहँ भीष्म ने धारा ।
पिता के हित मे अपना करदिया बलिदान सुख सारा ॥
राज के नेह से चित को हटाया उस तपस्वी ने ।
रहा आजन्म ब्रह्मचारी मगर प्रण को नहीं टारा ॥
धन्य है पितृ भक्ती धन्य स्वारथ त्याग भीषम का ।
धन्य है धन जितेन्द्रियता उमर भर कामको मारा ॥
है सच्चा त्याग ये ही पुत्र का कर्तव्य भी यह है ।
पिता के हेतु सुख तज कर बना आदर्श संसारा ॥
आधुनिक नवयुवक गण सीखलो कुछ भीष्म जीवन से ।
लगावो तनको पर हित में जगत मे है यही सारा ॥
अगर चाहते हो अपने देशकी कुछ भी भलाई तुम ।
करो परमार्थ जिससे स्वार्थ तम नश होय उजियारा ॥

ये देख दुखित हो भीषम ने, अंतेष्ठि क्रिया पूरी कीन्ही।
लघु भ्रात विचित्र वीर्य को फिर, हस्तिनापुर की गद्दी दीन्ही॥
इन्ही के उपदेशानुसार, वह बालक राज चलाता था।
इनको अपना भाई न समझ, पितु सम भक्ती दरसाता था॥
इस बालक का जिस समय, आया यौवन काल।
व्याह करन का भीष्म को, छाया तुरत खयाल॥
इतने में सुना इन्होंने ये, काशी नृप की कन्याओं का।
होवेगा शीघ्र स्वयंवर अब, उन रूप राशि धन्याओं का॥
ये सुन माता की आज्ञा ले, भीषम काशी पुर को धाये।
और जहां स्वयंवर होता था, आतुर हो तहां चले आये॥
देखा अगणित नृप बैठे हैं, छवि अजब निराली किये हुये।
और घूम रही हैं कन्यायें, कर में वरमाला लिये हुये॥
गंगा नंदन ने तीनों को, जबरन निजरथ पर बिठालिया।
फिर धनुष चढ़ा मुस्काते हुये, भूपों से कहना शुरू किया॥
हे राजाओं तुम लोगों में, शक्ती हो तो आगे आवो।
कन्यायें यदी चाहते हो, तो अपनी ताकत दिखलावो॥
मैं एक हूं तुम हो अनगिनती, तो भी हरकर ले जाता हूं।
ललकार सुनाकर तुम सबको, लड़ने के लिये बुलाता हूँ॥
श्री भीषम की बात सुन, गये भूप रिसियाय।
दौड़े सब एकत्र हो, निज निज धनुष चढ़ाय॥
उस समय अकेले भीषम का, सब नृपों से संग्राम हुआ।
अति कोलाहल के मचने से, परिपूरन गगन तमाम हुआ॥
हल चल से गर्द गुबार उठा, थर्राय गई भूमी सारी।
कोदंडों की टंकारों ने, घन गर्जनसम ध्वनि की भारी॥
मारो पकड़ो जाने न पाय, यों कह नृप शोर मचाते थे।
जल बूंदों सम अनगिनत तीर, गंगा सुत पर बरसाते थे॥

चौ तरफा से जब महा मार, होती देखी अपने रथ पर ।
उस समय भीष्म कुछ गर्मा कर, बोले निज सारथि से सस्वर ॥
हे सूत हमारे स्यंदन को, हांको चहुँ ओर घुमाते हुये ।
हम नष्ट करेंगे भूपों को, हर तरफ बान बरसाते हुये ॥
होते हि हुक्म भीषम का रथ, गोलाई में दौड़न लागा ।
सुन जिसकी भीषण गड़गड़ाट, रिपुओं के मन में डर जागा ॥
जिस तरह किया था सुरपति ने, भुजबल से असुरों का खंडन ।
त्योंही विध्वंस शत्रुओं का, झट करन लगे गंगानंदन ॥
अगणित धड़ मस्तक हीन हुये, इन महावीर के बानों से ।
कितनों के कर टूटे, कितने, कर धो बैठे निज प्रानों से ॥
परिपूर्ण रुंड अरु मुन्डों से, पल में मैदान हुआ सारा ।
घायल दुःख से कर्राने लगे, वह निकली शोणित की धारा ॥

अतुल पराक्रम देखकर, दंग हुये भूपाल ।
विजय आश जाती रही, हुआ हाल बेहाल ॥

हो गई भंग मन की हिम्मत, कपकपी सकल तन में छाई ।
कितनों के शस्त्र गिरे कर से, कई एकों को मुरछा आई ॥
बोले आपस में अवनीपति, हा कैसा बुरा ये काम किया ।
जो गुस्से के वस में होकर, गंगासुत से संग्राम किया ॥

शर इनके सामान्य नहीं, काल समान कराल ।
सन्मुख आते इस तरह, जनु फुंकारत व्याल ॥

भागो भाई वरना जीवन, बचना मुश्किल हो जायेगा ।
जो आज यहां पर ठहर गया, वह निश्चय जान गमायेगा ॥
आशायें सारी तज डालो, अब कन्याओं के पाने की ।
सब से पहिले तदवीर करो, अपनी ये देह बचाने की ॥

आपस में करके सलाह, भगे भूप ले जान ।
गंगासुत ये देख कर, गरजे सिंह समान ॥

जय शंख बजा रथ हकवा कर, ये सीधे हस्तिनापुर आये ।
सुन समाचार इनकी जय के, सारे पुरवासी हरषाये ॥
महलों में आय देवव्रत ने, सब कन्यायें भाई को दीं ।
फिर उनका विवाह रचाने की, ले माताज्ञा तैयारी की ॥
लघु भगनी अंबालिका, मय अंबिका कुमारि ।
शादी करने के लिये, भईं तुरत तैयार ॥
पर जेष्ट भगनि जो अंबा थी, सहमत न हुई इस श्यादी से ।
कर नम्र कंध सन्मुख आकर, बोली भीषम सतवादी से ॥
हे वीर आप हैं सत्यव्रती, सब शास्त्र विशारद विज्ञानी ।
एक विनय सुनाती हूँ तुमको, सुन करिये मेरी मन मानी ॥
श्री शाल्वराज के चरणों में, मैंने निज हृदय किया अर्पण ।
वरती मैं उन्हें स्वयंवर में, पर बीच में तुमने किया हरण ॥
इच्छा है उनकी पत्नी बन, सुख से ये आयु बिताऊँ मैं ।
यदि आज्ञा हो तो चली जाऊँ, मन में तुम्हरा यश गाऊँ मैं ॥
यहां हृदय हीन होकर रहना, लगता है मुझको दुखदाई ।
अस्तु कर कृपा विदाई दो, जाऊँ प्रीतम की शरणाई ॥
अंबा का प्रस्ताव सुन, रहे भीष्म अरगाय ।
बोले फिर कुछ सोचकर, सुनो बात चितलाय ॥
अम्बा मैं नहीं चाहता हूँ, तेरा ये प्रेम बंधन काटूं ।
जल देना तो इक ओर रहा, उल्टी तरुवर की जड़ छांटूं ॥
जलते हों उन्हें शीतल करना, व्यथितों की व्यथा मिटा देना ।
मेरा तो प्रण है पर हित में, जीवन की भेंट चढ़ा देना ॥
जाओ, मैं सुख से सहमत हूँ, अपने प्यारे पति पै जाओ ।
दिन रात रहो आनन्द मग्न, पा वीर पुत्र तुम सुख पाओ ॥
चली गई ये वाक्य सुन, अंबा मन हर्षाय ।
शाल्व राज से जायकर, बोली यों मुस्काय ॥

प्राणेश, प्राणपति, प्राणनाथ, ये हृदय हार स्वीकार करो।
बदले में प्रेम भीख देकर, इस दासी का उपकार करो॥
इतने दिन का बिछुड़न स्वामी, हा! हुआ है अतुलित दुखदाई।
अब गृहन करो इस अबला को, हे मम जीवन धन हर्षाई॥
हा कैसी बुरी घड़ी थी वह, जब भीष्म यहां पर आया था।
जबरन हम तीनों बहनों को, अपने रथ पर बिठलाया था॥
तुम से बिछोह होते लखकर, ये हृदय बहुत ही बिकल हुआ।
बहुतेरा ढ़ाढस दिया इसे, पर होकर विचल न अचल हुआ॥
आखिर अति दुख बढ़ जाने से, मैं गिरी यान पर घबरा कर।
जब सुधि आई तो क्या देखा, होता है घोर प्रचंड समर॥
भीषम का रथ भीषणता से, वायू सम चक्कर खाता है।
छुटते हैं बान वज्र सदृश्य, सन्मुख न कोई ठहराता है॥
राजागन बारी बारी से, भूमी पर गिरते जाते हैं।
मज़बूत स्यंदनों के टुकड़े, जहां तहां दृष्टि में आते हैं॥

घायल हो घोड़े कई, दौड़ें सरपट चाल।
बहे रक्त धारा तहां, नृत्य करहिं बेताल॥

ऐसा भयदायक दृश्य निरख, खूं सूख गया जां घबराई।
चाहा जल्दी यहां से भागूं, किन्तु भय वश न भाग पाई॥
कर नेत्र बंद चुपचाप हुई, तब प्यारी मूरत मन में धर।
छुटकारा पाने के उपाय, मैं लगी सोचने प्राणेश्वर॥
मग में तो अवसर मिला नहीं, घर जाकर ही छुट्टी पाई।
अस्तू स्वामी तुव चरणों की, करने दो मुझको सेवकाई॥

कहा शाल्व ने अब नहीं करूंगा तुम से प्रेम।
पर नारी घर में रखूं, नहीं है मेरा नेम॥

हे अम्बा भरे स्वयंवर में, भीषम ने तेरा कर पकड़ा।
अपने भुजबल से भूपों को, करके परास्त जीता झगड़ा॥

तू उसके द्वारा विजित हुई, फिर किस कारन यहां आई है ।
पति तजने वाली नारी को, मिलती नहिं जगत भलाई है ॥
अस्तू मम वचन हृदय में धर, भीषम के भवन चली जाओ ।
है वही तुम्हारा असली पति, कर उसकी सेवा सुख पाओ ॥
तुमने ऐसा उत्तम पति पा, अचरज है क्यों नहिं अपनाया ।
ऐसा क्या उसमें अवगुण है, जो प्रेम नहीं होने पाया ॥

शाल्वराज के वचन सुन, अंबा हुई अधीर ।
हाथ जोड़ कहने लगी, भर आँखों में नीर ॥

ऐसी बातें न कहो प्रीतम, मुझको मत समझो पर नारी ।
भीषम को चाह न नारी की, वे तो हैं बाल ब्रह्मचारी ॥
अपने भाई की शादी की, इच्छा कर यहां पधारे थे ।
बस इसी हेतु मुझको लेकर, वे अपने भवन सिधारे थे ॥
पर, स्वामी एक म्यान में ज्यों, दो तल्वारें नहिं रह सकतीं ।
बस इसी तरह इकले दिल में, दो प्रेम मूर्ति नहिं आ सकती ॥
ये हृदय निछावर है तुम पर, ये मन निशिदिन तुम नाम रटे ।
ये आंख तुम्हें ही तकती हैं, फिर गैर की कैसे बात लगे ॥

ऐसे निष्ठुर मत बनो, अपनाओ प्राणेश ।
निरपराध हूं किसलिये, देते दुःख विशेष ॥

प्राणेश ! प्रेम वह गया किधर, किस लिये धरी है निठुराई ।
क्या भूल गये उस दिनको तुम, मांगी थी भिक्षा बरिआई ॥
मेरे सन्मुख घुटने टेके, बोले मैं प्रेम भिखारी हूं ।
इस सुन्दर मुख का हे अंबा, इच्छुक हूं और पुजारी हूं ॥
पर आज ये कैसी हवा चली, वह मेघ प्रेमका गया कहां ।
हे स्वामी तुम ही बतलाओ, तज तुम्हें और अब जाउं कहां ॥

भीषम है अंबा तेरे, सर्व नाश का मूल ।
यदी तुझे हरता नहीं, मैं रहता अनुकूल ॥
अब तू उसके घर रह आई, इसलिये न प्रेम करूंगा मैं ।
चल हट मुझ से हो दूर जल्द, तेरी नहिं एक सुनूंगा मैं ॥
ऐसी बेढंगी बातों से, हरगिज़ न मेरा दिल पिघलेगा ।
ये वो तिल नहीं हैं हे अंबा, जिनसे कि तेल कुछ निकलेगा ॥
सुन शाल्व भूप की बातों को, अंबा को कष्ट अपार हुआ ।
वह चली दृगों से अश्रुधार, तन दीन मलीनाकार हुआ ॥
कुररी की भांति रुदन करती, शीघ्र ही नगर बाहिर आई ।
अपनी ऐसी बद हालत लख, किस्मत पर अतिशय झुंझलाई ॥

गाना

मेरे सम जग मे अभागिन है कोई नारी नहीं ।
हो रहित जो सर्व सुख से ऐसी दुखियारी नहीं ॥
हो तिरस्कृत पति से पितु के घर न जा सकती हु मैं ।
ऐसी हालत मे सुता होती कभी प्यारी नहीं ॥
धिक्कार दूँ भीषम को या निन्दा करूं उस शाल्व की ।
अथवा अपने भाग्य को कोसूं जो सुखकारी नहीं ॥
पर मेरे दुःखो की जड़ वो मूढ़ गंगा पुत्र है ।
जो न ले जाता मुझे होती मेरी ख्वारी नहीं ॥

गंगा सुत पर क्रोध कर, गरज उठी वह बाल ।
निर्जन वन में जोर से, बोली आंख निकाल ॥
भीषम ! भीषम !! दुष्कर्म तेरा, तुझको मंजधार डुबायेगा ।
मुझ अबला को कल्पाने का, तू शीघ्र नतीजा पायेगा ॥
तू ग्रीष्म काल का सूर्य हुआ, उपवन की तरी मिटाने को ।
और हाथ हुआ पत्तियां तोड़, पंकज की शान घटाने को ॥

नारी को अबला कहते हैं, तू इसी से निर्बल जानता है ।
पर इसके साहस को बल को, नहिं ब्रह्मा भी पहिचानता है ॥
आने दे समय बता दूंगी, इस अबला में कितना बल है ।
इन चूड़ी वाले हाथों में, तख्ता पलटाने की कल है ॥
दुःखों का बदला मूढ़ मती, सुनले मैं अवश्य चुकाऊंगी ।
बस आज प्रतिज्ञा करती हूँ, नागिन बनकर डस जाऊंगी ॥

कलपाने का नारि को, देख नमूना दुष्ट ।
पीकर तेरे रक्त को, होऊंगी सन्तुष्ट ॥

इस प्रकार ये बकती झकती, श्री परशुराम के ढिंग आई ।
कर उन्हें प्रणाम, करुण स्वर से, अपनी सब दुख गाथा गाई ॥
जिसको सुनकर भृगुनंदन ने, अम्बा को धैर्य प्रदान किया ।
फिर भीषम को समझाने को, झट कुरुक्षेत्र प्रस्थान किया ॥

वहां जाय गांगेय को, बुलवाया निज पास ।
आये भीषम शीघ्र ही, छाये परम हुलास ॥

मस्तक अवनत कर आदर से, की चरन बंदना भृगुवर की ।
हर्षित हो सुख से जा बैठे, आसन पर पा आज्ञा गुरु की ॥
फिर कहा मुझे क्यों बुलवाया, क्या काम है प्रभु आज्ञा दीजे ।
किंकर हाज़िर है तन मन से, जो इच्छा हो सेवा लीजे ॥
तब बोले राम कुपित होकर, भीषम तुम सम ब्रह्मचारी की ।
क्यों सारी बुद्धी नष्ट हुई, जो हुई कामना नारी की ॥
यदि हृदय बदल गया था तो, फिर क्यों इसको परित्याग किया ।
किस लिये न घर में ठहरा कर, इस अबला से अनुराग किया ॥
पहिले तुमने स्पर्श किया, अब कौन गृहण कर सकता है ।
है कौन जो नारि दूसरे की, अपने घर में रख सकता है ॥

अस्तू मेरी ये आज्ञा है, अंबा से तुम नाता जोड़ो ।
जग में ब्रह्मचारी रहने का, बस आजहि से दावा छोड़ो ॥

कहा भीष्म ने आपकी, बात नहीं मंजूर ।
होवेगा क्षत्री कुँवर, प्रण से कभी न दूर ॥

स्वामी यदि आज्ञा हो मुझको, ये खाल बदन से खींचूँ मैं ।
पदकमल आपके गुरूदेव, जिन शोणित द्वारा सींचूँ मैं ॥
ये बदन आपकी सेवा में, नस भी जाये तो शोक नहीं ।
तव काम में सोच विचार करे, भीषम इतना डरपोक नहीं ॥
तुम्हरा सब हुक्म मानने को, है शिष्य अभी तैयार गुरू ।
लेकिन प्रणकर फिर हट जाना, मुझको है नहीं स्वीकार गुरू ॥

कान खोल कर ध्यान से, सुनलो क्षत्रिकुमार ।
मृत्यु, विवाह में से करो, एक वस्तु स्वीकार ॥

यदि समय आ गया गुरू देव, मृत्यू अच्छी समझूँगा मैं ।
मर जाऊँगा पर जीते जी, परतिज्ञा को न तजूँगा मैं ॥
ये कायर नर की शपथ नहीं, भीषम की अचल प्रतिज्ञा है ।
बालू की भींत न इसे गिनो, त्यागी की सत्य तपस्या है ॥
तारे अपना प्रकाश तज दें, गिरि टूट रेत सम हो जावें ।
हल की सी आगदे सिन्धु सुखा, चल अचल,अचल चल होजावें ॥
पर ध्रुव के तारे के समान, मेरी न कसम टल सकती है ।
ऊसर में बोई हुई लता, किस तरह फूल फल सकती है ॥
अंबा अपनी ही मरजी से, श्री शाल्वराज के पास गई ।
इसमें मेरा है क्या कसूर, जो वहाँ न पूरी आस भई ॥
मैं तो अपने भाई के लिये, कन्यायें हर कर लाया था ।
इसकी सुन्दरता में मेरा, मन कभी नहीं भरमाया था ॥

विन उचित विचार किये स्वामी, क्यों मुझ पर आप रिसाते हैं ।
अपराध नहीं कुछ भी मेरा, फिर भी गरमाते जाते हैं ॥
है मेरी सत्य प्रतिज्ञा ये, "आजन्म रहूँगा ब्रह्मचारी ।
भय, लोभ, कामना के वस हो, मैं कभी न व्याहूँगा नारी" ॥

अन्तिम आज्ञा है मेरी, या तो कहना मान ।
वरना लड़ने के लिये, कर जल्दी सामान ॥

तुझको अपने बाहू वलका, इतना घमंड हो आया है ।
जिसके सन्मुख गुरु आज्ञा का, कुछ मूल्य नहीं ठहराया है ॥
वह गर्व समस्त आज तेरा, मैं शीघ्र चूर्ण कर डालूँगा ।
इक्कीस वार निःक्षत्रि किया, वह परसा फेर सम्भालूँगा ॥
आजा क्षत्री वालक आजा, मैं रन के लिए बुलाता हूँ ।
अपमानों का सब बदला ले, यम सदन तुझे भिजवाता हूँ ॥

शांत शान्त गुरु शान्त हो, तज दो क्रोध मुनीश ।
कहाँ हुँ मैं कहाँ आप हैं, एक पाँव एक शीश ॥

मेरी व आपकी बराबरी, गुरुदेव कहाँ रह सकती है ।
गुरु-शिष्य युद्ध, उल्टी गंगा, बोलो कैसे वह सकती है ॥
बिन लड़े ही हार मानता हूँ, चाहो ये शीश काट डालो ।
फिर एक बार यदि इच्छा हो, अपने परसे को चमकालो ॥
गुरु तुमको शान्त बनाने में, तन छूट जाय बलिहारी है ।
ललकारत हो मुझको रन में, ये भारी भूल तुम्हारी है ॥
जब तक तन शान्ति निकेतन है, निज आज्ञाकारी शिष जानो ।
यदि क्रोध कहीं आ गया नाथ, तो सत्य हलाहल विष मानो ॥
फिर चहे देव हो दानव हो, या स्वयम् काल भी आ जावे ।
तो भी निर्भय हो लड़ने को, ये क्षत्री का वालक धावे ॥

क्षत्री के कुल में पैदा हो, रन में जो पीठ दिखाता है ।
वह क्षत्रि नहीं क्षत्री कलंक, मर अन्त नर्क में जाता है ॥

प्रण से टलूँ न मैं कभी, चाहे जीवन जाय ।
वृथा परिश्रम किस लिये, करते हो मुनिराय ॥

मैं तुमको अपना गुरू समझ, अबतक आदर करता आया ।
पर देख तुम्हारी हट धर्मी, अब मुझको भी गुस्सा छाया ॥
हे द्विजाभिमानी रनदुर्मद, क्यों सोया सिंह जगाते हो ।
इस मामूली से परसे पर, किस लिये वृथा इतराते हो ॥
करते हो गर्व इकीसवार, निःक्षत्री भूमि बनाने का ।
भीषम होता तो कर देता, मद चूर्ण युद्ध में आने का ॥
भृगुनन्दन अव सन्मुख आकर, मम भुज बल का परिचय देखो ।
पंचानन सदृश्य महाबली, क्षत्री का रन अभिनय देखो ॥

सुनकर बातें भीष्म की, रक्त वर्ण कर नैन ।
परसे को ऊँचा उठा, बोले भृगुवर बैन ॥

नादान युद्ध की अभिलाषा, तेरी सब आज भुला दूंगा ।
इस ही परसे की ताक़त से, भूमी पर तुझे सुला दूंगा ॥
ले उठ अपने शस्तर ले कर, सारा बाहू बल दिखला तू ।
यदि क्षत्री का लड़का है तो, मेरे सन्मुख रन में आ तू ॥
तेरे तन को निर्जीव आज, देखेंगे सुर नर मुनि सारे ।
खावेंगे जम्बुक स्वान गृद्ध, इस सुन्दर तन को मतवारे ॥

हैं अयोग्य जो रुदन के, वह गंगा महारानि ।
रोवेंगी अति, देख कर, तव प्राणों की हानि ॥

आपस में तना तनी हो कर, वह घोर भयंकर युद्ध हुआ ।
हिल गया भूमि मंडल तो भो, रन से कोई न विरुद्ध हुआ ॥

हरचंद परसुधर ने चाहा, भीषम के प्राण निकालूँ मैं ।
सारा अभिमान चूर्ण करके, हृदय की प्यास बुझालूँ मैं ॥
पर कर न सके कुछ भी विगाड़, वो जौहर भीष्म दिखाते थे ।
उल्टे ही परसुराम थक कर, पलपल में दवते जाते थे ॥
आखिर भीष्म के तीरों से, वह परसु छूट भूमी में गिरा ।
और साथ ही इसके चेला भी, गुरुराई के चरणों में गिरा ॥

वंद हुआ संग्राम सव, भेंटे गुरु शागिर्द ।
देवों ने खुश हो सुमन, वरसाये चौगिर्द ॥

वोले भृगुनन्दन धन्य भीष्म, लख तेरा वल हर्षाता हूँ ।
तेरे सम योग्य शिष्य पाकर, फूला नहिं अंग समाता हूँ ॥
जैसे हो अजय समर में तुम, वैसे ही स्वारथ त्यागी हो ।
हो भूमी पर सच्चे क्षत्री, प्रण पालन में अनुरागी हो ॥
जाओ ब्रह्मचारी रहो सदा, नित प्रभु का यश गुणगान करो ।
मैं अंवा को समझाता हूँ, तुम हस्तिनापुर प्रस्थान करो ॥
भीषम से इतनी वातें कह, भृगुनन्दन अंवा पै आये ।
शिष के वाहू वल के कर्तव, सव एक एक कह वतलाये ॥
फिर वोले उस धनुधारी से, मेरी कुछ पेश नहीं आई ।
गो मैंने अपनी जान लड़ा, सव रन कौशलता दिखलाई ॥
मजबूर हूँ मैं लाचार हूँ मैं, कुछ मदद नहीं कर सकता हूँ ।
ऐसे अतुलित वलशाली का, किस तरह जीव हर सकता हूँ ॥

परशुराम का जव सुना, उतर ऐसा पोच ।
अंवा के मन में हुआ, अति ही दारुण सोच ॥

वोली मुझको तो आशा थी, तुम मेरा काम वनाओगे ।
भीषम को निज वानों द्वारा, तत्काल जमीन दिखाओगे ॥

पर आज मुझे ये जान पड़ा, तिहुं लोक में उसका जोड़ नहीं ।
सुर नर एकत्रित होकर भी, कर सकते हरगिज़ होड़ नहीं ॥
पर इसकी कुछ परवाह न कर, मैं अपना काम बनाऊंगी ।
अबला में कितना बल होता, ये दुनियां को दिखलाऊंगी ॥
जाओ भृगुराज भवन जाओ, अंबा को अब आराम कहां ।
जबतक भीषम का निधन न हो, तबतक इसको विश्राम कहां ॥
जाती हूं मैं अब जंगल में, शंकर का ध्यान लगाने को ।
बरदान प्राप्त करके उनसे, निज बिगड़ी हुई बनाने को ॥

अंबा ने यह बात कह, गमन विपिन में कीन्ह ।
आराधन में शम्भु के, हुई तुरत लवलीन ॥

वह घोर तपस्या शुरू करी, तजदिया सकल खाना पीना ।
निशि दिन केवल वायू भक्षण, करके अख़्त्यार किया जीना ॥
कुछ ही दिन में कंचन समान, सुन्दर काया मुरझाय गई ।
होगई दूर लाली सारी, चहरे पर श्याही छाय गई ॥
लख उग्र तपस्या अंबा की, हो गये प्रसन्न शूलपानी ।
झट निकट आय हर्षित होकर, बोले मीठी कोमल बानी ॥
"भद्रे सुकुमार अवस्था में, ये घोर क्लेश क्यों सहती हो ।
तप करने का क्या कारण है, बोलो बोलो क्या कहती हो" ॥

अंबा ने ये वाक्य सुन, खोले दोनों नैन ।
शंकर को सन्मुख निरख, हुआ हृदय में चैन ॥

कर जोड़ प्रेम से शीश झुका, बहु विनय करी त्रिपुरारी की ।
फिर बोली मैं धन धन्य हुई, लख सूरत भव भयहारी की ॥
भगवन्! दासी पर दया करो, मेटो मन का अरमान प्रभू ।
"मेरे हाथों से मरे भीष्म, ऐसा ही दो वरदान प्रभू" ॥

मृत्युंजय त्रिपुरारि ने, दिया यही वरदान ।
मुस्कराकर फिर कह उठे, सुन अंबा धर ध्यान ॥

"बेटी तेरे ही हाथों से, गंगासुत मारे जावेंगे
लेकिन वे दिन इस जीवन में, तुझको नहिं शक्ल दिखावेंगे।
इस आयू को पूरी करके, जब जन्म दूसरा धारेगी
तब मेरे वर की शक्ती से, निश्चय भीषम को मारेगी।
द्रौपद के यहां जन्म होगा, होवेगा शिखंडी * नाम तेरा
भारत में महाभारत होगा, उस समय बनेगा काम तेरा"।
यों कह शिव अंतर ध्यान हुये, अंबा ने चिता बनाय लई
निज जीवन को भूभार जान, अग्नी से देह जलाय लई।

अंबा का गांगेय ने, जब ये सुना बयान ।
दीर्घ स्वांस लेकर कहा, जो मरजी भगवान ॥
हुआ इस तरह सज्जनों, पूरा पहिला भाग ।
'श्रीलाल' अब दूसरा, सुनो सहित अनुराग ॥

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तू ॥

* शिखंडी का किस प्रकार से जन्म हुआ इसका सम्पूर्ण वृतान्त हमारे बनाये हुये "पान्डवों की अस्त्र शिक्षा" नामक तीसरे हिस्से में देखिये। इसके अतिरिक्त शिखंडी किस तरह भीष्म के वध का कारण हुआ इसका कुछ हाल "भीष्म युद्ध" नामक सोलवें हिस्से में देखें।

महाभारत ॐ दूसरा भाग

पांडवों का जन्म

श्रीलाल

महाभारत — ॐ — दूसरा भाग

पांडवों का जन्म

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—

महाभारत पुस्तकालय, अजमेर

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया. दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

तीसरी बार २०००

विक्रमी सम्वत् १९९२
ईस्वी सन् १९३५

मूल्य ।) आने

प्रार्थना ।

ईश भक्ती में हमारा जब ये मन रंग जायगा ।
तब हमें निज दर्श निश्चय सांवरा दिखलायगा ॥
हार की सूरत में जब तक पुष्प होवेंगे नहीं ।
तब तलक कैसे कोई हरि कंठ में पहिरायेगा ॥
मानलो सारा बदन शोभित है उत्तम वस्त्र से ।
प्राण से यदि हीन है किस काम का कहलायेगा ॥
जन्म लेने का जगत में मुख्य है कर्तव्य यही ॥
जग नियन्ता को भजो निर्मल हृदय हो जायेगा ॥

मङ्गलाचरण

रक्ताम्बर धर विघ्न हर, गौरीसुत गणराज ।
करना सुफल मनोर्थ प्रभु, रखना जन की लाज ॥
सृष्टि रचन, पालन, हरन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश ।
बानी, रमा, उमा सुमिल, रक्षा करहु हमेश ॥
वन्दहुं व्यास बिशाल बुधि, धर्म धुरंधर धीर ।
महाभारत रचना करी, परम रम्य गम्भीर ॥
जासु बचन रवि जोति सम, मेटत तम अज्ञान ।
वन्दहुं गुरु शुभ गुण भवन, मनुजरूप भगवान ॥

नारायणं नमस्कृत्य, नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं, सरस्वतीं, व्यासं, ततोजय मुदीरयेत् ॥

कथा प्रारम्भ ।

अंबा का तो होगया, चिता में भस्म शरीर ।
आगे की गाथा सुनो, श्रोताओं मति धीर ॥
अंबा की बहिनों से विवाह, नृप विचित्रवीर्य का जब से हुआ ।
ले उन्हें वे मौज़ उड़ाने लगे, मन अलग राज से तब से हुआ ॥
बस नाम विचित्रवीर्य का था, पर भीषम प्रजा पालते थे ।
उस बृहत राज्य के विषयों को वे ही इकले सम्भालते थे ॥
राजा की युवा अवस्था लख, वह काम 'काम' ने दिखलाया ।
दिन रात महल में मस्त रहे, पर काम नहीं घटने पाया ॥
सारा वल थका, शरीर थका, पर तृष्णा बढ़ती जाती थी ।
घी, आग में जितना पड़ता था उतनी हि भड़कती जाती थी ॥
काम्य वस्तु उपभोग से, काम नहीं कम होय ।
शुक्ल पक्ष के चन्द्र जिमि दिन दिन बाढ़े सोय ॥
बेहद वशवर्ती होने से, नृप का शरीर छवि छीन हुआ ।
आगया बुढ़ापा यौवन में, झुकगई कमर बलहीन हुआ ॥
आघेरा क्षयी रोग ने फिर, ला इलाज हो गये नर राई ।
यों ही कुछ दिनों रहे घुलते, फिर मल्कुल मौत चली आई ॥
उसने आते ही दम भर में, सब आशाएं पूरी करदी ।
जग के झंझट से छुड़ा उन्हें, सुरपुर की झट आज्ञा देदी ॥

मृत्यु हुई सुन भूप की, फैला हा हा कार ।
सत्यवती बहुओं सहित, व्याकुल हुई अपार ॥
भीषम ने भी शोकाकुल हो, सब प्रेत कार्य सम्पूर्ण किये ।
आये फिर माता के समीप, नेत्रों को अश्रू पूर्ण किये ॥
बोले अब कौन भूप होगा, प्रणवश मैं अन अधिकारी हूँ ।
भ्राताओं के सुत हुआ नहीं इस दुख से निपट दुखारी हूँ ॥
कौरव कुल कुछ सामान्य नहीं, विख्यात है तीनों लोकों में ।
वो भूप बलिष्ट हुए इस में, यश फैलाया पर लोकों में ॥
हा ? आज उसी कुल का गौरव, बिन पुत्र बिलाया जाता है ।
हे मातु उपाय करो, मुझको, इस समय न कुछ दिखलाता है ॥
सत्यवती कहने लगी, पौंछ दृगन से नीर ।
बिना तुम्हारे पुत्र अब, दूर न होगी पीर ॥
इस धर्मनिष्ट कौरव कुल के, तुम्हीं एक मात्र सहारे हो ।
आशा हो गत महाराजा की, मेरे प्राणों सम प्यारे हो ॥
हे सुत जैसे अपने पितुका, तुमने सब दुःख मिटाया था ।
प्रण करके सच्चे हृदय से, निज हक़ से हाथ उठाया था ॥
वैसे ही हे धर्मज्ञ तुम्हें, कुल की रक्षा करनी होगी ।
इस दीना शोक विह्वला की, समुचित इच्छा रखनी होगी ॥
बिन भूप इस समय सूना है, इस आर्यवर्त का सिंहासन ।
इसलिये मान आज्ञा मेरी, तुम राज करो गंगा-नंदन ॥
एक चाह मम और है, करो ब्याह का काम ।
जिसमें सुत उत्पन्न हो, रहे वंश का नाम ॥
महारानी की बातें सुन कर, भीषम के नातेदार सभी ।
बोले, हे गंगतनय, अब तुम, कर सकते हो व्यवहार सभी ॥
तुमने अपने प्रण के माफिक, नारी न अभी तक ब्याही है ।
और सत्यवती के पुत्रों को, निज गद्दी भी दिलवाई है ॥

किन्तू भावी वश वे दोनों, जीवित न रहे परलोक गये ।
और रानी के फिर सुत उपजे, ऐसे भी नहीं आसार रहे ॥
अस्तू ये ही उत्तम है तुम, सम्राट की पदवी स्वीकारो ।
होवे न लोप कुरुकुल इससे, अपना विवाह भी कर डारो ॥
यों गंगतनय को अनायास, हो गईं प्राप्त दोनों बातें ।
आगया राज भी कर में और, पत्नी के सुख की भी रातें ॥
पर उस सच्चे व्रतधारी ने, इन महा सुखों को छोड़ दिया ।
निज प्रण पूरा करने के लिये, नफरत से मुँह को मोड़ लिया ॥
कर जोड़ मातु को शीश झुका, वे कुरुकुल दीपक गुणखानी ।
एक सच्चे क्षत्री के सदृश्य, बोले विनीत कोमल बानी ॥

कहा भीष्म ने मातु से, कथन तुम्हारा ठीक ।
लेकिन प्रण को छोड़ना, मुझे न लगता नीक ॥

ये सिंहासन किस गिनती में, यदि राज त्रिलोकी का होवे ।
अथवा हो इससे भी बढ़कर, तोभी न भीष्म निजसत खोवे ॥
परित्याग गंध का भूमि करे, हो जाय पृथक रस पानी से ।
शीतांशू शीत किरन तज दे, नभ सूना होवे बानी से ॥
बन जाय प्रभाकर प्रभाहीन, नस जाय रत्न से ऊजियाला ।
श्री धर्मराज हों धर्म विमुख, दाहक शक्ती तज दे ज्वाला ॥
तो भी हे माता कभी नहीं, मैं निज प्रण तज भूपाल बनूं ।
अथवा स्त्री से श्यादी कर, पैदा एक सुन्दर लाल करूँ ॥

* गाना *

प्रतिज्ञा करके जो फिर उसको निभाते हैं नहीं ।
स्वप्न में भी वे मनुज स्वर्ग में जाते हैं नहीं ॥
लोक परलोक में बस धर्म काम आता है ।
हुये जो इससे विमुख सद्गति पाते हैं नहीं ॥

लाख बहकाये कोई पर जो मर्द होते हैं।
ज्ञान कर्तव्य का हरगिज वे भुलाते हैं नहीं ॥
कौम दुनियां में वही फूलती व फलती है।
जिसके नर धर्म व शुभ कर्म गंवाते हैं नहीं ॥

आश रहित रानी हुई, तो भी धरकर धीर।
बोली अच्छा मैं स्वयम्, करती हूँ तदबीर ॥
ये खूब जानती हूँ भीषम, तुम सत्य कभी नहिं छोड़ोगे।
यदि विधि, हरि, हर भी समझावें, प्रण से मुंह को नहिं मोड़ोगे ॥
जाओ तुम तो आराम करो, मैं व्यास का ध्यान लगाती हूं।
आकर्षण मंतर से उनको, यहाँ इसी समय बुलवाती हूँ ॥
है आश मुझे मम विनती सुन, वे सचमुच कृपा दिखावेंगे।
निज तप बल से सुत प्रगटा कर, ये कौरव वंश बचावेंगे ॥
ऐसी बातें कह रानी ने, भीषम को आश्वासन दिया।
आकर्षण मंत्र लगी जपने मुनि व्यासका आवाहन किया ॥
ध्यानावस्थित थे जहाँ, व्यास सहज स्वभाव।
मंत्राकर्षण का पड़ा, उन पर तुरत प्रभाव ॥
आँखें दोनों खुल गईं, गई समाधी छूट।
ध्यान लगा सोचा तभी, है किस की करतूत ॥
अपने तप के बल से मुनि ने, ये सकल माजरा जान लिया।
परहित साधन को खड़े हुये, हस्तिनापुर को प्रस्थान किया ॥
थी जहाँ उपस्थित सत्यवती, आगये तहाँ ही मुनिराई।
करके उत्तम आसन ग्रहण, मृदुस्वर से पूंछी कुशलाई ॥
रानी ने दुःख भरे मनसे, सब किस्सा इनको सुना दिया।
जिस प्रकार दोनों पुत्रों ने, हो असुत धरा से गवन किया ॥

फिर बोली इस 'कुल' का कुल यश, पृथ्वी से जाने वाला है।
इसका न रहेगा नामो निशां, अब समय वो आने वाला है॥
हैं भीषम बाल ब्रह्मचारी, प्रण है 'राजा नहिं बनने का'।
निश्चल हैं निज प्रण पालन में, नहिं काम है कहने सुनने का॥
मैं विधवा हूँ अस्तू मुनिवर, कैसे कुल की रक्षा होगी।
कुछ रस्ता इसका बतलाओ, वह करूँगी जो शिक्षा होगी॥
दुखियों का दुःख दूर करना, ये संत जनों का बाना है।
बस इसी आश पर हे मुनीश, यहाँ तुमको पड़ा बुलाना है॥
यदि राज्य भूप से शून्य होय, रैयत अनाथ हो जाती है।
शुभ क्रियाँ हो लुप्त अराजकता, सर्वत्र अधिकार जमाती है॥
इसीलिये कृपा कर यत्न करो, जिससे ये कुरुकुल भ्रष्ट न हो।
और पित्र लोक से पित्र सभी, तर्पण होने से नष्ट न हो॥

कहा व्यास ने, सोच तज, धीर धरो मन माहिं।
प्रभु की कृपा कटाक्ष से, कुल उजड़ेगा नाहिं॥
मुनीराज के जब सुने, मधुर सुहाते बैन।
सत्यवती कहने लगी, जाय अंबिका ऐन॥

हे पुत्र वधू कौरव कुलका, दुर्भाग्य ने पल्ला आन गहा।
है पड़ी राजगद्दी सूनी, इसका मालिक कोई न रहा॥
हैं जेठ तुम्हारे दृढ़ प्रतिज्ञ, प्रण वश नहिं नारि विवाहेंगे।
गद्दी पर भी नहिं बैठेंगे, नृप बन नहिं राज्य चलायेंगे॥
और इधर तुम्हारे पुत्र नहीं, इससे ये युक्ति विचारी है।
यदि तुम भी उसमें सहमत हो, हो दुख से मुक्ति हमारी है॥
वो ये हैं मुनि एक आये हैं, तेजस्वी कवि कोविद ज्ञानी।
आवश्यक वस्तू मँगवा कर, तुम करो प्रेम से महमानी॥
यदि वे प्रसन्न हो गये वहू, वर देंगे सुत हो जायेगा।
होवेगा वही यहाँ का नृप, यों कुल न डूबने पायेगा॥

संध्यावंदन से निवृत्त हो, वे आज यहाँ पर आवेंगे ।
अतिथी सत्कार गृहण करके, सुख से एक दिवस वितावेंगे ॥
निज सासू का श्रवणकर, मतलब भरा विचार ।
मुनि सेवा के वास्ते, वह हुई तैयार ॥
झट न्हाय स्वच्छ कपड़े पहिरे, षटरस व्यंजन तैयार किया ।
एक सुन्दर आसन बिछा दिया, फिर सुखसे बैठ विचार किया ॥
श्री मुनीराज के आते ही, मैं सेवा में लग जाऊँगी ।
तन मन से परिचर्या करके, बस कृत्त कृत्य हो जाऊंगी ॥
मिलता है समय न बार बार, संतों की सेवा करने का ।
बस आज भाग्य कुछ उदय हुआ, अवसर आया दुख टरने का ॥
ये सुना है मुनि तेजस्वी हैं, तो अवश्य सुन्दर भी होंगे ।
देवों के सदृष्य कान्तिवान, पंडित गुण मंदिर भी होंगे ॥
श्री सूर्य देव तो अस्त हुये, अब संध्या बढ़ती आती है ।
मुनिराज के दर्शन करने की, शुभ घड़ी भी आई जाती है ॥
इन्हीं विचारों में हुई, मग्न अंबिका नार ।
आये वेदव्यास जी, मुनि सब गुण आगार ॥
आराध्य देव के आते ही, देवी आराधन करने उठी ।
पर उसके उठने से पहिले, वे आँखें दर्शन करने उठी ॥
क्या देखा सुन्दरता की जगह, विकराल स्वरूप बनाये हैं ।
घुंघराले बालों की बजाय, सिर जटा जूट लटकाये हैं ॥
गोरे चमड़े की एवज में, कज्जल सम श्याम शरीर बना ।
आँखें अंगारा देख देख, अंबिका का हृदय अधीर बना ॥
क्षण में आशायें लीन हुईं, मन गर्क हो गया पहलू में ।
दिल विकल हुआ तन थर्राया, जा चिपी जीभ भी तालू में ॥
हिमकर के दर्शन को आंखें, जो चकोर सम थी लगी हुईं ।
लख राहुस्वरूप व्यासजी को, डर से फौरन ही बंद हुईं ॥

सन्मान अतिथि सत्कार सभी, जाने किस ओर सिधाय गया ।
अमृत सम भोजन पड़ा रहा, भय ने अधिकार जमाय लिया ॥
हुई मूर्तिवत् अंबिका, खुले न दोनों नैन ।
सेवा की यह रीति लख, मुनी हुये बेचैन ॥
आखिर धर धीरज रानी ने, योंहीं सा कुछ सन्मान किया ।
फिर भी कर दया मुनीश्वर ने, एक लड़के का वरदान दिया ॥
पर कहा जो सुत पैदा होगा, वह जन्म से ही अंधा होगा ।
बलधारी तो होवेगा पर, उससे न राज धंधा होगा ॥
जब सत्यवती ने खबर सुनी, आंखों में आंसू भरलाई ।
आखिर कुछकर विचारकर फौरन, वह अम्बालिका के घर आई ॥
और बोली तेरी भगिनी को, एक युक्ति मैंने बतलाई थी ।
किस तरह से वंश बढ़ै अपना, ये सारी कथा सुनाई थी ॥
एक मुनि की सेवा करने का, उसको मैंने उपदेश दिया ।
पर ठीक ठीक सेवा न करी, अंधे सुत का वरदान लिया ॥
अंधा नहिं होता राज्य योग्य, हा मोसम दुखी न भूपर है ।
अब कुल की रत्ता करने का, सब भार तुम्हारे ऊपर है ॥
करो चरन सेवा बहू, तन मन से सुख पाय ।
कृपा हुई मुनिराज की, तो एक सुत मिलजाय ॥
निशिको आवेंगे यहां, रहो खूब हुशियार ।
आनन्दित हो प्रेम से, करो अतिथि सत्कार ॥
यों कह कर सत्यवती चलदी, धीरे धीरे संध्या आई ।
संध्यावंदन कर चुकने पर, महलों में आये मुनिराई ॥
अति विकट मूर्ति मुनिकी विलोक, उस नारी का रंग पीत हुआ ।
सासू ने जो समझाया था, बस ठीक उसके विपरीत हुआ ॥
ये देख ऋषी अनसन्न हुये, तो भी एक पुत्र प्रदान किया ।
पर 'पांडुरोग होगा उसके', यों कह वहां से प्रस्थान किया ॥

सत्यवती ये वात सुन, हुई निपट निरआस ।
एक वार फिर सोचकर, गई अंविका पास ॥
वोली पुत्री फिर यत्न करो, मांगो भित्ता मुनिराई से ।
सव भय संकोच छोड़ देना, करना सेवा दृढ़ताई से ॥
अंविका न इसमें राज़ी थी, पर सास से इक़रार किया ।
जव समय हुआ मुनि सेवा का, दासी को सजाकर भेज दिया ॥
इसने अपना तन मन लगाय, चतुराई से सेवा कीन्ही ।
सत्कार से आदर से खुशकर, मुनि से अच्छी आशिष लीन्ही ॥
वोले ऋषि एक पुत्र होगा, ईश्वर का भक्त नीतिधारी ।
धर्मात्मा श्रेष्ट बुद्धि वाला, होगा वलिष्ट अरु सुविचारी ॥
यों कह मुनि अंतरध्यान हुये, पा समय पुत्र उत्पन्न हुये ।
धृतराष्ट्र व पान्डु रानियों से, दासी से विदुर निष्पन्न हुये ॥
भीषम ने पालन पोषण कर, सव वच्चों को शित्ताऐं दीं ।
रणनीति, राज और धर्म नीति, इत्यादि और विद्याऐं भी ॥
धनुर्वेद में पांडु हुये नामी, वाहु वल में धृतराष्ट्र हुये ।
और हुये थे विदुर तत्वज्ञानी, भगवत भक्ती में तुष्ट हुये ॥
धृतराष्ट्र जन्म से अंधे थे, थे विदुर पुत्र शुद्रानी से ।
इसलिये पान्डु को राज मिला, वचगया वंश त्तय हानी से ॥
वड़े हुये कुछ दिन गये, तीनों राज कुमार ।
युवा काल लख भीष्म ने, मन में किया विचार ॥
इनका विवाह जल्दी से कर, कौरव कुल की जड़ वांधूं मैं ।
जिससे न लोप होने पावे, ये उत्तम कर्तव साधूं मैं ॥
इतने में सुना इन्हों ने यह, गंधार राज के कन्या है ।
जिसका सुनाम गंधारी है, शुभ लत्तण सुभग यौवना है ॥
हर्षित हो गांगेय ने, एक दूत बुलवाय ।
भेजा पुर गंधार में, सव वातें समझाय ॥

सुबल नाम थे इन दिनों, इस पुर के भूपाल ॥
तहां जाय कर दूत ने, बतादिया सब हाल ।
कुरु कुल से नाता होते लख, महाराज सुबल अति हर्षाये ।
पर धृतराष्ट्र को अंध जान, कन्या देने में सकुचाये ॥
इतने में शकुनी बोल उठा, जो था गांधारी का भाई ।
हे पिता आपकी सकुचाहट, इस समय न मुझे पसंद आई ॥
ऐसे शुभ अवसर को राजन्, अपने कर से मत जाने दो ।
धृतराष्ट्र अंध हैं ठीक नहीं, ऐसे विचार मत आने दो ॥
क्या नहीं देखते कितने रिपु, चाहते हैं यहां धावा करना ।
अपना और अपनी रैयत का, सब सुख ऐश्वर्य विभव हरना ॥
ऐसी हालत में यदि अपना, सम्बन्ध वहां हो जायेगा ।
फिर किस की हिम्मत है जग में, जो हमसे आँख मिलायेगा ॥
फिर राजकुँवर हैं तेजस्वी, अति ज्ञानवान बलवानी हैं ।
भारत के सर्वश्रेष्ट कुल के, दीपक हैं गुण की खानी हैं ॥
इसको अपना सौभाग्य गिनो, जो उन्होंने बात चलाई है ।
कर डालो जल्दी से विवाह, इसमें नहिं तनिक बुराई है ॥
शकुनी के प्रस्ताव से, सहमत हुये नृपाल ।
पहुँचे महलों में तुरत, कहा रानि से हाल ॥
जब इसको भी राज़ी देखा, तब गंधारी को बुलवाया ।
मीठे व मनोहर बचनो से, उस कन्या को यों समझाया ॥
हे बेटी! अपनी जन्म भूमि, परिपूर्ण है सारे सुःखों से ।
आनन्द सब जगह दिखता है, हैं रहित नारि नर दुःखों से ॥
ये बातें रिपुओं के मन में, दिन ब दिन खटकती जाती हैं ।
यहां धावा करने की रायें, नित ज़ोर पकड़ती जाती हैं ॥
यदि किसी समय उन लोगों का, यहाँ पर धावा होजायेगा ।
तो बस निश्चय समझो ये पुर, हो पराधीन दुख पायेगा ॥

जन्म भूमि रक्षित रहे, मिटै नहीं आनन्द ।
कीन्हा है इसके लिये, हमने एक प्रबंध ॥
तुमको मालुम है दुनियां में, कुरुकुल का कितना आदर है ।
तप में, धन में, बल बुद्धी में, कोई उसके न बराबर है ॥
सुरगण तक तत्पर रहते हैं, इससे मित्रता बढ़ाने में ।
अस्तू सोचा है तब विवाह, करदूं उस राज घराने में ॥
इस कुल का राजकुमार है जो, वह सभी बात में अच्छा है ।
लेकिन वो अंधा है अस्तू, बोलो तुम्हरी क्या इच्छा है ॥
'पति अंधा है' ये सुनकर भी, पीड़ा सुन हुई गंधारी के ।
बल्कि एक महा तेज छाया, चहरे पर उस सुकुमारी के ॥
हर्षित हो पुलकाय कर, धार हृदय में धीर ।
बोली वो सुबलात्मजा, बानी अति गम्भीर ॥
हे पिता! पिता!! जो कुछ तुमने, निज श्रीमुख से फ़रमाया है ।
वह अति उत्तम है उसको सुन, मेरा हृदय हरषाया है ॥
बलिदान मेरा होने पर भी, यदि जन्म भूमि बचजायेगी ।
तो भी गंधारी कभी नहीं, जां देने में सकुचायेगी ॥
मैं राजी हूं हे पितु तुम्हरी, इच्छा पूरी करने के लिये ।
इस जननी जन्म भूमि के हित अंधा स्वामी वरने के लिये ।
बस आज से कुरुकुल के कुमार, गंधारी के भर्तार हुये ।
इस चकोर के उज्ज्वल मयंक, अर्धांग व प्राणाधार हुये ॥
तज डालो सारा सोच फ़िकर, हो गई आपकी मनमानी ।
अब एक विनय मेरी भी है, धर ध्यान सुनो पितु गुणखानी ॥
दृष्टी सुख से हीन हैं, जब मेरे प्राणेश ।
तब मैं भी उस सुक्ख से, रहूंगी दूर हमेश ॥
इतना कह कर गंधारी ने, कपड़े की एक पट्टी लेकर ।
अति हर्ष दिखाती हुई उसे, बांधी झटपट निज आंखों पर ॥

फिर बोली मेरी ये पट्टी, आजन्म नहीं खुल पायेगी ।
गंधारी भी अंधी होकर, अपनी सब उम्र बितायेगी ॥
भावों का गंधारि के, करो तो ज़रा विचार ।
कैसी कैसी होगई, पतिव्रता यहाँ नारि ॥

*** गाना ***

हितसे पतिव्रत धर्मपालन नारियां करती है जो ।
संग लेकर पतिको भी संसार से तरती है वो ॥
होम जप तप व्रत के फलसे भी अधिक मिलता उन्हे ।
प्रेम से मस्तक पति के चरण मे धरती है जो ॥
परपुरुष सुन्दर हो अपना पति चहे बदशक्ल हो ।
धन्य है वे ऐसे पतिका सर्व दुख हरती है जो ॥
नरक की ज्वाला है उसको दग्ध करने के लिये ।
निज पुरुष तजकर पराये पुरुष को तकती है जो ॥
देवता हृदय से समझो पति को भारत नारियें ।
स्वर्ग जाती है वे दम पति प्रेम का भरती है जो ॥

प्रण सुनकर पितु मातुको, हुआ अमित आल्हाद ।
हर्षित हो गंधारिको, दीन्हा आशिर्वाद ॥
फिर अपनी भगनी को संगले, शकुनी हस्तिनापुर में आया ।
शुभ दिन शुभ लग्न महूरत में, सब काम विवाह का करवाया ॥
फिर हुआ विदुर का पाणिगृहण, देवक की प्यारी कन्या से ।
जिसका शुभ नाम पार्शवी था, गुणखान सुशीला धन्या से ॥
अब रहा पान्डु का विवाह फकत, उसकी भी भीषम ने ठानी ।
इतने में एक सुयोग्य मिला जिससे हुई इनकी मनमानी ॥

यादव कुल में उस समय, थे एक सूर सुजान ।
पृथा थी उनकी पुत्रिका, रूप शील गुणवान ॥
थे कुन्तीभोज राज नामक, एक मित्र सूर के हितकारी ।
वो पृथा को मनसे चाहते थे, करते थे प्रेम उससे भारी ॥
रहती थी पृथा इन्हीं के घर, अति सुखसे समय बिताती थी ।
यहाँ पालन पोषण होने से, वह कुन्ती भी कहलाती थी ॥
एक दिवस महा मुनि दुर्वासा, श्री भोजराज के घर आये ।
कुन्ती की उत्तम सेवा से, हो गये अनंदित हर्षाये ॥
आखिर चलती विरियाँ मुनि ने, इसको इक मंतर सिखलाया ।
था जिसका नाम देवकर्षण, सब विधी पूर्वक बतलाया ॥
फिर बोले तू निश्चल होकर, जिस देवका ध्यान लगावेगी ।
इसके प्रभाव से उसको तू, क्षणभर में निकट बुलावेगी ॥
आह्वान वृथा नहिं जायेगा, एक पुत्र मिलेगा मन माना ।
आवेगा आगे काम तेरे, अस्तू न भूल इसको जाना ॥
थी बाल अवस्था कुन्ती की, इस मंतर को झूठा समझा ।
मुनिवर की एक चाल समझी, दमबाजों का लटका समझा ॥
उपजा कौतूहल हृदय, मंतर का धर ध्यान ।
जा इकान्त जपने लगी, किया सूर्य आह्वान ॥
भुवनेश भास्कर प्रकट हुये, उस मंत्र ने असर दिखाय दिया ।
लख इनको कुन्ति लजाय गई, भयवश निजशीश झुकाय दिया ॥
फिर बोली मुझ से भूल हुई, मुनिराज का वचन झूंठ जाना ।
इस मंत्र में है इतना प्रभाव, दिनमणि ! मैंने नहिं पहिचाना ॥
अपराध क्षमा कर गमन करो, मैं मंत्र जाप कर पछताई ।
होगया लड़कपन लड़की से, बस दया करो त्रिभुवन साँई ॥
बोले रवि सुन होगया, मंत्र का यही प्रभाव ।
भय न करो धीरज धरो, वृथा न जी कलपाव ॥

मुझ सम सुन्दर और तेजवान, कुंडल व अभेद्य कवचधारी ।
अतुलित बलवाला उपजेगा, एक पुत्र महारथ धनुधारी ॥
हो अभी तलक तुम अविवाहित, पर इसमें डर की बात नहीं ।
मेरे वर से कन्यापन में, पहुँचेगा कुछ आघात नहीं ॥
इस तरह मनोहर बचन सुना, चढ़ गये गगन में दिनराई ।
कुन्ती अपने पागलपन की, हरक़त पर अतिशय पछताई ॥
आख़िर धर धीरज सोच लिया, क्या होता जी कलपाने से ।
क़िस्मत में जो कुछ लिक्खा है, मिटता है नहीं मिटाने से ॥

बीते जब कुछ मास तब, प्रकटा एक कुमार ।
तेजस्वी सूरज सरिस, शोभा अमित अपार ॥

तनुत्राण बदन पर पहिरे था, कुंडल थे दोनों कानों में ।
ऐसा सुत लखकर माता के, बस हुई वेदना प्रानों में ॥
सोचा यदि पति के ओरस से, ऐसा सुन्दर लड़का पाती ।
कितना आनन्द हृदय होता, रहती निशि दिन शीतल छाती ॥
अब ये मेरे किस काम का है, गो जन्म हुआ रवि के वर से ।
पर तो भी हटाना ही होगा, दहलाकर दुनियां के डर से ॥

सरिता में डलवाय कर, हो जाऊँ बे फिक्र ।
जग में फिर होगा नहीं, इन बातों का ज़िक्र ॥

है ये लड़का अल्पायु नहीं, निश्चय कोई ले जावेगा ।
उसको भविष्य में देख देख, ये हृदय बहुत सुख पावेगा ॥
ऐसा विचार कर कुन्ती ने, सुत को सरिता में डलवाया ।
बेफिक्र लोग निन्दा से हुई, धीरज धर मन को समझाया ॥

अधिरथ नामक सारथी, था एक चतुर गम्भीर ।
दैवयोग से आगया, उस सरिता के तीर ।

उसने देखा एक बाल मूर्ति, पानी में बहती जाती है ।
है रवि सम द्युति जिसके तनकी, दृष्टी न जहाँ ठहराती है ॥

हो विस्मित जल में कूद पड़ा, बालक को बाहिर ले आया ।
लख उसका जीवन बरकरार, हृदय में अति आनन्द छाया ॥
उस सारथि के सन्तान न थी, ले बच्चे को घर पर दौड़ा ।
निज पत्नी राधा को सौंपा, मन में सुख हुआ नहीं थोड़ा ॥
इस ही बालक का आगे जा, बस कर्ण नाम मशहूर हुआ ।
भारत का सर्व श्रेष्ठ दानी, बल बुद्धी में भरपूर हुआ ॥

राधाने इसका किया, पालन सहित विवेक ।
यों ही आनन्द चैनसे, बीते वर्ष अनेक ॥

इतने में कुन्ती विवाह योग्य, होगई स्वयंवर ठान लिया ।
नाना देशों में पत्र भेज, भूपालों का आह्वान किया ॥
हस्तिनापुर से महाराज पान्डु, ले भीष्म पिता को तहां गये ।
देखा अगणित नृप बैठे हैं, धारन कर वसतर नये नये ॥
सत्कृत हो भोजराजजी से, जा टिके सभा में नर राई ।
कुछ देर बाद वरमाल लिये, लावण्यमई कुन्ती आई ॥
लख रूप पान्डु का चकित हुई, जयमाल गले में पहिरादी ।
हर्षित हो भोजराज ने फिर, प्यारी पुत्री की शादी की ॥

ले कुन्ती आये तुरत, अपने नगर मंझार ।
खुशी हुआ रनवास सब, किये मंगला चार ॥
मद्र देश में भूप थे बाह्लीक जेहि नाम ।
तिनके माद्री नाम की थी इक सुता ललाम ॥

उसको पांडू के योग्य समझ, भीष्म ने वहाँ प्रस्थान किया ।
इनको लख राजा ने खुश हो, अच्छी प्रकार सन्मान किया ॥
आने का जब कारण पूछा, गंगासुत ने सब बात कही ।
कौरवकुल को ही श्रेष्ट जान निज सुता पांडु के लिये दई ॥

घर आ शिष्टाचार से, किया व्याह तत्काल ।
सोच रहित भीष्म हुये, सुनहु परिक्षित बाल ॥

थीं उभय नारियां रूपवती, यौवन मद में मदमाती थीं ।
निष्कपट सेवकाई द्वारा, सच्चा सनेह दरसाती थीं ॥
नृप भी अश्वनीकुमार सरिस, थे विक्रमशाली गुणखानी ।
रहते थे निर्जन में सदैव, करते थे उनकी मनमानी ॥
कुछ दिनों पत्नियों संग नृप ने, मन माना खूब विहार किया ।
दिग्विजय पूर्व पुरुषों सदृश्य, करने का फेर विचार किया ॥
ले हुक्म, भीष्म को कर प्रणाम, तैयार हो गये नरराई ।
शुभ दिवस देख प्रस्थान किया, ले साथ बहुतसी कटकाई ॥
बलवान सिंह सम पांडु वीर, जहाँ जाकर धावा करते थे ।
तहाँ के राजा बस हार मान, चरणों पर मस्तक धरते थे ॥
बहुतों का गर्व किया खंडन, लाखों को कर प्रद बना दिया ।
अगणित भूपों का राज छीन, अपनेहि राज में मिला लिया ॥

सामराज्य थापन किया, हुये वश्य सब भूप ।
लिये भेंट में अश्व रथ, माणिक रत्न अनूप ॥

फिर अपनी विजयी सेना ले, महाराज पान्डु वापिस आये ।
गुरुजनों को आकर नमन किया, भाटों ने मिल मंगल गाये ॥
जो वस्तु जीत कर लाये थे, वो सभी भीष्म को दे दीन्ही ।
और हाथ जोड़ दीनता सहित, मस्तक झुकाय बिनती कीन्ही ॥
सुख से रहते कुछ दिन बीते, कीया विचार वन जाने का ।
प्राकृतिक दृश्य देखने का, कर शिकार मन बहलाने का ॥

दोनों रानी साथ ले, चले गये भूपाल ।
पहुँच हिमालय के निकट, किया वास कुछ काल ॥

वे महाराज पत्नियों संग, आनन्द से तहाँ विचरते थे ।
छोटे पशुओं का जिक्र नहीं, नित सिंहों का वध करते थे ॥
चढ़ जाते कभी पर्वतों पर, कभि गंगातट पर आजाते ।
सुनते झरनों का शब्द कभी, कभि वन शोभा लख सुखपाते ॥

महाराज पाण्डु की ऐवज़ में, गंगासुत राज चलाते थे ।
इसलिये भूप बेफिक्र होय, अति सुख से समय बिताते थे ॥
लख खंग कवच धनुबाण हस्त, तेजस्वी सुन्दर तन धारी ।
मन में इनको देवता समझ करते थे सेवा वनचारी ॥
वह वन पांडू राजा के लिये, बनगया इन्द्र का नंदन वन ।
जहं तहं वे क्रीड़ा करन लगे, रानियों सहित आनंद मगन ॥
मृगया को इक दिन गये, पांडु भूप रणधीर ।
मृग का जोड़ा देखकर मारा तक कर तीर ॥
वे असल नहीं नकली मृग थे एक मुनि दंपति ये देह धर कर ।
करते थे क्रीड़ा जंगल में, आनन्द सहित निर्भय होकर ॥
वह तीर करारा ज़हर बुझा, मुनि के तन मांहि समाय गया ।
आनन्द हुआ दुख में परिणित, क्षण में शरीर कुम्हलाय गया ॥
गिर पड़ा विकल हो भूमी पर, भीषण यंत्रणा सताने लगी ।
वह चला रक्त का परनाला तज देह आत्मा जाने लगी ॥
सोचा हा ! सहसा हुआ ये क्या किसने ये तीर चलाया है ।
क्या दया न आई पापी को जो सुख में दुःख दिखाया है ॥
इतना कह असली रूप धार, वह करन लगा आहो ज़ारी ।
सुन स्वर मनुष्य का पांडु नृप, होगये विकल व्याकुल भारी ॥
कहन लगे क्या हो गया, कैसा किया शिकार ।
मृग के धोखे में हना मैंने विप्र कुमार ॥
हे आंखों ! अंधी हो जावो, ओ धनु हाथों से छूट जा तू ।
मृगया के शोक पलायन हो, अय हाथ बदन से टूट जा तू ॥
रक्षा करना गो, ब्राह्मण की यह क्षत्री धर्म कहाया है ।
हा ! उससे विमुख होय मैंने, एक विप्र पे तीर चलाया है ॥
पर धोखे में यह काम हुआ, मुनि से जा क्षमा कराऊंगा ।
और फिर आगे को कभी नहीं, मृगया करने वन आऊंगा ॥

यों कह धनुबान धरनि पै धर, गये धरनीपति बनचारी पै ।
कर जोड़ कहा चरनों में गिर, कर दो मुनि दया भिखारी पै ॥
अनजाने में होगया, मुझ से यह अपराध ।
क्षमा करो मुनिराज अब, मेटो सकल विषाद ॥
फुर्सत इतनी थी नहीं, करे चैन से बात ।
प्राण कंठ में आ गये, लगी कठिन आघात ॥
धीरे धीरे आंखें खोलीं, नृप को पहिचान दुःख पाया ।
पर याद तीर की आते ही, कुछ जोश हुआ गुस्सा छाया ॥
बोला मैं खूब जानता हूं, तुम सदां दीन का दुख हरते ।
जो मुझे जानते ऋषि कुमार, ऐसा अपराध नहीं करते ॥
पर जिस कुल में तुम जन्मे हो, वह निष्कलंक अरु उज्जवल है ।
उसमें ऐसा निष्ठुराचरन, होना, करता चित व्याकुल है ॥
वह भी उस वक्त जिस समय मैं, पत्नी से मन बहलाता था ।
यदि बधना था तो क्या तुमसे, कुछ देर न ठहरा जाता था ॥
जग में न कभी व्यवहार करे, पापी से पापी भी ऐसा ।
पत्नी संग क्रीड़ा करते हुए बध मुझे किया तुमने जैसा ॥
किया काम अपराध का, क्षमा किस तरह होय ।
कैसे, बड़ के वृक्ष से, केला पैदा होय ॥
नृप बोले राजाओं के लिये, मृगया करना है धर्म सुनो ।
बस इसी लिये मृग मारा है, इसमें मत गिनो अधर्म मुनो ॥
यदि विप्र जानकर भी तुमको, निज शर द्वारा मैं बध करता ।
तब तो मेरी निन्दा करना, हे मुनिवर तुमको वाजिब था ॥
फिर मृगया का है नियम यही, मृग को लखने ही तुरत हनें ।
मैंने भी पाला वही नियम, इसमें न आप अपराध गिनें ॥
देख चतुरता पांडु की, बोले यों ऋषिराज ।
वृथाहि तर्क वितर्क क्यों, करते हो महाराज ॥

मृग गिनकर मुझको मारा है, होवेगी ब्रह्म-हत्या न तुम्हें ।
पर इस निष्ठुराचरन से नृप, आगे सुख मिल सकता न तुम्हें ॥
आनन्दित हो पत्नी के संग, मैं सुख से क्रीड़ा करता था ।
इस समय में मुझको वध करना, हे नृप तुम्हें नहीं वाजिब था ॥
मारा है अनुचित अवसर पर, फल मिलेगा अपने आप तुम्हें ।
बस कान खोल सुन लो राजन्, देता है मुनि अब शाप तुम्हें ॥
"पत्नी संग क्रीड़ा करते हुये, सुख में दुख पा मैं मरता हूँ ।
इस ही हालत में मरोगे तुम, ये शाप हृदय से देता हूँ" ॥

इतना कह कुछ तड़पकर, लेकर प्रभु का नाम ।
नश्वरदेह परित्याग कर, गया मुनी सुरधाम ॥

ये दृश्य देख नृप दुखित हुये, आगये पसीने सीने पर ।
आँखों में अंधकार छाया, बढ़गई उदासी जीने पर ॥
आशायें सारी लीन हुईं, आनंद का सिन्धु तमाम हुआ ।
घबराकर महि पर बैठ गये, सोचा के विधाता वाम हुआ ॥
हा ! वह जीवन किस मतलब का, जिसमें जीवन सुख मिले नहीं ।
वह पुष्प निरर्थक है बिल्कुल, ब्रृ से जिसको मन खिले नहीं ॥
'राजा के पद' तजता हूँ तुझे, करदेना क्षमा लचारी है ।
पांडु अब राजा नहीं रहा, जंगल का बना भिखारी है ॥
आगया समय हे 'राज मुकुट', अब और के सिर शोभा पाना ।
सिर पर अब जटा जूट होगी, महिपाल बनेगा मस्ताना ॥
'गहनों कपड़ों' रस्ता पकड़ो, होगई तुम्हारी अवधि खतम ।
जी में आता है त्याग तुम्हें, सब तन पै भस्म रमायें हम ॥

'धनुषबान' प्रस्थान कर, राजी हुआ फ़क़ीर ।
मृगया से मन भरगया, पलट गई तक़दीर ॥

ओ 'प्रेम मृगियों' तुमको भी, इक विनय सुनाना बाकी है ।
बस विदा, विदा तुमसे भी विदा, है सत्य न कुछ चालाकी है ॥

हा ! तुम्हरा प्राण सरिस प्रीतम, मंजधार में तुमको छोड़ चला ।
कर देना क्षमा देवियों तुम, अपने कर से सिर फोड़ चला ॥
भीष्मपिता तुम भी क्षमा, करना दया विचार ।
राज पाट से अब मेरा, रहा ना सरोकार ॥

❀ गाना ❀

भाग्य में सुख दुख जो हैं लिखे,
टाले न किसी से टले ॥
लाख प्रयत्न करे नर तो भी, हरगिज सुख न मिले ।
उदय होय जब सुख का सूरज, हृदय कमल खिले ॥
टाले न किसी से टले ॥
कर्म के चक्कर में जो आये, जगत में बुरे व भले ।
बचा न कोई सब चकराये, लाखों चाल चले ॥
टाले न किसी से टले ॥
महा प्रतापी देवों को भी, काल ने पल में छले ।
क्षुद्र जीव की फिर क्या गिनती, किस बिधि से सम्भले ॥
टाले न किसी से टले ॥

इस प्रकार नृप हो विकल, करने लगे विलाप ।
सुध बुध सब जाती रही, बढ़ा बहुत सन्ताप ॥
मूर्छिता अवस्था में मही पर, राजा को इक किंकर ने लखा ।
हो अलग आब से मछली ज्यों, इस तरह तड़फड़ाया बिलखा ॥
तदवीर करी राजा को फिर, होशोहवास में लाने की ।
जब सुफल मनोरथ हुआ तो फिर, सूझी घर पर ले जाने की ॥

आखिर जैसे तैसे नृप को, ले संग नौकर घर पर आया।
लख ऐसी हालत राजा की, स्त्रियों ने अति संकट पाया॥
होकर स्वस्थ नृपाल ने, कही शाप की बात।
कुन्ति माद्री के हृदय, लगी कठिन आघात॥
बन गया वह स्वर्गीय धाम नरक, हर एक बात विपरीत हुई।
होगया अस्त सुख का सूरज, दुख दर्द रंज से प्रीत हुई॥
आश्रमवासी ऋषि मुनि योगी, और समूह कोल किरातों का।
सब रोने लगे ध्यान करके, भूपति को दुखमय बातों का॥
उन लोगों को आश्वासन दे, फिर कहन लगे वे नरराई।
मेरे ही दुष्कर्मों द्वारा, ये सब विपता मुझ पर आई॥
हो गया रहित सुत दर्शन से, अस्तू अब योग कमाऊंगा।
तज दूँगा गृहस्थ आश्रम को, संन्यास मार्ग में जाऊंगा॥
इतना कह भूपाल ने, अनुचर लिया बुलाय।
कहा, शाप की बात सब, कहो नगर में जाय॥
लेजा मेरे वस्त्राभूषण, कह देना मैं नहिं आऊँगा।
बस अन्तिम दिवस जिन्दगी के, बन के बनवासि बिताऊंगा॥
रानियों नगर जावो तुम भी, जानाहि इस समय बेहतर है।
यदि हठ करके यहाँ रहोगी तो, इसमें नुकसान सरासर है॥
मैदान में शत्रों से लड़कर, जय पाना तो आसानी है।
कुछ कठिन नहीं है इसमें बस, जिस्मानी शक्ति दिखानी है॥
पर मन के मैदां में डटकर, जो दुश्मनि से जय पाता है।
गर सच पूछो तो वही मनुष्य, दम असली वीर कहाता है॥
है इतनी शक्ति नहीं मुझ में, ये काम बड़े योगियों का है।
जिनके बस हैं इन्द्रियां सकल, न के मुझ सम भोगियों का है॥
कुछ पता नहीं किस समय ये मन, काबू से बाहिर हो जाये।
तो मेरी निश्चय मृत्यु होय, तुम पर विपदापन चढ़ जाये॥

बिन तुम्हरे कभी खिलेगी नहीं इस हृदय कमल की पांखुरियाँ।
जब बांस नहीं होगा समीप, फिर बजैगी कैसे बांसुरिया॥
सुन राजा की बात को, रानि हुई बेचैन।
बहा पसीना देह से, अश्रु पूर्ण हुये नैन॥
वे शीतल नीति भरी बातें अग्नी सम दुखद हुईं कैसे।
चकवी को शरद पूर्णिमा के, हिमकर का दरश हुआ जैसे॥
'पति हमको तज वन जावेंगे', इस दुख से वे अति घबराईं।
धर धीर आंसुओं को हटाय, यों बोली वानी सुखदाई॥
हे प्राणनाथ प्राणेश प्रभो, बिन तुम्हरे जीवन निष्फल है।
है स्वर्ग नर्क की ज्वाला हम, षटरस व्यंजन भी हलाहल है॥
तुमको तज कर हम अबलाएं, बोलो किसकी अभिलाष करें।
है कौन आपके बिन स्वामी, जिससे हम सुख की आश करें॥
माता व पिता भ्राता भगनी, और ननद जिठानी भौजाई।
सासू औ स्वसुर पुरजन परिजन, देवरानी सुन्दर सुखदाई॥
प्रीतम! ये उसही हालत में, नारी को सुख पहुँचाते हैं।
जब तक पति का सम्बन्ध और, सच्चा सनेह लख पाते हैं॥
वरना नारी के लिये सभी, परिवार दुखद हो जाता है।
गरमी के उग्र सूर्य से भी, कहिं ज्यादा इसे तपाता है॥
है सत्य ये, पति बिन नारी को, सुखदायक कोई न दूजा है।
वह स्त्री मूर्ख अभागिन है, जिसने औरों को पूजा है॥
है वदन निरर्थक प्राणों बिन, और नदी व्यर्थ बिन वारी है।
तैसे ही प्राणनाथ सुन लो, बिन प्रीतम अबला नारी है॥
साथ तुम्हारे सर्व सुख, बिन तुम नर्क दुवार।
विनय हमारी मानकर, ले लो संग भुवार॥
जो स्त्री पति के बिना रहे, नहिं पतिव्रता कहलाती है।
उसका जीवन से मरण उच्च, वह भली न मानी जाती है॥

चंद्रिका क्या चाँद छोड़ती है, बिन घन द्युति क्या दृष्टि आती।
ऐसेहि कामनी कंत बिना, बस कहीं नहीं शोभा पाती॥
पत्नी है पति का अर्ध अंग, पत्नी पतिव्रता कहाती है।
पत्नि हि मित्र का काम करे, पत्नि हि पुत्र उपजाती है॥
है पत्नि वही पति हित साधे, पत्नि धर्म मोक्ष काम देवे।
पत्नि से गृहस्थाश्रम स्थिर, पत्नि हि धीर दे दुख खोवे॥
पत्नि ही रुग्नावस्था में, पति की माता हो जाती है।
और कभी मंत्रणा देने को, पत्नि मंत्री बन जाती है॥
यदि समय पाय पति प्राण तजे, पत्नि ही हो सकती है सती।
पति का जीवन पत्निमय है, बिन पति पत्निकी नहीं गती॥

ये सम्बन्ध अकाट्य है, कभी न मिटने पाय।
बिन माया के ईश भी, निराकार रह जाय॥

हमने भी शाप को समझ लिया विग वो अवसर नहिं आयेगा।
जिससे ये आपका जीव प्रभो, इस शरीर को तज जायेगा॥
सब सुक्खों की आहुती दे, हम भी अब योगिन बनती हैं।
कर दमन इन्द्रियों का हम भी, अब योग मार्ग पर चलती हैं॥
वो अद्‌भुत भेप बनायेंगी विकराल भयंकर भयकारी।
लख जिसे न मन विचलित होवे, उलटा रह शान्त धीर धारी॥
नदियों और वनों पहाड़ों में, जिस जगह प्राण पति जावेंगे।
छाया की तरह दासियों को, अपने पीछे ही पावेंगे॥
ला कंद मूल भोजन कराय, फिर चरण पलोटेंगी दासी।
प्रस्वेद हरन को आंचल से, हम करेंगी वायू सुखरासी॥
तज हमें आप यदि चले गये, ये प्राण बचेंगे कभी नहीं।
मचलेंगे तुम्हरे दर्शन को, रोके से रुकेंगे कभी नहीं॥

सुना रानियों का जभी, नीति भरा व्याख्यान।
ले उनको संग भूपने, कीन्हा वन प्रस्थान॥

जंगल पर्वतों गुफाओं में, सन्यासी होकर फिरने लगे।
फिर एक जगह आसन जमाय, सब क्रिया योग को करने लगे॥
स्त्रियां भी मन को वस में कर, तन मन से सेवा करती थीं।
आवश्यक वस्तु इकट्ठी कर, सब कष्ट पती का हरती थीं॥
यों हीं कुछ वर्ष बीतने पर, अभ्यास, 'योग' में बढ़ालिया।
संयम से काम लालसा तज आखिर में मन को जीतलिया॥
होगई देह दुबली पतली, पर तप से चहरा चमक उठा।
सब पाप नाश को प्राप्त हुये, बस होगई जीवन मुक्त दशा॥
अच्छे अच्छे ऋषियोंने मिल, इनको ब्रह्मऋषी बनाय दिया।
यों ज्ञान प्राप्त होजाने से, नृपने सब कष्ट भुलाय दिया॥

समाधिस्थ रहने लगे, घंटों तक नर नाथ।
मार्ग मिलगया मोक्ष का, रह मुनियों के साथ॥

उस तरफ दूतने पुर में जा, भीषम से हाल बयान किया।
सुन बात शाप की घबराये, हो दुखित अन्नजल त्याग दिया॥
सोचा के इस कौरव कुल की, ऐसी क्या होनी आई है।
मैं जितनी पाल बांधता हूं, उतनी ही बढ़ती खाई है॥
चित्रांगद और विचित्रवीर्य, हो पुत्र रहित परलोक गये।
ज्यों त्यों करके फिर सुत उपजे, रक्षा के चिन्ह दिखाई दिये।
एक अंधा, दूजा दासी सुत, तीजे के पान्डू रोग हुआ।
जिसमें से दो पुत्रों को तज, पांडु हि राज के योग हुआ॥
करके श्रम सब का विवाह किया, सोचा था वंश मिटेगा नहीं।
पांडू का पुत्र बनेगा नृप, आनन्द ही बढ़ै घटेगा नहीं।

आशा निरआशा हुई, महनत गई फ़िजूल।
भाग्य सहारा दे कहां, प्रभू हुये प्रतिकूल॥

धृतराष्ट्र विदुर भी दुखी हुये, सुन अनुचर की अप्रियवानी।
महलों में दुख बादल छाया, हुई बेकल सत्यवती रानी॥
कुछ सोच भीष्म ने आज्ञा दी, उन दूतों को वन जाने को।
जंगल में गुप्त रूपसे रह, पांडु को सुधि भिजवाने को॥

प्रजा पालने में हुये, भीषम फिर लवलीन।
गुप्तचरों ने हुक्म पा, गवन विपिन में कीन॥
क्षुधा, तृषा से हो दुखित, एक दिवस मुनि व्यास।
भोजन करने के लिये, पहुँच गये रनवास॥

गंधारी ने हर्षित होकर, आनन्द से भोजन करवाया।
परिचर्या से सन्तुष्ट किया, मुनि का आशीर्वाद पाया॥
बोले ऋषि, कहता हूँ तुझको, एक बात ध्यान धर सुन रानी।
होवेंगे सौ लड़के तेरे, बांके धनुधारी बलवानी॥
यह कह मुनि ने प्रस्थान किया, गंधारी मन में हर्षाई।
फिर धृतराष्ट्र के पास जाय, ये सारी गाथा बतलाई॥

श्रोताओ! ये होगया, हस्तिनापुर का हाल।
अब वन में चल देखिये, पांडु का अहिवाल॥

जंगल में गंगा के तट पर, एक कुटिया तृण आच्छादित थी।
हरियाली थी जिसके चहुँदिशि, निर्जन निर्द्वन्द निरापद थी॥
जिसके सम्मुख हो पर्वत से, एक झरना नीचे गिरता था।
उसका सुन्दर झर झर निनाद, मन के विकार को हरता था॥
करते थे वास रानियों संग, यहाँ पांडु नृप बन बनवासी।
आते थे अगणित ऋषी मुनी योगीन्द्र यती और सन्यासी॥

होता था आत्मचिन्तन निशिदिन, वेदों का सार विचारते थे।
आपस में शिक्षा ले देकर, हृदय के भाव सुधारते थे॥

आत्मज्ञान में ध्यान धर, रहें मग्न नरनाह।
जात न जानें रात दिन, मन में अधिक उछाह॥

एक दिवस योगियों का समूह, तेजस्वी जटा जूट धारी।
जाता था उत्तर दिशा ओर, नृप को आश्चर्य हुआ भारी॥
बोले राजा कुछ आगे बढ़, महाराज किधर को जावोगे।
मुझ से हतभाग्य दीन को भी, क्या अपने संग ले जावोगे॥
इस कुटिया में रहते रहते, मैंने अति समय बिताया है।
अस्तू गिरि सरिता वन उपवन, लखने को मन ललचाया है॥

बोले मुनिवर, ध्यान धर, सुनो पांडु महाराज।
ब्रह्मलोक में जायं हम, विधि के दर्शन काज॥

अच्छे अच्छे ऋषि मुनियों का, उस जगह समागम होता है।
जिनके केवल दर्शन से ही, नर जन्म मृत्यु को खोता है॥
हम ठहरेंगे कुछ दिनों वहां, सत्संग से मन बहलावेंगे।
कई आत्म ज्ञान के प्रश्नों का, उत्तर ले यहां आजावेंगे॥
हम तुमको ले चलते राजन, पर राह वहां की दुर्गम है।
थलचर का कोई ज़िक्र नहीं, नभचर तकको अगमागम है॥
हैं मग में ऐसी जगह कई, जो ढकी वर्फ से रहती हैं।
कितनीहि जगहों में कोसों तक, अति दुस्तर नदियां बहती हैं॥
फल मूल आदि नहीं मिलें वहां, अवलम्ब है केवल पानी का।
वह रस्ता है वायू का या, है सिद्ध तपस्वी ज्ञानी का॥

है तुम्हरे कोई पुत्र नहीं, बिन सुत न स्वर्ग जासकते हो ।
पित्रों के ऋण से प्रथम उऋण, होजावो तब आसकते हो ॥
आचार्य और देवों का ऋण, जिस तरह चुकाना धर्म कहा ।
त्यों ही पित्रों का ऋण भी नृप, पूरा करना शुभ कर्म कहा ॥

शाप विवश तुम हो नहीं, सुत प्रगटाने योग ।
इसमें कुछ चारा नहीं, है कर्मों का भोग ॥

तो भी हम तुम्हें बताते हैं, देवों का पूजन भजन करो ।
उनके वर से सुत प्रगटेंगे, मत और बात का ध्यान धरो ॥
इतना कह कर वे सन्यासी, उत्तर की ओर सिधाय गये ।
नृप भी विचार करते करते, वापिस कुटिया में आय गये ॥

यहां आय भूपाल ने, दुख से होय अधीर ।
बुला पत्नियों को निकट, कही गिरा गम्भीर ॥

हे प्राण प्यारियों आज कई, ऋषिमुनि विधिलोक सिधाते थे ।
हम भी तुमको अपने संग ले, उस जगह पहुँचना चाहते थे ॥
पर चूंके निःसंतान हूँ मैं, इसलिये स्वर्ग में गमन नहीं ।
जो पुष्प से बिलकुल खाली है, कहते हैं उसको चमन नहीं ॥
यज्ञानुष्ठान, होम, जप, तप, बिन सुत वाले को निष्फल है ।
लड़का ही दुनियां में सब से, उत्तम कर्मों का शुभ फल है ॥
संतानोत्पादन करने में, पत्नियों मैं बिल्कुल बेबस हूँ ।
ये है मेरे कुकर्म का फल, अब कहो दोष मैं किसको दूं ॥

है पुत्र नहीं इसलिये न मैं, कभी स्वर्गलोक मैं जाऊंगा ।
हा खुद तो नर्क पडूंगा ही, पित्रों को साथ डुबाऊंगा ॥

हत भागी मुझ सम नहीं, जग में कोई और ।
अपने मन को हे प्रभू, समझाऊं किस तौर ॥

———

गाना (आसावरी)

राम किसको सुनाऊं कहानी, हाय सुत बिन वृथा जिन्दगानी ।

तप बल हो धन बल हो चाहे हो भुज बल की खानी ॥
पुत्र न हो तो सब सुख दुख है अंत है नर्क निशानी ।

हाय सुत बिन....

रंकन के अगणित सुत उपजे, राजन के सुत हानी ।
ऊसर में वर्षा अति होवे, खेती है बिन पानी ॥

हाय सुत बिन ..

पित्रों के ऋण से किम होऊं, उऋण ये है हैरानी ।
दोष किसी का नहीं है इस में खुद कीन्ही नादानी ॥

हाय सुत बिन...

समझाये समझे नाहिं हृदय, धीर न धरत अज्ञानी ।
दीन जान मोहिं करना किरपा, हे प्रभु शारंगपानी ॥

हाय सुत बिन...

———

कहा कुन्ति ने सोच तज, धीर धरो महाराज ।
देवाकर्षण मंत्र है, वही सुधारे काज ॥

प्राणेश ! एक दिन वचपन में, दुर्वासा मेरे घर आये ।
मैंने तन मन से सेवा की, लख परिचर्या वे हर्षाये ॥
एक मंतर मुझ को सिखला कर, बोले इसमें गुण भारी है ।
जिस देव को चाहोगी वह आ, पूरेगा आश तुम्हारी है ॥
यदि आज्ञा हो तो प्राणनाथ, मैं किसी देव का ध्यान धरूं ।
सुन्दर शुभ लक्षण पुत्र हेतु, उससे ही प्राप्त वरदान करूं ॥
सुन वचन हर्ष सीमा न रही, बोले नृप आजहि यत्न करो ।
आह्वान धर्म का करने को, विधि के अनुसार प्रयत्न करो ॥
देवों में सब से उच्च प्रिया, श्री धर्मराज का आसन है ।
जो चलते हैं धर्मानुसार, ऊँचा उनका सिंहासन है ॥
फिर धर्मदत्त जो सुत होगा, वह अधर्मरत होवेगा नहीं ।
सतवादी, सरल, सुपथगामी, वन जाति धर्म खोवेगा नहीं ॥

अस्तु धर्म का जप करो सुख से विधि अनुसार ।
प्रकटे सुत धर्मात्मा, वंश सुधारन हार ॥

पति की आज्ञा पा कुन्ती ने मंतर जपना आरम्भ किया ।
श्री धर्मराज का ध्यान धार, वनकर तपना प्रारम्भ किया ॥
कुछ दिन में धर्म प्रसन्न हुये, कुन्ती को दर्श दिया आकर ।
एक धर्मवान सुत का वर दे चल दिये तुरत अति हर्षाकर ॥
कुछ दिनों बाद एक पुत्र हुआ, सुन्दर सुमनोहर वपु धारी ।
महाराज पांडु ये खबर पाय, लख उसे प्रसन्न हुये भारी ॥

हुई गगन बानी तहाँ, ये पांडू का लाल ।
होवेगा धर्मात्मा, सब जग का भूपाल ॥

सुन नभ बानी सब हर्षाये, लड़के का युधिष्ठिर नाम रखा ।
इस खुश खबरी को दूतों ने, जा हस्तिनापुर में दई बता ॥
भीषम और विदुर प्रसन्न हुये, दूतों को गहरा द्रव्य दिया ।
पर धृतराष्ट्र गंधारी ने, ये सुनकर शोक प्रकाश किया ॥
कारन, गंधारी गर्भ से थी, लड़का होने ही वाला था ।
ले बीच में जन्म युधिष्ठिर ने, सब आशा पै पानी डाला था ॥
मन में गंधारी ने सोचा, कुन्ती सुत जेष्ठ कहायेगा ।
कानूनन वही बड़ा होकर, सब राज पाट भी पायेगा ॥

हुई दुखित सुबलात्मजा, किया नहीं कुछ ध्यान ।
कुरती से निज पेट पर, मारा घूंसा तान ॥

जिससे वह गर्भ अधूरा ही, हो गया पतन अति पीर हुई ।
आँखों से आँसू निकल पड़े रानी व्याकुल गत धीर हुई ॥
इस घटना को सुधि पाते ही, आये तहाँ व्यास मुनी ज्ञानी ।
बोले गंधारी से बेटी, ये कैसी कीन्हीं नादानी ॥
अच्छा घृत पूर्ण एक सौ घट, अब शीघ्र यहाँ पर मंगवाओ ।
इस मांस पिंड के टुकड़े कर, प्रत्येक कुंभ में रखवाओ ॥

आज्ञा पा मुनिराज की, घड़े लिये मंगवाय ।
लगे करन उस पिंड के, टुकड़ों का समुदाय ॥

ये देख गंधारी मन ही मन, बोली सौ सुत हो जावेंगे ।
मुनिवर के वाक्य स्वप्न में भी, मिथ्या नहीं होने पावेंगे ॥

इन पुत्रो के अतिरिक्त कहीं, एक कन्या भी यदि हो जाती।
क्या ही उत्तम होता फिर तो, दामाद देखकर सुख पाती॥
रानी के अन्तर भावों को, मुनि अन्तरयामी जान गये।
इसके मन में अभिलाष एक, कन्या को है पहिचान गये॥
अस्तू टुकड़ा एक अधिक किया, एक नया घड़ा भी मंगवाया।
फिर उन टुकड़ों को क्रम क्रम से, हरएक कुंभ में डलवाया॥

बोले मुनि एकान्त में, धरो घड़े तत्काल।
बीतेंगे जब वर्ष दो, तब प्रगटेंगे बाल॥

गंधारी ने अवधि तक, रक्षा की सब भाँति।
देखे सुत मानो मिली, चातकनी को स्वाँति॥

पहिले टुकड़े से दुर्योधन, बाकी मध्यम टुकड़ों से हुये।
पिछले टुकड़े से पुत्रि हुई, मिल सभी एकसौ एक हुये॥
जिस समय घड़े के अन्दर से, शिशु दुर्योधन बाहिर आया।
भूचाल आगया भूमी पर, सारा नभमंडल थर्राया॥
वायू ने तीव्र वेग धारा, बिन घन वर्षा दी दिखलाई।
धरु धरु धरु मारु मारु पकड़ो, यह ध्वनी दिशाओं से आई॥
चिल्लाये गीदड़ स्यार बहुत, प्रतिमाएं रुदन मचाने लगीं।
नक्षत्र, भूमि पर टूट गिरे, सब ओर हानि दरसाने लगी॥
जंगल में दावानल चमकी, आगई बाढ़ गंगाजल में।
बहगये बहुत से मकानात, ऐसे अपशकुन हुये पल में॥
फिर मुँह दक्षिण की ओर घुमा, वो दुर्योधन चिल्लाने लगा।
मानिंद गधे के रेंक रेंक, अति ज़ोर से शोर मचाने लगा॥

देख भयंकर अपशगुन, थर्राये नर नारि ।
घबरा कर कहने लगे, कहा कीन्ह करतार ॥

विद्वान विदुर ये दृश्य देख, धृतराष्ट्र समीप चले आये ।
मृदु बचनों से अपशगुनों के, हालात इन्हें सब समझाये ॥
अरु कहा जान पड़ता है मुझे, ये पुत्र हानि कारक होगा ।
कर देगा सारा वंश नष्ट, छल कपट का संचारक होगा ॥
यदि इनको आप त्याग देंगे, होवेगा कुल का नाश नहीं ।
वरना जग में भी शांति रहे, इस तरू की मुझ को आश नहीं ॥
तुम यही सोचना मेरे सुत, सौ नहीं एक कम सौ हो हैं ।
कइ एक कपूतो से अच्छे, हैं सपूत चाहे दो ही हैं ॥

पर अंधे ने पुत्र को, किया नहीं परित्याग ।
आखिर इसने ही यहाँ, खूब लगाई आग ॥
नाम पुत्रिका दुःशला, रक्खा अति हर्षाय ।
बड़ी हुई तब प्रेम से, दी जयद्रथ को व्याय ॥
इधर तो टीड़ो दल हुआ, सुनो उधर की बात ।
याद युधिष्टिर जन्म के, बोले यों नरनाथ ॥

कुन्ती ये धर्म दत्त सुत तो, बस धर्मवान बन जावेगा ।
रण भूमी में क्षत्रियों सरिस, श्यायद ही लड़ने पावेगा ॥
क्षत्री में मुख्य बात बल है, बलहीन न क्षत्रि कहाता है ।
जो युद्ध देख घबरा जाये, वो कायर माना जाता है ॥
हम क्षत्री हैं ये चाहते हैं, लड़का भी क्षत्री सम होवे ।
रण में जिसके सन्मुख आना, देवों तक को भी अगम होवे ॥

इसलिये इरादा है मेरा, वायू का तुम आह्वान करो।
एक महाबली भीषण कर्मा, लड़के का प्राप्त वरदान करो॥

विधि से कुन्ती ने किया, पवन देव का ध्यान।
हुआ जन्म श्री भीम का, महावीर बलवान॥

लखकर चहरा दूसर सुत का, हर्षाय गये राजा रानी।
मूंह चूमा इतने में तहां पर, झट हुई मनोहर नभवानी॥
'बलवान व्यक्तियों में ये सुत, सब ही से श्रेष्ठ कहायेगा।
निश्चर तक भी सन्मुख आकर, इसको न जीतने पायेगा'॥
एक रोज भीम को गोदी में, ले, बैठी थी कुन्ती माई।
इतने में अचानक नाहर की, सुन गर्ज बेतरह घबराई॥
कुछ ख्याल रहा नहिं गोदी का, फौरन ही उठकर दूर हुई।
गिरपड़े भीम गोदी में से, चट्टान टूट कर चूर हुई॥
तन की ऐसी दृढ़ताई लख, होगये मग्न राजा रानी।
सोचा सब दुनियां में होगा, ये पुत्र महारथ बलवानी॥
फिर एक पुत्र का मुख देखूं, ऐसा खयाल नृप को आया।
कर ध्यान इन्द्र का निज मन में, कुन्ती को ऐसे समझाया॥
है मन्त्र ये अति प्रभाव वाला, मैं ऋणी हूँ उस दुर्वासा का।
जिसने निराशा का समुद्र, कर दिया बदल कर आशा का।
बस एक बार फिर यत्न करो, मुंह देखूं मैं तृतीय: सुत का॥
अबके तुम ध्यान धरो प्यारी, देवों के ईश शचीपति का॥
वे जैसे हैं अति कान्तिवान, वैसाहि सुघड़ लड़का देंगे।
इस अनुपम बालक को पाकर, हम अपने दुःख भुलाइंगे॥
पति आज्ञा जब कुन्ति ने, सुनी तीसरी बार।
सुरपति के आह्वान को, हुई तुरन्त तैयार॥

उस देवाकर्षण मंतर का, विधिके माफिक फिर जापकिया।
जिससे सुरपति ने हो प्रसंन्न, झट स्वर्गसे आय मिलाप किया।
अपने सदृश्य सुत का वर दे, चल दिये स्वर्ग में सुरराई।
इससे अर्जुन का जन्म हुआ, दंपति को बहुत खुशी छाई॥

हुये प्रगट जिस समय में, श्री अर्जुन रणधीर।
गगन गिरा गम्भीर तब, हुई हरन दुख पीर॥

'हे पान्डुराज ये सुत तुम्हरा, धनुर्धो, गो, द्विज रक्षक होगा।
होगा विख्यात त्रिलोकी में, शत्रू कुल का भक्षक होगा॥
फिर स्वामिकार्तिक तुल्य बली, अति पराक्रमी शिवि राजासम।
सुन्दरता में सुरपती सरिस और अजयराम महाराजासम'॥
सुन नभवानी आनन्द हुये, आश्रम के ऋषि मुनि सन्यासी।
देवों ने पुष्पवृष्टि कीन्हो, दुन्दभी बजी अति सुखराशी॥
इसके उपरान्त माद्री ने, इकदिन अपने स्वामी से कहा।
महाराज, निपूती हो मैंने, अबतक अत्यन्तहि कष्ट सहा॥
यदि आप कृपा कर कुन्ती से, कह मंत्र मुझे भी सिखलायें।
तो मेरे भी प्रभु किरपा से, दो एक सुघड़ सुत होजायें॥

कहा पान्डु ने कुन्ति से, माद्री का सब हाल।
कुन्ती ने उस मंत्र को, बतादिया तत्काल॥

खुश हो माद्री ने ध्यान किया, दोनों अश्वनीकुमारों का।
आ उन्हों ने झट वरदान दिया, माद्री को दो सुकुमारों का॥
जिससे जुड़वां सुत प्रगट हुये, सुन्दर सुमनोहर सुखदाई।
जिनका सुनाम सहदेव नकुल, रक्खा राजा ने हरषाई॥
यों हुये पांडु के पांच पुत्र, लख इन्हें सभी सुख पाते थे।
करते पालन पोषण हित से, आनन्द से समय बिताते थे॥

इस तरह बहुत दिन बीत गये राजा को शाप सुधी न रही।
पुत्रों में मग्न हुये ऐसे, सब क्रिया योग को भुलादई॥
एक समय बसंत ऋतु आने पर, नृप अपना मन बहलाने को।
ले माद्री को वन में पहुँचे, प्राकृतिक दृष्य दिखलाने को॥

हरे भरे थे वृक्ष सब, फूल रहे थे फूल।
लता कुन्ज सुन्दर बने, हृदय हरन सुखमूल॥

हो हरी घास से आच्छादित, बन भूमि सुहावन लगती थी।
कोयल की कूक हृदय पट पर, बरछी के सरिस खटकती थी॥
चलती थी त्रिविध समीर वहां, सर में पंकज थे खिले हुये।
गुंजार कररहे थे हर सू, भौंरे फूलों से मिले हुये॥
रानी का रक्तकमल सदृष्य, कोमल कर नृप के हाथ में था।
होरहा था सारा वन निर्जन, नोकर तक भी नहिं साथमें था॥
लखप्रिया का अनुपम रूप भूप, अज्ञान हुये सुधि भूलगये।
एक लता कुंज में जा पहुँचे, और विहार में मशगूल हुये॥
गो माद्री ने तो रोका भी, पर होनी शोश सवार हुई।
अस्तू उसकी कुछ चली नहीं, वह विवश और लाचार हुई॥
आखिर को वोही बात हुई, मुनि शाप ने अपना काम किया।
जिससे राजा की आत्मा ने, तनको तज कर सुर धामलिया॥

मार दोउ कर शोश पर, रानी हुई अचेत।
इतने में कुन्ती वहां, पहुँची सुतन समेत॥
वह भी यह रंग देखकर, गिरी मूर्छा खाय।
पुत्रों के मुख से न नो, निकसो दुख ही हाय॥

जय हाय हाय का शब्द हुआ, पशु पक्षी सब अकुलाय गये।
घबराय गये ऋषि मुनि सारे, झटपट समीप में आयगये॥
रानियों को जिस दम होश हुआ, अति फूट फूट कर रोने लगीं।
आखिर जल धार हटा दृग से, कुन्ती माद्री से कहने लगी॥
बहिना मैं जेठी नारी हूँ, हक़ है इनके संग जाने का।
है पतिव्रता का धर्म यही, पति साथ सती हो जाने का॥
ईश्वर बच्चों को खुश रक्खे, ये आशीर्वाद सुनाती हूँ।
पोषण का भार तुम्हें देकर, पति संग सिधारी जाती हूँ॥

कहा माद्री ने तुरत, ठीक नहीं ये बात।
मुझको होने दो बहिन, सती पती के साथ॥

मेरे ही संगरह प्राणपती, प्राणों को छोड़ सिधारे हैं।
इसलिये सती होऊंगी मैं, बच्चे सब साथ तिहारे हैं॥
हो तुम मुझसे अति बुद्धिमती, बच्चों की रक्षा कर लोगी॥
और ज्ञान धर्म सिखला इनको, असली माता बन यश लोगी।
यों कहते कहते विकल हुई, खाकर पछाड़ भूमी पै गिरी॥
और ज़ोर से 'हाय' शब्द कहकर, जीवात्मा तन से अलग करी।

ऋषिमुनितापसयोगिजन, दोनों लहाश सम्हाल।
लाये व्याकुल हृदय से, हस्तिनापुर तत्काल॥

महाराज पांडुके मरने की, जब पुरवालों ने सुधि पाई।
बेचैन और व्याकुल होकर, गिर गये भूमि पर मुरझाई॥
महलों में भी ये ख़बर गई, भीषम व विदुर हत ज्ञान हुये।
धृतराष्ट्र गांधारी के भी, इस दुख से आधे प्राण हुये॥

अंबिका व रानी सत्यवती, दृग से जलधार बहाती थीं।
शोकाकुल अंबालिका होय, भूमी पर लोट मचाती थी॥
सम्पूर्ण नगर में क्षणभर में, अति दारुण हाहाकार मचा।
नर की क्या गिनती इस दुख से, कोई पशु पक्षी नहीं बचा॥
आखिर भीषम व विदुर ने मिल, दो बिवान सुन्दर बनवाये।
फिर मृतक सिंगार किया उनका, दोनों को साथहि पौढ़ाये॥
ले चले फेर गंगा तट पर, चंदन की चिता बनाय लई।
रख एक साथ पति पत्नी को, फिर आग तुरंत लगाय दई॥

दाह क्रिया कर दुख से, वापिस आये लोग।
विकट रूप से बहुत दिन, छाया पुर में सोग॥
एक दिवस फिर महल में, आ पहुँचे मुनि व्यास।
सत्यवती बहुओं सहित, पहुँची उनके पास॥

एकान्त पाय कर तीनों को, मुनिवर ने ऐसे समझाया।
अब सुख के दिवस व्यतीत हुये, अति दारुण समय निकट आया॥
पृथ्वी का यौवन काल गया, अब प्रौढ़ावस्था आवेगी।
कुछ दिन में यहां की राज लक्ष्मि, हो नष्ट रसातल जायेगी॥
दुर्योधन का ये अशुभ जन्म, निश्चय हानीकारक होगा।
अब इस कौरव कुल का जग में, कोई नहिं उद्धारक होगा॥
अन्धे ने इसे न त्याग किया, क्षय होगा ये सच्चो जानो।
जैसी कुछ होनी होती है, नहिं टलती है ये पहिचानो॥
इसलिये यहां से कूच करो, वरना नव दुख सहना होगा।
यदि सच्चे सुख की इच्छा है, वन में जाकर रहना होगा॥

पुनर्जन्म नस प्राप्त हो, मुक्ती का सामान।
एक पंथ दो काज है, वन में करो पयान॥

❋ गाना ❋

बालपन बीता व यौवन काल भी जाने को है ।
अबतो कुछ दिन में बुढ़ापा शीश पर आनेको है ॥
है समय येही रटो कुछ तो हरी के नाम को ।
मौत का हथियार अब मस्तक से टकराने को है ॥
भूलकर गुजरे समय को ध्यान आगे का करो ।
जगकी उल्फत तो हमेशा दुःख पहुंचाने को है ॥
कुछतो सोचो कौन हैं हम जायेंगे किस धाम को ।
वरना जीवन दीप बुझकर शीघ्र तम छाने को है ॥
नरका तन जीवात्मा को सहज में मिलता नहीं ।
मोक्ष का साधन करो वरना समय जाने को है ॥

तीनों ने मुनि वाक्य सुन, गवन विपिन में कीन्ह ।
मोक्ष पान को चाह में, जप तप में मन दीन्ह ॥

इस में तीनों ने तन तजकर, निज कर्मनुसार लोक पाया ।
कुन्ती ने पुत्रों का मुँह लख, जैसे तैसे मन समझाया ॥
फिर राज महल में रहन लगे, पांडव और कौरव गन सारे ।
'श्रीलाल' कथा अब आगे की, धर ध्यान सुनो सज्जन सारे ॥

॥ दूसरा भाग समाप्त ॥

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

महाभारत ॐ तीसरा भाग

पांडवों की अस्त्र शिक्षा

श्रीलाल

महाभारत ॐ तीसरा भाग

पांडवों की अस्त्र शिक्षा

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—

महाभारत पुस्तकालय, अजमेर

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

दूसरी वार २०००	विक्रमी सम्वत् १९९२ ईस्वी सन् १९३५	मूल्य ।-) आने

❀ प्रार्थना ❀

(थियेट्रिकल तर्ज़)

(बड़ी कृपा है मोपे तिहारी, श्रीकृष्णचन्द्र गिरधारी)

करो पूरण आश हमारी, प्रभु दीनन के हितकारी ॥
तुम अविनाशी, घट घट वासी, रहित गुणों से, सब गुणरासी ।
हरि सर्वानंद सुखारी ॥ प्रभु दीनन ॥ १ ॥
तुम्हरे गुणों का पार न पावें, सुर नर मुनि सब ही थक जावें ।
करूं कैसे मैं विनय तुम्हारी ॥ प्रभु दीनन ॥ २ ॥
जब जब जन पर विपता आई, रक्षा की प्रभु तुमने धाई ।
अब क्यों मम सुरति बिसारी ॥ प्रभु दीनन ॥ ३ ॥
मम जीवन हरि सुखमय करदो, होय न अब दुख ऐसा वरदो ।
शरण हूं तेरी बिहारी ॥ प्रभु दीनन ॥ ४ ॥

मङ्गलाचरण

रक्ताम्बर धर विघ्न हर, गौरीसुत गणराज ।
करना सुफल मनोर्थ प्रभु, रखना जन की लाज ॥
सृष्टि रचन, पालन, हरन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश ।
वानी, रमा, उमा सुमिल, रक्षा करहु हमेश ॥
वन्दहुं व्यास विशाल बुधि, धर्म धुरंधर धीर ।
महाभारत रचना करी, परम रम्य गम्भीर ॥
जासु वचन रवि ज्योति सम मेटत तम अज्ञान ।
वन्दहुं गुरु शुभ गुण भवन, मनुजरूप भगवान ॥

* ॐ *

नारायणं नमस्कृत्य, नरंचैव, नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं, व्यासं,ततो जय, मुदीरयेत् ॥

कथा प्रारम्भ

जब से नृप वर पाण्डु ने, त्यागा ये संसार ।
चिन्तित से रहने लगे, तब से गंगकुमार ॥
क्योंकि भारत की राजगद्दि, फिर सूनी दृष्टी आने लगी ।
अब कौन भूप होगा इसकी, चिन्ता नित प्रती सताने लगी ॥
धृतराष्ट्र जन्म से अंधे थे, थे विदुर पुत्र शुद्रानी के ।
असली भूपाल युधिष्ठिर के, इस समय थे दिन नादानी के ॥
और स्वयम् राजसिंहासन पर, प्रणवश न बैठना चाहते थे ।
असली क्षत्री थे भारत के, प्रण पूरी तरह निभाते थे ॥
आख़िर मजबूरन ये सोचा, धृतराष्ट्र यहां का राज करें ।
जब तलक युधिष्ठिर बच्चा है, ये ही मस्तक पर ताज धरें ॥
उसको भूपाल बनाने का, जब योग्य समय हम पावेंगे ।
तब धृत्तराष्ट्र से वापिस ले, कुल राज उसे दिलवावेंगे ॥
ये विचार धृतराष्ट्र को, बना दिया भूपाल ।
मंत्री बन कर राज की, करने लगे- सम्भाल ॥
रखते थे आरम्भ से, श्री धृतराष्ट्र भुवार ।
अपने पुत्रों से अधिक, पाण्डु सुतों पर प्यार ॥
अस्तु महल मे बाल सब, रहन लगे सानन्द ।
दिन पर दिन बढ़ने लगे, शुक्ल पक्ष के चंद ॥
थे शान्त स्वभाव युधिष्ठिर अति, सतवादी और भोले भाले ।
श्री भीमसैन थे हृष्ट पुष्ट, तेजस्वी अद्भुत बलवाले ॥

अर्जुन स्वभाव के चञ्चल थे, था वीर हृदय उच्चभिलाषी।
सहदेव नकुल सुन्दरता में, थे चढ़े बढ़े और गुणरासी॥
दुर्योधन कुटिल कुबुद्धि नीच, छल करने में लासानी था।
दिखता था सीधा साधा सा, लेकिन पूरा बक ध्यानी था॥
इस दुष्ट के जितने भाई थे, थे वे भी पूर्ण दुराचारी।
औरों को दुख में देख सुखी, होते थे निज मन में भारी॥
दुर्योधन को जब ज्ञात हुआ, ये राज युधिष्ठिर पावेंगे।
और हम उनके आज्ञाकारी, रह अपनी आयु बितावेंगे॥
ये सुनते ही कुढ़ गया, कुढ़ियल मन में और।
मैं कैसे राजा बनूं, लगा सोचने तौर॥
इसमें अचरज की बात नहीं, दुर्जन ऐसे ही होते हैं।
गैरों की बढ़ती को सुन कर, दिन रात हृदय में रोते हैं॥
चाहते हैं बस हम ही जग में सब लोगों से आदर पावें।
धनवान गुणी ज्ञानी नर को, छल द्वारा नीचा दिखलावें॥
परमार्थ आदि शुभ कर्मों से, ये रहते दूर दुराचारी।
छल कपट आदि के करने में, दिखलाते हैं श्रद्धा भारी॥
कहते हैं मीठे मधुर वचन, पर हृदय पाप मय पहचानो।
मद, राग, द्वेष, निर्दयता के, इनको सच्चे पुतले जानो॥
दुष्टों का परम धर्म है ये, बिन बात गैर से बैर करें।
जो करे भलाई इनके संग, उसके ही सिर हथियार धरें॥
अस्तु विधाता दे नहीं, इन लोगों का संग।
पल भर भी सुख ना मिले, होय रंग में भंग॥
दुर्योधन भी कुछ न्यून न था, था ऐसी श्रेणी का नायक।
कैसे मतलब बरियाई हो, इस बात में था सब विधि लायक॥
एक रोज बन्धुओं को बुलाय, इसने सब बातें समझाई।
लेकिन पांचों के नाशन की, कोई हिकमत न हाथ आई॥

क्योंकि पांडव बचपन से ही, व्यायाम नियम से करते थे ।
इसलिये हरएक बात में वे, इन सौ से अच्छे रहते थे ॥
जिस में बलवीर वृकोदर तो, बाहू बल में थे लासानी ।
इकले ही सब के जोशों को, कर देते थे पानो पानी ॥
दुर्योधन के भ्राताओं के, ये मस्तक पकड़ लड़ा देते ।
कभि बाल पकड़ धक्का देकर, उनको भूमी पै गिरा देते ॥
जल क्रीड़ा करते समय भीम, भुजपाश में बहुतों को लेकर ।
जल के अन्दर जा टिकते थे, चिल्लाते सब व्याकुल होकर ॥
जब प्राण कण्ठ तक आजाते, तब इन्हें छोड़ ये देते थे ।
इस तरह तमाम कौरवों की, नाकों में दम कर देते थे ॥
इन से घबरा कर अन्ध पुत्र, जब तरु के ऊपर चढ़जाते ।
तब भीमकाय श्री भीमसैन, धक्का दे वृक्ष हिला देते ॥
गिरते थे पटापट भूमी पर, खा चोट वे सब चिल्लाते थे ।
ये दृश्य देखकर दुर्योधन, बस मन में जलते जाते थे ॥

वैर नहीं था भीम का, कुछ कुरुओं के संग ।
बाल बुद्धि बस होय ये, दिखलाते थे रंग ॥
तो भी शत्रू बन गया, दुर्योधन दुर्वुद्धि ।
छल से इनके नाश को, हुआ तयार कुबुद्धि ॥

सोचा यदि हम सौ भाई भी, एकत्रित होकर धावेंगे ।
तो भी बलवीर वृकोदर से, हरगिज़ न जीतने पावेंगे ॥
पर इसकी कुछ परवाह न कर, मैं अपना काम बनाऊँगा ।
जिस तरह बनेगा इसको बस, यम सदन तुरत भिजवाऊँगा ॥
इसके मरते ही दीन दुखी, हो जावेंगे चारों भाई ।
फिर उनका जीवन हरने में, कुछ भी न पड़ेगी कठिनाई ॥
ये जीवित हैं जब तक मेरा, नहिं राज तिलक हो पाये ।
इसके मारे जाने पर ही, दुर्योधन भूप क०

अस विचार कर रात दिन, लगा सोचने चाल ।
मरें किस तरह से तुरत, ये पांडु के लाल ॥
सोचत सोचत आखिर इसको, एक सुगम युक्ति दी दिखलाई ।
हृदय में इतनी खुशी हुई, मानो त्रिभुवन की निधि पाई ॥
इस पापी ने गंगा तट पर, एक सुन्दर मण्डप बनवाया ।
जो लखे वह मोहित होजावे, इस उत्तमता से सजवाया ॥
कर प्रबन्ध खाने पीने का, हृदय में अतिशय हर्ष कर ।
ये पहुँचा पास युधिष्ठिर के, बोला आदर से सिर ना कर ॥
भ्राता ! क्या अच्छा मौसम है, आकाश में बादल छाये हैं ।
चल रही हवा भी मन्द मन्द मोरों ने शोर मचाये हैं ॥
चलिये गंगा तट पर चलकर, कुछ खेल के मन बहलायेंगे ।
भोजन भी होगा आज वहीं संध्या को घर पर आवेंगे ॥
थे धर्म पुत्र छल कपट रहित अतः कुछ भी न विचार किया ।
भीमार्जुन आदिक को बुलाय, चलने के लिये तयार किया ॥
गंगा के तट पर गये, सारे राज कुमार ।
मण्डप की शोभा निरख, छाया हर्ष अपार ॥

इसलिये इन्होंने हर्षित हो, वह सभी मिठाई खा डाली ।
ये देख सुयोधन के मुखपर, अति आनन्द की छाई लाली ॥

भोजन कर फिर बाल सब, गंगा जल में जाय ।
जल बिहार करने लगे, मन में अति सुखपाय ॥

जब संध्या होने को आई, ये सब जल से बाहिर आकर ।
मंडप की जानिब चले गये, रह गये भीम इकले तहांपर ॥
थी इनकी बहुत बुरी हालत, जी बार बार घबराता था ।
सब तन की शक्ती लुप्त हुई, आंखों में अंधेरा आता था ॥
उस विष ने ऐसा ज़ोर किया, ये लेट गये तट के ऊपर ।
होगया शरीर शिथिल सारा, वे होश हुये सुधि बुधि खोकर ॥

दुर्योधन को ही फ़क़त, मालुम था यह भेद ।
अस्तु युधिष्ठिर आदि को, हुआ न कुछ भी खेद ॥

फिर थके हुये थे ये सारे, दिन भर के घोर परिश्रम से ।
अस्तू यहां आते ही सोये, होगये तुरत सब बेदम से ॥
जब जान लिया दुर्योधन ने, सो गये सभी मेरे भाई ।
तब सैया से उठ भीम के ढिंग, जाने को मन में ठहराई ॥
पांडवों पै तिरछी दृष्टि फेंक, वो पापी मन में मुसकाया ।
चोरों सम अति खामोशी से, फौरन गंगा तट पर आया ॥
क्या लखा तीव्र विष का प्रभाव, सारे शरीर पर छाया है ।
जिसने बलवान कुन्तिसुत को, मुरदे के सरिस बनाया है ॥
आते हैं मुख से नील भाग, कुम्हलाय गई काया सारी ।
इनकी ऐसी बद हालत लख, पापी को खुशी हुई भारी ॥
कुछ लता व बेल इकट्ठी की, फिर हाथ पांव कसकर बांधे ।
कठिनाई से ऊपर उठाय, पहुंचा धारा में धर कांधे ॥
पटका फिर बीचों बीच इन्हें, उल्टे पावों वापिस आया ।
चुपचाप सोगया डेरे में, कोई भी नहीं जान पाया ॥

गंग तरँग उत्तंग थी, वेग था तीर समान।
नाग लोक पहुँचे तुरत, भीमसैन बलवान॥
देख मनुज को नाग कई, दौड़े गुस्सा खाय।
लगे काटने देह में, दांत पीस रिसियाय॥

होते हि असर इनके विषका, मीठे का विष सब भाग गया।
बेहोशी दूर हुई सारी, बलवीर नींद से जाग गया॥
क्या देखा अपने हाथ पांव, वे बस हैं बेल लताओं से।
डस रहे हैं अन गिनती भुजंग, बहता है शोणित घावों से॥

लख निज हालत भीमको, छाया क्रोध अपार।
बंधन तोड़ हुये तुरत, लड़ने को तैयार॥

कुछ ही क्षण में कई नागों का, संहार वीर ने कर डाला।
कुछ करसे मींजे कितनों को, पांवों से दाब कुचल डाला॥
जब सर्पों का कुछ बस न चला, तब भागे जान बचा करके।
बोले निज भूप वासुकी से, आदर से शीश झुका करके॥
महाराज! मनुष्यों के पुर से, एक सुन्दर बालक आया है।
दीखत में छोटा है लेकिन, बल बेहद उसने पाया है॥
जिस समय वो इस पुर में पहुँचा, था लता पाश से बँधा हुआ।
और ऐसी बेहोशी में था, जैसे कोई हो मरा हुआ॥

हम उसके तन को प्रभू, डसने लगे सरोष।
जिससे उसको आगया, कुछ ही क्षण में होश॥

आते हि चेत उस योधा ने, झट पट अपना बन्धन तोड़ा।
और हम सब को भखने के लिये, कर क्रोध काल सदृश दौड़ा॥
हम उसकी अद्भुत फुरती लख, हैरत में आके दंग हुये।
बेगिनती होने पर भी प्रभु, नहिं ठहर सके बदरंग हुये॥

नहिं कह सकते हैं कौन है वो, नर है या देव कुमार कोई ।
अथवा किन्नर गन्धर्वों के, कुल का है होनहार कोई ॥
अच्छा हो आप चल कर देखें, पूछें कारन यहाँ आने का ।
हमको तो भय है उसके ढिंग, जाने में जी नस जाने का ॥

चले वासुकी शीघ्र ही, मंत्री को ले संग ।
भीमसैन के पास जा, पूछा सकल प्रसंग ॥

लख नागराज को, आदर से, कुन्ती सुत ने मस्तक नाया ।
फिर गंगा तट पर हुआ था जो, वह सारा किस्सा समझाया ॥
सुन दुर्व्यवहार सुयोधन का, भूपति को क्रोध हुआ भारी ।
दब गये होट दांतों नीचे, आँखों ने लाल रंगत धारी ॥
बोले, बेटा मत फिक्र करो, यहाँ आना वृथा न जायेगा ।
नागेन्द्र तुम्हें कुछ ही दिन में, अतिशय बलवान बनायेगा ॥
है पास मेरे अनुपम औषधि, धन्वन्तरि ने उपजाई है ।
जिसकी समता त्रिलोकी में, नहिं किसी दवाने पाई है ॥
इसको पीने वाले का तन, फ़ौलाद सरिस हो जाता हैं ।
और दस हज़ार हाथियों का बल, उसके तन में आ जाता है ॥
यों कह अपने महलों में ला, नृप ने बलवीर्य बढ़ाने को ।
धन्वन्तरि निर्मित अमृत सम, रस दिया इन्हें पी जाने को ॥

हर्षित होकर कुन्ति सुत, लगे करन रस पान ।
आठ कुण्ड सोखे तुरत, तृप्त हुये तब प्रान ॥
लख ऐसा बल भीम का, गये भूप चकराय ।
वीर 'वृकोदर' नाम तब, दिया इन्हें हरपाय ॥

होते हि असर उस औषधि का, इनको सुस्ती सी आने लगी ।
सारा तन शिथिल हुआ तबियत, बस सोने को ललचाने लगी ॥
आख़िर सोने के सैया पर ऐसी गहरी निद्रा आई ।
होगया पूर्ण एक अठवारा, तब लाभ करी चेतनताई ॥

बदन होगया फूल सम, ताक़त में भरपूर ।
गये वासुकी के निकट, दुःख हुआ सब दूर ॥
लख इन्हें वासुकी कहन लगे, बेटा अब डर की बात नहीं ।
कौरव क्या हैं त्रिलोकी भी, कर सकती तुम्हरा घात नहीं ॥
अच्छा अब सुरित मिटाने को, गंगाजल से स्नान करो ।
घरवाले फ़िक्र मन्द होंगे, इसलिये जल्द प्रस्थान करो ॥
न्हाय धोय कपड़े बदल, पाकर अति सन्मान ।
हस्तिनापुर की ओर को, चले भीम बलवान ॥
उस तरफ सवेरा होते ही, जागे कौरव और पाण्डव गन ।
पुर में जाने की तैयारी, सब करन लगे आनन्द मगन ॥
आते ही याद वृकोदर की, आपस में ऐसी बात चली ।
भ्राताओं ! कैसा अचरज है, जो नज़र न आते भीम बली ॥
कोई बोला वे जल्दी उठ, हम से आगे पहुँचे होंगे ।
या बहकाने की नीयत से, जा छिपे कहीं आते होंगे ॥
और कहा किसी ने ठीक ही है, उनका इस जां से टल जाना ।
क्योंकि उनकी मौजूदगी में, है कठिन हमारा सुख पाना ॥
दुर्योधन सबकी बातें सुन, मन ही मन में मुसकाता था ।
कर नीचे दृग खामोशी से, आगे को बढ़ता जाता था ॥
इस पापी के कुल भावों को, कुन्ती सुत अर्जुन जान गये ।
है ज्ञात भीम का हाल इसे, इन बातों को पहिचान गये ॥
बुला युधिष्ठिर को निकट, बोले पार्थ सखेद ।
दुष्टों की मुसकान में, रहता निश्चय भेद ॥
हे भाई कुछ तदबीर करो, भाई का दरस दिखाने की ।
मुझको तो आशा रही नहीं, उसके जीवित मिल जाने की ॥
देखो दुर्योधन मन ही मन, आनन्दित हो मुसकाता है ।
इसका हँसना ही ज्ञाना था, परखो ह गगन गुंजाता है ॥

कल संध्या को जल क्रीड़ा में, मैंने तो भीम निहारा है ।
फिर कहां गया, क्या हुआ उसे, इसको अबतक न विचारा है ॥
हम थके हुये थे सब के सब, यहाँ आते ही निद्रा आई ।
इसलिये न ध्यान रहा उसका, निद्रा में गया प्यारा भाई ॥
थे जेष्ट पाण्डु सुत कपट रहित, कहा धीर धरो मिल जायेगा ।
वह निश्चय घर पहुँचा होगा, जाते ही दृष्टी आयेगा ॥

पर अर्जुन के चित्त ने, लिया नहीं विश्राम ।
आखिर कुछ ही देर में, पहुँच गये निज धाम ॥

जाते ही माता से पूछा, क्या भीम यहाँ पर आया है ।
उसको कल संध्या से गुम लख, हम सब का चित घबराया है ॥
शक होता है दुर्योधन पर, क्योंके वह हम से जलता है ।
और मार डालने की खातिर, कई प्रकार के छल करता है ॥

बोली माता हो विकल, भीम न आया गेह ।
सुनते ही पक्का हुआ, अर्जुन का संदेह ॥

आखिर घबरा कुन्ती मां ने, तत्काल विदुर को बुलवाया ।
और भीम के गुम हो जाने का, सारा क़िस्सा कह समझाया ॥
फिर कहा सुयोधन उसे देख, कुढ़ता था हंसी उड़ाता था ।
छल बल से जीवन हरने के, चुप चाप प्रयत्न कराता था ॥
वो पापी है दुर्बुद्धी है, है क्रूर, धूर्त, अत्याचारी ।
गद्दी पाने की चिन्ता में, रहता है नित व्याकुल भारी ॥
मालूम होता है कल उसने, खेली है कोई चाल नई ।
और भीम को वध कर डाला है, है निश्चय गलत ख़याल नहीं ॥
जैसा ये खल पाखंडी है, वैसे ही हैं उसके साथी ।
इस आशंका से हृदय मेरा, होता है दग्ध फटती छाती ॥
सुन वचन विदुर बोले कुन्ती, हैं पुत्र तेरे आयू वाले ।
ये बात व्यास ने कही मुझे, धर धार हृदय को समझाले ॥

दुर्योधन की चालों से वह, हरगिज़ नहिं मारा जायेगा ।
बल्कि कुछ समय निकलने पर, इसको यमलोक पठायेगा ॥
यों कहके गये विदुर तो घर, जननी अति चिन्ता करने लगी ।
हरि नाम हृदय में रटती हुई, वो बाट भीम की तकने लगी ॥

❀ गाना ❀

(तर्ज़-छोटे दीन की रीत बतादे सखी, करके जतन मैं तो हार गई)

कैसे हृदय को धीर बंधाऊं प्रभू, बिन सुत के दरश अकुलावत है ॥
दुख दीन अनाथ हमें गिरधर, कर कृपा दृष्टि अवलोकन कर ।
अब शरण हूं तेरी हे जगदीश्वर, तू दीनों का नाथ कहावत है ॥ कैसे ॥
किम राज व पाट मिले मुझको, यही रहता है सोच सुयोधन को ।
लखकर जीवित मम पुत्रन को, नहिं चैन से नींद भी आवत है ॥ कैसे ॥
किस गिनती में है ये सकल कुलगन, चाहे कहर शत्रु बने त्रिभुवन ।
पर मार न उसको सकें भगवन्, जिस को तू स्वयम् बचावत है ॥ कैसे ॥
इसी आश में हे प्रभु मनमोहन, कुछ स्थिर हुआ है ये व्याकुल तन ।
अब देखूं हूं बाट यही निशिदिन, सुत से कब गोदि मिलावत है ॥ कैसे ॥

इसी सोच और फ़िक्र में, बीत गये कई रोज़ ।
तब आ चूमे भीम ने, मां के चरन सरोज ॥

अपने प्यारे सुत को लखकर, माता को बहुत खुशी आई ।
नागाओं ने जो मान से नित, अपनी सब विपता बिसराई ।
फिर नागलोक में हुआ था जो, वह सभी भीम ने सुना दिया ।
सुन वचन युधिष्ठिर ने सबको, इस प्रकार कहना शुरू किया ।
ये बात कभी मुंह से भी, मत किसी पर ज़ाहिर करना ।
आपस में रक्षा करने को, अब आगे से तय्यार रहना ।

उस दिन से सब चैतन्य हुये, कुरुओं से बचकर चलते थे।
पर वे तो मारन उच्चाटन, के प्रयोग निशिदिन करते थे॥
"परमेश्वर जिसका रक्षक हो", बध उसे कौन कर सकता है।
चाहे सब जग एकत्र होय, पर प्राण नहीं हर सकता है॥
अस्तू योंही लड़ते भिड़ते, सब राज कुंवर हुशियार हुये।
तब क्षत्री धर्म सिखाने को श्रीगंग तनय तैयार हुये॥

लगे ढूँढने विप्र इक, धनुर्वेद विद्वान्।
तेजस्वी, ज्ञानी, बली, उत्तम वंश सुजान॥
इच्छा थी यदि द्रोण से, ये सब शिक्षा पांय।
तो धनु विद्या में सभी, पारदर्शि हो जांय॥

ये द्रोण थे भारद्वाज तनय, गंगा के तट पर रहते थे।
और अग्निवेष महर्षी के, आश्रम में विद्या पढ़ते थे॥
वर्षों तक ब्रह्मचारी रहकर, तन मन से गुरु की सेवा की।
तब हो प्रसन्न मुनि ने इनको, सारी रण विद्या सिखलादी।

एक और भी शिष्य थे, अग्निवेष के पास।
द्रुपद नाम पंचाल के, राज कुंवर गुण रास॥

दिन रात निकट ही रहने से, दोनों में प्रेम विचित्र हुआ।
जिसके कारन सच्चे दिल से, बस एक एक का मित्र हुआ॥
एक रोज द्रुपद ने कहा इन्हें, जब मैं राजा हो जाऊँगा।
प्रण करता हूँ सच्चे दिल से, तब आधा राज दिलाऊँगा॥
मम राज का सुख ऐश्वर्य विभव, जो है वो तुम्हारा ही जानो।
तन मन धन से हे द्रोण मुझे, तुम अपना सत्य सखा मानो॥
जब शिक्षा पूर्ण हुई उनकी द्रौपद निज घर वापिस आये।
और द्रोण भी धनुधारी बनकर, अपने गृह पहुँचे हरषाये॥

गौतम की इक पुत्रि थी, "कृपी" नाम गुण धाम।
पितु आज्ञा से द्रोण ने किया विवाह का काम॥

कुछ दिनों बाद एक पुत्र हुआ, जो कहलाया अश्वथामा।
लख मातु पिता आनन्द हुये, था पुत्र मनोहर छवि धामा॥
पर कुछ दिन में बद क़िस्मत से, कंगाल द्रोण महाराज हुये।
दाने दाने को फ़िक्र पड़ी, भोजन तक को मोहताज़ हुये॥
एक रोज ये घर में बैठे थे, इतने में एक संदेश सुना।
श्रीपरशुराम तप करने को, जाते हैं वन मुनि भेष बना॥
जो द्रव्य अस्त्र वे रखते हैं, सब ही का दान करावेंगे।
जो विप्र वहां पर जावेंगे, मनकी मुराद बर लावेंगे॥
ये सुन के द्रोण भी गये वहां, जा पिता सहित निज नाम लिया।
कर नम्र कंध मस्तक झुकाय, फिर सादर उन्हें प्रणाम किया॥
और कहा मैं दीन दरिद्री हूं, धन अभाव से यहां आया हूं।
चाहता हूं अतुलित द्रव्य प्रभो, कर दया देहु दुख पाया हूं॥

वचन श्रवण कर द्रोण के, बोले यों भृगुनाथ।
जो कुछ धन था दे दिया, महीसुरों के हाथ॥

अब बचा नहीं कुछ भी बाक़ी, जिससे तेरा सन्मान करूं।
अलबत्ता तन तो हाज़िर है, यदि चाहो तो मैं दान करूं॥
पा रहे हैं केवल अस्त्र शस्त्र, यदि कहो तो सारे सिखला दूं।
बोला ब्राह्मण क्या चाहते हो, दोनों चीज़ों में से क्या दूं॥
भृगुवर के अस्त्रों की समता, उस समय नहीं थी भूतल में।
धनुर्वेद में सब से श्रेष्ठ यती, कहलाते थे अवनीतल में॥
इसलिए, द्रोण अति खुशी हुये, शस्त्रों के लालच में फूले।
झट हाथ जोड़ यों कहन लगे, धन की सारी चरचा भूले
धनुर्वेद में वर्णित शस्त्र सभी महाराज कृपा कर सिखलाओ।
मेरी ऐसी ही इच्छा है, अब नाहिं दीन [illegible]॥
तब एवमस्तु भृगुनन्दन ने सब अस्त्र शस्त्र बतलाय दिये।
अपने सम [illegible] भारी, गुनी [illegible] द्रोण बनाय दिये॥

हाथ जोड़ सिर नाय कर, वापिस आये द्रोण ।
दिव्य धनुष था हाथ में, और पीठ पर त्रोण ॥
श्रीपरशुराम की किरपा से, होगये द्रोण अति बलशाली ।
पर रहते थे दिन रात दुखी, क्योंके थी घर में कंगाली ॥
लेकिन वे नहीं चाहते थे, धनियों की सेवा की जावे ।
उन अर्थ-लोलुपों के हाथों, अपनी इज्ज़त बेची जावे ॥
अस्तू निशिदिन स्वतन्त्र रहकर, ज्यों त्यों कर समय बिताते थे ।
जो मिला उसी में तुष्ट होय, जगदीश्वर के गुण गाते थे ॥
अश्वथामा ने लखे, एक दिवस निज मित्र ।
पान कर रहे हैं खड़े, गो का दूध पवित्र ॥
लख इन्हें पिता के पास गया, ये भी मन में ललचाता हुआ ।
बोला मैं भी पय पीऊंगा, आंखों से अश्रु गिराता हुआ ॥
साधारण सी वस्तू के लिये, जब देखा सुत को रोते हुये ।
एक दीर्घ स्वांस परित्याग द्रोण, बोले यों व्याकुल होते हुये ॥
बाप तेरा कंगाल है, नहीं है घर में गाय ।
रोटी को मोहताज है, दूध कहां से आय ॥
प्यारे बालक बस धीर धरो, बेटा अपना मन समझालो ।
जाओ घर में मां से मांगो, जो मिले उसे सुख से खालो ॥
धिक्कार है द्रोण दरिद्री को, जो इतना भी नहिं कर सकता ।
गो दुग्ध कहीं से लाकर के, बच्चों की पीड़ा हर सकता ॥
हा ! कौन जन्म के पापों का, ये उदय हुआ प्रतिफल भारी ।
हे दीनबन्धु रक्षा करना, हूं शरण आपकी गिरधारी ॥

गाना–(राग सोहनी)

मुफ़लिसी जिस घर में आकर, जब दरश दिखलाय है ।
तो वहा का सुःख सारा, एकदम नसजाय है ॥

चाहे जितना भी बली बिल्कुल निरोगी हो बदन ।
पर अगर से इसके यह तन रोगमय दरसाय है ॥
हो सुनैना नारि चाहे पुत्र आज्ञापाल हो ।
द्रव्य बिन लेकिन भवन सूनाहि दृष्टी आय है ॥
सर्व-गुण-सम्पन्न नर मूरख कहाते इस बिना ।
और अति मूरख धनी, सर्वत्र आदर पाय है ॥

सोचन लागे द्रोण यों, हो उदास वो बाल ।
जहाँ वे बच्चे थे वहीं, चला गया तत्काल ॥

लड़कों ने इसे चिढ़ाने को, कुछ आटा जल में घोल लिया ।
और दूध बता पीने के लिये, लाकर अश्वथामा को दिया ॥
इसने समझा ये दूध ही है अस्तु मन में अति हरषाया ।
और नाच नाच कर पीने लगा, बच्चों के हाथ मौका आया ॥
मनमाने व्यंग वचन कहकर, ताली दे हंसी उड़ाने लगे ।
सुन सुन कर उन अपशब्दों को, श्री द्रोण वीर दुख पाने लगे ॥
शस्त्रों की चोटें खाकर तो, एक बार आदमी बच सकता ।
पर ताने का जो घायल है, उम्मेद नहीं जी रख सकता ॥
क्या करें सोच बश होते हुये, इतने में उन्हें याद आई ।
द्रौपद की प्रेम भरी बातें, वो बचपन मित्रता सुखदाई ॥
सोचा इस समय मुझे वो, निश्चय निज वचन निभायेगा ।
है द्रोण धीर उसके घर चल, यहां से नहिं खाली आयेगा ॥
दुनिया में समय दुःख का ही है केवल मित्र परीक्षा का ।
अपनी अर्धांगी पत्नी से, लीना व धर्म की शिक्षा का ॥
ये सोच द्रोण कुछ शान्त हुये फिर चले मित्र से मिलने को ।
तब पहुँचे राज सभा में वे द्रौपद उठ लगा मिलने को ।

आदर से दंड प्रणाम किया, और द्रोण से आशीर्वाद लिया।
एक स्वच्छासन पर बिठला कर, पूछा कैसे आगमन किया॥

कहा द्रोण ने अश्रु भर, क्या बतलाऊँ हाल।
हुआ समय के फेर से, दीन दुखी कंगाल॥

आ फँसा हुँ ऐसे चक्कर में, रहता घर सुख सम्पन्न नहीं।
यदि अन्न मिला तो वस्त्र नहीं, और वस्त्र मिला तो अन्न नहीं॥
जो साथी और पड़ोसी हैं, वे मुझसे बात नहीं करते।
कहिं मैं उनसे कुछ मांग न लूँ, अस्तू मुख दिखलाते डरते॥
बस अब तो केवल तुम पर ही, है निर्भर मेरी सब आशा।
इस दीन मलीन दरिद्री की, नृप करो पूर्ण सब अभिलाषा॥
जो किया था प्रण बचपन में, उसको पूरा भूपाल करो।
है उसका उचित समय येही, दे आधा राज निहाल करो॥
बोले द्रौपद, तव बातें सुन, मुझको अति अचरज आता है।
क्या बुद्धी बिगड़ गई तेरी, जो ऐसी बात बनाता है॥
नादान राज लेने के लिये, नृप आपस में कट मरते हैं।
लोथों पै लोथें पाट पाट, पृथ्वी शोणित मय करते हैं॥
उस राज का आधा अंश कहीं, पथ का भिक्षुक पा सकता है।
सिंहों के मुख से अन्न छीन, किस तरह श्वान खा सकता है॥
फिर कहता है प्रण किया मैंने, पर मुझको याद नहीं आया।
अज्ञान बता पहिले मुझको, किस समय वचन था फ़रमाया॥
द्रौपद की बेढंगी बातें, सुन, द्रोण हुये व्याकुल भारी।
पर भावों को मन में दबाय, बोले मृदु वचन मनोहारी॥

भूल गये क्या द्रुपद तुम, बचपन की बात।
अग्निवेष के पास जब, पढ़ते थे इक साथ॥

उस समय आपमें और मुझमें, था सच्चा प्यार दोस्ताना।
इसके ही बस होकर तुमने, था एक रोज ये प्रण ठाना॥

जिस समय राज पाऊँगा मैं, आधा तुमको दे डालूँगा।
मिथ्या होगी ये बात नहीं, निश्चय अपना प्रण पालूँगा॥
होगये आप अब अवनीपति, फिर क्यों करते निरआश सखा।
अपने बचपन के साथी की, करदो पूरी अभिलाष सखा॥

द्रौपद को श्रीद्रोण ने, गिनकर अपना मित्र।
गद्गद होकर प्रेम से, कहे थे बचन पवित्र॥

पर मिला था जब से राज इन्हें, ये वैभव में मदमाते थे।
अच्छे अच्छों की बातों को, ये ध्यान में भी नहिं लाते थे॥
जब एक दरिद्री ने उनको, सम्बोधन किया सखा कहके।
गो मित्र ही था तोभी मद में, ये बचन को उसके सह न सके॥
कर क्रोध से लोचन लाल लाल, बोले द्विज क्यों मति मारी है।
मैं हूँ राजों का महाराजा, तू पथ का एक भिखारी है॥
फिर मित्र तू कैसे बनता है, क्या तुझको इतना ज्ञान नहीं।
हे मूर्ख कभी भिक्षुओं के भी, होते हैं मित्र धनवान कहीं॥
जुगनू कितना ही यत्न करे, रवि की समता कहिं पाता है।
क्या बालू का किनका भी कभी, पर्वत सम माना जाता है॥
होता है विवाह और बैर प्रीति, जहाँ बराबरी के होते हैं।
छोटे व बड़े रथ के पहिये, रथ को न एकसा रखते हैं॥
रख मन में याद किसी नृप को, मोहवश न कभी अनुचित कहना।
मूरख के लिये जगत में बस, उत्तम भूषण है "चुप रहना"॥
जिस समय मित्रता की तुम ने, वह समय था अपने बचपन का।
दोनों बच्चों को ज्ञान न था, छुटपन का और बड़प्पन का॥
बचपन की दोस्ती जीर्ण हुई, इस समय न उसका ध्यान करो।
यदि इच्छा हो भोजन करलो, वरना घर को प्रस्थान करो॥

आग लग गई बदन में सुन द्रौपद के बैन।
कहा द्रोण ने क्रोध से, रक्त वर्ण कर नैन॥

बस बस चुप रह क्षत्री कलंक, भोजन की चाह नहीं मुझको ।
तुझ सम विश्वासघातियों के, अन्न की परवाह नहीं मुझको ॥
इस राज पाट के पाते ही, भूला बचपन का हाल सभी ।
धन में ऐसा मद होश हुआ, प्रण का तज दिया खयाल सभी ॥
बस ठहर शाप देकर तुझको, मिट्टी में अभी मिलाता हूं ।
अपमान का एक ब्राह्मण के, क्या फल मिलता दिखलाता हूँ ॥
पर राज मदोन्मत्त है तू, दे शाप न लूँगा प्रान तेरा ।
बल द्वारा हो तब राज छीन, बस करूँगा मर्दन मान तेरा ॥
ले सुन "यदि निज शिष्यों द्वारा, तुझको न पराजित करवाऊँ ।
एक क़ैदी के सदृष्य यदि मैं, सन्मुख न पकड़वा मंगवाऊँ ॥
तो धनुष तोड़ शतखंड करूँ, कर में न कोई शस्तर धारूँ ।
तज बस्ती को जंगल में जा, सन्यास आश्रम स्वीकारूँ" ॥

इतना कह कर द्रुपद से, जोश में होंट दबाय ।
चले द्रोण उठ कर तुरत, मन में गुस्सा खाय ॥

पहुँचे सीधे हस्तिनापुर में, श्रीकृपाचार्य के पास गये ।
ये इनके साले होते थे, अस्तू यहाँ आकर ठहर गये ॥
ये कृपाचार्य सब लड़कों को, शस्त्रों की शिक्षा देते थे ।
भीपम से धन सन्मान पाय, आनन्दित होकर रहते थे ॥
यहां आय द्रोण सोचने लगे, किम प्रण पूरा कर पाऊंगा ।
किस रोज दुष्ट द्रौपद का मान, मर्दन कर हर्ष मनाऊंगा ॥
यदि चाहते भीपम के ढिंग जा, अपने को ज़ाहिर कर देते ।
और प्रण पूरा करने के लिये, कुछ बात भी पक्की कर लेते ॥
पर इच्छा थी खुद बुलावें वे, तब ही उनके यहां जाऊंगा ।
उनसे आदर सत्कार पाय, तब अपना काम बनाऊंगा ॥

इसी फिक्र और सोच में, रहें द्रोण मनमार ।
एक दिवस दृष्टी पड़े, मतलब के आसार ॥

खेल रहे थे गेंद से, राजकुंवर हरषाय ।
अनायास वो छूटकर, गिरी कुए में जाय ॥
उसके पाने की इच्छा में, कर बल प्रकाश सब बाल थके ।
बहुतेरा यत्न किया मिलकर, पर किसी तरह न निकाल सके ॥
इससे मन में अति लज्जित हो, वे लगे देखने भूतल को ।
और बार बार धिक्कार दिया, अपने क्षत्रीपन को, बल को ॥
थे खड़े द्रोण भी उसी जगह, पर बच्चों को मालुम न पड़ी ।
कुछ देर बाद आखिर इनकी, बस उनसे दृष्टी जाय लड़ी ॥
क्या देखा एक विप्र है, वीर भेष कृश गात ।
श्याम वर्ण तेजाकृती, धनुष लिये है हाथ ॥
देख विप्र को घेर कर, खड़े हुए सब बाल ।
कहा हमारी गेंद को कृपया देहु निकाल ॥
मुस्काकर द्रोण लगे कहने, होता है मुझे अचरज भारी ।
तुम क्षत्री हो कुरुवंशी हो, फिर पढ़ी है धनुविद्या सारी ॥
तो भी नहिं गेंद निकाल सके, धिक है तुम्हरे क्षत्री बल को ।
ले जन्म वृथा ही भार दिया, हस्तिनापुर के अवनीतल को ॥
अच्छा अब मेरा भी कौशल, अवलोको राजकुमार सभी ।
केवल तिनकों के ही द्वारा, आती है कंदुक बाहर अभी ॥
यों कह द्रोणाचार्य ने, तिनके लिये मंगाय ।
लगे चलाने कूप में, धनु पर उन्हें चढ़ाय ॥
अव्वल तिनका कंदुक में लगा, दोयम ने पहिले को छेदा ।
और तृतिय: जमा दूसरे पर फिर चौथे ने इसको भेदा ॥
यों ही क्रम से जमते जमते त्रण की डोरी तैयार हुई ।
खींचा फिर आहिस्ता से उसे इस तरह गेंद वो बाहर हुई ॥
सन्नाटे में आ गये, सारे राजकुमार ।
भौंचक से खड़े रहे, देख ये चमत्कार ॥

झट मस्तक झुका प्रणाम किया, फिर कहा वीरवर कौन हो तुम ।
धनुर्वेद विशारद होकर भी, किसलिये दीन छविहीन हो तुम ॥
शुभ नाम आपका क्या है प्रभो, क्या कारण है यहाँ आने का ।
ठहरोगे कुछ दिन इस पुर में, या विचार है कहिं जाने का ॥

कहा द्रोण ने, भीष्म से, जाय कहो सब हाल ।
सुनकर सकल वृत्तान्त वे, चीन्हेंगे तत्काल ॥

उत्कंठित राजकुमारों ने, भीषम से कथा कही सारी ।
सुनते हि इन्होंने जान लिया, वो द्विज है द्रोण धनुर्धारी ॥
हर्षित हो झट बुलवा भेजा, आने पर अति सन्मान किया ।
उठ सादर गले लगा इनको, आसन एक स्वच्छ प्रदान किया ॥
फिर बोले सविनय गंगतनय, यहां कैसे आप पधारे हैं ।
सम्पूर्ण वृत्तान्त कहो हम से, धन धन सौभाग्य हमारे हैं ॥
सुन वचन द्रोण की आँखों में, तत्काल अश्रुजल भर आया ।
सहसा एक दीर्घ स्वांस लेकर, फिर रुंधे कंठ से फ़रमाया ॥
"अपमान गुप्त रक्खे अपना", हे भीष्म नीति ये कहती है ।
पर कहता हूँ क्योंके तबियत, बिन कहे न हलकी होती है ॥

यों कह द्रोणाचार्य ने, कीन्हा सकल बयान ।
हुआ था इनका जिस तरह, द्रौपद से अपमान ॥

भीषम को भी अति शोक हुआ, सुन इनकी आत्मकथा सारी ।
फिर कहा विप्रवर धीर धरो, है समय की सारी बलिहारी ॥
ज्यों दिन मुंदने पर निशि होती, फिर निशि नस कर दिन आता है ।
बस इसी तरह सुख बीते दुख, दुख बीते सुख छा जाता है ॥
मम विनय मान धनु डोर खोल, कुछ दिनों यहां आराम करो ।
सब सुकुमारों को शस्त्रों की, शिक्षा देने का काम करो ॥
तव चरण कमल के दर्शन पा, मुनिराई हम कृतकार्य हुये ।
इस पुर के राजकुमारों के, बस आज से तुम आचार्य हुये ॥

अपनी, कुटुम्ब की, जाती की, उन्नति में हृदय लगा रहे ।
और जन्मभूमि की रक्षा हित, नित तीर धनुष पर चढ़ा रहे ॥
पथ के काँटे सब दूर होंय, जो करे शत्रुता नस जावे ।
तुमसे सुत पा भारत माता, बस वीर-प्रसवनी कहलावे ॥
सर्वत्र मेरा मुख उज्जवल हो, तुम्हरा यश जग में छाने से ।
हों खुशी मातु पितु तुम समान, बलशाली सुत के पाने से ॥

गाना (ग़ज़ल)

(तर्ज.—छोड़ भारत को गये हाय वे बलवीर कहां)

देखना देश की तुम शान गंमाना न कभी ।
वंश के मान का भी ध्यान भुलाना न कभी ॥
हुये उत्पन्न हो तुम सब ही आर्य भूमी पर ।
अस्तु आपस में सुतो लड़ना लड़ाना न कभी ॥
क्षत्रि हो क्षत्रि के कर्तव्य का पालन करना ।
आर्य पुरुषों का लहू व्यर्थ बनाना न कभी ॥
देश के हित में अगर प्राण विसर्जन होवें ।
श्रेष्ट है, पर कहिं पद पीछे हटाना न कभी ॥
धर्म द्रोही हों या हों जाति के कट्टर शत्रू ।
उनको बधने में सुनो देर लगाना न कभी ॥
रखना निजधर्म पै विश्वास अटल जीवन भर ।
करना इन बातों के पालन में बहाना न कभी ॥

यों कह द्रोणाचार्य ने, बतलाये कई शस्त्र ।
अग्नि, गरुड़ वायव्य, अरु, पर्वत शर मेघास्त्र ॥

ये सुनकर अमित प्रदेशों के, कई राजकुँवर आ रहने लगे।
आचार्य द्रोण के शिष्य हुये, धनुर्वेद प्रेम से पढ़ने लगे॥
इतने में कुन्ती-ज्येष्ठ-पुत्र, जो पले थे सारथि के द्वारा।
वे कर्ण भी यहीं चले आये, शिषत्व द्रोण का स्वीकारा॥
कुछ राजकुमारों को तजकर, थे जितने भी वहां रजवंशी।
थे तेज में इनसे कम क्योंकि, ये थे असली सूरज अंशी॥
फिर थे दैवी कुंडल व कवच, आरम्भ से ही इनके तन पर।
इनका भी अमित प्रभाव पड़ा, सारे शागिर्दों के मन पर॥
अस्तु सब ही सच्चे दिल से, इनको निज मित्र समझते थे।
ये सूत पुत्र हैं क्षत्रि नहीं, ऐसा कोई नहिं कहते थे॥
दुर्योधन भी इनको लखकर, हृदय में अतिशय हर्षाया।
सोचा अब पान्डु कुमारों से, बदला लेने का दिन आया॥
ये कर्ण है कुछ सामान्य नहीं, ये बात दृष्टि में आती है।
होगा ये आगे बलशाली इसकी आकृती बताती है॥
इसलिये अभी से यत्न करूं, इसको निज ओर मिलाने का।
जो मग के कांटे हैं उनको, बस भस्मी भूत बनाने का॥
यदि ये योधा मम विनय मान, मेरा साथी होजायेगा।
तो दुर्योधन भी किसी रोज, निश्चय है भूप कहायेगा॥

इसीलिये ये अधिकतर, दिखलाता था नेह।
कहता हम और आप हैं, एक प्राण दो देह॥

दुष्टों के चंगुल में फंस कर, सज्जन दुर्जन होते जग में।
बुद्धी सब नष्ट भ्रष्ट होती पड़जाते हैं उल्टे मग में॥
दुर्योधन इनको अष्ट पहर, कहता है कर्ण सजग रहना।
पांडव अपने कट्टर रिपु हैं, अस्तु इनसे बच कर चलना॥
इसलिये ये पान्डु कुमारों के हो गये शत्रु यहां रह करके।
और मुख्यतया थी अर्जुन की करते थे अवज्ञा जी भरके॥

अर्जुन इनके बचन पर, नहिं देते थे कान ।
करते थे दिन रात ये, धनुष बान संधान ॥
शिष्यों के साथ द्रोण के सुत, अश्वथामा भी पढ़ते थे ।
और ये भी बान चलाने में, सर्वोत्तम बुद्धी रखते थे ॥
लेकिन जब कर लाघवता में, अर्जुन से ये भी मात हुये
तब तो बेचैन विकल व्याकुल, अश्वथामा के तात हुये ॥
अर्जुन को छोटे मुंह का पात्र, दे नदी तीर पर भिजवाया ।
और दिया बड़े मुंह का सुत को, इस तरह से पानी मंगवाया ॥
सोचा बर्तन को जल्दी भर, मम पुत्र प्रथम आजायेगा ।
तो सम्भव है कुन्ती सुत से, कुछ अधिक इल्म पढ़ जायेगा ॥
पर अर्जुन के सामने, चली नहीं ये चाल ।
वरुण अस्त्र से पात्र को भरलाते तत्काल ॥
फिर रथ पर चढ़कर रण करना, ये रीति गुरू बतलाने लगे ।
तलवार, गदा, तोमर, परसा, इनके प्रयोग सिखलाने लगे ॥
फिर बतलाया किस तरह एक, बहुतों से रण कर सकता है ।
किस तरह एक ही साथ कई, अस्त्रों से काम ले सकता है ॥
शोहरत सुन तहां और भी, आये राजकुमार ।
लगे पढ़न अति चाव से, धनुर्वेद का सार ॥
कुछ दिन में तीर चलाने में, अर्जुन सब से उत्तम निकले ।
बस इनकी टक्कर के लायक, केवल श्रीकर्ण हुये इकले ॥
भुजबल में वीर वृकोदर ने, सब से उत्तम पदवी पाई ।
योग्यता गदा संचालन में, बस दुर्योधन ने दिखलाई ॥
अभ्यासी था न युधिष्ठिर सम, रथ पर चढ़ लड़ने वालों में ।
सहदेव नकुल ने प्राप्त करी, योग्यता पूर्ण करवालों में ॥
हो गये चतुर पितु शिक्षा से, सब शस्त्रों में अश्वथामा ।
इस तरह से राजकुंवर सारे, बन गये शीघ्र ही बलधामा ।

लगे सोचने एक दिन, द्रोणाचार्य सुजान।
देखूँ तो किस शिष्य को, हुआ है कितना ज्ञान॥

ये सोच एक पक्षी बनवा, तरु की डाली पर बिठलाया।
फिर अश्वत्थामा के द्वारा, सारे शिष्यों को बुलवाया॥
वह पक्षि दिखा बोले सब से, शिष्यों अपना शारंग तानो।
और उसका शीश काटने को, एक उत्तम सा शर संधानो॥
जिस समय हुक्म होवे मेरा, बस छूटे धनु से बान तभी।
उस वक्त तलक खामोशी से, बस रहो खड़े धनु तान सभी॥

ताक पक्षि के शीश को, खड़े हुये सब बाल।
ये लख द्रोणाचार्य ने, कीन्हा एक सवाल॥

बच्चों! बोलो इस समय तुम्हें, क्या क्या वस्तू दृष्टी आती।
ये वृक्ष, फूल, फल, डाल, पात, या केवल चिड़िया दिखलाती॥
अर्जुन को छोड़ सभी चेले, बोले झटपट हे गुरुराई।
हमको तो पक्षी वृक्ष आदि, सब चीजें देती दिखलाई॥
पर कहा पार्थ ने हे गुरुवर, फल फूल का कहां गुज़ारा है।
चिड़िया तक भी न दृष्टि आती बस सिर ही लक्ष हमारा है॥
ये सुन सब शिष्यों को हटाय अर्जुन से कहा बान मारो।
और काट पक्षि के मस्तक को जल्दी से भूमी पर डारो॥

बान चलाया पार्थ ने, कटा पक्षि का शीश।
हो प्रसन्न गुरु द्रोण ने, मन में दी आशीश॥

एक दिवस गुरु शिष्यों को ले, पहुंचे गंगा में न्हाने को।
जल में घुसते ही मगर एक, आया इनको खा जाने को॥
फुरती से मुख में टांग दबा जल में ले जाना शुरू किया।
तब गुरु ने अपनी रक्षा हित, शिष्यों को बुलाना शुरू किया॥
यदि ये चाहते कौशल द्वारा, झट अपनी मुक्ती कर लेते।
पर इन्हें तो मालुम करना था चेले कितनी शक्ती रखते

इसलिये बदन को ढीला कर, हो विकल गुरू चिल्लाने लगे ।
लख इनको बुरी अवस्था में, सारे चेले घबराने लगे ॥
धैर्य छोड़ करने लगे, सब ही हाहाकार ।
लेकिन अर्जुन होगये, रक्षा को तैयार ॥
झटपट अपना कोदंड चढ़ा, रख पाँच बान एक दम छोड़े ।
छुटते हि जिन्होंने पलभर में, उस मगर के अंग अंग तोड़े ॥
मर गया वो फौरन उसी जगह, मिल गई मोक्ष गुरुराई को ।
नहिं रहा ठिकाना आनन्द का, लख चेले की चतुराई को ॥
हृदय लगा कर पार्थ को, बोले द्रोण सुजान ।
अर्जुन तूने ही दिया, आज हमें जी दान ॥
तुझको यदि बान चलाने में, पल भर विलम्ब भी हो जाता ।
तो निश्चय था अपने गुरु को, फिर कभी न तू जिन्दा पाता ॥
दिखलाई गुरु भक्ती तैंने, विपता में गुरु की रक्षा कर ।
अस्तू ये उत्तम "ब्रह्म अस्त्र", देता हूँ तुझको हर्षा कर ॥
पर नर का जी हरने के लिये, इसको न काम में लाना तुम ।
आ जाय भयंकर निश्चर यदि, तो उस पर इसे चलाना तुम ॥
है ये साधारण शस्त्र नहीं, किसी नर से सहा न जायेगा ।
अपने प्रचण्ड तेजो बल से, भूमी को भस्म बनायेगा ॥
नहिं होती इसकी मार वृथा, रोके न किसी के रुकता है ।
सुर असुर नाग या किन्नर हो, लगते ही जीवन हरता है ॥
ले अस्त्र प्रसन्न हुये अर्जुन, निज को कृतकृत्य समझने लगे ।
गुरुराई के चरणों में गिर, अति हित से विनती करने लगे ॥

*** गाना ***

(तर्ज - मेरे शम्भू तू लीजो खबरिया मेरी)

स्वामी तुमने ही निपुण बनाया मुझे ।
सारे शस्त्र चलाना सिखाया मुझे ॥

तत्पर गुरू की सेवकाई में सदा मन से रहो,
उपकार में निज प्राण को तृण के सरिस गिनते रहो।
येही तुमने है सबक पढ़ाया मुझे ॥ स्वामी ॥
ग्राह को वध कर यदि मैने तुम्हें जो बचा लिया,
अहसान इसमे है नहीं कर्तव्य का पालन किया।
करके व्यर्थ प्रशंसा बढाया मुझे ॥ स्वामी ॥
आपके उपदेश के माफिक सदा चलता रहूं,
उत्थान अपनी जाति का और धर्म का करता रहूं।
येही नाथ पसन्द है आया मुझे ॥ स्वामी ॥

हृदय लगाया द्रोण ने, उठा इन्हें सानन्द।
हुआ युधिष्टिर आदि के, मन में अति आनन्द
लेकिन इस घटना ने फौरन, रविसुत का हृदय मसल डाला।
सोचा बस अर्जुन ही होगा, दुनियाँ में सब से बल वाला॥
कर याद अस्त्र की बार बार, ये मन में अति दुख पाने लगे।
एक रोज अकेले में जाकर, गुरु को इस तरह सुनाने लगे॥
हे भगवन् दया दृष्टि करके, ब्रह्मास्त्र मुझे भी सिखलादो।
किस तरह छोड़ कर लौटाया, जाता है ये सब बतलादो॥
आचार्य आपकी प्रीती तो, सारे शिष्यों पै बराबर है।
फिर क्या कारण है चित्त में, मैं कमतर हूँ वह बेहतर है॥
मैं अर्जुन को निज से ज्यादा, ताकतवर देख नहीं सकता।
अस्त्र में भी उसके समान, हो जाऊँ ये विनती करता॥
रविनन्दन की बातें सुन कर, आचार्य द्रोण तब जान गये।
ये वैर भाव से रखता है, इसका रहस्य पहिचान गये॥
वैसे चाहे बतला देते, ब्रह्मास्त्र कर्ण को हर्षित हो।
पर जान कर उसका दुष्ट भाव, ये कहन लगे अति क्रोधित हो॥

ब्रह्म अस्त्र को सीखने, ब्राह्मण क्षत्रिकुमार ।
शुद्रों को बिल्कुल नहीं, है इसका अधिकार ॥
तुम सूत पुत्र हो फिर कैसे, ब्रह्मास्त्र तुम्हें बतला देवें ।
कर नियम उलंघन शास्त्रों का, किसलिये घोर पातक लेवें ॥
सुन वचन द्रोण के रविनन्दन, चल दिये यहाँ से सिर नाकर ।
निज घर में आ सोचने लगे, सीखूँ ये शस्त्र कहाँ जाकर ॥
आख़िर इनको आगई याद, हैं भृगुवर श्रेष्ट धनुर्धारी ।
कई बार क्षत्रियों से लड़कर, दिखलाई है ताक़त भारी ॥
फिर हैं मेरे गुरु के भी गुरु, खाली न कभी लौटावेंगे ।
आशा है मम विनती सुनकर, निश्चय ब्रह्म अस्त्र सिखावेंगे ॥
लेकिन भय है वे भी न कहीं, कह सूत मुझे ठुकरा देवें ।
जो वाक्य द्रोण ने कहे यहाँ, कहिं वही न वे फरमा देवें ॥
इसलिये विप्र का भेष धार, निर्भय हो वहाँ चला जाऊँ ।
और वेफिक्री से ब्रह्मअस्त्र, कर याद यहाँ पर आजाऊँ ॥
ये विचार कर सूर्यसुत, ब्राह्मण भेष बनाय ।
पहुँचे भृगुवर के निकट, बोले शीश झुकाय ॥
मैं हूँ भृगुवंशी विप्र प्रभो, ब्रह्मास्त्र मुझे सिखला दीजे ।
आया हूं शरण इसी से मैं, लख दीन मोहि किरपा कीजे ॥
सुन वचन कर्ण के भृगुवर ने, इनको निज चेला बना लिया ।
रखकर अपनी ही कुटिया में, वो शस्त्र सिखाना शुरू किया ॥
कुछ ही दिन में होगया, ब्रह्म अस्त्र का ज्ञान ।
इसको सीख दिनेश सुत, हुये प्रसन्न महान ॥
इसके सिवाय रण विद्या में, जो कमी थी वह भी पूर्ण हुई ।
भृगुवर की किरपा से कुछ ही, दिन में शिक्षा सम्पूर्ण हुई ॥
बन गये कर्ण भी धनुधारी, कर गुरु की सच्ची सेवकाई ।
और रहन लगे आश्रम में ही, मन की सब चिन्ता बिसराई ॥

परसुरामजी एक दिन, लेकर इनको संग ।
गये वनों में देखने, प्रकृति देवि का रंग ॥

वन महक रहा था फूलों से, हरसू हरियाली छाई थी ।
कल कल रव झरने करते थे, चलती समीर सुखदाई थी ॥
सर भरे हुये थे कमलों से, भौंरे गुंजार सुनाते थे ।
पक्षी अपने कल कंठों की, बोली से हृदय लुभाते थे ॥
कुछ देर बाद श्री भृगुनन्दन, थक जाने से लाचार हुये ।
आ एक जगह पर बैठ गये, श्रम खोने को तैयार हुये ॥
शीतल वायु के लगने से, इनको कुछ सुस्ती सी आई ।
रख कर्ण की जंघा पर मस्तक, होगये नींदवश भृगुराई ॥

दैवयोग से कीट इक, आया तहाँ तुरन्त ।
जंघा में रवि पुत्र की, मारा तीक्ष्ण दन्त ॥

होगई जांघ पल में घायल, और रवां खून की धार हुई ।
इस पीड़ा से रविनन्दन की, तबियत बिल्कुल बेज़ार हुई ।
कहिं जाग न जावें परसुराम, इस डर से ये चुपचाप रहे ।
पत्थर की मूरत सम होकर वह घोर कष्ट को सहा किये ॥

भृगुवर के नीचे गई, जब शोणित की धार
निद्रा तजकर होगये, फौरन ही हुशियार ॥

शोणित को बहता हुआ देख, बोले गुस्से से भृगुराई ।
हे कर्ण बता जल्दी मुझको, ये खूं धारा कहां से आई ॥
तन मेरा सब अपवित्र हुआ शोणित में तर हो जाने से ।
कह दे सब सच्चा हाल मुझे होगा नहिं भला छिपाने से ॥

सूर्य पुत्र ने कह दिया इनको सच्चा हाल ।
सुनकर ये कुछ देर तक, करते रहे ख़याल ॥

फिर एकाएकी भृकुटि चढ़ी, आंखों में खून उतर आया ।
बोले ओ मूढ़ कौन है तू, झट बतला किस कुल में जाया ॥
इस तरह की भारी पीड़ा को, ब्राह्मण न कभी सह सकते हैं ।
ऐसा धीरज तो दुनियां में, केवल क्षत्री ही रखते हैं ।
अस्तू कहदे सब बात मुझे, वरना अब भस्म बनाता हूं ।
छल करने का कुछ ही क्षण में, हे दुष्ट मज़ा दिखलाता हूं ॥

परशुराम की बात सुन, कर्ण गये दहलाय ।
बोले थर थर कांपते, आदर से सिर नाय ॥

करिये गुरुदेव क्षमा मुझको, मैं सूत वंश में जाया हूँ ।
ब्रह्मास्त्र सीखने के लालच, धर विप्र रूप यहां आया हूं ॥
पढ़ता था हस्तिनापुर में मैं, थे गुरुवर द्रोणाचार्य मेरे ।
तहां आते थे विद्या सीखन, भूपालों के सुत बहुतेरे ॥
उनमें से अर्जुन को इक दिन, गुरु ने ये अस्त्र प्रदान किया ।
पर मेरी बातों पर भृगुवर, कुछ भी न उन्होंने ध्यान दिया ॥
कह दिया सूत है तू, इससे, नहिं हक़ है तुझे बताने का ।
बस कारण यही हुआ स्वामी, इस कपट भेष में आने का ।

❀ गाना ❀

(तर्ज–थ्रियेट्रिकल–बड़ी किरपा है मोपे तिहारी, श्रीकृष्णचन्द्र गिरधारी ।)

हक़ है तुमको भृगुराई, अब मारो या छोड़ो गुसाईं ॥
इच्छा ने विक्षिप्त बनाया, झूंठ बोलने को उकसाया ।
इसी से जाति छिपाई ॥ अब ॥
सूत मुझे गुरु ने अनुमाना, चहा इसीसे न शस्त्र सिखाना ।
अस्तू ये नौबत आई ॥ अब ॥
दुख है मुझे भी छल करने का, झूंठ बोल विद्या पढ़ने का ।
पर न दी युक्ति दिखाई ॥ अब ॥

परसुरामजी एक दिन, लेकर इनको संग ।
गये वनों में देखने, प्रकृति देवि का रंग ॥

वन महक रहा था फूलों से, हरसू हरियाली छाई थी ।
कल कल रव झरने करते थे, चलती समीर सुखदाई थी ॥
सर भरे हुये थे कमलों मे, भौंरे गुंजार सुनाते थे ।
पक्षी अपने कल कंठों की, बोली से हृदय लुभाते थे ॥
कुछ देर बाद श्री भृगुनन्दन, थक जाने से लाचार हुये ।
जा एक जगह पर बैठ गये, श्रम खोने को तैयार हुये ॥
शीतल वायू के लगने से, इनको कुछ सुस्ती सी आई ।
रख कर्ण की जंघा पर मस्तक, होगये नींदवश भृगुराई ॥

दैवयोग से कीट इक, आया तहाँ तुरन्त ।
जंघा में रवि पुत्र की, मारा तीक्ष्ण दन्त ॥

होगई जांघ पल में घायल, और रवां खून की धार हुई
इस पीड़ा से रविनन्दन की, तबियत बिल्कुल बेज़ार हुई ।
कहिं जाग न जावें परसुराम, इस डर से ये चुपचाप रहे
पत्थर की मूरत सम होकर वर धीर कष्ट को सहा किये ।

भृगुवर के नीचे गई, जब शोणित की धार
निद्रा तजकर होगये, फौरन ही हुशियार ॥

शोणित को वहता हुआ देख, बोले गुस्से से भृगुराई
हे कर्ण बता जल्दी मुझको, ये खूं धारा कहां से आई
तन मेरा सब अपवित्र हुआ, शोणित में तर हो जाने से
कह दे सब सच्चा हाल मुझे, होगा नहिं भला छिपाने से ।

सूर्य पुत्र ने कह दिया, इनको सच्चा हाल ।
सुनकर ये कुछ देर तक, करते रहे खयाल ॥

फिर एकाएकी भृकुटि चढ़ी, आंखों में खून उतर आया ।
बोले ओ मूढ़ कौन है तू, झट बतला किस कुल में जाया ॥
इस तरह की भारी पीड़ा को, ब्राह्मण न कभी सह सकते हैं ।
ऐसा धीरज तो दुनियां में, केवल क्षत्री ही रखते हैं।
अस्तू कहदे सब बात मुझे, वरना अब भस्म बनाता हूं ।
छल करने का कुछ ही क्षण में, हे दुष्ट मज़ा दिखलाता हूं ॥

परशुराम की बात सुन, कर्ण गये दहलाय ।
बोले थर थर कांपते, आदर से सिर नाय ॥

करिये गुरुदेव क्षमा मुझको, मैं सूत वंश में जाया हूँ ।
ब्रह्मास्त्र सीखने के लालच, धर विप्र रूप यहां आया हूं ॥
पढ़ता था हस्तिनापुर में मैं, थे गुरुवर द्रोणाचार्य मेरे ।
तहां आते थे विद्या सीखन, भूपालों के सुत बहुतेरे ॥
उनमें से अर्जुन को इक दिन, गुरु ने ये अस्त्र प्रदान किया ।
पर मेरी वातों पर भृगुवर, कुछ भी न उन्होंने ध्यान दिया ॥
कह दिया सूत है तू, इससे, नहिं हक़ है तुझे बताने का ।
बस कारण यही हुआ स्वामी, इस कपट भेष में आने का ।

❀ गाना ❀

(तर्ज –थियेट्रिकल–बड़ी किरपा है मोपे तिहारी, श्रीकृष्णचन्द्र गिरधारी ।)

हक़ है तुमको भृगुराई, अब मारो या छोडो गुसाई ॥
इच्छा ने विक्षिप्त बनाया, झूंठ बोलने को उकसाया ।
इसी से जाति छिपाई ॥ अब ॥
सूत मुझे गुरु ने अनुमाना, चहा इसीसे न शस्त्र सिखाना ।
अस्तू ये नौबत आई ॥ अब ॥
दुख है मुझे भी छल करने का, झूंठ बोल विद्या पढ़ने का ।
पर न दी युक्ति दिखाई ॥ अब ॥

तुम्हरी दया पर सब निर्भर है, अपराधी सन्मुख हाज़िर है।
दिया है शीश झुकाई ॥ अब ॥

सुन वचन कर्ण के भृगुनन्दन, बोले न शाप दूंगा तुझको।
क्योंके तैंने सच्चे मन से, सेवा कर तुष्ट किया मुझको॥
मेरी आशिष है होगा तू, दुनियां में श्रेष्ठ धनुर्धारी।
सत धर्म पालनेवाला और, होगा बलशाली सुविचारी॥
ये शस्त्र निःसन्देह कई बार, संकट से तुझे छुड़ावेगा।
पर मुझको धोखा देने का, प्रतिफल निश्चय ही पावेगा॥
जब बराबरी के योधा से, संग्राम घोर होगा तेरा।
ब्रह्मास्त्र* भूल जावेगा तू, सुनले ये सत्य वचन मेरा॥
बस यहां से शीघ्र चलाजा अब, है ये झूंठों का धाम नहीं।
कपटी कुविचारी मनुज यहां, कभि पाते हैं विश्राम नहीं॥
सुन सच्ची गिरा परसुधरकी, इसने यहां से प्रस्थान किया।
और दुर्योधन से मिलने को, झट हस्तिनापुर का मार्ग लिया॥
यहां एक दिन द्रोण ने, सोची मन में बात।
अस्त्र शस्त्र में हो गये, सभी शिष्य विख्यात॥
क्षत्रियों को जो पढ़नी चहिये, वो सब रण विद्या पढ़ डाली।
धनुर्वेद के सकल रहस्यों से, हुये परिचित रही नहीं ताली॥
अब शिक्षा जारी रखने से, कुछ लाभ न दृष्टी आता है।
करदूं सुपुर्द इनको वापिस, जी में बस यही समाता है॥
ये विचार कर द्रोण गुरु, गये सभा तत्काल।
भीष्म विदुर के सामने, कहा भूप से हाल॥

* भृगुनन्दन परशुरामजी का ये शाप किस प्रकार कर्ण की मृत्यु का कारण हुआ इसका सम्पूर्ण वृत्तान्त जानने के लिये पाठकों को "द्रोण व कर्ण वध" नामक उन्नीसवां भाग देखना चाहिये।

रण विद्या में होगये चतुर, महाराजा राजकुमार सभी।
निज निज कौशल दिखलाने को, हैं सब के सब तैयार अभी॥
उत्तम होगा यदि आप स्वयम्, उनके परिचय को पा लेवें।
किस दरजे तक सब योग्य हुये, इसका अन्दाज़ लगा लेवें॥
क्योंके परिचय से यश मिलता, बढ़ता है हृदय वीरों का।
फिर परखे बिन न ज्ञात होता, क्या मोल तोल है हीरों का॥
आचार्य की अमृत बानी सुन, राजा ने अति आनन्द पाया।
कृप, भीष्म, विदुर आदिक को भी, इन बचनों ने सुख पहुंचाया॥
बोले नृप गुरुवर धन्य हो तुम, संपादन गुरुतर काम किया।
इस कुल को उत्तम शिक्षा दे, विख्यात जगत में नाम किया॥
गुरुदेव! परिक्षा शिक्षा की, कहदो किस दिन ली जावेगी।
किस ढंग की होगी रंगभूमि, किस जगह बनाई जावेगी॥
जन्मान्धपना इस समय मुझे, अति घोर कष्ट पहुंचाता है।
ऐसे शुभ अवसर पर मेरे, हृदय को व्यथित बनाता है॥

तो भी मैं आनंद से, करता हुक्म प्रदान।
भीष्म विदुर को संगले, करो सभी सामान॥

यदि मैं न लखूंगा नहीं सही, रैयत तो आनंद पावेगी।
मम तबियत तो पुत्रों का यश, सुन कर ही खुश हो जावेगी॥
आनन्दित द्रोणाचार्य हुये, भूपति की प्रिय वानी सुनकर।
आये फिर नगरी के बाहिर, कृप, भीष्म, विदुर को संग लेकर।
यहां काम में आने के लायक, एक समतल भूमी नपवाई।
कर चार दिवारी खड़ी तुरत, उसको सब विधि से सजवाई॥
स्त्री पुरुषों के बैठन को, फिर सुन्दर मंडप बनवाये।
और मध्य में बृहत् कई तंबू, शिष्यों के हेतू लगवाये॥
आया जब दिवस परीक्षा का, सब पुरवासी घर से निकले।
नृप धृत्तराष्ट्र भी भीष्म, विदुर, और मंत्रि वर्ग के साथ चले॥

गंधारी अमित दासियां ले, कुन्ती सँग तहां चली आई ।
जो जगह नियत थी बैठन को, तहां बैठ गई अति हर्षाई ॥
खूब खचाखेच भरगई, रंगभूमि तत्काल ।
हुये इकट्ठे नगर के, वृद्ध युवा अरु बाल ॥
जैसे सागर लहराता हो, वैसा कोलाहल मचने लगा ।
बस इसी समय में बाजा भी, सुन्दर व सुरीला बजने लगा ॥
इतने में श्वेत वस्त्र पहिरे, चंदन भी श्वेत लगाये हुये ।
थे केश भी श्वेत रंग के ही, फिर श्वेत माल लटकाये हुये ॥
यज्ञोपवीत भी श्वेत ही था, थे तेज पुन्ज अति छवि छाये ।
वे द्रोणाचार्य पुत्र को ले, इस तरह रंगभूमी आये ॥
आते ही विप्रों को बुलवा, कुछ ईश्वर का गुण गान किया ।
फिर बड़े प्रेम से मृत्युंजय, कैलाशनाथ का ध्यान किया ॥
सुमिरण कर परसुरामजी का, गुरु ने गुरु भक्ती दिखलाई ।
फिर शागिर्दों को सजने की, इच्छा खुश होकर फ़रमाई ॥
आज्ञा पा गुरु द्रोण की, लेकर निज हथियार ।
पहन एक से वस्त्र सब, आये राजकुमार ॥
छोटे व बड़े सिलसिलेवार, एक क़तार में आ खड़े हुये ।
और लगे देखने जनता को, रणवीर उमँग में भरे हुये ॥
रैयत भी इनका वीर भेष, और सुघड़ रूप लख हर्षाई ।
जुग जुग जीवें सब राजकुंवर, ये आशिष दीन्ही मन भाई ॥
इनके एकत्रित होते ही, जोशीला बाजा बजने लगा ।
आगया जोश सब बच्चों को, कर हथियारों पर पड़ने लगा ॥
लख सभी तरह तैयार इन्हें, बोले गुरु कुछ आगे आवो ।
शारँग ले तीर चलाने की, फुरती हे शिष्यों दिखलावो ॥
होते ही हुक्म कुमार सभी, आकाश में बान चलाने लगे ।
कुछ ही क्षण में नभ मंडल में, शर ही शर दृष्टी आने लगे ॥

कब तीर निकाला कब ताना, कब छोड़ा दृष्टि न आता था।
हरएक धनुष से बाणों का, बस झुन्ड निकलता जाता था॥
बच्चों का अद्‌भुत कौशल लख, सारे नर नारी चकित हुये।
कुछ ऐसा इनका असर पड़ा, रह गये एक टक थकित हुये॥

बोल उठे फिर एक दम, धन्य धन्य ये काम।
धन्य हैं द्रोणाचार्य भी, जो गुरु हैं गुण धाम॥

गो दक्ष थे सभी चलानें में, पर पान्डु सुतों ने यश पाया।
जिसको सुनकर कुन्ती मां का, आनन्द से हृदय भर आया॥
ये हाल विदुर ने नृप से कहा, कुन्ती ने कहा गंधारी से।
जिसको सुन कर उन दोनों ने, दी अशीष बारी बारी से॥
फिर बोले गुरुवर शिष्यों से, पुत्रों अब शर न चलाओ तुम।
रथ पर चढ़ कर रण करने की, बस चतुराई दिखलाओ तुम॥

यों कहकर दो भाग में, बांटे सब शागिर्द।
लगे लड़न उत्साह से, फिर २ कर चौगिर्द॥

मच गई भयंकर गड़गड़ाट, स्यंदन चौतरफा फिरने लगे।
शर निकल निकल धनु डोरी से, दोनों भागों पर गिरने लगे॥
कोदंडों से शर छूट छूट, आपस में टकरा जाते थे।
लख ऐसी चतुराई दर्शक, सब वाह वाह फ़रमाते थे॥
फिर शुरू हुई घुड़दौड़ वहां, चलते चलते शर छोड़ते थे।
तोभी न वार खाली जाता, हर वार निशाना तोड़ते थे॥
चढ़ जाते कभी हस्तियों पर, और कभी रथों में घुस जाते।
कभि पैदल होकर लड़ते थे, यों रण कौशलता दिखलाते॥
आड़े टेढ़े तिरछे होकर, और कभी लेट कर धरनी पर।
वे करते थे आपस में वार, विस्मित थे दर्शक करनी पर॥
फिर आज्ञा हुई युधिष्ठिर को, इकला सब से संग्राम करे।
हो रथारूढ़ मैदान में आ, आचार्य का उज्वल नाम करे॥

आज्ञा पा कर मध्य में, हुये युधिष्ठिर वीर ।
घेर लिया सबने इन्हें, मार करी गम्भीर ॥
पर कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर ने, वो रण चतुराई दिखलाई ।
शिष्यों ने वस में करने को, की युक्ती काम नहीं आई ॥
फिरता है चाक कुम्हार का ज्यों, त्योंही ये यान घुमाते थे ।
एक एक बार में कई बाण, रख धनु पै शीघ्र चलाते थे ॥
धन्य धन्य कहने लगे, रंगभूमि के लोग ।
पर दुर्योधन आदि के, छाया मन में सोग ॥
श्रोताओं रखना याद इसे, अर्जुन इसमें नहिं शामिल थे ।
क्योंके हरएक बात में ये, शिष्यों से ज्यादा कामिल थे ॥
अस्तू इक ओर खड़े होकर, लखते थे सब की चतुराई ।
और स्वयम् परीक्षा देने की, दिखलाते थे आतुरताई ॥
जब युधिष्टिर को लड़ते लड़ते, आधा घंटा होने आया ।
और सब शिष्यों ने मिलकर भी, इनको वश में नहिं कर पाया ॥
तब गुरु ने ये रण बन्द किया, बोले तलवार निकालो सब ।
असि युद्ध की सकल कलाओं को, दिखलाओ ढाल सम्भालो सब ॥
आखिर कुछ अरसे खंग चला, बाजी सहदेव नकुल ने ली ।
दर्शक समूह ने हर्षित हो, जय बार बार इनकी बोली ॥
परसा, शक्ती, तोमर, त्रिशूल, इनके प्रयोग भी दिखलाये ।
हो खुशी गुरू ने आखिर फिर, श्रीभीम, सुयोधन बुलवाये ॥
गदा युद्ध का हुक्म दे, बैठ गये आचार्य ।
दोनों ने रंगभूमि में, शुरू कर दिया कार्य ॥
दायें बांये आगे पीछे, हटकर ये गदा घुमाते थे ।
लख इनकी लाघवता दर्शक मन ही मन में मुसकाते थे ॥
कुछ देर खूब ही वार हुये, लेकिन न कोई हटने पाया ।
ये बराबरी के दोनों ही, अस्तू यकसा बल दिखलाया ॥

यहां पक्षपात आरम्भ हुआ, दो भाग हुये दर्शक गन के ।
एक भीमसैन के साथ, एक, होगया साथ दुर्योधन के ॥
बोला यों एक भीम तुमने, दुर्योधन को पामाल किया ।
और कहा दूसरे ने वाहवा, दुर्योधन तुमने कमाल किया ॥
यों दोनों दल निज वीरों को, उत्साहित करते जाते थे ।
जिससे ये दोनों आपस में, बढ़ बढ़ कर मार मचाते थे ॥
होता है महाशब्द जैसे, गिर की चोटी ढह जाने से ।
वैसा ही यहां हुआ पैदा, आपस में गदा टकराने से ॥

दहलाये गुरु देखकर, शिष्यों का संग्राम ।
सोचा इससे होयगा, निश्चय दुष्परिणाम ॥

दोनों आपस में शत्रू हैं, ये एक दूसरे के कट्टर ।
तिसपर जनता वेफिक्री से, दे रही बढ़ावे हरषाकर ॥
होगया है सच्चा युद्ध शुरू, सम्भव है इससे हानी हो ।
बन जाय काम दुर्योधन का, या भीम हि की मन मानी हो ॥
अस्तू आचार्य महोदय ने, अश्वथामा को बुलवाया ।
झट बीच बचाव करो इनका, आतुर हो इससे फरमाया ॥
सुन हुक्म पिता का गुरु सुत ने, इनको लड़ने से रोक दिया ।
अरमान रहगये दोनों के, मजबूरन वापिस गमन किया ॥
अपने कर्तव्य दिखाने को, आखिर अर्जुन को हुक्म मिला ।
सूरज सम गुरु आज्ञा गिनकर, वो वीर कमल के सरिस खिला ॥
कस कमर धनुष ले त्रोण बाँध, धारन कर वस्त्र प्रभा वाला ।
रवि के समान तेजस्वी बन, रंगभूमि में आया मतवाला ॥
लख इन्हें खुशी का कोलाहल, छागया पुरुष महिलाओं में ।
बज उठे शंख भेरी मृदंग, रव हुआ तमाम दिशाओं में ॥
दर्शक गन एक दम बोल उठे, येही कुन्ती सुत अर्जुन हैं ।
तप, धर्म, वीरता, दया क्षमा, आदिक इनमें सारे गुन हैं ॥

जग में कोई है नहीं, इन समान बलवीर।
इनका भी कौशल लखो, मित्रों धर कर धीर॥
दर्शक गन कुन्तीनन्दन की, इस तरह बड़ाई करने लगे।
और जब ये सब खामोश हुये, तब पार्थ परीक्षा देने लगे॥
सब से पहिले दिव्यस्त्रों की, एक झलक दिखाई अर्जुन ने।
अग्नेय अस्त्र को तजकर के, अग्नी उपजाई अर्जुन ने॥
फिर वरुण बान से अग्नी को, बस क्षण भर में ही बुझा दिया।
छोड़ा फिर पवन बाण जिससे, सारे पानी को सुखा दिया॥
पर्वतास्त्र से पहाड़ रचा, अंतर से अंतरध्यान किया।
फैलाया तम, तम का शर तज, रवि अस्त्र से जोतिर्वान किया॥
भूमि अस्त्र छोड़ा जभी, फटी भूमि तत्काल।
सर्प अस्त्र से कर दिये, प्रगट हज़ारों व्याल॥
चकराये सारे दर्शक गन, लख नाग भयंकर भयकारी।
तब गरुड़ अस्त्र से अर्जुन ने, सर्पों की इतिश्री कर डारी॥
फिर इनको एक तरफ़ रखकर, साधारन सा धनुबान लिया।
फुरती से आगे पीछे हट, झट लक्ष बेधना शुरू किया॥
कभी हो सूक्ष्म स्थूल बनें, कभि चढ़ जावें रथ के ऊपर।
कभी घोड़े पर कभि हाथी पर, कभि फुरती से उतरें भू पर॥
हर दशा में लक्ष बेधते थे, कोई वार न खाली जाता था।
बुत बना हुआ दर्शक समूह, बस धन्य धन्य फ़रमाता था॥
फिर अधिक योग्यता दिखलाई, औरों से गदा चलाने में।
भाला, बरछी, तलवार आदि, तोमर के हाथ दिखाने में॥
लखकर कौशल जनता सारी, अर्जुन की प्रशंसा करने लगी।
इस तरह परीक्षा पूर्ण हुई, गति मन्द वायु की पड़ने लगी॥
इतने में रंगभूमि के, दरवाजे की ओर।
खंभ ठोकने का हुआ, शब्द अचानक घोर॥

दर्शक उठने ही वाले थे, लेकिन चकराये रव सुन कर ।
कुछ ऐसा कौतूहल उपजा, खिच गया सभी का ध्यान उधर ॥
आचार्य, द्रोण, कृप, भीष्म विदुर, ये भी विस्मय में भरे हुये ।
क्या बात है इसे जानने को, झट लगे देखने खड़े हुये ॥
क्या लखा द्वार वाला समूह, इत उत को हटता जाता है ।
और मध्य में एक सुडौल युवा, आगे को बढ़ता आता है ॥
था चहरा रवि सम कान्तिवान, श्रवणन कुंडल दमदमा रहे ।
कर में था एक विशाल धनुष, तरकस में शर चमचमा रहे ॥

लखते ही गुरु आदि ने, लिया इन्हें पहिचान ।
बोले ये तो कर्ण हैं, सूत पुत्र बलवान ॥

लेकिन जनता को खबर न थी, इसलिये इसे अचरज छाया ।
सोचा सूरज सम तेजस्वी, ये महावीर कहाँ से आया ॥
धन धन हैं मात पिता इसके, जिन ऐसा लड़का जाया है ।
भारत प्रदेश भी धन्य हुआ, ले जन्म जहाँ ये आया है ।
जिस समय कुन्ति ने लखा इन्हें, हरषाय गई पुलकाय गई ।
आनन्द के आँसू रवाँ हुये, चहरे पर सुर्खी छाय गई ॥
लेकिन ये हालत क्षणिक रही, दब गये भाव सब माता के ।
इतने में रविसुत वीर कर्ण, बस पहुँचे मंडप में आके ॥

किया नमन गुरु को मगर, तिरस्कार के साथ ।
दुर्योधन का प्रेम से, लिया हाथ में हाथ ॥

तारीफ श्रवण कर अर्जुन की, दुर्योधन मन में जलता था ।
किस तरह मिटे इसका कुल यश, इसकी ही चिन्ता करता था ॥
अस्तू रविसुत को देखत ही, ये कुटिल हृदय में हरषाया ।
और कुन्ती सुत के विरुध इन्हें, कह उल्टा सीधा उकसाया ॥
ये कर्ण भी पहिले ही से थे, अर्जुन पर कुछ कुछ जले हुये ।
दुर्योधन के बहकाने से, तत्काल क्रोध कर खड़े हुये ॥

और अर्जुन की जानिब मुड़के, बोले गुस्से से गरमा कर।
तू इस घमण्ड में मत रहना, नहिं है कोई मेरे हमसर॥
नादान अगर मैं चाहूं तो, तारों को शरसे भ्रष्ट करूँ।
हिमगिरि सम बृहत् पर्वतों को, इच्छा होते ही नष्ट करूँ॥
जल में थल, थल में जल करदूं, भूचाल बुलाऊँ भूमी पर।
तब मुझको कर्ण बली कहना, जब तुझे गिराऊँ भूमी पर॥
जो काम तैंने दिखलाये हैं, उनसे बढ़कर दिखलाता हूँ।
तेरा सारा यश सुयश कीर्ति, मिट्टी में अभी मिलाता हूँ॥

※ गाना ※

(तर्जः—सम्भालो तेगे अदा को ज़रा सुनो तो सही)

मेरे भुजबल की झलक तुझको दिखाता हूँ अभी।
गर्व सब तेरा कुछ ही क्षण में मिटाता हूँ अभी॥
तू ये गिनता है के जग में न मेरे सम कोई।
ऐसे अभिमान को मिट्टी में मिलाता हूँ अभी॥
तूने जो काम दिखाये हैं वे साधारण हैं।
उनसे भी बढ़ के तुझे काम दिखाता हूँ अभी॥
मुझको योंही न समझ शिष्य परसुधर का हूँ।
ध्यान से लख मेरा कौशल जो बताता हूँ अभी॥

ये सुनते ही पार्थ तो, हुये क्रोध से आग।
लेकिन दिखलाने लगा, दुर्योधन अनुराग॥
फिर रवि-सुत ने गुरु आज्ञा ले, जो जो अर्जुन ने काम किये।
उस से भी अधिक निपुणता से, झट पट उनको अंजाम दिये॥
ये लख दुर्योधन ने बढ़कर, इनको झट हृदय लगाय लिया।
और कहा तुम्हारे आगम से, हे वीर मैं अति हरषाय गया॥

मेरी क़िस्मत से आये हो, अस्तू निशि दिन यहाँ वास करो।
मुझको अपना प्रिय मित्र जान, रिपुओं का मेरे नास करो॥
सोच फिकर सब छोड़दो, दुर्योधन बलधाम।
आज्ञा दी जो आपने, वही करूँगा काम॥
फिर कहा पार्थ से मल्लयुद्ध, मैं तुमसे करना चाहता हूँ।
यदि ताक़त हो सन्मुख आवो, दंगल में तुम्हें बुलाता हूँ॥
मालुम हो कितनी शक्ती है, देखूँ कितने पानी में हो।
कुछ कौशल बाहू बल भी है, या वृथा हि जौलानी में हो॥
योंही अर्जुन थे अधिक, गुस्से से बेज़ार।
मल्लयुद्ध का नाम सुन, छाया जोश अपार॥
बोले चुप रह ओ सूतपुत्र, क्यों वृथा ही जान गमाता है।
मेरे बानों की अग्नी में, किसलिये पतंग बन आता है॥
नादान एक क्षण में तेरे. मस्तक को काट गिरा दूँगा।
अति घमंड से वक वक करना, दम भर में तेरा भुला दूँगा॥
यों कह, फुरती से अस्त्र फेंक, लंगोट लगाई अर्जुन ने।
"आजा जल्दी सन्मुख" बस ये, ललकार सुनाई अर्जुन ने॥
सुन इसे कर्ण झट खंभ ठोक, फौरन रंगभूमी में आया।
परिणाम सोच दर्शक समूह, वेचैन विकल हो घवराया॥
कुन्ती को जिस दम ज्ञात हुआ, रण होगा दोनों पुत्रन में।
घबराकर झट वेहोश हुई, आ गया पसीना सब तन में॥
ये देख विदुर ने फौरन की, तद्वीर होश में लाने की।
इस तरफ़ करी कोशीश तुरत, कृप ने ये रार मिटाने की॥
बोले कृप हे कर्ण तुम, ऐसे न हो अधीर।
लड़ो मगर रिपु का प्रथम, परिचय पालो वीर॥
सुनलो इन अर्जुन की बाबत, ये कौरव कुल में जाये हैं।
हैं मात पिता कुन्ती पान्डू, गुरु द्रोणाचार्य कहाये हैं॥

कर क्रोध शान्त, मन धीर धरो, अब और वृथा मत इतराओ।
ये करेंगे तुमसे मल्लयुद्ध, अपना परिचय भी बतलाओ॥
क्या नाम है मात पिताजी का, किस कुल में जन्म लिया तुमने।
है कहां तुम्हारी जन्मभूमि, और किसको गुरू किया तुमने॥
कारन, अर्जुन नृप के सुत हैं, यदि तुम भी राजकुंवर होगे।
सन्देह नहीं इनको रण में, निश्चय निज सन्मुख देखोगे॥
सुन वचन कर्ण ख़ामोश रहे, लेकिन दुर्योधन गरमाया।
कर अपने लोचन लाल लाल, झटपट कृप के सन्मुख आया॥
बोला क्या तुमको ज्ञात नहीं, नृप कितने माने जाते हैं।
एक राजकुंवर, दूसरा वीर, तृतियः सेनप कहलाते हैं॥
हैं कर्ण धनुर्धर महाबली, इनको राजा गिनना होगा।
कर कुल का ध्यान अलग इनसे अर्जुन को बस लड़ना होगा॥
यदि अर्जुन की ये इच्छा हो, मैं राजा ही से लड़ता हूँ।
तो अंग देश का राज तिलक मैं अभी कर्ण को देता हूँ॥

यों कह सिंहासन मँगा सजा साज तत्काल।
अंग देश का कर्ण को, बना दिया भूपाल॥

दुःशासन आदिक ने इनको, नजरें दी राजा बनने की।
फिर विनय करी दुर्योधन ने, प्रीती स्थापन रखने की॥
बोले रवि सुत हर्षा के मैं, आजन्म रहूँगा सखा तेरा।
जीतेजी कभी न भूलूँगा, ये कृपा तेरी अहसां तेरा।
प्रण[१] सुन दुर्योधन ने खुश हो, इनको हृदय से लगा लिया।
बस इस प्रकार से रवि सुत को, जीवन का संगी बना लिया॥

---

१ बस इसी प्रण के कारण कर्ण दुर्योधन का आजन्म मित्र बना रहा, यद्यपि कृष्ण आदि ने कई बार इसे त्याग करने की चेष्टा की परन्तु सब व्यर्थ हुई। यदि कर्ण दुर्योधन की तरफ न होता तो सम्भव था कि महाभारत का भयङ्कर युद्ध भी न होता क्योंकि दुर्योधन केवल इसी के भरोसे उछला था। भीष्म व द्रोण को भी वह तुच्छ समझता था अस्तु पाठक इस प्रण का ध्यान रक्खें।

इतने में रंगभूमि में, अधिरथ पहुँचा आय ।
पुत्र पुत्र कह कर्ण को, लिया हृदय लिपटाय ॥
ये देख भीम दुर्योधन से, बोले क्यों तैंने अकाज किया ।
एक सूत पुत्र को हर्षित हो, कुल अंग देश का राज दिया ॥
कितना ही ऊँचा उड़े गृद्ध, नहिं राज हँस कहलायेगा ।
त्यों नीच पुरुष नृप होकर भी, शुभ कुल का गिना न जायेगा ।
इसको न राज शोभा देता, कुल का ही काम चलाने दो ।
ये सारथि है अस्तू इसके, कर में चाबुक ही आने दो ॥
कहा सुयोधन ने तुझे, कहत न आई लाज ।
रवि-सुत को राजा बना, कैसे किया अकाज ॥
रे मूरख जिसने भृगुवर से, सम्पूर्ण अस्त्र विद्या पाई ।
जिसको अति ही चतुराई से, इस रंगभूमि में दिखलाई ॥
फिर जिसका तेजोमय चहरा, सूरज सम दृष्टी आता है ।
उस वीर कर्ण को तू कैसे, नीचे कुल का बतलाता है ॥
ये दिव्य कवच कुंडल समेत, और दिव्य धनुष ले प्रगटे हैं ।
इससे ये स्वयम् प्रकाशित है, किसी बड़े पुरुष के बेटे हैं ॥
केवल सारथि से पलने से, करना चहिये अपमान नहीं ।
क्या कीच में गिरकर हीरे की, होती है कीमत न्यून कहीं ।
रख याद मृगी से कभी नहीं, नाहर पैदा हो पायेगा ।
इसलिए कर्ण भी क्षत्री है, नहिं नीच कभी कहलायेगा ।
कुछ भी हो कर्ण बली से जो, रखता हो द्वेष निकल आवे ।
मैं उसे युद्ध में समझूंगा, चाहे ये जान रहे जावे ॥
योंहीं तर्क वितर्क मैं, अस्त होगया भान ।
सभा विसर्जन होगई, संध्या आती जान ॥
कौरव व पांडवों को तज कर, सब राजकुंवर गुरु को सिर ना ।
मय कर्ण बली के कुछ दिन में, पहुँचे अपने अपने घर जा ॥

फिर इक दिन अर्जुन आदिक को, गुरु ने आश्रम में बुलवाया।
और बोले गुरू दक्षिणा के, देने का अब अवसर आया॥
मैं चाहता हूँ रण करके तुम, द्रौपद को बाँध पकड़ लाओ।
हों सहाय तुम्हारे त्रिपुरारी, बस देर न करो चले जाओ॥
सुनते ही गुरु का हुकम, शिष्य हुये तैयार।
चले रथों मैं बैठकर, सँग ले कटक अपार॥
कुरुओं ने मन में ये सोचा, यदि हम द्रौपद को लायेंगे।
हमसे आचार्य खुशी होंगे, हम ही स्नेही बन जायेंगे॥
अस्तू ये चले शीघ्रता से, पांडव गन को पीछे छोड़ा।
पंचाल देश के गाँवों को, विध्वंस किया तोड़ा फोड़ा॥
अर्जुन ने सोचा द्रुपदराज, कमज़ोर नहीं अति बल रखते।
कौरव कितना भी यत्न करें, उनको रण में न हरा सकते॥
इसलिये उचित है हम सारे, पुर के बाहिर ही रह जावें।
थक जायं जिस समय कुरु गन सब, तब हम अपना बल दिखलावें॥
यही सोच कर रह गये, पीछे पांडव वीर।
कुरुओं ने पुर घेरकर, करी मार गंभीर॥
जब द्रौपद को ये ख़बर मिली, उस द्रोण के शिष्यों ने आकर।
सारी नगरी को घेर लिया, तब ये भी निकले गरमा कर॥
भिड़ते ही पंचालेश्वर ने, वह रण कौशलता दिखलाई।
छक्के छुट गये सुयोधन के, कुल कौरव सेना घबराई।
सुन आर्तनाद इस सेना का, अर्जुन रण को तैयार हुए।
सहदेव नकुल व वृकोदर भी, निज निज रथ पर असवार हुये॥
कर नमस्कार गुरु को मन में, चारों चल दिये कटक लेकर।
रह गये युधिष्टिर डेरे में, भ्राताओं के समझाने पर॥
फुरती से चलते हुए, श्री अर्जुन रणधीर।
मय भ्राताओं के तुरत, पहुँचे रिपु के तीर॥

लख कर इन चारों वीरों को, कुरुओं के जी में जी आया।
व्याकुलता दूर हुई सारी, चहरों पर अमित तेज छाया॥
डट गये फेर हिम्मत करके, अनगिनती शर छोड़ने लगे।
रिपुओं के हाथ, पांव, धड़, सिर, बेदरदी से तोड़ने लगे॥
इस समय वृकोदर क्रोधित हो, ले गदा शत्रु सन्मुख धाये।
कुछ वार किये इस फुरती से, कितने गिरते दृष्टी आये॥
काई सम द्रौपद सैन फटी, वीरों में हाहाकार हुआ।
ये लख कर पंचालेश्वर के, हृदय में क्रोध अपार हुआ॥

आगे रथ हकवाय कर, मारे तीक्ष्ण बान।
जिनसे घायल हो गये, भीमसैन बलवान॥

ये अर्जुन से देखा न गया, कर क्रोध कठिन शर सन्धाना।
द्रौपद की छाती को तक कर, कानों तक शारंग को ताना॥
फिर छोड़ा तीर निशाने पर, पर द्रुपद कूद कर दूर हुये।
लेकिन शर से सारथि घोड़े, मय रथ के चकनाचूर हुये।

चढ़े अपर रथ पर तुरत, श्री पंचाल भुवाल।
आये सन्मुख दौड़ कर, छोड़े वान कराल।

अर्जुन ने वृथा बना इनको, निज शर से घोड़ों को मारा।
और लगे हाथ सारथि को भी, कर प्राण हीन भू पर डारा॥
फिर रथ को भी विध्वंस किया, आपड़े द्रुपद धरनी तल में।
ये देख दौड़ कर अर्जुन ने, झट बाध लिया इनका पल में॥
कैदी बनते ही द्रौपद की, सब अकड़ एक दम चूर्ण हुई।
लेगये शिष्य गुरु पै इनको, इस तरह दक्षिणा पूर्ण हुई॥

देख द्रुपद को बंदि में, द्रोण गये हरषाय।
बोले प्रेम भरे वचन, कैदी से मुसकाय॥

हे राज-मदोन्मत्त राजा, अपमान का कैसा फल पाया।
जो पथ भिक्षुक था उसके ही, सन्मुख कैदी बन कर आया॥

है तेरा जीवन मम कर में, लेकिन नहिं प्राण हरूँगा मैं।
क्यों के तू है मम बालसखा, इसलिये प्रेम ही करूँगा मैं॥
होता है भूप का मित्र भूप, अस्तू ये बात विचारी है।
मैं अर्ध राज ले लेता हूं, और आधी भूमि तुम्हारी है॥
उत्तर पंचाल लिया मैंने, दक्षिण सब तुमको देता हूं।
आजन्म रहो अब सखा मेरे, हे भूप विनय ये करता हूँ॥
मजबूरन पंचालेश्वर ने, प्रस्ताव द्रोण का स्वीकारा।
बंधन से छुटकारा पाकर, चुपचाप नगर को पगधारा॥
पर अपनी ऐसी दुर्गति लख, द्रौपद को कष्ट अपार हुआ।
किस तरह द्रोण से बदला लूँ, बस येही फिक्र सवार हुआ॥
सब विधि सोचा तो भी न इन्हें, कोई युक्ती दृष्टी आई।
तब हो हताश घर तज वन में, बस लगे घूमने नरराई॥

इक दिन एक कुटीर में, गये द्रुपद महाराज।
रहते थे यहाँ विप्र दो, याज और उपयाज॥

इनके ढिंग जा पंचालेश्वर, बोले हे मुनिवर ध्यान धरो।
सुन तुम्हें समर्थ यहाँ आया हूं, अभिलाषा मेरी पूर्ण करो॥
मैं चाहता हूं एक पुत्र प्रभो, जो बाहू बल की खानी हो।
सुन्दर हो और जिसके द्वारा, श्री द्रोण की जीवन हानी हो॥

※ गाना ※

(तर्ज़-प्रभु अब तो मेरे सहारे तुम्हीं हो)

शरण में गहूं किसकी हे नाथ जाकर,
समझ तुमको ही श्रेष्ठ आया यहांपर।
हुआ द्रोण को गर्व गुरुत्व का अपने,
किया मेरा अपमान ताना सुनाकर।

अनादर से मुझको हुआ दु:ख भारी,
मिटाओ उसे नाथ मुझपै दया कर।
अगर प्रार्थना मेरी बेकार होगी,
तो फिर क्या करूंगा मुंह जग को दिखाकर।

बोले मुनि हो जायगा, ऐसा एक कुमार।
जोके द्रोणाचार्य को, रण में डाले मार॥
नगरी में चल कर यज्ञ रचो, एक सुन्दर शाला बनवाओ।
आवश्यक वस्तू संग्रह कर, अभिलषित कार्य में लग जावो॥
ये सुन मुनि को संग ले नृप ने, घर आकर यज्ञ किया जारी।
इसके प्रभाव से राजा के, प्रगटे दो सुत एक सुकुमारी॥
हुआ प्रगट जिस समय में, प्रथम पुत्र रणधीर।
हुई तुरत उस वक्त ही, गगन गिरा गम्भीर॥
पंचाल देश की यह बालक, सर्वत्र कीर्ति फैलावेगा।
इसके बल विक्रम के आगे, कोई न ठहरने पावेगा॥
तप में, यश में बाहूबल में, ये तुम सब का श्रृंगार हुवा।
'गुरु' मरेंगे इस ही के कर से, बस इसीलिये अवतार हुआ।
ये सुनके सब आनन्द हुये, और लगे बजावन नक्कारे।
वो घोर कठोर अति शोर हुआ हिलगई भूमि नभ में तारे॥
रख नाम पुत्र का * धृष्टद्युम्न", छाती से नृप ने लगा लिया।
फिर कुछ अरसे में राजा को, एक और पुत्र ने दर्श दिया॥
लख इसे मनोहर कान्तिवान, होगये अनन्दित नृप रानी।
इतने में फिर सुन पड़ी वही, दुख शोक निवारन नभ वानी॥
सोच फिक्र सब छोड़ दो, सुनो लगाकर कान।
इसके द्वारा होयगी, भीष्म प्राण की हानि॥

---

* धृष्टद्युम्न ने किस प्रकार अतुल पराक्रमी गुरुवर द्रोणाचार्य का वध किया इसका सम्पूर्ण वृत्तान्त जानने के लिये पाठकों को 'द्रोण व कर्ण वध' नामक उर्दूमिश्रित हिन्दी पढ़ना चाहिये।

ये पूर्व जन्म की अंबा है, काशी नृप की पुत्री प्यारी।
जो हरी थी भीषम ने लेकिन, नहिं किया विवाह रहे ब्रह्मचारी॥
जिससे क्रोधित हो बन में जा, इसने तप करना शुरू लिया।
'भीषम मेरे हाथों से मरे', इस प्रकार का वरदान किया।
इसके सन्मुख आते हि भीष्म, पुरुषार्थ न कुछ कर पावेंगे।
हो तेज हीन भग्नोत्साह, फिर अन्त में मारे जावेंगे॥
ये सुन सोचा होता है वही, जो होय इरादा जगपति का।
इसके उपरान्त नाम झटपट, रख दिया "शिखंडी" ही सुत का॥
इसके पीछे उत्पन्न हुई, लावण्य मई एक सुकुमारी।
तनकी द्युति ऐसी थी मानो, खिल रही चन्द्र की उजियारी॥

फिर अकाश वानी हुई, हरन शोक सन्देह।
यह कन्या देवांगना, प्रगटी धर नर देह॥

है श्रेष्ठ सुलक्षणि ये पुत्री, देवों का काम बनावेगी।
क्षत्रियों को भयदाई होगी, कौरव कुल ध्वंस करावेगी॥
धरणी जब नाट्य भूमि बनती, धरणीधर अभिनय करते हैं।
तब निज माया कारण स्वरूप, लीलाधर आगे रखते हैं॥
इसको माया का अंश गिनो मायापति भी आजावेंगे।
शक्ती की ओट में शक्तिईश, पृथ्वी का भार हटावेंगे॥
ये सुनकर 'द्रुपद' अनन्द हुये, चातक को स्वाती बूंद मिली।
सब शोक नाश को प्राप्त हुआ, खिल गई हृदय की कली कली॥
"द्रौपदी" द्रुपद ने नाम धरा, मुख चूंम सुता को अपनाया।
दूसरा नाम "कृष्णा" रक्खो, ये वाक्य गुरू ने फ़रमाया॥

मिटा द्रुपद का इस तरह सारा रंज मलाल।
"श्रीलाल" चित दे सुनो, हस्तिनापुर का हाल॥

॥ इति श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

महाभारत ॐ चौथा भाग

पांडवों पर अत्याचार

श्रीलाल

महाभारत चौथा भाग

पांडवों पर अत्याचार

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—

महाभारत पुस्तकालय, अजमेर.

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

द्वितीयावृत्ति २००० | विक्रमी सम्वत् १९९३ ईस्वी सन् १९३६ | मूल्य ।-) आने

❀ प्रार्थना ❀

दया दीनों पै तनिक करना दयामय भगवन् ।
दुःख दुनिया के सकल हरना दयामय भगवन् ॥
आपकी भक्ति बिना हम नितान्त पापी हैं ।
भक्ति की शक्ति हृदय भरना दयामय भगवन् ॥
क्लेश पाया है सदां फँसके जगत बंधन में ।
कृपा का शीश पै कर धरना दयामय भगवन् ॥
सुनते आये हो सदां टेर इसी से हमने ।
लिया है आपका अब शरण दयामय भगवन् ॥

मङ्गलाचरण

रक्ताम्बर धर विघ्न हर, गौरीसुत गणराज ।
करना सुफल मनोर्थ प्रभु, रखना जन की लाज ॥
सृष्टि रचन, पालन, हरन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश ।
वानी, रमा, उमा सुमिल, रक्षा करहु हमेश ॥
बन्दहुं व्यास विशाल बुधि, धर्म धुरंधर धीर ।
महाभारत रचना करी, परम रम्य गम्भीर ॥
जासु वचन रवि जोति मम, मेटत तम अज्ञान ।
बन्दहुं गुरु शुभ गुण भवन, मनुजरूप भगवान ॥

* ॐ *

नारायणं नमस्कृत्य, नरंचैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं, ततो "जय" मुदीरयेत् ॥

❀ कथा प्रारम्भ ❀

सम्मानित हो भूप से, गुरुवर द्रौणाचार्य ।
चले गये निज राज को, जाय संभाला कार्य ॥
गंगतनय की मदद से, धृत्तराष्ट्र महाराज ।
करते थे आनन्द से, हस्तिनापुर का राज ॥
शस्त्र परिक्षा से प्रथम, था रैयत का ख़्याल ।
कौरव, पांडव दो नहीं, एकहि तरु की डाल ॥
पर जब से पांडु-कुमारों ने शस्त्रों का परिचय दिखलाया ।
उस ही दिन से हस्तिनापुर में, सर्वत्र इन्हीं का यश छाया ॥
फिर किया क़ैद भुजबल दिखला जब द्रौपद को भीमार्जुन ने ।
हो गई मुग्ध जनता इन पर, अति स्नेह हुआ सब के मन में ॥
इसके अतिरिक्त युधिष्ठिर का, लख स्वभाव सब हरषाते थे ।
युवराज बन ये शीघ्रहि अब, अस उत्कंठा दिखलाते थे ॥
गलियों बज़ारों कूचों में, कहते थे सारे पुरवासी ।
पांडु नन्दन ही सबसे बढ़, हैं तेजस्वी और गुणरासी ॥
हैं कौरवगन दुर्बुद्धि दुष्ट, पापात्मा और कुविचारी हैं ।
यदि दुर्योधन को राज मिला, दुःखों से लुटना भारी है ॥
धृत्तराष्ट्र के गुप्त चर, फिरते थे दिन रात ।
एक दिवस महाराज को, जाय कही ये बात ॥

अब तक महाराजा धृत्तराष्ट्र, पांडवों पै प्रेम दिखाते थे।
उनकी सर्वत्र बड़ाई सुन, मनमें अतिशय हरषाते थे॥
पर अब हो उठा असह्य इन्हें, पांडू पुत्रों का बढ़जाना।
सोचा मम पुत्रों को निश्चय, अब पड़ेगा जग में दुख पाना॥
क्या करूं यत्न जिससे मेरे, सुत तो सबके प्रिय होजावें।
दबजायँ भतीजे बिल्कुल ही, कोई नहिं इनके गुण गावें॥
हर तरह विचार किया इसका, लेकिन न युक्ति दृष्टी आई।
सारा आराम तमाम हुआ, गत धीर होगये नरराई॥

आखिर नृप ने हो दुखी, एक दूत भिजवाय।
'कणिक' नाम के मंत्रि को, लिया शीघ्र बुलवाय॥

और कहा हे मंत्रि, पांडवों को, चाहती है प्रजा सच्चे दिल से।
उनके ही गुण यश, कीर्त्ति, धर्म, गाती है प्रजा सच्चे दिल से॥
दुर्योधन आदिक भ्राता गण, कांटे के सरिस खटकते हैं।
कब मिले युधिष्ठिर को पदवी युवराज की येही तकते हैं॥
तुम हो नीतिज्ञ अस्तु कहदो, किमि पांडु-सुतों का यश जावे।
और कैसे मेरे पुत्रों को, जनता खुश होकर अपनावे॥

कहो मुझे समझाय कर, राजनीति का सार।
करें किम तरह से नृपति, रिपुओं से व्यवहार॥

था कणिक विलक्षण बुद्धिमान, कुल राज नीति का ज्ञाता था।
उस समय के सब नीतिज्ञों में, बस यही श्रेष्ठ कहलाता था॥
इसने जो कुछ उपदेश दिया, लख कर राजा को आरत में।
वह कणिक नीति कहलाता है, और है प्रसिद्ध सब भारत में॥
सुन वचन वह बोला हे भूपति, कर शांत हृदय को ध्यान धरो।
मैं कूट नीति बतलाता हूँ, उनके माफिक ही काम करो॥
नृप को चहिये निज रिपुओं के, छिद्रों का पता लगाता रहे।
और अपने दोषों को सब की, दृष्टी से नित्य छिपाता रहे॥

यदि नाश करे निज शत्रू का, आधा करके छोड़े न कभी ।
जब तक समूल वह नष्ट न हो, तब तक मुंह को मोड़े न कभी ॥
वरना आधा निकला कांटा, जैसे अति दुख पहुँचाता है ।
त्योंहीं अध कुचला हुआ शत्रु, पा समय काल बन जाता है ॥
यदि किसी समय अन्धा बहिरा बनना होता हो सुखदाई ।
तो तदनुसार व्यवहार करे, शरमावे कभी न नरराई ॥

जिमि बहेलिये हरिन के, बधने की कर आश ।
सोजाते हैं झूंठ ही बिछा घास चहुं पास ।

जिस समय हरिण हर्षित होकर, तृण को चरने वहां आता है ।
लख उसे शिकारी फौरन ही, भूमी पर मार गिराता है ॥
बस इसी तरह धोका देकर, शत्रू को अपनाना चहिये ।
आजाय जिस समय कर में वह, तब दया न दिखलाना चहिये ॥

छल बल कौशल से जभी, रिपु निज बस में होय ।
उसी समय मारे तुरत, चतुर कहावे सोय ॥

यदि किसी समय निज ताक़त से शत्रू मस्तक पर चढ़ जावे ।
तो लाज़िम है उसको लेकर, नाचे पर शोक न दिखलावे ॥
पर अपना अवसर आते ही, वो हाल करे निर्दय होकर ।
जो हाल घड़े का होता है, पत्थर से टकराजाने पर ॥

केवल रण से ही नहीं, रिपु को वधे नरेश ।
साम दाम और भेद का, भी रह ध्यान विशेष ॥

आजाय क्रोध यदि शत्रू पर, चहिये नहीं उसे प्रगट करना ।
जो कुछ कहना चाहे उसको, चहिये हँसते हँसते कहना ॥
जबतक न उचित अवसर देखे, रिपु के सन्मुख मस्तक नावे ।
बोले मीठे और मधुर वचन, कई प्रकार की क़समें खावे ॥
कर जोड़े खड़ा रहे हरदम, निशदिन उसके गुण गान करे ।
आसन दे स्वच्छ बैठने को, अपने घर का महमान करे ॥

पर ठीक समय के आते ही, निज शांत भाव सब तज डारे।
विकराल काल की मूरति बन, तत्कालहि शत्रू को मारे॥
चाहे शत्रू का बध करना, करलिया हो निश्चय निज मनमें।
तोभी मृदु बोले, गुस्से को, आने दे कभी न नैनन में॥
जिस समय प्रहार करे तब भी, मृदुता न कभी अपनी खोवे।
यहां तक जी ले चुकने पर भी, अति शोक प्रकाश करे रोवे॥
यदि पुत्र मित्र भाई बांधव, और स्वयम् गुरु भी शत्रु बने।
तो नृप को चहिये उनको भी, बधने में कोई दोष न गिने॥
पहिले तो इनको समझावे उपदेश दे सत पर चलने का।
यदि फिर भी विचलित देखे तो, झट करे यत्न बध करने का॥

कर अवलम्बन नीति का, करो काम भूपाल।
रिपुओं को बढ़ने न दो, करो नष्ट तत्काल॥

यदि इसमें कुछ आलस्य किया, निश्चय जानो हानी होगी।
कौरवगन राज न पावेंगे, पांडवों की मनमानी होगी॥
दिन पर दिन जोर पकड़ते वे, प्रिय प्रजा के बनते जाते हैं।
और आप समर्थ होकर भी नृप, शुभ समय को खोते जाते हैं॥
है उचित मंत्रियों को बुलवा, जल्दी ही सोच विचार करो।
करके एक पक्की राय भूप, बस रिपुओं का संहार करो॥

यों कह ले आज्ञा कणिक, चला गया निज धाम।
हुआ सोच धृतराष्ट्र को, करें किस तरह काम॥

पांडवों को पापाचरणों से वे नष्ट न करना चाहते थे।
पर निज पुत्रों को राज से भी, वंचित नहिं रखना चाहते थे॥
था उन्हें ज्ञात, पांचो भाई, सत पथ पर चलने वाले हैं।
जिनमें से जेठ युधिष्ठिर तो, नहिं धर्म से टलने वाले हैं॥
करते हैं सब मेरा आदर, निज पिता समान जानते हैं।
उनके उत्तम आचरण देख, यश मिलकर सभी बखानते हैं॥

हैं सर्व प्रजा प्रिय पांडुपुत्र, किस तरह हटाये जावेंगे।
यदि यहां रहे तो किस प्रकार, मम पुत्र राज को पावेंगे॥
इसी सोच और फिक्र में, धृतराष्ट्र महाराज।
रहें मग्न आठों पहर तज कर सारा काज॥
जब दुर्योधन को ज्ञात हुआ, हस्तिनापुर की रैयत सारी।
गाती है पांडवों का ही गुण, तब इसको सोच हुआ भारी॥
एक दिवस देख उत्तम अवसर, ये पहुँचा पास पिता जी के।
और बोला अब दुर्दिन आये, हे पिता गये अब दिन नीके॥
रैयत की उल्टी बातें सुन, ये हृदय बहुत दुख पाता है।
हद दरजे की हठ-धर्मी लख, गुस्सा भी बढ़ता आता है॥
दुर्भाग्य से एक समय तो तुम, हालां के सब से जेठे थे।
तो भी भारत सिंहासन को, अपने कर से खो बैठे थे॥
दैवयोग से मिल गया, तुमको अब फिर राज।
तौ भी रैयत चाहती, करना फेर अकाज॥
कहती है पुत्र पांडु का ही, है राज पाट का अधिकारी।
धृतराष्ट्र का कुछ भी ज़ोर नहीं, पांडू की है भूमी सारी॥
क्यों नहीं वो जल्द युधिष्ठिर को इस पुर का भूप बनाता है।
इस राज्य की ममता में फंसकर, अंधा अंधेर मचाता है॥
श्री भीष्म पितामह और विदुर, जो वयो वृद्ध कहलाते हैं।
वे भी रैयत के माफिक़ ही, अपने विचार दरसाते हैं॥
विकट समस्या आपड़ी, किस विधि होगा काज।
कहो पिता अब किस तरह, बनूंगा मैं युवराज॥
यदि इस अवसर पर पांडु-पुत्र, यहां के राजा बन जायेंगे।
तो फिर बस उनके ही वंशज, भारत के भूप कहायेंगे॥
और रक्त तुम्हारे होकर भी, हम कभी न होंगे अधिकारी।
एक तुच्छ हीन नौकर समान, बस उम्र बितायेंगे सारी॥

पर दुर्योधन उनका अन खा, नहिं कभी गुज़र करने वाला ।
क्यों के पाता दुख नरक सरिस, नर पराधीन रहने वाला ॥
अस्तू वो यत्न करो जिस से, दुख से छुटकारा पाऊं मैं ।
हस्तिनापुर का युवराज होय, जीवन सानन्द बिताऊं मैं ॥
इस समय आप महाराजा हैं, जिस को चाहें भूपाल करें ।
जो नज़रों में खटके उसको दे कड़ा दंड बेहाल करें ॥

उदासीन अब मत रहो, झटपट करो विचार ।
सुत के दुख को मेटना, ही है धर्म तुम्हार ॥

प्रिय सुत की आरत वाणी सुन, नृप के मन में पातक छाया ।
लेकिन अन्याय पांडुओं पर, करने को हृदय नहीं चाया ॥
और कहा हे सुत कुछ खबर भी है, पांडू की जो मम भाई थे ।
थे धर्मवान, नीतिज्ञ, बली, न्यायी, सबको सुखदाई थे ॥
लख उनकी न्याय परायणता, रैयत अब तक गुन गाती है ।
वे ही गुण देख युधिष्ठिर में, इसको भी मन से चाती है ॥
फिर सच पूछो तो अधिकारी, इस राज का पुत्र युधिष्ठिर है ।
तू वृथाहि द्वंद मचाता है, तव बुद्धि मलिन और अस्थिर है ॥

* गाना *

(तर्ज—छोड़ भारत को गये आज वे बनवार कहां)

राज जिनका है वेही राज पुत्र पायेंगे,
जिनका अधिकार नहीं किस वे नृप कहायेंगे ।
बुराई हमने यदि उनके साथ की बेटा,
बली हैं फेर वे क्यों अपना हक गमायेंगे ।
अन्तु मन बैर न तो नित के सदा उनसे रहो,
वरना बच्चो वे फिर झगड़े झट बढ़ायेंगे ।

फूट तुम मे जो हुई तो ये बात सच जानो,
शत्रु चूकेंगे नहीं शीश पै चढ़ आयेंगे ।
इसलिये राज दो उनको व रहो आनँद में,
ऐकता मे जो है वो फूट मे न पायेंगे ।

थाती मेरे पास है, पांडु भ्रात का राज ।
उस के सुत को सौंपना, ही होगा शुभ काज ॥
दे जगह पाप को हिरदय में, यदि तुझे राज दे डालूंगा ।
और असली वारिस को छल से, इस पुर के बाहर निकालूंगा ॥
तो सत्य जान अपने मनमें, पुर जन गुस्से हो जावेंगे ।
जिसका फल निश्चय यह होगा, हम लोग जहां से जावेंगे ॥
अस्तू यदि बुरा लगे जीना, तब तो गद्दी पर पांव धरो ।
वरना ऐसे मैले विचार, मनसे निकाल कर अलग धरो ॥
बोला दुर्योधन लड़े प्रजा, हमसे वह उसमें ताब नहीं ।
इसका ज़िम्मा मैं लेता हूं, बस बनें आप बेताब नहीं ॥
जैसे हो इस नगरी से तुम, पांडवों का मुंह करदो काला ।
फिर लखना मेरा भी कौशल, मैं भी कैसा हूं गुण वाला ॥
धनवालों को मान दे, निर्धन को धन दान ।
अपने ऊपर कुल प्रजा, करूं प्रसन्न महान ॥
जब समझेंगे सारी रैयत, तन मन से मुझको चाहती है ।
मैं भूप बनूं ऐसी इच्छा, यदि हृदय से वो जतलाती है ॥
बस उसी समय एक उत्सव कर, मुझको तो राज पाट देना ।
और छल से पांडु-कुमारों के, जीवन की डोर काट देना ॥
अब सुनो कौनसी जगह पिता, उन सबको भिजवाना होगा ।
कैसी विश्वस्त बात कह कर, उनका मन बहलाना होगा ॥

यहां से थोड़ी दूर है, वर्णावत एक ग्राम ।
उत्सव तहां महेश का, होगा बहुत ललाम ॥
उस जलसे में जाने के लिये, पांचों को तुम मजबूर करो ।
वहां की हर तरह प्रशंसा कर, मन ललचा उनको दूरकरो ॥
बस इतना काम बनाओ तुम, आगे का मैं कर डालूंगा ।
किस आसानी से रिपुओं को, देखना जहां से टालूंगा ॥
यदि इतना भी नहिं काम हुआ, तो दुर्योधन मर जायेगा ।
अब तो तम आंखों में ही है, फिर हृदय में भी छायेगा ॥
अस्तु बात मम मानकर करो पिता तुम काम ।
शक न किसी को होयगा, सुख होगा परिणाम ॥
यों कह दुर्योधन चला गया, राजा को फिक्र हुआ भारी ।
सोचा अब खैर न दिखलाती, आ पड़ी घास में चिनगारी ॥
हा ! घर ही के दीपक से घर, अब नष्ट भ्रष्ट होने को है ।
होनी वश अब ये कौरव कुल, सारा वैभव खोने को है ॥
दुर्योधन की बातें सुन कर, इतना तो मुझे यक़ीन हुआ ।
पांडवों से नेह रखना उसके, दिल से अब पूर्ण विलीन हुआ ॥
यदि हुआ न उसके मन माफिक़, निश्चय मरने की ठानेगा ।
है ज़िद्दी अव्वल दर्जे का, कहने से कभी न मानेगा ॥
अन्याय पांडवों संग करते, हृदय तो दहशत खाता है ।
पर बेबस हूं ये पुत्र प्रेम, उलटे मग पर ले जाता है ॥
ये विचार धृतराष्ट्र ने, पांडव लिये बुलाय ।
आने पर उनके कहा, मनमें अति हर्षाय ॥
पुत्रों वर्णावत नगरी में, उत्सव होगा त्रिपुरारी का ।
भूतेश्वर अखिलेश्वर, शंकर, गिरजापति श्री कामारी का ॥
यदि इच्छा हो वहां चले जाव. शोभा लग्व मन को बहलाना ।
जिस समय वहां से मन उचटे, वापिस हस्तिनापुर आजाना ॥

चतुर युधिष्ठिर एक दम, समझ गये सब हाल ।
सोचा निश्चय होयगी, अपने सँग कुछ चाल ॥
पर बुड्ढों की आज्ञानुसार, चलना ही धर्म हमारा है ।
कर्तव्य पालने वाले का, जगदीश सदा रखवारा है ॥
कर ये बिचार नृप आज्ञा का, आदर पितु आज्ञा सरिस किया ।
कर जोड़ खुशी से वर्णावत, पुर में जाना स्वीकार लिया ॥
दुर्योधन को जब खबर मिली, पांडव वर्णावत जावेंगे ।
श्री विश्वनाथ का उत्सव लख, सुख से कुछ दिवस बितावेंगे ॥
ये सुन पापी ने हरषाकर, एक चतुर मंत्रि को बुलवाया ।
जिसका के नाम पुरोचन था, और हाथ पकड़ यों समझाया ॥
मंत्री तुमको मंत्रि नहीं, समझूं भ्रात समान ।
कहूं सलाह की बात इक, सुनो लगा कर कान ॥
तुम सम विश्वासपात्र जग में, मैं नहीं किसी को पाता हूँ ।
बस इसीलिये तुमको भाई, एक गुप्त बात बतलाता हूं ॥
तुमको मालुम है पिता मेरे, हैं हस्तिनापुर के महाराजा ।
तब इसमें कुछ सन्देह नहीं, मैं अवश्य बनूंगा युवराजा ॥
रहती है अग्नि काष्ट में जिमि, पर दृष्टि कभी नहिं आती है ।
लेकिन मौक़ा पाते ही वह, उस काठ को खाक बनाती है ॥
हैं इसी तरह इस राज के भी, शत्रू पर प्रगट न होते हैं ।
बस इसे नष्ट करने के लिये, चुपचाप बाट वे जोते हैं ॥
हैं ज़ाहिर में सीधे साधे, सब लोगों के प्रिय धर्मात्मा ।
लेकिन असलियत में बिल्कुल ही, हैं नर-राक्षस और पापात्मा ॥
चाहता हूँ ऐसे पुरुषों को, मैं झटपट यमपुर भिजवाना ।
जिससे आगे को पड़े नहीं, मुझको उनसे फिर पछताना ॥
लो नाम शत्रुओं के सुनलो, वे पांचों पांडव भाई हैं ।
बस इनका ही वध करने की, एक बात मैंने ठहराई है ॥

वर्णावत पुर जायेंगे, शिव उत्सव में भ्रात ।
वह ही उत्तम ठौर है, करो वहीं तुम घात ॥
तुम आजहि वर्णावत जाकर, कुछ ऐसी चीजें मंगवाओ ।
छूतेहि आग जो भड़क उठें, फिर उनसे ग्रह एक बनवाओ ॥
सब प्रकार उसको सजवा कर, पांडवों को वहीं बुलालेना ।
फिर एक दिन जब वे सोते हों, उस घर में आग लगा देना ॥
यों होंगे भस्म सकल भाई, मेरा सब भय मिट जावेगा ।
सब जानेंगे संयोगहि था, शक कोई भी नहिं लावेगा ॥
पर सावधान इस चर्चा को, ज़ाहिर न किसी पर कर देना ।
इस काम की ऐवज़ में मुझ से बहु मूल्य रत्न तुम ले लेना ॥
सुन वचन पुरोचन पापात्मा, वरणावत नगर चला आया ।
अग्नी संदीपक चीज़ें ले, एक घर अति उत्तम बनवाया ॥
कुछ दिन पीछे देख कर, शुभ महूर्त सब भ्रात ।
उत्सव लखने के लिये, चले संग ले मात ॥
गुरुजनो को आदार से सिर ना, अतिहित से आशिर्वाद लिया ।
फिर चढ़कर अति उत्तम रथ पर, वरणावत पुर प्रस्थान किया ॥
पांचों को अचानक जाते लख, घबराये सारे पुरवासी ।
सोचा क्यों भेजे जाते हैं, वरणावत पुर ये गुणरासी ॥
मालुम होता है दुर्योधन, चलना चाहता है चाल कोई ।
इन को दुख पहुँचाने के लिये, बांधा है नीच ख़याल कोई ॥
कुछ भी हो जहां रहेंगे ये, हम भी तहां भवन बनायेंगे ।
जीते जी इन लोगों के पद, हरगिज़ न तजेंगे जायेंगे ॥
वचन प्रजा के कर श्रवण, रुके युधिष्ठिर वीर ।
संबोधन करके इन्हें, कही गिरा गंभीर ॥
हे पुर वालों नृप आज्ञा से, हम उत्सव लखने जाते हैं ।
क्यों घबराते हो कुछ दिन में, वापिस यहां लौट आते हैं ॥

उनकी आज्ञा पालन करना, हम अपना धर्म समझते हैं ।
जब से पितु का देहान्त हुआ, नृप को ही पितु सम गिनते हैं ॥
देकर शुभ आशिर्वाद हमें, जाओ घर मतो बिगाड़ो चित ।
जब हमें पड़े आवश्कता, करना उस समय हमारा हित ॥

*** गाना ***

(तर्ज—मुझ अंदलीबेज़ार की हसरतों ने गर मिटा दिया)

लोगो हमारे वास्ते, आंसू बहाते किस लिये ।
इसमे हमारा बस न फिर, रोते रुलाते किस लिये ॥
जाओ भवन को धीर धर, हुक्म हमारा मानकर ।
आयेंगे कुछ दिनो मे हम, घर न सिधाते किसलिये ॥
राजा का हुक्म है यही, बरनावत जाओ आज ही ।
गिनके हम इसको धर्म निज, फिर न निभाते किसलिये ॥
भाग्य मे कुछ लिखा है जो, मिटता नही मिटाये वो ।
इसको हृदय मे सत्य गिन, शोक मनाते किसलिये ॥
रक्षक हमारा श्याम है, उसही का लब पै नाम है ।
लाज है उसको फेर तुम, धीर न लाते किसलिये ॥
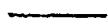
विदा हये पुरजन सभी, मन में होय उदास ।
इतने में आते तुरत, विदुर इन्हों के पास ॥
जो रचा था जाल सुयोधन ने, वह ज्ञात था इन गुणज्ञानी को ।
अस्तू आते ही कहन लगे, हे पुत्र सुनो मम वाणी को ॥
पर बोले विदुर म्लेच्छ भाषा, डर था कोई जासूस न हो ।
था जिसका सार, "शत्रुओ से. गाफिल न बनो हुशियार रहो" ॥
कहा युधिष्टिर ने चचा, समझ गया सब हाल ।
कामयाब होगी नहीं, अब रिपुओं की चाल ॥

यों कह इनको आज्ञा लेकर, चल दिये युधिष्ठिर गुणरासी।
आ पहुँचे वरणावत ये सब, लख इनको हरषे पुरवासी॥
आनन्द से अगवानी कर के, एक उत्तम घर में ठहराया।
फिर पुर की अद्भुत चीज़ों को, अति प्रेम से इनको दिखलाया॥
मिला पुरोचन एक दिन, इन लोगों से आय।
प्रेम प्रकट कर लेगया अपने संग लिवाय॥
ले गया उसी घर में पापी, जो रचा था इन्हें जलाने को।
यहां ला अति सेवा करने लगा, उनको विश्वास दिलाने को॥
पापी ने निज तन मन लगाय, कीन्ही वह उत्तम सेवकाई।
जिस को विलोक कर मातु सहित हो गये अनंदित सब भाई॥
एक समय आनन्द से, बैठे थे सब भ्रात।
इतने में लख महल को, बोली कुंती मात॥
बेटा इस घर को देख देख, हृदय आनन्द से खिलता है।
पर घृत की बू आती है यहां, इस का न भेद कुछ मिलता है॥
सुन वचन युधिष्ठिर कहन लगे, होकर उदास निज माई से।
हे मा ये आग्नेय घर है, पर बना है उत्तमताई से॥
जितनी चीज़ें यहां दृष्टि पड़ीं, छूतेहि आग जल जावेंगी।
फिर चाहे यत्न सैकड़ों हों, हरगिज़ नहिं बुझने पावेंगी॥
ये नहिं है उत्तम घर माता, समझो धोखे का जाल इसे।
उस पापात्मा दुर्योधन की, बस जानो उत्तम चाल इसे॥
ले मदद पुरोचन की वो खल, बस हमें भस्म करना चाहता।
हम उसके पथ के कांटे हैं, इसलिये प्राण हरना चाहता॥
हे मात विदुर जी ने मुझको, यहां आते समय बताया था।
रहना हुशियार शत्रुओं से, ऐसा आदेश सुनाया था॥
सुनते ही वचन युधिष्ठिर के, कुन्ती माता दहलाय गई।
होगई रवां अश्रु धारा, चेहरे पर सुस्ती छायगई॥

बोली हे जगदीश्वर हमने, ऐसे क्या पाप कमाये हैं।
जिनके प्रतिफल की ऐवज़ में, ये हाय बुरे दिन आये हैं॥

* गाना *

(तर्ज—कोई घडी न चैन की आई तमाम रात)

किस्मत ने रंग क्या क्या दिखाये मेरे प्रभो।
जिनका न ध्यान था वे दिन आये मेरे प्रभो॥
इस उम्र मे किसी का कभी ना दुखाया दिल।
किन पातको के फल हा ये पाये मेरे प्रभो॥
जो है असल नरेश रहे वे तो दीन सम।
फिरते है गैर मूछ चढ़ाये मेरे प्रभो॥
और चाहते है दग्ध करे अग्नि से हमे।
इस वात ने हा प्राण सुखाये मेरे प्रभो॥
मुझको न राज चाहिये हे दीनवंधु श्याम।
विनती है वस सुखी रहे "जाये" मेरे प्रभो॥

दुःख भरे सुन मात के, वचन वृकोदर वीर।
थिर न रह सके क्रोध से, गरमा गया शरीर॥
कर नंगी तलवार को, बोले तुरत रिसाय।
क्या दुर्योधन आग से, हमें जलाना चाय?॥
वस ज़्यादा नहीं सहा जाता, आज्ञा दो भाई जाने को।
उस दुष्ट बुद्धि पापात्मा को, वध कर यमपुर पहुँचाने को॥
मैं ऐसे अत्याचारी का, जीवन अवलोक नहीं सकता।
चाहे वह प्रेमी ही होवे, तो भी कर रोक नहीं सकता॥
हा शोक विदुर ने कहा था जो, यदि प्रथमहि मुझे वता देते।
तो निश्चय उस दुर्बुद्धी को, हम पूरा मज़ा चखा देते॥

लेकिन अब भी कुछ फिक्र नहीं, केवल आज्ञा की देरी है।
ये भीम अभी जाकर उसकी, बस करे ख़ाक की ढेरी है॥
कहा युधिष्ठिर ने तुरत, है तव ठीक बिचार।
तो भी समय विलोक कर, करना चहिये कार॥
जल्दी करने से हे भ्राता, बस काम बिगड़ ही जाते हैं।
जबतक न समय हो शान्त रहो, ये बात शास्त्र बतलाते हैं॥
अव्वल तो पितृ-हीन हैं हम, फिर राज से भी हम दूर हुये।
साथी न रहा अपना कोई, लख विपति सभी काफूर हुये॥
ऐसी हीनावस्था में किमि, दुयर्धोन से झगड़ा ठानें।
निश्चय अपनी ही जय होगी, बोलो ये क्योंकर अनुमानें॥
कहा भीम ने मान लो, हैं हम सब विधि हीन।
तो क्या इस से होयँ हम, शत्रु के आधीन॥
क्या भूल जाउँ क्षत्रीपन को, क्या हृदय के भाव बदल डालूं।
सहलूं अधर्म की ठोकर क्या, क्या बल होते बदला ना लूं॥
रहने दो भ्राता रहने दो, धीरज मुझको न सुहाता है।
आज्ञा देकर देखो तो भीम, क्या क्या करतब दिखलाता है॥
रज कण तक तो पद ठोकर खा, सिर के ऊपर चढ़ जाते हैं।
धिक हमें जो जीवन रहते भी, रिपु का नहि खोज मिटाते हैं॥
दुनियां चाहे तजदे मुझ को, मैं इकला ही रह जाऊंगा।
लेकिन जीते जी कभी नहीं, शत्रु को शीश झुकाऊंगा॥
बोल उठे अर्जुन तुरत, शांत शांत बलधाम।
क्या भाई के हुक्म के, विरुध करोगे काम॥
सुन भाई की बात को, भीम हुये गत जोश।
खड़े रहे यों चित्र से, जैसे हो बेहोश॥
कुछ देर बाद यों कहन लगे, हा कैसा बुरा समय आया।
आ फँसे कहां किस चक्कर में, किस्मत ने क्या रंग दिखलाया॥

हे पार्थ भ्रात के हुक्म बिना, मैं कुछ न करूंगा काम कभी।
चाहे जीवन जावे तो भी, दुख का नहिं लूंगा नाम कभी॥
है भीम तो कठपुतली समान, चाहे जिस तरफ घुमावें ये।
पर इस आफ़त से बचने की, हिकमत तो कोई बतावें ये॥
जो मुझे जचा वह कहता हूँ, यदि अच्छी हो अपना लेना।
वरना तुम भी हो बुद्धिमान, अपनी कुछ राय बतादेना॥
कैदी तो हम हैं नहीं, फिर क्यों दहशत खांय।
क्यों न छोड़ इस धाम को, जगह दूसरी जांय॥
सुन वचन युधिष्ठिर कहन लगे, यहां ही रहना हितकर होगा।
मैं सत्य रूप से कहता हूँ, नहिं भला कभी भगकर होगा॥
कारण भागे न बचेंगे हम, दुर्योधन मरवा डालेगा।
यदि एक चाल होगई नष्ट, वह दूसरि चाल निकालेगा॥
धन धाम प्रजा और अस्त्र शस्त्र, जो कुछ हैं उसके हाथ में हैं।
फिर महाबली योद्धा गण भी, इस समय दुष्ट के साथ में हैं॥
हैं अपने दुर्दिन अस्तु रहो, चुपचाप यहीं पर हे भाई।
तावक्ते अपने बचने की, उत्तम न राह दे दिखलाई॥
जब तक पुरुचन व सुयोधन से छल कपट किया नहिं जावेगा।
तब तक निश्चय है हम सबका, कल्याण नहीं हो पावेगा॥
ज़ाहिर में दुष्ट पुरोचन को, हम प्रेम भाव दिखलावेंगे।
फिर जिस दिन अवसर पावेंगे, झट भाग यहां से जावेंगे॥
आवेगी उस वक्त में, राह कौनसी काम।
कहता हूँ चुपचाप मैं, सुनो हृदय को थाम॥
एक सुरंग खोदो यहां, सबकी दृष्टि बचाय।
दरवाज़ा जिसका किसी, बनमें निकले जाय॥
फिर नितप्रति निशिको रहने का, इसमें हि प्रबन्ध किया जावे।
यों डर न रहेगा अगनी का, चाहे घर जला दिया जावे॥

इतनी हि बात हो पाई थी, इतने में एक मनुष्य आया।
आते ही इनकी अस्तुति कर, अति आदर से मस्तक नाया॥
और कहा विदुर की आज्ञा से, मैं पास तुम्हारे आया हूँ।
हूँ उनका अति विश्वास पात्र, इसलिये सन्देशा लाया हूँ॥
ये निश्चय जानो ये घर तो, एक दिवस जलाया जावेगा।
बचने का उचित न यत्न किया, तो प्राण न रहने पावेगा॥
है हुक्म विदुर का एक सुरंग, इसघर में ऐसी खोदूं मैं।
जिसमें होकर तुम भाग सको, ये उत्तम कारज शोधूं मैं॥
इसमें ही नितप्रति सोते हुये, धर धीर बाट तकते रहना।
जब अग्नी को प्रज्ज्वलित लखो, झट इसी राह से चल देना॥
यों कह इस बेलदार ने यहां, एक बड़ी सुरंग तैयार करी।
लेकिन उस दुष्ट पुरोचन को, इसकी बिल्कुल नहिं खबर परी

दिन भर पांडव खेलते, मृगया वनमें जाय।
निशि को अति आनन्द से, सोते इसमें आय॥

सब जान बूझ कर भी पांचों, इसकी अति इज्जत करते थे।
विश्वास शून्य होने पर भी, जाहिर मे भरोसा रखते थे॥
ये देख पुरोचन मन ही मन, निज बुद्धी पर मुस्काता था।
निश्चय अब होगा काम मेरा, इस आश से फूला जाता था॥
यों कई महीने बीत गये, इनको घर में रहते रहते।
तब घबरा उठे गदाधारी, परवशता को सहते सहते॥
सोचा क्या जाने कब वह खल, इस घर मे आग लगायेगा।
और कब स्वतंत्रता मिलने से, मेरा हृदय हरषायेगा॥
आने दो अब के मावस को, मैं खुद ही आग लगादूंगा।
इस घर को मय उस पापी के, बस भस्मीभूत बनादूंगा॥

ऐसा किये बिना नहीं, मिले शीघ्र आराम।
आने दो उस रोज को, करूं यही बस काम॥

ऐसा निश्चय कर लेने पर, इनके मन ने थिरता पाई ।
आख़िर कुछ दिवस निकलने पर, वह मन इच्छित मावस आई ॥
इस रोज कुंति ने अनायास, कई तरह के व्यंजन बनवाये ।
और न्योता भिजवा कर प्रति घर, सारे पुरवासी बुलवाये ॥
आगई अचानक मृत्यू बस, एक भिखमंगो जिसके संग में ।
थे पांच पुत्र लेकिन उनके, कपड़ा तक भी नहिं था अंग में ॥
इनकी अति हीनावस्था को, जो लखता घबरा जाता था ।
"हे प्रभू करो इनकी रक्षा, बस येही बचन सुनाता था" ॥
जिस समय ये सब भूखे प्यासे, कुन्ती मां के सन्मुख आये ।
लख इनको माता के लोचन, आंसुओं के जल से भरआये ॥

आख़िर सब के साथ हो, इन को भी बैठाय ।
अति ही हित से मात ने, भोजन दिया कराय ॥

हो गये बिदा सब पुरवासी, पर वह पुत्रों संग रही वहां ।
ये ख़बर किसी को हुई नहीं, सब ने सोचा कोई न यहां ॥
इतने में सूरज अस्त हुआ कज्जल सम घोर निशा आई ।
ये देख भीम के चहरे पर, अति आनन्द की लाली छाई ॥

किसी तरह रोके रहे, अपने सकल विचार ।
अर्ध रात बीती जभी, तब ये हुये तयार ॥

आगये सुरंग के बाहिर झट, देखा अंधियारी छाई है ।
आगे पीछे दांये बायें, कुछ भी देता न दिखाई है ॥
सुनसान हो रही है रजनी, सब जीव बेखबर सोते हैं ।
यहां तक स्वानादिक पशु के भी, भोंकन के शब्द न होते हैं ॥
अनुकूल समय लख भीमसेन, सब से पहिले बम गये वहां ।
दुर्योधन का विश्वास-पात्र, रहता था पुरोचन दुष्ट जहां ॥

निश्चय कर इस बात का, सोता है खल दुष्ट ।
अपने मन में वीरवर, हुये बहुत संतुष्ट ॥

कपड़ा लपेट कर लकड़ी पर, फुरती से उसपर घी डाला।
फिर उसे प्रज्ज्वलित करते ही, हो गया एक दम उजियाला॥
पहिले उस दुष्ट पुरोचन के, घर में हो अग्नी चेताई
फिर बाहर भीतर चहूँ ओर, बत्ती उस घर में दिखलाई।
दम भर में ज्वाला चेत उठी, घर ने फौरन रंगत बदली
लपटें पहुँची नभ मंडल तक, धूंए की एक छाई बदली।
ऐसा करके कुन्तीसुत ने, भ्राताओं को चैतन्य किया
ले साथ इन्हें मय माता के, अति शीघ्र सुरंग का मार्ग लिया

जगा पुरोचन शीघ्र ही, गरमी पाकर घोर।
देख भवन जलता हुआ, लगा मचाने शोर॥

अचरज है कैसे जला भवन, हा किसने अग्नी चेताई
अब बचूंगा क्यों कर हे भगवन, क़िस्मत कैसी रंगत लाई
क्या पांडव भी जल रहे यहीं, लेकिन अवाज़ नहिं आती है
बस जान गया ये उनकी ही, सारी करतूत लखाती है
मैं तो गिनता था खुद को ही, चालाकी में सबसे बढ़ कर
पर शोक है वे पांचों भाई, निकले मुझसे भी बढ़चढ़ कर
लेकिन उनका कुछ दोष नहीं, मैं भी तो जलाने वाला था
उन दुष्टों पर ये ही आफ़त, कुछ दिन में ढाने वाला था

मैं तो करता रह गया, मनमें सोच विचार।
वे खल अपना काम कर, हुये यहां से पार॥

क्या करूं विधाता हाय हाय, अग्नी बढ़ती ही आती है
भगने के रस्ते बंद हैं सब, अब सचमुच मौत दिखाती है
सूखे जाते हैं होठ मेरे, है कोई जो चुल्लू पानी दे
हे प्रभू शरण हूँ अब तेरी, तू ही मुझको ज़िन्दगानी दे
छलियों के फंदे में फंसकर सच्चे मालिक से दग़ा किया
चाहता था जलाना जला स्वयम्, हा प्रतिफल हाथों हाथ लिया

आ पहुँची लपटें निकट, करूं कौन तदबीर ।
हाय हाय अब चित्त भी, खोता जाता धीर ॥
हे अग्निदेव हूँ शरण तेरी, क्या फिर भी भस्म बनावेगा ।
दुखियों की आरत बानी सुन, क्या तनिक रहम नहिं खावेगा ॥
हा ! सहा न जाता तेज तेरा, निर्दय क्यों बढ़ता आता है ।
रे दुष्ट दीन कमज़ोरों को, अपनी ताक़त दिखलाता है ॥
यदि होता पानी पास मेरे, तब सुर्खी दूर भगा देता ॥
दमभर मे तुझ को शीतल कर, अपना पुरुषार्थ दिखा देता ॥
रे ! रे !! दुर्योधन दुष्टबुद्धि, तैंने मुझको बहकाया था ।
तैंने ही उन सन्तों के प्रति, ये क्रूर जाल फैलाया था ॥
बच गये पांडुनन्दन सारे, और तू भी मौज उड़ाता है ।
यहां निर अपराध पुरोचन का, जोवात्मा निकला जाता है ॥
लो जलन लगे ये वस्त्र मेरे, भक भक सब सिर के बाल हुये ।
अग्नी लग गई बदन मे भी, पूरे जोवन के साल हुये ॥

* गाना *

बदी का होता बद परिणाम ॥
चाहे यत्न करो कितने ही, मिले नही आराम ।
निश्चय प्रतिफल मिलेगा उनका, किये है जो दुष्काम ॥ बदी का ॥
औरो को दुख देकर चाहे, पाना खुद आराम ।
उनकी आश होत है ऐसी, ज्यो आकाशी आम ॥ बदी का ॥
ऊपर से दिखते है सज्जन, भीतर से मन श्याम ।
होता ऐसे दुष्ट नरो का, अंत नरक मे धाम ॥ बदी का ॥
ये विचार कर करो भलाई, बना हृदय निष्काम ।
जीते जी सुख मिले, मृत्युपर, रहे जगत मे नाम ॥ बदी का ॥

इधर पुरोचन जल मरा, उधर भिखारिन नार।
पांचों पुत्रों के सहित, हुई अग्नि से छार॥
इतने में पुरवासी जागे, देखी अग्नी नभ तक छाई।
दौड़े सब अश्रु गिरते हुये, बोले आपस में बिलखाई॥
ये काम है सब दुर्योधन का, उसने ही घर बनवाया था।
पांचों का जीवन हरने को इस तरह जाल फैलाया था॥
ले मदद पुरोचन को उसने, पांडवों का खोज मिटाय दिया।
पापी ने निर्मल कुरु-कुल में, हा कैसा दाग़ लगाय दिया॥
पर प्रभु की लीला तो देखो, जल मरा वह दुष्ट पुरोचन भी।
जो गैर को दुख देना चाहता, होती कुदशा उसके तन की॥
यों कहते सुनते भोर हुआ, कई यत्न किये तब आग बुझी।
उस समय उपस्थित जनता को, लहाशों के लखने की सूझी॥
एक जगह एक ढेरी देखी, समझे ये दुष्ट पुरोचन है।
लख छः ढेरी अन्यत्र कहा, ये मातु सहित पांडव गन हैं॥
ये दृष्य देख कर कितने ही, गिर गये असुध हो भूमी पर।
कितनों ने अमित गालियां दीं, दुर्योधन को क्रोधित होकर।
फिर सलाह कर दूत इक, भिजवाया तत्काल।
उस ने जाकर कह दिया, धृत्तराष्ट्र से हाल॥
थे नृप अपराध रहित इस में, वास्तव में इनको ज्ञान न था।
दुर्योधन चाल चलेगा ये, इसका बिल्कुल भी ध्यान न था।
इसलिये बात ये सुनते ही, नृप के मुख पर ज़र्दी आई
पुत्रों! पुत्रों!! कह रोने लगे, वे हस्तिनापुर के नरराई॥
रैयत को भी अति शोक हुआ, सुनते ही ये अप्रिय बानी।
बोली प्रभु नष्ट करो जल्दी, इन सब कुरुओं की ज़िन्दगानी॥
हा दया न आई तनिक इन्हें, बचने उन धर्म-धुरीनों को।
रह रह कर अश्रु निकलते हैं, कैसे ढाढ़स दें सीनों को।

रैयत रोई मनमें क्योंके, डर था दुर्योधन का भारी ।
जो कहीं दुष्ट वह सुन लेगा, कर देगा जीवन की ख्वारी ॥
आखिर ले भीष्म पिता को संग, राजा ने प्रेत क्रिया कीन्हीं ।
फिर गंगा के तट पर जाकर, हो व्याकुल जलांजली दीन्हीं ॥
चतुर विदुर को ज्ञात था, सच्चा सच्चा हाल ।
अस्तु दिखाने के लिये, किया रुदन कुछ काल ॥
उस तरफ सुरंग से बाहिर जब, होगये मातु सह सब भाई ।
तबही सबको आनन्द हुआ, चेहरों पर मुस्काहट छाई ॥
लेकिन दुर्योधन के डरने, इनको फिर सुस्त बना डाला ।
सोचा अबके तो बचे मगर, आगे को क्या होने वाला ॥
यदि दुष्ट पुरोचन भाग गया, अग्नी से जान बचा करके ।
और अपने जीवित रहने का, कह दिया हाल तहां जा करके ॥
तो सच समझो वह पापात्मा, बस और भी गरमा जायेगा ।
और हम लोगों के बधने को, फौरन ही जाल बिछायेगा ॥
अस्तु हमको चहिये फौरन, अपना ये भेष बदल डालें ।
बन जाँय ब्राह्मणों सम सारे, कण्ठों में माला लटका लें ॥
ऐसा करने से हमें चीन्हेगा कोइ नाहिं ।
सोच रहित होकर सदां, विचरेंगे जग मांहि ॥
ऐसा विचार कर इन सबने, विप्रों सम रूप बनाय लिया ।
और तारों से अन्दाजा लगा, दक्षिण की जानिब गमन किया ॥
वे रात अमावस्या की थी, सब ओर अन्धेरा छाया था ।
फिर वायू ने भी वेग धार, गहरा आतंक मचाया था ।
तिसपर चलना पड़ता था इन्हें, जंगल की दुस्तर राहों में ।
गहरी ठोकर लगती थी कभी, कभि चुभते कांटे पावों में ॥
पर इसकी कुछ परवाह न कर, ये आगे बढ़ते जाते थे ।
और प्रसन्न चित से बार बार, प्रभु की जयकार सुनाते थे ।

लेकिन जिसका जीवन सारा, हर समय सुःख में बीता हो।
उसको इस महा कठिन दुख में, बोलो किस तरह सुभीता हो॥
थे ये भी राज घराने के, दुख का न सुना था नाम कभी।
तज घोड़े पैदल चलने का, बन में न पडा था काम कभी॥

अस्तु मातु सह भ्रात सब, चल कर कुछ ही दूर।
फकत भीम को छोड़कर, थकित हुए भरपुर॥
बैठ गये झट भूमि पर, संकट से बिलखात।
इतने में अति शोक से, बोली कुन्ती मात॥

इससे ज़्यादा दुख क्या होगा, हे परमपिता त्रिभुवन साईं।
कांटों से घायल पांव हुए, देता न रास्ता दिखलाई॥
फिर हिन्सक पशुओं की बोली, हृदय को व्यथित बनाती है।
चलने से बल भी नष्ट हुआ, आंखों में अंधेरी आती है॥
इससे तो अति ही उत्तम था, हम सब लोगों का जल जाना।
क्या जाने अब कितने दिन तक, हा हमें पड़ेगा दुख पाना॥

*** गाना ***

(राग सोहनी)

क्या खबर किस्मत हमारी रंग क्या क्या लायेगी।
ये दशा तो हो गई आगे को क्या दिखलायेगी॥
राज छूटा ताज छूटा छुटगया घर बार भी।
जान बस बाकी रही है ये भी अब छुटजायगी॥
पालते थे दीन दुखियों को सदा हम अन्न से।
भीख के टुकड़ों पै अब क्या ईश! नौबत आयगी॥
दुष्ट दुर्योधन सबर कर, है समय तेरी तरफ।
एक दिन आवेगा निश्चय ऐंठ तब नसजायेगी॥
जंगलों में ही हमारे दिन कटेंगे क्या प्रभो।
सुख घड़ी क्या जिन्दगी में फिर न दर्श दिखायेगी॥

सुन कर माता के वचन, दुखी हुए सब वीर ।
कहा भीम ने अन्त में, धार हृदय में धीर ॥

माताजी मन को समझाओ, क्या हम नित ही दुख पावेंगे ।
धीरज रक्खो कुछ दिवस बाद, निश्चय सुख के दिन आवेंगे ॥
इस जगह तो अब हम लोगों का, बैठा रहना नहिं हितकर है ।
कारण, परचित स्थानों में, पहिचाने जाने का डर है ॥
इसलिये शीघ्रता करो मातु, अब यहां से आगे चलने की ।
अरुणोदय से पहिले कुरुओं, की हद से बाहिर निकलने की ॥
तुम थकित होगये हो सारे, लेकिन न हृदय में घबराओ ।
मैं तुम्हें उठा ले चलता हूँ, फौरन तयार अब हो जाओ ॥
इतना कह वीर वृकोदर ने, माता को पीठ पर लाद लिया ।
अर्जुन व युधिष्ठर को सवार, अपने दोनों कन्धों पै किया ॥
सहदेव नकुल भ्राताओं को, गोदी में फेर उठा करके ।
चल दिये वृकोदर जंगल में, फुरती से क़दम बढ़ा करके ॥

लगातार चलते रहे, कुछ घड़ियों तक वीर ।
पहुँचे आखिर जायकर, गंगाजी के तीर ॥

यहां विदुर के हुक्म से, नाविक था तैयार ।
अस्तु चढ़ा इनको तुरत, पहुँचाया उस पार ॥

सबको उतार कर इस तट पर, नाविक ने अपना मार्ग लिया ।
इन लोगों ने फिर फुरती से, आगे को बढ़ना शुरू किया ॥
सीधा व सरल रस्ता तजकर, ये जंगल जंगल जाते थे ।
जासूस सुयोधन का न हमें लखले इससे दहलाते थे ॥
पर ज्यों ज्यों आगे बढ़ते थे, वन दुस्तर होता जाता था ।
तिसपर हिंसक पशुओं का रव, दिल में धड़कन उपजाता था ॥

फिर बद क़िस्मत से इस वन में, था नहीं ठिकाना तक फल का।
यहां तक के प्यास बुझाने को, तालाब भी नहीं था जल का॥

चलते चलते होगया, इन्हें काल मध्यान।
भूख प्यास के दुःख से, हुये सभी हैरान॥

चलने की शक्ती लुप्त हुई, आंखों में अंधकार छाया।
लड़खड़ा के आख़िर बैठ गये, क्या दृश्य समय ने दिखलाया॥
थी हिम्मत नहीं किसी में भी, जो उठकर ढूंढे पानी को।
तकते थे स्थिर दृष्टी से, सब भीमसेन बलवानी को॥
जब देखा वीर वृकोदर ने, सब ही थककर लाचार हुये।
तब हिम्मत कर एक पात्र ले ये, जल लाने को तैयार हुये।
पर जाने से पहिले सोचा, ढूंढूं एक उत्तम जगह यहां
मैं जब तक लौट नहीं आऊं, तब तक भ्राता मां रहें जहां।
कर ये विचार दृष्टी फैंकी, देखा इक तरु छाया वाला
हर्षित हो उस के ही नीचे, सब लोगों का डेरा डाला।

ये प्रबंध कर विपिन में, लगे घूमने वीर।
आख़िर जा पहुँचे तुरत, एक सरोवर तीर॥

देखा स्फटिक समान स्वच्छ, शीतल जल उसमें भरा हुआ
हो गया बदन पुलकित पल में, बिन पिये हि हृदय हरा हुआ
फ़ौरन ही निज कपड़े खोले, जलमें जाकर स्नान किया
मनमाना पी, फिर पात्र भरा, उपरान्त तुरत प्रस्थान किया
वहां पर आते ही क्या देखा, सोते हैं माता और भाई
चलते चलते थक जाने से, सबको गहरी निद्रा आई
निज प्रिय माता भ्राताओं को, यों पड़े अनाथों सम लख कर
इनके दुख की सीमा न रही, होगये अश्रु जल से दृग तर

सम्बोधन कर "समय" को, बोले पांडु-कुमार ।
लोला है तेरी सकल, जग में अपरम्पार ॥

*** गाना ***

हे समय ! दुनिया मे तू सब से अधिक बलवान है ।
दृष्टि मे आती नही जैसी कि तेरी शान है ॥
एक पल मे तेरी मरजी से धनाढ्य गरीब हो ।
अरु एकही क्षणमे वनें कंगाल लक्ष्मीवान है ॥
एक दिन तैंने दिया वनवास श्री रघुवीर को ।
फिर किया तैंने ही राज्यभिषेक का सामान है ॥
भूपवर हरिचंद ने भी फंस के तेरे फेर मे ।
राज तज सेवन किया जा डोम भवन मसान है ॥
भेद पाया है नही तेरा किसी ने आज तक ।
महाराजा है राजो का तू और सर्व शक्तीमान है ॥

इतना कहकर फेर ये, दीर्घ स्वांस परित्याग ।
बोले हमसे होयगा, कौन अधिक हतभाग ॥

ो निज चरणों को भूमीपर, रखने में भी सकुचाते थे ।
जनके एक मात्र इशारे पर, वेगिनती धावन धाते थे ॥
फूलों की कोमल सेज में भी, जिनको कम निद्रा आती थी ।
ुख देखा नहीं नित्य सुख में, जिन्दगी बीतती जाती थी ॥
ोते हैं आज वे ही भूपर, विधना की गती निराली है ।
ल मे गरीब धनवान बने, पल में धनाढ्य कंगाली है ॥

हा रिपु मद मर्दन बलवानी, वसुदेव सम जिसके भाई हैं।
और सुघड़ भतीजे नट नागर, जिसके वे कुंवर कन्हाई हैं॥
कुरु-वंश तिलक-पांडू की जो, प्रिय अर्धांगिन कहलाती है।
सुकुमार अतुल शोभावाली, और शुभ लक्षण दरसाती है॥
हम जैसे उत्तम वीरों को, दुनिया में जिसने जन्म दिया।
हा! वही कुंति भूपर सोती, ऐसा क्या इसने पाप किया॥

इससे बढ़ कर होयगा, दुःख कौनसा घोर।
हृदय! किस लिये शांत है, क्यों नहिं फटत कठोर॥

जो धर्म-धुरंधर धर्म-मूर्ति, जग के नृप होने लायक़ हैं।
तेजस्वी कोमल तन वाले, सब ही को आनंद दायक हैं॥
अति मुल्यवान मृदु शैयापर, जो सुख से निशा बिताते थे।
मंगलमय भजनों से चारण, जिनको नित सुबह जगाते थे॥
हा! वही युधिष्ठिर भूमीपर, सोते हैं विपता के मारे।
हे आंखों मिच जाओ न लखो, अब हृदय शीघ्र ही फटजा रे॥
ये देवराज सम कांतिवान, और अनुपम धनुष चलाने में।
नित सुख भोगा है ज्ञात नहीं, दुख क्या वस्तू है ज़माने में॥
हा कुटिल काल के जाल में फंस, वे ही अर्जुन यहां सोते हैं।
लख इनकी दीन मलीन दशा, रोंगटे खड़े मम होते हैं॥
ये युगल भ्रात सहदेव नकुल, सुकुमार मनोहर तन धारी।
हा दुषे पीत दुख पड़ते ही, आते हैं दृष्टि व्याकुल भारी॥
अय वसुंधरा फटजा जल्दी, अन्याय न देखा जाता है।
सत-पथ पर चलने वालों का, संताप मुझे कलपाता है॥

दुष्ट सुयोधन धीर धर, समय है तेरी ओर।
हरि इच्छा भावी प्रबल, चले नहीं कुछ ज़ोर।

कर सब्र समय के फिरते ही, अपने अरमान निकालूंगा ।
मिट्टी के पुतले सम तुझको मैं नष्ट भ्रष्ट कर डालूंगा ॥
इन हाथों को निर्बल न जान, अब भी इन में वो शक्ती है ।
जिस रोज प्रहार किया उस दिन, दुनियां से तेरी मुक्ती है ॥
क्या करूं युधिष्ठिर भ्रात मुझे, इस समय न आज्ञा देते हैं ।
तेरे इन अत्याचारों को चुपचाप धीर धर सहते हैं ॥
वरना अघ पापात्मा सुन ले, सब तेरा ताव निकालूं मैं ।
करके तन के टुकड़े टुकड़े, चीलों कव्वों को डालूं मैं ॥
कर सबर किसी दिन तो अवश्य भाई की आज्ञा पाऊंगा ।
शानो शौकत कर नष्ट तेरी, पापों का मज़ा चखाऊंगा ॥

इतना कह आवेश में, बैठ गये मन मार ।
दुख के कारण वह चली, आंखों से जल धार ॥

फिर धर धीरज मन में सोचा, यह महा भयानक जंगल है ।
यहां सब के इक दम सोने में, दृष्टी नहिं आता मंगल है ॥
गो थका हुआ हूँ मैं भी अति लेकिन जगना ही है हित कर ।
हो जावे कोई बात नई क्या जाने कैसे अवसर पर ॥

ऐसा मन में सोच कर लगे जागने वीर ।
हुशियारी से मीर को, रख कर अपने तीर ॥
इसी जगह के पास था, एक दरख़्त विशाल ।
रहता था उस पर सदां, निश्चर एक कराल ॥

खाता था नर का मांस सदां, ये ही उसको बस प्यारा था ।
पर कई दिवस से मिला न था, इसलिये भूख का मारा था ॥
पांडवों के तन की गंध पाय, वे निश्चर मन में हरषाया ।
और अपनी भगनी को बुलाय, उसको सब किस्सा समझाया ॥

फिर कहा बहन देरी न करो, फुरती से तहां चली जाओ।
बधकर उन सारे पुरुषों को, तत्काल इस जगह ले आओ॥
पीयेंगे उनका गरम लहू, और मांस पका कर खायेंगे।
फिर हम तुम दोनों आनन्द से, यहां नाचेंगे और गायेंगे॥
अपने भाई की आज्ञा से, वह निश्चरि तहां चली आई।
थे असुध नींद में मातु सहित, जिस जगह वृकोदर के भाई॥
लख भीमसेन का अतुलरूप, होगई असुधि सी वो नारी।
टकटकी बांध कर तकने लगी, निज काज की याद भुला डारी।
आई थी इनको संहारण, लेकिन खुद ही संहार हुई।
ब्रह्मचारी के सुंदर तन को, कुछ ऐसी उस पर मार हुई॥
नर भक्षण करने वाली का, क्षण में स्वभाव सब दूर हुआ।
अरु नर पै ही उसको एक दम, बस प्रेम भाव भरपूर हुआ॥

बदल राक्षसी रूप सब, सुन्दर रूप बनाय।
सन्मुख आ के भीम के, खड़ी हुई सिर नाय॥

कहा भीम ने कौन तू, क्या है तेरा नाम।
आई है यहां किसलिये क्या है मुझ से काम॥

तिरछी चितवन से मुस्काकर, कर जोड़ कहा उस नारी ने।
तुम पर मन मोहित किया मेरा तज बाण मदन छलकारी ने॥
मैं शरण तुम्हारी आई हूँ, और पत्नी बनना चाहती हूं
मेरा अभिलाषा पूर्ण करो बस येही विनय सुनाती हूं॥
मम नाम "हिडम्बा" निश्चरि है ये बन है मेरे भाई का।
है नाम "हिडम्ब" उस राक्षस का पापात्मा नर दुखदाई का॥
उसने तुम सब की गंध पाय मुझको यहां तुरत पठाया है।
"उन सबको बध करके लाओ", ऐसा ही हुक्म सुनाया है॥

पर चित विचलित होगया मेरा लख तुम्हें मनोहर तन वाला ।
राक्षसी भाव सब दूर हुआ, इस प्रेम ने हृदय बदल डाला ॥
भाई से कई गुनी ज्यादा प्रीती होती है भर्ता से ।
इसलिये बचाऊंगी तुमको, निज भ्राता हत्या कर्ता से ॥

युवा पुरुष अब शीघ्रही, चलो हमारी लार ।
जल पर, थल पर, व्योमपर, है मेरा अधिकार ॥

सुंदर सुमनोहर देशों में, बनमें खोहों में उपवन में ।
जहां कहो ले चलूं तुम्हें अभी, सुख भोगो खुश होकर मनमें ॥
यदि भाई यहां चला आया, तुम सब को वध कर डालेगा ।
मुझको भी तंग करेगा अति, अपना सब क्रोध निकालेगा ॥

कहा भीम ने चुप रहो, कहो न ऐसी बात ।
बधे मुझे भाई तेरा, क्या उसकी औक़ात ॥

गन्धर्व और यक्षों तक से, मैं नहीं हृदय में डरता हूँ ।
गो हूँ मनुष्य लेकिन सुन ले, देवों सम शक्ती रखता हूं ॥
मेरे सन्मुख तेरा भाई, पुरुषार्थ न कुछ कर पायेगा ।
यदि हमको बधने आया तो, वह खुद ही मारा जायेगा ॥
इसलिये न मुझे डरा निश्चरि, उत्तम है अपने घर जा तू ।
इन हाव भाव मृदु बचनों से, मेरे मन को मत ललचा तू ॥
क्या बन में बेसुधि पड़े हुए इन सब लोगों को छोड़ूं मैं ।
और इच्छा पूरी करने को, तेरे संग नाता जोड़ूं मैं ॥

जीवित हूं जब तलक मैं, करूं न इनका त्याग ।
हूँ बेबस कैसे करूं, फिर तुझसे अनुराग ॥

इस तरफ भीम समझाते थे, उस तरफ निशाचर अकुलाया ।
भगिनी को जब आते न लखा, हृदय में अति गुस्सा छाया ॥

हो गया रवाना उसी तरफ़, थे जहां पे सब पांचों भाई।
लख इसको आता हुआ तहां, हो विकल हिडम्बा घबराई
और कहा वृकोदर से देखो, वह मेरा भाई आता है।
सन्देह नहीं कुछ ही पल में, अब तुम्हरा जीवन जाता है॥

अब भी मेरी बात सुन, इनको देहु जगाय।
लेजा सब को व्योम में, दूंगी जान बचाय॥

बोले मुस्काकर भीमसेन, क्यों घबराती हो सुकुमारी
उस महा कराल निशाचर की, तकना कैसी होती ख्वारी।
जैसे चिड़िया के बाज़ तुरत, सब होश हवास भुलाता है
या ज्यों मतवाले हाथी को पंचानन मार गिराता है।
त्योंही मैं अपनी ताक़त से, उसको यम लोक पठादूंगा
प्रभु कृपा से अब इस जंगलको, निश्चर से हीन बनादूंगा।
ये इतना ही कह पाये थे, इतने ही में वह भयकारी
निश्चर हिडम्ब तहां आ पहुँचा, और भगनी पर दृष्टी डारी
क्या लखा राक्षसीपन तज कर, उसने नर रूप बनाया है
करके तन को कंचन समान, गहनों से खूब सजाया है
उत्तम वस्त्रों से सज धज कर, हो रही अतुल शोभा वाली
इक टक निहारती है नर को, बधने की याद भुला डाली

भगिनी का ये हाल लख, हुआ निशाचर लाल।
दांत पीस कहने लगा, अपनी आंख निकाल॥

पापिनी हिडम्बा क्यों तैने, भोजन में बाधा पहुँचाई
क्या मेरा तुझको खौफ़ नहीं, क्यों इन्हें न बध करके लाई।
किसलिये किया नर तन धारन, कुलटा क्या नर को चाहती है।
हे व्यभिचारिन धिक्कार तुझे, क्यों कुल में दाग़ लगाती है॥

ुष्टा कुछ देर ठहरजा तू, करनी का मज़ा चखाता हूँ ।
पहिले इन सब का वध करलूं, फिर तेरा खोज मिटाता हूँ ॥

यों कह वो आगे बढ़ा, गहा भीम ने हाथ ।
दिया एक मुष्टिक कड़ा, पहुँचाई आघात ॥

लख अद्भुत शक्ति वृकोदर की, वो रजनीचर कुछ चकराया ।
पर नर को मच्छर तुल्य समझ, अति विकट रूप से मुस्काया ॥
और दौड़ा अपनी भुजा उठा, इच्छा थी जाकर मारूं मैं ।
बस एक मुष्टिका से पल में, इस का जीवन हर डारूं मैं ॥
गिरि शिखर सरिस उस निश्चर को, आने सन्मुख आता लख कर ।
हो गये भीम भी खड़े तुरत, हृदय में अतिशय हर्षा कर ॥
फुरती से उसका हाथ पकड़, एक पदाघात भरपूर किया ।
आगे पीछे धक्का देकर, पल में घमंड सब चूर किया ॥
फिर टांग पकड़ कर वायू में, उसको चहुँ ओर फिराने लगे ।
कुछ देर बाद भूमी पै डाल, घूंसे और लात लगाने लगे ॥
इन चोटों को वह सह न सका, चिल्लाया आंखें उलट गईं ।
यों उसके पापी तन को तज, जीवात्मा फौरन निकल गई ॥

* गाना *

जिस समय सज्जन नरों का दिल दुखाने के लिये ।
होते हैं उत्पन्न खल ऊधम मचाने के लिये ॥
उस समय जगदीश प्रगटाते हैं योधा भीम सम ।
दुर्जनों का नाम दुनियां से मिटाने के लिये ॥

ये तो निश्चय है अधर्मी दुष्ट अन्यायी छली ।
नर्क जाते है अवश ही दंड पाने के लिये ॥
पर जो अपने धर्म का करते हैं पालन नितप्रती ।
धर्म है तत्पर सदां उनको बचाने के लिये ॥
इसलिये तज छल कपट को धर्म का पालन करो ।
चित को शिक्षा दो बुरे पथ से हटाने के लिये ॥

सुन निश्चर का कंठरव, जागे भ्रातरुमात ।
उठ धाये आ भीम से, पूछी क्या है बात ॥
सुन वचन वृकोदर ने इनको, सारा क़िस्सा समझाय दिया ।
सुनकर सबको अति खुशी हुई, फिर आगे कदम बढ़ाय दिया ॥
ये देख हिडम्बा कर विचार, कुन्ती की शरण चली आई ।
और लज्जित हो धीरे धीरे, अपनी सब दुख गाथा गाई ।
जब लखा मातु ने सच्ची है, प्रीती मम सुत पर नारी की
तब लेकर राय युधिष्ठिर की, झट शादी की तैयारी की ।
गंधर्व रीति से कर विवाह, श्री भीम ने अंगीकार किया
रख साथ उसे अति हो प्रसन्न, मनमाना खूब विहार किया ।
हुआ "घटोत्कच" नाम का, पुत्र एक बलवान ।
छोड़ हिडम्बा को तहां, आगे किया पयान ॥
ना ना बन गांवों में होते, ये आगे बढ़ते जाते थे
मृगया करते थे कभी कभी, कभि कन्द मूल फल खाते थे ।
यों चलते चलते एक दिवस, जब सन्ध्या होने आई थी
होगया था बन निस्तब्ध सभी, सब तरफ अन्धेरी आई थी ।

ये जा पहुँचे गंगातट पर, धारा को सादर नमन किया।
और एक मशाल जला करके, आगे की जानिब गमन किया॥
इस समय एक गंधर्वराज, पत्नियों सहित तहां न्हाता था।
जिसका शुभ नाम चित्ररथ था, कर क्रीड़ा मन बहलाता था॥
पांडवों का इधर चला आना, इसको अति बुरा नज़र आया।
सब रंग भंग होजाने से, हृदय में अति ग़ुस्सा छाया॥

रक्तवर्ण कर नैनको, धनुको शीघ्र संभाल।
संबोधन करके इन्हें बोला वचन कराल॥

हे मूर्ख जनों बस ख़बरदार, क्यों आगे बढ़ते आते हो।
क्यों मेरी कोपानल में पड़, निज़ जान गमाना चाहते हो॥
क्या तुम्हें नहीं दृष्टी आता, पत्नियों सहित मैं न्हाय रहा।
सुख से विहार करके जल में, अपने मन को बहलाय रहा॥
ये बन मेरे अधिकार में है, निश्चर तक आते थर्राते।
तुम किसके बल पर भूल रहे, जो तनिक नहीं दहशत खाते॥
मेरी क्रीड़ा में विघ्न डाल, मूढ़ों सम काम किया तुमने।
बस दूर हो वरना मरोगे जो, बढ़ने का नाम लिया तुमने॥

जाति मेरी गंधर्व है, और चित्ररथ नाम।
बोलो क्यों आये इधर, कहां तुम्हारा धाम॥

गंधर्वराज के वचनों को, सुनते ही अर्जुन रिसिआये।
बोले ओ दुर्बुद्धी चुप रह, क्यों तेरे दिन खोटे आये॥
सब ओर अंधेरा छाने से, कुछ भी नहीं दृष्टी आता है।
हम को क्या मालुम थी कि तू, इस समय यहां पर न्हाता है॥

अपराध हमारा तनिक नहीं, फिर क्यों तैंने अपमान किया।
ऐसा क्या तुझको गर्व हुआ, जो नहीं बुद्धि से काम लिया॥
जो हैं बलहीन मनुज जग में, वे चाहे तुझ से डर जावें।
पर हमतो ऐसे हैं रिपु को, तत्काल हि यमपुर भिजवावें॥
जाना है आगे हमें अस्तु, वापिस न फिरेंगे जावेंगे।
गंधर्व, यक्ष कोई भी हो, जो रोकेंगे पछतावेंगे॥

सुन अर्जुन की बात को, हुआ चित्ररथ लाल।
झट अपना धनु तानकर, छोड़े बाण कराल॥

अर्जुन ने सबको नष्ट किये, और बोले क्यों इतराता है।
क्या धनुर्वेद ज्ञाताओं को, इन बाणों से डरपाता है॥
है ज्ञात मुझे गंधर्व लोग, मनुजों से श्रेष्ठ कहाते हैं।
अस्तू साधारण शर इनको, कुछ भी न हानि पहुँचाते हैं॥
इसलिये दिव्य अस्त्रों को ही, इस समय काम में लाऊंगा।
तेरे समान अभिमानी को, निश्चय कुछ पाठ पढ़ाऊंगा॥
इतना कह कर श्री अर्जुन ने, आग्नेय अस्त्र को संधाना।
और ताक चित्ररथ को फौरन, शारंग को कानों तक ताना॥
इस के छुटते ही दम भर में, गंधर्वराज बेहोश हुआ।
आ पड़ा भूमि पर मुंह के बल, पानी पानी सब जोश हुआ॥
फिर चाहा अर्जुन ने इसके मस्तक को काट गिरादूं मैं।
अपमान के करने वाले का, दुनिया से नाम मिटादूं मैं॥
इतने में उनकी प्रिय पत्नी, झट दौड़ युधिष्ठिर ढिग आई।
हे महाभाग पति की रक्षा, करदो यों बोली बिलखाई

सुन बचन दयालु युधिष्ठिर ने, गंधर्वराज को छुड़वाया।
आतेहि होश जिसने इनको, अति आदर से मस्तक नाया॥
और बोला हे अर्जुन तुम तो, निश्चय पूरे धनुधारी हो।
बस मित्र हमारे बन जाओ, तब पूरी आश हमारी हो॥

बात तुरत गंधर्व की, लो अर्जुन ने मान।
गले लगाकर हर्ष से, आगे किया पयान॥

कुछ दिनों में एकचक्रा नामक, एक अति सुन्दर नगरी आई।
लख उसे मनोहर इन सब की, तबियत रहने को ललचाई॥
जा पहुँचे एक विप्र के घर, वो इन्हें देख कर हर्षाया।
सब विधि आदर सत्कार किया, और अपने घर में ठहराया॥
इस जगह ये सब आनन्द सहित, अपने दुख दिवस बिताते थे।
भिक्षा करते थे नित्यप्रती, यों अपना काम चलाते थे॥
लाता था जितना अन्न रोज, आधा तो भीम पचा जाते।
और आधे में मय माता के, बाक़ी चारों भाई खाते॥
लख इनका भेष नगर वाले, ब्राह्मण ही इन्हें समझते थे।
और आचरणों पर मोहित हो, हृदय से इज्ज़त करते थे॥

इसी तरह रहते हुये, बीत गया कुछ काल।
आगे फिर जो कुछ हुआ, सुनों सज्जनों हाल॥
वैसे तो ये ग्राम था, सुःखों का भण्डार।
पै पुरवालों के लिये, था एक कष्ट अपार॥

रहता था नगरी के बाहिर, 'बक' नामक एक निश्चर भारी।
वो दुष्ट अतुल बलवाला था, और था इस पुर का अधिकारी॥

कन्या पर भी है मेरा, पूर्णतया अनुराग ।
हे प्रभु प्रिय संतान का, करूं किस तरह त्याग ॥

तुम पतिव्रता अर्धांगिन हो, हो सत्य, धर्म पालन हारी ।
है तुम से ही घर द्वार खुला, फिर हो मम प्राणों सम प्यारी ॥
कुछ उस दिन की भी याद करो, जब मैंने तुमको ब्याहा था ।
आ जन्म तजूंगा कभी नहीं, ये मुख से वचन सुनाया था ॥
फिर बोलो कैसे भंग करूं अपना प्रण, तुमको भिजवाकर ।
है धर्म मेरा तो तुम सब की, बस रक्षा करना जीवन भर ॥
अस्तू त्रिकाल में भी तुमको, मैं वहां पर भेज नहीं सकता ।
मैं मरा तो तुम होगे अनाथ, हा ये भी देख नहीं सकता ॥

किसे रखूं भेजूं किसे, हूं सब विधि हैरान ।
इस संकट का हे प्रभू, होगा किम अवसान ॥

✲ गाना ✲

हरो दुख दूर कृपा करके हमारा भगवन ।
लिया है तेरा ही अब हमने सहारा भगवन ॥
मारना दुष्ट को और दीन की रक्षा करना ।
रहा है काम सदा सेही तुम्हारा भगवन ॥
देर कीन्ही है नहीं तुमने कभी भी स्वामी ।
शीघ्र आये हो जहां जनने पुकारा भगवन ॥
सिवा तुम्हारे न कोई जिसको सुनाऊं विपता
[illegible] तुम बिन किस होगा गुजारा भगवन ॥

सुन कर पति के दुख भरे बचन, वो पतिव्रता अति अकुलाई ।
फिर अश्रु पोंछ धीरज धर कर, यों बोली धानी सुखदाई ॥
हे जीवन के जीवन स्वरूप, इस तरह दुःख में घबराना ।
तुम को शोभा नहिं देता है, क्यों के तुम हो आक़िल दाना ॥
जब आप सरिस विद्वान गुणी, दुख में यों रुदन मचावेंगे ।
तब मुझ जैसे अल्पज्ञ जीव, किस तरह हृदय समझावेंगे ॥
जब ये सच है भावी न कभी, यत्नों से मेटी जाती है ।
और जो कुछ होनी होती है, निश्चय ही रंग दिखाती है ॥
तो फिर है वृथा दुख पाना, इसलिये हृदय में धीर धरो ।
मैं जो कुछ विनय सुनाती हूँ प्रीतम उसके अनुसार करो ॥
चाहे कितनी भी विपत पड़े, मा बापहि सब सह लेते हैं ।
पर अपनी प्रिय सन्तानों को, वे कभी दुःख नहिं देते हैं ॥
इसलिये पुत्र और कन्या को, वहां पर भिजवाना ठीक नहीं ।
तुम सबके पालक हो इससे, तुम्हरा भी जाना नीक नहीं ॥

अस्तू दो आज्ञा मुझे, जाने को प्राणेश ।
जिससे क्षण भर में सभी, मिटे तुम्हारा क्लेश ॥

पत्नी को चहिये पति को ही, समझे निज जीवन धन अपना ।
और उसके ही हित साधन में बलिदान करे बस तन अपना ॥
इसलिये प्रार्थना करती हूं, मैं अपना धर्म निभाने को ।
श्रीमुख से एक बार दे दो, आज्ञा प्रीतम तहां जाने को ॥
कर हठ तुमने यदि प्राण तजे, मम प्राण भी निश्चय जावेंगे ।
उस समय हमारे प्रिय बच्चे, बिल्कुल अनाथ हो जावेंगे ॥

यदि आप रहें जिन्दा जग में, इनकी सम्भाल हो जावेगी।
फिर मेरे मर जाने पर भी, इनको न याद कुछ आवेगी॥
जिसने दुनियां में जन्म लिया, उसका मरना निश्चय गर है।
तो पति की रक्षा के निमित्त, जीवन तजना ही बेहतर है॥

अस्तू जल्दी हुक्म दो, मुझको आर्य-कुमार।
जगदीश्वर सन्तान को, रक्खे सुखी अपार॥

सुन दोनों की आरत बानी, कन्या को जोश हुआ भारी।
सब भूल गई रोना धोना, और बोल उठी वो सुकुमारी॥
हे मातु पिता मेरे होते, किसलिये आप घबराते हैं।
क्यों नहीं मुझे आज्ञा देकर, निश्चर के पास पठाते हैं॥
है धर्म हमारा तो ये ही, दुख से तुम्हरा उद्धार करें।
अस्तु मम विनती सुन मुझको, दें हुक्म न सोच विचार करें॥

अपनी प्यारी पुत्रि के, सुन कर ऐसे बैन।
उस ब्राह्मण के और भी, लगे टपकने नैन॥

अब कुन्ती स्थिर रह न सकी, फौरन ही भीतर चली गई।
आश्वासन देती हुई उन्हें, बोली यों बानी सुधामई।
हे दयावान धर्मज्ञ विप्र, क्या दुख है मुझको बतलाओ।
तन मन से मदद करूंगी मैं, कुछ धीर धरो मत घबराओ॥
सुन वचन विप्र बोला देवी, हम पर जो विपता आई है।
उस से रक्षा करने वाला, देता न मनुज दिखलाई है।
फिर भी यदि सुनना चाहती हो, तुमको बतलाये देता हूं।
जिस कारण मैं परिवार सहित, यों ठंडी स्वांसें लेता हूं

इतना कह कर विप्रने, किया समस्त बयान ।
सुन कर कुंती ने कहा, तजहु सोच विद्वान ॥
दुख दूर तुम्हारा करने का, मैंने एक यत्न विचारा है ।
निश्चय विपता टल जायेगी आगे वो हरि रखवारा है ॥
है केवल एक पुत्र तुम्हरे, सो भी है कम आयू वाला ।
दुनियां मे क्या सुख है दुख है, इसने न अभी देखा भाला ॥
कन्या भी भोली भाली है, गुणवती सुशीला सुकुमारी ।
क्यों इसे भेज कर करते हो, इस की आशाओं की ख्वारी ॥
फिर पत्नी और स्वयम् तुम भी, नहिं वहां जाने के लायक़ हो ।
पालक पोषक हो बच्चों के, और सब प्रकार सुखदायक हो ॥
हैं पांच पुत्र मेरे अस्तू, उनमें से एक पठाऊंगी ।
कुछ सोच नहीं वह मरे जिये, पर तुम्हरा दुःख मिटाऊंगी ॥

कहा विप्र ने सुन लिया, तुम्हरा पूण विचार ।
ऐसे निंदित काम को, नहीं हुं मैं तैयार ॥
अपने प्राणों की रक्षा हित, तेरे सुत को भिजवाऊं मैं ।
महमानी तो इक ओर रहो, उल्टा उसको मरवाऊं मैं ॥
है धर्म हमारा अतिथि और, शरणागत की रक्षा करना ।
बलिदान स्वयम् होना न के, उन्हीं लोगों का जी हरना ॥
इसलिये देवि बस क्षमा करो, मैं कभी न निंदित कर्म करूं ।
चाहे घर वालों का जीवन, नस जाये या मैं स्वयम् मरूं ॥

कुन्ती बोली ध्यान धर, सुन लो मेरा विचार ।
पर दुख मेटन के लिये, रहूं सदां तैयार ॥

हे विप्र एक सुत चीज़ है क्या यदि काम पड़े पांचों जावें ।
पर दुःख निवारन करने में, मर जावें या जिन्दे आवें ॥
तुमने हमको महमान बना नित प्रेम भाव दिखलाया है ।
जितना तुम से हो सका विप्र, सब तरह सुःख पहुँचाया है ॥
अब तुम्हें घोर दुख में लख कर, क्या धर्म है मम छिपजाऊं मैं ।
अपने दुख हरने वाले के, संकट को क्या न मिटाऊं मैं ॥

पुत्र मेरा बलवान है, धरो हृदय में धीर ।
'बक' राक्षक को सहज ही, डालेगा वह चीर ॥

इस तरह विप्र को समझा कर, कुन्ती झट लौट चली आई ।
आते ही वीर वृकोदर को, ये सारी गाथा बतलाई ॥
फिर कहा पुत्र इस ब्राह्मण का, सारा संकट हरना होगा ।
मैं प्रण कर आई हूं अस्तू, निश्चर को बध करना होगा ॥

भीमसेन ने मानली, माता की सब बात ।
भिक्षा से लौटे तुरत, इतने में सब भ्रात ॥

जब सुना ये हाल युधिष्ठिर ने, वे मन में अति अप्रसन्न हुवे ।
बोले एकान्त बुला करके, अपनी माता को खिन्न हुवे ॥
हे मातु पराये सुत के हित निज सुत के प्राण गमाती हो
क्या दुख से बुद्धी नष्ट हुई, क्यों हमको दीन बनाती हो ॥
जिसने अपने बाहुबल से हम सबको [illegible] बनाया है ।
लाक्षागृह दहन आदि दुख से जिसने [illegible] बचाया है
फिर रस्ते में जब हम हारे, चल सके न [illegible] हुवे ।
तब इसी वीर के भुजबल से, हम उन संकट के पार हुवे

यहां तक ये भीमहि हैं जिन के डर से दुर्योधन थर्राता ।
अतुलित बलशाली होकर भी, सुख से न नींद लेने पाता ॥
आगे भी हमें भरोसा है, हे माता इनही के बलका ।
कर सकेंगे क्षय हम इकले ही, अपने सारे शत्रू दल का ॥

फिरभी तुमने किसलिये, कर डाला ये काम ।
तुम्हें सोचना चाहिये, था पहिले परिणाम ॥
कहा मातुने प्रथम ही, सब कुछ सोच विचार ।
ऐसा करने के लिये, हुई हुँ मैं तैयार ॥

बुद्धी नहिं नष्ट हुई मेरी, मुझको स्वधर्म ने उकसाया ।
क्षत्राणी हूं इसलिये पुत्र, क्षत्राणी सम करना चाया ॥
गो किस्मत ने चक्कर देकर, सब तरह किया लाचार हमें ।
तो भी औरों को दुख में लख, करना चहिये उपकार हमें ॥
फिर ये ब्राह्मण तो नित्यप्रती, हमको सुख देता आता है ।
अस्तु इसकी रक्षा करना, अपना कर्तव्य बताता है ॥
इसमें केवल विप्र ही नहीं, दुख से छुटकारा पावेगा ।
बल्की उस निश्चर के भय से, सब नगर अभय होजावेगा ॥
और हरेंगे निश्चय भीमसेन, पापी का जीवन एक पल में ।
क्योंकि इनके सम महावीर, दृष्टी नहिं आता भूतल में ॥
इसलिये डरो मत पुत्र मेरे, दो आज्ञा तुम भी हरषा के ।
जिससे बलवीर शीघ्र ही जा आवें निश्चर को वध करके ।

*** गाना ***

(तर्ज़ घड़ी आज की प्यारी प्यारी मुबारिक)

बदी करके दुनिया से जाना न चहिये ।
पर उपकार से मन हटाना न चहिये ॥
चहे जान पर आ बने कुछ नहीं ग़म ।
मगर धर्म को सुत भुलाना न चहिये ॥
जो हो देश द्रोही कुकर्मी कुबुद्धी ।
दया उन पै हरगिज दिखाना न चहिये ॥
है अपना यही धर्म दुखियों के दुखको ।
करें दूर इस मे बहाना न चहिये ॥
किये विप्र ने कितने ही अहसां हमपर ।
मदद करने मे हिचकिचाना न चहिये ॥

हुये युधिष्ठिर अति सुखी, सुन माता की बात ।
कहा भीम से आय कर, जाना निश्चय प्रात ॥
प्रातकाल के होत ही, चले भीम बलवान ।
लेकर अपने संग में, भोजन का सामान ॥

जा नियत जगह पर बैठ गये, और सुखसे भोजन खाने लगे ।
ले बार बार निश्चर का नाम, चिल्लाकर उसे बुलाने लगे
सुनकर आवाज़ वो विकटानन, आतुर हो वहां चला आया ।
और इनको भोजन करते देख, होगया लाल अति रिसि आया ॥

* गाना *

(तर्ज - घड़ी आज की प्यारी प्यारी मुबारिक)

वदी करके दुनियां से जाना न चहिये ।
पर उपकार से मन हटाना न चहिये ॥
चहे जान पर आ वने कुछ नहीं ग़म ।
मगर धर्म को सुत भुलाना न चहिये ॥
जो हो देश द्रोही कुकर्मी कुवुद्धी ।
दया उन पै हरगिज दिखाना न चहिये ॥
है अपना यही धर्म दुखियों के दुखको ।
करें दूर इस मे वहाना न चहिये ॥
किये विप्र ने कितने ही अहसां हमपर ।
मदद करने मे हिचकिचाना न चहिये ॥

हुये युधिष्ठिर अति सुखी, सुन माता की बात ।
कहा भीम से आय कर, जाना निश्चय भ्रात ॥
प्रातकाल के होत ही, चले भीम बलवान ।
लेकर अपने संग में, भोजन का सामान ॥

ा नियत जगह पर वैठ गये, और सुखसे भोजन खाने लगे ।
ो वार वार निश्चर का नाम, चिल्लाकर उसे बुलाने लगे ॥
नकर आवाज़ वो विकटानन, आतुर हो वहां चला आया ।
और इनको भोजन करते लख, होगया लाल अति रिसिआया ।

दांत पीस कर यों कहा, अरे ढीठ नादान ।
क्यों बकता है जल्द कर, यमपुर का सामान ॥

यों कह ताक़त से एक मुक्का, झट उछल वृकोदर के मारा ।
गो चोट पीठ में अधिक लगी, पर सहन किया संकट सारा ॥
जब तक भोजन की वस्तु रही, ये नमित दृष्टि कर खाते रहे ।
वो ताडन करता रहा इन्हें, ये शांत भाव दरसाते रहे ॥
हो गया शेष जब सब भोजन, तब जी भरके जल पान किया ।
फिर खंभ ठोक सन्मुख आकर, रण करने का सामान किया ॥
ये देख निशाचर क्रोधित हो, झट उठा एक तरुवर धाया ।
इस तरफ भीम ने भी तरु ले, एक हाथ दिया वो घबराया ॥
होगया भयानक युद्ध शुरू, तरु टूट टूट कर गिरने लगे ।
अति क्रोधित हो दोनों योद्धा, दांये बांये हो भिड़ने लगे ॥

सह न सका वो मार को, किया भयानक शोर ।
चीर दिया तब भीम ने, भुज मे ले, कर ज़ोर ॥

इस तरह निशाचर को वध कर, बलवीर वृकोदर घर आये ।
लख इनको सबने हो प्रसन्न, उस परम पिता के गुण गाये ॥
फिर रहन लगे आनन्दित हो, निज मातु सहित पांचों भाई ।
'श्रीलाल' सुनो अब हुआ था जिमि, द्रौपदी स्वयम्वर सुखदाई ॥

श्रीकृष्णार्पणमस्तु

———

महाभारत पांचवां भाग

द्रौपदी स्वयंवर

महाभारत ॐ पांचवां भाग
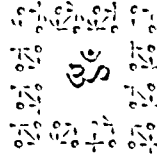
द्रौपदी स्वयम्वर

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—

महाभारत पुस्तकालय, अजमेर.

मुद्रक—कं. हमीरमल लूणिया
अध्यक्ष-दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

द्वितीय बार २०००

विक्रमी संवत १९९१
ईस्वी सन १९३४

मूल्य [illegible] आने

❀ प्रार्थना ❀

(तर्ज़ः—आज श्याम मोहि लीन्ह बंसरी बजायके)

दीन बंधु दीन जान कर कृपा दिखाइये ॥

जबसे जनम लीन्ह प्रभू, कर्म भल न कीन्ह प्रभू;
कुपथ चित्त दीन्ह प्रभू, सुपथ अब बताइये ॥ दीन ॥
नरका जगमें धरम क्या है, उसका सत्य करम क्या है;
जीव ब्रह्म मरम क्या है, बस यही सिखाइये ॥ दीनबंधु ॥
जब तलक ये देह रहे, तब चरण में नेह रहे;
धर्म में सनेह रहे, बर यही दिलाइये ॥ दीन ॥
परोपकार करता रहूं, पाप से मैं डरता रहूं;
नित तुम्हें सुमरता रहूं, ऐसा ज्ञान चाहिये ॥ दीन ॥

मंगलाचरण

रक्ताम्बर धर विघ्न हर, गौरीसुत गणराज ।
करना सुफल मनोर्थ प्रभु, रखना जन की लाज ॥
सृष्टि रचन, पालन, हरन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश ।
उमा, रमा, वानी सुमिल, रक्षा करहु हमेश ॥
वन्दहुं व्यास विशाल बुधि, धर्मधुरंधर धीर ।
महाभारत रचना कर्ता, परम रम्य गम्भीर ॥
जासु वचन रवि जोति सम, मेटत तम अज्ञान ।
वंदहुं गुरु शुभ गुण भवन, सद्गुजरल भगवान ॥

* ॐ *

नारायणं नमस्कृत्य, नरंचैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं, ततोजय मुदीरयेत् ॥

कथा प्रारम्भ

पंचालेश्वर के हुये. जब से तीनों बाल ।
तब से अति आनन्द से, लगा बीतने काल ॥

बनगया भवन सुख का सागर, दर्शन कर इन सुकुमारों का ।
नित रहन लगा आनन्दायक, शुभ शब्द मंगलाचारों का ॥
रैयत ने भी कई उत्सव कर, अपनी प्रसन्नता दिखलाई ।
सब विधि सजने से नगरी भी, होगई मनोहर सुखदाई ॥
था पहिला सुत जो धृष्टद्युम्न, धनुविद्या में परिपूर्ण हुआ ।
पंचालदेश के वीरों का, इसके आगे मद चूर्ण हुआ ॥
अर्जुन व कर्ण सम इसने भी. पदवी महारथी की पाई ।
रहती थी इसके ही आश्रित, सारे प्रदेश की कटकाई ॥
कुछ दिन में शस्त्र चलाने में, होगया शिखंडी भी नामी ।
अनगिनती रहते थे योधा, इस महावीर के अनुगामी ॥
यों दोनों इन महाराजा के, अति प्रेम पात्र कहलाते थे ।
सर्वोत्तम यत्नों के द्वारा, निज सुत से पाले जाते थे ॥

कन्या भी शशिमुख हुई. सुन्दरता की खान ।
इसका अनुपम देख तन, हुये भूप हैरान ॥

[illegible] थे राजकुमारी [illegible], [illegible] दृष्टि न आती है ।
[illegible] महान [illegible] [illegible] दर्शना है ॥
[illegible] को पुत्री के [illegible], [illegible] श्रेष्ठ [illegible] ।
[illegible] ॥

इस समय पांडुसुत अर्जुन यदि, चालों में आ दुर्योधन की।
होता न दग्ध लाखा-गृह में, तो आश पूर्ण होती मनकी॥
हा बचेपन में ही कैसा, वो वीर अतुल बलशाली था।
ले धनुष जिस तरफ़ जाता था, करदेता मैदां खाली था॥
पर फिक्र नहीं ये आर्यदेश, है भरा हुआ बलवानों से।
वे हैं अब भी करदें जो प्रलय, तजते ही तीर कमानों से॥

गाना

नहीं है देश भारत सम कोई दुनिया में बलवानी;
जिधर जाती है दृष्टी दीखते है वीर भटमानी।
जगत के मुल्क जितने है सभी गुण इस के गाते हैं;
बताते हैं इसेही सर्वगुण-सम्पन्न लासानी।
बात जाने दो यहां की स्वर्ग तक में बल दिखाया है;
इसी से करते है आदर सकल सुर जान गुणखानी।
फ़क़त बल में ही इसको श्रेष्ट कहना मूर्खता होगी;
असल मे लक्ष्मि और विद्या न इसके सम कहीं पानी।
नहीं है फिक्र अर्जुन का यहां उस सम अनेकों हैं;
धन्य है वीर जननी जन्म भूमी सर्व सुखदानी।
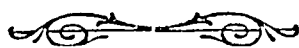
अस्तु स्वयम्बर पुत्रिका, करूं बुला रणधीर।
देखूं तो है कौनसा, सब से बढ़कर वीर॥

ये विचार महाराजा ने, एक शिल्पकार को बुलवाया।
इसके द्वारा अति विशाल, कोदंड एक दृढ़ बनवाया॥
एक घिरनी करके, फिर उसे अधर में लटकाई।
और उससे कुछ ऊँचाई पर, एक मीन लोह की टंगवाई॥

रखवाया एक कड़ाव बड़ा, इसके बिल्कुल नीचे भूपर।
परिपूर्ण तेल से करके उसे, प्रण ठाना नृप ने हर्षा कर॥
जिस योधा ने ये धनु चढ़ाय, लख तेल में मछली की छाया।
घिरनी के छिद्रों में होकर, शर उसके दृग में पहुंचाया॥
बस वही भाग्यशाली मनुष्य, त्रिभुवन विजयी कहलायेगा।
मम सुता द्रौपदी को वह ही, पत्नी स्वरूप में पायेगा॥

ये प्रण पंचालेश का, पहुंचा देश विदेश।
सुनते ही आने लगे, अगणित क्षत्रि नरेश॥

दुर्योधन आदिक भ्रातागण, बलवान कर्ण को संग लिये।
पंचाल देश में आपहुंचे, सजधज कर मोहन रूप किये॥
बलराम सहित आनन्दकंद, श्री कृष्णचन्द्र भी हर्षि आये।
लखने के लिये स्वयम्बर को, यादवों के संग चले आये॥
बलवान मगधपति जरासन्ध चन्देरी नृप शिशुपाल बली।
आगये शीघ्र द्रौपद पुर में, ब्याहने को द्रौपदराज लली॥
अति दीर्घकाय भगदत्त भूप, नृप भूरिश्रवा सिन्धुराजा।
महारथी मद्रपति शल्य और, नृप कलिंग कोसल महाराजा॥
बाह्लीक सुशर्मा चेकितान, कंबोज विराट कृतवर्मा।
अरु काश्मीर नृप देवक से, आये अनेक [illegible] वर्मा॥
यहां तक [illegible] धारण [illegible] सब थे आपहुंचे।
[illegible] भी जो [illegible] संवाद, दिशा में [illegible] थे आपहुंचे॥
[illegible] थी जिन जिन ने जग में, धनुविद्या की शिक्षा पाई।
वे सब [illegible] को [illegible] [illegible] [illegible]।
इन के अतिरिक्त सैकड़ों ही, योगीन्द्र यती अरु संन्यासी
[illegible] के लिये स्वयम्बर को, आये [illegible] सुखरासी॥

राजा ने [illegible] किया, [illegible] मान
जिसके [illegible] [illegible] ध्यान॥

व्यासदेव ने भी सुना, इस उत्सव का हाल।
देखन की इच्छा हुई, अस्तु चले तत्काल॥

पांडवों को भी ले चलने की, जल्दी में, मुनि ने ठहराई।
इसलिये एक-चक्रा नगरी, जा पहुंचे तुरतहिं ऋषिराई॥
पांडवों ने सुख से पूजन कर, इनको आसन पर बिठलाया।
फिर भक्ति भाव से नमन किया, आशीर्वाद ले सुख पाया।
संक्षेप में अपनी जन कुशल, पांचों भाई बतलाने लगे।
इसके उपरांत मुनी निजके, आनेका हेतु जताने लगे॥

यहां से थोडी दूर है, नगर एक पंचाल।
राज करत तहं नीतियुत, द्रुपद नाम महिपाल॥

उसके द्रौपदी नाम की है, कन्या एक अनुपम रूपमई।
अवतार है सचमुच देवी का, और यज्ञ कुन्ड से प्रगट भई॥
होवेगा शीघ्र स्वयम्बर अब, उस रूप-राशि गुणवाली का।
द्रौपद की इकलौती कन्या, सुमुखी सुन्दर पंचाली का॥
अस्तु अब तुम सब चलो वहां, उत्सव लख अवको बहलाना।
बस यही काम था इसीलिये, इस तरफ हुआ मेरा आना॥

ये प्रसंग सुन मातु युत, हर्षे पाचों वीर।
चले स्वयम्बर देखने, पहिरे वल्कल चीर॥

सुन्दर वन उपवन लताकुंज, पर्वत अनेक नदी नाले।
आच्छादित बहु रंग कमलों से, तालाब फटिक सम जल वाले॥
इनकी मन मोहन सुन्दरता, लख कर ये सब हर्षाते थे।
विश्राम ग्राम को करते हुये, आगे को बढ़ते जाते थे॥
[illegible] चलते "उत्कोच" नाम, सुखधाम एक तीरथ आया।
जगह ठहर इन लोगों ने, मज्जन कर अति आनन्द पाया॥

'धौम्य' विप्र इक था यहां, तपो तेज की खान।
किया पांडवों ने इसे, प्रोहित, लख गुणवान॥

फिर चढ़े अगाड़ी क्या देखा, बहु संख्यक ब्राह्मण जाते हैं ।
आपस में वेद पुराणों का, कुछ धर्मोपदेश सुनाते हैं ॥
पांडव सब ब्राह्मण भेष में थे, अस्तु न उन्होंने पहिचाना ।
है ये भी विप्र कुमार कोई, बस यही हृदय में अनुमाना ॥
अस्तु बोले हे महाराज, तुम कहां भटकते फिरते हो ।
क्यों नहीं हमारे साथ साथ, पंचाल नगर को चलते हो ॥
होवेगा वहां स्वयम्वर इक, द्रौपद की राज दुलारी का ।
पंकज सम सुभग नेत्रवाली, अति ही सुन्दर सुकुमारी का ॥
इसमें लग भग सब देशों के, धनुवेद विशारद गुणज्ञानी ।
आवेंगे अगणित अवनीपति, बांके बलशाली अभिमानी ॥
कुल से ये वृहत समागम लख, तुम साथ हमारे आजाना ।
या जैसी तुम्हरी इच्छा हो, आना अथवा यहां रहजाना ॥

रूप तुम्हारा देखकर, चित में उठे विचार ।
हो तुम सब निश्चय कोई, देवों के अवतार ॥

क्या आश्चर्य है तुम में से, कोई जो द्रुपद-कुमारि वरे ।
या दिग्विजय वाली प्यारी, सुन्दर जयमाला कंठ धरे ॥
इसलिये चलो और अवश्य चलो, शायद विचार सच हो जावे ।
कुछ असर नहीं रहती इसका, फिर समय भाग्य पलटा खावे ॥
सुन कर उनकी बातों को, वे सब मन में हुलसाते थे ।
हां में हां करते हुवे चतुर, जाने का नाद बजाते थे ॥

फल लदे हुये तरुवर पर से, कोयल कल कंठ सुनाती थी।
करते थे नृत्य मयूर कई, सब भूमि हरी दरसाती थी॥
थे अति सुन्दर पुर के मकान, बाजार की भी छवि थी न्यारी।
ले कई तरह की चीज वस्तु, बैठे थे अगणित व्योपारी॥
सारांश ये कि हर एक चीज़, सुन्दर हि दृष्टि में आती थी।
तबियत नहिं रहती थी बस में, जहां जाती वहीं लुभाती थी॥

देख नगर पंचाल सब, इक कुम्हार गृह जाय।
विप्रों से होकर विदा, उतरे पांचों भाय॥

इस जगह पे सब आनन्द सहित, रहकर दिन रात बिताते थे।
करते थे भ्रमण सकल पुर में, भिक्षा कर गुजर चलाते थे॥
इस तरह कई दिन बीत गये, तब दिवस स्वयम्वर का आया।
ये देख सभी महमानों के, हृदय में अति आनन्द छाया॥
उत्सव में शामिल होने की, तैयारी करने लगे सभी।
अति उत्तम वस्त्राभूषण से, सजधज कर चलने लगे सभी॥
तन पर पांचों हथियार लगा, नृप मन मोहन छबि किये हुये।
झट चले स्वयम्वर की जानिब, अरमान अनेकन लिये हुये॥
कोई बोला मेरे समान, होगा न जहां में धनुधारी।
इसलिये लक्ष भेदन करके, मैं ही व्याहूंगा सुकुमारी॥
और कहा किसी ने ताने से, वो लक्ष न बिधने पावेगा।
जो यत्न करेगा भी तो वह, निश्चय निराश हो आवेगा॥
उस हालत में पंचाली को, व्याहेगा वो ही नरराई।
जिसमें समस्त भूपालों से, बढ़कर होगी सुन्दरताई॥
तो भला सकल भूमंडल में, मुझसम किस नर का रंग होगा।
लिये द्रौपदी का विवाह, निश्चय मेरे ही संग होगा॥
तने ही बोले सुन्दरता, उत्तम कुल से दब जायेगी।
दि लक्ष भेद नहिं हुआ तो फिर, द्रौपदी मुर्झा को व्याहेगी॥

इस तरह कोई बाहुबल पर, कोई कुल पर इतराता था ।
था मस्त कोई सुन्दरता में, कोई कुछ और सुनाता था ॥
यों ही सब भूपाल गण, बातें करते जांय ।
भूषण रवि की ज्योति से, चकाचौंध फैलांय ॥
और कई तिलक छापे लगाय, मृग चर्म बगल में लिये हुये ।
आ रहे थे विप्रों के समूह, पीताम्बर धारन किये हुये ॥
जय गुपाल जय गिरधर नटवर, कोई उच्चारन करते थे ।
थे कोई शक्ती के सेवक, कोई शिव नाम सुमरते थे ॥
ब्रह्मचारी योगी यती, परमहंस कइ एक ।
चले स्वयम्वर देखने, करत विचार अनेक ॥
पुरवासी गण बालक जवान, बूढ़े नर नारि काम तजकर ।
झट चले स्वयम्वर देखन को, कई तरह के अम्बर धारन कर ॥
महाराज द्रुपद ने भीड़ देख, भेजा प्रबंधकर्ताओं को ।
आ जिन्हों ने सादर बिठलाया, दर्शकों सहित राजाओं को ॥
सब यथा योग्य स्थान पाय, हर्षाय बैठते जाते हैं ।
इतने में पांडु पुत्र पांचों, इस रंगभूमि में आते हैं ॥
विप्र भेष में आत सब, रंग भूमि में आय ।
चहुं ओर देखन लगे, अपनी दृष्टि घुमाय ॥
देखा मंडप है अति विशाल, बहु संभक खंभे गड़े हुये ।
मेहमानों के सत्कार हेतु, तहां अगणित सेवक खड़े हुये ॥
एक तरफ सुघड़ अंबराई पर, बैठे हैं सारे पुरवासी ।
और तरफ दूसरी शोभित हैं, योगीन्द्र यती अरु सन्यासी ।
है मध्य में कुछ ऊंचे ऊंचे, कांचनित मंच [illegible] रहे ।
जिन पर आगन्तुक राजा गण, हैं बैठे बातें [illegible] रहे ।
इनके पीछे अट्टालिकायें, अति सुंदर दृष्टि आतीं
इन जगह नारियां सुभग गान, मृदु स्वर से बैठी [illegible]

मंडप के दरम्यान में, है वो असली बात।
जिस को करने के लिये, आये हैं नर नाथ॥
वो क्या है भूपर रक्खा है, एक पात्र तेल से भरा हुआ।
जिसके समीप ही एक खंभ, है मजबूती से गड़ा हुआ॥
इस की चोटी पर लोह निर्मित, एक मीन दृष्टि में आती है।
जिसके कुछ नीचे की जानिब, एक घिरनी चक्कर खाती है॥
हैं इस मछली के हीरे के, नक्षत्र समान दमकते हैं।
परछाइं तेल में अंकित कर, एक चमक सी पैदा करते हैं॥
रक्खी है उस पात्र के, निकट हि सुदृढ़ कमान।
दर्शक वृन्दों का हृदय, करती जो हैरान॥
इस दृश्य से कुछ दूरी पर हट, महाराज द्रुपद का आसन है।
और पास हि में शोभायमान, इक रत्न जटित सिंहासन है॥
बैठे हैं उसपर श्रीकृष्ण, नटवर, मधुसूदन, गिरधारी।
आनन्दकंद, यसुदा के नंद, दुख-द्वंद- निकंदन बनवारी॥
जन-मन-रंजन, खल-मद-गंजन, भंजन भूभार दयासागर।
शोभा अपार नर देह धार, लीना औतार सबगुण आगर॥
घन के समान अति छवि निधान, भगवान का मुख दरसाता है।
उत्तम अनूप सुन्दर स्वरूप, लख जिसे मदन शरमाता है॥
मोतिनकी माल और तिलकभाल, लोचन विशाल यदुनंदन के।
पीताम्बर धर मुरली लेकर, शोभित हैं अधर ब्रजचंदन के॥
दुनियां की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, जिसकी इच्छा पर निर्भर है।
जो निर्गुण निरंजन निराकार, सच्चिदानन्द और सुखकर है॥
बुद्धी न पहुंच सकती है जहां, जहां मन न ठहरने पाता है।
चन्तान कर जिसका चिन्तन भी, हो थकित शांत हो जाता है॥
उस परब्रह्म अविनाशी का, वेदों ने पार न पाया है।
भक्तों के वस हो वही ब्रह्म, धर सगुण रूप यहां आया है॥

मनही मन में मुसकाते हैं, बलराम सहित लीलाधारी।
मन को मोहनी है मंत्र सरिस, मनमोहन की मूरति प्यारी॥
लख ऐसी छवि कृष्ण की, हर्षित हो सब भाय।
कर प्रणाम बैठत भये, विप्र वृंद में जाय॥
राजा, महाराजा, पुरवासी, ऋषि,मुनिगण,ब्राह्मण,सन्यासी।
पांडवों को सकल समझते थे, हैं ये भी कोई वनवासी॥
जैसे हम सब एकत्र हुये, द्रौपदी विवाह लखने के लिये।
वैसे ही ये भी आ पहुंचे, अपना मन खुश करने के लिये॥
एक असली कारण और भी था, जिस से न कोई पहिचानते थे।
जब से लाखा-गृह दहन हुआ, पांडव विलीन महि जानते थे॥
परन्तु यहां बैठे जभी, आकर पांडु-किशोर।
श्रीकृष्ण के नैन तब, लगे इन्हीं की ओर॥
पांचों का अद्भुत भेष देख, यादवनन्दन मुस्काते हैं।
धीरे धीरे निज भाई को, इनका सब भेद बताते हैं॥
सब सुन बलभद्र हुये हर्षित, फिर लगे विलोकन सुन्दराई।
इस समय सु अवसर लख नृपने, अपनी प्रिय कन्या बुलवाई॥
वस्त्राभूषण साजतन, सुंदरता की खान।
चली द्रौपदी संगले, सखियां चतुर सुजान॥
थी सुमुखि सुलोचनि, पिकबयनी, लावण्यमई वर सुकुमारी।
गंभीर चाल से चलती थी, थी पहिरे हुये सुंदर सारी॥
मेंहदी युत कोमल हाथों में, कंचन की माला लिये हुये।
मुसकाती थी वह मद वाला, दृष्टी [illegible] नीची किये हुये॥
सखियां भी सुंदर सजी हुईं, [illegible]
छवि मुंह में शोभित [illegible]
[illegible] रंग [illegible]
इस रूप अनूप को लखते ही, [illegible]

पत्थर की मूर्ति समान हुये, उस रंग अवनि के नर नारी।
हो रहित निमेष लगे लखने, सुधि बिसर गई तनकी सारी॥
इतने में पितु हुक्म पा, धृष्टद्युम्न हर्षाय।
रंग भूमि में हो खड़े, बोले हाथ उठाय॥
हे सभ्य उपस्थित नृपवृन्दों, हे शत्रु नाश करने वालो।
हे धर्म धुरंधर तेज पुंज, हे आर्य देश के उजियालो॥
धर ध्यान सुनो वो कहता हूं, मम पितु ने जो प्रण ठाना है।
और जिसे पूर्ण करने के लिये, तुमको यहां पड़ा बुलाना है॥
वो लखो सामने भूमी पर, एक खंभ दृष्टि में आता है।
जिसकी चोटी पर मीन बनी, नीचे एक यंत्र भ्रमाता है॥
है जड़ में उसही खंभे की, शर सहित शरासन पड़ा हुआ।
और उसके निकट हि रक्खा है, एक पात्र तेल से भरा हुआ॥
जो वीर तेल में मछली की, परछाई का अवलोकन कर।
शर चढ़ा आंख को वेधेगा, इस यंत्र छेद में से होकर॥
बस उसी वीर धनुधारी की, निश्चय जय समझी जायेगी।
जय माल गले में पहिनाकर, द्रौपदी उसी को ब्याहेगी॥
अस्तू जो नर धनुविद्या में, अपने को श्रेष्ठ समझता हो।
कृष्णा को आज स्वयम्बर में, बरने की इच्छा रखता हो॥
वही वीर मैदान में, उठकर फौरन आय।
अपने भुजबल को यहां, किस्मत से अजमाय॥
क्योंकि सोना उत्तम है वही, जो निकले खरा कसौटी पर।
और शस्त्र वही होता है श्रेष्ठ, चमके जो रिपु की चोटी पर॥
बस इसी तरह पुरुषारथ भी, वोही अति श्रेष्ठ कहाता है।
जो वीर वरों के मंडप में, परिपूर्ण सफलता पाता है॥
अस्तु उठो भूपाल गन, निज निज बल दिखलाउ।
लक्ष भेद कर जय सहित, द्रुपद-सुता को पाउ॥

मनिरां है कौमी ताकत का, अवसर है आगे परिक्षा का।
इसमें कितना पानी है यहां, कैसा है बल धनु शिक्षा का॥
निज वंश के मान प्रतिष्ठा को, शानो शौकत न गमा देना।
कुल का गौरव रखने के लिये, अपना कुल जोर लगा देना॥
देखें तुममें से कौन वीर, इस काम को पूरा करता है।
और कौन द्रौपदी भगिनी को, पत्नी स्वरूप में वरता है॥
इतना कह ये खामोश हुये, मचगई खलबली वीरों में।
जोशीले शब्दों को सुनकर, आगया जोश रणधीरों में॥
आंखों ने फौरन रंग बदला, बाजू और होठ फरकने लगे।
रणबंका के झटपट खड़े हुए, घन से सदृश गरजने लगे॥
फिर चले तुरत आंधी सम वे, मद मस्त हठीले अभिमानी।
दांतों से होंठ काटते थे, बल से गर्वित हो मस्तानी॥

मनमथ के शर जाल से, होकर अति हैरान।
लगे परस्पर वीर वर, तकने शत्रु समान॥

टीडी दल सम दल भूपों का, जब लक्ष भेदने आने लगा।
तब बाजों का घनघोर शब्द, अपना प्रभाव दरसाने लगा॥
उस महाध्वनी से ध्वनित हुई, क्षण भर में रंगभूमि सारी।
उत्साह बढ़ गया वीरों में, चुपचाप हो गये नर नारी॥
अनगिनत वीर बांके योधा, थे दस्त्र जिन्हों के भरपूरी।
बारी बारी से करन लगे, निजनाम प्रकाश दे मर्दानी॥
हाथों को दबा झट झपट जल्द, अपना कुल जोर लगाते थे।

रंग भूमि का रंग सब, भंग हुआ छिन मांहि।
हो बदरंग चलने लगे, लज्जित हो मन मांहि॥
जो वीर मस्त हथी की तरह, बलसे गर्वित हो आता था।
वो हार मान सिर नीचा कर, आखिर शरमाता जाता था॥
इस तरह सुयोधन, शल्यआदि, सारे राजा छवि छीन हुये।
परिहर सब आश द्रौपदी की, निज निज समाज आसीन हुये॥
मचगई स्वयम्वर में हल चल, सब जोश नृपों का हवा हुआ।
ये लखकर श्रेष्ठ धनुर्धारी, रविपुत्र कर्ण तब खड़ा हुआ॥
और निकट आय उस खंभे के, झटपट ज्यायुक्त किया धनुको।
छाया उस मछली की विलोक, ताना फिर कठिन शरासन को॥
दो पल में ठीक निशाना कर, चाहा मछली के शर मारूं।
और गिरा भूमिपर उसको मैं, नृप का प्रण पूरा कर डारूं॥
इतने में कृष्णा बोल उठी, इससे नहिं ब्याह करूंगी मैं।
ये सूत पुत्र है क्षत्रि नहीं, इसलिये इसे न वरूंगी मैं॥
माना ये सब भूमंडल के, वीरों में अति बलशाली है।
लेकिन है सुमन ढाक का ये, खुशबू से बिल्कुल खाली है॥
सारथि ने किया भरन पोषण, राधा ने दूध पिलाया है।
मैं कभी नहीं स्वीकारूंगी, क्या जाने किसका जाया है॥
सुन वचन द्रुपद बोले पुत्री, तव वचन न हमें सुहाते हैं।
सेनप, कुलीन और शूरवीर, सम भाव से देखे जाते हैं॥
अस्तु कर्ण यदि कर सकें, मत्स्य-वेध यहि काल।
तो होगी तुमको इन्हें, पहिरानी जयमाल॥
सकुची कृष्णा पर कर्ण ने भी, शारंग से बान उतार लिया।
दृष्टि डाल कर सूरज पर, धनु पटक शीघ्र प्रस्थान किया॥
राजा ने जाने का कारण, जब पूछा इनसे सकुचाकर।
तब महा धनुर्धर रविनन्दन, बोले यों नृप से मुस्काकर॥

जब एक बार कर चुकी प्रगट, अश्रद्धा मम प्रति सुकुमारी।
तब इसके लिये यत्न करना, मैं गिनता हूं पातक भारी॥
यों कह कर्ण चले गये, निज समाज तत्काल।
लगे लगाने जोर तब, बाकी के भूपाल॥
शिशुपाल, सुशर्मा, मगधेश्वर, सिंधू-नृप आदिक नरराई।
सबही ने लक्ष वेधने में, कर प्रयत्न किस्मत अजमाई॥
पर हुई प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं, कर मलकर सब पछताने लगे।
ये देख कुपित हो धृष्टद्युम्न, सबको इस तरह सुनाने लगे॥
क्षत्रियो! तुम्हारी हालत लख, हृदय में ये अनुमान हुआ।
बाहुबल और धनुविद्या का, दुनिया से अब अवसान हुआ॥
मिटगया वंश अभिमान सभी, जो सिर पे वे अब स्यार हुये।
हे वीर जननि भारत माता, तेरे ये क्या आसार हुये॥

❀ गाना ❀

होगया मालुम मुझे इस वीर हिन्दुस्तान की।
मिटगई विद्या सभी एकदम धनुष और बान की॥
जानते गर हम ये, सच्चे क्षत्रि भूपर हैं नहीं।
तो नहीं होती हंसी यहा पर हमारे मान की॥
दीखते भूपो तुम्हारे ऊपरी ही ठाठ सब।
असलियत मे नसगई सब बात कुल अभिमान की॥
देखते हो मेरा मुंह क्या घर सिधारो शीघ्र ही।
ये नुमाइश है नहीं बाजी यहा पर जान की॥
आके मैदां में वही इन्सा करेगा दूर डर।
जिसको परवाह होयगी निज कीरती की शान की॥

धृष्टद्युम्न के वचन सुन, सारे पृथ्वीपाल।
लगे देखने भूमि को, लज्जा से तत्काल॥

बस फकत कुन्तिसुत अर्जुन को, ये सुनकर क्रोध हुआ भारी।
भुजदंड शीघ्र ही फड़क उठे, आंखों ने लाल रंगत धारी॥
हो गया भेश का ध्यान दूर, तन क्षत्रि जोश से चमक उठा।
झट जगह छोड़ होगये खड़े, सूरज सम चहरा दमक उठा॥
और बोले धृष्टद्युम्न से क्यों, भारत को हीन बताता है।
ये हाथ अभी जिन कौशल से, तेरा सन्देह मिटाता है॥

❀ गाना ❀

भारत न कभी बल में कमजोर कहायेगा।
निज पूर्वजों के यश में बट्टा न लगायेगा॥
जब तक जहां में रोशन होवेंगे चाद सूरज।
पुरुषार्थी रहेगा, नहिं शान गमायेगा॥
वीरों को मूर्खता वश अपनी जवां से अनुचित।
जो भी कहेगा निश्चय वो हानि उठायेगा॥
कर बंद निज जबा को, हुशियार होके देखो।
ये कर अभी तुम्हारा सन्देह मिटायेगा॥

इतना ही कह कर चले, आतुर हो बलवान।
कोलाहल सा छागया, विप्रो के दरम्यान॥
कुछ ने तो होकर खुशी, दीन्हा आशिर्वाद।
कछुक सशंकित चित्तसे, करने लगे विवाद॥
हे भाई बड़ा अचम्भा है, इस ब्राह्मणको क्या खफ्त हुआ।
ऐसा क्या जोश उठा दिल में, जो के इससे नहिं जप्त हुआ॥
दुर्योधन, जयद्रथ, शल्य आदि, धनुवेद-विशारद बलवानी।
.से तो लक्ष विधादि नहीं, सब जोश हुआ पानी पानी॥
उस काम को ये अनभिज्ञ विप्र, क्यों कर पूरा कर सकता है।
फल मूल भक्षने वाले से, क्या मत्स्य वेध हो सकता है॥

मालूम हमें ये होता है, ये व्यर्थ गर्व में भूला है।
या कृष्णा की सुन्दरता लख, पाने की चाह में फूला है॥
भुजबल का बिना बिचार किये, चंचलता वश तहां जाता है।
निश्चय ये हंसी करावेगा, रोक दो ये जी में आता है॥
ये सुन कर कहने लगे, अपर विप्र मुसकाय।
जरा हृदय को थामकर, सोचो ध्यान लगाय॥
ये विप्र महारथ वीर बली, अलबेला हिम्मत वाला है।
ऐसा दिखता है किसी वीर, ब्राह्मण कुल का उजियाला है॥
हैं इसके कंधे वृषभ सरिस, बाहू विशाल दृष्टी आते।
कद, सीना जंघा आदि आदि, सब अंग वीरता दरशाते॥
फुरती भी इसकी अद्भुत है, अस्तू कुछ भी न अन्देशा है।
निश्चय ये लक्ष बेध देगा, हमको ये पूर्ण भरोसा है॥
फिर जो विप्रों से पूर्ण न हो, त्रिभुवन में ऐसा काम नहीं।
इससे चित्त शांत करो भाई, होगा कुछ बद अंजाम नहीं॥
पयव्रती फलाहारी ब्राह्मण, दुर्बल दिखाई देते हैं।
पर चाहें तो निज तप बल से, एक सृष्टि नई रच सकते हैं॥
सुधि नहीं क्या परसुरामजी ने, क्षत्रियों को मार भगाया था।
फिर मुनि "अगस्त" ने इकले ही, पीकर सब सिंधु सुखाया था॥
इसलिये चित्त में धीर धार, सब शक निकार कर दूर धरो।
दो आशिर्वाद प्रसन्न चित्त से, इसको न वृथा मजबूर करो॥
कहा तथास्तू सभी ने, चले पार्थ हरषाय।
पहुंच शरासन के निकट, खड़े हुये पुलकाय॥
सब से पहिले कैलाशपती, शंकर का मन में नाम लिया।
फिर धनु-विद्या देने वाले, गुरवर को तुरत प्रणाम किया॥
वहीं फौरन एक प्रेम भरी, उस द्रुपद-नन्दनी पर डारी।
फिर जल्दी से पहुंची निगाह, जहां बैठे थे लीलाधारी।

दृष्टी से दृष्टी मिलते ही, बल मिला और बलवानी को।
झट धनुष उठा उद्यायुक्त किया, कर प्रणाम शारंगपानी को॥
जिस धनु को उठा चढ़ाने में, नहिं सफल हुये थे नरराई।
तेजस्वी अर्जुन ने ये किया, आसानी से कर दिखलाई॥
फिर मछली का प्रतिबिंब देख, झट बान चढ़ा धनु संधाना।
और बांध के सीध निशाने की, शारंग को कानों तक ताना॥
शर के छुटते ही महा घोर, धनु की टंकोर हुई भारी।
मछली बिध कर झट आय गिरी, हो गये खुशी सब नर नारी॥

सभा मांहि हलचल मची, गूंजी जय जय कार।
सुमन वृष्टि होने लगी, दुंदुभि बजी अपार॥

सब विप्र प्रसन्न हुये मन में, और आशिर्वाद सुनाने लगे।
मागध, नट, चारण, सूत प्रभृति, सब मिल विरदावलि गाने लगे॥
बहुतेरे झांझ, मृदंग बजे, फिर लगी बाजने सहनाई।
स्त्रियों ने मंगल गान किये, बहु रंग पताका फहराई॥
द्रोपद ने अतिशय सुख पाया, और सोच कष्ट सब नाश हुआ।
बाकी नृप दुखित हुये क्योंकि, उनकी आशा का हास हुआ॥
श्रीकृष्ण पार्थ की ओर देख, मन ही मन में मुसकाते हैं।
भीमादिक चारों भाई भी, हर्षित होकर पुलकाते हैं॥
अर्जुन का अनुपम तेज देख, श्रीद्रुपद-सुता भी हर्षाई।
पाषाण-मूर्ति सम खड़ी रही, सुख की तरंग मन में छाई॥
सुधि बिसर गई तनकी सारी, कुछ ध्यान रहा नहिं सारी का।
लग गई लगन पिय चरणों में, मन रीझ गया सुकुमारी का॥

आज्ञा पा भूपाल की, कृष्णा के ढिंग जाय।
धृष्टद्युम्न कहने लगे, मन में अति हरषाय॥

दिन शुभ लग्न आज का है, जयमाला इनको पहिनाओ।
इसमें देर न करो बहिन, जल्दी जाओ जल्दी जाओ॥

सुन हुक्म लजाती सकुचाती, द्रौपदी पार्थ की ओर चली ।
दिल में धड़कन कपकपी और, हिय में अनुराग उमंग चली ॥
थी रक्त कमल सम हाथों में, वो माला विश्व विजय वाली ।
जिसकी आशा से आये थे, अगणित कुलीन नृप बलशाली ॥
कृष्णा ने प्रेम भरी दृष्टी, डाली प्रिय पर जब ढिंग आई ।
मानो दृग रूपी जयमाला, पहले प्रीतम को पहिनाई ॥
लज्जा वश ये तो कह न सकी, तुमको निज पति स्वीकार किया ।
पर पुलकित तन ने फौरन ही, वह गूढ़ माजरा प्रगट किया ॥
सारांश कि उत्तम वर पाकर, मन ही मन में अति हर्षाई ।
फिर दोनों कर ऊपर उठाय, जयमाल पार्थ को पहिराई ॥
इसके मिस मानों अर्जुन को, तन, मन, धन सब अर्पण कीना ।
फिर हाथ जोड़ झुकते झुकते, चरणों पर मस्तक धर दीना ॥
अपने गल में जयमाल देख, चरणों में शक्ति सुन्दर नारी ।
अर्जुन मन में आनन्द हुये, होगई बदन की छवि न्यारी ॥

इनके द्वारा लक्ष्य के, छिदते ही नरनाथ ।
आश रहित सब होगये, लगे मसलने हाथ ॥

छागई उदासी चहरों पर, कुम्हलाय गई काया सारी ।
लेते थे ऐसे दीर्घ स्वांस, मानो खोई सम्पत्ति भारी ॥
जिनमें से कुछ भूपों का तो, कृष्णा के वास्ते आते थे ।
वह हाल हुआ जैसे फाख्ता, होता है कपी समान ही ॥
कहते थे वे सब आपस में, कृष्णा को सब जाने देना ।
जिस तरह बने वैसे मित्रों, करदे प्रयत्न हथिया लेना ॥
चाहा था इनको गुस्सा भी, विप्रों की [illegible] हलचल ।
लेकिन वे हैं अवश्य थे दिन, सब चुप बैठे थे मंचों पर ॥

पर जब कन्यादान को, हुये द्रुपद तैयार ।

उठ उठ फुरती से फैंट बांध, तीरो तलवार निकाल लिये।
कोलाहल करने लगे सभी, गुस्से से लोचन लाल किये॥
पकड़ो अभिमानी द्रोपद को, सिर काट महीतल में डारो।
सब राज पाट चोपट करदो, सुत सहित फौज को संहारो॥
ये मूर्ख स्वयम्वर में सबकी, इज्जत को हरना चाहता है।
तिनके के सदृष्य समझ हमें, एक विप्र से व्याह रचाता है॥
पहिले तो हमको मान सहित, बुलवा आदर सत्कार किया।
पर अंत में इस दुर्बुद्धी ने, सबका अपमान अपार किया॥
हैं यहां उपस्थित दुनियां के, उत्तम से उत्तम नरराई।
जिनका गुण रूप तेज और बल, देवों सम देता दिखलाई॥
इनमें से क्या एक भी, गुण सम्पन्न भुवार।
जचा नहीं इस दुष्ट को, कन्या के अनुहार॥
माना असमर्थ रहे हम सब, मछली को वेध गिराने में।
इसका क्या, अच्छे अच्छे तक, गलती करते हैं जमाने में॥
बस अब इसको है उचित यही, हम में से एक वीर चुनकर।
आदर के सहित द्रौपदी की, शादी करदेवे हरषाकर॥
वरना इसका सब राज पाट, हम उलट पुलट कर डालेंगे।
अपमान इस तरह होने का, सारा अरमान निकालेंगे॥
यदि कृष्णा भी हम में से किसी, नृप को नहिं पती बनायेगी।
तो ये भी अग्नी द्वारा जल, निश्चय निज जान गमायेगी॥
विधना ने स्वयम्वर को केवल, क्षत्रियों के लिये बनाया है।
उसमें अधिकार ब्राह्मणों का, रत्ती भर भी न बताया है॥
फिर भी ये बुद्धिहीन राजा, हृदय में हर्षा कर भारी।
देता है हम सब के होते, एक ब्राह्मण को निज सुकुमारी॥
अस्तू दो इसको दंड अभी, जिससे सब को बुद्धी आवे।
आगामी स्वयम्वरों में फिर, ऐसी न बात होने पावे॥

ये बिचार अति क्रोध से, आतुर हो नरनाथ।
चले द्रुपद को मारने, अस्त्र शस्त्र ले हाथ॥

जब वीर धनंजय ने देखा, भूपाल लाल दृग किये हुए।
आते हैं द्रोपद को वधने, हाथों में शस्तर लिये हुए॥
तब ये भी निज कोदंड उठा, राजा की रक्षा करने को।
झट बढ़े अगाड़ी इकले ही, उन सब भूपों से लड़ने को॥
ये देख भीम ने भी झटपट, उठकर एक वृक्ष उखाड़ लिया।
और कुछ ही क्षण में उसके सब, डाली पत्तों को झाड़ दिया॥
यों गदा समान बनाय उसे, ये ऐसे तनकर खड़े हुये।
जनु गुस्से से कर अरुण नेत्र, यमराज दंड ले अड़े हुये॥

विप्रों ने भी हो खड़े, इनसे कहा पुकार।
घबराना डरना नहीं, हम भी हैं तैयार॥

अर्जुन बोले तुम खड़े रहो, मैं इन को मार भगाऊंगा।
बानों की प्रचंड पवन द्वारा, पत्तों सम इन्हें उड़ाऊंगा॥
इस तरह ब्राह्मणों को समझा, झट किया इशारा भाई से।
धनु तान शत्रुओं के सन्मुख, धाये फिर निर्भयताई से॥
देखा भूपों ने केवल दो, ब्राह्मण लड़ने को आते हैं।
हैं पास एक के धनुषबान, दूसरे गदा चमकाते हैं॥
ये लख वे बोले विप्र यदी, ले शस्त्र युद्ध में आजावे।
तो उसको वध करने वाला, पापी न जगत में कहलावे॥
इसलिये त्याग संकोच सभी, निर्भय हो इन पर वार करो।
चहूं दिश से इनको घेर मित्र, तीखे तीरों की मार करो॥
इतना कह सारे राजागण, चौतरफा इनके घिर आये।
और शक्ति, शूल, मुग्दर, कृपाण, इकदम दोनों पर बरसाये॥
कुन्ती-नन्दन ने काट इन्हें, कई बाण वो छोड़े जहरीले।
जिससे घायल हो भूमि गिरे, कई बांके योधा गर्वीले॥

रंग भूमि की बन गई, रण भूमी तत्काल।
चला न बस कुछ पार्थ से, व्याकुल हुये नृपाल॥
कुछ खेत रहे कुछ भाग गये, कुछ घायल हो चिल्लाने लगे।
खा चोट हो लोट पोट रण में, अगणित भट यमपुर जाने लगे॥
ये लख गुस्से से हो अधीर, दुर्योधन आगे बढ़ आया।
और कहा पार्थ से हे ब्राह्मण, हो सजग काल तव नियराया॥
दे द्रुपद-सुता को शीघ्र हमें, यदि चाहता है जग में जीना।
वरना मेरा एक ही बाण, कर देगा चूर चूर सीना॥
दुर्योधन के वचन सुन, अर्जुन हुये अधीर।
रक्त वर्ण नैना बने, गरमा गया शरीर॥
बोले मालुम पड़ता है मुझे, तेरी ही मौत पुकार रही।
जो लाज की एवज में सिर पर, शठता की हवा सवार हुई॥
शरमाओ सुयोधन शरमाओ, क्यों व्यर्थ को रार बढ़ाते हो।
क्या द्रुपद-नन्दनी को जबरन, छीना है जो धमकाते हो॥
इच्छा थी राजकुमारी की, तो प्रण को पूर्ण किया होता।
इस भरे स्वयम्बर में शर से, मछली को वेध दिया होता॥
उस समय तो तुम असमर्थ रहे, केवल धनु को हि झुकाने में।
अब मुझसे लड़ने आये हो, धिक्कार है वीर कहाने में॥
बस भला इसी में है राजन, शीघ्र ही लौट घर को जाओ।
मेरे बाणों की अग्नी में, मत बनो पतंगे दहलाओ॥
भला सुयोधन को कहां, थी सुनने की ताब।
अस्तु वचन सुनकर तुरत, बोला हो बेताब॥
नादान! अभी देखेगा तू, इस जगह मेरी जां जाती है।
या तुझको बुलवाने के लिये, मृत्यू निज दूत पठाती है॥
हो जाती है गलती भि कभी, अच्छे अच्छे बलवानों से।
ऐसा भि लखा है कठिन काम, हो जाता है नादानों से॥

यदि तू क्षत्री कुल का होता, तो मुझको क्रोध नहीं आता।
कारण कि स्वयम्वर में केवल, क्षत्रियों का ही हक कहलाता॥
पर तैंने ब्राह्मण वंशी हो, उस हक को मोह वस छीना है।
इसलिये तेरा अब दुनियां में, होगा मुश्किल ही जीना है॥
नादान शीघ्र ही साज सजा, भूमी तज यमपुर जाने का।
फल चाख क्षत्रियों के सन्मुख, रण में आ शस्त्र उठाने का॥
इतना कह कर अन्धसुत, लगा मारने बान।
अर्जुन ने भी शीघ्र ही, लिया धनुष को तान॥
और बोले मैं तो चाहता था, नरमी से काम लिया जावे।
बन पड़े जहां तक रक्त पात, बिल्कुल भी नहीं किया जावे॥
क्योंकि इस ब्राह्मण धर्म मुझे, लड़ने से दूर हटाता है।
पर देख तुम्हारी हठ धर्मी, गुस्सा बढ़ता ही आता है॥
बस संभल शीघ्र ही मृत्यु के, मुख में प्रवेश करने वाले।
अपने भुजबल की शक्ती पर, झूंठा घमंड रखने वाले॥
यों कह कर कुन्ती-नन्दन ने, जलधार सरिस शर बरसाये।
जिससे दुर्योधन पल भर में, घायल होते दृष्टी आये॥
देख दुर्दशा मित्र की, धनु को शीघ्र संभाल।
क्रोधित होकर कर्ण ने, छोड़े बाण कराल॥
लेकिन अर्जुन ने व्यर्थ किया, उन तीरों को चतुराई से।
फिर धनुष तान रवि-नन्दन के, मारे शर आतुरताई से॥
होगया भयानक युद्ध शुरू, उन महावीर रणवीरों में।
रहगये दंग दर्शक सारे, फुरती अति देख शरीरों में॥
कब किसने निज तरकस में से, शर को निकाल धनुको ताना।
छोड़ा उसको किस समय फेर, था बहुत कठिन ये बतलाना॥
इसी तरह कुछ देर तक, हुआ भयानक युद्ध।
प्रबल देखकर पार्थ को, हुये सूर्य-सुत क्रुद्ध॥

अपना समस्त भुजबल लगाय, हरचंद वीरता दिखलाई।
लेकिन अर्जुन की शक्ती के, आगे कुछ पेश नहीं आई॥
तबतो इनको आश्चर्य हुआ, सोचा साधारण सा ब्राह्मन।
मेरे अव्यर्थ व अति कराल, तीरों का यों करदे खंडन॥
ये विप्र नहीं निश्चय कोई, सुर मनुज भेष धर आया है।
या धनुर्वेद ने ब्राह्मण का, धर रूप मुझे बहकाया है॥
क्यों के मुझको रण भूमी में, एक बार क्रोध आजाने पर।
कोई टिक सके नहीं सन्मुख, केवल एक अर्जुन को तजकर॥

ये विचार कर कर्ण ने, रोक लिया निज हाथ।
आनन्दित होकर कहा, अति आदर के साथ॥
खुशी हुये हम देखकर, विप्र तुम्हारा युद्ध।
बतलाओ तुम कौन हो, कर अपना मन शुद्ध॥

मैं गिनूं आपको धनुर्वेद, या स्वर्गपती श्री सुरराई।
अथवा जग के पालन कर्त्ता, समझूं विष्नू त्रिभुवन साईं॥
बोले अर्जुन हे वीर कर्ण, धनुर्वेद न हम परमेश्वर हैं।
गन्धर्व यक्ष कोई भी नहीं, और नहीं सुरेश पुरन्धर हैं॥
हमतो हैं साधारण ब्राह्मण, पर धनुर्वेद विज्ञानी हैं।
हरते हैं गर्व सदा उनका, जितने जग में अभिमानी हैं॥
हो सजग तुम्हें रणभूमी में, हम निश्चय आज हरायेंगे।
है बड़ा ब्रह्मबल या है बड़ा, क्षत्री बल ये दिखलायेंगे॥
सुनते हि कर्ण ने ब्रह्मतेज, उत्तम गिनकर रण छोड़ दिया।
और दुर्योधन को संग ले कर, तत्काल वहां से गमन किया॥
इस जगह से कुछ दूरी पर हट, श्री शल्य व भीम गदाधारी।
लड़ रहे थे ऐसी फुरती से, जनु दों मदोन्मत गज भारी॥
शस्तर का नाम निशान न था, इन बलवीरों के हाथों में।
इनको तो मजा आरहा था, केवल मुष्टिक और लातों में॥

आपस में ललकार कर, एक एक को खींच।
करते थे रणधीर ये, वार मुष्टिका भींच॥

होते थे कभि गुत्थम गुत्था, कभि आगे पीछे हटते थे।
यों करते थे ये मल्लयुद्ध, हो चकित खड़े सब तकते थे॥
मुष्टिक प्रहार का महा शब्द, कानों में चटाचट आता था।
होते थे दांव पर दांव बहुत, हारने न कोई पाता था॥
आखिर बलवीर वृकोदर ने, अपने बाहूबल के द्वारा।
झट उठा शल्य को पटक दिया, हँस पड़ा ब्राह्मण दल सारा॥

देख बुद्धि बल भीम का, भूप हुये खामोश।
चहरे पीले पड़ गये, हवा हुआ सब जोश॥

आपस में करने लगे बात, ये आफत के परकाले हैं।
डर जाय काल भी इनसे तो, वो मस्त और मतवाले हैं॥
दोनों में अद्भुत शक्ती है, दोनों ही वीर बला के हैं।
इनका परिचय मालूम करो, ये कौन हैं और कहां के हैं॥
क्यों के बलवीर कर्ण से लड़, है कौन जो जिन्दा फिर जाये।
और किस में इतनी ताकत है, जो शल्य से सहज फतह पाये॥
यों ही सर्वत्र महीप वृन्द, दोनों की बातें करने लगे।
ये उत्तम अवसर देख कृष्ण, उस जगह आय यों कहने लगे॥
अपने बल से इस ब्राह्मण ने, श्री द्रुपद-सुता को पाया है।
कर शांत चित्त अब घर जाओ, नाहक क्यों शोर मचाया है॥

ये सुनकर विस्मय सहित, गमने सकल भुवाल।
भ्राताओं संग पार्थ भी, चले भवन तत्काल॥

इनके पीछे वो सुकुमारी, कमनीय कमल लोचन वाली।
दृगों कुछ नीची किये हुये, चलरही थी सुंदर पंचाली॥

थे पीछे विप्रों के समूह, अति हर्ष मनाते जाते थे।
अर्जुन और वीर वृकोदर के, आनन्दित हो गुण गाते थे॥
कहते थे आज क्षत्रियों की, फलवती न आशा लता हुई।
प्राधान्य ब्राह्मणों का हि रहा, कृष्णा द्विज द्वारा घृता हुई॥
इसलिये ब्रह्मवल से बढ़ कर, कोई बल दृष्टि न आता है।
करता है अवज्ञा जो इस की, निश्चय मन में पछताता है॥
इस तरह विप्रगण आपस में, करते थे बातें हरषाकर।
चाहते थे पार्थ भी कहना कुछ, पर रह जाते थे मुस्काकर॥

इधर हृदय में हो खुशी, आते थे ये वीर।
उधर देर अति देखकर, माता हुई अधीर॥

सोचा दिनमणि तो अस्त हुए, संध्या होने को आई है।
क्या कारण है जो पुत्रों ने, अबतक नहिं शक्ल दिखाई है॥
भिक्षा क्या उनको मिली नहीं, दिन भर भी गश्त लगाने में।
या किसी से कुछ तकरार हुई, जो देर होगई आने में॥
सम्भव है सुयोधन ने उनको, पहिचान के मरवा डाला हो।
या किसी भयंकर निश्चर से, रस्ते में पड़गया पाला हो॥
यदि उन भावी आशाओं के, आसार हो गये ख्वारी के।
तो फिर कैसे बीतेंगे दिन, हे प्रभु मुझ सम दुखियारी के॥
मुनि व्यासदेव को क्या सूझा, जो हमें यहां पर ले आये।
हे विधना कैसे धीर धरूं, किस्मत ने क्या रंग दिखलाये॥

❀ गाना ❀

विधाता किस को कहूं कैसे दिवस आये है।
न जाने कौनसे दुष्कर्म के फल पाये है॥
क्या ही अच्छा था अगर दीन के पैदा होते।
जन्म ले भूप के घर दुखहि दुख उठाये है॥

आज कल जगमें वे ही मनुज चैन पाते हैं।
छल कपट करके जो सुख छीनते पराये हैं॥
रखना आनंद में पुत्रों को दयामय भगवन्।
सबको तज तेरे ही चरणों की शरण आये हैं॥

करती थी यों दुखित हो, माता सोच बिचार।
इतने में सब हर्ष से, आये घर के द्वार॥
बलवीर धनंजय बोल उठे, बाहर से ही आतुर होकर।
हे माता एक अमुल्य वस्तु, लाये हैं भिक्षा में लेकर॥
कुन्ती मकान के भीतर थी, बोली सुनते ही हरषाई।
और कहा परस्पर बांट लेउ, जो कुछ वस्तू तुमने पाई॥
घर से बाहिर आई न मातु, इसलिये न कुछ देखा भाला।
अन्नादिक का करके खयाल, जो उचित ठीक था कहडाला॥
पीछे जब कृष्णा को देखा, हृदय में दुःख हुआ भारी।
बोली पछता कर हा मैंने, कैसी अनुचित बानी कह डारी॥
फेर युधिष्ठिर से कहा, ऐसा करो उपाय।
बात मेरी मिथ्या न हो, और धर्म रहजाय॥
माता की बानी को सुनकर, कुरु-श्रेष्ठ-युधिष्ठिर अकुलाये।
सोचा अब क्या तदबीर करें, जिससे न अपयश होने पावे॥
यदि माताज्ञा न मानते हैं, तो पातक आय दबाता है।
करते हैं यदि कथनानुसार, तो भी न धर्म रह पाता है॥
हा फंसे अजब चक्कर में हम, है इधर कुआ उत खाई है।
इस समय क्या करें क्या न करें, देता कुछ भी न दिखाई है॥
है धर्म की गति इतनी सूक्ष्म, सुर तक भी चकरा जाते हैं।
फिर हम लोगों की क्या गिनती, जो अल्प बुद्धि कहलाते हैं॥

लगती है इस वक्त तो, मुझे ठीक ये बात ।
कृष्णा से शादी करें, केवल अर्जुन भ्रात ॥
क्योंकि बल लगा इन्होंने ही, वो मछली बेध गिराई थी ।
और भरे समाज स्वयम्वर में, सुन्दर जयमाला पाई थी ॥
ये सोच पार्थ से कहा भ्रात, मेरी बातों पर ध्यान धरो ।
निज भुजबल से जय करी हुई, कृष्णा का पाणिग्रहण करो ॥
जब वीर धनंजय ने देखा, भ्राता आरूढ़ धर्म पर हैं ।
उसके ऊपर माता की भी, आज्ञा करते नौछावर हैं ॥
तो फिर मैं भी निज धर्म त्याग, कैसे अधर्म को अपनाऊं ।
लघु होकर जेठे भाई से, पहिले किमि कृष्णा को ब्याऊं ॥
पक्की कर इस बात को, मन में पार्थ सुजान ।
हाथ जोड़ कहने लगे, सुनो भ्रात गुणखान ॥
तुम धर्म धुरंधर होकर भी, करते हो पाप में लिप्त मुझे ।
इस समय आपके ये विचार, जचते बिलकुल विक्षिप्त मुझे ॥
है धर्म-शास्त्र का यही वचन, जेठा पहिले ब्याहा जावे ।
तब कहीं विवाह करने के लिये, छोटा निज स्वीकृति जतलावे ॥
इसलिये आप सबसे पहिले, सुन्दर सुकुमारि कुमारि वरें ।
फिर महाबाहु भीषण कर्मा, बलवीर वृकोदर ब्याह करें ॥
ये काम पूर्ण होजाने पर, फिर मेरी बारी आयेगी ।
तब नकुल और सहदेव की भी, सुख से शादी की जायेगी ॥
अस्तू वो बात कहो भाई, गिन कर हमको आज्ञाकारी ।
जो हो कर्तव्य व करने से, जिसके न लगे पातक भारी ॥
सुन ये बात अधीर से, हुये युधिष्ठिर वीर ।
सोच लिया होता वही, जो लिक्खा तकदीर ॥
अस्तू बोले भ्राताओं से, माता की बात रखनी होगी ।
हम सब कृष्णा के पति होंगे, कृष्णा सब की पत्नी होगी ॥

इसके अतिरिक्त न यत्न कोई, इस समय ध्यान में आता है ।
बस बड़ों का कहना करना ही, सच्चा कर्तव्य कहाता है ॥
इतना कहकर होगये मौन, कुरुवीर-युधिष्ठिर गुणखानी ।
इतने में वहां चले आये, बलराम सहित शारंगपानी ॥
लखते ही यादवनन्दन को, हरषाय गये पांचों भाई ।
कुन्ती भी इन्हें देखते ही, हो प्रेम विवश झट उठ धाई ॥
और हृदय लगा कर दोनों को, अति हित से आशिर्वाद दिया ।
फिर धर्मपुत्र ने मुस्काकर, इस तरह पूछना शुरू किया ॥

किम पहिचाना आपने, हमको हे यदुवीर ।
क्योंकि हम सब थे वहां, पहिरे वल्कल चीर ॥

सुन बचन युधिष्ठिर से मुसका, बोले मधुसूदन गिरधारी ।
किस तरह छिपी रह सकती है, हे भ्रात घास में चिनगारी ॥
दुनियां में पांडु-सुतों को तज, है कौन जो अस बल दिखलावे ।
किसमें इतनी ताकत है जो, इकला बहुतों से जय पावे ॥
अवलोक तुम्हारे विक्रम को, हमने तुमको पहिचान लिया ।
और क्षेम कुशल लेने के लिये, हो खुशी यहां आगमन किया ॥
हे शत्रु नाश करने वालों, मिलकर तुमसे हम हर्षाये ।
हम सब की किस्मत अच्छी थी, जो वहां न तुम जलने पाये ॥
वीरान हुये बर्बाद हुये, करचुके बहुत आहो जारी ।
खाया है पलटा भाग ने अब, आसान हुई मुश्किल सारी ॥
है धन्य धन्य आज का दिवस, अर्जुन ने निशाना वेध दिया ।
और कर्ण सरिस धनुधारी का, पल भर में बल उच्छेद किया ॥

शल्य सरिस बलवान को, रण में कर बेकाम ।
भीमसेन ने भी किया, रंगभूमि में नाम ॥
करो सदा आनन्द तुम, शत्रु नाश को पांय ।
आज्ञा हमको दीजिये, जो हम डेरे जांय ॥

यों कह ले आज्ञा तुरत, चले गये भगवान।
इधर हाल जो रह गया, सुनो लगाकर कान॥

जिस समय पांडु कृष्णा को ले, अपनी माता पै आये थे।
तब गुप्त रूप से धृष्टद्युम्न, छिप उनके पीछे धाये थे॥
चाहते थे पंचालेश-तनय, जिसने कृष्णा को पाया है।
वह पुरुष कहां पर रहता है, और कौन वंश में जाया है॥
अस्तू पीछे पीछे ये भी, पांडवों के भवन चले आये।
और ऐसी चतुराई से छिपे, वे लोग नहीं जानन पाये॥
इस जगह ठहर कुछ देर तलक, सुन कर उनकी बातें सारी।
मनमें क्षत्री ही जान उन्हें, द्रोपद-नन्दन हर्षे भारी॥

कर सराहना भाग्य की, घर से बाहिर आय।
अपने महलों की तरफ, दीन्हा कदम बढ़ाय॥
उधर भूप जो पांडवों, को न सके थे जान।
लगे सोचने चित्त में, व्याकुल होय महान॥

हा भाग्य चक्र, हे कर्म गती, तेरी भी चाल निराली है।
क्षण भर पहिले था सुर्ख बदन, अब कहां गई वो लाली है॥
है एक समय सम्भव, नर का, मृत्यू के कर से बच जाना।
पर मुमकिन नहीं त्रिकाल में भी, तकदीर से लड़ कर जय पाना॥
हा मुझ सम नृप की पुत्री हो, भिक्षुक की नारि कहायेगी।
तज कर महलों का सुख सारा, वन वन में ठोकर खायेगी॥
काटेगी अपनी उम्र सभी, भिक्षा के सूखे टुकड़ों पर।
हे प्रभू कहां तक रोऊं मैं, अपने हृदय के दुखड़ों पर॥
मनसूबा था प्रिय पुत्री को, अर्जुन के साथ विवाहूंगा।
ऐसा सुन्दर दामाद पाय, मैं कृतकृत्य हो जाऊंगा॥

पर अर्जुन को तज उसको तो, उत्तम वर तक भी मिला नहीं ।
यदि मिला तो एक ऐसा ब्राह्मण, जिसके कुल तक का पता नहीं ॥
क्या मालुम कहां कहां फिरता, किस तरह से वो आगया इधर ।
और कर मुझको बर्बाद पूर्ण, चल दिया कहां पुत्री लेकर ॥

❀ गाना ❀

नहिं मैंने यह सोचा था तख्ता यों पलटा खायेगा ।
मम प्रिय पुत्री का भाग्य प्रभू मिट्टी में यों मिल जायेगा ॥
करता ऐसा प्रण कभी नहीं जो मुझे खबर यह लग जाती ।
एक दीन हीन पथ का भिक्षुक मेरा दामाद कहायेगा ॥
सब काम श्रेष्ठ ही करते है नर अपनी अपनी अक्ल लड़ा ।
लेकिन न किसी को सुधि रहती क्या रंग भाग्य दिखलायेगा ॥
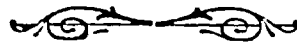
इसी दुःख से हो रहे, थे नृप बहुत उदास ।
इतने में आये तहां, धृष्टद्युम्न गुण रास ॥

जब इनको आतुर हो नृप ने, पूछा हे सुत क्या बात हुई ।
मम प्राण सरिस प्यारी दुहिता, वह कृष्णा किनके साथ गई ॥
निकृष्ट योनि के नर ने तो, ब्राह्मण का भेष बना करके ।
मेरी प्यारी सुकुमारी को, जय नहीं किया यहां आ करके ॥
समशान में तो जा गिरी नहीं, कहि सुन्दर पुष्पों की माला ।
नित मोती चुगने वाली का, कंकड़ से तो न पड़ा पाला ॥

धृष्टद्युम्न कहने लगे, मन में अति सुख पाय ।
परि हरि दुख सन्देह को, सुनो पिता चितलाय ॥

जाने किस सुकृत के फल से, ये आज शुभ घड़ी आई है ।
खिल गई हृदय की कली कली, मन को मुराद भर पाई है ॥

जो मनुष्य हमारी नजरों में, एक साधारण सा ब्राह्मण था।
वो ब्राह्मण, ब्राह्मण नहीं बल्कि, इस भेष में सचमुच अर्जुन था॥
अस्तू मन मैला करो नहीं, कृष्णा ने शुभ वर पाया है।
दो धन्यवाद जगदीश्वर को, जिसने ये योग मिलाया है॥

नहीं, नहीं, हे सुत तेरे, सत्य नहीं ये बैन।
कभी कभी देदेत हैं, धोखा भी ये नैन॥

हे पुत्र, दग्ध लाखा-गृह में, दुर्योधन ने कर दिये उन्हें।
ये वसुन्धरा अब भारत की, खो चुकी सदा के लिये उन्हें॥
अस्तू विश्वास नहीं होता, वो मत्स्य-वेध करने वाला।
अर्जुन ही हो अथवा हो किसी, ब्राह्मण के कुल का उजियाला॥
सुन वचन भूप के धृष्टद्युम्न, बोले मैं झूंठ नहीं कहता।
वे सत्य धनुर्धर अर्जुन हैं, उनको ब्राह्मण मत गिनो पिता॥
जब सब राजा असमर्थ हुये, मछली को वेध गिराने में।
तब मैंने कसर नहीं रक्खी, कुछ उनको शर्म दिलाने में॥
उस समय सभी के नेत्र गडे, भूमी में लज्जा के मारे।
वे वीर पार्थ ही थे जिनको, मम बचन लगे थे अंगारे॥
होगया था चहरा रक्तवर्ण, नस नस में फुरती छाई थी।
मछली को वेध गिराने में, क्या आतुरता दिखलाई थी॥
ये विप्रों के लक्षण है नहीं, क्षत्रियों के इनको पहिचानो।
इसलिये जन्म उनका निश्चय, तुम क्षत्रि वंश में अनुमानो॥
फिर होय निरादर क्षत्री का, और ब्राह्मण को गुस्सा आवे।
ये बिल्कुल उल्टी बात पिता, किस तरह सत्य मानी जावे॥
फिर कर्ण से लड़ने की शक्ती, केवल अर्जुन ही रखता है।
और शल्य को वीर वकोदर ही, बस गिरा भूमि पै सकता है॥

उड़रही है गप कुछ दिन से ये, पांडव जलने से मुक्त हुये ।
ये सच जानो फिरते हैं वही, बस विप्र भेष में गुप्त हुये ॥

अस्तु बात सच मानकर, छोड़ो सब दुख द्वंद ।
करो बहिन के व्याह की, तैयारी सानन्द ॥
सुनकर निज सुतके बचन, हरषाये भूपाल ।
बुला लिया निज वंश के, प्रोहित को तत्काल ॥

और बोले तुम रथ पर चढ़कर, जल्दी से वहां चले जावो ।
उन लोगों का कुल वंश शील, आदिक मालुम कर आजावो ॥
सुन बचन पुरोहित ने तहां जा, अपना कुल परिचय बतलाया ।
और चतुराई से उन सबका, गुण कीर्ति तथा शुभ यश गाया ॥
फिर कहा मनोहर बानी से, अर्जुन की तरफ इशारा कर ।
महाराज द्रुपद आनन्द हुये, हैं इनके लक्ष वेधने पर ॥
वे चाहते हैं तुम लोगों का, कुल वंश आदि मालूम करें ।
तब बिधि अनुसार विवाहने की, सारी चीज़ें तैयार करें ॥
इसलिये कुमारों बतलाओ, तुम कौन वंश में जाये हो ।
है कहां तुम्हारी जन्म-भूमि, फिर किस के पुत्र कहाये हो ॥
महाराज पांडु और द्रोपद में, थी सत्य मित्रता सुखकारी ।
इसलिये द्रुपद की इच्छा थी, कृष्णा हो अर्जुन की नारी ॥
यदि ईश कृपा से राजा के, मनकी मुराद बर आई है ।
तब तो इसमें सन्देह नहीं, घर बैठे गंगा न्हाई है ॥

आनन्दित हो चित्त में, बोले धर्मकुमार ।
बड़ भागी है सत्य ही, प्रोहित भूप तुम्हार ॥

कह देना पंचालेश्वर से, अब वृथा न जी को कलपाओ ।
हो गया पूर्ण जो कुछ तुमने, चाहा था अस्तु हरषाओ ॥

जिस वीर धनुर्धर योधा ने, मछली को वेध गिराया है।
वह पांडु पुत्र अर्जुन ही है, और क्षत्रि वंश में जाया है॥
हम भी हैं इसके भाई ही, सब मिल पांडव कहलाते हैं।
रिपुओं के डर से विप्र भेष, धारण कर दिवस बिताते हैं॥

प्रोहित हो मन में मुदित, विदा हुआ तत्काल।
इतने में एक दूत आ, बोला बचन रसाल॥

दो यान सुसज्जित अति सुन्दर, नृप द्रोपद ने भिजवाये हैं।
कृष्णा का व्याह करने के लिये, आदर से तुम्हें बुलाये हैं॥
इसलिये पधारो महाराज, राजा का महल पवित्र करो।
निज दर्शन से सबके चित में, आनन्द का चित्रित चित्र करो॥
सुनते हि बचन पांचों भाई, चलने के लिये तयार हुये।
माता व द्रौपदी को संग ले, झट पट रथ पर असवार हुये॥
जब पहुंचे भूपति के द्वारे, राजा आये अगवानी को।
कर जोड़ कहा मैं धन्य हुआ, स्वीकार करो महमानी को॥

एक सुसज्जित महल में, सबने किया निवास।
कुन्ती, कृष्णा को लिये, चली गई रनवास॥
पांव धोय भूपाल ने, कंचन आसन लाय।
बैठारे सब बन्धुगन, प्रेम न हृदय समाय॥

षटरस व्यंजन से विविध भांति, महमानों को परितृप्त किया।
द्विज भेष बदलवा कर सबको, राजा के लायक वस्त्र दिया॥
और कहा आज का दिन शुभ है, जो तुम सबका दर्शन पाया।
जिसका न ध्यान था स्वप्न में भी, बस वही नेत्र सन्मुख आया॥
जिस दिन से मैंने खबर सुनी, लाखा गृह के जल जाने की।
दी त्याग उसी दिन से मैंने, आशा तुमको फिर पाने की॥

पर शुक्र है उस जगदीश्वर का, जो उल्टा पासा सुलट गया।
होगया दूर सब सोच फिक्र, दुर्भाग्य भाग्य में पलट गया॥

अच्छा अब संकोच तज, कहो हाल समझाय।
फिरते हो तुम किसलिये, ब्राह्मण भेष बनाय॥
सुनते ही नृप के बचन, पांडव हुए उदास।
धर्म-पुत्र कहने लगे, लेकर लम्बी स्वांस॥

महाराज जगत में हमतो बस, जन्मे हैं दुःख उठाने को।
हमका दें दोष भाग्य को या, बतलावें बुरा जमाने को॥
शेरों समान हृदय रखकर, स्यारों से दहशत खाते हैं।
जिन्दा रहकर भी दुनियां को, मुख दिखलाते दहलाते हैं॥
किस्मत कुछ ऐसी सोई है, लेती उठने का नाम नहीं।
और उधर हमें दुख देने के, अतिरिक्त है रिपु को काम नहीं॥
यों कह कुन्ती सुत ने जब से, था हस्तिनापुर को त्याग किया।
तब से लेकर इस दिनतक का, कुल किस्सा नृप को सुना दिया॥
सुन अत्याचार सुयोधन का, राजा को दुःख हुआ भारी।
और कहा इन्हें धीरज देते, तज डालो अब चिन्ता सारी॥
दुनियां में अन्यायी सुख से, रहता न कभी दृष्टी आया।
पापों की फुलवारी में से, क्या कभी किसी ने फल खाया॥
धिक है दुर्योधन को जिसने, बिलकुल भी नहीं विचार किया।
और अपने भ्राताओं के संग, इस तरह का दुर्व्यवहार किया॥
भाई भी वे जो भुजबल में, भूमंडल पर लासानी हैं।
असली मालिक हैं गद्दी के, और तेज रूप की खानी हैं॥

धृतराष्ट्र की बुद्धि भी, आती दृष्टि मलीन।
जिसने अपने पुत्र को, शिक्षा उचित न दीन॥

कुछ फिक्र नहीं मैं देखूंगा, अब वे क्या रंग दिखाते हैं।
देते हैं तुमको राज सभी, या कुछ उत्पात मचाते हैं॥
मिल गया तुम्हें जो हक तुम्हरा, तब तो होगी कुछ बात नहीं।
तलवार रहेगी म्यान हि में, और मचायेगी उत्पात नहीं॥
और यदी जो आनाकानी की, तब तो पूरी ठन जायेगी।
तलवार म्यान से बाहिर आ, अपना जौहर दिखलायेगी॥
अस्तू चिन्ता सब दूर करो, मैं अपनी जान लड़ादूंगा।
जिस तरह बनेगा तुमको सुत, तुम्हरा सब राज दिला दूंगा॥

❀ गाना ❀

कुछ दिन और बिताइये मेरे प्यारों दुख ना करो॥
पापी नहीं कभी फूलेगा जग में, निश्चय नष्ट हो जायेगा ॥ मेरे प्यारों ॥ १ ॥
बद किस्मत के दिन गये समझो, अब तो समय शुभ आयेगा ॥ मेरे प्यारों ॥ २ ॥
दुर्योधन ने राज दिया नहीं, तो सचमुच पछतायेगा ॥ मेरे प्यारों ॥ ३ ॥
जब तुम्हरा हक मिलेगा तुमको, तब ही हृदय हरपायेगा ॥ मेरे प्यारों ॥ ४ ॥
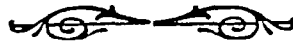
यों कह पंचालेश ने, लिया तनिक विश्राम।
फेर पांडवों से कहा, करो जाय आराम॥
द्रोपद का सुनकर वचन, सोये पांचों भ्रात।
और उठे उस वक्त जब, रही पहर भर रात॥

अरुणोदय के होते होते, नित कर्मों से छुट्टी पाई।
इतने में कुन्ती को संग ले, आ गये तहां पर नरराई॥
और कहा आज का दिन शुभ है, बेहतर है भांवर पड़ जायें।
कर पाणिग्रहण वंशानुसार, अर्जुन और कृष्णा मिल जायें॥
सुन वचन धर्मसुत कहने लगे, माता ने हक आज्ञा दी है।
सबका कृष्णा से हो विवाह, ऐसी इच्छा प्रकाश की है॥

इसलिये अग्नि को साक्षी कर हम सबका पाणिग्रहण करो।
ये होनहार है मिटे नहीं, अरतु इसमें न विचार करो॥

विस्मित हुये द्रुपाल सुन, धर्म-पुत्र की बात।
बोले किम होगा विवाह, तुम पांचों के साथ॥

ये सम्भव है एक नर के तो, नारियां कई हो सकती हैं।
पर एक पती के सिवा नारि, क्या कभी अन्य वर सकती है॥
कुछ सोचो और विचार करो, तुम धर्म-पुत्र कहलाते हो।
फिर क्यों अधर्म की बात पुत्र, अपने मुख से फरमाते हो॥
मैं ये नहिं कहता माता की, आज्ञा का तुम नहिं मान करो।
पर एक बार फिर भी मनमें, सच्चे स्वधर्म का ध्यान धरो॥
कल प्रातःकाल सलाह करके, जो उचित ठीक हो कह देना।
हम कार्य करेंगे इसी भांति, ये बात हृदय में रख लेना॥

यों कह कर जाने लगे, ज्यु ही द्रुपद महीश।
इतने में आये तहां, वेदव्यास ऋषीश॥

नरराई ने उठकर तुरन्त, अभिवादन किया मुनीश्वर का।
फिर सबने नमन किया, पाया शुभ आशिर्वाद ऋषीश्वर का॥
जब बैठ गये मुनि आसन पर, तब सबने आसन ग्रहण किया।
फिर शीश झुका नृप द्रोपद ने, इस प्रकार कहना शुरू किया॥

कहा व्यासने धीर धर, सुनो भूप चितलाय।
विधना ने जो लिखदिया, कभी न मिटने पाय॥

जो अग्नि-कुंड से प्रगट हुई, जो है तेरी प्यारी कृष्णा।
ये महा भाग देवी स्वरूप, है पूर्व जन्म की ऋषि कन्या॥
इस बाला ने त्रिपुरारी का, तप किया वनों में जाकरके।
सुंदर बलनिधि ऐश्वर्यवान, ऐसे पति की चाहत धरके॥
तप देख प्रसन्न हुये शंकर, वर मांगो कहा कुमारी से।
कन्या ने पांच बार पति की, प्रार्थना करी कामारी से॥
बोले शिव पांच दफै तुमने, पति हेतु वचन उच्चारा है।
होवेंगे पांच पती तेरे, ये सच्चा बचन हमारा है॥
पर ऐसा होने पर भी तू, कभि पतित न मानी जायेगी।
देता हूं आशिर्वाद तुझे, जग में तू सती कहायेगी॥
ये वोही ऋषि-कन्या राजन, ले जन्म तेरे घर आई है।
निश्चय ये वरेगी पांच पती, इसमें नहिं तुम्हें बुराई है॥
सुन वचन दूर संदेह हुआ, मन में भूपति ने सुख पाया।
फिर वंश अनुसार विवाह के का, सामान शीघ्र ही मंगवाया॥

बुला पुरोहित को तुरत, मंगल कलश सजाय।
केलि खंभ आरोप कर, वेदी ली बनवाय॥

इसके चौतरफा राजा ने, सुन्दर पाटम्बर बिछवाये।
मौके मौके पर अगिनती, फूलों के गमले रखवाये॥
तहां बैठे आ पुरजन परिजन, ऋषि मुनिगण ब्राह्मण सन्यासी।
बलराम सहित श्रीकृष्णचन्द्र, सर्वदानंद प्रभु सुखरासी॥
फिर वस्त्राभूषण धारण कर, दूलह सम भेष सुभेष बना।
मतवाले मस्त हाथियों सम, सब पांडु पुत्र तहां पहुंचे आ॥

रनवास से आई द्रुपद-सुता, सब भांति मनोहर सजी हुई ।
मानो छवि स्वयम् सिंगार किये, भूमंडल पर आ खड़ी हुई ॥
शुभ अवसर जान पुरोहित ने, फौरन अग्नी को चेताई ।
और वेद मन्त्र उच्चारण कर, घी की आहुती डलवाई ॥
बुलवाया प्रथम युधिष्ठिर को, कृष्णा का हाथ में हाथ दिया ।
परिक्रमा दिला कर अग्नी की, विधि पूर्वक पाणिगृहण किया ॥
बस इसी तरह क्रम से बाकी, फिर चारों का सम्बन्ध हुआ ।
होगये प्रसन्न उपस्थित गण, राजा को परमानन्द हुआ ॥
भेरी मृदंग दुंदभी ने मिल, रागनी बजाई शादी की ।
सब ओर से आने लगी सदा, सुखमई मुबारिक बादी की ॥

यौतुक में भूपाल के, चीज़ें दीं कई एक ।
गज, रथ, घोड़े, पालकी, दासी, दास अनेक ॥
हो प्रसन्न स्त्री सहित, पांचों पांडु-कुमार ।
द्रोपद पुर में इन्द्र सम, करने लगे विहार ॥

पहिले ही से पंचालेश्वर, थे महारथी भट बलशाली ।
पांडवों से नाता जुड़ने पर, आगई और तनमें लाली ॥
देवों व मनुष्यों असुरों से, वे सहज हि में भय रहित हुये ।
और लगे देखने राज काज, नये जोश उमंग में भरे हुये ॥
रनवास वालियों को भी जब, पांडवों की सारी खबर मिली ।
तो ये भी सुख को प्राप्त हुईं, खिलगई हृदय की कली कली ॥
कुन्ती माता के पास आय, निज नाम तथा परिचय बतला ॥
बारी बारी से करने लगीं, इन को प्रणाम सादर सिरना ।

सब से पीछे द्रोपदी, हाथ जोड़ ढिंग आय ।
खड़ी हुई निज सासु के, सन्मुख शीश झुकाय ॥

लख पुत्र वधू को पांडु-नारि, फूली नहिं अंग समाती है।
मीठे व मनोहर वचनों से, यों आशिर्वाद सुनाती है॥
लक्ष्मी जिमि प्रिय नारायण की, या ज्यों इन्द्राणि पुरंधर की।
वा अरुन्धती वशिष्ठ मुनि की, अथवा रोहणी सुधाकर की॥
बस इसी तरह हे द्रुपद-सुता, तुम भी पतियों को प्यारी हो।
सौभाग्य तुम्हारा अचल रहे, और वीर पुत्र महतारी हो॥
पति तुम्हरे इकछत्र राज्य करें, तुम पतिव्रता पटरानि बनो।
मन रहे बड़ों की सेवा में, दमयंती सम गुणखानि बनो॥
सुन वचन सासु के द्रुपद-सुता, हृदय में अतिशय हर्षाई।
छू चरण प्रेम से वंदन कर, फिर वापिस लौट चली आई॥

कृष्णचन्द्र ने भी दिया, इन्हें अमित उपहार।
रहन लगे आनन्द से, पांचों पांडु-कुमार॥
पूर्ण स्वयम्वर होगया, हुआ महा आनन्द।
"श्रीलाल" अब प्रेम से, कहो जयति बृजचन्द॥

श्री कृष्णार्पणमस्तु

(पं० राधेश्यामजी की रामायण की तर्ज़ में)

अमूल्य रत्न श्रीमद्भागवत और महाभारत छपगये

श्रीमद्भागवत क्या है ?

ये वेद और उपनिषदों का सारांश है, भक्ति के तत्वों का परिपूर्ण ख़ज़ाना है, परमार्थ का द्वार है, तीनों तापों को समूल नष्ट करने वाली महौषधी है, शांति निकेतन है, धर्म ग्रन्थ है, इस कराल कलिकाल में आत्मा और परमात्मा के ऐक्य करा देने का मुख्य साधन है, श्रीमन्महर्षि द्वैपायन व्यासजी की उज्वल बुद्धि का ज्वलन्त उदाहरण है तथा भगवान श्रीकृष्ण का साक्षात् प्रतिबिम्ब है।

महाभारत क्या है ?

ये मुर्दा दिलों में नया जीवन पैदा करने वाला है, सोये हुये मानव समाज को जगा वाला है, बिखरे हुये मनुष्यों को एकत्रित कर उनको सच्चे स्वधर्म का मार्ग बताने वाला है हिन्दू जाति का गौरव स्तम्भ है, प्राचीन इतिहास है, नीति शास्त्र है, धर्मग्रन्थ है औ पांचवां वेद है।

ये दोनों ग्रन्थ बहुत बड़े हैं अस्तु सर्व साधारण के हितार्थ इनके अलग अलग भाग कर दिये गये हैं, जिनके नाम और दाम इस प्रकार हैं:—

श्रीमद्भागवत

सं०	नाम	सं०	नाम
१	परीक्षित शाप	११	उद्धव ब्रज यात्रा
२	कंस अत्याचार	१२	द्वारिका निर्माण
	गोलोक दर्शन	१३	रुक्मिणी विवाह
	कृष्ण जन्म	१४	द्वारिका बिहार
	बालकृष्ण	१५	भौमासुर बध
	गोपाल कृष्ण	१६	अनिरुद्ध विवाह
	वृन्दावनविहारी कृष्ण	१७	कृष्ण सुदामा
८	गोवर्धनधारी कृष्ण	१८	वसुदेव अश्वमेघ यज्ञ
९	रासबिहारी कृष्ण	१९	कृष्ण गोलोक गमन
१०	कंस उद्धारी कृष्ण	२०	परीक्षित मोक्ष
उपरोक्त प्रत्येक भाग की क़ीमत चार आने			

महाभारत

सं०	नाम	मूल्य	सं०	नाम	मूल्य
१	भीष्म प्रतिज्ञा	।)	१२	कुरुओं का गौ हरन	।-)
२	पाडवों का जन्म	।)	१३	पाडवों की सलाह	।)
३	पांडवों की अस्त्र शि.	।-)	१४	कृष्ण का हास्ति ग.	।-)
४	पाडवों पर अत्याचार	।-)	१५	युद्ध की तैयारी	।)
५	द्रोपदी स्वयंवर	।)	१६	भीष्म युद्ध	।-)
६	पाडव राज्य	।)	१७	अभिमन्यु बध	।-)
७	युधिष्ठिर का रा सू. य	।)	१८	जयद्रथ बध	।-)
८	द्रौपदी चीर हरन	।-)	१९	द्रोण व कर्ण बध	।-)
९	पाडवों का बनवास	।-)	२०	दुर्योधन बध	।-)
१०	कौरव राज्य	।-)	२१	युधिष्ठिर का अ यज्ञ	।)
११	पाडवों का अ. वास	।)	२२	पांडवों का हिमा ग.	।)

※ सूचना ※

कथावाचक, भजनीक, बुकसेलर्स अथवा जो महाशय गान विद्या में योग्यता रखते हों, रोज़गार की तलाश में हों और इस श्रीमद्भागवत तथा महाभारत का जनता में प्रचार कर सकें तथा जो महाशय हमारी पुस्तकों के एजेण्ट होना चाहें हम से पत्र व्यवहार करें।

पता—मैनेजर-महाभारत पुस्तकालय, अजमेर.

महाभारत छठा भाग

पांडव राज्य
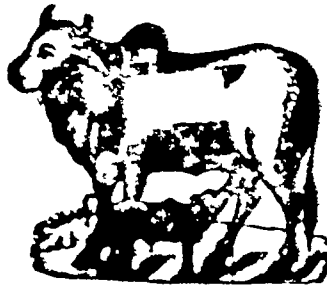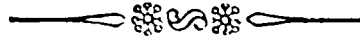
महाभारत छठवां भाग

पांडव राज्य

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—

महाभारत पुस्तकालय, अजमेर.

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया. दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

द्वितीयावृति	विक्रमी सम्वत १९९[illegible]	मूल्य
२०००	ईस्वी सन १९३[illegible]	।) आने

॥ स्तुति ॥

उबारो प्रभू दीनबन्धू मुरारी,
कि माया में फँस के हुई नाथ ख्वारी।
ये संसार सागर बड़ा ही अगम है,
व मँझधार में नाव टूटी हमारी।
है आदत यही आपकी भक्तवत्सल!
कि करते हो जनकी विपत दूर सारी।
इसी आश से सिर झुकाये खड़ा हूँ,
कि हो मुझपै भी किरपा दृष्टी तुम्हारी।
मैं पापी हूँ तोभी हूँ बंदा तुम्हारा,
दयाकर कुबुद्धी को दीजे सुधारी।
शरण में पड़े की रखो लाज भगवन्,
लो सुधि बेग ही मेरी बृज के बिहारी।

मङ्गलाचरण

रक्ताम्बर धर विघ्न हर, गौरीसुत गणराज।
करना सुफल मनोर्थ प्रभु, रखना जन की लाज॥
सृष्टि रचन, पालन, हरन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश।
बानी, रमा, उमा सुमिल, रक्षा करहु हमेश॥
बन्दहुं व्यास विशाल बुधि, धर्मधुरंधर धीर।
"महाभारत" रचना करी, परम रम्य गम्भीर॥
जासु बचन रवि जोति सम, मेटत तम अज्ञान।
बंदहुं गुरु शुभ गुण भवन, मनुजरूप भगवान॥

* ॐ *

नारायणं नमस्कृत्य, नरंचैव, नरोत्तमम् ।
देवीं, सरस्वती, व्यासं ततो "जय", मुदीरयेत् ॥

कथा प्रारम्भ

द्रुपद नंदिनी का विवाह, होने के उपरान्त ।
हस्तिनापुर जा दूत ने, कहा समस्त वृतान्त ॥

ज्यों ही दुर्बुद्धि सुयोधन ने, दूतों द्वारा ये सुधि पाई ।
हैं मरे नहीं लाखा गृह में, दुनियां में हैं पांचों भाई ॥
इतना ही नहीं बल्कि नृप को, सुंदर व मनोहर सुकुमारी ।
जो अग्नि कुंड से प्रगटी थी, हो गई पांडवों की नारी ॥
और जिस तेजस्वी ब्राह्मण ने मछली को बेध गिराया था ।
अपने भुजबल के कौशल से, रवि सुत का होश भुलाया था ॥
जिन के बाणों की शक्ती लख, दहलाय गये थे नृप सारे ।
वे वीर धनुर्धर महाबली, अर्जुन थे कुल के उजियारे ॥

तथा जिन्होंने क्रोध से, करके आंखें लाल ।
शल्यराज से वीर को, दिया भूमि पै डाल ॥

फिर जिनके कर में उन्मूलित, तरु देख डरे थे बलवानी ।
वे शत्रु नाश करने वाले, थे वीर वृकोदर गुणखानी ॥
त्यों ही दुर्योधन के दुखको, सीमा न रही वो घबराया ।
कर मलमल कर पछताने लगा आंखों में अश्रू जल छाया ॥
लेकिन ये हालत क्षणिक रही, होगई कुटिल भृकुटी पल में ।
क्यों के छुटो शुभ मार्ग छोड़, जा फसी पाप के दलदल में ॥
पांडवों का अति सुख देकर भी, ये खल दजाय शरमाने के ।
क्रोधिक होकर सोचने लगा, फिर यत्न उन्हें मरवाने के ॥

राज्य लोभ में जब कोई, भूप भ्रमित हो जाय।
तब उसको अनुचित उचित, कुछ भी दृष्टि न आय॥
बस इसी तरह दुर्योधन भी, निज इष्ट सिद्ध करने के लिये।
कस कमर तुरत तैयार हुआ, पांडवों का जी हरने के लिये॥
उसके मन में ये बात उठी, दे द्रव्य द्रुपद को बस में ला।
आसानी से उन पांचों को, उस ही पुर में देवें मरवा॥
या किसी चतुर मंत्री द्वारा, उन में मत भेद करा देवें।
यों करके उनको अलग अलग, फिर बध यमपुर पहुँचा देवें॥
और नहीं तो कोई वीर जाय, धोके से वृकोदर को मारे।
इसके मरते ही होवेंगे, भग्नोत्साह पांडव सारे॥
अथवा कोई उत्तम दूती, जाकर कृष्णा को बहकावे।
उल्टी सीधी बातें कहकर, पतियों के विरुद्ध उकसावे॥
क्यों के नारी जब एक बार, पति से खिलाफ हो जाती है।
तो फिर उसका जी हरने में, देरी कुछ भी न लगाती है॥
अथवा आदर से उन्हें, शीघ्र यहां बुलवाय।
अवसर पाकर एक दिन, दें यमपुर भिजवाय॥
यें सोचरहा था इतने में, आगये कर्ण और दुःशासन।
कुनी भी आये और सब से, लज्जित होकर यों कहे बचन॥
जो पार्थ समाज स्वयम्बर में, क्षत्री स्वरूप धर कर आता।
तो सत्य समझलो निज मन में, हरगिज न द्रौपदी को पाता॥
हम लोगों ने गिन विप्र उसे, कर दिया क्षमा करुणा करके।
वरना अपना भुजबल दिखला, ले आते कृष्णा को हरके॥
कहा सुयोधन ने तुरत, अपनी भृकुटी तान।
मामा तुम्हरी बात में, है न तनिक भी जान॥
अर्जुन से सन्मुख रण करके, किस में बल है जो जय पाये।
है कौन वीर जो यम आलय, श्री भीमसेन को भिजवाये॥

अस्तु बल से उन लोगों को, नामुमकिन है बस में करना ।
बस केवल छल से हो हमको, चहिये उनका जीवन हरना ॥
सुन वचन दुशासन बोल उठा, तुम्हरा कहना है ठीक सभी ।
क्योंके उन लोगों का जग में, जिन्दा रहना नहिं नीक कभी ॥
लेकिन दुख है, भ्राता अपनी, युक्ती कोई न काम आई ।
छल बल कौशल कर हार गये, पर मरे नहीं पांचों भाई ॥
अनुचित से अनुचित काम किया, पुरुषारथ में कुछ कसर न की ।
फिर भी न मरे इस से समझो, लीला अपार विश्वम्भर की ॥
बोला दुर्योधन उन को तो, भूलो जो बातें बीत गई ।
पर अब फिर उनके बधने की, तरकीबें सोचो नई नई ॥
लो सुनो तुम्हें बतलाता हूं, जो मैंने हृदय विचारा है ।
बस करो उसी के माफिक तुम, आगे फिर भाग्य हमारा है ॥
इतना कहकर दुर्योधन ने, जो सोचा था सब बतलाया ।
जिसको सुनते ही शकुनि और, दुःशासन का चित हरषाया ॥

पर रविनन्दन कह उठे, ठीक नहीं ये चाल ।
दुर्योधन क्यों व्यर्थ ही, बजा रहे हो गाल ॥

इन थोथे झगड़ों में पड़कर, अब और नहीं चक्कर खाओ ।
बदनाम हो चुके बहुत मित्र, अब भी है समय मान जाओ ॥
जिस समय वे बाल अवस्था में, हो निःसहाय यहां रहते थे ।
तब भी तो उनके बधने के, तुम यत्न रात दिन करते थे ॥
पर कर न सके कुछ भी अनिष्ट, सीधेपन से भूलवारी से ।
फिर अबतो युवा अवस्था है, और रहते हैं हुशियारी से ॥
जो यत्न बिचारे हैं तुमने, उनके होने की न आश करो ।
क्यों नहीं युद्ध में सन्मुख जा अपने रिपुओं का नाश करो ॥

उनको ब्राह्मण समझकर, हुये थे हम म्लानोश ।
नहीं तो रण में और भी, दिखलाते कुछ जोश ॥

जो परसुराम से पाई है, उस विद्या को न दिखाई थी।
वरना उन पांचों वीरों की, दुनियां से तुरत सफाई थी॥
अब भी यदि तुम सेना सजाय, चल पड़ो हमारे साथ सभी।
तो करदूं तनिक परिश्रम में, रिपुओं से खाली भूमी अभी॥
पर रण का समय तभी तक है, जब तक उनमें कमजोरी है।
और पास हमारे ताकत वर, चतुरंगिनि सेन न थोरी है॥
जबतक न पकड़ते जोर वहां, मित्रों से मिल पांचों भाई।
बस तभी तलक है. उचित हमें, दिखला देना रण चतुराई॥
जब तलक वीर पंचालेश्वर, अपनी सेना न सजाते हैं।
और कृष्ण तथा हलधर जबतक, ले सेना तहां नहिं आते हैं॥
जब तक रण को तत्पर न होयँ, वे सब रण सामग्री पाकर।
तब तक ही उत्तम अवसर है, बस वार करो सन्मुख जाकर॥
श्री रामचन्द्र ने भी बल से, शत्रू की शान घटाई थी।
और भरत ने भी बलद्वारा ही, सम्राट् की पदवी पाई थी॥

ऐही क्षत्री धर्म है, कर विक्रम परकाश।
रण में जा ललकार कर, करे शत्रु का नाश॥

अस्तू जल्दी सेना सजाय, पंचाल नगर पर चढ़ जाओ।
द्रुपद सहित उनको हराय, बल से यहां बांध पकड़ लाओ॥
इन साम दाम और भेदों से, जो काम नहीं हो पाया है।
वह विक्रम द्वारा पूर्ण करो, ये ही हमने ठहराया है॥

※ गाना ※

(तर्ज–दिल ले हो चुके नाज से शोखी से हंसी से)

गर चाहते हो चैन करें शस्त्र उठाओ।
चित को न छल कपट में कभी मित्र फंसाओ॥
धोखे से वार करना नहीं काम वीर का।
शत्रू को बुला सामने फिर शक्ति दिखाओ॥

लड़ने मे लाभ ही है सदां हानि नहीं है।
जीते तो सुख मरे तो तुरत स्वर्ग सिधाओ ॥
तुम क्षत्रि हो क्यों क्षत्रि धरम पालते नहीं।
मेरा तो यही मत है के अब सेन सजाओ ॥

सुन बचन कर्ण के दुर्योधन, बोला तुम धन्य हो कर्ण बली।
तुम वीर हो, वीरोचित बातें, कह आज खिलाई कली कली ॥
अच्छा तुम सब आराम करो, मैं पास पिता के जाता हूँ।
ले उनको आज्ञा सेना को सजने का हुक्म सुनाता हूँ ॥
इतना कह उठ कर चला, दुर्योधन हरषाय।
उधर बात जो कुछ रही, सुनिये ध्यान लगाय ॥
जिस समय विदुर को ज्ञात हुआ, पांडवों ने कृष्णा पाई है।
दुर्योधन आदिक की बल से रण में सब शान घटाई है ॥
तो मन में अतिशय हरषाकर, धृतराष्ट्र समीप चले आये।
पंचाल देश में हुये थे जो, हालात सभी वे बतलाये ॥
फिर कहा प्रभू के गुण गावो, जिसने ये दिवस दिखाया है।
अग्नी से यथा द्रुपद सदृष्य, नृप से नाता जुड़वाया है ॥
ऊपर से होकर खुशी, बोले चक्षु विहीन।
विदुर हमें ये बात कह, तुमने अति सुख दीन ॥
जिस प्रकार मुझको दुर्योधन, आदिक सब सुत अति प्यारे हैं।
बस उसी तरह या इनसे भी, बढ़ कर वे प्रियः हमारे हैं ॥
जगदीश करे फूलें व फलें, वे धर्म परायण बलशाली।
और चिर सौभाग्यवती होकर, भोगे अपार सुख पंचाली ॥
कहा विदुर ने प्रेम से, होकर पुलकित गात।
ऐसी ही इच्छा सदां, रहे तुम्हारी भ्रात ॥
इतना कह ये तो चले गये, इतने में दुर्योधन आया।
और अपना नाम उचारण कर, अति आदर से मस्तक नाया ॥

लेकिन इसने कुछ बातों को, सुन लिया इस जगह पर आके।
लख प्रेम पांडवों पर पितु का बोला मनमें गुस्सा लाके॥
हे श्रेष्ठ पिताजी रिपुओं की, बृद्धी लखकर हरषाते हो।
ये समझ आपकी कैसी है, क्यों मुझको दुखी बनाते हो॥
हमको तो जैसे हो उनको, निशिदिन दुख पहुँचाना चहिये।
न के इस तरह प्रशंसा कर, नित उनके गुण गाना चहिये॥
उनका सारा ऐश्वर्य विभव, कांटे सम मुझे खटकता है।
वे दिन दिन बढ़ते जाते हैं, दुर्योधन प्रतिदिन घटता है॥
उनकी शक्ती का ह्रास होय, ऐसा प्रयत्न बतलाओ पिता।
और राज करें हम निष्कंटक, इसका उपाय फरमाओ पिता॥

ये सुनकर धृतराष्ट्रजी, मौन रहे कुछ काल।
शांति भंग कर फिर कहा, सुनो हमारे लाल॥

मैं भी ये देख नहीं सकता, पांडू के लड़के राज करें।
और धृतराष्ट्र के पुत्र सदां, उनके नौकर बन काज करें॥
लेकिन ये बात विदुर जी के, आगे कहता शरमाता हूँ।
बस यही सबब है जो उनके, सन्मुख रिपु के गुण गाता हूँ॥
इस समय न विदुर उपस्थित है, अब कहो जो राय तुम्हारी हो।
काम करूंगा वही पुत्र, जो तेरे लिये हितकारी हो॥

कहा सुयोधन ने तुरत, सुनो पिता धर धीर।
साम दाम और भेद से, मरे न पांचों वीर॥

अस्तू अब यही विचारा है, सेना लेकर चढ़जावें हम।
और सन्मुख जाकर भुजबल से, रिपुओं का खोज मिटावें हम॥
है कर्ण धनुर्धर महारथी, इस सम दुनियां में आन नहीं।
अर्जुन व भीम ये दोनों मिल, है आधे के भि समान नहीं॥
ये शिष्य है मम गुरु के गुरुका, अस्तू है पूरा बलवानी।
निश्चय ये रिपुओं की जां को, हरलेगा जो मन में ठानी॥

बस इसीलिये मैं आया हूँ, दो हुक्म कटक ले जाने का ।
पंचाल देश को तहस नहस, कर रिपु को मार भगाने का ॥
धृतराष्ट्र बोले अवसि, सूत-पुत्र है वीर ।
यदि वो चाहे बाण से, दे हिमगिरि को चीर ॥
फिर भी मेरा हुक्म है, करो वही तुम काम ।
विग्रह जिसमें हो नहीं, शुभ फल हो परिणाम ॥
तुम, भीष्म पिता, गुरु द्रौण और, नीतिज्ञ विदुर को बुलवाओ ।
मंत्रणा करो फिर एक बार, जिस से आखिर में सुख पाओ ॥
ये आज्ञा सुन दुर्योधन ने, मजबूरन सबको बुलवाया ।
और लगा सोचने ऊंच नीच, आखिर भीषम ने फरमाया ॥
वृथा फटे में पांव धर, क्यों होते हैरान ।
प्रेम सहित उनको करो, आधा राज प्रदान ॥
हे धृतराष्ट्र तू और तेरे, सुत जैसे मेरे स्नेही हैं ।
बस उसी तरह नृप पांडु और, पांडव गण भी मम नेही हैं ॥
ऐसी हालत में क्यों कर मैं, उनका सर्वस हरने के लिये ।
दुर्योधन अरु कर्ण आदिक को, आज्ञा दूं रण करने के लिये ॥
जिस तरह मानते हो तुम ये, इस राज्य के हम अधिकारी हैं ।
बस इसी तरह वे कहते हैं, ये सारी भूमि हमारी है ॥
पर सोचो विचित्रवीर्य नृप जो, उनके दादा कहलाते थे ।
और पिता यशस्वी पान्डु-राज, जिन से शत्रू दहलाते थे ॥
वे क्रम क्रम से नृप पदवी पा, जब चला चुके हैं राज यहां ।
तो मुझको जरा बताओ फिर, अब रहा तुम्हारा ताज कहां ॥
छल से सच्चे अधिकारी को, तुमने निकाल कर दूर किया ।
उन उपस्थिती में फिर उनकी, ये सारा राज दबाय लिया ॥
अब करते हो इनकार भूप, उनकी वस्तू लौटाने में ।
क्या यही धर्म है, शर्म करो, कुछ धरा न पाप कमाने में

याद रखो जब तलक हैं, जीवित पांडु-कुमार।
तब तक उनके राज्य को, लेना है दुष्वार॥
तुम सब तो हो किस गिनती में, यदि लेना चाहें सुरराई।
तो भी नहिं लेसकते जब तक, जिन्दा हैं वे पांचों भाई॥
ये सब जानो आगे होकर, जो तुमने राज न दिया उन्हें।
लेलिया उन्होंने बल से तो, फिर क्या उत्तम फल मिला तुम्हें॥
होगी बदनामी दुनियां में, सब देंगे ताने बातों से।
अस्तू धृतराष्ट्र कीर्ति अपनी, मत नष्ट करो निज हाथों से॥
कीर्ति हीन नर का यहां, जीना है बेकार।
अस्तु बात मम मान कर, छोड़ो नीच विचार॥
हे भूप, "पांडु गण भस्म हुये", जब प्रजा ने ये सुन पाया था।
उस समय पुरोचन को तज कर, अपराधी तुम्हें बताया था॥
इस समय दूर वो दोष हुआ, पांडवों के जीवित रहने से।
अबतो विचार कर बचो भूप, उन लोगों को दुख देने से॥
यदि पाप से बचना चाहते हो, यदि खुश रहने की इच्छा है।
तो अर्द्ध राज दे देना ही, मेरी तो राय में अच्छा है॥

❀ गाना ❀

(नहीं है लड़ने में कुछ सार)

पांडु सुवन ही सिंहासन के हैं असली हकदार।
फिर उनका कुल राज उन्हें दे क्यों न मिटाते रार॥ नहीं है ॥१॥
जबतक शान्ति रहेगी राजन् होगा सुःख अपार।
रण चंडी यदि चेत उठी तो बिगड़ेगा घरबार॥ नहीं है ॥२॥
तुमने तो कितने ही उन संग किये हैं दुर्व्यवहार।
उनकी नेकी को तो देखो करते अब भी प्यार॥ नहीं है ॥३॥
अस्तु मान अब मेरा कहना तज दो बुरे विचार।
पूर्ण नहीं तो आधा ही दो उनको राज भुवार॥ नहीं है ॥४॥

कहा द्रोण ने भी तुरत, अपनी भुजा उठाय।
भीषम ने जो कुछ कहा, वही है मेरी राय॥
पर दुर्योधन को ये बातें, बिलकुल भी पसंद नहीं आई।
ये देख विदुर जी कहन लगे, क्यों करता है तू कुटिलाई॥
उस सूत-पुत्र के कहे में आ, किसलिये तू युद्ध मचाता है।
इस हरे भरे कौरव-कुल को, मिट्टी में वृथा मिलाता है॥
इस समय शांतनू-नन्दन ने, जो कुछ बातें बतलाई हैं।
वे सत्य हैं उसके माफिक ही, चलने में पुत्र भलाई है॥
भीषम सदृष्य अनुभवी मनुज, मैं नहीं किसी को पाता हूँ।
अस्तू उनके कथनानुसार, चलना ही उचित बताता हूँ॥
हैं सत्य देवता भी हारे, पांडवों को गुस्सा आने पर।
फिर क्यों फिजूल इतराते हो, रविनन्दन के बहकाने पर॥
जिस नर में धैर्य क्षमा व सत्य, पुरुषार्थ निरंतर रहते हैं।
उन श्रेष्ठ युधिष्ठिर को रण में, क्या शत्रू जय कर सकते हैं॥
फिर दस हज़ार हाथियों का बल, रहता है जिस इकले तन में।
उस भीम को बधने की इच्छा, क्या आसकती है रिपु मन में॥
और अर्जुन की तो बात हि क्या, बकता है तीर चलाने में।
उससे सदृष्य बलवान वीर, आता नहिं दृष्टि जमाने में॥
यदि वह चाहे निज बाणों से, हिमगिरि को रेत बना डाले।
तारों को नष्ट भ्रष्ट करदे, जलनिधि को तुरत सुखाडाले॥
फिर है पूर्णतया जिसे, दिव्य अस्त्र का ज्ञान।
उसको रण में जीतना, क्या समझा आसान॥
सहदेव नकुल भी जब रण में, तलवार उठाकर चलते हैं।
तो बड़े बड़े वीर बली, चक्कर खाकर गिर पड़ते हैं॥
फिर जिन के साले धृष्टद्युम्न, और श्वसुर हैं द्रौपद बलवानी।
और मित्र हैं जिन के बुद्धिमान, आनंद-कंद शारंगपानी॥

ऐसे उन पांडु सुतों को तुम, किस तरह हराने पावोगे ।
यदि रण करने वहां गये भी तो, निश्चय निराश हो आवोगे ॥
वे लोग अजय हैं ये गिनकर, अपनी आवरू बचाओ तुम ।
दे डालो आधा राज उन्हें, उलटे मग पर मत जाओ तुम ॥
संधी करने में हमें, लाभहि दृष्टी आय ।
युद्ध हुआ तो सत्यही, कौरव कुल नसजाय ॥
क्यों के जिस तरफ कृष्ण होंगे, जय लक्ष्मि उधर ही जावेगी ।
ये जान बूझकर भी किसके, मन में लड़ने की आवेगी ॥
दुर्योधन ! तनिक विचार करो, जो काम मेल से हो जावे ।
उसको करने के लिये कौन, है मूर्ख जो रण की ठहरावे ॥
फिर पांडु सुतों को जीवित सुन, सारी रैयत हरषाई है ।
और उनके दर्शन करने की, दिखलाती आतुरताई है ॥
अस्तू उन सबको बुलवाकर, रयत का इच्छित काम करो ।
और आधा राज उन्हें भी दे, झगड़े का काम तमाम करो ॥
दुःशासन शकुनी आदि सभी, पापी हैं दुर्बुद्धी वाले ।
यदि इनके कहेनुसार चलें, पड़ जावेंगे जी के लाले ॥
अस्तू मेरी राय भी, है येही धृतराष्ट्र ।
होय विभाजित शीघ्र ही, दो भागों में राष्ट्र ॥
चक्षुहीन बोले यही, येही सबकी राय ।
तो फिर कुन्ती के सहित, उनको लो बुलवाय ॥
जैसे कौरव वैसे पांडव, मुझ पत्नी की दो पांख हैं ये ।
इन दोनों का हक भी सम है, इस अंधे की दो आंख हैं ये ॥
मेरेहि भाग्य ने उन सबकी, अग्नी से जान बचाई है ।
ये मेरी ही किस्मत है जो, पांचो ने कृष्णा पाई है ॥
इस दुर्योधन के कहने से, मैंने नहिं उनपर ध्यान दिया ।
इस जरासी मेरी गलती ने, उन लोगों को वीरान किया ॥

उपदेश तुम्हारा सुन करके, ये अंधा अब पछताता है ।
पर पछताये क्या होता है, जब समय आय टल जाता है ॥
नादान पुत्र के कहे में आ, ये वृद्ध पिता बदनाम हुआ ।
पड़गई गांठ दोनों दिल में, हा कैसा दुष्परिणाम हुआ ॥
अब प्रेम से दुर्योधन को मैं, पांडवों के गले लगा दूंगा ।
दे दूंगा उनको अर्ध राज, यों गांठ समस्त मिटादूंगा ॥
जाओ हे विदुर शीघ्र जाओ, आदर से उन्हें बुला लाओ ।
मम भाभाओं व सहारों को, सन्मान पूर्वक ले आओ ॥

आज्ञा पा धृतराष्ट्र की, साज सभी सामान ।
रथ पर चढ़कर शीघ्र ही, चले विदुर विद्वान ॥

पहुँचे पंचाल नगर में जब, पंचालेश्वर आगे आये ।
सन्मान सहित लेगये भवन, कर कुशल प्रश्न तहां बैठाये ॥
महा मती विदुर ने हर्षित हो, पांडवों को हृदय लगाय लिया ।
फिर रत्न भेट करके सबको, नृप का सदेश सुनाय दिया ॥
संबंध यहां पर होने से, कौरव सारे हरषाये हैं ।
पुर जनों ने भी आल्हादित हो, अति हित से मंगल गाये हैं ॥
पूछी है बारम्बार कुशल, धृतराष्ट्र व भीष्म पिताजी ने ।
और आप के प्यारे मित्र सुहृद, श्री द्रोणाचार्य गुरुजी ने ॥
धृतराष्ट्र भ्रात ने शादी की, हे नृप जिस दिन से सुधिपाई ।
तबही से इनको लखने की, दिखलाते हैं आतुरताई ॥
रनवास की सभी स्त्रियां भी, चाहती हैं कुन्ती दर्शन दें ।
कृष्णा भी शशि मुख दिखला कर, ये राज महल उज्वल करदें ॥
अतः हस्तिनापुर जाने की, हम सबको नृप आज्ञा दीजे ।
अभिलाषा उनकी पूर्ण होय, कहना मेरा इतना कीजे ॥

कहा द्रुपद ने ठीक है, विदुर तुम्हारा ध्यान ।
मुझको भी इस ब्याह से, हुआ है सुख महान ॥

और ये भी उचित हि जचता है, अब पांडु कुमार चले जावें ।
ले राज्य पिता का निज कर में, रैयत पालन कर हरषावें ॥
लेकिन अपने मुखसे क्यों कर, दूं इन्हें विदाई जाने की ।
फिर ये भी तो कुछ आश नहीं, इनके वहां सुखही पाने की ॥
मुमकिन है इनको बुला वहां, कुछ और जाल फैलावें वे ।
अस्तू मेरी तो राय है यह, यदि कृष्ण कहें तो जावें ये ॥
क्यों के नटवर बलराम सहित, पांडवों के हितसाधन में हैं ।
जिस से ये पांचों सुखी रहें, उस क्रिया के आराधन में हैं ॥
पांडव जन, कृष्ण जनार्दन हैं, वे प्रजा, प्रजापालक हैं ये ।
यदि वे हैं तन जो प्राणहीन, तो प्राण के संचालक हैं ये ॥
बस ज्यादा कहना है फ़िजूल, ये कृष्ण हि की प्रभुताई है ।
जिससे दुःखों से मुक्त होय, आनन्द में पांचों भाई हैं ॥
अस्तू जो इनकी आज्ञा हो, मेरी भी वही राय जानो ।
एक कृष्ण हि पांडु कुमारों के, हैं सत्य मित्र ये पहिचानो ॥

मुस्करा कर कहने लगे, यदुनन्दन यदुराय ।
सुनो विदुर एक बात है, कहता हूँ सत भाय ॥

जो मेरे आश्रित रहते हैं, मैं उनकी रक्षा करता हूं ।
हित से जो मुझे सुमिरते हैं, मैं उनका नाम सुमिरता हूँ ॥
धनवान बाप का लड़का क्या, कभि द्रव्य का दुःख उठाता है ।
जल है तब क्या जलचर भि कभी, जल के बगैर अकुलाता है ॥
धृतराष्ट्र की राय से ही अबतक, पांडवों ने कष्ट उठाया है ।
तुमको जो यहां पर भेजा है, ये सारी उनकी माया है ॥
पांचों को बुलवाने के लिये, ज़ाहिर तैयार हुआ होगा ।
पर शादी की बातें सुनकर, दिल ही दिल में कुढ़ना होगा ॥
जो इन्हें साथ ले जाते हो, तो उसको सब समझा देना ।
रक्षक हैं इनके श्रीकृष्ण, ये सारा हाल बता देना ॥

अभिमानी क्रांति-कारियों को, मैं सुख में देख नहीं सकता।
धर्मावलम्बियों को हे विदुर, दुख में भी देख नहीं सकता॥

* गाना *

(तर्ज–हम को याद या अरमां रहे रहे ना रहे)

जाके समझाना विदुर ताके उन्हें ध्यान रहे।
दुःख गैरों को ना देने का सदां ज्ञान रहे॥
नर को चहिये कि तजे छल व कपटको, व करे।
नेकी, जबतक के वो संसार का महमान रहे॥
रहती हरदम न कभी ऐकसी हालत जग में।
अस्तु वैभव का कभी चित में न अभिमान रहे॥
धर्म है नर का करे काम हमेशा शुभ ही।
कल की कुछ आश नहीं जान रहे या न रहे॥

अच्छा ले जावो इन्हें, अपने संग लिवाय।
पूर्ण राज यदि दें नहीं, आधा दो दिलवाय॥

सुन बचन कृष्ण के हर्षित हो, श्री विदुर ने सबको साथ लिया।
रमणीक वनों को लखते हुये, हस्तिनापुर को प्रस्थान किया॥
महाराजा धृतराष्ट्र ने जब, दूतों द्वारा ये सुधि पाई।
कुन्ती, कृष्णा को लिये हुये, आरहे विदुर संग सब भाई॥
तब हर्षित हो कृप, द्रौण आदि, लोगों को झटपट बुलवाया।
और पांडु-कुमारों की सादर, अगवानी करने भिजवाया॥
ये समाचार बिजली की तरह, छागया नगर में पल भर में।
आगमन इन्हों का सुनते ही, हरषे पुरवासी घर घर में॥
जो जहां जिस तरह बैठे थे, वे उसी तरह उठ खड़े हुये।
दौड़े दर्शन करने के लिये, नये जोश उमंग में भरे हुये॥
ऐसी सब कहते जाते थे, आरहे हैं सुविचारी पांडव।
हित रखते थे सुतवत हमपर, आरहे वे हितकारी पांडव॥

धन्य धन्य दिन आज का, धन्य हुई तकदीर ।
देखेंगे फिर नेत्र भर, पांचों पांडव वीर ॥
जो मन व वचन से कर्म से हम, नित प्रभु का नाम सुमिरते हैं ।
जो दान धर्म तप होम यज्ञ, सच्चे दिल मे हम करते हैं ॥
तो इनके फल की एवज में, चाहते हैं प्रभु ये काज करें ।
सौ वर्ष तलक सब कुन्ती सुत, इस हस्तिनापुर में राज करें ॥
बस इसी तरह कहते कहते, ज्योंही ये कुछ आगे आये ।
त्योंही दृग पड़े पांडवों पर, अस्तू सब ठहरे हर्षाये ॥
मन माने इनके दर्शन कर, आखिर लौटे पुरवासी गन ।
इतने में ये धीरे धीरे, जा पहुँचे धृतराष्ट्र के भवन ॥
भीष्मपितामह को प्रथम,जाय नवाया शीश ।
धृतराष्ट्र ढिंग जायकर, फेर लई आशीश ॥
बोले नृप पुत्रों सुखी रहो, पा तुम्हें चित्त हर्षाया है ।
है धन्यवाद हरि को जिस ने, संकट से तुम्हें छुड़ाया है ॥
जिस दिन से उस दुर्घटना की, वीरों मैंने सुधिपाई थी ।
बस उसी दिवस से खान पान, निद्रा की याद भुलाई थी ॥
इस क़दर हुआ था दुःख मुझे, मानो मम भ्रात पांडु नृपवर ।
चल दिया आजही स्वर्ग लोक, दुनियां में मुझको इकला कर ॥
इस समय तुम्हारे आने से, सब दूर मेरा संताप हुआ ।
बस यही ज्ञात होता है आज, पांडू से फेर मिलाप हुआ ॥
अब तो मन चाहता यही,आंखें लाय उधार ।
शक्ल तुम्हारी नेत्र भर, देखूं तो इक बार ॥
शीश नवा कर धर्मसुत, बोल उठे तत्काल ।
धन्य धन्य तुम धन्य हो, धन्य धन्य महिपाल ॥
हे ताया ! तुम्हरे श्री मुख से, जो ये न सुनन में आयेगा ।
तो फिर इस स्वार्थ भरे जग में, सज्जन नर कौन कहायेगा ॥

जब तलक आप हैं विद्यमान, हमतो बस यही समझते हैं ।
हस्तिनापुर का सब राज पाट, महाराज पांडु ही करते हैं ॥
श्री चरण आपके तजने से, चित रहता था निशिदिन बेकल ।
सौ सौ वर्षों सम कटता था, हे भूप हमारा एक एक पल ॥
अब शुक्र है उस परमेश्वर का जो भाग्य सितारा फिर चमका ।
शुभ दर्श आपका पाने से, होगया खातमा सब गमका ॥

ये सुनकर धृतराष्ट्र जो, हुये प्रफुल्लित गात ।
दी आज्ञा आराम अब, जाय करो सब भ्रात ॥

कर चरण वंदना नृप वर की, सबने आराम किया जाकर ।
और रहे कुछ दिनों तक सारे, कुन्ती, कृष्णा संग हर्षाकर ॥
फिर एक रोज़ महाराजा ने इनको अपने ढिग बुलवाया ।
आने पर जेष्ट युधिष्टिर को, संबोधन कर यों फरमाया ॥
सुत ! तुममें और सुयोधन में, दिन रात लड़ाई होती है ।
बढ़ता जाता है वैर भाव, इसमें न भलाई होती है ॥
निश्चय है घरकी फूट कभी, घर में झगड़ा फैलायेगी ।
इस हरे भरे कौरव-कुलको, मिट्टी में तुरत मिलायेगी ॥
अस्तू हमने ये सोचा है, ये राज विभक्त किया जावे ।
आधे का दुर्योधन मालिक, और आधा तुम्हें दिया जावे ॥

यमुना की पश्चिम दिशा, खांडव प्रस्थ सुहाय ।
राज करो तहां जाय कर, सुख से पांचों भाय ॥

दुर्योधन के अपराध सभी, हे पुत्र युधिष्टिर माफ करो ।
और दोनों जने गले मिलकर, अपने अपने दिल साफ करो ॥
मैं तो अब वृद्ध हो चला हूँ, क्या खबर मौत कब आजावे ।
अस्तू मम उपस्थिती में ही, चाहता हूँ झगड़ा मिट जावे ॥
अपनी रजधानी में रहकर, यहां की भी सुधि लेते रहना ।
अर्जुन सम दुर्योधन को भी, अपना भाई गिनते रहना ॥

दुर्योधन, दुर्योधन तू भी, उठ गले लगा निज भाई को ।
मेरी येही अभिलाषा है, कर दूर सकल दुचिताई को ॥
हुआ अनिच्छा से खड़ा, दुर्योधन दुखपाय ।
गले युधिष्टिर को लगा, बैठा भृकुटि चढ़ाय ॥
ये भाव सुयोधन का न लगा, अच्छा बलवीर वृकोदर को ।
भीषम व विदुर ने भी सोचा, यह नष्ट करेगा इस घरको ॥
लेकिन धर्मज्ञ युधिष्टिर ने, ये लखकर भी नहि दुखपाया ।
है दुर्योधन नादान अभी, ये सोच हृदय को बहलाया ॥
फिर शीश झुका कुन्ती नन्दन, बोले भूपति से मृदु बानी ।
सब फिक्र हमारा दूर हुआ, सुन न्याय आपका सुख दानी ॥
फिर भी मेरी एक बिनती है, आजन्म आप महाराज रहें ।
और हम सब तुम्हरे चरणों के, सेवक बन ज़ेरे ताज रहें ॥
ईश्वर न करे यदि दिन आया, तब स्वर्गलोक में जाने का ।
तो धर्म हमारा है तुमने, जो कहा है उसे निभाने का ॥
धृतराष्ट्र कहने लगे, धन्य पुत्र गुणवान ।
बात तुम्हारी ठीक है, फिर भी सुनो सुजान ॥
आजन्म से ही हूं नेत्रहीन, फिर ये वृद्धावस्था आई ।
इस समय राज्य करने में मुझे, पड़ती है अतिशय कठिनाई ॥
मैं किसी तरह ले भीष्म विदुर, की मदद ये राज चलाता हूँ ।
पर अब तुम पूर्ण समर्थ हुये, इसलिये शांति मैं चाहता हूँ ॥
जावो बेटा हर्षित होकर, खांडव प्रदेश में बास करो ।
और अर्जुन द्वारा रक्षित हो, रिपुओं का अपने नाश करो ॥
आज्ञा पा धृतराष्ट्र की प्रमुदित शीश नवाय ।
पहुँचे खांडव प्रस्थ में सुख से पांचों भाय ॥
उस समय ये खांडव प्रस्थ सभी, एक अति गहन दुस्तर बन था ।
परि पूर्ण था हिंसक जीवों से, था भयदायक फिर निर्जन था ॥

इस जगह युधिष्ठिर ने डेरे, डाले परिवार सहित आकर ।
और मदद से निज भ्राताओं की, कई दिन काटे सुख दुख पाकर ॥
फिर शुभ महूर्त के आते ही, डाली एक पुर की नींव नई ।
नाना देशों से अति उत्तम, कारीगर बुलवा लिये कई ॥
सबसे पहिले उस जंगल को, इन लोगों द्वारा कटवाया ।
चहुँ दिश गहरी खाई खुदवा, फिर परकोटा दृढ़ बनवाया ॥
शत्रू जिसका जय कर न सकें, ऐसे गढ़ की फिर रचना की ।
और रण में काम आने लायक, सारी चीजें तहां धरवादीं ।
फिर राज महल निर्माण करा, पुरके मकान बनवाने लगे ॥
और साथहिपुर बाहिर अगणित, तालाब कुऐ खुदवाने लगे ।
फिर अगणित उपवन बने, मंडप रचे अनेक ।
सर दृष्टी आने लगे, कमलों के कई एक ॥
हर दम इन सुघड़ बगीचों में, रहती थी ऋतु वसंत छाई ।
सब वृक्ष फलों से लदे हुये, देते थे प्रतिदिन दिखलाई ॥
और फूल सभी फूले रहकर, चहुँदिशि खुशबू फैलाते थे ।
काले मतवाले भृंग कई, निशिदिन गुंजार मचाते थे ॥
हरती थी सबके हृदय को, कोयल नित मीठी बानी से ।
हर्षित हो जाता था ये सब, लखने वाला आसानी से ॥
यों चन्द महीनों में पूरा, पुरके बनने का काम हुआ ।
सुरपुर सम सुन्दर होने से, बस "इन्द्रप्रस्थ" ही नाम हुआ ॥
जैसे ही ये मन हरण, नगर हुआ तैयार ;
आ आ कर रहने लगे, अगणित विप्र कुमार ॥
भाषा थी जिनकी भिन्न भिन्न, ऐसे अनगिनती व्यौपारी ।
आये और रहने लगे यहां, लख धर्म राज अति सुखकारी ॥
कुछ ही दिन में ये इन्द्रप्रस्थ, धन धान्य प्रजा से पूर्ण हुआ ।
इहलोक और परलोकों के सब सुःखों से परि पूर्ण हुआ ॥

इसके उपरान्त युधिष्ठिर के, राज्याभिषेक की तैयारी।
पुरजन परिजन मिल करन लगे, होकर मनमें हर्षित भ.री॥
आखिर निश्चित दिन आते ही, कुन्तीनन्दन को अन्हवाया।
सजवा कर वस्त्राभूषण से, कंचन आसन पर बिठलाया॥
होगये खड़े सहदेव नकुल, पीछे, और चंवर डुलाने लगे।
अर्जुन व भीम दायें वायें, रहकर अति शोभा पाने लगे॥

हुये इकट्ठे ऋषि मुनी, उत्तम विप्र कुमार।
प्रजा वर्ग आये सभी, शोभा हुई अपार॥

मय गुरु के इसनें योग दिया, भीषम व विदुर ने भी आकर।
फिर सबही मिल कर करने लगे, वेदोंकी ध्वनि अति पुलका कर।
उठकर फिर धौम्य पुरोहित ने, सबसे पहिले काढ़ा टोका।
फिर और अनेकन विप्रों ने, अरमान निकाला निज जीका॥
पुष्पों की वर्षा होने से, ढक गई तहां की महि सारी।
लख निज सुन को सिंहासन पर, होगई प्रफुल्लित महतारी॥
आरती करी कई बार और, सबको मुंह मांगा दान दिया।
याचक सब बने अयाचक से, इतना ज्यादा सन्मान किया॥
फिर नजरें गुजरीं लाखों की, नृप के समोप सम्पति आई।
यों पूरा राज्यभिषेक हुआ, चल दिये सभी जन सुखदाई॥

राज नीति के अंग सब, इन्हें पूर्ण समझाय।
भीष्म विदुर भी चल दिये, गुरु को संग लिवाय॥

पुर का प्रबन्ध करने के लिये, कितने ही मंत्री अधिकारी।
कर नियत युधिष्ठिर करन लगे, सुतवत रैयत की रखवारी॥
सच्चे सतवादी धर्म वीर, कुन्तीसुत के सिंहासन पर।
आते ही द्वापर गुप्त हुआ, सतयुग छागया सकल भूपर॥
होगई अनंदित प्रजा सभी, दुख रोग शोक भय दूर हुआ।
वर्णाश्रम धर्मों के माफिक, चलना सबको मंजूर हुआ॥

उस समय पाठशालायें कई, नगरी में दृष्टी आती थीं ।
तहां बालक और बालिकायें, जाकर नित शिक्षा पाती थीं ॥
इसलिये स्त्रि पुरुषों में था, कोई नहिं अनपढ़ अज्ञानी ।
थे सभी तीव्र बुद्धी वाले, सुन्दर स्वरूप और गुणखानी ॥
जिस पुर का भूपाल हो, धर्म-मूर्ति सुख धाम ।
उस पुर में कैसे कहो हो अधर्म का काम ॥
थे धर्म धुरंधर सभी मनुज, पाखंड रहित पर उपकारी ।
विद्वानों की सेवा करने, वाले उदार मति सुविचारी ॥
व्यभिचार नाम कोषों में ही, लखने पर दृष्टी आता था ।
अन्यथा मनुष्य तो निज जीवन, शुभ कर्मों में हि बिताता था ॥
पतीव्रता थीं स्त्रियां, पुरुष पत्निव्रत पाल ।
ये सब ही उपयुक्त है, जहां धर्म भूपाल ॥
अपराधी को दंड देने को, नृप ने कानून बनाया था ।
लेकिन अपराधी अभी तलक, कोई नहिं सन्मुख आया था ॥
था बना कैदखाना लेकिन, कैदी न दिखाई देता था ।
अतुलित धन मिलने पर भी कोई, चोरी का नाम न लेता था ॥
था जुआ मगर "वृष" के ऊपर, झगड़ा वेदों के अर्थों में ।
एक चन्द्र कलंकित दिखता था, और फूट थी केवल खेतों में ॥
धर्मात्मा राजा को पाकर, फलते थे तरु नित सुखदानी ।
पंचानन और बकरी मिलकर, पीते थे एक घाट पानी ॥
शीतल और मंद सुगंध पवन, हृदय को हरा बनाता था ।
समयानुसार नभ मंडल से, बादल भी बूंद गिराता था ॥
थी राज गऊशालायें कई, जहां मिलता था पय बिन धन के ।
तो भी घर घर में सुघड़ गाय, आती थी दृष्टि गृहस्थिन के ॥
पुर के बाहिर कई मीलों तक, बस थी चरागाह बनी हुई ।
इस जगह हरित त्रण चरती थीं, सब पुर की गायें सुखी हुई ॥

रहता था हरदम हरा, ये समस्त मैदान ।
बहतो थी घी दूध की, नदियां तहां महान ॥
इस सारे आनन्द के कारण, बस एक युधिष्ठिर राई थे ।
क्यों के ये धर्मधुरंधर थे, सतवादी जन सुखदाई थे ॥
जल निधि में क्रूर जंतुओं का, गिनभवन मनुज सब डरते हैं ।
लेकिन रत्नों के लालच से, उसके तटपर भी रहते हैं ॥
बस इसी तरह बलवीर्य देख, नृप से सारे घबराते थे ।
पर दयावान आदत लखकर, प्रीती भी पूर्ण दिखाते थे ॥
कुन्ती-नन्दन अपने उत्तम, उपदेश और आज्ञाओं से ।
नहिं प्रजा को हटने देते थे, वेदों की सत्य प्रथाओं से ॥
जिस तरह खींचकर पानी को, भूमी से, रवि किरणों द्वारा ।
पा समय उसी को देता है, उससे भी बढ़कर जलधारा ॥
त्योंही अपनी कुल रैयत से, कुन्ती नन्दन "कर" लेते थे ।
लेकिन उसके ही लाभों में, वह सारा व्यय करदेते थे ॥
भय से रत्न सुमार्ग में, चलने का उपदेश ।
रैयत को देते सदां, धर्मराज अवनेश ॥
अन्नादिक से भी पूर्ण मदद, वे यथा समय पहुँचाते थे ।
बस इन्हीं कारणों से सच्चे, रैयत के पिता कहाते थे ॥
परजा भी हरदम तत्पर थी, नृप को नित जाँ देने के लिये ।
करती थी प्रभु से विनय सदां, उनको नित खुश रखने के लिये ॥
जाबजा वेद ध्वनि होती थी, थे लीन सभी सतसंगों में ।
सब सत्य मार्ग के ज्ञाता थे, थी कभी न कोई अंगों में ॥
उत्तम उत्तम ऋषि मुनियों का, होता था नित्य समागम भी ।
थे खुश सब ज्ञात न था दिन का, छिपना व निशा का आगम भी ॥
धर्मराज स्थपित कर, पांचों पांडु-कुमार ।
रहन लगे आनन्द में, सारा दुःख बिसार ॥

एक दिवस आये तहां, नारद मुनि हरषाय ।
यथा योग्य सन्मान पा, बैठ गये सुख पाय ॥
कृष्णा ने भी ये सुधिपाई, ऋषि नारद यहां पधारे हैं ।
सुनते ही मुख से निकल पड़ा, धन धन सौभाग्य हमारे हैं ॥
झट न्हाय पहनकर स्वच्छ वस्त्र, भर्तार्त्रों की आज्ञा पाकर ।
मुनिवर के चरण सरौजों में, भक्ती से नमन किया आकर ॥
फिर खड़ी हुई मस्तक झुकाय, ये लख मुनि सतव्रत धारी ने ।
हरषा कर आशिर्वाद दिया, तब गमन किया सुकुमारी ने ॥
बाद इसके कुछ उपदेश दिया, कुछ राज नीति भी समझाई ।
कुछ खेद प्रगट कौरवों पै कर, आखिर में बोले ऋषिराई ॥
इकली कृष्णा तुम पांचों की, है धर्म पत्नि ये ठीक नहीं ।
यों भ्रातृ भेद हो सकता है, इसलिये रीति ये नीक नहीं ॥
अस्तू ऐसा एक नियम करो, जिससे तुम में मत भेद न हो ।
भाई भाई की प्रीती का, भाई द्वारा उच्छेद न हो ॥
पूर्व काल में भ्रात दो, थे बांके रणधीर ।
नाम सुन्द उपसुन्द था, निश्चर कुल बलवीर ॥
थी ऐसी प्रीती आपस में, दोनों निशिदिन संग रहते थे ।
खाना, पीना, सोना, उठना, एक ही साथ वे करते थे ॥
आखिर आसक्त हुये दोनों, तिलोत्तमा नामक नारी पर ।
इसमे ऐसा झगड़ा फैला, मरगये परस्पर लड़ भिड़ कर ॥
इसलिये हमारी बात मान, तुम सावधान सब हो जाओ ।
जिसमें निशिदिन सुख से बीते, नहि आपस में लड़ने पाओ ॥
आंखें खुल गई पांडवों की, सुन देव-ऋषी की बातों को ।
क्या करें सब सोचने लगे, कैसे रोकें प्रतिघातों को ॥
कर बिचार कुछ देर में, बोले धर्म-कुमार ।
सुनो भाइयों ये नियम, करता हूं निरधार ॥

"कृष्णा संग एकान्त में, जब हो कोई भ्रात ।
वहां दूसरा भ्रात जा, करे न कुछ भी बात ।।"

इस नियम तोड़ने वाले को, घर तज वन में जाना होगा ।
साधू बन बारह वर्षों तक, रह कंद मूल खाना होगा ।।
सहमत हो सब भ्राताओं ने, ऋषि के सन्मुख सौंगद खाई ।
होकर खुश बीन बजाते हुये, आनंद से गमने मुनिराई ।।
नारद के उपदेशानुसार, चलने से पांडु कुमारों में
दिन रात स्नेह बढ़ता हि रहा, अंतर आया न विचारों में ।।

एक रोज की बात है, कुछ चोरों ने आय ।
एक ब्राह्मण की सभी, गायें लई चुराय ।।

अपनी गऊओं को इस प्रकार, लुटते लख ब्राह्मण अकुलाया ।
आगये पसीने सब तन में, आंखों में अश्रू जल छाया ।।
आखिर उठ कर जैसे तैसे, आगया राज्य को ड्योढ़ी पर ।
नेत्रों से अश्रु गिराता हुआ, बस कहन लगा स्वर ऊंचा कर ।।
रक्षा रक्षा हे पांडु-पुत्र, गायें ला रक्षा करो मेरी ।
डाकू उनको लेजाय रहे, दौड़ो दौड़ो न करो देरी ।।
है जहां धर्म का राज्य पूर्ण, उस जगह अधर्मी आये हैं ।
लख उनका दुर्व्यवहार भूप, ये प्राण मेरे घबराये हैं ।।
हा सिंहों के घर में आकर गीदड़ ताकत दिखलाते हैं ।
देखो तो यज्ञ की सामिग्री, कौवे हर्षित हो खाते हैं ।।

अस्तु देर क्यों कर रहे, धावो पांडव वीर ।
प्रिय गउओं की याद में, होता विकल शरीर ।।

हा रैयत से "कर" लेकर भी क्यों नहीं मदद को आते हो ।
किसलिये पाप के बोझे को, नृप अपने शीश चढ़ाते हो ।।
जो राजा अपनी रैयत की, दुख में रक्षा नहिं करता है ।
निश्चय वो पापात्मा आखिर, नरकों में जाकर गिरता है ।।

श्रोताओं ! और नृपालों सम, यदि पांडु पुत्र पांचों भाई ।
होते अनभिज्ञ धर्म से तो, दिखला देते झट कुटिलाई ॥
ब्राह्मण को दुर्भाषी कह कर, बन्दी गृह में डलवा देते ।
रखते आजन्म वहीं पर और, क्या जाने क्या क्या दुख देते ॥
पर पांडु पुत्र नित करते थे, अनुसरन शास्त्र उपदेशों का ।
इसलिये इन्हें थे मालुम था, क्या धर्म है क्षत्रि नरेशों का ॥
अस्तु बाहिर आगये पार्थ, सुनते ही इसकी दुखबानी ।
और बोले धीर भरो मनमें, मत घबराओ हे गुणवानी ॥
देखूंगा अभी कौन पापी, गउ हरने को तैयार हुआ ।
पलटी है किसकी बुद्धि कौन, नर मरने को तैयार हुआ ॥
विप्र विप्र टुक धीर धर, चलता हूँ मैं साथ ।
करता हूँ निज शस्त्र से, अभी दुष्ट का घात ॥
क्षत्री गौ ब्राह्मण की रक्षा, करने में यदि असमर्थ हुआ ।
तो समझो उसका दुनियां में, जिन्दा रहना बस व्यर्थ हुआ ॥
सच तो यह है गौ ब्राह्मण के, प्रताप से नाम है क्षत्री का ।
इन दोनों के आरामहि से, सच्चा आराम है क्षत्री का ॥

❀ गाना ❀

(तर्जः—दानिश्ता खो चुके दिल अब दिलको ढूंढते हैं)

रक्षा गऊ की करना ये धर्म हमारा है । इसके विरुद्ध चलना मुझको न गवारा है ॥
विरता में रक्षा गऊ को जिसने न मदद की कुछ । उसने वृथाही अपने जीवन को गुजारा है ॥
जननी से बढ़ी ऊंचा दरजा है गऊ माता का । वे मूर्ख हैं जिन्हों ने ये तत्व विसारा है ॥
जबतक न तेरी गउए लाऊंगा तुझ घर में । अनजल नहीं करूंगा ये चित में विचारा है ॥

इतना कहकर कुन्ती नन्दन, तीरोकमान लेने आये ।
पर जहां थे थे वहां कृष्णा संग, श्री धर्मराज बैठे पाये ॥
बाहिर ही ठहरत भये, पांडु पुत्र बलवीर ।
दशा विप्र की याद कर, व्याकुल हुआ शरीर ॥

सोचा यदि घर में जाता हूँ, तो नियम भंग हो जायेगा।
यदि ब्राह्मण की रच्चा न हुई, तो धर्म पै धब्बा आयेगा॥
कर्तव्य के कठिन मार्ग में आ, अर्जुन की बुधि चकराई है।
इस ओर गिरे तो कुए में है, उस ओर गिरे तो खाई है॥
पर आख़िर में ये ही सोचा, चाहे वो नियम टूट जावे।
वन में जाने से दुःख मिले, या तन से प्रान छूट जावे॥
लेकिन ब्राह्मण को कर निराश, घर से न कभी लौटाऊंगा।
पालूंगा धर्म, कभी उससे, हो विमुख न पाप कमाऊंगा॥
क्योंके जीवन जाने पर भी, एक धर्म हि केवल रहता है।
फिर क्षत्रि-धर्म भी ऐसा ही करने की अनुमति देता है॥
बस यही सोचकर वीर पार्थ, जा पहुँचे निकट युधिष्टिर के।
कर जोड़ हाल कह चले तुरत, शर सहित शरासन ले करके॥

वापिस आ उस विप्र के, निकट पार्थ गुणखान।
ले उसको संग यान पर, चढ़कर किया पयान॥

वन में जा चोरों को मारा, गायें दे तुरत महीसुर को।
पा आशिर्वाद गये घर में, बोले सिर झुका युधिष्टिर को॥
हे आर्य धर्म की रक्षा हित, मैंने अपना प्रण छोड़ा है।
थे आप अकेले कृष्णा संग, तब आय नियम को तोड़ा है॥
इसलिये सोच संकोच छोड़ आज्ञा अब मुझको दिलवादो।
अपराध का दंड भोगने को, अपराधी को वन जानेदो॥
रच्चा करना स्वधर्म की नित, ये धर्म धर्म-वीरों का है।
और अपनी आन पै मरजाना, ये कर्म कर्म-वीरों का है॥
तज के अब सारा ठाट भूप, सन्यास धर्म स्वीकारूंगा।
बारह वर्षों के बाद आय, तुम्हरे श्री चरण निहारूंगा॥

मुदित हृदय से कीजिये, आशिर्वाद प्रदान।
जिससे जंगल में सभी मुशकिल हों आसान॥

सुन अप्रिय बात धनंजय की, महाराज युधिष्ठिर घबराये ।
होगा बिछोह अब भाई से, ये जान नैन जल भरलाये ॥
फिर बोले मन मे धीरज धर, भाई क्यों बन मे जाते हो ।
कुछ लोप धर्म का हुआ नहीं, फिर वृथाहि क्यों दहलाते हो ॥
घर में स्त्री के संग यदी, बैठा हो कभी जेष्ट भ्राता ।
तहां छोटे भाई का आना, कुछ भी अनुचित न गिना जाता ॥
लेकिन बैठा हो लघु बंधू नारी संग तहां बड़ा भाई ।
आजावे, तो उसकी न कभी, मानी जाती भलमनसाई ॥
तुमने तो मेरी अनुमति ले, इस गृह में निज पग धारा है ।
इसमें अधर्म कुछ हुआ नहीं, फिर क्यों बन गमन विचारा है ॥
कहा पार्थ ने आप नित, करते थे उपदेश ।
छल से कभी न धर्म का, काम करो लवलेश ॥
फिर क्यों मेरे मोह मे फस कर, सतपथ से मुझे हटाते हो ।
जब नियम भंग होगया है तो, क्यों नहि फिर हुक्म सुनाते हो ॥
मैं सत्य कभी नहिं छोडूंगा, चाहे जग मुझसे फिर जाये ।
पालूंगा धर्म विपिन में जा, चाहे कुछ भी संकट आये ॥
यों कह भाई की आज्ञा ले, अर्जुन ने बनमें गमन किया ।
बहुतेरे ऋषि, मुनि, सन्यासी, विप्रों को अपने साथ लिया ॥
जिस तरह सुशोभित होते हैं, देवों से घिर कर सुरराई ।
वैसी ही विप्रों के संग में, शोभा थी अर्जुन ने पाई ॥
आनन्दित हो नाना प्रदेश, बन उपवन विटप लताओं को ।
कुन्तीनन्दन देखते चले, अगणित पर्वत व गुफाओं को ॥
चलते चलते अन्त में, पहुँचे गंगा तीर ।
रहे यहां कुछ काल तक, पांडु सुवन बलवीर ॥
गंगाजी में एक दिन, करके वे अस्नान ।
करते थे अति प्रेम से, इष्ट देव का ध्यान ॥

इतने में एक नाग कन्या, उस जगह अचानक आयगई ।
था नाम उलूपी लख इनकी, सुन्दरताई हरषाय गई ॥
सोचा यदि ये सुन्दर सुजान, बलवान मेरा पिय बनजावे ।
तो फिर इस दुनियां में जीवन, निश्चय ही सुखमय होजावे ॥
लेचलूं इसे हर कर घर पर, तहां जाकर बिनय सुनाऊं मैं ।
सम्भव है आशालता मेरी, होजाय हरी सुख पाऊं मैं ॥
ऐसा विचार कर नाग सुता, झट इन्हें उठा घर लेआई ।
और हाथ जोड़ अति लज्जा से, सब राम कहानी समझाई ॥
बोले अर्जुन हे सुकुमारी, पूरण कर देता तब कहना ।
पर मुझको तो ब्रह्मचारी बन, द्वादश वर्षों होगा रहना ॥
इस समय यदी मैं विवाह करूं, तो धर्म लोप हो जायेगा ।
निज प्रण में अंतर पड़ने से, पातक आ मुझे दबायेगा ॥
इसलिये मुझे वे बस गिनकर, अपने हृदय को समझाओ ।
जिस जगह से मुझको लाई हो, कर कृपा वहीं पहुँचाओ ॥
सुन अर्जुन की बात को, मन में अति दुख पाय ।
कहा उलूपी ने तुरत, अपना शीश झुकाय ॥
हे आर्य पुत्र ! प्रण का पालन, करना ही धर्म कहाता है ।
इसके विरुद्ध जो चलता है, हरगिज न सद्गती पाता है ॥
पर दुखित व्यक्ति का दुःख दूर, करना भी तो शुभ कर्म कहा ।
फिर क्यों इससे पीछे हटकर, लेते हो जग में अयश महा ॥
ये सच समझो लखतेहि तुम्हें, हो गया हवा सब ज्ञान मेरा ।
लगगया अचल हो हे स्वामी, तुमरे चरणों में ध्यान मेरा ॥
अब तुमने यदि मम त्याग किया, ये प्राण न रहने पायेगा ।
इस पाप को सिर पर लेने से, क्या हाथ तुम्हारे आयेगा ॥
शरणागत पर कर कृपा, रखो लाज प्राणेश ।
इसमें काम अनर्थ का, होगा तुम्हें न लेश ॥

मैं ज्यादा नहीं चाहती हूं, केवल एकदिन यहां वास करो ।
बस यही प्रार्थना मेरी है, जैसे हो पूरी आस करो ॥
इसकी ऐवज में मैं भी एक, प्रण करती हूं व निभादूंगी ।
यदि रण में तुम्हरा मरण हुआ, तो निश्चय आय *जिलादूंगी ॥

होनहार बलवान है, करके ये अनुमान ।
अष्ट पहर उसके भवन, रहे पार्थ गुणखान ॥

होतेहि सुबह द्वुतियः दिनका, अर्जुन वापिस तहां आयगये ।
लखतेहि इन्हें आश्रम वासी, ऋषिमुनि आदिक हरषायगये ॥
सब हाल बताकर अर्जुन ने, फौरन ही वहां से कूंच किया ।
और हिमगिरि को लखनेके लिये, उत्तराखंड का मार्ग लिया ॥
जा हरिद्वार, हृषिकेश लखा, केदारखंड, उत्तरकाशी ।
बद्रीनारायण, गंगोत्री, यमनात्री देखी सुखराशी ॥
धौलागिरि, मैनागिर, शिवगिरि, हो, पहुँचे मानसरोवर पर ।
गोमती, त्रिवेणी, गया देख, देखा अरण्य गंगा सागर ॥
लख अगस्त वट, वशिष्ट पर्वत, जा हिरनविन्दु देखी नंदा ।
फिर अंग, बंग, और कलिंगदेख, खुश हो फिर लखी अपरनंदा ॥
जिस जिस तीरथ में गुण निधान, कुन्ती नन्दन जाकर न्हाते ।
तहां के याचक अति द्रव्य पाय, तत्काल अयाचक होजाते ॥
इस तरह भ्रमण करते करते, ये पहुँचे सिंधु किनारे पर ।
करके कुछ दिवस व्यतीत यहां, देखा फिर मणिपुर को जाकर ॥

एक रोज महाराज से, कर मिलने की आस ।
पहुँचे उनके महल में, पांडु सुवन गुणरास ॥

तहां जाय इन्होंने राजा को, अपना सब परिचय बतलाया ।
सुनते ही वो हर्षित होकर, इनसे मिलने को उठ धाया ॥

* इसका यह वचन सत्य हुआ, अश्वमेधयज्ञ में श्यामकर्ण घोड़े की रक्षा करते हुये अर्जुन, जब मणिपुर के राजा बभ्रुवाहन द्वारा मृत्यु को प्राप्त हुये तब इन्हीं उलूपी ने संजीवनी मणि द्वारा इन्हें जीवित किया था, देखो नं ३ का भाग युधिष्ठिर का अश्वमेधयज्ञ ।

आदर से आसन पर बिठाय, समयोचित अतिसत्कार किया ।
कुछ दिवस तहां रहने के लिये, हो प्रेम विवश इज़हार किया ॥
अस्तु देख उत्तम जगह, ठहरे पांडु कुमार ।
मिलते थे नित जाय कर, राजा से इकबार ॥
इस नृप के चित्रांगदा नाम, थी एक मनोहर सुकुमारी ।
होगये पार्थ मोहित इसपर, लख उसको अनुपम छबिन्यारी ॥
आखिर राजा के पास जाय, सब हाल उसे बतलाय दिया ।
सुनते ही नृप ने चिंतित से, होकर कुछ देर बिचार किया ॥
फिर कहा मुझे कुछ उज्र नहीं, पर एक प्रतिज्ञा चाहता हूँ ।
इससे जो सुत हो वह मुझको, दे दो तो ब्याह रचाता हूँ ॥
क्यों के मेरी सन्तानों में, बस यही एक सुकुमारी है ।
पाला है इसको पुत्र सरिस, अस्तू मुझको अति प्यारी है ॥
इसके ही सुत को सोचा है, अपनी गद्दी पर बिठलाना ।
बस इसीलिये मैं चाहता हूँ, तुमसे ऐसा प्रण करवाना ॥
इनके हामी भरलेने पर, राजा ने कन्यादान किया ।
अति प्रेम दिखाते हुये इन्हें, अपने घर का महमान किया ॥
तीन वर्ष रह पार्थ ने, भोगा सुःख अपार ।
आखिर चित्रांगदा के, जन्मा एक कुमार ॥
रख सुत का नाम बभ्रुवाहन, चल दिये पांडु-सुत हरषाकर ।
देखे दक्षिण के तीर्थ कई, फिर पहुँचे नीलगिरी जाकर ॥
करके कुछ दिनों निवास यहां, पश्चिम को जानिब गमन किया ।
सब तीर्थ देखके आखिर फिर, द्वारकापुरी का मार्ग लिया ॥
द्वारावति के पास था, तीरथ एक प्रभास ।
रहे पार्थ यहां कृष्ण से, कर मिलने की आस ॥
इससे कुछ दूरी पर सुन्दर, रैवतक नाम एक भूधर था ।
बस यही आजकल यदुपति का, आनन्द भवन अति सुखकर था ॥

सतभामा और रुक्मणी संग, शोभित थे प्रभु गिरवरधारी।
रहती थी साथ सुभद्रा भी, इनकी छोटी भगिनी प्यारी॥
यद्यपि था सब पर ही समान, सुखदायक प्रेम मुरारी का।
लेकिन इन दिनों सुभद्रा पर, था अतिशय ध्यान बिहारी का॥
इसकी अद्भुत स्मरण शक्ति, लख यदुनन्दन हरषाते थे।
अस्तु अतिहित से सर्वोत्तम, अध्यात्म ज्ञान सिखलाते थे॥
इसके अतिरिक्त स्त्रि शिक्षा, में भी अति चतुर बनाया था।
यहां तक रण विद्या का भि इसे, परिपूरण ज्ञान कराया था॥
यद्यपि रण विषयक सभी बात, भद्रा ने सब विधि जानी थी।
पर रथ के संचालन में तो, वह भाग्यवती लासानी थी॥

जिसका गुरु होवे स्वयं, जगपति जगदाधार।
उसको सब कुछ सीखने, में क्या लगती बार॥

इसलिये किशोर अवस्था में, आते आते ही सुकुमारी।
होगई प्रभू की किरपा से, सब विषयों में चतुरा भारी॥
यदुनाथ एक दिन सुस्त होय, आनन्द कुंज के बाहिर आ।
बैठे थे इतने में आकर, बोली भद्रा सादर सिरना॥
हे भाई अचरज होता है, तुम्हरी चिन्तावस्था लख कर।
जो जग की चिन्ता नष्ट करे, वोही बैठे चिंतित होकर॥
क्या पति बलशाली मगधेश्वर, द्वारावति पर चढ़ आया है।
या किसी भयानक निश्चर ने, पृथ्वी पर द्वंद मचाया है॥

सुन भगिनोकी बात को, बोले श्री यदुराय।
जरासन्ध का दम नहीं, जो यहां चढ़कर आय॥

कंसादिक निश्चर भी सारे, पड़ गये मृत्यु के पाले हैं।
अस्तु इनकी भी फिक्र नहीं, यहां तो कुछ भाव निराले हैं॥
इस समय देश की हालत लख, चित में व्याकुलता छाई है।
क्षत्रियों ने अपना धर्म त्याग, राक्षस वृत्ती अपनाई है॥

होगये हैं टुकड़े भारत के, हे बहिन इन दिनों अनगिनती ।
परिचय देते हैं नृप अपना, कह कर "सम्राट चक्रवर्ती" ॥
रैयत पालन की चाह नहीं, इच्छा न शान्ति के रखने की ।
वे तो निज विजय हेतु निशिदिन, करते तैयारी लड़ने की ॥
उठगई त्याग वृत्ती सारी, इन्द्रिय लोलुप भूपाल हुये ।
तज दी गौ ब्राह्मण की सेवा, कामों में शामिल लाल हुये ॥
सर्वोत्तम क्षत्रिय शक्ती अब, वासनात्मक वायू से उड़कर ।
महा प्रलय की अग्नीसम जगको, करने को नष्ट हुई तत्पर ॥
"दुनियां में है वीरों का ही, हक़ केवल सुख के पाने का" ।
ये गिन करते कुविचार सभी, भूपर नर रक्त बहाने का ॥
वीर शब्द का भूप सब, भूल गये हैं अर्थ ।
राग द्वेश के फन्द फस, चाहते हैं रण व्यर्थ ॥
हे बहिन वीरता बरी नहीं, दुर्बल का जी कलपाने में ।
या झूंठे नाशवान जग के, भोगों में चित्त फसाने में ॥
है सच्चा वीर वही भद्रा, जिसने प्रवृति का त्याग किया ।
निष्काम हृदय से परोपकार, करने में ही अनुराग किया ॥
है यही सनातन राजनीति, पर इसको याद भुलाई है ।
बस यही सबब है भारत में, देती अशांति दिखलाई है ॥
भद्रा तुम अल्प उमर की हो, अस्तू तुमको कुछ ज्ञान नहीं ।
इन बातों का क्या होवेगा, आगे फल ये अनुमान नहीं ॥
किन्तु वो समय निकट समझो, जब ये दल, बल दिखलावेगा ।
खा जिसकी रगड़ स्वर्ण-भारत, बस नष्ट भ्रष्ट हो जावेगा ॥

* गाना *

(तर्ज़—महरवा होजायेंगे दर्द जिगर होने तो दो)

देखना है बहिन अब कैसा समय आने को है, देश का ऐश्वर्य सब कुछ दिन मे नसजाने को है ।
उठगई सद्धर्म प्रियता पाप में सब रत हुये, ये कुवृत्ती क्या खबर क्या रंग दिखलाने को है ॥

ऐकता रूपी यहां के बादलों के झुन्ड को, तेज वायू फूट की अब शीघ्र छितराने को है।
भोगने होंगे अशुभ कर्मों के फल कर्ताओ को, कीर्ती नस करके अब अपकीर्ता छाने को है॥

भद्रा का चित एक दम, विकल हुआ सुन बात।
सोचा क्या ये सत्य है, कहते जो यदुनाथ॥

बेशक ये झूठ नहीं होगा, जो भाई ने फरमाया है।
तब क्या निश्चय ही भारत के, मिटजाने का दिन आया है॥
भारत भी वो जिसका सानी, कोई भी देश नहीं भूपर।
तप में धन में बल विद्या में, जिसमें देखो सबसे बढ़ कर॥
हा विधि क्या ऐसे स्वर्ग तुल्य, इस आर्य देश का क्षय होगा।
सच है, जिस घर में फूट हुई, उत्पन्न वो निश्चय क्षय होगा॥
पर क्या कोई तरकीब नहीं, आपस की फूट मिटाने की।
इस आर्य देश के वैभव को होने से नष्ट बचाने की॥
बस एक बात ही जचती है, यदुपति यदि तत्पर होजावें।
तब तो सारे भारत वासी, तज कुमति सुमति को अपनावें॥
कर ये विचार बोली भद्रा, हे जगजीवन गुणरास प्रभो।
क्या कभी न रोका जासकता, ये महा भयंकर नास प्रभो॥

दृढ़ स्वर से बोले हरी, होउ न तनिक हतास।
रुकेगा, रोका जायगा, ये भयदायक नास॥

कुछ ही दिन में इस गड़बड़ को, हम निश्चय दूर हटायेंगे।
करके अधर्म का राज नष्ट, झट धर्म राज्य फैलायेंगे॥
सज्जनों की रक्षा करना ही, मेरे जीवन का व्रत जानो।
इस भूमंडल पर आने का, बस यही सबब है पहिचानो॥
लेकिन एक योग्य सहायक बिन, ये काम न सब हो पावेगा।
पर इसकी भी कुछ फिक्र नहीं, वो योग्य मनुज भी आवेगा॥

अचरज में आकर कहा, भद्रा ने मुसकाय।
कौन सहायक आपका, होगा हे यदुराय॥

जिसकी भृकुटी विलास से ही, जग पैदा हो नस जाता है ।
वो ढूंढे एक सहायक को, ये लख कर अचरज आता है ॥
हे प्रभो आप हैं जगदीश्वर, ऐसा ऋषि मुनी बताते हैं ।
फिर क्यों ऐसी अटपटी बात, अपने मुख से फरमाते हैं ॥
गोवर्धन धारण करने में, क्या मदद किसी से चाही थी ।
जब कंस बधा था तब भी क्या, शक्ती की चाह जताई थी ॥

समझ पड़े नहिं आपकी, लीला अपरम्पार ।
खैर, कहो साथी प्रभू, होगा कौन तुम्हार ॥

बोले गिरधर जो पांडू के, तृतियः बालक कहलाते हैं ।
रणधीर वीर धनुर्वी विशाल, दुनियां में माने जाते हैं ॥
जिसने उस भरे स्वयम्वर में, मछली को बेध गिराया था ।
अति बली कर्ण सम योधा भी, जिसको न हराने पाया था ॥
बस वही कुन्ति-नंदन अर्जुन, हमरे साथी होजावेंगे ।
ले उनकी मदद फेर जगमें, हम धर्म राज्य फैलावेंगे ॥
हे बहिन फकत येही गिनकर, कि पार्थ महा धनुधारी है ।
हमने उसको अपना साथी, करने की नहीं बिचारी है ॥
बल्की लख उसके हृदय को, जो पूर्व जन्म के तपबल से ।
होगया है बिल्कुल निष्कलंक, है रहित मोह आदिक मल से ॥

हमने उस गुणवान को, साथी लिया बनाय ।
अब देखें किसविधि यहां, पाप राज्य रहजाय ॥

इतना कह बहिन सुभद्रा से, चलदिये भवन में यदुराई ।
सुनते हि बड़ाई अर्जुन की, भद्रा ने निज सुधि बिसराई ॥
कुछ खबर नहीं किस शक्ती ने, खलबली मचाई सब तनमें ।
दिन पर दिन ज्यादा अर्जुन के, लखने की चाह हुई मन में ॥
पड़ गये काम सारे ढीले, जो होते थे दृढ़ताई से ।
बस अब तो मन में यही भाव, उठते थे आतुरताई से ॥

"वे पांडु-पुत्र कैसे होंगे, जिनके गुण श्री हरि गाते हैं।
तप में, बल में सबसे बढ़कर, केवल जिनको हि बताते हैं॥"
हे विधि क्या होंगे सफल नहीं, ये नेत्र दर्श उनका पाकर।
ये मन तो येही कहता है, बस देखूं तुरत अभी जाकर॥

इसी ध्यान में रात दिन, रहन लगी वो बाल।
आखिर इकदिन आयके, कहा कृष्ण ने हाल॥

हे बहिन अभी ये समाचार, दूतों के मुख से पाये हैं।
ब्रह्मचर्य भेष में श्री अर्जुन, भ्रमते भ्रमते यहां आये हैं॥
ठहरे हैं क्षेत्र प्रभास में आ, अस्तू हम तहां सिधाते हैं।
ले बाल सखा को अपने संग, वापिस हो लौटे आते हैं॥

इतना कह भगवान ने, स्यंदन लिया मंगाय।
अर्जुन के ढिग शीघ्र ही, जा पहुँचे हरषाय॥

अति हित से इनको हृदय लगा, सब कुशल पूछ फिर बनवारी।
बोले हे मित्र सबब क्या है, जो तुमने ये मूरति धारी॥
सुन बचन कृष्ण के अर्जुन ने, इनको सब हाल सुनाय दिया।
सुनते हि कृष्ण ने कहा मित्र, जो किया वह तुमने ठीक किया॥
अपने प्रण का पालन करना, ये क्षत्रिय धर्म कहाता है।
जो चलता है इसके विरुद्ध, वह कभी न सद्गति पाता है॥
इसके उपरान्त जगत्पति ने, ठानी नगरी में जाने को।
आज्ञा देदी झट दूतों को, पुर को सब तरह सजाने को॥

पहिले ही थी द्वारका, सुन्दरता की खान।
सजने से तो और भी, शोभा हुई महान॥

सड़कों पर छिड़का हुआ अतर, हरतू खुशबू फैलाता था।
नगरी का सारा जन समाज, आनन्दित हष्टो आता था॥
चौबारों पर से कुलकामिनि, कोकिल कंठों से गाती थीं।
कई प्रकार के बाजों की ध्वनि, दिन में कौतुक उपजाती थीं॥

सज चुकी सभी सामानों से, जब द्वारावति नगरी सारी ।
तब कुन्ती-नंदन को संग ले, प्रविशे पुर में गिरवरधारी ॥
दर्शन कर वीर धनंजय के, सारे पुरवासी हरषाये ।
सुन्दर व सुगंधित अमित पुष्प, अति हित से इन पर बरषाये ॥
इसी तरह चलते हुये, पाते अति सत्कार ।
जा पहुँचे कुन्ती सुवन, श्री हरि के आगार ॥
देवों को जो दुर्लभ होवे, था ऐसा धाम मुरारी का ।
जन-मन-रंजन, खल-मद-गंजन, श्री आनन्द कंद बिहारी का ॥
ठहरे उसमें कुन्ती-नन्दन, सब यदुओं से आदर पाकर ।
ये सुनते ही रुक्मणी आदि, रानियां कई आई तहां पर ॥
भद्रा भी अति ही उत्सुक थी, अर्जुन के दर्शन पाने को ।
अस्तु वह भी दौड़ी आई, अपनी अभिलाष मिटाने को ॥
जो चित्र पार्थ का खींचा था, इसने कल्पना से हृदय पर ।
उसमें और इस प्रत्यक्ष में तो, था बिल्कुल निशिदिन का अंतर ॥
अस्तु होगई चकित भद्रा, अवलोकत ही इस सूरत को ।
चुपचाप खड़ी देखती रही, मानो पत्थर की मूरत हो ॥
अर्जुन भी इसको निरख, हुये तुरत हत ज्ञान ।
भूल गये कुछ देर को, अपना पता निशान ॥
यदुपति ने इन्हें बताया था, मम बहिन सुभद्रा सुकुमारी ।
जो विषयक सब बातों में, है परिपूरण चतुरा नारी ॥
इसके अतिरिक्त युद्ध की भी, अवगत है सारी चतुराई ।
यहां तक के धर्म व राज नीति, की भी उत्तम शिक्षा पाई ॥
अस्तु अर्जुन बिन देखे ही, इस पर अति स्नेह जताते थे ।
और जी भर के दर्शन करना, वे मन ही मन में चाहते थे ॥
बन गया आज संयोग यहां, दिल के पूरे अरमान हुए ।
लखकर अति ही सुन्दरताई, ये खुशी भी आज महान हुए ॥

सोचा इक तो गुणवती है ये, तिस पर अनुपम शोभा पाई।
क्या खूब है सोना और सुगन्ध, देते हैं एक जां दिखलाई॥
यदि किसी तरह ये नारि रत्न, होजाय हमारी पटरानी।
तब तो क्या ही उत्तम होवे, बीते अति सुख में जिंदगानी॥
अच्छा कुछ फिक्र नहीं अब मैं, अपनी किस्मत अजमाऊंगा।
जिस तरह बनेगा भद्रा को, निश्चय निज रानि बनाऊंगा॥
करके ऐसा विचार मनमें, कुन्ती-सुत ने आराम किया।
कुछ देर बाद सबने हरि को, तज, गमन तुरत निजधाम किया॥
कुन्ती-सुत के आंतरिक भाव, अंतरयामी झट जान गये।
भद्रा पर मोहित मित्र हुआ, ये भेद तुरत पहिचान गये॥
सोचा त्रिभुवन में यही वीर, मेरी भगनी के लायक है।
यहां इनका जोड़ा मिल जाना, दोनों कुल को सुख दायक है॥

यही जान कर फिक्र से, रहित हुये यदुराय।
पर मजाक के तौर पर, बोले कुछ मुसकाय॥

आता है अचरज यही मुझे, अर्जुन तुम बनवासी होकर।
स्त्री की झलक देखते ही, रहगये ठगे से सुधि खोकर॥
जब बन में रहने वाले भी, पल में विचलित हो जाते हैं।
तब उन लोगों की क्या गिनती, जो ग्राहस्थी कहलाते हैं॥

कहा पार्थ ने सकुच कर, इस सम सुन्दर नारि।
मोहित कर सकती नहीं, किसका हृदय मुरारि॥

भगवन अब यत्न करो जिससे, ये प्रिया हमारी हो जावे।
ताकि मम अस्थिर चित्त प्रभो, हो जाय सुखी थिरता पावे॥
यदि नर की शक्ती के बाहिर, ये काम नहीं होगा स्वामी।
तो कुन्ती-सुत अर्जुन उसका, तत्काल बनेगा अनुगामी॥

कर विचार कुछ देर तक, बोले श्री यदुनाथ।
सुनो ध्यान धर कर सखे, कहता हूँ जो बात॥

क्षत्रियों के लिये स्वयंवर ही, बस सर्व श्रेष्ठ कहलाता है।
लेकिन बल पूर्वक हरना भी, अनुचित नहिं माना जाता है॥
क्या खबर स्वयंवर में किसपर, ये भद्रा मोहित हो जावे।
जयमाल गले में पहिरा कर, कुछ निश्चय नहीं किसे ध्यावे॥
अस्तू यदि इच्छा हो तुम्हरी, निज मन को शान्त बनाने की।
तो चिन्ता करो सुभद्रा को, हरकर घरपर ले जाने की॥

हुये खुशी अति पांडुसुत, सुन गिरधर की बात।
फिक्र मांहि निज काम की रहन लगे दिन रात॥

रैवतक नाम के भूपर पर, यदुकुल का एक मेला भारी।
कुछ दिवस बाद आरम्भ हुआ, सम्मिलित हुये सब नर नारी॥
सुन्दरी सुभद्रा भी सजकर, सखियों के संग तहां धाई।
ये सुन अर्जुन ने निज इच्छा, पूरी करने को ठहराई॥
शस्त्रों से पूर्ण सुसज्जित हो, बोले हरि के सन्मुख आकर।
हे प्रभू आज शुभ अवसर है, इच्छा को पूर्ण करूं जाकर॥
इसलिये कृपा कर यदुनन्दन, अपना शुभ स्यंदन मंगवादो।
दे आज्ञा दारुक सारथि को, मेरे संग में प्रभु भिजवादो॥
फिर एक विनय मम और भी है, दारुक को ये समझा देना।
गिनकर मुझको मालिक समान, बस करे आज मेरा कहना॥

मुस्काकर गोविंद ने, पूर्ण किया ये काम।
चले पार्थ अति हर्ष से, करके इन्हें प्रणाम॥
उधर सुभद्रा प्रेम से, उत्सव देख दिखाय।
लौट रही थी साथ में, सखियों के हरषाय॥

कुन्ती-नन्दन लखतेहि इसे, रथ छोड़ पांव पैदल धाये।
जाकर सखियों के निकट उसे, बल सहित उठाकर ले आये॥
चढ़ रथपर दारुक से बोले, हे सारथि स्यंदन दौड़ाओ।
जितनी जल्दी हो सके मुझे, बस इन्द्रप्रस्थ में पहुँचाओ॥

"होगया सुभद्रा हरन" यदी, ये यदुवंशी सुन पावेंगे।
तो सच समझो मुझसे लड़ने, कर क्रोध तुरत चढ़ आवेंगे॥
उन लोगों की ललकारें सुन, ये पार्थ न रुकने पावेगा।
फल ये होगा कई वीरों का, जीवन योंही नस जावेगा॥
इसलिये शीघ्र रथ हांक करो, तदबीर दूर लेजाने की।
लख मुझे दृष्टि ओझल वे सब, नहिं फिक्र करेंगे आने की॥

सुन अर्जुन के हुक्म को, दारुक ने सिरनाय।
राम धाम कर शीघ्र ही, दीन्हा रथ दौड़ाय॥

"सुकुमारि सुभद्रा हरी गई", जब सेनप ने ये सुधि पाई।
तो ऐसा उबल उठा मानो, जलनिधि में अति आंधी आई॥
हजबाध दिया रण का डंका, सुनते हि जिसे सेना सारी।
सब काम छोड़ दौड़ी फौरन, करके लड़ने की तैयारी॥

वीरों ने यहां आयकर, सुना पार्थ का हाल।
सुनतेही आंखें चढ़ीं, भृकुटी हुई कराल॥

सब हीने निज निज सारथि को, देदी आज्ञा रथ लाने की।
क्रोधित हो हलधर ने भी की, तैयारी युद्ध मचाने की॥
इतने में दृष्टि पड़ी हरि पै, क्या लखा निरस्त्र मुरारि खड़े।
ये लखते ही अति गरमा कर, बलराम तुरत उस ओर बढ़े॥
और बोले प्रभु से, लख तुम्हरी, खामोशी अचरज आता है।
तुम खड़े खड़े मुस्काय रहे, यहां खून उबलता जाता है॥
केवल येही गिनकर मैंने, कि अर्जुन मित्र तुम्हारा है।
उसका सब विधि सत्कार किया, और भाई सरिस निहारा है॥
पर वास्तव मे यदि लखा जाय, तो वह डुबोड़ी कुल घाती।
इस मान के है बिलकुल अयोग्य, है पापी कट्टर आराती॥
वो दुष्ट हमें बलहीन जान, भद्रा को लेकर धाया है।
ऐसा कर उसने अपने ही, हाथों से काल बुलाया है॥

हे नटवर उसने रखा, हमरे सिरपर पैर ।
अस्तु समझ लो अबनहीं, होगी उसकी खैर ॥
हैं सांप क्षुद्र लेकिन वे भी, दबजाने पर डस जाते हैं ।
फिर हम कैसे चुप रह जावें, जो सबविधि योग्य कहाते हैं ॥
इसलिये आज बदला लेकर, मैं निज अरमान निकालूंगा ।
इस वसुन्धरा को पल भर में, पांडवों रहित कर डालूंगा ॥
हलधर के वचनों को सुन कर, तत्काल कहा यदुनन्दन ने ।
हे आर्य ! किया यादव कुल का, अपमान नहीं कुछ अर्जुन ने ॥
कन्या को बल पूर्वक हरना, क्षत्रियों को उचित बताया है ।
इसमें गुस्से को बात नहीं, ये तो होता ही आया है ॥
भीषम भी हर कर लाये थे, अम्बा आदिक कन्याओं को ।
फिर हमने भी कई बेर हरी, सुन्दर सुमुखी भन्याओं को ॥

नीच वंश का मनुज यदि, करता ऐसा काम ।
तब तो हमको सत्य ही, दुख होता परिणाम ॥

लेकिन अर्जुन उस कुल का है, जो सर्व श्रेष्ट माना जाता ।
फिर उसके सम बलवान वीर, जग में बिरला दृष्टी आता ॥
इसलिये हमारा तो कहना, येही है उसको बुलवाकर ।
करदो भद्रा का पाणिग्रहण, सारा संशय तज हरषा कर ॥

वचन श्रवण कर कृष्णके, हुये शांत बलराम ।
अर्जुन को बुलवाय कर, किया विवाह का काम ॥

इसके उपरांत कुन्ति-नन्दन, द्वारावति में कुछ काल रहे ।
फिर बाकी समय बिताने को, हर्षित हो पुष्कर तीर्थ गये ॥
"श्रीलाल" यहां रह अर्जुन ने, विप्रों को अतुलित दान दिया ।
होते ही द्वादश वर्ष पूर्ण, फिर इन्द्रप्रस्थ प्रस्थान किया ॥

❀ इति श्रीकृष्णार्पणमस्तु ❀

(पं० राधेश्यामजी की रामायण की तर्ज़ में)

अमूल्य रत्न ¦ श्रीमद्भागवत और महाभारत ¦ इपमें
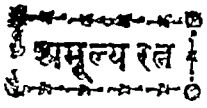
श्रीमद्भागवत क्या है ?

ये वेद और उपनिषदों का सारांश है, भक्ति के तत्वों का परिपूर्ण ख़ज़ाना है, . का द्वार है, तीनों तापों को समूल नष्ट करने वाली महौषधी है, शांति निकेतन है, धर्म है, इस कराल कलिकाल में आत्मा और परमात्मा के ऐक्य करा देने का मुख्य साधन श्रीमन्महर्षि द्वैपायन व्यासजी की उज्वल बुद्धि का ज्वलन्त उदाहरण है तथा भगवान श्री का साक्षात् प्रतिबिम्ब है।

महाभारत क्या है ?

ये मुर्दा दिलों में नया जीवन पैदा करने वाला है, सोये हुये मानव समाज को ज वाला है, बिखरे हुये मनुष्यों को एकत्रित कर उनको सच्चे स्वधर्म का मार्ग बताने वाला हिन्दू जाति का गौरव स्तम्भ है, प्राचीन इतिहास है, नीति शास्त्र है, धर्मग्रन्थ है अ पांचवां वेद है।

ये दोनों ग्रन्थ बहुत बड़े हैं अस्तु सर्व साधारण के हितार्थ इनके अलग अलग भ कर दिये गये हैं, जिनके नाम और दाम इस प्रकार हैं:—

श्रीमद्भागवत

सं०	नाम	सं०	नाम
१	परीक्षित शाप	११	उद्धव ब्रज यात्रा
२	कंस अत्याचार	१२	द्वारिका निर्माण
३	गोलोक दर्शन	१३	रुक्मिणी विवाह
४	कृष्ण जन्म	१४	द्वारिका विहार
५	बालकृष्ण	१५	भौमासुर बध
६	गोपाल कृष्ण	१६	अनिरुद्ध विवाह
७	वृन्दावनविहारी कृष्ण	१७	कृष्ण सुदामा
८	गोवर्धनधारी कृष्ण	१८	वसुदेव अश्वमेध यज्ञ
९	रासविहारी कृष्ण	१९	कृष्ण गोलोक गमन
१०	कंस उद्धारी कृष्ण	२०	परीक्षित मोक्ष

उपरोक्त प्रत्येक भाग की क़ीमत चार आने

महाभारत

सं०	नाम	मूल्य	सं०	नाम	मू
१	भीष्म प्रतिज्ञा	।)	१२	कुरुओं का गौ हरन	।
२	पांडवों का जन्म	।)	१३	पांडवों की सलाह	
३	पांडवों की अस्त्र शि.	।–)	१४	कृष्ण का हस्ति. ग.	।
४	पाडवों पर अत्याचार	।–)	१५	युद्ध की तैयारी	
५	द्रौपदी स्वयंवर	।)	१६	भीष्म युद्ध	।
६	पांडव राज्य	।)	१७	अभिमन्यु बध	।
७	युधिष्ठिर का रा. सू. य.	।)	१८	जयद्रथ बध	।
८	द्रौपदी चीर हरन	।–)	१९	द्रौण व कर्ण बध	।
९	पांडवों का बनवास	।–)	२०	दुर्योधन बध	।–
१०	कौरव राज्य	।–)	२१	युधिष्ठिर का अ. यज्ञ	
११	पांडवों का अ. वास	।)	२२	पांडवों का हिमा ग.	

❊ सूचना ❊

कथावाचक, भजनीक, बुकसेलर्स अथवा जो महाशय गान विद्या में योग्यता रख हों, रोज़गार की तलाश में हों और इस श्रीमद्भागवत तथा महाभारत का जनता में प्रचा कर सकें तथा जो महाशय हमारी पुस्तकों के एजेण्ट होना चाहें हम से पत्र व्यवहार करें।

पता—मैनेजर-महाभारत पुस्तकालय, अजमेर.

महाभारत सातवां भाग

युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ
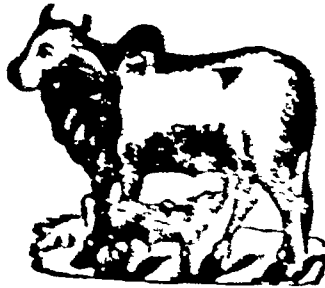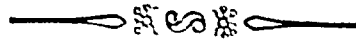
श्रीलाल
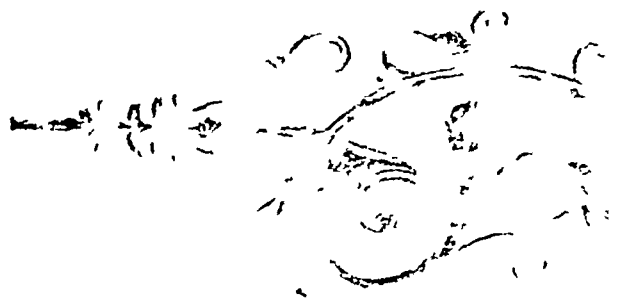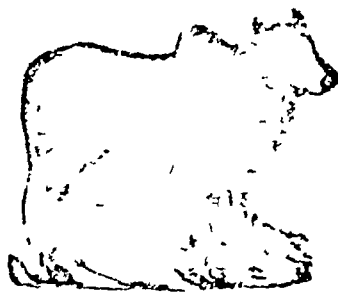
महाभारत सातवां भाग

युधिष्ठिर का राजसूययज्ञ

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—

महाभारत पुस्तकालय. अजमेर.

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

द्वितीयावृत्ति २०००	विक्रमी सम्वत् १९९४ ईस्वी सन् [illegible]	मूल्य ।) आने

॥ प्रार्थना ॥

दीन दयाल दयामय भगवन्,

आश्रय लगो मोहि नाथ तुम्हारी ।

हटा मेरे चित को जगत के विषय से,

कीजे प्रभू शुद्ध बुद्धी हमारी ।

मात पिता हमरे तुमही हो,

तुमही हो गुरु मित्र सुखारी ।

हटे मन नहीं तुम्हरे चरणों से स्वामी,

बस इतनी कृपा मुझपै करना बिहारी ।

मङ्गलाचरण

रक्ताम्बर धर विघ्न हर, गौरीसुत गणराज ।
करना सुफल मनोर्थ प्रभु, रखना जन की लाज ॥
सृष्टि रचन, पालन, हरन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश ।
बानी, रमा, उमा सुमिल, रक्षा करहु हमेश ॥
वन्दहुं व्यास विशाल बुधि, धर्मधुरंधर धीर ।
"महाभारत" रचना करी, परम रम्य गम्भीर ॥
जासु वचन रवि जोति सम, मेटत तम अज्ञान ।
वंदहुं गुरु शुभ गुण भवन, मनुज रूप भगवान ॥

* ॐ *

नारायणं नमस्कृत्य, नरंचैव, नरोत्तमम् ।
देवीं, सरस्वतीं, व्यासं ततो "जय", मुदीरयेत् ॥

कथा प्रारम्भ

आये जय से लौटकर, इन्द्रप्रस्थ में पार्थ ।
सब घरवालों को हुआ, तब से सुःख यथार्थ ॥

गुणवती सुभद्रा को लखकर, कुन्ती मां अति हरषाती थी ।
कृष्णा भी इसे बहिन सम गिन, सच्चा सनेह दरसाती थी ॥
कटते थे अति ही आनन्द में, निशिदिन इन सब भ्राताओं के ।
चर्चे रहते थे नित्य प्रती, हरि सुमिरन भजन कथाओं के ॥
यों कई दिवस बीते आखिर, अनुग्रह से श्री गिरधारी के ।
क्रम क्रम से पांच पुत्र उपजे, उस द्रोपदराज दुलारी के ॥
"प्रतिविंध्य" युधिष्ठिर से जन्मा, "सुतसोम" भीम बलवानो से ।
और "श्रुतकर्मा" उत्पन्न हुआ, बलवीर पार्थ गुणखानी से ॥
था नकुल से सुन्दर "शतानीक", सहदेव से सुत "श्रुतसेन" हुआ ।
अब इन पांचों महारथियों का, सब के हृदय में चैन हुआ ॥
इस तरफ सुन्दरी भद्रा भी एक परम मनोहर सुखदाई ।
अर्जुन सम तेजस्वी बलनिधि, सुत पाकर अतिशय हरषाई ॥

"अभिमन्यू" इस पुत्र का, रक्खा नाम विचार ।
हुये इस तरह पांडवों के गृह छः सुकुमार ॥

जब कृष्णचन्द्र ने खबर सुनी, हर्षित हो यहां चले आये ।
लख भांजों सुतों को मग्न हुये, आंखों में प्रेमाश्रू छाये ॥

होगये प्रफुल्लित पांडव भी, आनन्दकंद के दर्शनकर ।
कर जोड़ मनोहर बानी से, बोले कुछ दिनों रहो यहां पर ॥
करली स्वीकार विनय हरिने, सुखसे निशिदिवस बिताने लगे ।
और बड़े प्रेम से बच्चों को, कुछ विद्या भी सिखलाने लगे ॥

एक दिवस अर्जुन सहित, श्रीकृष्ण यदुबीर ।
मन बहलाने के लिये, पहुँचे यमुना तीर ॥

था माह जेठ का मार्तण्ड, अपनी प्रचंड किरणों द्वारा ।
बरसाता था अग्नी जिससे, व्याकुल था भूमंडल सारा ॥
चोपाये गर्मी के मारे, फिरते दृष्टी नहिं आते थे ।
यहां तक पत्ती भी वृक्षों के, पत्तों में बदन छिपाते थे ॥
मछलियां शीश को धुनती थीं, पानी के गरमाजाने से ।
बहती थी तन से जल धारा, बेहद पसीने आने से ॥

अस्तु बैठ तरुवर तले, हर्षाये भरपूर ।
वायू से कुछ देर में, हुआ पंथ श्रमदूर ॥

जब धूप ढली अस्नान किया, फिर एक जगह आसन डाला ।
सखा सहित आनन्दित हो, तहां बैठ गये प्रभु नन्दलाला ॥
क्या अजब निराली शोभा थी, लीलामय प्रभु गिरधारी की ।
सच्चिदानन्द, सर्वदानन्द, सुख धाम मुकुन्द बिहारी की ॥
सिर पर था शोभित क्रीट मुकुट, मकराकृत कुण्डल कानन में ।
मृगमद चन्दन का तिलक लगा, और सुन्दर पीताम्बर तन में ॥
थे नेत्र कमल सम नटवर के, लखजिन्हें हृदय खिचजाता था ।
सब बदन श्याम घन के समान, तेजस्वी दृष्टी आता था ॥
मुरलीधर मुरली कर लेकर, धर अधर पै मधुर बजाते थे ।
अर्जुन मन मोहन ध्वनि सुनकर, हो मस्त झूमते जाते थे ॥

प्राकृत नर को बंसी का स्वर, करदेता है निश्चल तन को ।
जब स्वयम् ब्रह्म ये काम करे कैसे नहिं करे अचल मनको ॥
उस मुरली ने बजते बजते, कुछ प्रभाव ऐसा दरसाया ।
हम कौन हैं बैठे कहां पै हैं इसका न ध्यान बिल्कुल आया ॥

क्या जाने इस दशा में, रहते कब तक मग्न ।
आहट सुन एक विप्रकी, ध्यान होगया भग्न ॥

क्या लखा स्वर्ण सम कांतिवान, मस्तकपर जटा जूट बांधे ।
पिंगल वर्णी पंकज लोचन, यज्ञोपवीत बांये कांधे ॥
सब देह सुदृढ़ आजान बाहु, बाघम्बर धारन किये हुये ।
ऐसा एक विप्र खड़ा सन्मुख, कर मांहि कमंडल लिये हुये ॥
सूरज सम तेजाकृतो देख, यादव-नन्दन ने मुस्काकर ।
आगे आ सब कुन्ती-सुत के, कीन्हा प्रणाम मस्तक नाकर ॥
ये देख विप्र होकर प्रसन्न, बोला ये तन अकुलाया है ।
क्योंकि मैंने कई दिवसों से, भोजन न तनिक भी खाया है ॥
यदि आप कृपा कर मदद करो, आसान होय मुश्किल सारी ।
आया हूं शरण तुम्हारी मैं, लख तुम्हें वीरवर धनुधारी ॥

कहा पार्थ ने विप्रवर, कहो हमें समझाय ।
जैसा भोजन चाहिये, देवें अभी मंगाय ॥

बोला ब्राह्मण नहिं कष्ट करो, कोई भोजन मंगवाने का ।
हमतो हैं अग्नि इरादा है, ये खांडव विपिन जलाने का ॥
सारा बन जलने से होगा, वीरों इच्छित भोजन मेरा ।
लेकिन सुर ईश पुरंधर से, दहलाता है तनमन मेरा ॥
क्योंकि जब जब इस जंगल को, मैंने यहां आय जलाया है ।
तब तब अति जल वृष्टी कर के, सुरपति ने मुझे बुझाया है ॥

उन वज्रपाणि की शक्ती के, आगे मेरी सामर्थ नहीं ।
तुम मदद करो तो आशा है, जावेगा ये श्रम व्यर्थ नहीं ॥
अस्तू वीरों लो धनुष बाण, बस करो हमारी रक्षा तुम ।
भूखे को भोजन देने की, स्वीकार करो ये भिक्षा तुम ॥

अर्जुन बोले आप की, बात हमें मंजूर ।
लेकिन एक अभाव है, करो उसे तुम दूर ॥

इस समय हमारे पास विप्र, कोई उत्तम धनु बान नहीं ।
स्यंदन व अश्व तरकस आदिक, लड़ने का कुछ सामान नहीं ॥
और हरि भी खाली हाथहि हैं, फिर कैसे हम जय पावेंगे ।
जब तुम्हें बुझाने की खातिर, सुरपति पानी बरसावेंगे ॥
यदि कोई प्राकृत नर होता, तब तो साधारण बाणों से ।
उसका तन रहित बना देना, केवल पल भर में प्राणों से ॥
पर सुरपति से रण करने को, हे अग्नि दिव्य साधन चहिये ।
हो दिव्य शरासन, दिव्य बाण, और दिव्य अश्व, स्यंदन चहिये ॥
यदि ये चीजें तुम मंगवादो, तत्पर हैं हम लड़ने के लिये ।
आनन्दित हो करते हैं प्रण, इच्छा पूरी करने के लिये ॥

सुन अर्जुन की बात को हर्षित होय महान ।
किया अग्नि ने शीघ्र ही, वरुण देव का ध्यान ॥
जिससे कुछ ही देर में, आपहुँचे जलनाथ ।
नमन कृष्ण को भक्ति से, किया झुकाकर माथ ॥

फिर अग्नि देव से कहन लगे, क्यों मेरा ध्यान लगाया है ।
बोलो क्या करूं कहो जल्दी, किस कारण मुझे बुलाया है ॥
आदर से इनको गले लगा, बोले अग्नी हे जलराई ।
एक काम तुम्हें बतलाता हूँ, कर कृपा पूर्ण करना भाई ॥

वह अतिप्रचंड गांडीव धनुष, और कपिध्वज रथ अक्षयतरकस ।
जो सोमराज से पाया था, सब चक्र सहित लाओ झट पट ॥
कपिध्वज स्यंदन, कोदंड, बाण देना इन वीर धनंजय को ।
और चक्र सौंपना श्री कृष्ण, जगदीश कृपाल निरामय को ॥
आयुध पा बहुत सुगमता से, भूमी का भार उतारेंगे ।
समझो इनको नर नारायण, देवों का कार्य संभालेंगे ॥
सुन विनय अग्नि की वरुणदेव, चारों चीजों को ले आये ।
पा उत्तम अस्त्र कृष्ण अर्जुन, आनन्दित हो मन हर्षाये ॥

जाते ही जलनाथ के, बोले अर्जुन टेर ।
अग्नि देव वन दहन में, अब क्यों करते देर ॥

हो खुशी काम आरम्भ करो, अब कुछ डरने की बात नहीं ।
जब तक मैं जीवित हूँ सुरपति, कर सकते कुछ उत्पात नहीं ॥
सुनते हि अग्नि ने वन में जा, अति उग्र प्रचंड रूप धारा ।
दावानल चौतरफ चमक उठी, जल उठा शीघ्र जंगल सारा ॥
जड़ सहित वृक्ष फल, फूल, लता, हो भस्म भूमि पर गिरते थे ।
तालाबों का जल गर्म हुआ, जलचर अकुलाते फिरते थे ॥

पल पल में बढ़ने लगा, अग्नी का आकार ।
आ पहुँचा जनु भूमि पर, प्रलय काल खूंखार ॥

पहुँची लपटें जब गगन तलक, हो विकल देव सब घबराये ।
सब काम छोड़ आतुर होकर, शीघ्र ही इन्द्र के ढिग आये ॥
और बोले हे अमरेश्वर यह, अग्नी सुरलोक जला देगी ।
और शायद हि स्वर्गलोक का भी, यह नाम निशान मिटा देगी ॥
देखो तो जरी बाहिर आकर, कि भीम स्वरूप हुताशन का ।
अब जिसे रखे तो रोना है, संकट है बहु जिस दानव का ॥

देवों की आरत बानी सुन, देवेश को अति गुस्सा आया।
ले साथ मेघ खांडव बन के, ऊपर जाकर जल बरसाया॥
लेकिन पावक की गर्मी ने, सारी जलधार सुखा डाली।
ये देख इन्द्र अति क्रुद्ध हुये, छागई और तनमें लाली॥

कर एकत्रित मेघ सब, वृष्टि मूसला धार।
करन लगे अति कोप कर, देवों के सरदार॥

जिस समय पार्थ को ज्ञात हुआ, नभ से जल धारा आती है।
जिससे जंगल की अग्नि शिखा, पल पल में बुझती जाती है॥
ये जान तुरत अगणित शरतज, छा दिया गगन मण्डल सारा।
होगया व्यर्थ श्रम सुरपति का, कुछ कर न सकी वह जलधारा॥
ये देख पार्थ के वधने को, मघवा ने शर संधान किया।
अर्जुन ने भी अति गरमा कर, फौरन ही निज धनु तान लिया॥
जल वृष्टी तो होती ही थी, शर वृष्टी भी दृष्टी आई।
जो प्रभा तड़ित की वहां पर थी, यहां शर नोकों ने दिखलाई॥
घन के गर्जन का शब्द हुआ, सम्मिलित युद्ध ललकारों में।
इस तरह दुतरफ़ा की वृष्टी, आती थी एक विचारों में॥

हुआ देर तक युद्ध यों, हटा न कोई वीर।
तब अर्जुन ने क्रोध कर, तजे तीर गम्भीर॥

इन कठिन शरों की चोटों ने, सुरपति को विकल बनाय दिया।
यहां तक देवों के दिल में भी, एक भारी भय उपजाय दिया॥
करके इन लोगों को निश्चल फिर मेघों पर दृष्टी डाली।
कुछ ही बानों से नष्ट करी, तत्काल घटा घन की काली॥
ये देख इन्द्र ने जान लिया, इससे जय पाना दुस्तर है।
इसलिये युद्ध से विमुख होय, वापिस चलना ही बेहतर है॥

ये विचार कर सुरपती, चले गये निज धाम।
हुआ दग्ध कुछ देर में, खांडव-प्रस्थ तमाम॥

इसही जंगल में रहता था, "मय" नामक एक दानव सुख से।
जिस समय प्रचंड अग्नि चेती, घबराया जलने के दुख से॥
व्याकुल हो बाहिर आ उसने, अग्नी से प्राण बचाने की।
की युक्ति, पार्थ के पांव पकड़, विनती की मुक्ति दिलाने की॥
निर्भर का आर्तनाद सुनकर, आगई दया कुन्ती-सुत को।
कर कृपा अग्नि से प्राणों की, रक्षा कर अभय किया उसको॥
इस तरह पार्थ ने भुज बल से, अग्नी को भोजन दान दिया।
फिर "मय" दानव को संग लेकर, मय गिरधर के प्रस्थान किया॥
जा बैठे फिर यमुना तट पर, तब प्रभु की आज्ञा को पाकर।
मय दानव फौरन खड़ा हुआ, और बोला सादर सिरना कर॥

प्राण बचाये हैं मेरे, तुमरे हे गुणधाम।
इसकी एवज में कहो, करूं कौनसा काम॥

गो तुमने जो उपकार किया, मुझ पर, वो है इतना भारी।
यदि उसका प्रत्युपकार करूं, तो बीत जाय आयू सारी॥
लेकिन मेरी उत्कंठा को कर किरपा दृष्टि मिटाओ तुम।
बस यही मुझे सुख प्रद होगा, कुछ तो सेवा करवाओ तुम॥
निर्झरों के सारे वंशों का, तुम मुझे विश्वकर्मा जानो।
जो फरमाओगे करूंगा मैं, है इतनी शक्ती पहिचानो॥

❀ गाना ❀

(तर्ज—अगर दिल में बसालें किसने)

मुझे भय से बचादिया तुमने। सारे दुख को मिटादिया तुमने॥
आज चाहता हूं करूं सेवा तुम्हारी। [illegible] तुमरो बनादिया तुमने॥

धन्य किस्मत है मेरी जोके तुमको । अपना दर्शन दिखा दिया तुमने ॥
कहना करदूंगा अभी आपका साहब । हुक्म जिस दम सुनादिया तुमने ॥

मय की बातें श्रवण कर, बोले　　पांडु-कुमार ।
मैं तो चाहता हूँ नहीं, कुछ भी प्रत्युपकार ॥

पर यदी तुम्हारी इच्छा है, तो हरि का कोई काम करो ।
मैं इसी में खुश हो जाऊंगा, बस यही एक अहसान करो ॥
सुन वचन पार्थ के दानव ने, प्रभु के ऊपर दृष्टी डारी ।
ये देख नजर नीची करके, कुछ लगे सोचने गिरधारी ॥

कर निश्चय कुछ काल में, बोले　　जगताधार ।
भूप युधिष्ठिर के लिये, करो सभा तैयार ॥

लेकिन हे शिल्प विशारद मय, अति उत्तम सभा बनाना तुम ।
हो सारी भूमी पर यकता, वो कारीगरी दिखाना तुम ॥
जो बनी आज तक कभी न हो, आगे को भी नहिं बन पावे ।
फिर हो ऐसी सुन्दर व सुघड़, जो लखे चकित हो रह जावे ॥
यादव-नन्दन की आज्ञा पा, मय दानव अतिशय हर्षाया ।
कुछ देर सोच कर भूमी पर, एक नक्श खींचकर दिखलाया ॥
इसके पसन्द आजाने पर, बोला प्रभु से हे गिरधारी ।
अब मुझे हुक्म देओ जिससे, जा लेआऊं चीजें सारी ॥
कैलाश शिखर के उत्तर दिशि, मैनाक नाम एक भूधर है ।
और उसके निकट बिन्दु नामक, एक अति रमणीक सरोवर है ॥
बस इसी जगह कुछ वर्ष हुए, निश्वरों ने यज्ञ रचाया था ।
उस समय यज्ञ मंडप मैंने, रत्नों का सुघड़ बनाया था ॥

वहां रखा है बहुतसा, बचा हुआ सामान।
उसको लाने के लिये, करता हूँ प्रस्थान॥

यों कह इनकी आज्ञा लेकर, मय ने उत्तर दिशि गमन किया।
इस तरफ कृष्ण और अर्जुन ने, भूपति के ढिंग आगमन किया॥
फिर यमुना तटपर हुआ था जो, वह सारा किस्सा बतलाया।
सुन अचरज कारक हाल सभी, नृप के मन में आनन्द छाया॥
इतने में पितु के दर्शन को, करके इच्छा श्री यदुराई।
चल दिये द्वारका नगरी को, अवनीपति की आयसु पाई॥
वहां राह देखने लगे सभी, दानव के वापिस आने की।
उत्कंठा सबको बढ़ी तुरत, उस सभा के दर्शन पाने की॥
कुछ दिवस बाद मय आ पहुँचा, चीजों को हाथों हाथ लिये।
अपने ही सदृष्य अति प्रवीन, कुछ शिल्पकार भी साथ लिये॥

किया युधिष्ठिर ने बहुत, दानव का सत्कार।
देख सभी सामान को, हर्षित हुये अपार॥

इनके सिवाय मय दो चीजें, लाया था अति अचरज कारी।
एक गदा दूसरा देवदत्त, नामक एक शंख बड़ा भारी॥
वो गदा भीम के अर्पण की, और शंख धनंजय को दीन्हा।
फिर सभा भवन बनवाने का, शुभ दिन लख कामशुरू कीन्हा॥
नपवा कर पांच हजार हाथ, भूमी फिर चहुँदिशि खुदवाई।
कई तरह के फूल व बेल युक्त, कंचन की गच तहां बनवाई॥
फिर खड़े किये खंभे नाना, खोदी उनमें सुर प्रतिमायें।
था कहीं जलचरों का सुदृश्य, कहीं नाच रहीं थी वेश्यायें॥
इनके ऊपर अति कांतिवान, मंडप की छत तैयार करी।
और सब्ज मणी के पत्र पुष्प, आदिक को अति भरमार करी॥

जैसा माणिक जहां शोभा दे, वैसा उस जगह लगाया था ।
अद्भुत पच्चीकारी लखकर, दर्शक समूह चकराया था ॥

इस मंडप के बीच में, मयदानव ने एक ।
सिंहासन अनुपम रचा, मणिमय सहित विवेक ॥

थी सभी सीढ़ियां अति उत्तम, देदीप्यमान शोभा वाली ।
लख चका चौंध सी आती थी, कुछ ऐसी अद्भुतता डाली ॥
इसके ऊपर झूलता हुआ, एक छत्र दृष्टि में आता था ।
लख इसकी कारीगरी हृदय, तत्काल अचल हो जाता था ॥

मंडप की दक्षिण दिशा, रचा एक तालाब ।
था जिस में स्फटिक सम, अति सुगंध युत आब ॥

उसमें हीरे पन्नों से रचे जलचर जो मनको हरते थे ।
हो वायू से प्रेरित सारे, वे हरदम फिरते रहते थे ॥
बांई दिशि खुशबू दार पुष्प, संयुक्त वाटिका लगवाई ।
जिससे चलती थीं अष्ट प्रहर, तहां पवन सुंगधित मनभाई ॥
एक हौज़ जो बीचों बीच में था, निर्मल जल से लहराता था ।
तहां एक फुवारा सहसधार, जल को निकालता जाता था ॥
इसकी झर झर आवाज और, भौरों की गूंज चित्त हरती ।
तरुवर पर से मंजुल स्वर में, कोयल नितही कू कू करती ॥

धीरे धीरे बनगई, सभा रूप की खान ।
भारत की कारीगरी, कैसे होय बखान ॥

सबसे पीछे इस मंडप के, चौतरफ दिवारें खिचवाईं ।
नीलम पुखराज लाल आदिक, रत्नों से बहुबिधि सजवाईं ॥
खाई भी एक वृहत खुदवा, जड़वाई उसको रत्नों से ।
कंचन के द्वार कपाट सुदृढ़, निर्माने कई प्रयत्नों से ॥

फिर स्वर्ण कलश दीवारों पर, मौके मौके से रखवाये ।
इसके अतिरिक्त कई घर भी, तहां जगह जगह पर बनवाये ॥
था सभी काम शोभावाला, पच्चीकारी का चित्र खिचा ।
दिन रात परिश्रम कर मय ने, ये मंडप चौदह माह में रचा ॥
भुवनेश भास्कर की किरणें, जिस दम इस पर आजाती थीं ।
तो लखने वालों की आंखें, बस चका चौंध हो जाती थीं ॥

पूरा कर इस काम को, मय दानव तत्काल ।
पहुँचा नृप के पास आकर, सुना दिया सब हाल ॥

सुन सभा पूर्ती का वृत्तान्त, महाराज युधिष्ठिर हरषाये ।
उत्कंठित हो लखने के लिये, भ्राताओं सहित चले आये ॥
जाते हि एक ब्रह्म भोज हुआ, याचकों ने अतुलित दान लिया ।
ऋषियों ने वेद ध्वनी कीन्हीं, गायकों ने मंगल गान किया ॥
फिर लखने लगे अनंदित हो, मंडप की सुंदरताई को ।
दीवार, बाग, तालाब, सुमन, जलधरों सहित अमराई को ॥
जा बीचों बीच फेर देखा, मणिमय सिंहासन द्युतिकारी ।
उसकी अद्भुत रचना लखकर, होगये प्रसन्न भूप भारी ॥

शुभ अवसर लख विप्र गण, बोल उठे तत्काल ।
सिंहासन पर बैठिये, धर्मराज भूपाल ॥

सुन वचन इन्हें मस्तक नाकर, निज इष्ट देव का ध्यान किया ।
कर नमन कृष्ण को मन ही मन, फिर सिंहासन पर पांव दिया ॥
जा बैठे छत्र तले भूपति, दरबार भी आलीशान लगा ।
नजरें गुजरी आनन्द हुआ, गुण गान में सबका ध्यान लगा ॥

इतने में आये वहां, नारद गुण आगार ।
उठे युधिष्ठिर शीघ्र हो, करने को सत्कार ॥

कर चरण बंदना मुनिवर की, बिठलाया निज सिंहासन पर ।
फिर आज्ञा पाकर आप स्वयम, बैठे नीचे एक आसन पर ॥
कर श्रवण कई उपदेशों को, जो दिये ऋषी ने हरषाके ।
महाराज युधिष्ठिर खड़े हुये, और बोले निज मस्तक नाके ॥
सारे ब्रह्मांड में हे मुनिवर, जो जो विधि ने विस्तारे हैं ।
वे लोक और परलोक सभी, तुमने कई बार निहारे हैं ॥
इसलिये कृपा कर कहो मुझे, इस सभा सरिस समता वाली ।
क्या किसी लोक में आज तलक, भगवन् तुमने देखी भाली ॥

सुन राजा की बात को, नारद मुनि मुस्काय ।
बोले देखी हैं कई, कहता हूं समझाय ॥

इस सभा सरिस भूमी पर तो, कोई भी नहीं दृष्टि आती ।
पर परलोकों में कई जगह, इससे बढ़कर देखी जाती ॥
इतना कहकर ऋषिराई ने, एक अति विस्तृत व्याख्यान दिया ।
जिस में कई देव सभाओं का, वर्णन मन हरण बयान किया ॥
यम, वरुण, कुबेर, सभाओं का, सब किस्सा पूर्णतया बतला ।
इन्द्र की सभा का हाल कहा, फिर ब्रह्म ऋषीश्वर ने पुलका ॥
फिर बोले तुम्हरे पूर्व पुरुष, कई धर्म धुरंधर गुणखानी ।
इस सभा में अष्ट प्रहर रहकर, पाते हैं अति सुख बलवानी ॥
जिन में सतवादी हरिश्चन्द, सबसे प्रधान माने जाते ।
क्या कहें उदात्त कर्म फल से दूसरे इन्द्र ही कहलाते ॥
सुन बचन युधिष्ठिर कहन लगे, ऐसा क्या काम किया भारी ।
जिसके फल से हे मुनीराज, वे बने इन्द्र के दरबारी ॥

"राजसूय" नामक किया, उसने यज्ञ विशाल ।
उसके ही फल से हुआ, इन्द्र तुल्य भूपाल ॥

दुनियां में राजसूय नामक, महा यज्ञ जो भूप रचाता है ।
वो निश्चय ही नरदेह छोड़, सुरपति की पदवी पाता है ॥
तुम भी यदि करना चाहो तो, कर सकते हो ये काम सभी ।
है प्रजा वर्ग संतुष्ट और, भाई भी हैं बलधाम सभी ॥
इतना कहकर हरि गुन गाते, चलदिये विदा हो मुनिराई ।
सुन राजसूय की महिमां को, राजा की तबियत ललचाई ॥
संबोधन करके रैयत के, सारे अमीर उमराओं को ।
मंत्रियों को सेनापतियों को, और अपने सब भ्राताओं को ॥
बोले नृप राजसूय यज्ञ के, करने की हृदय बिचारी है ।
अस्तू स्पष्टतया मुझ को, कहदो क्या राय तुम्हारी है ॥

बोल उठे सब एक दम, हे गुणज्ञ नरराय ।
राय हमारी है यही, करो यज्ञ हरषाय ॥

आनंदित धर्म नृपाल हुये, सुन सभासदों की प्रिय बानी ।
पर सोचा वही करूंगा जो, बतलावेंगे शारंगपानी ॥
उनसे बढ़कर त्रिहुँलोकों में, कोई भी बुद्धीमान नहीं ।
इसलिये कहेंगे जो कुछ वे, होगा उसमें नुकसान नहीं ॥
कर ये विचार कुन्ती-सुत ने, तत्काल दूत एक बुलवाया ।
यदु-नन्दन को लाने के लिये, द्वारकापुरी में भिजवाया ॥

ये सुनकर के धर्मसुत, रहे हमें बुलवाय ।
आ पहुँचे अति शीघ्र ही, कृष्णचन्द्र यदुराय ॥

मिलते ही छाती से लगाय, नरराई ने आनन्द पाया ।
एक स्वच्छासन पर बिठलाकर, होकर विनीत यों फरमाया ॥
मैं राजसूय नामक यज्ञ को, करना चाहता हूँ बनवारी ।
इसलिये उचित और ठीक राय, कर कृपा बताओ गिरधारी ॥

सबसे पहिले तो कहो यही, क्या हम उसको कर सकते हैं ।
जो जो साधन हैं पास मेरे, क्या वे पूरे पड़ सकते हैं ॥
भाई बांधव मंत्री आदिक, हैं जी हुजूरी कहने वाले ।
करते हैं मेरी हां में हां, नहिं ठीक राय देने वाले ॥
मेरा बिश्वास तुम्हीं पर है, इस सब जग में हे जगत्स्वामी ।
जो होगी सलाह बनूंगा मैं, हे प्रभु उसी का अनुगामी ॥

कहा कृष्ण ने भूप तुम, सकल गुणन की खान ।
तेजस्वी, धर्मात्मा, चातुर और सुजान ॥

अवलोक आपका धर्मराज, मित्रों की तो कुछ बात नहीं ।
शत्रू तक श्रद्धा रखते हैं, करते हैं कुछ उत्पात नहीं ॥
इस धर्महि के बल से जग में, तुम अजातरिपु कहलाते हो ।
किसलिये न फिर ये यज्ञ करके, सम्राट् की पदवी पाते हो ॥
हे महाराज भूमंडल में, जिस जिस ने ये पद पाया है ।
था उसमें एक हि गुण प्रधान, उस ही से काम बनाया है ॥
दानियों में था कोई यकता, कोई अतुलित बलवानी था ।
कर धर्म राज कोई था बना, कोई तप में लासानी था ॥
ये सारे गुण एकत्रित हो, तुम में निवास करते राजा ।
सब तरह यज्ञ के योग्य पात्र, होकर फिर क्यों डरते राजा ॥

किन्तु जरासी बात है, उसका करो विचार ।
यदि वो पूरी होगई, होगा यज्ञ भुवार ॥

हे भूप इस समय जरासन्ध, जो मगधेश्वर कहलाता है ।
उसका प्रताप ऐश्वर्य तेज, है अद्भुत कहा न जाता है ॥
उसने अपने बाहू बल से, अगणित भूपों को जीता है ।
जग के नामी बलवीरों का, लड़ उससे हुआ फजीता है ॥

अति बली जगत् विख्यात वीर, शिशुपाल चंदेरी का राजा।
मगधेश से रण में हार मान, करता है सेनप का काजा॥
भगदत्त वीर भी हार गया, उससे सन्मुख लोहा लेके।
होगया कैद सब शान गुमा, छूटा कइ दिन में "कर" देके॥
इस तरह पूर्व उत्तर दक्षिण, वाले सब नृप घबराये हैं।
तज तज कर अपने देश सभी, जंगल की तरफ सिधाये हैं॥
उसही के डर से उग्रसेन, तज मथुरा द्वारावति जाकर।
हम सबको लेकर रहते हैं, एक किला बहुत दृढ़ बनवाकर॥
यों पापी ने निज भुजबल से, सम्राट् की पदवी पाई है।
कोई भी उसको जय करने, वाला देता न दिखाई है॥

खल प्रभाव उस दुष्ट का, डरते हैं भूपाल।
जिसने सिर ऊंचा किया, मरा वही तत्काल॥

यदि अपनी अपनी सेना ले, सब भूप इकट्ठे हो जावें।
रख कर निज शीश हथेली पर, फिर मगध देश पर चढ़ धावें॥
और युद्ध करें सौ वर्षों तक, तो भी न जीतने पांय उसे।
अस्तु सब यही सोचते हैं, किस प्रकार बस में लांय उसे॥
सच तो यह है इस समय भूप, थर्राय उठा भारत सारा।
चाहता है किसी तरह खल से, बस अब तो पाना छुटकारा॥
हो निर्भर एकहि आशा पर, बैठी है नृप संख्या सारी।
वो ये है यदि तुम युद्ध करो, तो मरे दुष्ट अत्याचारी॥
यदि खून खराबी करने से, हानी देता हो दिखलाई।
तो भीमार्जुन संग मुझको दो, जाने की आज्ञा नरराई॥
जिस तरह बनेगा हम तीनों, उसको बध कर ही आवेंगे।
फिर आनन्दित हो राजसूय, करने में ध्यान लगावेंगे॥

सुन यदुराई के वचन, भूपति हुये उदास ।
दीर्घ स्वांस ले यज्ञ की, तज दी सारी आस ॥

कुछ देर बाद धीरज धर कर, इस प्रकार बोले नरराई ।
सम्राट् की पदवी का लालच, मैं तजता हूँ त्रिभुवन सांई ॥
भीमार्जुन मेरे नेत्र युगल, और नटवर प्राण समान हो तुम ।
अस्तु मैं यह नहिं चाहता हूँ, उससे लड़कर बलिदान हो तुम ॥
तुम्हरी बातें सुनकर मुझको, लग गया पता उसके बल का ।
विश्वास हुआ हम कुछ अनिष्ट, कर सकते नहीं दुष्ट खल का ॥
इससे यज्ञ की उत्कंठा को, तज देना ही बस अच्छा है ।
मैं तो चाहता हूँ शांति रहे, अब कहो कृष्ण क्या इच्छा है ॥

※ गाना ※

(तर्जः—राज को ताराज करदेती है नखवत ताज की)

मैं नहीं चाहता हूँ नटवर दुष्ट से संग्राम हो ।
क्या खबर कैसी घड़ी आवे व क्या परिणाम हो ॥
एकतो वो है बली फिर सैन भी अति, पास है ।
इससे आशा है नहीं कि पूर्ण अपना काम हो ॥
ऐसे यज्ञ से लाभ क्या जिस में वहाया जाय खूँ ।
चैन से बैठे वृथा रण कर न तुम बदनाम हो ॥
आंख ओझल कर नहीं सकता हूँ तुमको, क्यों के तुम ।
प्राण के भी प्राण और आराम के आराम हो ॥

वचन श्रवण कर भूपके, बोले लीलाधाम ।
समय समय अच्छे लगें, शांति और संग्राम ॥

केवल जय तृष्णा में फंसकर, यदि युद्ध मचाया जाता है ।
वह कभी क्षमा के योग्य नहीं, और धर्म विरुद्ध कहाता है ॥
पर पापी के कर से कोई, सज्जन नर का उद्धार करे ।
उसको नहिं तनिक बुराई है, चाहे संग्राम अपार करे ॥
इस समय अतुल बल होते भी, यदि आप चुप्प हो जावेंगे ।
तो सब समझो सारे राजा, उसके फंदे फँस जावेंगे ॥
इसलिये हमारी विनय मान, हे नृपवर सोच विचार करो ।
जिस तरह बने पापी का वध, निज जाती का उद्धार करो ॥
इस कुरुकुल के सारे बुजुर्ग, बलवानी होते आये हैं ।
निज ताकत से नर को तो क्या, सुरतक के होश भुलाये हैं ॥

इसीलिये नृप आपको, गिन बल में विख्यात ।
जरासंध यहां आयकर, करत नहीं उत्पात ॥

फिर हंस और डिम्भक नामक, जो थे उसके सेना भारी ।
वे भी मृत्यु को प्राप्त हुये, इसलिये करो रण तैयारी ॥
हे नृप उन निबल नृपाओं का, जो कैदी हैं मगधेश्वर के ।
जिस समय ध्यान हो आता है, होते हैं टूक कलेवर के ॥
वे तो उस अंध भवन में रह, दिन रात मृत्यु को याद करें ।
और हम यहां अपने मनमाने, भोगों से दिल को शाद करें ॥
क्या यही उचित है भूप हमें, यही क्या धर्म हमारा है ।
क्या करें इसे ही जाति प्रेम, क्या ये न स्वार्थ की धारा है ॥
हम क्षत्री हैं क्षत्रियों पै वो, कर रहा घोर अनरथ भारी ।
हो सबल, क्यों न हम करें फेर, उसके बधने को तैयारी ॥

सुना है हमने चतुर्दश, कम, सौ पृथ्वीराज ।
पकड़ बाहु बल से उन्हें, दिया कैद में डाल ॥

जिस दिन सौ नृप हो जावेंगे, पापी नर-यज्ञ रचावेगा ।
पशुओं की ऐवज में इनकी, बलदानी कर हरषावेगा ॥
अस्तू उस क्रूर अधर्मी को, बधने में तनिक न देर करो ।
पुरुषार्थ हीन नर सम विचार, मन से निकल कर अलग धरो ॥

❀ गाना ❀

(तर्ज़-कायाको तू क्या सिनगारे काया झूंठी मायारे)

दुष्टों का बध करना भूपति क्षत्री धर्म कहाता है ।
इसी नीति के माफिक़ चलने वाला शुभ गति पाता है ॥
करुणा उसपर करना चहिये जो करुणा के लायक हो ।
परपीड़क को तो बधना ही उत्तम माना जाता है ॥
मनमें बनो अधीर नहीं तुम गिनकर उसको बलशाली ।
धर्म धुरीनों को निश्चय ही धर्म मदद पहुँचाता है ॥
हमतो निमित मात्र होंगे नृप घात दुष्ट का करने में ।
सच तो ये है पापी नरका पाप हि खोज मिटाता है ॥

जरासंध के बिन मरे, राजसूय नहिं होय ।
जेहिविधिहोउसकामरण, यत्न करो तुम सोय ॥

यह सुन प्रत्युत्तर दिया नहीं, चुपचाप रहे कुन्ती-नन्दन ।
ये देख भीम आतुर होकर, झट बोले करके पद वन्दन ॥
महाराज धीर धारन करिये, तजकर सारी व्याकुलताई ।
बस अब ये तुम निश्चय समझो, उस खल की मृत्यु निकट आई ॥
जो काम न पूर्ण होय बल से, कौशल से वो हो जाता है ।
पंचानन भी एक मामूली, नरके बस में आजाता है ॥

ये बात आप सच्चो जानो, निज बल पर मुझे भरोसा है ।
और पार्थ धनुर्विद्या ज्ञाता, दुनियां में एक हि योधा है ॥
फिर राज नीति में महा चतुर, संसार में जिनका जोड़ नहीं ।
वे कृष्ण साथ में हैं जिनको, कर सकता कोई होड़ नहीं ॥
ये उत्तम साधन हैं फिर भी, क्यों तुम घबराये जाते हो ।
उस पापी का बध करने को, क्यों नहीं हमें भिजवाते हो ॥

कहा पार्थ ने भी यही, ठीक भीम की बात ।
जरासन्ध बध के लिये, दो आज्ञा नरनाथ ॥

भाई मुझको अब ज्ञात हुआ, हरि से कर श्रवण कथा सारी ।
के मगधराज चंडाल नीच, है पापी दुष्ट दुराचारी ॥
बस ज्यादा नहीं सहा जाता, हृदय कलमलो मचाता है ।
जाते हैं हाथ शरासन पर, गुस्सा चढ़ता ही आता है ॥
दो हुक्म शीघ्र भूपाल हमें, मगधेश्वर पर चढ़ जाने का ।
ताके अवसर आवे स्वधर्म, पालन करके दिखलाने का ॥
यदि निबलों की रक्षा न करी, धिक्कार है क्षत्रि कहाने में ।
धिक धिक है बल पुरुषारथ को, धिक्कार भूमिपर आने में ॥
हैं पास हमारे सब साधन, फिर भी यदि उससे डर जायें ।
तो उत्तम है ये राज छोड़, बन में चल साधू हो जायें ॥
उस खल ने निर्बल भूपों को, निज बंदी गृह में डारा है ।
जिस तरह बने उनकी मुक्ती, करना ही धर्म हमारा है ॥
जो पुरुष शत्रू मद मर्दन कर, जय पाय ध्वजा फहराते हैं ।
हैं वे ही श्रेष्ट उन्हीं का नित, दुनियां वाले यश गाते हैं ॥

सुन अर्जुन की बात को, चुप्प रहे भूपाल ।
लख ऐसी हालत तुरत, बोले फिर नँदलाल ॥

महाराज यदी मम इच्छा के, माफिक तुम चलना चाहते हो।
ऊपरी नहीं बल्की मच्चा, मुझ पर सनेह दरसाते हो॥
तो सारे संशय को तजकर, जाने की आज्ञा दिलवादो।
और केवल भीमार्जुन को ही, हे नृप मेरे संग भिजवादो॥
जाते ही उसे नृपालों को, तजने के लिये दयावेंगे।
और हरदम अपना मित्र रहे, बस यही बात समझावेंगे॥
यदि मान गया तब तो राजन्, कुछ दिनों और जी जावेगा।
वरना हमरे चंगुल में फंस, निश्चय यम लोक सिधावेगा॥

हो प्रसन्न महाराज ने, दी आज्ञा तत्काल।
भीमार्जुन को साथ ले, चले सहर्ष गुपाल॥

तीनों ने ब्राह्मण भेष बना, पचांग बगल में दबा लिया।
रुद्राची माला गले डाल, चन्दन का टीका लगा लिया॥
फिर मगध देश की ओर चले, तीनों तेजस्वी गुणधारी।
अब मरेगा निश्चय जरासन्ध, यह कहती थी रैयत सारी॥
चलते चलते कुछ दिन में ये, पहुँचे गोरखगिरि के ऊपर।
थी यहीं से सींव मगधपुर की, हरियाली थी सारी भूपर॥
प्राकृतिक दृष्य अवलोकन कर, बोले मधुसूदन गिरधारी।
हे भीमार्जुन देखो तो सही, है यहां का छवि कैसी प्यारी॥

पुष्प वाटिका बागवन, पच्ची करहिं विहार।
राज भवन सुन्दर सुखद, शोभा अमित अपार॥

ऐसी उत्तम रमणीक भूमि, लख जिसको मन हर्षाता है।
जहां वास चाहिये मुनियों का, तहां निश्चर रह सुख पाता है॥
करता है अत्याचार यहां, सज्जन पुरुषों पर मनमाने।
ये ज्ञात नहीं जाते हैं नर्क, ऐसे पापात्मा दीवाने॥

हे मित्रों बिप्र, धर्म, गौ को, जो पुरुष हानि पहुँचाते हैं ।
जो रहें पृथक शुभ कर्मों से, वे नास्तिक माने जाते हैं ॥
क्षत्री का बस कर्तव्य है ये, ऐसे पुरुषों को संहारे ।
होती है धर्म वृद्धि इससे, अस्तु तज दया इन्हें मारे ॥
अब इस अन्यायी के गृह को, जानिए झट कदम बढ़ाओ तुम ।
कर गर्व चूर जग से उसका, बस नाम निशान मिटाओ तुम ॥
सुन प्रभु की युक्ति भरी बातें, इनको अत्यन्त जोश आया ।
फुरती से कदम बढ़ाय दिया, झट द्वार नगर का नियराया ॥

मस्त हाथियों की तरह, कृष्ण, पार्थ और भीम ।
पुर में जा देखन लगे, अनुपम छवि निःसीम ॥

इन तीनों के यहां आते ही, नृप को अपशगुन अपार हुये ।
अवलोकन करते ही इनका, मगधेश बहुत बेजार हुये ॥
कई ज्योतिषियों के कहने से, नृप ने उपवास किया भारी ।
फिर जा एकान्त में करन लगे, मृत्युंजय जप की तैयारी ॥
इतने में ये तीनों पहुँचे, आनन्द सहित नरराई पर ।
लख तेजस्वी त्रिमूर्ति को वह, उठ धाया विस्मित सा होकर ॥
और पूजा का सामान किया, लेकिन यहां अस्वीकार हुआ ।
ये देख जरासँध के दिल में, पैदा एक नया विचार हुआ ॥

ध्यान पूर्वक लख इन्हें, जान गया मगधेश ।
ये ब्राह्मण हरगिज नहीं, है कोई अवनेश ॥

इनके कर पर धनुडोरी के, आघात दृष्टि में आते हैं ।
बस ये प्रमाण इन लोगों को, ब्राह्मण नहिं, क्षत्रि बनाते हैं ॥
होते हैं क्षत्री सतबादी नहिं कभी झूंठ फरमावेंगे ।
जो कुछ मैं इनसे पूछूंगा, मुमकिन है सब बतलावेंगे ॥

ये सोच कहा मगधेश्वर ने, क्यों नहीं ग्रहण करते पूजा ।
इससे तुमको ब्राह्मणहि गिनूं, या समझूं कोई वर्ण दूजा ॥
है भेष तो विप्रों सम तुम्हरा, पर तन हैं अद्भुत बलवाले ।
अस्तू मालूम पड़ता है तुम, हो क्षत्री कुल के उजियाले ॥
यदि मेरा भाषण ठीक है तो, बोलो फिर क्यों ये भेष लिया ।
किस गूढ़ बात की सिद्धी हेतु, मेरे पुर में आगमन किया ॥

बोले हरि तुमने कहा, बिल्कुल ठीक नृपाल ।
बेशक हम ब्राह्मण नहीं, हैं क्षत्री के लाल ॥

क्षत्रियों की नीती है राजन्, जब शत्रू के घर जाते हैं ।
तो अपना असली भेष छिपा, वे नकली रूप बनाते हैं ॥
तुम हो हमरे कट्टर शत्रू, बस इसीलिये ये भेष धरा ।
और यही सबब है जो तुम्हरा, पूजन नहिं अंगीकार करा ॥

याद नहीं आता मुझे, तुम लोगों के साथ ।
करी शत्रुता कौन दिन, बोले यों नरनाथ ॥

सुन बचन कृष्ण ने कहा दुष्ट, क्यों नहीं तुझे आती ग्लानी ।
किसलिये क्षत्रि जाती को दुख, देता निशंक हो अभिमानी ॥
कर कैद अमित भूपालों को, तैंने जग के क्षत्री सारे ।
कर लिये हैं अपने पूर्ण शत्रु, ये दोष क्यों नहीं स्वीकारे ॥
है खल तू ये गिनता होगा, तप बल से अजर अमर हूं मैं ।
है मुझ समान त्रिलोकी में, कोई नहिं अस्तु निडर हूँ मैं ॥
लेकिन रख याद भूप मनमें, एक समय सभी का आता है ।
बेबस हो तब ये जीवात्मा, तन का त्यागन कर जाता है ॥
तज जाता है धन, धाम, धरणि, आत्मीय सुहृद जन सबको ही ।
और ले जाता है अपने संग, बस केवल पाप पुन्य दो ही ॥

इनहीं चीजों से बनती है, प्रारब्ध दूसरे जन्मों की।
इसलिये मनुष्य को ये चहिये, इच्छा रक्खे शुभ कर्मों की॥
इसके विरुद्ध तू दीनों को, बलदानी करना चाहता है।
किसलिये बुद्धि खोई तैंने, क्यों दोनों लोक नसाता है॥

हुक्म हमारा मानकर, छोड़ो सब भूपाल।
बनो मित्र जिससे रहो, हरदम अति खुशहाल॥

समझो मुझको वसुदेव पुत्र, इनको बलवीर भीम जानो।
और इन्हें धनुर्धर महाबली, कुन्ती सुत अर्जुन पहिचानो॥
कुरुराज युधिष्ठिर ने सुनकर, तव अत्याचार कथा सारी।
भेजे हैं मेरे संग राजन, अपने ये भ्राता बलधारी॥
उद्देश हमारा है ये ही, उद्धार करें राजाओं का।
क्योंके अब नहीं सहा जाता, दुखप्रद स्वर उनकी आहों का॥
यदि तुम अपनी ही इच्छा से, भूपों को मुक्ती करदोगे।
तो क्षत्रि जाति के प्रिय बनकर, दुनियां में अतिशय यश लोगे॥
और रहे गर्व में चूर यदी, तो निश्चय जीवन जावेगा।
हम लोगों से हे भूप तुम्हें, कोई भी नहीं बचावेगा॥

सुना नहीं कुछ भूप ने, रण को हो तैयार।
खंभ ठोक भृकुटी चढ़ा, बोला यों ललकार॥

क्यों मुझको डर दिखलाते हो, तत्पर हूँ मैं लड़ने के लिये।
उत्तम है तुम वापिस जाओ, क्यों आये हो मरने के लिये॥
हे कृष्ण सकल भूपालों को, दी अपने भुजबल से जकड़ है।
फिर कैसा भी उनके संग में, व्यवहार करूं मुझको हक है॥
चाहे तुम किसी नरेश्वर के, भेजे मेरे घर आये हो।
भुज बल में तुम सब पतला हो, या श्रेष्ठ वंश में जाये हो॥

पर जरासन्ध तुम लोगों से, बिल्कुल नहिं दहशत खायेगा ।
कुरुराज युधिष्ठिर के सन्मुख, हरगिज नहिं शीश झुकायेगा ॥
यदि रण करने की इच्छा है, आओ झटपट सन्मुख आओ ।
चाहे तुम आओ एक एक, या एक साथही आजाओ ॥

मगधेश्वर के बचन सुन, बोले कृष्ण मुरार ।
कहा हमारा मान कर, क्यों न मिटाते रार ॥

* गाना *

कर युद्ध क्यों तू प्राण गंमाता है जरासन्ध ।
सत पथ पै किसलिये न तू आता है जरासन्ध ॥
रख याद सुखी हो नहीं सकते हैं दुष्ट जन ।
फिर धर्म तज क्यों पाप कमाता है जरासन्ध ॥
है नीति सनातन यही, करता है जैसा जो ।
वैसाही उसका फलभी वो पाता है जरासन्ध ॥
किसकी रही है जगमें व रहजायेगी किसकी ।
पल पल में समय रंग दिखाता है जरासन्ध ॥
कर काम वही जिससे तेरा जन्म सुधर जाय ।
क्यों पाप बोझ सिरपै चढ़ाता है जरासन्ध ॥

लड़ना हो यदि चाहते, हो हमसे नरनाथ ।
तो तीनों में से कहो, लड़ोगे किसके साथ ॥
यह सुन कर मगधेश ने, भीमसेन के साथ ।
लड़ने को तैयार हो, पकड़ा इनका हाथ ॥

भिड़गये वृकोदर भी फौरन, निज हाथ में उसका हाथ लिया ।
अपनी जानिब को खींच उसे, ताकत से पद आघात किया ॥

हो क्रोधित जरासंध ने भी, देकर जवाब भरपूर इन्हें ।
झट पकड़ो इनकी कमर ओर, चाहा करदूं बस चूर इन्हें ॥
पर कुन्ती-तनय वृकोदर भी, कुछ न्यून न थे, थे बलधारी ।
इसलिये मगधपति की करदी, कौशल से चाल वृथा सारी ॥

हुआ निरन्तर युद्ध यों, ग्यारह दिन और रात ।
जरासन्ध व्याकुल हुआ, लगा कांपने गात ॥

ये लख बलवीर वृकोदर ने, आतुर हो इसकी टांग पकड़ ।
सारा बल लगा उठाय लिया, और, लगे घुमाने ऊंचा कर ॥
सौ बार हवा में चक्कर दे, फिर जोर से भूमी पर मारा ।
एक टांग दबा व दूसरी को, ले कर में तुरत चीर डारा ॥

देख इति श्री दुष्ट की, हरषाये गोपाल ।
पहुँचे भीमार्जुन सहित, बंदी गृह तत्काल ॥

वहां अंधकार में राजा गण, व्याकुल हो अश्रु बहाते थे ।
देते थे कर्म को दोष कभी, कभि विधि को बुरा बताते थे ॥
होरहे थे त्रण सम सूख सभी, सुन भय प्रद सुधि बलदानी की ।
कर जोड़ प्रार्थना करते थे, निशिदिन सब शारंगपानी की ॥
अस्तू वहां आते ही हरि ने, कुल राजाओं को मुक्त किया ।
दे अपना परिचय निलहा धुला, फिर सब को भूषण युक्त किया ॥

हाथ जोड़ भूपाल गण, चरणों शीश नवाय ।
बोले भगवन धन्य हो, धन्य भक्त सुखदाय ॥

महाराज आपने किरपा कर, हम दीनों पर उपकार किया ।
जो महा दुष्ट के चंगुल से, सब लोगों का उद्धार किया ॥
इस बन्द भवन में वर्षों से, हम पड़े थे हे गिरधरधारी ।
बलदानी की खबरें सुन कर, कांपे थी नित काया सारी ॥

दे हमको छुटकारा तुमने, निज ऋणी किया गुणधाम प्रभो ।
कहिये इसको ऐवज में क्या, हम करें आपका काम प्रभो ॥
सुन बचन सकल भूपालों के, बोले प्रसन्न हो यदुराई ।
कुरुराज युधिष्ठिर राजसूय, यज्ञ करना चाहते हैं भाई ॥
इसलिये विनय है तुम सबसे, शक्तीनुसार दो सहाय हमें ।
कर कृपा करो बस अनुगृहीत, सब इन्द्रप्रस्थ में आय हमें ॥

यों कहकर मगधेश के, सुत को लिया बुलाय ।
राज तिलक कर प्रेम से, विदा हुये यदुराय ॥

पहुँचे झट इन्द्रप्रस्थ जाकर, नृपको सब हाल सुनाय दिया ।
खुश होकर भूप युधिष्ठिर ने, तीनों को हृदय लगाय लिया ॥
फिर द्रव्य इकट्ठा करने की, यदुपति ने इच्छा जतलाई ।
इस कारण सभी दिशाओं में, ले कटक गये चारों भाई ॥
बलवीर धनंजय धनुष चढ़ा, उत्तर की जानिब बढ़ने लगे ।
क्रम क्रम से सब भूपालों को, कर बल प्रकाश जय करने लगे ॥
पंजाब जीत कश्मीर गये, फिर पार हिमालय को कीन्हा ।
थे जितने नृप इन देशों में, सबसे मन माना 'कर' लीन्हा ॥
पहुँचे गंधर्व नगर में फिर, जो 'उत्तरकुरु' कहलाता था ।
यहां की बन शोभा को लख कर, हृदय हर्षित हो जाता था ॥
यहां आय पांडु सुत करन लगे, एक महा युद्ध की तैयारी ।
ये सुधि पाकर गंधर्व कई, बोले इनसे हो खुश भारी ॥
हे महाबाहु हम लोगों से, नहिं कभी मनुज जय पासकते ।
जय पाना तो अति दूर रहा, बलसे यहां तक नहिं आसकते ॥
हे धन्य आपकी शक्ती को, जो इतना बढ़कर आये हैं ।
इससे हम तुम्हें पूछते हैं, किस कारण कष्ट उठाये हैं ॥

इन्द्रप्रस्थ के भूप ये, चाहते हैं गंधर्व ।
साम्राज्य थापन करें, बस में कर पुर सर्व ॥

इसलिये आप कुछ "कर" स्वरूप, यदि पास हमारे भिजवादें ।
तो सिद्ध हमारा मतलब हो, हो खुश आगे का रस्ता लें ॥
ये सुनते ही गंधर्वों ने, कई प्रकार की चीजें लादी ।
सूती, ऊनी, रेशमी वस्त्र, गहने, मृगचर्म, द्रव्य आदी ॥
सब लेकर पार्थ चले आगे, जा पहुँचे तीर समुन्दर के ।
जय कर सब भूपों को, "कर" ले, लौटे फिर हर्षित हो कर के ॥

चले भीम पूरब दिशा, सेना ले चतुरंग ।
इनका बल अवलोक कर, होते थे रिपु दंग ॥

भिड़ते थे जहां गदा लेकर, मैदान तहां हो जाता था ।
गज, अश्व, मनुज कोई भी हो, तत्काल यमालय जाता था ॥
"कर" ले पंचाल नरेश्वर से, शिशुपाल से फिर रण की ठानी ।
पर इसने बिना लड़े ही दे, 'कर' की इनकी अति महमानी ॥
इसके उपरांत अवध, कौशल, मिथिला व मत्स्य आदिक सारी ।
नगरियां जीत कुन्ती-सुत ने, 'कर' ले निज विजय ध्वजा गाड़ी ॥
फिर बंग प्रदेश फतह करके, आगे पहुँचे कुन्ती-नन्दन ।
आसाम ब्रह्म वालों ने भी, खा हार किये झट पद बंदन ॥
यों ही जय करते कुछ दिन में, ये पहुँचे सिन्धु किनारे पर ।
वहां के भी भूपों को हराय, लौटे मन माना "कर" ले कर ॥

भीमार्जुन के साथ ही, लेकर कटक महान ।
माद्रि-तनय सहदेव ने, दक्षिण किया पयान ॥

जाते ही मथुरा को जीता, फिर विंध्य प्रदेश नजर आया ।
वहां के अगणित भूपालों को, पल में कर निकट बैठाया ॥

फिर गोदावरी पार करके, पहुँचे किष्किन्धा में जाकर ।
इस जगह घोर रण करने लगी, वानर जाती सन्मुख आकर ॥
रण हुआ बराबर सात दिवस, लेकिन कुछ भी फल मिला नहीं ।
सहदेव का मन जय पाने की, आशा से बिलकुल खिला नहीं ॥
ये देख इन्होंने क्रोधित हो, आरम्भ घोर संग्राम किया ।
लख इनका पुरुषारथ खुश हो, उन लोगों ने रण त्याग दिया ॥

बोले आकर आपका, देख युद्ध बलवीर ।
देते हैं हम हो सुखी, 'कर' में धनमणि चीर ॥

अति आनन्दित सहदेव हुये, तत्काल सकल 'कर' स्वीकारा ।
फिर कन्यकुमारी तक जाकर, कर लिया विजय दक्षिण सारा ॥
ले अपने संग अपार द्रव्य, रजधानी में वापिस आये ।
अवलोक इन्हें महाराजा को, आंखों में प्रेमाश्रु छाये ॥

उधर माद्रिनन्दन नकुल, पश्चिम दिशि में जाय ।
भूपों को जीतन लगे, अपना बल दिखलाय ॥

चलते चलते फारिस पहुँचे, ये सुधि पा वहां का नरराई ।
सेना ले झट सन्मुख आया, कर अति रण शक्ती दिखलाई ॥
ले खंग हाथ में नकुल यहां, घुस गये फौज में रिसिया कर ।
काई सम शत्रु फटे पल में, तलवार का लख अद्भुत जौहर ॥
ज्यों माली घास काटता है, त्योंही ये शीश काटते थे ।
कर एक के दो और दो के चार, मृतकों से भूमी पाटते थे ॥
ऐसा बल देख विपक्षी दल, आगया शरण में भय खाकर ।
'कर' लेकर उसको छोड़ दिया, बढ़ चले अगाड़ी हरषा कर ॥
जा पहुँचे रेगिस्तान फेर, जंगली कौमों पर जय पाई ।
और लाल समुन्दर तक जाकर, फिरि चले नकुल अति हरषाई ॥

यों चारों पांडु नन्दनों ने, उस भूमि खंडको विजय किया ।
जो आज 'एशिया' कहलाता, और 'कर' ले सबको छोड़दिया ॥
जो कर स्वरूप वे लाये थे, वो दौलत थी इतनी ज्यादा ।
जिसका गिनना तो दूर रहा, नहिं लगा सके थे अन्दाजा ॥

छोटे मोटे गांव सब, बनवा कोष विशाल ।
रखा युधिष्ठिर राज ने, जय का सारा माल ॥

फिर अगणित दूतों को बुलाय, भिजवाया सारे देशों में ।
ऋषि, मुनि, सन्यासी, विप्रों में, और क्षत्री वीर नरेशों में ॥
बोले दूतों ब्राह्मण क्षत्री, वैश्यों तक ही मत जाना तुम ।
बल्की शूद्रों को भी हित से, यज्ञ का न्योता दे आना तुम ॥

आज्ञा पाकर दूत सब, बिदा हुये तत्काल ।
इधर यज्ञ के साज को, साजन लगे नृपाल ॥
राजसूय की सुन खबर, चहुँ वर्ण के लोग ।
हर्षित हो एकत्र यहां, हुये पाय संयोग ॥

आये थे कई ब्रह्मचारी, और गार्हस्थी सब गुणरासी ।
पहुंचे थे अगणित वानप्रस्थ, सैकड़ों हो थे यहां संन्यासी ॥
फिर राज ऋषी और देव ऋषी, ब्रह्मऋषी भी यहां पर आये थे ।
नागों के भी अनगिनत झुंड, चहुंदिशि से आकर छाये थे ॥
हस्तिनापुर से धृतराष्ट्र भूप, कृप, द्रोण, विदुर, अश्वत्थामा ।
दुर्योधन सब भ्राताओं के, भीष्म व कर्ण अति बलधामा ॥
आपहुंचे इन्द्रप्रस्थ में सब, लखतेहि इन्हें नृप गुणखानी ।
तत्काल उठे और आदर से, की सब लोगों की महमानी ॥
इनके सिवाय नृप वाह्लीक, बलवान शल्य, नृप कृतबर्मा ।
गंधार राज शकुनी, द्रौपद, भगदत्त आदि भीषण कर्मा ॥

नृप सोमदत्त, जयद्रथ, विराट, और भूरिश्रवा, यंगाधिपती।
शिशुपाल, व्रहद्‌बल, कलिगेश, मय कुंतिभोज नृप महामती।

धृष्टद्युम्न, नृप शल्य अरु, काश्मीर भूपाल।
इन्द्रप्रस्थ आये सकल, लखने यज्ञ विशाल॥

द्वारावति से श्रीकृष्ण और, हलधर बांकी छवि किये हुये।
आये प्रद्युम्न, सात्यकी अरु, अनिरुध को संग में लिये हुये॥
इनके अतिरिक्त सैकड़ों ही, दुनियां के नामी बलधारी।
आये यज्ञ लखने को जिस से, होगई नगर की छबिन्यारी॥
राजा ने हर्षित हो सबका, आदर सत्कार महान किया।
प्रत्येक मनुज को सजा हुआ, अति उत्तम वासस्थान दिया॥
कोसों के चक्कर में ये सब, ठहरे राजे और महाराजे।
लगगया तुरत कोड़ो मेला, सुखदायक बजन लगे बाजे॥

एक दिवस श्री भीष्मको, अपने निकट बुलाय।
धर्मराज अति नम्र हो, बोले शीश झुकाय॥

यज्ञ का प्रबंध निज कर में ले, सारी बिपता हरिये दादा।
जिस तरह भलाई हो मेरी, बस वही काम करिये दादा॥
अपने रिस्तेदारों में से, जिस काम के योग्य जिसे पाओ।
मेरी जानिब से विनती कर, वह काम उसे ही दिलवाओ॥
ये सुनकर गंगा-नंदन ने, मन में कुछ देर विचार किया।
फिर कुरुओं को ढिंग बुलवाकर, एक एक सभी को कार दिया॥
विद्वान विदुर को आज्ञा दी, खर्चे का परचा रखने की।
कृप धन का स्वामी, द्रौणी को, विप्रों की सेवा करने की॥
दुःशासन भोजनशाला का, तत्काल चौधरी बना दिया।
उपहार वस्तुयें लेने में, दुर्योधन को झट खड़ा किया॥

राजाओं की महमानी का, सब भार ले लिया संजय ने ।
विप्रों के पद धोने का काम, हर्षित हो किया निरामय ने ॥
फिर फिर कर सारे कामों को, श्री भीष्म, द्रोण देखने लगे ।
धृतराष्ट्र, द्रुपद ये वृद्ध लोग, घर के मालिक सम रहने लगे ॥

शुभ महूर्त अवलोक कर, विप्रों ने हरषाय ।
तुरत युधिष्ठिर राज को, दीक्षित किया बुलाय ॥

पूजा करके यज्ञशाला की, तत्काल संकल्प छुड़वाया ।
और इसकी सुन्दर वेदी पर, भूपति का आसन रखवाया ॥
जा बैठे इस पर कुन्ती-सुत, फिर भरा यज्ञ मंडप सारा ।
लख उचित समय सब विप्रों ने, झट वेद मंत्र को उचारा ॥
हो गया यज्ञ आरम्भ तुरत, स्वाहा स्वाहा की ध्वनि छाई ।
कुछ दिनों बाद ऋषि मुनियों ने इसकी पूर्णाहुति दिलवाई ॥
यह लख खुश हो भूपति बोले, संबोधन कर सरदारों को ।
मंत्रियों को ऋषियों मुनियों को, विप्रों को नृप कुमारों को ॥
ये महोदयो हरिकृपा और, तुम लोगों के सद्भावों से ।
हो गया यज्ञ निर्विघ्न पूर्ण, वेदों की सत्य रिचाओं से ॥
अब यज्ञ समाप्ति का तिलक कहो, तुम में से किसे दिया जावे ।
है सब से बढ़कर कौन यहां, जो सर्व प्रथम पूजा पावे ॥

ये सुनकर सब चुप रहे, तब भीष्म पुलकाय ।
खड़े होय कहने लगे, सुनो युधिष्ठिर राय ॥

इस पूरन सभा में जितने भी, ऋषि मुनि ब्राह्मण नृप बैठे हैं ।
वे गुण में तपो तेज बल में, अपना सानी नहिं रखते हैं ॥
यदि कृष्णचन्द्र आनन्दकंद, होते न यहां हे नृपराई ।
तो किसको सर्व प्रथम पूजें, पड़ती इसमें अति कठिनाई ॥

किन्तू जब यहां उपस्थित हैं, ये खुद ही फिर ढूंढे जिनको ।
अस्तू है मेरी राय यही, हे नृप पूजो पहिले इनको ॥
सुन वचन भूप ने माधव को, अति हित से अर्घ प्रदान किया ।
और प्रभु ने भी नीतोनुसार, सादर पूजा को ग्रहण किया ॥
लेकिन महाबली चँदेरी नृप, शिशुपाल ये न सह सका पूजा ।
बोला इस कृष्णचन्द्र से बढ़, क्या यहां था और नहीं दूजा ॥

परमहंस, ऋषि, मुनि, यती, ब्राह्मण तेज निधान ।
वृद्ध, युवा भूपाल गण, अतुलित बल की खान ॥

इन पुरुषों के यहां पर होते, फिर क्यों इनका पूजन टाला ।
हे धर्मराज क्यों धर्म छोड़, करते हो अपना मन माना ॥
महमानों का आदर करना, येही कर्तव्य तुम्हारा है ।
लेकिन उसके विरुद्ध चल कर, तुमने सब काम बिगारा है ॥
भीषम तू तो है बुद्धिमान, फिर क्यों ये पूजा करवाई ।
एक मामूली को सर्व श्रेष्ठ, कहते क्यों लाज नहीं आई ॥

भीष्मपितामह क्रुद्ध हो बोले हे शिशुपाल ।
लाज नहीं आती तुझे, बजा रहा है गाल ॥

मत समझ कृष्ण को मामूली, ये त्रिलोकी के नायक हैं ।
दुष्टों के लिये काल सदृष्य, भक्तों को आनन्द दायक हैं ॥
जिसने नरसिंह रूप धर कर, हिरनाकुश पापी मारा है ।
सत्याग्रही प्रह्लाद तार दुनियां में यश विस्तारा है ॥
फिर चीर सिंधु में जिस प्रभु ने, धर कच्छ रूप गिरि वहन किया ।
और केवल तीन डगों में ही, जिसने समस्त जग नाप लिया ॥
फिर और याद करले जिसने, रावण का खोज मिटाया है ।
बस वही प्रभू धर कृष्ण रूप, इस समय जगत में आया है ॥

लेकिन तुझ सम अधिकार हीन, नर कान्ह को जान नहीं सकते ।
सूरज का है कैसा प्रकाश, उल्लू पहिचान नहीं सकते ॥

❀ गाना ❀

(तर्ज—चर्खा कातो तो बेड़ा पार है)

समझो, वो नर मृतक समान है ।
जिसे कृष्ण भजन का न ध्यान है ॥
पाकर मानुष तन जो भाई,
भजे नहीं श्री कृष्ण कन्हाई ।
उसको, लपने में पाप महान है ॥ जिसे कृष्ण० ॥
विषयों में जो निशिदिन रहता,
कपटी बन कर नर को छलता ।
निश्चय वो श्वान की खान है ॥ जिसे कृष्ण० ॥

मूर्ख यहां पर कृष्ण का, हुआ है जो सत्कार ।
इसके बिलकुल योग्य हैं, मानव जगनाधार ॥
बात काट कर कह उठा, चन्देरी भूपाल ।
भीष्म बुढ़ापे में तेरा, गया कहां सद ख्याल ॥

क्यों वृथा खुशामद करके तू, इस कृष्ण को मान बढ़ाता है ।
एक मामूली इस ग्वाले का, त्रिलोकानाथ बनाता है ॥
नादान गये भगवान कहां, हुए बुजुर्ग क्या नहीं रहे ।
[illegible] इतना रहा गुरु का, क्या रिश्तेदार रिसाय गये ॥
यदि वृद्ध जनों का श्रेष्ठ समझ, तुमने ये मान कराया है ।
तो वृद्ध पिता [illegible], यहां लड़के का तुम्हारा है ॥

यदि इसे कुटुम्ब वालों में गिन, इस प्रकार का सन्मान किया ।
तो कृष्णा के पितु द्रौपद को, किसलिये न अर्घ प्रदान किया ॥
इसको यदि हे भीषम तुमने, आचार्य के सदृष्य माना है ।
तो द्रोणाचार्य गुरू को तज, क्यों इसका पूजन ठाना है ॥
यदि ध्यान वीरता का था तो, बैठे थे अगणित बलधामा ।
महारथी कर्ण, जयद्रथ करेश, कृप, दुर्योधन, अश्वत्थामा ॥

फिर तुमने क्या सोचकर इसको पूजा दीन्ह ।
धर्मवान हो धर्म के, विरुध काम क्यों कीन्ह ॥
कहा भीष्म ने मंदमति, करले बंद ज़बान ।
दृष्टी आते कृष्ण में, ये सब गुण नादान ॥

बोला चंदेरी नृप हरि में, इस झूंठन खाने वाले में ।
क्या सारे गुण दृष्टी आते, गौ आदि चराने वाले में ॥
जो पंडित है न छत्र धारी, राजा न सूर रणधीर कोई ।
आचार्य नहीं वृद्ध भी नहीं, और नहीं वीर गम्भीर कोई ॥
उसका तुमने सन्मान किया, बतलाकर त्रिभुवन का स्वामी ।
होगई नष्ट बुद्धी तुम्हरी, बनगई पाप की अनुगामी ॥
शिशुपाल इस तरह बातें कह, राजाओं को उकसाने लगे ।
ये देख युधिष्ठिर पास जाय, हो नम्र उसे समझाने लगे ॥
हे नृप जो तुमने बात कही, वो है अधर्म से भरी हुई ।
अनुचित है वृथा है कडुवी है, अश्लील है बिलकुल गिरी हुई ॥
ये ना मुमकिन है गंगतनय, "क्या धर्म है" ये नहिं पहिचाने ।
उत्तम पुरुषों के होते हुये, एक अधम का यों पूजन ठाने ॥

कृष्ण सच्चिदानन्द हैं, देवों के सिरताज ।
ज्ञानी सिद्ध महाबली, राजों के महाराज ॥

भगवन् ने बांके वीरों को, पल में तत्काल हराया है।
शरणागत जान शत्रु को भी, तज, दया भाव दरसाया है॥
जब से अवतार लिया जग में, कई अद्भुत काम दिखाये हैं।
कहिं नाग* नाथ के फैंक दिया, कहिं कर पै शिखर† उठाये हैं॥
हे भूप, कृष्ण क्या हैं इसका, भीषम ने परिचय जाना है।
बस इसलिये सबसे उत्तम, इन माधव को अनुमाना है॥

तुमसे अति उत्तम यहां, बैठे हैं कई लोग।
कहते हैं श्री कृष्ण ही, हैं पूजा के योग॥
भीषम बोले चुप रहो, धर्मराज नर नाह।
चंदेरी नृप कृष्ण से, रखता मन में डाह॥

जग में मधुसूदन का पूजन, जिस नर को लगता ठीक नहीं।
उस पापात्मा कुविचारी से, कुछ कहना सुनना ठीक नहीं॥
पूजा भगवान मुरारी की, यदि इसे पसंद न आई है।
तो करे वही जिसमें इसकी, कुछ दृष्टी आप भलाई है॥
सुनतहि वचन गंगा-सुत के, शिशुपाल बहुत गरमाय गया।
और कहा वृद्ध पन के कारन, भीषम तू तो सठियाय गया॥
क्या धरा है खाली बातों में, क्यों व्यर्थ प्रशंसा करता है।
तेरे कह देने से ये नर, क्या परमेश्वर हो सकता है॥
मैं अच्छी तरह जानता हूं, इस कृष्ण में बल का नाम नहीं।
गौ व जानवर चराने के, अतिरिक्त किया कुछ काम नहीं।
ये गउऐं बन में लेजा कर, ग्वालों को भूंठन खाता था।
भोले भाले ग्रामीणों को, कई तरह के स्वांग दिखाता था॥

कंस नृपति का अन्न खा, हुआ ये कपटी पुष्ट।
बल से उसही को बधा, है ये ऐसा दुष्ट॥

अस्तू हे कुरुवंशी भीष्म, मेरा उपदेश ध्यान में ला।
तारीफहि करना चाहता है, तज इसको और किसी की सुना॥
वरना होजा चुप चाप शीघ्र, आवाहन मृत्यू का मत कर।
रे नीच तेरा जोवन निर्भर, है फकत हमारी मरजी पर॥
अपमान भीष्म का सुनते ही, बलवीर वृकोदर गरमाये।
कर लाल नेत्र झट गदा उठा, आतुर हो इसके ढिग आये॥
और बोले पापी मौन साध, वरना सब गर्व मिटादूंगा।
एक ही हाथ में रे मूरख, दिन में नक्षत्र दिखादूंगा॥
रे कुलंगार मैं बैठा हूँ, चुपचाप, समझ महमान तुझे।
क्यों तू बकता ही जाता है, क्या नहीं है प्यारी जान तुझे॥
ये सुनकर भी चंदेरी नृप, शिशुपाल नहीं खामोश हुआ।
तब तो बलोवीर कुन्ती-सुत के, चित मांहि और भी जोश हुआ॥
झट गदा उठाली हाथों में, चाहा मस्तक पर मारूं मैं।
हरि निन्दक के सिर के टुकड़े, करके भूमी पर डारूं मैं॥

पर अनुचित कह भीष्मने, रोका इनको दौड़।
चंदेरी नृप की तरफ, बोले फिर मुखमोड़॥

शिशुपाल! हमारे प्राणों को, तुम जैसे नर क्या हर सकते।
सुर असुर आदि भी आजावें तो भी न हमें जय कर सकते॥
तुझ सम मति मंद नृपालों को, तिनके के सरिस समझता हूँ।
यदि दम हो तो आगे आवें, सबसे पुकार कर कहता हूँ॥
पूजा है मैंने माधव को, और पूजूंगा आजन्म इन्हें।
अजमायश नटवर के बलकी, करलें लड़कर संशय है जिन्हें॥
हे भूप मेरे समझाने से, तेरे न ध्यान में आता है।
इसलिये मुझे ये ज्ञात हुआ, तुझको यमराज बुलाता है॥

क्यों के हम जिसको श्रेष्ठ कहें, तू उसे अधम पद देता है ।
तो दिलजमई के लिये दुष्ट, क्यों नहीं युद्ध कर लेता है ॥
अपनी शक्ती को मूढ़ मतो इन क्षत्रिश से अजमाले ।
छल बल कौशल सब एक साथ, इन गुणनिधान को दिखलाले ॥

वचन भीष्म के श्रवणकर, गरमाया शिशुपाल ।
मृत्यु वश हो कृष्ण को, ललकारा तत्काल ॥

रे मूर्ख जनार्दन सन्मुख आ, मैं रण के लिये बुलाता हूं ।
करके अभिमान चूर्ण तेरा, पल में यम सदन पठाता हूं ॥
तू भूप नहीं है फिर कैसे, तैंने पूजा स्वीकार करी ।
है अधम तू कपटी छलिया है, हैं तेरे क्रूर विचार हरी ॥
ज्यों सोच न लायक नारी के, अंधा जिमि रूप न लख सकता ।
रे माधव इसी तरह तू भी, पूजन के योग्य न हो सकता ॥
जो दैवयोग से मिली तुझे, इसलिये अधिक इतराया है ।
बस करले ध्यान इष्ट का झट, अब वक्त तेरा नियराया है ॥
जीवन की अन्तिम हद पहुंचा, इस राजसूय के उत्सव पर ।
कुछ ही देरी में कृष्ण तेरा, नहि रहेगा नामोनिशां भूपर ॥

चेदिराज की बात सुन, उठे कृष्ण यदुवीर ।
मध्य सभा में हो खड़े, बोले वचन गंभीर ॥

भूपाल गणों ये पापात्मा, कैसे दुर्वचन सुनाता है ।
मैं तो कुछ भी नहि कहता हूं, ये सिर पर चढ़ता आता है ॥
इस खल की माता के सन्मुख, मैंने ये सौगंद खाई है ।
कर दूंगा सौ अपराध क्षमा, जाने इसको न भलाई है ॥
हो गए आज सौ से ज्यादा, इसलिये न माफ करता मैं ।
इस दुष्ट बुद्धि का इसी समय, तज दया का प्राण हरता मैं ।

हे राजाओं इन्सानों की, जिस समय मृत्यु नियराती है
तो उनकी आंख व कानों को, तत्काल नष्ट हो जाती है।
बस यही हाल शिशुपाल का है, जो भीषम ने अति समझाया
पर इस पापी कुविचारी के, चित पर न असर बिल्कुल आया।

यों कहकर श्री कृष्ण ने, अपना चक्र संभाल।
मारा चेदीराज के, कटा शीश तत्काल ॥

जैसे गिरशिखर गिरे भू पर, बस इसी तरह शिशुपाल गिरा।
ये काम खतम कर दमभर में, वापिस झटपट वो चक्र फिरा ॥
लख तेज कृष्ण का चकित हुए, उस सभा भवन के जन सारे।
गुण गाने लगे सुखी होकर, बोले इनके जयजय कारे ॥
फिर उसकी सब अंतेष्टि क्रिया, श्री धर्मराज ने करवाई।
कर राज तिलक उसके सुत को, नगरी की गद्दी दिलवाई ॥
कर यज्ञ पूर्ण फिर भूपति ने, पद सार्वभौम नृप का पाया।
हो हर्षित सभी नृपालों ने, कुन्तीनन्दन का गुण गाया ॥
फिर एक आम दर्बार हुआ, महमान सभी नजरें देकर।
इनसे सब विधि सन्मानित हो, पहुँचे अपने अपने घर पर ॥
द्रौपद. कृष्णा के पुत्रों को, निज भवन ले गये हरषाई।
अभिमन्यु सहित भद्रा को भी, ले आये घर श्री यदुराई ॥
जो दानव ने निर्माना था, वह सभा भवन अवलोकन को।
केवल दुर्योधन शकुनी संग, यहां रहा विदा कर साथिन को ॥
ओजाओं सभा भवन लख कर, जिमि दुर्योधन चकरायेगा।
"श्रीलाल" हाल वह अति सुन्दर, आगे का भाग बतायेगा ॥

॥ इति ॥

श्री कृष्णार्पणमस्तु

(पं० राधेश्यामजी की रामायण की तर्ज़ में)

अमूल्य रत्न

श्रीमद्भागवत और महाभारत

अपनावें

श्रीमद्भागवत क्या है ?

ये वेद और उपनिषदों का सारांश है, भक्ति के तत्वों का परिपूर्ण ख़ज़ाना है, परमा का द्वार है, तीनों तापों को समूल नष्ट करने वाली महौषधी है, शांति निकेतन है, धर्म ग्र है, इस कराल कलिकाल में आत्मा और परमात्मा के ऐक्य करा देने का मुख्य साधन श्रीमन्महर्षि द्वैपायन व्यासजी की उज्वल बुद्धि का ज्वलन्त उदाहरण है तथा भगवान श्रीकृ का साक्षात् प्रतिबिम्ब है।

महाभारत क्या है ?

ये मुर्दा दिलों में नया जीवन पैदा करने वाला है, सोये हुये मानव समाज को जगा वाला है, बिखरे हुये मनुष्यों को एकत्रित कर उनको सच्चे स्वधर्म का मार्ग बताने वाला है हिन्दू जाति का गौरव स्तम्भ है, प्राचीन इतिहास है, नीति शास्त्र है, धर्मग्रन्थ है औ पांचवां वेद है।

ये दोनों ग्रन्थ बहुत बड़े हैं अस्तु सर्व साधारण के हितार्थ इनके अलग अलग भा कर दिये गये हैं, जिनके नाम और दाम इस प्रकार हैं:—

श्रीमद्भागवत

सं०	नाम	सं०	नाम
१	परीक्षित शाप	११	उद्धव ब्रज यात्रा
२	कंस अत्याचार	१२	द्वारिका निर्माण
३	गोलोक दर्शन	१३	रुक्मिणी विवाह
४	कृष्ण जन्म	१४	द्वारिका बिहार
	बालकृष्ण	१५	भौमासुर बध
	पाल कृष्ण	१६	अनिरुद्ध विवाह
	न्दावनविहारी कृष्ण	१७	कृष्ण सुदामा
	गोवर्धनधारी कृष्ण	१८	वसुदेव अश्वमेध यज्ञ
९	रासविहारी कृष्ण	१९	कृष्ण गोलोक गमन
१०	कंस उद्धारी कृष्ण	२०	परीक्षित मोक्ष

उपरोक्त प्रत्येक भाग की कीमत चार आने

महाभारत

सं०	नाम	मूल्य	सं०	नाम	मूल्य
१	भीष्म प्रतिज्ञा	।)	१२	कुरुओं का गौ हरन	।–
२	पांडवों का जन्म	।)	१३	पांडवों की सलाह	।)
३	पांडवों की अस्त्र शि.	।–)	१४	कृष्ण का हास्ति. ग.	।–)
४	पांडवों पर अत्याचार	।–)	१५	युद्ध की तैयारी	।)
५	द्रौपदी स्वयंवर	।)	१६	भीष्म युद्ध	।–)
६	पांडव राज्य	।)	१७	अभिमन्यु बध	।–)
७	युधिष्ठिर का रा. सू. य.	।)	१८	जयद्रथ बध	।–)
८	द्रौपदी चीर हरण	।–)	१९	द्रोण व कर्ण बध	।–)
९	पांडवों का बनवास	।–)	२०	दुर्योधन बध	।–)
१०	कौरव राज्य	।–)	२१	युधिष्ठिर का अ. यज्ञ	।)
११	पांडवों का अ. वास	।)	२२	पांडवों का हिमा ग.	।)

* सूचना *

कथावाचक, भजनीक, बुकसेलर्स अथवा जो महाशय गान विद्या में योग्यता रखते हों, रोज़गार की तलाश में हों और इस श्रीमद्भागवत तथा महाभारत का जनता में प्रचार कर सकें तथा जो महाशय हमारी पुस्तकों के एजेण्ट होना चाहें हम से पत्र व्यवहार करें।

पता—मैनेजर-महाभारत पुस्तकालय, अजमेर.

महाभारत आठवाँ भाग

द्रौपदी चीर हरन

श्रीलाल

द्रौपदी चीर हरण

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—

महाभारत पुस्तकालय, अजमेर.

दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर में मुद्रित

द्वितीयावृत्ति १००० | सन् १९३१ / सम्वत् १९८८ | मूल्य ।)

❀ प्रार्थना ❀

त्याग तुम चरण जाउं कित श्याम।

मिलि है कहां मोहि प्रभु तुम सम, दीनबन्धु सुखधाम ॥
करहु कृपा करुणानिधि जेहि पर, सुधरें बिगड़े काम।
रंक होंहिं धनवान पलक में, दुर्बल पावें नाम ॥
भटकत फिरत खोज में सुख की, सब जग आठों याम।
जब तक शरण गहें नहिं तुम्हरी, मिले नहीं विश्राम ॥
सगुण सर्व व्यापक होकर भी, हो तुम अगुण अनाम।
करते हो सब काम जगत के, कहलाते निष्काम ॥
हानि होय नहिं कभी भक्त की, चाहे जग हो वाम।
"श्रीलाल" कृपा तुम्हरी से, होंगे पूरन काम ॥

मंगलाचरण

रक्ताम्बर धर विघ्न हर, गौरीसुत गणराज।
करना सुफल मनोर्थ प्रभु, रखना जन की लाज ॥
सृष्टि रचन, पालन, हरन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश।
बानी, रमा, उमा सुमिल, रक्षा करहु हमेश ॥
वन्दहुं व्यास विशाल बुधि, धर्म धुरंधर धीर।
महाभारत रचना करी, परम रम्य गम्भीर ॥
जासु वचन रवि जोति सम, मेटत तम अज्ञान।
वन्दहुं गुरु शुभ गुण भवन, मनुजरूप भगवान ॥

❀ ॐ ❀

नारायणं नमस्कृत्य, नरंचैव, नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततोजय, मुदीरयेत्॥

कथा प्रारम्भ

प्रात काल का था समय, शकुनी को ले साथ।
चले सभा को देखने, दुर्योधन नर नाथ॥

भूपाल युधिष्ठिर, भीमार्जुन, सहदेव नकुल को साथ में ले।
महारानी कुन्ती भी द्रौपद, पुत्री का कर निज हाथ में ले॥
अनुगामी बने सुयोधन के, अति हृति से सभा दिखाने लगे।
यहां की अद्भुत रचना लखकर, धृतराष्ट्र तनय चकराने लगे॥
निश्चय इस मंडप की शोभा, वर्णन शक्ती से बाहिर थी।
भारत की कारीगरी थी वो, बस आंखों को जो ज़ाहिर थी॥
इसका कुछ हाल आगया है, इसलिये न फिर दोहराते हैं।
क्या पड़ा था असर सुयोधन पर, इस समय यही बतलाते हैं॥
एक जगह सभा में ऐसी थी, जो नक़्श में बस तालाब के थी।
था फर्श इस तरह का जिसकी, द्युति बिल्कुल मानिंद आब के थी॥
फिर अचरज एक और भी था, कुछ बगुले थे वहां बने हुये।
ऐसे दिखते थे जनु मछली, खाने को निश्चल खड़े हुये॥
अनजान मनुष्य इस जगह आय, सोचता यही. तालाब है ये।
ये खड़े हुये जल जन्तु और. मल रहित फटिक सम आब है ये॥
ऐसी शोभा को देख देख, इन्सान मग्न हो जाते थे।
पर वे असली वस्तु है क्या. इसका न भेद कुछ पाते थे॥

हम भी होते हैं मूर्ति सरिस, श्रोताओं ये बातें पढ़कर।
कुछ ख्याल करो सोचो मन में, कैसे थे शिल्पकार यहां पर॥

दुर्योधन फिरता हुआ, आ पहुंचा इस ठौर।
इस झूंठे तालाब को, तकन लगा था ग़ौर॥

शकुनी की बुद्धी भी इसको, लखते ही फौरन चकराई।
ये हाल देख इन लोगों का, मुस्काये कुछ पांचों भाई॥
आखिर बलवीर गदाधारी, बोले भाई क्यों ठहर गये।
कुछ आगे बढ़ो अभी तुमको, हैं कई दृश्य देखने नये॥
इस तलाब पर हो चले चलो, है कोई डर और बात नहीं।
ये शिल्प का एक नमूना है, धोखे की है कुछ बात नहीं॥
लेकिन कपटी दुर्योधन को, ये सुन नहिं तनिक यकीन हुआ।
करता है भीम हंसी ये गुन, वो गुस्से में लौलीन हुआ॥

पर इसको मनमें दबा, ऊंचे वस्त्र उठाय।
चला, मगर भूमि निरख, गया तुरत खिसियाय॥

करलिये शीघ्र कपड़े नीचे, और आगे चला चकित होकर।
अवलोक काम ऐसा अद्भुत, बस सिक्का बैठ गया चित पर॥
अनमना व फिक्रमंद होकर, आगे को बढ़ता जाता था।
किस तरह ये मंडप मेरा हो, इस बात को गढ़ता जाता था॥
फिर लखा एक ऐसा मुकाम, जो के सचमुच तालाब हि था।
पर भूमि दिखाई देती थी, कुछ ऐसा अजब बनाव हि था॥

जान इसे सूखी जगह, दुर्योधन मुसकाय।
फुरती से आगे बढ़ा, गिरा नीर में आय॥

ये देख सभी खिलखिला उठे, बोली यों द्रुपद सुता बानी।
अंधे का सुत है फिर कैसे, दीखे ये भूमि है, ये पानी॥

सुन ऐसा ताना कृष्णा का, दुर्योधन जलकर खाक हुआ।
पर अद्भुत कारीगरी निरख, होगया मुग्ध अवाक हुआ॥
लेकिन मन में ये सोच लिया, इस हँसने का बदला लूंगा।
जिस तरह चनेगा इन सब को, मैं नाकों चने चबा दूंगा॥
ऐसे विचार के आते ही, इसके तन में लाली छाई।
गो यत्न किया रोकने का अति, लेकिन न चल सकी चतुराई॥
ये वीर वृकोदर ताड़ गये, अस्तू मुस्काय लगे कहने।
हे भ्रात ज़रासी बात हि में, तुम तो बस तेज लगे होने॥
देवर भाबी की हँसी नहीं, होती है हृदय जलाने को।
किन्तू आपस में कह सुनकर, कुछ हँसने और हंसाने को॥

चलो बदल लो वस्त्र सब, तजकर सोच विचार।
अब आगे को भ्रातवर, रहना अति हुशियार॥

इतना कहकर दुर्योधन को, झट सूखे कपड़े पहिराये।
फिर एक और अचरज कारक, स्थान के निकट चले आये॥
थी बनी हुई इस जगह एक, दीवार में द्वार मनहर सारी।
लेकिन वो असल न थी वरकी, नकली थी सब पचीकारी॥
धृतराष्ट्र तनय की गुस्से में, बुद्धी थी नहीं ठिकाने पर।
पाण्डवों को कैसे ज़ेर करूं, सब ध्यान था इसी निशाने पर॥
अस्तू गिन द्वार उसे, ज्यों ही, ये बढ़ा, त्यों हि सिर टकराया।
ये देख सभी हंस उठे तुरत, दुर्योधन फौरन खिसियाया॥

आगे असली द्वार था, समझ उसे दीवार।
टिटके अंध तनय वहां, करने लगे विचार॥
हंसे सभी फिर, देख ये, बोले भीम सुजान।
भाई सैर करो अभी, क्यों होते हैरान॥

आवो इस दरवाजे से चलो, कुछ और वस्तुएँ दिखलावें।
हम तो ये चाहते हैं सब विधि, बस हृदय आपका बहलावें॥
बोला झुंझलाकर कौरवपति, क्यों मेरी हंसी उड़ाते हो।
दीवार सरासर है इसको, तुम दरवाजा बतलाते हो॥

हंसी आगई भीम को, सुन बेढंगी बात।
ये लखकर जलने लगा, दुर्योधन का गात॥
कहा युधिष्ठिर से हुई, भाई सैर तमाम।
ये तिलिस्म है घर नहीं, यहां न बुधिका काम॥

हैरान हुआ लाचार हुआ, दो विदा मुझे घर जाने को।
ये सभा मुबारिक रहे तुम्हें, खाता हुँ कसम यहाँ आने की॥
यों कह इनकी आज्ञा लेकर, घर चले शीघ्र ही कुरुराई।
कर ध्यान दुर्दशा का अपनी, छाई चित पर व्याकुलताई॥
फिर भीमसेन का मुस्काना, इनका चित और जलाने लगा।
तिस पर कृष्णा का ताना तो, वेहद दर्द उपजाने लगा॥
अस्तू ये लगे सोचने किम, मैं इन सब को पामाल करूं।
किस तरह पेश आऊं इनसे, कैसे इनका बद हाल करूं॥

यही सोचते सोचते, जा पहुंचे निज धाम।
चिन्ता कुल रहने लगे, तजा ऐश आराम॥

ये चिन्ता रूपी दावानल, जिसके तन में लग जाती है।
नहिं धुवां निकलता है बाहिर, भीतर भीतर हि जलाती है॥
करती है भस्म सब मांस रक्त, हाड़ों की टट्टी रह जाती।
शव को करती है दग्ध चिता, चिन्ता जीते को खा जाती॥
इस चिन्ता ने कर दिया नष्ट, सब तेजो बल दुर्योधन का।
होगया क्षीण सारा तन इस, अग्नी से जल दुर्योधन का॥

पर कोई युक्ति मिली न उसे, पांचों पाण्डवों के नाशन की ।
मनसूबे सारे वृथा हुये, होगई इति भी आशन की ॥

तब तन तजने के लिये, हुआ तुरत तैयार ।
विष को लेकर हाथ में, करने लगा विचार ॥

सहते सहते अपमान मित्र, मेरी बुद्धी चकराई है ।
आया हूं शरण इसीसे मैं, मेरा तू सच्चा भाई है ॥
कर प्यारे सखा दया मुझ पै, जीवन को शान्त बनादे तू ।
निर्लज्ज जिन्दगी से मुझ को, अब शीघ्रहि सखा छुड़ादे तू ॥
रिपुओं का पद बढ़ता जाता, मैं नीचे गिरता जाता हूं ।
वे आदर पाते सर्व ठौर, अरु मैं फटकारें खाता हूं ॥
मेरा आत्मा इस तन रूपी, जलनिधि में टक्कर खाता है ।
तू हो केवट कर उसे अलग, तू दुखी का काम बनाता है ॥
मैं तुझको पीकर सब जग की, नजरों से अभी छिपाता हूं ।
तू मुझे छिपादे दुनियां से, हे सखा ये विनय सुनाता हूं ॥

ज्योंही विष खाने लगे, दुर्योधन नरनाथ ।
शकुनी ने आ शीघ्र ही, पकड़ा इनका हाथ ॥

सब हाल ये धूर्त जानता था, तो भी दुर्योधन से पूछा ।
क्या बात है विष क्यों खाते हो, है ये कैसा विचार नीचा ॥
तुम राजों के महाराजा हो, है किसी बात का फिक्र नहीं ।
करते हैं तुम्हरा आदर सब, अपमान का कोई जिक्र नहीं ॥

बोला दुर्योधन तुरत, अब नहिं रक्खूं प्रान ।
विष को पीकर शीघ्र ही, खोऊंगा निज जान ॥

यदि इससे मुझे हटावोगे, पानी मे जल मरजाऊंगा ।
या कुए बावड़ी में गिर कर, मैं अपने प्राण गमाऊंगा ॥

पांडवों का धन ऐश्वर्य विभव, मुझ से नहिं देखा जाता है ।
उनके गुण गानों को सुन कर, ये हृदय बहुत दुख पाता है ॥
उपहार वस्तु लेते लेते, मेरे ये दोनों हाथ थके ।
तो भी अतुलित धन भेट देत, नहिं आगन्तुक नरनाथ थके ॥
जो इन्द्र के करने लायक था, वह राजसूय यज्ञ कर डाला ।
होगये सभी राजा बस में, इस बात ने हृदय मसल डाला ॥
जब सभा भवन का चित्र मेरी, आँखों के सन्मुख आता है ।
बिजली सी दिल पर गिरती है, सब तन घबराया जाता है ॥

सभा मनोहर मणिजटित, सुन्दरता की खान ।
उसको पाने के लिये, होता मन हैरान ॥

फिर उन बातों की याद करो, जब सभा देखने धाये थे ।
उस समय मेरी वे हंसी उड़ा, मन में कैसे मुसकाये थे ॥
मझको अंधे का अंधा कह, कृष्णा ने ताना मारा था ।
बस उसी समय मैंने दिल में, सबही का हनन विचारा था ॥
पर अब मझ को विश्वास हुआ, मैं उनसे सब विधि निर्बल हूं ।
धन नहीं, वीर साथी भि नहीं, शक्ती भि नहीं अति दुर्बल हूं ॥
बस इसीलिये करता हूं मैं, इच्छा, मृत्यू के आने की ।
दिन रात जलूं, इससे उत्तम, है चाह शीघ्र मरजाने की ॥

कहा शकुनि ने बस यही, है इतनी ही बात ।
इसीलिये करते हो क्या, विष से आतम घात ॥

करते खुदकुशी जनाने ही, दुर्योधन ये सच्ची मानो ।
जिन में कुछ भी पुरुषारथ है, इससे रहते हैं पृथक जानो ॥
पांडवों से तुम जो जलते हो, ये भारी भूल तुम्हारी है ।
वे सुस्त नहीं पुरुषार्थी हैं, बल में उनकी वलिहारी है ॥

पांडवों से तुम जो जलते हो, ये भारी भूल तुम्हारी है।
वे सुस्त नहीं पुरुषार्थी हैं, बल में उनकी बलिहारी है॥
यदि तुम चाहो हो सकते हो, उनके समान वैभव वाले।
हैं बहुत तुम्हारे साथी भी, बांके बलधारी मतवाले॥
जितने तुम्हरे हैं भ्राता गण, उन सबको वशीभूत जानो।
कृप, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा, हैं सभी महारथ पहिचानो॥
फिर सोमदत्त और भीषम भी, अपना ही साथ निभावेंगे।
यदि इन्हें संग ले धावेंगे, सब भूमि विजय कर आवेंगे॥

राजसूय यज्ञ दूसरा, हम भी करें विशाल।
होवेंगे पुरुषार्थ से, क्षण में मालामाल॥

बोला दुर्योधन हर्षित हो, किसलिये सब जगह जावें हम।
क्यों नहीं एक ही धावा कर, पांडवों को वस में लावें हम॥
यदि वे वस में आजावेंगे, वस में होंगे राजा सारे।
यह सभा भी अपनी ही होगी, होंगे मेरे जय जय कारे॥

कहा शकुनि ने इस तरह, होगा कभी न काम।
उलटे उन से युद्ध कर, होवोगे बदनाम॥

भूपाल युधिष्ठिर भीमार्जुन, सहदेव, नकुल पांचों भाई।
द्रौपद, उसका सुत धृष्टद्युम्न, श्री कृष्णचन्द्र त्रिभुवन सांई॥
यदि त्रिलोकी एकत्र होय, इनसे न जीतने पावेगी।
हैं सभी महारथ महाबली, लड़ निश्चय अपयश कमावेगी॥
फिर भी जिस तरह पांडु नन्दन, हारें ये बात जानता हूँ।
है सभी तरह से यह उत्तम, तेरे सन्मुख बखानता हूँ॥

जुआ खेलने में चतुर, मुझ सम और न कोय।
छल युद्ध तज द्यूत का, युद्ध करो जिय जोय॥

पांडवों का धन ऐश्वर्य विभव, मुझ से नहिं देखा जाता है ।
उनके गुण गानों को सुन कर, ये हृदय बहुत दुख पाता है ॥
उपहार वस्तु लेते लेते, मेरे ये दोनों हाथ थके ।
तो भी अतुलित धन भेट देत, नहिं आगन्तुक नरनाथ थके ॥
जो इन्द्र के करने लायक था, वह राजसूय यज्ञ कर डाला ।
होगये सभी राजा बस में, इस बात ने हृदय मसल डाला ॥
जब सभा भवन का चित्र मेरी, आँखों के सन्मुख आता है ।
बिजली सी दिल पर गिरती है, सब तन घबराया जाता है ॥

सभा मनोहर मणिजटित, सुन्दरता की खान ।
उसको पाने के लिये, होता मन हैरान ॥

फिर उन बातों की याद करो, जब सभा देखने धाये थे ।
उस समय मेरी वे हंसी उड़ा, मन में कैसे मुस्काये थे ॥
मझको अंधे का अंधा कह, कृष्णा ने ताना मारा था ।
बस उसी समय मैंने दिल में, सबही का हनन विचारा था ॥
पर अब मुझ को विश्वास हुआ, मैं उनसे सब विधि निर्बल हूं ।
धन नहीं, वीर साथी भि नहीं, शक्ती भि नहीं अति दुर्बल हूं ॥
बस इसीलिये करता हूं मैं, इच्छा, मृत्यू के आने की ।
दिन रात जलूं, इससे उत्तम, है चाह शीघ्र मरजाने की ॥

कहा शकुनि ने बस यही, है इतनी ही बात ।
इसीलिये करते हो क्या, विष से आतम घात ॥

करते खुदकुशी जनाने ही, दुर्योधन ये सच्ची मानो ।
जिन में कुछ भी पुरुषारथ है, इससे रहते हैं पृथक जानो ॥
पांडवों से तुम जो जलते हो, ये भारी भूल तुम्हारी है ।
वे सुस्त नहीं पुरुषार्थी हैं, बल में उनकी बलिहारी है ॥

पांडवों से तुम जो जलते हो, ये भारी भूल तुम्हारी है।
वे सुस्त नहीं पुरुषार्थी हैं, बल में उनकी बलिहारी है॥
यदि तुम चाहो हो सकते हो, उनके समान वैभव वाले।
हैं बहुत तुम्हारे साथी भी, बांके बलधारी मतवाले॥
जितने तुम्हरे हैं भ्राता गण, उन सबको वशीभूत जानो।
कृप, द्रौण, कर्ण, अश्वत्थामा, हैं सभी महारथ पहिचानो॥
फिर सोमदत्त और भीषम भी, अपना ही साथ निभावेंगे।
यदि इन्हें संग ले धावेंगे, सब भूमि विजय कर आवेंगे॥

राजसूय यज्ञ दूसरा, हम भी करें विशाल।
होवेंगे पुरुषार्थ से, छण में मालामाल॥

बोला दुर्योधन हर्षित हो, किसलिये सब जगह जावें हम।
क्यों नहीं एक ही धावा कर, पांडवों को वस में लावें हम॥
यदि वे बस में आजावेंगे, बस में होंगे राजा सारे।
यह सभा भी अपनी ही होगी, होंगे मेरे जय जय कारे॥

कहा शकुनि ने इस तरह, होगा कभी न काम।
उल्टे उन से युद्ध कर, होवोगे बदनाम॥

भूपाल युधिष्ठिर भीमार्जुन, सहदेव, नकुल पांचों भाई।
द्रौपद, उसका सुत धृष्टद्युम्न, श्री कृष्णचन्द्र त्रिभुवन सांई॥
यदि त्रिलोकी एकत्र होय, इनसे न जीतने पावेगी।
हैं सभी महारथ महाबली, लड़ निश्चय अयश कमावेगी॥
फिर भी किस तरह पांडु नन्दन, हारें ये बात जानता हूँ।
है सभी तरह से वह उत्तम, तेरे सन्मुख बखानता हूँ॥

जुआ खेलने में चतुर, मुझ सम और न कोय।
यक्ष युद्ध तज द्यूत का, युद्ध करो जिय जोय॥

है इसका शोक युधिष्ठिर को, लेकिन वे निरे अनाड़ी हैं।
और हम, त्रिभुवन में, दुर्योधन, इसके अति चतुरखिलाड़ी हैं॥
जिस समय हाथ में पासे ले, हम दंगल बीच चलाते हैं।
तो काने तीन, पांच, छः, सत्त, हरदम पौ बारह आते हैं॥
इसलिये दूत को जल्द भेज, उन धर्मराज को बुलवाओ।
राजी कर मीठी बातों में, मेरे संग जूआ खिलवाओ॥
फिर लखना मेरा भी जौहर, किस तरह की कला दिखाता हूं।
दम भर में उनकी सब संपति, कर चंपत तुम्हें दिखाता हूं॥
लेकिन पहले घर में जाकर, धृतराष्ट्र से आज्ञा ले आवें।
फिर उन्हें बुला आनन्दित हो, इस द्यूत क्रिया को रचवावें॥

चले गये धृतराष्ट्र के, निकट ये दोनों धूर्त।
दोनों थे पापात्मा, भारत नाशन मूर्त॥
शकुनी ने धृतराष्ट्र से, कहा सुनो गुणवान।
दुर्योधन सुत आपका, खो बैठेगा जान॥

दिन ब दिन सूखता जाता है, क्या जाने क्या बीमारी है।
हो गया है चहरा पीत वर्ण, चिन्ताकुल दीन दुखारी है॥
है यही तुम्हारा जेष्ट पुत्र, दुख का सब कारण जानो तुम।
मैं साथ इसे लेता आया हूं, जो कहे उसे सब मानो तुम॥

कहन लगे निज पुत्र से, अंधराज भूपाल।
प्यारे सुत बतला मुझे, क्या है तुझे मलाल॥
सुनो पिताजी ध्यान धर, कहूं भेद समझाय।
धर्मराज की संपदा, मुझ से लखी न जाय॥

जब से मैंने वहां देखा है, उस अतुल द्रव्य का उजियाला।
मय दानव कृत अतिही सुन्दर, वह सभा भवन अति द्युतिवाला॥

पृथ्वीपतियों का सम्मेलन, लाखों विप्रों का गुण गाना।
सुरपति सम मान युधिष्ठिर का, सबसे उत्तम यज्ञ करवाना॥
हे! पिता ये बातें देख देख, चिन्ता की आग में जलता हूं।
मैं वैसा तो होने का नहीं, यों पछताता कर मलता हूँ॥

दुर्योधन के वचन सुन, बोल उठे नरनाह।
ठीक नहीं है गैर का, सुख लख, करना डाह॥

पर दुःख देख जो दुखी होयँ, पर सुख लख जो हर्षाते हैं।
गर सच पूछो तो वही मनुष्य, जग में सज्जन कहलाते हैं॥
बढ़ गया है भूप युधिष्ठिर यदि कुछ फिक्र नहीं वह भाई है।
उत्तम है उससे मिले रहो, सुत फूट में नहीं भलाई है॥

※ गाना ※

युधिष्ठिर का तेरे मन में हे! सुत क्यों घन खटकता है।
फन्दे में आके औरों के क्यों घर वालों से लड़ता है॥
समस्त कुरुकुल की बढ़ती उनकी बढ़ती में हे! दुर्योधन।
नष्ट होने से उस कुल के ये कुरुकुल भी बिगड़ता है॥
मजा जो संगठन में है नहीं वह फूट में मिलना।
भला फिर तू वृथा क्यों पान्डु पुत्रों से झगड़ता है॥
तुम्हारी ऐक्यता से दृढ़ है कितना आंख से देखो।
कि तुम्हारे नाम का झंडा सभी देशों में उड़ता है॥
लड़ाई में न केवल वे ही बल्कि तुम भी बिगड़ोगे।
बढ़ेंगे शत्रु नाहक क्यों तू इस झगड़े में पड़ता है॥
मिले हरदम रहो आपस में जैसे दूध में पानी।
हमारा तो यह मत है संगठन ही दुःख हरता है॥

कहा पिता जो आपने, है मुझको मंजूर।
लेकिन है अपमान का, मुझे दुःख भरपूर॥

जिस समय देखने गया सभा, तब भीम ने हंसी उड़ाई थी।
कृष्णा भी अन्धे का सुत कह, अपने मन में मुस्काई थी॥
जल में थल, थल में जल दिखला, मुझ को व्याकुल कर डाला था।
जल में गिराय, टक्कर दिलवा, यों अपना बैर निकाला था॥
कर करके सुधि अपशब्दों की, मैं दिल ही दिल में रोता हूं।
अवलम्ब न कुछ दृष्टी आता, इसलिये जान को खोता हूं॥

व्याकुल लख निज पुत्र को, विकल हुये भूपाल।
शकुनी अवसर देख कर, बोला वचन रसाल॥

धिक है ऐसे भ्राताओं को, जो हंसी उड़ायें भाई की।
अपमान करें घर में बुलाय, बलिहारी है मनुसाई की॥
ये है सब लक्ष्मी का प्रकाश, उसके बल पर इतराते हैं।
गिनते हैं निज को बहुत श्रेष्ठ, हमको त्रणवत् बतलाते हैं॥
महाराज यदि आज्ञा देवें, तो ऐसी राय बताऊं मैं।
पल भर में धर्मराज का धन, दुर्योधन को दिलवाऊं मैं॥
करवाऊं जीवन भर सेवा, आनन्द से वे आज्ञा मानें।
हमको मालिक की तरह गिनें, लड़ने की कभी नहीं ठानें॥
होवे न बुराई दुनियां में, सब कहें धर्म की बात उसे।
ऐसी है चाल, गिनों मन में, रिपुओं की उत्तम घात उसे॥

अंधराज कहने लगे, बतलावो वह चाल।
जिससे मेरे पुत्र का, मिटे दुःख जंजाल॥
बोला शकुनि हुक्म पा, वचन वो मानो कहर।
यही था भारत नाश का, घोर हलाहल ज़हर॥

श्रोताओं ऐसी कुमति ने ही, महाभारत की जड़ डाली थी।
इस जिसने देश उजाड़ दिया, ऐसी वो नागिन काली थी॥
उस राय को फिर दोहराते हैं, बोला शकुनी हे! भूप सुनो।
हम जुये के चतुर खिलाड़ी हैं, कुन्ती सुत को अनजान गिनो॥
महाराज धनुष बाणों से लड़, मैं विजय नहीं पा सकता हूं।
पर हस्तिदांत के पासों से, उनपर गालिब आ सकता हूँ॥
है पासों पर विश्वास मुझे, जय निश्चय मेरी ही होगी।
खिल जावेगी मुरझाई कली, ये रिति कुरिति नहीं होगी॥
यदि प्यारा तुम्हें सुयोधन है, ये सलाह काम में लाओ तुम।
सुत के जीवन की रचा हित, झट द्यूत युद्ध रचवाओ तुम॥

कहा भूप ने, विदुर से, कर सलाह इकबार।
जो उत्तम होगा वही, करूंगा मैं निरधार॥

बोला दुर्योधन विदुर कभी, नहिं इसकी राय बतावेंगे।
झूंठी सच्ची बातें कह के, तुम्हरा भी हृदय डिगावेंगे॥
पर याद रहे मेरी मरजी के, माफिक जो नहिं काम हुआ।
तो गिन लेना दुर्योधन का, दुनिया से काम तमाम हुआ॥
है विदुर तुम्हारा शुभचिन्तक, मैं सत्यानाश कराता हूँ।
तुम रहो सुखी उस विदुर सहित, बस मैं तो जान गमाता हूँ॥
आनन्दित हो मेरे शव को, रख चिता पै पिता जलाना तुम।
मुझ पापी के मर जाने पर, आनँद से बंसि बजाना तुम॥

बस बस हुत खामोश हो, मेरे जीवन रूप।
है आज्ञा खेलो जुआ, जुआ युधिष्ठिर भूप॥

ये सुन शकुनि को संग ले कर, चल दिया सुयोधन हर्षा कर।
धृतराष्ट्र ने झट पट खबर भेज, बुलवाया विदुरहि घबराकर॥

सुन जुआ खेलने का वर्णन, विद्वान विदुर अति चकराये ।
बस जान लिया कुल क्षय होगा, घबराते हुये चले आये ॥
आते हि भ्रात को नमन किया, बोले धृतराष्ट्र जल्द जाओ ।
पांडवों को जुआ खेलने का, न्योता दे यहां बुला लाओ ॥

कहा विदुरने बात ये, बिल्कुल नीति विरुद्ध ।
उत्तम आज्ञा दीजिये, कर विचार को शुद्ध ॥

ये जुआ है मूल कुकर्मों की, ये सर्व नाश करवाता है ।
धनधाम, धरणि यहां तक स्वधर्म, सब नष्ट भ्रष्ट हो जाता है ॥
होता है झगड़ा आपस में, क्षण भर में इज्जत जाती है ।
कहिं यहां न चंडी चेत उठे, इस भय से फटती छाती है ॥
हे ! विदुर ये मेरा हुक्म नहीं, होनी मुझ को बे बस करती ।
ये हरि इच्छा है मिटे नहीं, जैसा चाहती वैसा करती ॥
होगया दैव प्रतिकूल यदि, फिर मेरी क्या चल सकती है ।
यदि वो अनुकूल है फिर कैसे, कुल की हानि हो सकती है ॥

अस्तु चले जावो तुरत, इन्द्रप्रस्थ की ओर ।
पांचों को संदेश कह, ले आवो यहि ठोर ॥

श्री विदुर गये अनइच्छा से, पांडवों को यहां लाने के लिये ।
उस तरफ भूप ने हुक्म दिया, एक मंडप बनवाने के लिये ॥
कुछ दिवस बाद ले कुन्ती और, कृष्णा को पांडव आ पहुंचे ।
हो खुशी सुयोधन, कर्ण, शकुनि, इनसे मिलने को जा पहुंचे ॥
पांचों इन लोगों से मिलकर, फिर श्री भीषम के धाम गये ।
कृप, द्रोण आदि को कर प्रणाम, धृतराष्ट्र के जाकर पांव गहे ॥
कुन्ती, कृष्णा रनवास गई, गंधारी मिल कर हर्षाई ।
फिर रात जान आनंद सहित, सोगये तहां पांचों भाई ॥

प्रात समय सब भूप गण, गये सभा के बीच।
नियत हुआ था जिस जगह, खेल जुऐ का नीच ॥
होगये उपस्थित जन सारे, तब बोला शकुनि युधिष्ठिर से।
आवो सन्मुख आकर बैठो, मन बहलावें कुछ चौसर से ॥
आनन्द बढ़े इसलिए भूप, कुछ बाजी भी रखते जावें।
है हार जीत का फिक्र नहीं, इच्छा है मन को बहलावें ॥

कहा युधिष्ठिर राज ने, जुआ नाश का मूल।
जन समाज अरु धर्म के, सर्व भांति प्रतिकूल ॥

होती है फूट पैदा इससे, सब सुमति नाश हो जाती है।
उत्तम बुद्धी हो नष्ट भ्रष्ट, अधरम जल में बह जाती है ॥
होगये तबाह अच्छे अच्छे, हजारों ने विष पान किया।
बहुतेरे डूबे, भरे कई, इसने सब का नुकसान किया ॥
है वीरों का कर्तव्य यही, रण में जाकर संग्राम करें।
या खेलें उत्तम खेल कोई, शुभ काम से उज्ज्वल नाम करें ॥
ये जुआ प्रशंसा योग्य नहीं, इसमें अपमान सरासर है।
यदि और दूसरी वस्तु होय, तो मन बहलाना बेहतर है ॥

हो निराश सा शकुनि तब, बोला युक्ति विचार।
साधारण सी बात में, क्यों करते इनकार ॥

इन हस्तिदांत के पासों से, जब तुम इतने घबराते हो।
केवल घंटे दो घंटे तक, खेलते हुये दहलाते हो ॥
फिर क्या पुरुषार्थ दिखावोगे, लोहे के शस्त्रों को लख कर।
मैं जान गया तुम कायर हो, हो खुशी लौट जावो घर पर ॥

सुनी बात करती हुई, शकुनी की गुफ्तार।
भावी वश हो नरने, कहा तुरत ललकार ॥

कायर कम हिम्मत तुम होगे, क्यों वृथाहि मुझे डराते हो।
आओ में तुम्हरे संग खेलूं, बोलो क्या दांव लगाते हो॥
सब जगह भाग्य फल दायक है, देखूं क्या रंग दिखाता है।
कुछ लक्ष्मी प्राप्त कराता है, या निर्धन मुझे बनाता है॥
बोला दुर्योधन हर्षित हो, धन तो मैं स्वयम् लगाऊंगा।
लेकिन भाई इन पासों को, मैं शकुनी से फिकवाऊंगा॥
यों कह कुछ हीरों पन्नों को, इक दांव पै उसने लगादिया।
इस ओर कुन्ति के सुत ने भी, कुछ द्रव्य दांव पर जमादिया॥
पांडू नन्दन ने पासे ले, सीधे स्वभाव से डाल दिये।
फिर शकुनी ने चालाकी से, पासों को तुरत उछाल दिये॥
आये थे तीन काने नृप के, शकुनी के पौ बारह आये।
लख हार पान्डु के नन्दन की, दुर्योधन मन में मुसकाये॥

गुस्से से बेज़ार हो, फेर लगाया दांव।
कपट चाल से शकुनि का, रहा फेर भी नांव॥

शकुनी की चालाकी लख कर कुन्ती सुत को गुस्सा आया।
बोले बस खेल बन्द करदो, मन तेरा पाप में ललचाया॥
शकुनी बोला जो हारता है, उसको अति गुस्सा आता है।
तब धर्म पूर्वक खेल को भी, वह कपट चाल बतलाता है॥

कहा कर्ण ने पान्डु सुत, क्यों होते बेताब।
शान्ति पूर्वक खेलिये, जीतेंगे अब आप॥

एक आदि दांव के हारते ही, तुम व्याकुल हो घबराने लगे।
क्या धन का सोच हुआ ज्यादा, इसलिये आप दुख पाने लगे॥
कुछ फिक्र न तुम करना राजन्, मत शरमाना इस दंगल में।
जितना धन चहिये ले लेना, मैं शामिल हूं तुव मंगल में॥

यह ताना सुन फिर बैठ गये, अरु सभा में पासे पड़ने लगे ।
छः, पांच, सात, नो, दो, ग्यारह, बारह अठ्ठारह आने लगे ॥
जो द्रव्य युधिष्ठिर रखते थे, वह शकुनि जीतना जाता था ।
सो गया भाग्य धीरे धीरे, सब द्रव्य छीजता जाता था ॥
मणियों के हार, विशाल कोष, बारी बारी से लगा दिये ।
घोड़े, रथ, रथी, दास, दासी, हाथी भि जुए में गवां दिये ॥
फिर अपनी विजयी सेना को, धर दांव पै हार गये राजा ।
रैयत को हार राज हारा, पर उठे न तो भी महाराजा ॥
आखिर यहां तक नौबत आई, वह सभा दांव पर धर दीनी ।
जो बनाई थी मय दानव ने, अरु जुऐ के अर्पण कर दीनी ॥
ये सहज स्वभाव खेलते थे, शकुनी निज चाल चलाता था ।
यह देख विदुर का गुस्से से, सब शरीर भुनता जाता था ॥

सह न सके तब हो खड़े, बोले यों ललकार ।
धृतराष्ट्र इस खेल पर, है धिक्कार सो बार ॥

क्यों ऐसा बुरा हुक्म देकर, निज सत्यानाश कराते हो ।
इस कपट चाल से धन हरकर, हरषाते हो पुलकाते हो ॥
ये अब तक शान्त सभी भाई, गुस्सा आने ही वाला है ।
जिसमें यह सारे कौरव कुल, दुनियां से जाने वाला है ॥
अब भी है समय मान जावो, इस जुऐ को बन्द करा डालो ।
और धर्मराज का सारा धन, इज्जत से वापिस दे डालो ॥
क्या भूल गये उन बातों को, जिस समय सुयोधन जाया था ।
"होगा यह कुल का क्षय कारक", यह मैंने तुम्हें बताया था ॥
यह समय अब आ पहुँचा राजन्, भारत की लाज बचालो तुम ।
ऐसे पापी बालक को अब, इस पुर से बाहर निकालो तुम ॥

चाहे ये सब बातें तुमको, मानिन्द तीर के लग जावें।
पर धर्म हमारा तो यह है, सब सच्ची बातें कह जावें॥

धृतराष्ट्र तो चुप रहे, दुर्योधन रिसियाय।
बोला लोचन लाल कर, सुनो विदुर चितलाय॥

मैं खूब जानता हूं तुमको, पांडवों के तुम हितकारी हो।
कहते हो हमको वही बात, जिससे हम सब की ख़्वारी हो॥
तुम कुछ तो लाज करो मन में, मेरी नहिं, मेरे टुकड़ों को।
हे ! नीच बड़ाई क्यों करते, हर दम रिपुओं के मुखड़ों को॥
निर्लज! मेरा अन धन खा कर, यह अपनी देह फुलाई है।
फिर भी तू नमक हराम बना, क्यों बुद्धि तेरी भरमाई है॥
जा चला जा, उठ जा; भागजा तू, रहने दे धर्मोपदेश तेरा।
होती है हद क्षमा की भी, बस ध्यान में रख आदेश मेरा॥
कर जबां बन्द खामोश बैठ, वरना सब ज्ञान भुला दूंगा।
मैं यहां का शासन कर्त्ता हूं, सब धूल में मान मिला दूंगा॥

कहा विदुर ने मौन हो, दुर्बुद्धी दुख मूल।
कपट चाल से जीत कर, फूल रहा ज्यों फूल॥

अभिमानी तुझको ज्ञान नहीं, है खिज़ा शीघ्र आने वाली।
इस फूल के माफिक मुखड़े की, लाली है अब जाने वाली॥
जैसे थोड़े जल का तलाव, गर्मी में सूखता जाता है।
बस इसी तरह धीरे धीरे, तव काल भी आता जाता है॥
शुभचिन्तक हूं कौरव कुल का, सब इसी बात से सहता हूं।
अच्छा व बुरा जो हूं सो हूं, पर तेरे भले की कहता हूं॥
अब भी है समय मानजा तू, क्यों बिना मौत के मरता है।
सर्पों से खेल रहा है मूर्ख, डसने का डर नहिं करता है॥

कहा मान, इस खेल को, अब भी करदे बन्द ।
वरना सब नस जायगा, तेरा सुख आनन्द ॥

सच है जब बुरी घड़ी आती, बुद्धी उलटी हो जाती है ।
उस समय ऊंच शिक्षा भि मिले, पर असर नहीं दिखलाती है ॥
भावी वश सब खामोश रहे, उपदेश विदुर का गया वृथा ।
तब हो हताश ये बैठ गये, सोचा कुल का क्षय हुआ यथा ॥

धर्म-पुत्र का इस समय, था जूये में ध्यान ।
क्या क्या बातें हो गईं, किया नहीं कुछ कान ॥

ये उत्तम अवसर देख शकुनि, बोला अब भी धन रखते हो ।
या भिक्षुक हुये जुऐ में तुम, क्या खेल बंद अब करते हो ॥
मैं जान गया मेरे सन्मुख, तुम अब बाजी न लगाओगे ।
यह सिद्ध हस्तता देख मेरी, धन धरते दहशत खाओगे ॥
सुन वचन क्रुद्ध हो धर्म पुत्र, भ्राताओं के गहने लेकर ।
बोले ये दांव लगाता हूं, झट पट डालो पासे भूपर ॥

फैंके पासे शकुनि ने, छल से उन्हें संभाल ।
कहा जीत मेरी हुई, धरो दूसरा माल ॥

बोले कुन्ती सुत, कमल नेत्र, सकुमार अतुल शोभा वाले ।
तलवार युद्ध में सिद्ध हस्त, तरुणांग वृषभ कंधे वाले ॥
ऐसे जो नकुल हैं उनका मैं, हे ! शकुनी दांव लगाता हूं ।
देखूं पासे क्या पड़ते हैं, अपनी किस्मत अजमाता हूं ॥
पर सुन शकुनी ने पासे ले, चलाकी से झट डार दिये ।
बोला मैं जीता अरु तुमने, निज भ्रात नकुल को हारदिये ॥
अच्छा अबके सहदेव भ्रात, विद्वान, चतुर, कोविद, ज्ञानी ।
माद्री के सुत दोनों पांडव, रननीति विशारद गुणखानी ॥

बाजी पर रखने के अयोग्य, तो भी मैं दांव पे रखता हूं।
ले, करमें पासे, फेंक शीघ्र, अपनी तकदीर परखता हूं॥

शकुनी ने पासे चले, गये युधिष्ठिर हार।
अति उत्तेजित होय कर, फिर बोले ललकार॥

है! मूढ़ अभी धनवान हुँ मैं, ये मत समझे डर जाऊंगा।
जब यहां तक नौबत बीत चुकी, तो फिर अब क्यों दहलाऊंगा॥
ले सुन, गांडीव धनुष धारी, जो रण में अजय कहाते हैं।
संग्राम में नर की क्या गिनती, निश्चर तक भी थर्राते हैं॥
पाण्डवों की नौका रूप हैं जो, जिसने जीता सारा उत्तर।
वे पार्थ दांव पर धरे मैंने, ले फेंक दे पासे भूमि पर॥

समय बिगड़ता जिस समय, बुद्धि होय विपरीत।
अशुभ बात शुभसी लगे, रीति होय अनरीत॥

कुन्ती-नन्दन को मालुम था, शकुनी धोके बाजी करता।
चलता है पासे छलसे वो, बिल्कुल अधर्म से धन हरता॥
फिर भी उसकी परवाह न कर, ये दांव पै दांव लगाते थे।
हर बार हारते थे तो भी, उत्तेजित होते जाते थे॥
समय की सब लीला थी, यह भारत गिरना चाहता था।
हांनी वश सारे मूर्ख हुये, कोई नहिं खेल हटाता था॥
सहदेव नकुल को हार दिया, धर दिया दांव पै अर्जुन को।
हा! भाग्य, उसे भी गमां दिया, देदिया भेट दुर्योधन को॥

बोला शकुनी फेर भी, हुई तुम्हारी हार।
वीर वृकोदर को धरो, बाजी पर इस बार॥

था होश नहीं कुन्ती सुत को, भावी वश ज्ञान भुलाय दिया।
उस नीच शकुनि के कहे में आ, झट भीम का दांव लगाय दिया॥

जहाँ कपट के पासे चलते थे, पापियों की ज्यादा गिनती थी ।
जहँ धर्म न पूछा जाता था, मर्यादा मारी फिरती थी ॥
उस सभा में भूप युधिष्ठिर ने, कैसा अमुल्य धन लगा दिया ।
जिसका खो जाना निश्चय था, तो भी उसका न खयाल किया ॥
आखिर जिसका भय था मनमें, वह बात नेत्र सन्मुख आई ।
पासों को फैंका शकुनी ने, खो दिया युधिष्ठिर ने भाई ॥
रंग बिगड़ गया मुंह उतर गया, हैरान और लाचार हुये ।
आगये पसीने मस्तक पर, ये दृश्य देख बेजार हुये ॥
पर तो भी आंखें खुली नहीं, बोले ये अन्तिम बाजी है ।
मैं स्वयम् दांव पर आता हूँ, देखूं किस्मत क्या राजी है ॥
फेंको पासा बे फिक्री से, है प्रण आखिर तक खेलूंगा ।
जो हार गया कुछ बात नहीं, यदि जीता तो सब ले लूंगा ॥
क्या देर थी पासा फिकने में, सुन वचन कहा ये डाल दिया ।
लो धर्मराज आंखे खोलो, तुमको भी अपना माल किया ॥

क्या मैं अब की बार भी, हारा शकुनी वीर ।
बस अब खेल खतम करो, पलट गई तकदीर ॥

गाना (सोहनी)

क्या खबर थी हे ! प्रभू ऐसा समय भी आवेगा ।
जिसमें बस हो भाग्य मेरा एक दम सो जावेगा ॥
द्रव्य चंचल है मुझे इसकी सुधी बिल्कुल न थी ।
चार दिन ही घर उजेला बाद में तम छावेगा ॥
दिन हमेशा एक से रहते नहीं संसार में ।
आज जो हँसता है कल वह हो दुखी पछतावेगा ॥
देखते थे जिसको इज्जत से सभी दुनियां के भूप ।
हाय अब दुर्भाग्य उसको पांव से ठुकरावेगा ॥

पालता था नित प्रति लाखों गऊ विप्रों को जो ।
अब वह कौरव वंश का इक तुच्छ दास कहायेगा ॥
पर मेरे सदृश्य ज्वारी के लिये ये ठीक है ।
काम जो जैसा करेगा फल वो वैसा पायेगा ॥

मैं तो कर्मों से हुआ, कौरव कुल-का दास ।
पर भ्राताओं का भि हा, हुआ मुझी से नास ॥

कोसो भाई मुझको कोसो, मैंने ही दास बनाया है ।
मैं ही हूं सब अनर्थ की जड़, मैंने ही नाश कराया है ॥
तोड़ो इन हाथों को तोड़ो, पासा जो फेंकते थके नहीं ।
अरु फोड़ो इन नेत्रों को भी, जो अधर्म रत थे हटे नहीं ॥

पर चारों बैठे रहे, कर के नीचे नैन ।
देख उन्हें चुप कुन्ति सुत, फिर बोले यों बैन ॥
भ्राताओं क्यों शान्त हो, हैं जबान क्यों बन्द ।
क्या मुझ से मतिमन्द पर, रखते श्रद्धा अन्ध ॥

अच्छा ये तुम्हारी मर्जी है, कर कृपा मेरी आज्ञा मानो ।
बस आज से आगे अपने को, दुर्योधन का सेवक जानो ॥
चाहे ये तुम्हारी कदर करे, या तुम पर अत्याचार करे ।
मारे, फटकारे, ललकारे, या बन्धु भाव से प्यार करे ॥
भ्राताओं शान्ति पूर्वक तुम, सारे संकट सहते रहना ।
करना नित सुमिरन ईश्वर का, पर धर्म नहीं जाने देना ॥
कुन्ती-नन्दन की बातें सुन, रोते थे वृद्ध पुरुष सारे ।
शकुनी, दुर्योधन, दुशासन, अरु कर्ण, ये हंसते थे सारे ॥

बोला शकुनी पांडव-नन्दन, क्यों अभी से तुम घबराते हो ।
है अतुल द्रव्य फिर काहे को, दीनों सम बचन सुनाते हो ॥
अब के उसकी बाजी धर दो, यदि जीत गये सब पावोगे ।
जो हारे तो दुर्योधन के, निश्चय तुम दास कहावोगे ॥

कहा युधिष्ठिर ने वृथा, क्यों करते लाचार ।
राज पाट धन जन सभी, गया जुये में हार ॥

अब रही कौनसी वस्तु जिसे, बाजी पर यहां लगाऊं मैं ।
यदि तुम्हें याद हो बतलाओ, जिस धन से खेल रचाऊं मैं ॥
बोला शकुनी कुछ ध्यान भी है, उस प्राण प्रिया पंचाली का ।
इस समय में उसी अतुल धन को, समझो जेवर कंगाली का ॥
धरदो राजन अबके धरदो, निज दांव पै उस भारी धन को ।
यदि जीते सब मिल जायेगा, मत विकल करो अपने मन को ॥

कहा भूपने ठीक है, नहीं मुझे इन्कार ।
द्रुपद सुत को दांव पर, रखता हूं इस बार ॥

सुनते ही बचन वृद्ध सारे, कर मल मल कर पछताने लगे ।
कुन्ती-नन्दन को बार बार, धिक्कार सभी फरमाने लगे ॥
होगई सभा छिन में व्याकुल, राजा गण शोर मचाते थे ।
आगया पसीना भीषम को, हो द्रोण दुखी घबराते थे ॥
विद्वान विदुर बेहोश हुये, भीमार्जुन पत्थर की मूरत ।
सहदेव नकुल की पल भर में, होगई तुरत रोनी सूरत ॥
धृतराष्ट्र खुशी हो बार बार, "क्या जीते" ये पूछने लगे ।
हर्षित कर्ण व दुर्योधन, नयनों से आंसू गिरने लगे ॥
इतने में शकुनी ने कुछ हँ, दे दिया सुनाई वह मारा ।
दुर्योधन खुश हो उछल पड़ा, मैं जीता कुन्ती-सुत हारा ॥

कहा सुयोधन ने विदुर, जाओ झट रनवास ।
लाओ कृष्णा को तुरत, यहां हमारे पास ॥

कहना बद किस्मत मूरत से, दुर्योधन ने बुलवाया है ।
यहां आय सभा में झाड़ू दे, ऐसा ही हुक्म सुनाया है ॥
यह भी उसको समझा देना, तू हुई है अब मेरी दासी ।
यदि हुक्म नहीं मानेगी तू, होगी तेरी सत्यानासी ।

दुर्योधन, बस शान्त हो, मत कह कड़ुवे बैन ।
जान पड़ा यमराज खुद, आया तुझको लैन ॥

रे ! मूढ़ हिरन के सदृष्य हो, सिंहों को क्रोधित करता है ।
जल की मछली बन मगरों से, लड़ बिना मौत क्यों मरता है ॥
तू नहीं जानता मन्द बुद्धि, इन बातों का क्या फल होगा ।
यदि ज्वाला चेत उठी तो फिर, करना धरना निष्फल होगा ॥
अब मौन साध चुपचाप बैठ, होगया वह जो कुछ होना था ।
ये रंक हुये, तू शाह बना, इनको दुख, तुझको हंसना था ॥
हे पापात्मा ! अब जान पड़ा, तेरे खोटे दिन आये हैं ।
इसही के बस हो यहां तैंने, ये कड़ुवे वाक्य सुनाये हैं ॥
मत बुला द्रौपदी को यहां पर, यदि बुलवाया पछतायेगा ।
ये सभा खून से तर होगी, तू जीते हाथ उठायेगा ॥

※ गाना ※

याद रख अबला को कलपा कर न तू कल पायेगा ।
इन कुकर्मों का नतीजा अब नहीं कल पायेगा ॥
हो दुखी जिस दम वो दुखिया जोर से चिल्लायेगी ।
थर थरा जायेगी धरती आसमां चकरायेगा ॥

दीन की बानी को सुनते ही वो दीनों का प्रभू ।
हाथ में अपने सुदर्शन को घुमाता आयेगा ॥
बैठ जा चुपचाप होकर मत बुला उसको यहां ।
वरना आपस में अभी झगड़ा खड़ा हो जायेगा ॥

परछांई जब काल की, पड़े शीश पर आय ।
बुद्धी बल सब नष्ट हो, उलटी बात सुहाय ॥

इससे बस हो दुर्योधन ने, कर क्रोध विदुर को धिक्कारा ।
एक सूत पुत्र को बुलवाकर, उसको ये हाल कहा सारा ॥
फिर बोला तुम जल्दी जाकर, उस द्रुपद-सुता को ले आवो ।
मत दहलाओ पांडवों से तुम, जल्दी जावो जल्दी जावो ॥

चला गया ये हुक्म पा, सूत पुत्र दुख पाय ।
कृष्णा से कहने लगा, रोनी शकल बनाय ॥

महारानी मुझे क्षमा करना, मैं परवस हो यहां आया हूं ।
कर चित थिर पर बात सुनो, जो कुछ सन्देशा लाया हूं ॥
पर ये भय दायक बातें सुन, अपने मन में धीरज धरना ।
इस दुःख समय में हे ! देवी, दुख-भंजन का सुमिरन करना ॥
कुन्ती सुत ने उत्तेजित हो सब धन जूए में हार दिया ।
बंधुओं सहित खुद को हारा, तुमको भी फेर बिसार दिया ॥
दुर्योधन सब कुछ जीत गया, वो सभा में तुम्हें बुलाता है ।
ये बातें कहते हुये देवि मेरा तो सिर चकराता है ॥
यह सुनकर कृष्णा दुखित हुई, फिर कहा सभा में जावो तुम ।
एक बात पूछ मम स्वामी से, उत्तर ले झटपट आवो तुम ॥
मम ओर से हाथ जोड़ के तुम, कहना ये वचन उचारे हैं ।
वे पहिले निज को हार गये, या मुझे हार फिर हारे हैं ॥

सूत पुत्र ये हुक्म पा, गया सभा के बीच ।
जहां बैठे थे पान्डु-सुत दुख से आंखें मीच ॥

एक दफे, दो दफे, चार दफे, कई दफे प्रश्न को दोहराया।
हो रहे थे बेसुध कुन्ती सुत, इसलिये न कुछ उत्तर पाया॥
ये देख सुयोधन उचल उठा, बोला, नालायक जल्दी जा।
कहना, जो कुछ कहना चाहती, वो आकर यहां सभा में सुना॥
सूत पुत्र फिर चल दिया, कहा हाल सब जाय।
रानी, दुर्योधन तुम्हें, रहे वहीं बुलवाय॥
बोली कृष्णा आंसू भर के, कह देना रजस्वला हूं मैं।
इसलिये सुयोधन क्षमा करें, अति दिन दुखित अबला हूँ मैं॥
सो गया भाग्य हम लोगों का, फिर इज्जत कहां रही भाई।
कहना तत्पर हूँ करने को, धर्मोचित सारी सेवकाई॥
दुर्योधन के पास जा, सुना दिया सब हाल।
सुनकर वो क्रोधित हुआ, बोला आंख निकाल॥
बेशर्म, नहीं सुनना चाहता, सब बात उसकी बेढंगी है।
जा बाल पकड़ के लिया यहां, कपड़ों से हो या नंगी है॥
पत्थर की तरह खड़ा है क्यों, हे! मूढ़ सोच क्यों करता है।
क्या भूप युधिष्ठिर, भीमार्जुन, सहदेव नकुल से डरता है॥
रे! कायर भय क्यों खाता है, ये तो हैं सब मुझ से डरते।
जो तुझ पर कड़ी दृष्टि फैंके, ऐसी हिम्मत नहिं कर सकते॥
मारो या छोड़ो मुझे, दुर्योधन सरकार।
नीच काम के वास्ते, नहीं हूँ मैं तैयार॥
तुमसे, इनसे, दुनियां से क्या, देवों तक से नहिं डरता हूं।
लेकिन उस सृष्टी करता का, भय हर दम मन में करता हूँ॥
चंचल माया के बस होकर, ये पाप कर्म करवाते हो।
एक पतिव्रता की इज्जत को, यहां सभा में बुला डुबाते हो॥
परवा नहिं मुझपर तीर चलें, हो जांय वार तलवारों के।
इस तन की सारी खाल खिचे, अथवा टुकड़े हों बारों के॥

लेकिन जबतक दम में दम है, हरगिज न अधर्म कमाऊंगा।
इन हाथों से महारानी को, नहिं कभी सभा में लाऊंगा॥

❀ गाना ❀

जान खो दूंगा मगर धर्म गमाऊंगा नहीं।
पाप को स्वप्न में भी पास बुलाऊंगा नहीं॥
चाहे जग मुझसे फिरे आप भी आंखें बदलें।
तुच्छ जीवन के लिये अयश कमाऊंगा नहीं॥
द्रौपदी देवि है, अबला है, सती नारी है।
उसके तन पै मैं कभी हाथ लगाऊंगा नहीं॥
आप को हक है मुझे मारो या छोड़ो राजन्।
नीच कामों के लिये पांव बढ़ाऊंगा नहीं॥

सुनकर बातें दूत की, हर्षी सभा तमाम।
किन्तु रही चुपचाप ही, देख समय को वाम॥
तब दुःशासन की तरफ देख, बोला दुर्योधन तुम जाओ।
पाण्डु पुत्रों से डरो नहीं, झट पकड़ द्रौपदी को लाओ॥
सुन आज्ञा दुःशासन उठकर, पंचाली को लाने को चला।
इस तरफ सुयोधन मुस्काकर, पांडवों को और जलाने लगा॥
भीमार्जुन खामोश क्यों, खोलो ज़रा ज़बान।
चहरे क्यों पीले पड़े, अक्ल हुई हैरान॥
अब भी तो हंसी उड़ाओ ना, जैसी उस समय उड़ाई थी।
कृष्णा मुझ को अंधा कहकर, किस खूबी से मुसकाई थी॥
जो राज-सूय-यज्ञ पूरा कर, मद में मदमाते फिरते थे।
दो दिन की दौलत के बल पर, नहिं कदर किसी की करते थे॥
अब समय मेरा आ पहुंचा है, हंसने का मज़ा चखाऊंगा।
उस द्रुपद-नंदिनी कृष्णा को, नंगी कर यहां नचाऊंगा॥

आराम कर चुके मखमल में, अब ढेलों पर सोना होगा।
आज्ञाकारी नौकर बनकर, मेरे कपड़े धोना होगा॥
कोई बन के मेरा सईस, अब करेगा साफ तबेलों को।
कोई आवश्यक चीजों से, भर ले जावेगा ठेलों को॥
दरबार में कोई खड़ा होकर, सन्मान करे दुर्योधन का।
कोई चरणों में शीश झुका, गुणगान करे दुर्योधन का॥
इस तरह जलाता था इनको, पापात्मा कड़वी बानी से।
उस तरफ दुशासन ने जाकर, ये कहा द्रौपदी रानी से॥

दासी दासी जल्द चल, आ पहुंचा फरमान।
वहीं बुलाते हैं तुझे, दुर्योधन गुणखान॥

अब क्या सोचे है खड़ी खड़ी, तेरा पति पूरा ज्वारी है।
वो हार गया जुए में तुझे, अब दासी हुई हमारी है॥
कुल्टा जल्दी से सभा में चल, वरना अब हाथ लगाऊंगा।
तेरे घुंघराले बाल पकड़, खींचता हुआ ले जाऊंगा॥
दुःशासन के अंगारे सम, लख लाल नेत्र कुछ भय खाकर।
वह द्रुपद-नंदिनी भाग चली, कुछ क्रोधित हो कुछ शरमाकर॥
लेकिन इस पापी कुत्ते ने, झट दौड़ बीच में पकड़ लिया।
काले चमकीले बालों को, दोनों हाथों से जकड़ लिया॥
वे बाल जो यज्ञ में विप्रों ने, मन्त्रों के जल से सींचे थे।
धृतराष्ट्र तनय दुःशासन ने, हो निडर वे ही कच खींचे थे॥
धर धीर द्रौपदी कहन लगी, देवर मैं मासिक धर्म से हूं।
मत लेजा मुझे अभी वहां पर, इस योग्य नहीं हूं शर्म से हूं॥

पापी ने इस बात पर, दिया न जब कुछ ध्यान।
तब कृष्णा कहने लगी, अपनी भृकुटी तान॥

हे! नरक के कीड़े पापात्मा, क्यों अपनी मृत्यु बुलाई है।
क्यों छेड़ रहा सिंहनी को तू, सिंहों की याद भुलाई है॥

रख याद अगर इन्द्रादिक भी, तेरी रक्षा को आवेंगे।
तो भी निश्चय वे आर्य-पुत्र, तुझको यम लोक पठावेंगे॥
कह दिया मैं मासिक धर्म से हूं, तो भी ले जाना चाहता है।
परदे वाली अपलाओं को, दुष्टात्मा बल दिखलाता है॥

दुःशासन बोला चहे, हो तू वस्त्र विहीन।
छोड़ूंगा हरगिज नहीं, मत कर तेरह तीन॥

यों कह घसीटना शुरू किया, निर्दयी दया नहिं लाता था।
सुकुमार नवल तन कृष्णा का, खा रगड़े छिलता जाता था॥
हैरान हुई लाचार हुई, खुल गये बाल सारे सरके।
अति दीन हुई छवि छीन हुई, आंखों से शोक आंसू ढरके॥
तन हुआ पसीनों में लथपथ, आंखों में अंधेरा छाय गया।
अपनी दुर्गति को देख देख, सारा मस्तक चकराय गया॥
ये हाथ छुड़ाना चाहती थी, वह पकड़ हाथ को मोड़ता था।
ये तान सम्भालती थी जिसदम, वह वेग पूर्वक दौड़ता था॥
झक झोरी में कमजोरी ने, आ दबाया तब ये चिल्लाई।
किस्मत पर शोक प्रगट करती, दुर्दशा ग्रस्त हो वहां आई॥
जिस समय ये सभा भवन पहुंची, हरसू सन्नाटा छाया था।
कोई रोता था और कोई, बेसुध सा बैठा पाया था॥
कुछ पापात्मा ऐसे भी थे, जो मन्द मन्द मुसकाते थे।
करते थे इशारे आपस में, हो खुसी आंख मटकाते थे॥
पाण्डवों की जो कुछ हालत थी, उसका बतलाना मुश्किल है।
उनके दुःखों से इस दुख के, कोई दुख नहीं मुकाबिल है॥
मुख छिपे थे दोनों हाथों से, गर्दन थी नीचे झुकी हुई।
टप टप गिरती थी अश्रु बूंद, दुखसे थी काया फुकी हुई॥
वहां आ दुर्योधन आज्ञा से, दुःशासन चीर हटाने लगा।
इस दुख से द्रुपद-नन्दिनी का, सारा शरीर थर्राने लगा॥

बोली अति ही बिकल हो, क्यों मम लाज गंवाय ।
रे! पापी अब छोड़ दे, मुझको मत कलपाय ॥
तू करता है भारी अधर्म, ये बैठे सबही तकते हैं ।
इससे मैं समझी ये सारे, तेरी हां में हां करते हैं ॥
भोलो चत्री पुत्रों बोलो, ये कैसा धर्म तुम्हारा है ।
होता है अत्याचार यहां, किसलिये मौन फिर धारा है ॥
सुनते नहिं अबला की पुकार, क्या रुई दबाई कानों में ।
या दुर्योधन के गुस्से ने, ठोकी है कील जबानों में ॥
धिक्कार तुम्हें, तुम्हरे कुल को, धिक्कार है बाप अरु माई को ।
सब वीर भाव होगया नष्ट, ओढ़ी है कायरताई को ॥
बस आज मुझे मालूम हुआ, चत्रियों ने धर्म गंवाया है ।
तब ये निश्चय है भारत की, किस्मत ने पलटा खाया है ॥
हे! द्रौण गुरू बैठे हो तुम, क्या धनुष तुम्हारे पास नहीं ।
अश्वत्थामा तुमसे भी क्या, मैं करूं मदद की आश नहीं ॥
हे! कृपाचार्य आचार्य हो तुम, क्या तुम भी बोल नहीं सकते ।
हे! भीष्म मेरी रचा के लिये, तुम भी मुंह खोल नहीं सकते ॥
धर्म पुत्र तुम भी नहीं, सुनते मोर पुकार ।
क्या दासी से होगया, काई पाप तुम्हार ॥
हे! वीर गदाधर कुन्ती-सुत, कहां वो वीरता गंवाई है ।
क्या तच्चक सूंघ गया तुमको, क्या गदा खिज़ा में आई है ॥
गांडीव धनुर्धारी प्रीतम, ये बल कब का रख छोड़ा है ।
हा! नेत्र खोल कर देखो तो, पापी ने हृदय तोड़ा है ॥
माद्री पुत्रों बैठे हो तुम, लेकिन कहां ध्यान तुम्हारा है ।
क्या तलवारें खागई जंग, बस डूबा जहाज हमारा है ॥
अच्छा तुम शान्त हो शान्त रहो, पर इतना कहो सभा वालो ।
एक प्रश्न जो मैंने पूछा था, उसका तो उत्तर दे डालो ॥

को सुनो मैं फिर दोहराती हूँ, पति मुझको पहले हारा है।
या पहिले खुद को हार फेर, जूये में मुझे बिसारा है॥
द्रुपद सुता की बात सुन, रहे सभी खामोश।
अस्तू फिर वो कह उठी, करके मन में रोष॥

※ गाना ※

हे ! क्षत्रियों क्षत्री पना क्यों आज हाय भुला दिया।
दीन का दुख दूर करना धर्म था वो गमा दिया॥
किसलिये पैदा किया है प्रभु ने तुमको जगत में।
क्या जगत कर्त्ता का डर भी निज हृदय से हटा दिया॥
छोड़ दो क्षत्री कहाना आज से हे ! क्षत्रियों।
सब ने अपना कर्म तज कर कुल में दाग लगा दिया॥
याद रक्खो आह मेरी जायगी खाली नहीं।
नष्ट होगे तुम सभी यदि क्रोध हरि ने दिखा दिया॥
मेरी दुर्गति देख कर भी बुत बने बैठे हो तुम।
कौरवों के अन्न ने क्या सब का ज्ञान भुला दिया॥
जग में रह सकता नहीं अब ये कुरुकुल चैन से।
क्यों के इसने पांव से सत धर्म को ठुकरा दिया॥

करदो अब भी कौरवों, ※ उत्तर मुझे प्रदान।
दया करो अबला निरख, क्यों कलपाते प्रान॥

पर कृष्णा को प्रश्न का, कुछ नहिं मिला जवाब ।
तब विकर्ण कहने लगा, क्रोध से हो बेताब ॥
हा! शोक है चत्री पुरुषों पर, सब तुम्हें मेरा मन भुनता है ।
रोती है कृष्णा ज़ार ज़ार, पर विनय कोई नहिं सुनता है ॥
मत बोलो धर्म गमादो तुम, मैं प्रश्न का उत्तर देता हूँ ।
कृष्णा दासी नहिं हो सकती, ये साफ तौर से कहता हूँ ॥
कारण कृष्णा पांचों पति की, सचमुच अर्धांङ्गिनी नारी है ।
फिर उसे हारने का केवल, एक पति नहीं अधिकारी है ॥
सुन विकर्ण की बात को, कर्ण उठा रिसियाय ।
बोला कलका छोकरा, बातें रहा बनाय ॥
नालायक तेरी बुद्धी क्या, इन वृद्धजनों से ज्यादा है ।
क्यों करता है तू टांय टांय, क्यों मरने पर आमादा है ॥
जब बैठे हैं खामोश हुये, ये धर्म-तत्व जानन हारे ।
फिर काहे को तू बक बक कर, करता है गड़बड़ मतवारे ॥
क्या दुर्योधन का खौफ नहीं, नालायक ये चाहें सो करें ।
ये हैं सम्राट जिसे चाहें, दें जीव दान या प्राण हरें ॥
है द्रुपद सुता इनकी दासी, दंगल में इसको पाया है ।
इसमें है कौनसी बुरी बात, जो उसे यहां बुलवाया है ॥
फिर दासी की इज्जत कितनी, चाहें उसको यहां नचवावें ।
इनको हक है इसके तन पर, कपड़ा रक्खें या खिचवावें ॥
वीर कर्ण चुपचाप रह, मत कह ऐसी बात ।
क्यों ऐसे अपशब्द कह, पहुंचाता आघात ॥
ये सत्य जान अपने मन में, कृष्णा है पतिव्रता नारी ।
यदि इसका वस्त्र हटावेगा, होगा अनर्थ यहां पर भारी ॥
चाहे ये सभी पड़े दुद्दे, बोलें या चुप हो रह जावें ।
पर मुमकिन नहीं भक्त का दुख, लख दुख भंजन भी सो जावें ॥

※ गाना ※

(तर्ज—बड़ी किरपा है मो पे तिहारी, श्री कृष्णचन्द्र गिरधारी)

जब आह करेगी दुखियारी, तभी होंगे प्रकट गिरधारी ।
दुखिया की आहें खाली न जावें, जमी फलक को भस्म बनावें ॥
बिगड़ेगी शान तुम्हारी ॥ जब आह० ॥
जब जब जन पर विपता आई, रक्षा की तब हरि ने आई ।
आवेंगे दौड़ मुरारी ॥ जब आह० ॥
गिनते नहीं हो अपनी खता को, देते हो दुख पतिव्रता को ॥
डूबेगी नाव तुम्हारी ॥ जब आह० ॥
प्रभु का तो भय मन में लाओ, पाप कर्म से हाथ उठाओ ।
खोओगे सम्पति सारी ॥ जब आह० ॥

कहा सुयोधन ने अभी, दूंगा चीर हटाय ।
देखूंगा कैसे प्रभु, इसकी लाज बचाय ॥
दुःशासन मत देर कर, हरले इसका चीर ।
कृष्णा सभी प्रकार से, है नाचीज़ हकीर ॥
सुनते हि वचन सब कांप उठे, आंखें मीचो खामोश हुये ।
छागई मुर्दनी चहरों पर, बेचैन और बेहोश हुये ॥
सन्नाटा सारी सभा में था, रोते थे सब दिल ही दिल में ।
करते थे उस जगदीश्वर की, सारे विनती इस मुश्किल में ॥
थी हिम्मत नहीं किसी में भी, इस अशुभ काम को रुकवादे ।
पापी दुःशासन के करसे, कृष्णा का पल्ला छुड़वादे ॥
कोपित दुर्योधन से डर कर, बैठे थे दृग नीचे करके ।
थे विपत देख अपने ऊपर, कृष्णा ने कहा आह भरके ॥
बस मेरो नाहीं चले, सिंह गाय लइ घेर ।
रक्षा करहु कृपा यतन, दीनबन्धु सुन टेर ॥
हे! सर्वरूप सच्चिदानन्द, सर्वेश, सनातन, श्याम प्रभो ।
सीतापति, सर्वव्यापक, श्रीपति, सर्वेश्वर, माधव, राम प्रभो ॥

हे! अन्तरयामी, अजर अमर, आनन्दकन्द, हे! असुरारी।
अव्यक्त, अजन्मा, अनुपम छवि, अवधेश, अनन्त, दुखहारी॥
श्रीकृष्ण, कंसध्वंसी, केशव, काली मर्दन, कमलास्वामी।
हे! कुंज बिहारी, करुणानिधि, हे! अशरन शरन, गरुड़ गामी॥
त्रिभुवनपति त्रिगुनातीत हरी, हृषीकेश, ईश्वर, घनश्यामा।
लीलाधर, सर्वाधार, हरे, भुवनेश हरो दुख अभिरामा॥
हे! वासुदेव, वैकुंठनाथ, वामन भगवान कृपा सागर।
हे! विपिन विहारी, लक्ष्मीपति, विश्नू, श्रीनिधि, सब गुण आगर॥
हे! रामचन्द्र, राघव, रघुपति, रघुवीर, राम, हे! रघुराई।
पुंडरीकाक्ष, पीताम्बर धर, पुरुषोत्तम, प्रभु, त्रिभुवन सांई॥

पद्मनाभि, पद्मापती, सुन लो मेरी पुकार।
लाज बचाओ दुख हरो, करो मोर उद्धार॥

गोबिंद, गरुड़ध्वज, गोपईश, गोपाल, गदाधर, गिरधारी।
धरणीधर, परमेश्वर, सुखकर, दुख हरो परंब्रह्म, बनवारी॥
हे! दामोदर, देवकी कुंवर, दुख भंजन शरन तुम्हारी हूं।
कर दया दयानिधि, दीनबंधु, दुख हरो देव दुखियारी हूं॥
हे! जोतिस्वरूप, जगतस्वामी, जग के कर्त्ता, जसुदानंदन।
जगदीश, जनार्दन, जगन्नाथ, जग के अधार प्रभु चंद्र बदन॥
नरसिंह, नरोत्तम, नारायण, नँदनंदन, निराकार, नटवर।
निर्गुण, निर्द्वन्द, निगम से अगम, हे! चक्रपाणि, चतुभुज, सुखकर॥
महाराज लाज जाती मेरी, तुमने कहां देर लगाई है।
जहां जहां भक्तों पर भीड़ पड़ी, तहां तहां जा लाज बचाई है॥

नंगे पावों दौड़ कर, गज की करी सहाय।
तिमि मेरी रक्षा करो, हे! यदुपति यदुराय॥

जब हिरनाकुश ने क्रोधित हो, प्रहलाद पै हाथ उठाया था।
धर नरसिंह रूप दयानिधि ने, झटपट निज भक्त बचाया था॥

फिर शंकर पर जब विपत पड़ी, तब भस्म किया भस्मासुर को ।
उद्धार सिया का करने को, मारा तुमने दशकंधर को ॥
सुग्रीव का कष्ट मिटाने को, था बाली का संहार किया ।
शरणागत जान विभीषण को, सारी लंका का राज दिया ॥
भक्तों के लिये कच्छ बनकर, गिरि अपनी पीठ पर धारा था ।
देवों को सुधा पिलाने को, मोहनी रूप स्वीकारा था ॥
फिर और याद करलो तुमने, ध्रुव का भी दुःख मिटाय दिया ।
वैकुंठ के द्वारे पै उसको, चिरकाल के लिये बिठाय दिया ॥
जिस समय रुक्मणी ने तुमको, आरत हो टेर सुनाई थी ।
झट आय द्वारका से तुमने, उसकी सब पीर मिटाई थी ॥

याद करहि जब भक्त जन तुमको जगदाधार ।
तहां जाय तुम शीघ्र ही, करो भक्त उद्धार ॥

नहि देर लगाते हो छन भर, है यही तुम्हारा प्रण स्वामी ।
इस दुष्ट दुशासन से मेरा, क्या नहिं होगा रक्षण स्वामी ॥
आवो आवो जल्दी आवो, देखो वो दुष्ट भी आता है ।
कुछ देर नहीं मेरे पट को, पापात्मा हाथ लगाता है ॥
लो आ पहुँचा अब खींचता है, अब लाज हमारी जाती है ।
मालूम नहीं क्यों तुमने प्रभु, करली पत्थर की छाती है ॥
क्या गहरी निद्रा आय गई, या किसी ने पकड़ बिठाया है ।

सबसे पहिले पूतना हनी, फिर बका व वत्सासुर मारा ।
धेनुक, केशी, प्रलंब वध कर, बलवान अघासुर संहारा ॥
जिस समय इन्द्र ने क्रोधित हो, बृज पै कीन्ही वृष्टी भारी ।
तब गोवर्धन[2] कर पै उठाय, बन गये नाथ तुम गिरधारी ॥
कहूँ कहां तक नाथ मैं, तुम्हरे चरित महान ।
मन्द बुद्धि अबला हुँ मैं, सब अवगुण की खान ॥
हे ! अन्तरयामी, लीलाधर, बस देर न करो चले आवो ।
हैरान हुई लाचार हुई, अब प्रभू मुझे मत कलपावो ॥
सारी सरसे तो सरक गई, अब नंगी होती जाती हूँ ।
पर तुम सुनते नहि दुख भंजन, कबसे मैं विनय सुनाती हूँ ॥
अच्छा मत आवो रहो वहीं, जाने दो लाज हमारी को ।
कानों में तेल डाल बैठो, खिच जाने दो सब सारी को ॥
मेरे हि बुरे दिन आये हैं, है तुम्हरा कुछ भी दोष नहीं ।
जो होना है निश्चय होगा, है मुझ को तुम पर रोष नहीं ॥
जब किस्मत में नंगी होना, लिख दिया है किम मिट सकता है ।
ये होनहार तिहुँ काल में भी, नहिं टाले से टल सकता है ॥
पर इतना वर तो दो स्वामी, जिस समय बदन से चीर हटे ।
भू मण्डल पर लरजा आवे, फौरन जमीन डगमगा उठे ॥
फर फटे ताकि मैं धसजाऊं, जिससे न मेरी रुसवाई हो ।
ये विनय मान हे ! दीनबन्धु, इस समय में आन सहाई हो ॥
यदि इतना भी नहि काम हुआ, तो नाम तेरा मिट जायेगा ।
सब भक्तवत्सलता पर स्वामी, एक दम पानी फिर जायेगा ॥
क्यों मेरी लाज के साथ साथ, तुम अपनी लाज गवांते हो ।
मैं कहती हूं आवो आवो, लेकिन तुम भगते जाते हो ॥

१—देखो हमारी बनाई हुई श्रीमद्भागवत का पांचवाँ भाग "बालकृष्ण" ।
२—देखो हमारी बनाई हुई श्रीमद्भागवत का आठवां भाग "गोवर्धनधारी कृष्ण" ।

आन फंसी मंझधार में, मेरी नौका नाथ ।
वेग आय उद्धारिये, लगा कृपा का हाथ ॥

हा ! नाथ दुष्ट कुछ ही पल में, अब नंगी करने वाला है ।
बिन तुम्हरे यहां नहीं कोई, मेरा दुख हरने वाला है ॥
धृतराष्ट्र आंख से अन्धे हैं, अरु हृदय की भी फूट गई ।
कर कपट चाल शकुनी ने मम, पतियों की संपत्ति लूट लई ॥
बेबस बैठे हैं वे सारे, सब बुजुर्ग भी चुपचाप हुये ।
मैं बार बार चिल्लाती हूं, क्यों प्रगट न अब तक आप हुये ॥
दौड़ो दौड़ो सरसिज लोचन, ले चक्र सुदर्शन आजावो ।
दुख सिन्धु में डूबी जाती हूं, रक्षा को नाथ वेग धावो ॥
हा ! दशा मेरी देखो तो सही, पत्थर भी अश्रु गिराते हैं ।
जा छिपे कहां जल्दी आवो, क्यों मुझे आप तड़फाते हैं ॥
हे ! कृष्ण मुरारी भयहारी, हे ! दुख भंजन जन-मन-रंजन ।
हे ! दीन दयाल कृपा सिन्धू, दौड़ो जल्दी खल मद गंजन ॥

दीनानाथ दयालु प्रभु, धावो जल्दी नाथ ।
आवो देर लगावो मत, करो अनाथ सनाथ ॥

सुन दुखिया की आरत बानी, हिल गया हृदय भय हारी का ।
बेचैन हुये धाये फौरन, छूटा सब काम बिहारी का ॥
भक्तों की आरत बानी सुन, फिर चैन न शारंगपानी को ।
अपने से बढ़कर भक्तों को, वे गिनते हैं जिन्दगानी को ॥
स्वामी ने चीर रूप धारा, फिर चीर में जा छुपाने लगे ।
द्रौपदी चीर के साथ साथ, यदुपति निज तन खिंचवाने लगे ॥
बनगये थे जिसके तीन पांव, तीनों लोकों से भी ज्यादा ।
होगया वही प्रभु दुखिया की, रक्षा करने को आमादा ॥
जब आज गरीब निवाज करें, फिर लाज कौन हर सकता है ।
अब देखें दुःशासन कैसे, उसको नंगी कर सकता है ॥

पापी जल्दी से चीर पकड़, दे झटका फिर खींचने लगा।
पर उसको बढ़ता हुआ देख, दांतों को पीस खीजने लगा॥
कर क्रोध से आंखे लाल लाल, अपना सारा बल लगा दिया।
आनन्दकन्द ने तन लगाय, उस चीर को बेहद बढ़ा दिया॥
देख चीर बढ़ता हुआ, पंचाली सुख पाय।
विनय करत कर जोड़ कर, प्रेम न हृदय समाय॥
हे! शरणागत रक्षक कृपाल, हे! विपति में पत राखन हारे।
किस तरह आपके गुण गाऊं, जिनको गा स्वयम् वेद हारे॥
भूमी कागज का रूप होय, जल निधि का जल स्याही होवे।
अरु कल्पवृक्ष की कलम बने, लिखने वाले गणपति होवें॥
यदि तुम्हरे गुण लिखने बैठें, अन गिनती कल्प बीत जावें।
तो भी सब गुण का गुण सागर, हरगिज वे पार नहीं पावें॥
फिर मैं कैसे वर्णन करदूं, मैं तो मति मन्द गंवारी हूँ।
है भक्ति भाव लवलेश नहीं, प्रभु पाहि मैं शरण तुम्हारी हूं॥
हे! कृष्ण कृष्ण करुणा निधान, जगदीश तेरी बलिहारी है।
जय हो गिरधर जय जज नटवर, रक्खी जिन लाज हमारी है॥
जय चक्रपाणि जय असुरारी, जय राधापति यसुदा नन्दन।
कुंज बिहारी सुख कारी, जय जयति जयति जय चंद्र बदन॥
य हो मुकुन्द जय त्रिभुवनपति, जय पंकज लोचन घनश्यामा।
जय पीताम्बरधारी श्रीपति, जय मन मोहन छवि अभिरामा॥
जय हो जय दुखहारी कृपाल, जय भक्त उधारन सुखकन्दा।
जय धरनीधर जय अजर अमर, जय प्रणतपाल यसुदानन्दा॥
जयति कृष्ण जय राम प्रभु, जय जय दीन दयाल।
जय करुणानिधि दुख हरन, जय नंदनन्द गुपाल॥
इस तरह प्रेम में मग्न होय, विनती करती थी पंचाली।
प्रभु चरन में ऐसी लगन लगी, सुध तन की याद भुला डाली॥

ये दोनों कर ऊपर को उठे, आंखें नभ मंडल तकती थी ।
कपकपी सी थी कुछ होटों पर, मुख पर एक ज्योति झलकती थी ॥
दुःशासन चीर खींचता था, खिजलाकर गुस्सा खा खा कर ।
लग गया वस्त्र का ढेर तहां, सब लगे देखने हरषाकर ॥
कृष्णा की बड़ाई होने लगी, निन्दा का दुःशासन पात्र हुआ ।
भीष्म आदिक आनंद हुऐ, दुर्योधन कंपित गात्र हुआ ॥
सब सभा भर गई साड़ी से, पर चीर नहीं घटने पाया ।
होगया पसीनों में लथपथ, आखिर दुःशासन घबराया ॥
थक गये हाथ खींचत खींचत, हांपने लगा तब शरमाकर ।
तज वस्त्र आंख नीची करके, जा टिका जगह पर भय खाकर ॥
ये क्रुद्ध वृकोदर देरी से, इस समय वो ज्वाला भभक उठी ।
होगये खड़े ऐसे गरजे, जिससे सब भूमी धमक उठी ॥
फिर करा हाथ ऊँचा करके, धर ध्यान सभा वालो सुनलो ।
प्रण करता हूं सच्चे दिल से, होवेगा सब मन में गुनलो ॥
मैं इस पापी दुःशासन को, रण में अति शीघ्र सुलाऊँगा ।
मुष्टिक से सीना चूर्ण करूं, छाती का खूं पी जाऊंगा ॥

जो न करूं तो नरक की, ज्वाला मुझे जलाय ।
मिले न उत्तम गति मुझे, धर्म नष्ट हो जाय ॥
भीमसेन की बात सुन, कांपी सभा तमाम ।
कहा कौरवों के लिये हुआ विधाता वाम ॥

कौरवपति ने अच्छा न किया, यहां द्रुपद सुता को बुलवाकर ।
पांडवों को लज्जित कर डाला, इनकी साड़ी को खिंचवाकर ॥
पर किया था जो इसने सवाल, उसपर इसने नहिं ध्यान दिया ।
उलटे मद में मदमाते हो, सब प्रकार से अपमान किया ॥
करनी है ठहर बिचारी ने, अब तो दुर्योधन बतलाओ ।
ये कृष्णा हारी है या नहीं, सबको साक्षी कर कह जाओ ॥

तब कृष्णा से कुरुपति, बोला यों मुसकाय।
अपने पतियों से स्वयम्, करवालो तुम न्याय॥
यदि ये पांचों यों कह देंगे, है कृष्णा हारी वस्तु नहीं।
तो निज दासियों में तुझको मैं, कभि रक्खूंगा संयुक्त नहीं॥
सुन वचन एक दृष्टी डाली, कृष्णा ने निज भर्ताओं पर।
लेकिन उनको चुपचाप देख, फिर गया नीर आशाओं पर॥
दुर्योधन इससे खुशी हुआ, होनी वश बुद्धी चकराई।
धोती ऊँची कर कृष्णा को, निज बाईं जंघा दिखलाई॥
बोला इससे आलिंगन कर, अय चारु हांसिनी पंचाली।
कर दूंगा भूमी पर तुझको, मैं सारे दुःखों से खाली॥
वचन नहीं ये तीर थे, हुये कलेजे पार।
भीमसेन अति क्रोध कर, बोले यों ललकार॥
रे! पापी द्रुपद-सुता तो क्या, ये गदा जांघ पर आयेगी।
तेरा ये अकड़ना मुसकाना, दमभर में तुरत भुलायेगी॥
प्रण है मेरा, रणभूमि में, यदि ये जंघा न तोड़ डालूं।
कर छिन्न भिन्न सब हाड़ मांस, यदि रक्त न मैं निचोड़ डालूं॥
तो पित्रलोक मुझको न मिले, निकृष्ट योनि में जाऊं मैं।
सब सुकृत नाश को प्राप्त होयँ, हरगिज न सद्गति पाऊं मैं॥
प्रण सुनते ही सब सहम गये, धृतराष्ट्र को क्रोध अपार हुआ।
सिर पीटा दोनों हाथों से, दुख से वो वृद्ध बेज़ार हुआ॥
झट ललकारा दुर्योधन को, फिर कहा क्यों अकल गवांई है।
पांडवों की कोपानल में पड़, क्या तेरी श्यामत आई है॥
बस छोड़ द्रौपदी का पल्ला, कर विनय क्षमा के पाने की।
रे! दुर्बुद्धि बस बाज़ आ तू, मत फिक्र करे कलपाने की॥
हे! बेटी बेटी द्रुपद-सुता, तू सती साध्वी नारी है।
सौभाग्य तुम्हारा अचल रहे, ये ही आशीस हमारी है॥

शील तुम्हारा श्रवण कर, चित मेरा हर्षाय ।
जितने वर चाहो, कहो, दूंगा मैं सुखपाय ॥
बोली कृष्णा यदि देते हो, तो हाथ जोड़ करती हूं विनय ।
दासत्व से मेरे पांचों पति, छुटकारा पावें इसी समय ॥
वरदान दूसरे में मुझ को, ये दो सब शस्त्र भि मिलजावें ।
होकर स्वाधीन पती मेरे, जहं चाहें उधर निकल जावें ॥
बस और नहीं कुछ चाहती हूं, है ज्यादा लोभ दुःख दाई ।
यदि आप खुशी हो देते हो, वरदान यही दो नरराई ॥
हो प्रसन्न धृतराष्ट्र ने, दिये यही वरदान ।
हुये खुशी पांडव सकल, आई मानो जान ॥
पर दुर्योधन का सब्ज बाग, इस वर से मटियामेट हुआ ।
झट सोचलिया मेरा शरीर, सचमुच मृत्यू की भेट हुआ ॥
ये जान पिता के पास जाय, बोला क्यों सत्यानाश किया ।
वरदान द्रौपदी को देकर, आशाओं से निरआश किया ॥
किस कठिनाई से रिपुओं को, मैं अपने बस में लाया था ।
उनका सब धन अरु राजपाट किस महनत से हथियाया था ॥
शेरों को छुटकारा देकर, क्यों मेरी मौत बुलाई है ।
क्या वह भूल ये जावेंगे, जो मैंने हंसी उड़ाई है ॥
श्री भीम अभी से बारबार, हाथों में गदा तोलते हैं ।
अर्जुन क्रोधित हो धन्वापर, गुण चढ़ा शरों को जोड़ते हैं ॥
सहदेव, नकुल ने दांत पीस, खांडे को हाथ लगाया है ।
उत्तेजित होय युधिष्ठिर ने, रण का संकेत जनाया है ॥
अब मेरी खैर नहीं है पिता, आई भि काल के गाल में हैं ।
जिन्हें ही मरे बराबर हैं, जो इन पांचों के जाल में हैं ॥
मेरी इच्छा है एक बार, फिर चौसर को बिछवाऊँगा ।
अपने जीवन के लिये पिता, इक बाज़ी फेर लगाऊंगा ॥

वो ये है जो इसमें हारे, बारह वर्षों बनवास करे।
अरु वर्ष तेरवें गुप्त होय, किसी नगर में जाय निवास करे॥
अज्ञात वास के समय यदी, जो पता किसी को लगजावे।
तो फिर वह बारह वर्षों को, कर साधु भेष बन में जावे॥
बन से जब वापिस फिरे, पावे अपना राज।
बेफिक्री से जन्म भर, करे राज का काज॥
इसमें सन्देह नहीं है पिता, शकुनी निश्चय जय पावेंगे।
होगा न भीम का प्रण पूरा, हम अभय हो मौज उड़ावेंगे॥
इस अरसे में राजाओं को, मैं अपनी ओर मिलालूंगा।
गर फिर ये सन्मुख आवेंगे, इनके सब होश भुलादूंगा॥
आज्ञा दी धृतराष्ट्र ने, पुत्र युधिष्ठिर आउ।
एक बार मम हुक्म से, अन्तिम दांव लगाउ॥
यदि जीते तो सन्देह नहीं, सब राज अभी मिल जावेगा।
जो हारे तो भी अवधि बाद, निश्चय वह कर में आवेगा॥
यदि इसमें सहमत हुये नहीं, तो राज कभी नहिं पावोगे।
साधारण मनुजों के समान, यों हीं सब उम्र बितावोगे॥
सुन बचन युधिष्टिर पासा ले, बोले अच्छा मैं खेलूंगा।
या तो पा राज सुखी होऊं, या बन में जा दुख झेलूंगा॥
रे! शकुनी झटपट सन्मुख आ, ले फेंक आखिरी पासे को।
मिलता है राज्य या बन मिलता, देखूंगा भाग्य तमाशे को॥
शकुनी तो कमर कसे ही था, झट सन्मुख आया हर्षाकर।
और बैठ गया मुस्काता हुआ, मैदान में चौसर बिछवा कर॥
चाहते थे सभी बड़े बूढ़े, अब फेर खेलना ठीक नहीं।
उपजेगी निश्चय फूट यहां, अरु इसका होना ठीक नहीं॥
शकुनी अधर्म से खेलेगा, क्रोधित होंगे पांडव सारे।
और इनकी कोपानल में पड़, नश जावेंगे कौरव सारे॥

कुकर्मों का नाश निकट आया, इससे बुद्धी चकराई है ।
उस उठी उठाई चौसर को, फिर नाश के लिये बिछाई है ॥
चलदो भैया यहां से चलदो, अब समय पलटना चाहता है ।
भारत का सब ऐश्वर्य विभव, जूए से उलटना चाहता है ॥

कर सलाह बूढ़े बड़े, चले गये निज धाम ।
कीन्हा शकुनी ने इधर, शुरू जुऐ का काम ॥

अब के भी कपट चाल करके, शकुनी ने पासा फेंक दिया ।
हो खुशी एकदम उछल पड़ा, बोला लो मैंने जीत लिया ॥
इस तरह कपट चालों में फंस, पांचों भाई लाचार हुये ।
जंगल में तेरह वर्षों को, जाने के हेतु तैयार हुये ॥
भगवां कपड़े तन पर पहरे, सब राजसि ठाट उतार दिया ।
मृगछाला डाली कांधों में, कर मांहि कमंडल धार लिया ॥
निज निज हथियार साथ में ले, मय द्रुपद-सुता के बाहिर आ ।
माता, दादा व गुरुओं से, चल दिये तुरत मांगने विदा ॥
हो गये खुशी कौरव सारे, मदमस्त हो हंसी उड़ाने लगे ।
ये देख वृकोदर क्रोधित हो, गर्जन कर यों फरमाने लगे ॥

ऊंची गदा उठाय कर, बोले पांडु-कुमार ।
रण को लड़ने के लिये, हो जावो तैयार ॥

वनवास पूर्ण हो जाने पर, मैं अपना बल दिखलाऊंगा ।
इन दुष्ट अधर्मी कुकर्मों को, करनी का मजा चखाऊंगा ॥
रण में दुर्योधन की जंघा, मैं गदाघात से तोडूंगा ।
दुःशासन के हाथों को गहि, इनि देहरटी से मोडूंगा ॥

फिर टुकड़े करके छाती के, इस पापी का खूं पान करूं।
और साथ हि इसके आतों की, इस गदाघात से जान हरूं॥
जो न करूं प्रण पूर्ण मैं, पड़ूँ नरक के कूप।
रहूं विमुख मैं स्वर्ग से, सुनो सभा के भूप॥
प्रिय पंचाली तू भी सुनले, मत बांधना अपने बालों को।
तेरह वर्षों के बाद भीम, खुद बांधेगे घुंघरालों को॥
जिन हाथों ने ये कच खींचे, वे तोड़ बदन से डारूंगा।
शोणित से इनको गीलाकर, रण में मैं स्वयम् संवारूंगा॥
सुनकर के प्रण भीम का, अर्जुन भी रिसियाय।
बोले हाथ उठाय कर, क्रोध से होट दबाय॥
हे! प्रभू सर्व व्यापक ईश्वर, हे! देवों ध्यान इधर देना।
गांडीव धनुर्धारी अर्जुन, प्रण करते हैं सब सुन लेना॥
हम अपने तीक्ष्ण बानों से, इस अंगराज * को मारेंगे।
चाहे शंकर भी आजावें, तो भी हम हृदय विदारेंगे॥
कैलाश जगह से हट जावे, या तेज हीन रवि हो जावे।
लेकिन ऐसा नहिं हो सकता, अर्जुन की सौगंद टलजावे॥
इसके पीछे क्रोध कर, गरजे माद्रि कुमार।
शकुनी † से कहने लगे, कर में ले तलवार॥
हे! दुष्ट नराधम पापात्मा, ये पासे तुझे रुलायेंगे।
रण भूमी में ये ही शर घन, तेरे सिर पर छाजायेंगे॥
दुर्बुद्धी छल का मज़ा तुझे, रण कौशल से दिखलाऊंगा।
खांडे से बोटी काट काट, यम सदन तुझे पहुँचाऊंगा॥

* अर्जुन ने किस प्रकार महाबली कर्ण पर विजय पाई इसका समस्त वर्णन "द्रौण व कर्ण वध" नामक १९ वें हिस्से में देखें।

† सहदेव ने शकुनी को किस तरह रण मे मारा इसका सम्पूर्ण वृत्तान्त पाठकगण हमारे बनाये हुये "द्रौण व कर्ण वध" नामक १९ वें हिस्से मे देखें।

होगई नष्ट जो ये सौगंद, सहदेव नरक गामी होगा ।
पित्रों के लोक न जावेगा, दुर्गति का अनुगामी होगा ॥
सब से छोटे नकुल जो, थे अब तक खामोश ।
भ्राताओं की बात सुन, हुआ इन्हें भी जोश ॥
गुस्से से लोचन लाल बना, वह नकुल वीर भी गरज उठा ।
एक लात जोर से फटकारी, वहां का भूमंडल लरज उठा ॥
फिर कहा सभा वालों सुनलो, तलवार मेरी रच्चक होगी ।
रण में ये चामुंडा बनकर, तुम लोगों की भच्चक होगी ॥
जिन पुरुषों ने दुर्योधन की, हां में हां यहां मिलाई है ।
पंचाली को जिन दुष्टों ने, अच्छी बानी न सुनाई है ॥
ये तेरह वर्ष निकलने पर, उन लोगों को दिखलादूंगा ।
तलवार से तन के टुकड़े कर, सबको यमलोक पठादूंगा ॥
यों कह कृष्णा से सहित, पांडु पुत्र बलवीर ।
भीष्म आदि से ले विदा, गये विदुर के तीर ॥
पांडवों का साधू भेष देख, धर्मज्ञ विदुर बेचैन हुये ।
मन घोर दुःख से घबराया, आंसुओं में सारे नैन हुये ॥
बोले, बेटा धीरज धरना, विपता के समय न घबराना ।
सब अगर तुम्हारा मंगल हो, कर अवधि पूर्ण वापिस आना ॥
तब तलक तुम्हारी वृद्धा मा, मेरे यहां रह सुख पावेगी ।
आनन्दकन्द का नाम सुमिर, अति सुख से समय बितावेगी ॥
दुखित चित्त से द्रौपदी, गई सासु के पास ।
आज्ञा मांगी कुन्ति से, जाने को बनवास ॥
कृष्णा का भेष कुभेष देख, व्याकुल हो कुन्ती चकराई ।
झट दौड़ी और बहू को ले, अपने हृदय से लिपटाई ॥
बोली बेटी इस संकट में, मन होना दुखी धीर धरना ।
तुम सती हो अपनी सेवा से, पांचों पतियों की पीर हरना ॥

मैं तुमको क्या उपदेश करूं, तुम खुद हो पतिव्रता नारी ।
जाओ वन बेखटके जाओ, हों सहाय तुम्हारे गिरधारी ॥
जो आज्ञा कह द्रौपदी, पोंछ अश्रु की धार ।
दीर्घ स्वांस लेकर चली, पांडु सुतन की ओर ॥
व्याकुल हृदय से कुन्ती भी, आतुर हो तहां चली आई ।
जिस जगह साधु का भेष बना, थे खड़े हुये पांचों भाई ॥
जब पड़ी निगाह निज पुत्रों पर, क्या देखा भस्म रमाये हैं ।
सुन्दर वस्त्रों की ऐवज में, गेरुआ वस्त्र तन छाये हैं ॥
अपने हृदय के टुकड़ों को, लख दीन दशा में महतारी ।
मछली की तरह लगी तड़फन, और बोली हो व्याकुल भारी ॥
हाय विधाता क्या करूं, कैसे धारूं धीर ।
पुत्रों की हालत निरख, उठे हृदय में पीर ॥
जिन लड़कों ने भूले से भी, कभि पाप आचरन किया नहीं ।
जो रहे सदा से धर्मवान, दुख कभी किसी को दिया नहीं ॥
क्यों पड़े वे ऐसी विपता में, कहां गया तुम्हारा न्याय प्रभो ।
पापात्मा, धर्मात्माओं पर, करते हैं घोर अन्याय प्रभो ॥
हे! कृष्ण हे! रामानुज नटवर, इस समय कहां हो बनवारी ।
दुखिया की पीर हरो जल्दी, द्वारकानाथ गिरवरधारी ॥
हत भागिन मुझ सम नहीं कोई, अब आत्मा अब जल्दी चलदे ।
ओ पृथ्वी माता फटजा तू, बद किस्मत को अंदर लेले ॥
हे! पुत्रों तुम गुण वाले हो, पर अभागिनी के जाये हो ।
इसलिये समर्थ होकर भी तुम, दुःखों से अधिक सताये हो ॥
तुम करोगे बन में सदा वास, जो भेद ये पुत्र जान जाती ।
तो तुमको पितु* के मरने पर, हरगिज मैं यहां नहीं लाती ॥

* महाराज पांडु किस प्रकार मृत्यु को प्राप्त हुये यह कथा "पांडवों के जन्म" नामक दूसरे हिस्से में आ चुकी है ।

बस धन्य तुम्हारे पिता को है, जो पहिले ही परलोक गये ।
जो अबतक वे जीवित रहते, कैसे सहते ये दुःख नये ॥
है धन्य माद्री रानी को, जिसने हो सती गती पाई ।
पर मुझ पापात्मा दुष्टा को, अबतक भी मौत नहीं आई ॥
इसी तरह करने लगी, कुन्ती खूब विलाप ।
देख दुख ये, विदुर को, हुआ बहुत संताप ॥
छू चरन मात के पांचों सुत, पत्नी संग बन को चले गये ।
उस तरफ कुन्ति को धीरज दे, श्री विदुर भवन को लिवागये ॥
ये सब बातें सुन धृतराष्ट्र, अपने मनमें अति घबराये ।
एक नौकर को झटपट भिजवा, विद्वान विदुर को बुलवाये ।
पूछा, इनके जाजाने पर, हे! भाई अब ये बतलावो ॥
क्या भाव दिखाते हुये गये, बन में पांचों ये कहजावो ॥
कहा विदुर ने ध्यान कर, सुन कुरु वंश भुवार ।
सब से आगे मुंह ढके, गये हैं धर्म कुमार ॥
जिसका ये कारन है राजन्, उनपर जो अत्याचार हुआ ।
इसलिये तुम्हारे पुत्रों पर, बस उनको क्रोध अपार हुआ ॥
जो अपनी क्रोधित दृष्टी से, इस पाप राज्य को लख लेते ।
तो निश्चय था सब जड़ बल को, फौरन ही खाक बना देते ॥
है इतनी शक्ति युधिष्ठिर में, फिर भी हैं बड़े दयाधारी ।
मुख ढक के बन को चले गये, पर अपनी दृष्टि नहीं डारी ॥
गये भुजा को देखते भीमसेन बलवान ।
लेंगे निश्चय आपके, पुत्रों के ये प्रान ॥

सब के पीछे वह सुकुमारी, कमनीय कमल लोचन वाली ।
सब बाल खोल डकराति हुई, अति व्याकुल चित से पंचाली ॥
विधवा सम भेष कुभेष बना, पतियों के साथ सिधारी है ।
लख उसका हाव भाव राजन्, मैंने सब बुद्धि विसारी है ॥
उसकी मन्शा है अवधि बाद, जब पांडव बनसे आवेंगे ।
और भुजबल से रन भूमी में, कुरुओं को मार गिरावेंगे ॥
स्त्रियां, तब उनकी इसी तरह, विधवा सम भेष बनावेंगी ।
पतियों की लहाशें देख देख, आंखों से अश्रु गिरावेंगी ॥
मत देना हुक्म जुए का तुम, हरचंद मैंने समझाया था ।
उस समय का सब मेरा कहना, महाराज तुम्हें नहिं भाया था ॥
अब क्यों रोते पछताते हो, जो किया है आगे आवेगा ।
इस में अब कुछ संदेह नहीं, ये कौरव-कुल नस जावेगा ॥
अब भी जो अच्छा चहो, करो सन्धि तत्काल ।
वरना सारे वंश का, होगा हाल बेहाल ॥

*** गाना ***

फूट में नहीं है कुछ भी सार ॥
कौरव पांडव एक बदन के दो कर हैं सरकार ।
नष्ट हो गये यदि ये दोनों होगा तन बेकार ॥ फूट में० ॥
रावण और विभीषण में प्रभु होजाने से रार ।
अल्प समय में ही सोने की लंक हुई सब क्षार ॥ फूट में० ॥
जहँ जहँ फूट पड़ी आपस में नष्ट हुये घरबार ।
अस्तु त्याग इसको राजन तुम करो सुमति से प्यार ॥ फूट में० ॥
सारे जगमें कौरव कुल है तेज पुन्ज आगार ।
इसके नस जाने से भारत होगा दुखी अपार ॥ फूट में० ॥
समझाया इस तरह विदुर ने नृप को बारम्बार ।
"श्रीलाल" होनी वस उनका हुआ न तनिक विचार ॥ फूट में० ॥

❀ श्री कृष्णार्पणमस्तु ❀

महाभारत ॐ नवम भाग

पांडवों का बनवास

श्रीलाल

महाभारत नवम भाग

पांडवों का बनवास

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—

महाभारत पुस्तकालय. अजमेर.

मुद्रक—चाँ. हमीरमल लूनिया. दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

द्वितीयावृत्ति १०००

विक्रम सम्वत १९९४
ईस्वी सन १९३७

मूल्य
।-) आने

❀ प्रार्थना ❀

* छंद *

जय पार ब्रह्म ईश्वरं, जय नाथ सर्व अधीश्वरं।
श्री विश्ववृक्ष भक्तिदं, नमोस्तुते जगत्पतिं॥
अव्यक्तनादि गोचरं, अनन्त ईश भू धरं।
अजन्म निर्गुणं हरिं, नमोस्तुते जगत्पतिं॥
समस्त दृष्ट कारनं, मुनिन्द्र दुःख टारनं।
सुसंत भक्त रंजनं, नमोस्तुते जगत्पतिं॥
भजामि भक्त वत्सलं, दयालु शील कोमलं।
सुरारि गर्व गंजनं, नमोस्तुते जगत्पतिं॥
मद मोह लोभ खंडनं, अखंड धर्म मंडनं।
सकल कलेश क्षयकरं, नमोस्तुते जगत्पतिं॥
मैं दास तुव निरंतरं, कृपा तुम्हारि भव तरं।
हो भक्ति मन में दो वरं, नमोस्तुते जगत्पतिं॥

मङ्गलाचरण

रक्ताम्बर धर विघ्न हर, गौरीसुत गणराज।
करना सुफल मनोर्थ प्रभु, रखना जन की लाज॥
सृष्टि रचन, पालन, हरन, ब्रह्मा, विष्णु महेश।
वानी, रमा, उमा सुमिल, रक्षा करहु हमेश॥
वन्दहुं व्यास विशाल बुधि, धर्मधुरंधर धीर।
"महाभारत" रचना करी, परम रम्य गम्भीर॥
जासु वचन रवि जोति सम, मेटत तम अज्ञान।
बंदहुं गुरु शुभ गुण भवन, मनुजरूप भगवान॥

* ॐ *

नारायणं नमस्कृत्य, नरंचैव, नरोत्तमम् ।
देवीं, सरस्वतीं, व्यासं ततो जय, मुदीरयेत् ॥

कथा प्रारम्भ ।

कपट चाल से हार कर, पांचों पांडव वीर ।
पति सहित मुनि वेषधर, गये विपिन रणधीर ॥
नगर वासियों ने सुना, जब ये सारा हाल ।
भभक उठे और क्रोध से, बोले आंख निकाल ॥
ऐ भ्राताओ धिक्कार उसे, जो अब इस पुर में वास करे ।
अन्यायी छली दुर्योधन के, कर से कुछ सुख की आश करे ॥
जिसने अपने ही बंधुओं को, छल से जय कर बरबाद किया ।
मन माने व्यंग वचन कह कर, अतिशय दुख दे नाशाद किया ॥
यहां तक ही नहीं बल्कि जिसने, उस पतिव्रता सुकुमारी को ।
पांडवों की पटरानी सुशील, द्रौपद की राज दुलारी को ॥
हा रजस्वला होने पर भी, दरबार आम में बुलवाया ।
और दुष्टों के सन्मुख, उसको नंगी करना चाहा ॥
जिनकी असली रिश्तेदारी के संग में नामाकूली है ।
तो प्रजा बिचारी किस गिनती, में है किस खेत की मूली है ॥
अतः त्याग इस नगर को, वन में करो पयान ।
दुष्टों से तो दूर ही, रक्खें श्री भगवान ॥
फिर पांडव गए हैं क्षमाशील, वैराग्य विनय रत सुविचारी ।
चलते हैं धर्मानुसार सदा, और हैं उदार बिन गुणधारी ॥

उनके संग रहने से हमको, दुख कभी न शक्ल दिखावेगा।
यदि यहां रहे तो निश्चय हो सब सुःख हवा हो जावेगा॥
कर ये बिचार रैयत सारी इनके पीछे पीछे धाई।
और अवसर पाकर नम्र होय, बोली यों बानी बिलखाई॥
हे धर्मराज हम लोगों को, यहां किस आशा पर छोड़ा है।
क्या कुछ अपराध हुआ जो यों, निष्ठुरता से मुंह मोड़ा है॥

रक्षक हमरा हे प्रभू, बिन तुम्हरे नहिं और।
अस्तु संग लेलो हमें, ऐसे न बनो कठोर॥

अन्नदाता! जहां सुयोधन सम, मालिक है राज सिंहासन का।
और शकुनि दुशासन जैसों के, कर में है काम सब शासन का॥
इसके अतिरिक्त जिस जगह पर, बूढ़ों का कुछ सत्कार नहीं।
आता है पाप ही पाप दृष्टि, सद्धर्म का तनिक बिचार नहीं॥
फिर जहां न्याय के परदों में, अन्याय सरासर होते हैं।
करते हैं चैन कुबुद्धि दुष्ट, सज्जन गण निशि दिन रोते हैं॥
और फेर जहां आचरण शुद्ध, मिटगये हैं, तृष्णा छाई है।
परमार्थ की एवज में देती, जहां स्वार्थ बुद्धि दिखलाई है॥
फैली है जहां फिर द्वेप अग्नि, अभिमान हृदय में छाया है।
उत्पन्न हो गया भेद भाव, और सच्चा प्रेम बिलाया है॥
ऐसे कमबख़्त राज्य में किम, बोलो रैयत सुख पायेगी।
निर्दयी पदाधिकारियों से, क्यों नहीं सताई जायेगी॥

इसीलिये हम प्रार्थना, करते शीश झुकाय।
दुष्ट जनों के पास से, लीजे हमें हटाय॥

हमको तुम अपना भक्त गिनो, हे सत पथ पर चलने वालों।
दुर्दशा ग्रस्त और दीनों की, हर दम रक्षा करने वालों॥
महाराजा! जिस दिन से हमने, ये महा भयंकर सुधि पाई।
"कि दुर्योधन ने छल करके, छीनी तुम्हरी सब प्रभुताई॥

और एक नहीं दो चार नहीं, बलिक तेरह बर्षों के लिये।
भेजा है जंगल में तुम को, साधुओं सरिस रहने के लिये ॥
इतनाहि नहीं करके पापी, अपने मन में सुस्ताया है।
बल्कि एक साल गुप्त रहना. हा ये भी प्रण करवाया है" ॥
बस उसी रोज से दूर हुई, हम सबकी भूख प्यास सारी।
पड़ गया फिक्र क्या करें हाय, है समय की कैसी बलिहारी ॥

आखिर सब कुछ सोच कर, कीन्हा यही बिचार।
चलो वहीं चलके रहें, जहां हैं पांडु-कुमार ॥

ऐ प्रभू दुष्ट संग रहने से, स्पर्श व भाषण करने से।
धर्मी भी ज्ञान भूल जाता. रुक जाता सत पर चलने से ॥
उसपे यदि नृप हो बुद्धिहीन, कपटी व पापरत कुविचारी।
तो प्रजा न सुख पाती है कभी. सहती है नित संकट भारी ॥
इसलिये त्याग हस्तिनापुर को. महाराज यहां हम आये हैं।
रखिये चरणों की शरण नाथ. दुर्योधन से दहलाये हैं ॥

वचन प्रजा के श्रवण कर. बोले धर्म-कुमार।
निष्ठा तुम्हरी देखकर होता हर्ष अपार ॥

फिर भी मेरा ये कहना है. इस समय लौट वापिस जावो।
इसमें ही मुझको सुख होगा. मत जिद करो मन समझावो ॥
फिर एक और भी कारण है. तुम लोगों के वहां रहने का।
माता व विदुरजी का स्वभाव. है नहीं दुःख के सहने का ॥
वे सब अति घबराते होंगे. हमसे बिछोह होजाने से।
बिन समझाये उनके वे दिन बीतेंगे नहीं बिताने से ॥
अतः तुम सब बुद्धिमानी से. उनको ढाढ़स देते रहना।
आवे न हमारी याद अधिक. ऐसा हि काम करते रहना ॥
और रही बात दुर्योधन की. उससे डरने का काम नहीं।
वो समझदार है रैयत का कभि छीनेगा आराम नहीं ॥

वह केवल शत्रु हमारा है, तुमतो निज रक्षक पहिचानो।
इसलिये सोच संकोच छोड़, घर गवन करो मत भय मानो॥
वचन भूप के श्रवण कर, कर कुछ देर विचार।
प्रजा फेर कहने लगी, सुनिये धर्मवतार॥
जिसने अपने भ्राताओं को, वे सबब कष्ट ये पहुँचाया।
और भरी सभा में अबला को, दुख देते जो नहिं दहलाया॥
वो दुष्ट क्रूर हम लोगों पर, भलमनसाहत दिखलावेगा।
चाहे जितना भी कहें आप, हमको यक़ीन नहिं आवेगा॥
क्योंकि यदि पानी की एवज़, शक्कर और दूध लिया जावे।
और वर्षों तक इनसे चाहे, हर रोज़ नीम सींचा जावे॥
पर वो निज कडुवापन तजकर, मीठा न कभी हो पाता है।
बस इसी तरह से दुष्टों का, जो स्वभाव है नहिं जाता है॥
हम प्रजा हैं पांडु-कुमारों की, ये सुनते ही अत्याचारी।
हर तरह से हमें सताने को, तत्काल करेगा तैयारी॥
जो हों अति मुश्किल से मुश्किल, ऐसे क़ानून बनायेगा।
बेचारी रैयत को जबरन, उनके अनुसार चलायेगा॥
पुरवासी दुःख सहें चाहे, बीमार होयँ या मरजावें।
पर हुक्म यही होगा न कभी, अपनी दुख गाथा को गावें॥
जहां किसी ने भूल से, खोली ज़रा ज़बान।
बन्दी गृह का होयगा, वो निश्चय महमान॥
फिर किसी को विद्रोही कह कर, और बता किसी को दुर्भापी।
क़ानून के पंजे में फौरन, वो फांसेगा सत्यानासी॥
"कर" भी लगायेगा बे हिसाब, रैयत का जी कलपाने को।
उसकी महनत का पूर्ण द्रव्य, बस राज-कोप भिजवाने को॥
ग़रज ये कि वो करेगा, नित ऐसे ही काम।
पराधीन जिससे रहे, हरदम प्रजा तमाम॥

अब बतलाओ महाराज हमें, कैसे उस जगह चले जावें।
है विनय आप से अस्तु यही, जाने का हुक्म न फरमावें ॥
सुन वचन प्रजा के धर्म-राज, बोले ये भरम तुम्हारा है।
तुमको न मिलेगा दुःख वहां, ये दृढ़ विश्वास हमारा है ॥
ये सच जानो यदि पाल स्वयम्, खेतों की भक्षक होजावे।
तो नामुमकिन है उनमें कुछ, पैदा अनाज होने पावे ॥
बस इसी तरह से रैयत का, करके अनिष्ट यदि नरराई।
चाहे उसको सुख मिलजावे, पर कभी न होगी मन चाही ॥
ये तो तब होगा रक्खे जब, रैयत के सुख का ध्यान सदा।
"अस्तित्व भूप का प्रजा से है", बस होवे ये अनुमान सदा ॥
क्षत्रियों को उस जगदीश्वर ने इसलिये न उपजाया जग में।
कि ये नित प्रती बिछाते रहें, कांटे निज रैयत के मग में ॥
सबकी सुतवत् पालन करते, उन पर सनेह दरसाते रहें।
हित अहित का पूरा ध्यान रखें, दुख मांहि मदद पहुँचाते रहें ॥

मिलता है जब भूप को, प्रजा के सुख से सुःख।
कौन मूर्ख होगा जो फिर, देगा उसको दुःख ॥

इसलिये फिकर तज गवन की, कुरुपति इतना नादान नहीं।
कि तुम्हारे दुःख निवारण का, रक्खे बिल्कुल ही ध्यान नहीं ॥
इसके अतिरिक्त हमारी भी हालत इन दिनों न बेहतर है।
अरु तुम सब लोगों के लिये, जानाहि इस समय हितकर है ॥
पर जाने की आज्ञा सुन कर रैयत को कष्ट हुआ भारी।
पत्थर सा छाती पर रखकर, लाचार हो गयी बेचारी ॥
फिर भी कुछ ब्राह्मण साथ रहे, जो अतिशय प्रीति दिखाते थे।
इस दुख में धीरज देते हुये, हित के उपदेश सुनाते थे ॥
पर केवल एक युधिष्ठिर तो, इनकी हां में हां करते थे।
बाकी चारों अति दुखित होय कर मलते चाहें जाते थे ॥

कुरुओं से बदला लेने की, धुन समा रही थी प्राणों में
उन पाप मुर्तियों के चहरे, खिच रहे थे इनके बाणों में ॥
पर इन्हें लचार बनाये थी, वह अवधी तेरह वर्षों की।
इसलिये शान्ती दिखती थी, इनके सारे उत्कर्षों की ॥
चलते थे बिल्कुल मौन हुये, सुधि भूख प्यास की बिसरा कर।
यों ही संध्या तक जा पहुँचे, श्री तरनतारनी के तट पर ॥

केवल जल पीकर निशी काटी हुआ प्रभात।
फिर आगे चलने लगे, पत्नि सहित सब भ्रात ॥

हो लिये विप्र भी पीछे ही, ये देख युधिष्टिर घबराये।
अपनी बिगड़ी हालत विलोक, आंखों में आंसू भरलाये ॥
सोचा मेरे यहां नित्य प्रती, लाखों द्विज भोजन खाते थे।
सुख सहित हमारे आश्रय में रहकर निशि दिवस बिताते थे ॥
अब हा! हम इस लायक़ न रहे, जो इनकी क्षुधा मिटा देवें।
बन माहिं किसीको भिजवाकर कुछ कंद मूल मंगवा देवें ॥
कर याद द्रौपदी के दुख की, चारों भाई दुख पाते हैं।
रहते हैं चिन्ता में निमग्न, दिन ब दिन सूखते जाते हैं ॥
फिर किस प्रकार ये आस करूं, ये इनकी भूख बुझावेंगे।
है जिन्हें न निज का ध्यान वे किम, औरों की चिन्ता लावेंगे ॥
अस्तू इनको कुछ करने की, यदि कहता हूँ तो ठीक नहीं।
विप्रों को दुःख हुआ तो भी, है धर्म की रुह से नीक नहीं ॥
धिक धिक धृतराष्ट्र कुमारों को, जिन ऐसा अत्याचार किया।
छल से सब धन दौलत हर कर, हर तरह विवश लाचार किया ॥

गाना (शाहाना)

दया हमपै करना दयामय बिहारी।
शरण में पड़े नाथ आकर तिहारी ॥
तेरा नाम है दुःख भंजन सदा से।
कृपा कर हरो ईश विपदा हमारी ॥

नहीं शोक है राज जाने का हमको।
रहे धर्म स्थिर है ये फिक्र भारी॥
हे निबलों के बल, हे निराशों की आशा।
बंधा धीर हमको हे भक्तन सुखारी॥

यही सोचते सोचते, व्याकुल हो नरनाथ।
बैठ गये झट भूमि पर, रख मस्तक पर हाथ॥
कुछ देर बाद धीरज धर कर, विप्रों को पास बुलाकर के
वे जेष्ठ पान्डु-सुत कहन लगे, आंखों से अश्रु हटा कर के॥
ब्राह्मणों! हमारा राज पाट, छिन गया सब तरह तंग हुये।
जो जग पै रंग जमाते थे, इस समय वेही बदरंग हुये॥
होगये हवा महलों के स्वप्न, सारा सुख मटियामेट हुआ।
आपड़े भयानक जंगल में, सब शरीर दुख की भेट हुआ॥
मुहताज हैं पैसे पैसे के, क़िस्मत गिरती ही जाती है।
जब शुरू में ये है तो आगे, देखें क्या रंग दिखाती है॥
ऐसी हालत में हम तुम्हरा, पालन कैसे कर पावेंगे।
यदि साथ हमारे रहे आप, तो निश्चय कष्ट उठावेंगे॥
अस्तू मम बिनय श्रवण कर तुम, घर जाने का सामान करो।
बस यही मुझे सुखप्रद होगा, इतनी किरपा गुणवान करो॥
जंगल को समझो मती, विप्रों सुख का धाम।
पद पद पर बिपता यहां, मिलती आठों याम॥
कहिं हिंसक पशुओं की बोली, हृदय में भय उपजाती है।
और कहीं पत्थरों की ठोकर, पावों को व्यथित बनाती है॥
फिर घर जैसा आराम नहीं, जंगल में खाने पीने का।
बस केवल कंद मूल पर ही, है पूर्ण भार सब जीने का॥
लेकिन यह भी हर एक जगह, हर समय नहीं मिलने पाते।
कई बार ये देखा गया है कि बनवासी भूखे रह जाते॥

इसके अतिरिक्त पहाड़ों का, कभि लग जाता है पानी भी।
और कभी गरम वायू चलकर, कर देता है हैरानी भी ॥
अर्थात् विपिन में सुःख नहीं, इसको दुख का ही धाम गिनो।
इसलिये भवन जाने में ही, है विप्र वरों आराम गिनो ॥

फिक्र रहित होते यदि, मेरे चारों भ्रात।
तब तो तुम सब चैन से, रहते दिन और रात ॥

लेकिन जिस दिन से कुरुओं ने, हम लोगों का अपमान किया।
छल से सब राज पाट हरकर, बरबाद और वीरान किया ॥
और तथा जिस समय से हमरी, पत्नी को सभा में बुलवा कर।
बेहद कष्ट पहुँचाया है, उसकी साड़ी को खिचवा कर ॥
तब ही से अति दुख के कारन, चारों ने बुद्धि बिसारी है।
इसलिये इन्हें कुछ कहने की, होती नहिं चाह हमारी है ॥
तुम ब्राह्मण हो फिर पूज्य हो सब, यदि तुम्हरा तन दुख पायेगा।
तो मेरे सुकृत नष्ट होंगे, तत्काल पाप छाजायेगा ॥

अस्तु हमारे दुर्दिनों, का करके अनुमान।
गवन करो हे विप्रवर, बेबस हमको जान ॥
कहा ब्राह्मणों ने नृपति, क्यों तुम होत उदास।
जब हम तुम्हरे साथ हैं, करेंगे पूरी आस ॥

हम तुम्हें मन्त्र बतलाते हैं, श्री सूर्यदेव, दिनराई का।
रवि, मार्तन्ड, दिनमणी, भानु, तम शत्रू, जन सुखदाई का ॥
गंगाजी के जल में जाकर, चित को स्थिर कर ध्यान धरो।
विधिवत् पूजन अर्चन बन्दन, करके हित से आह्वान करो ॥
वे अन्न के देने वाले हैं, यदि तुम पर खुश हो जावेंगे।
तो ये सच समझो आप कभी, अन का तो दुख नहिं पावेंगे ॥

यों कह विप्रों ने दिया, सारा मन्त्र सिखाय।
जपन लगे एकान्त में, जाय युधिष्ठिर राय ॥

कुछ दिन में रवि ने हो प्रसन्न, राजा को दर्शन दान दिया।
और हार्दिक इच्छा को विलोक, एक अक्षय पात्र प्रदान किया॥
फिर कहा प्रती दिन इसमें से, जबतक न द्रौपदी खावेगी।
तब तक खाने की अति उत्तम कई वस्तु निकलती आवेगी॥
यों कह रवि अन्तरध्यान हुये, वो पात्र युधिष्ठिर लेआये।
ये हाल सुना जब लोगों ने, बेफिक्र हुये और हरषाये॥
कृष्णा प्रति दिन भोजन बनाय, विप्रों को प्रथम खिलाती थी।
फिर सब पतियों की भूख बुझा, आखिर खुद भोजन खाती थी॥

खाते पीते इस तरह, काम्यक बन में जाय।
पांडु सुवन रहने लगे, एक पर्ण-गृह छाय॥

धीरे धीरे इनका वृतान्त, पहुँचा कई नगरों गावों में।
सुन इष्ट मित्र सब दुखी हुये, छागया शोक अबलाओं में॥
कुछही दिन में अति आतुर हो दुनिया के अगणित नरराई।
आये इनसे मिलने के लिये, ले साथ बहुत सी कटकाई॥
इसके सिवाय पंचालेश्वर, सुत धृष्टद्युम्न को साथ लिये।
पांडवों के पास चले आये, आकृति अतिदीन मलीन किये॥
द्वारावति से गिरधारी भी, आपहुँचे धैर्य बंधाने को।
कई ऋषि मुनि भी आगये तहां, नृप को उपदेश सुनाने को॥
पांडवों की यह हालत लख कर, पाया सबही ने दुख भारी।
यह चली सभी के अश्रुधार, आखिर बोले श्री गिरधारी॥

आगन्तुक भूपाल गण करना ज़रा खयाल।
दुष्टों ने कैसी करी, शिष्टों के संग चाल॥

इन लोगों ने भूले से भी, नहिं कभी स्वधर्म बिसारा है।
पाली है मर्यादादि सदा, परमार्थ हृदय में धारा है॥
फिर इनमें सत्य व धर्म क्षमा, आदिक गुण हरदम रहते हैं।
ये वीर हैं अति तेजस्वी हैं, निन्दा न किसी की करते हैं॥

भुजबल से भूमंडल जय कर सम्राट का जिसने पद पाया।
और राजसूय तक किया मगर, अभिमान तनिक नहिं दिखलाया॥
उसको आदर से घर बुलाय, मजबूरन जुआ खिलाया है।
उसमें भी बेइन्साफी कर, बिल्कुल कंगाल बनाया है॥
ऐसे अत्याचारी कौरव, क्या क्षमा किये जासकते हैं।
जो घोटें गला और का वे, क्या कभी चैन पा सकते हैं॥
इसलिये हमारा फर्ज़ है ये, हृदय में दया न लावें हम।
दुःशासन शकुनि, सुयोधन का, भूमी को खून पिलावें हम॥
जो पुरुष पापरत कुविचारी, छल से जिन्दगी बिताता है।
उसको बधने वाला जग में, तत्काल सुयश को पाता है॥

यही सनातन धर्म है, दुष्टों को ललकार।
दया रहित होकर बधे, करे न सोच बिचार॥

चाहे ये धर्मराज उनपर, अब भी सनेह दिखलाते हों।
उनकी हानी होगी ये गिन, अपने मन में दुख पाते हों॥
लेकिन हम अपने कर्तव से, पद पीछे को न हटावेंगे।
दुष्टों को उनकी करणी का, निश्चय ही मज़ा बतावेंगे॥
है राजाओं हद होती है, मौनावस्था रखने की भी।
है नीति दुष्ट को एक दफा, दो दफा क्षमा करने की भी॥
पर जिस पापी को कई बार, ये लोग दया दिखलाय चुके।
साधारन नहीं असाधारन, दुख उसके हाथों पाय चुके॥
फिर भी यदि दया दिखाई तो, वो दया नहीं कहलावेगी।
बल्की खुल्लमखुल्ला इनकी, कमज़ोरी मानी जावेगी॥
और फल ये होगा वो पापी, नित ज़ोर पकड़ता जावेगा।
इनको मच्छर समान गिनकर, मनमाना शोर मचावेगा॥
अस्तू सब एकत्रित होकर, दुष्टों का खोज मिटाडाओ।
फिर धर्मराज को एक बार, भारत का भूप बनाडाओ॥

सुनते ही प्रभु के बचन, निज निज भृकुटि चढ़ाय।
कह तथास्तु सब भूपगण, खड़े हुये रिसियाय ॥
और बोले हे हे धर्मराज, आज्ञा दो हमको जाने की।
उन दुष्ट बुद्धियों को बधकर, फौरन यमपुर पहुँचाने की ॥
तुम लोगों का ये हाल देख, चित व्याकुल होता जाता है।
पड़ता है कर हथियारों पर, गुस्सा बढ़ता ही आता है ॥
इतना कह लखने लगे राह, आज्ञा की सारे नरराई।
ये देख युधिष्ठिर विनय सहित, बोले मृदु बानी सुखदाई ॥
शान्त शान्त भूपाल गन, शान्त प्रभू सुखधाम।
प्रण कर उसको तोड़ना, नहीं मनुज का काम ॥
ये मुझे बखूबी मालुम है, वे हैं पापी अत्याचारी।
कर उनके व्यवहारों का ध्यान, जलती है नित काया सारी ॥
लेकिन क्या करूं विवश हूँ मैं, क्योंके वहां शर्त इक हार चुका।
उसके अनुसार क्रोध तेरह, वर्षों के लिये बिसार चुका ॥
अस्तू अब उचित नहीं तुमको, अवधी से पहिले गरमाना।
जब ठीक समय आवे तब ही, मित्रों करना तुम मनमाना ॥
शान्त हुये नृप श्रवण कर, धर्म-पुत्र की बात।
पर कृष्णा के चित्त पर, लगी कठिन आघात ॥
वो अभिमानिन स्त्री नहीं, चाहती थी शान्त रहा जावे।
दुष्टों को उनके कर्म्मों का, एवज़ कुछ भी न दिया जावे ॥
अपमान किया था कुरुओं ने, जब से इस अबला नारी का।
बस तबही से उन लोगों पर, क्रोधित था चित दुखियारी का ॥
चाहती थी जितना जल्दी हो, ये कुरुगण मारे जाँय सभी।
और मुझ समान उन लोगों की, रानियां भि संकट पांय सभी ॥
इसलिये सहायक धृष्टद्युम्न, और मधुसूदन गिरधारी को।
लखने ही चित स्थिर न रहा, अति क्रोध हुआ उस नारी को ॥

सन्मुख आ गोपाल के, कहन लगी वो बाल ।
प्रभू सहा जाता नहीं, अब ये दुःख कराल ॥
हर समय शान्ति की चर्चा ही, इन धर्मराज को भाती है ।
यहां घोर कष्ट सहते सहते, नित काया घुलती जाती है ॥
हे भगवन् आर्य देश में जो, सब से उत्तम कुल कहलाता ।
और जहां राज करने वाला, भूपों का भूप गिना जाता ॥
उसही कुल में उत्पन्न हुये, अति धीर वीर सुखदानी की ।
मैं पुत्र वधू कहलाती हूँ, महाराज पाण्डु गुणखानी की ॥
फिर जिसके रक्षक तुम सम हैं, और पितु है पंचालाधिपती ।
बलवानी धृष्टद्युम्न सदृश्य, हैं जिसके भ्राता शुद्धमती ॥
ऐसी स्त्री को दुःशासन, दासी सम खींच पकड़ लावे ।
ये रजस्वला है इस तक का, उसको न ध्यान बिल्कुल आवे ॥
फिर करे सभा में बेइज्ज़त, और पति सारे ख़ामोश रहें ।
पाषाण मूर्त्तिवत होकर के, अपने मुख से कुछ भी न कहें ॥
धिक्कार है इनके भुजबल को, लानत धनुष उठाने में ।
और धिक धिक है इन लोगों को, अब क्षत्री वीर कहाने में ॥
फिर मेरे पति हैं सभी, अतुलित बल की खान ।
तो भी मेरे कष्ट पर, दिया नहीं कुछ ध्यान ॥
हे मधुसूदन जिन दुष्टों ने, श्री भीमसेन को ज़हर दिया ।
फेंका फिर गंगा जल में जा, यों बध करने का विचार किया ॥
फर वर्णावत् पुर के अन्दर, जिसने लाखागृह बनवाया ।
और सासु सहित इन पांचों को, ज़िन्दाहि भस्म करना चाया ॥
इसके सिवाय मम इज्ज़त का, जिन लोगों ने नहिं ध्यान किया ।
हा रजस्वला होने पर भी, सबके सन्मुख अपमान किया ॥
वे दुष्ट, कुबुद्धी, छली, नीच, सुख से रह मौज उड़ाते हैं ।
और यहां हमारे प्रीतम तो, बस शान्ति शान्ति ही गाते हैं ॥

इससे अब यही विचारा है, मरजाना ही उत्तम होगा।
क्योंकि इन हालों नज़र नहीं, आता है के दुख कम होगा॥

गाना (सोहनी)

क्या मै आई हूँ यहां नित दुख उठाने के लिये।
पीने को तन का लहू और रंज खाने के लिये॥
भाग्य इतना तो बतादे किसलिये बिगड़ा है तू।
क्यो हुआ है तू मुझे तत्पर मिटाने के लिये॥
हे विधाता तुझको भी मै ही नजर आई हूँ क्या।
कोई तेरे फेर मे था क्या न आने के लिये॥
जिस जगह मिलता हो दुख नित धर्म से चलने मे भी।
कौन है तत्पर वहां जीवन बिताने के लिये॥
अस्तु करती हूँ विनय आ प्यारी मृत्यू शीघ्र आ।
है यहां कोई नही मम दुख मिटाने के लिये॥

यों कहते कहते हुई, कृष्णा बहुत उदास।
लगी रुदन करने तुरत, लेकर लम्बी स्वास॥
ये लखकर अश्वासन देते, फिर बोल उठे शारंगपानी।
कुछ दिनों और धीरज रक्खो, मत घबराओ हे गुणखानी॥
इसमें बिल्कुल सन्देह नहीं, जो कुछ तेरे संग बीती है।
वो अतुलित दुख की दायक है, कुरुओं की घोर अनीती है॥
पर निश्चय रख जो निरपराध, अबला को दुख पहुँचाता है।
वो अपनी मृत्यु को अपने, ही हाथों से बुलवाता है॥
आयेगा समय शीघ्र ही वो, जब घोर भयंकर रन होगा।
अर्जुन के हाथों कुरुओं का सम्पूर्ण मान मर्दन होगा॥
उस समय नारियां कुरुकुल की, निज पतियों को मुरदा लखकर।
रोवेंगी शोर मचावेंगी, नोचेंगी केशों को आह भर॥

फिर होगा धर्मराज थापित, इन धर्म-मूर्ति नरराई का।
महाराज पान्डु के जेष्ट पुत्र, नीतिज्ञ प्रजा सुखदाई का॥
उन दिनों तु ही इस भारत की, पटरानी मानी जावेगी।
मेरी ये बात त्रिकाल में भी, नहिं झूंठी होने पावेगी॥

यों कह ले नृप का हुकम, चले गये भगवान।
धृष्टद्युम्न ने भी किया, पिता सहित प्रस्थान॥

फिर जितने भी वहां आये थे, राजा महाराजा ऋषिराई।
वे सब भी अपने भवन गये, पांडवों को बहु विधि समझाई॥
कुछ दिन तक तो इन लोगों ने, काम्यक वन में ही वास किया।
फल मूल यहां जब रहे नहीं, तब फिर आगे का मार्ग लिया॥
चलते चलते कुछ दिवस बाद, आगये द्वैतवन में सारे।
यहां की अनुपम शोभा लखकर, हो खुशी यहीं डेरे डारे॥
कभि कंद मूल फल को खाकर, और कभी मृगों का बध करके।
ये अपनी गुज़ार चलाते थे, रहते थे अति धीरज धरके॥
इनमें से जेष्ट युधिष्ठिर तो, कुछ बेफिक्री दरशाते थे।
लेकिन चारों भाई दुख से, दिन बदिन सूखते जाते थे॥
और सब से बिगड़ी हुई दशा, थी पंचालेश कुमारी की।
वह नित ही अश्रु बहाती थी करके चिन्ता निज ख्वारी की॥

एक दिवस पाँचो जने, करने गये शिकार।
पूर्व कीर्ति को याद कर, बोली द्रुपददुलारि॥

जगदीश्वर! क्या हम आये हैं, जग में दुख ही दुख पाने को।
धर्मानुसार चलने पर भी, हर तरह सताये जाने को॥
हा! जिनके यहां उपस्थित थे, सुख पाने के सामान कई।
रहते थे जिनकी सेवा में, शुभ लक्षण युत इन्सान कई॥
वे होकर बिल्कुल दीन हीन, अपने दुख दिवस बिताते हैं।
सब की चिन्ता हरने वाले, चिन्ताकुल दृष्टी आते हैं॥

पालन होता था जिनके घर लाखों गरीब कंगालों का।
"हां" येही उत्तर मिलता था, सबके सम्पूर्ण सवालों का॥
फिरते हैं आज दुखित होकर, वे ही एक दाने दाने को।
इसका दें दोष भाग्य को या, बतलावें बुरा ज़माने को॥
फिर जिनके सिर की शोभा को, कंचन मय मुकुट बढ़ाता था।
अगणित राजाओं का समूह, जिनके चहुंओर लखाता था॥
आती न नींद तक थी जिनको, मखमल के मृदुल बिछौने में।
सब तरह सजावट थी जिनके, महलों के कोने कोने में॥
वे दृष्य एक दम बदल गये, हे जगदीश्वर लीलाधारी।
हा! राज वंश के लोगों को, क्यों प्राप्त हुआ जङ्गल भारी॥

जिसको जगवाले कहें, धर्म-मूर्ति दातार।
अचरज है वो ही यहां, भोगे कष्ट अपार॥
यही सोचते सोचते, रोय उठी वो बाल।
इतने में आये तहां, पाण्डु भूप के लाल॥

पत्नी की ऐसी हालत लख, हो गये विकल पांचों भाई।
आख़िर धर धीर युधिष्ठिर ही, बोले बानी अति सुखदाई॥
हे प्रिया अगर तुम इस प्रकार, व्याकुल हो रुदन मचाओगी।
तो तेरह वर्ष जंगलों में, बोलो किस तरह बिताओगी॥
हम लोगों पर ही दुनियां में, नहिं नई मुसीबत आई है।
बल्की जिसने यहां जन्म लिया, उसही ने विपता पाई है॥
दुख का और सुख का जोड़ा है, जिस तरह रात दिन होते हैं।
पर इनहीं बातों का ख्याल, विद्वान् धीर नहिं खोते हैं॥
इसलिये हृदय को समझाओ, ताके ये दुर्दिन कट जावें।
और सुख के दिन फिर एक बार, आकर हमको मुख दिखलावें॥

कृष्णा बोली भूप वर सच कहते हैं आप।
जग में दोनों ही मिलें, दुःख और संताप॥

पर, दुःख निवारण करने में, होकर समर्थ हे नरराई ।
तुम कुछ परवा नहिं करते हो, बस ये ही लगता दुखदाई ॥
यदि चाहें आप तेज बल से, रिपु का विनाश कर सकते हैं ।
अपने प्रिय भ्राताओं समेत, मेरी विपता हर सकते हैं ॥
लेकिन तुम तो वनवासी सम, बैठे हो हाथ पर हाथ धरे ।
इस हालत में कैसे हृदय, बोलो नहिं शोक प्रकाश करे ॥
सुख का प्रयत्न करने पर भी, यदि दुःख मिले हरि इच्छा है ।
पर यत्न त्याग निश्चल होकर, बैठा रहना नहिं अच्छा है ॥

अस्तू मेरी विनय सुन, शान्त भाव कर दूर ।
अपने रिपुओं का नृपति, करो नाश भरपूर ॥

अचरज है क्षत्री होकर भी, क्यों तुमको क्रोध नहीं आता ।
क्या हरदम शान्त भाव रखना, क्षत्रियों का धर्म गिना जाता ॥
राजों के महाराजा होकर, कंगालों सम दुख पाते हो ।
फिर भी उन दुष्ट कौरवों पर, किसलिये न आप रिसाते हो ॥
हा नाथ जरा देखो तो सही, इन भीमसेन बलवानी को ।
क्षत्रियों के गौरव, हिम्मतवर, और रिपुओं के दुखदानी को ॥
जो इन्द्रप्रस्थ में विविध भांति, तनको गहनों से सजवाकर ।
मनमाने उत्तम घोड़ों पर, चढ़ कर फिरते थे हरषाकर ॥
फिर जिनकी सेवा में हरदम, कई दास उपस्थित रहते थे ।
जो षटरस व्यंजन से अपनी, नित भूख बुझाया करते थे ॥
वे ही बलवीर वृकोदर अब, कितने दुर्बल दृष्टी आते ।
इनके दुःखों का कर खयाल, क्यों नहीं आप गुस्सा खाते ॥
और जिन्होंने हे श्री धर्मराज, अग्नी की क्षुधा मिटाई थी ।
इकले ही उत्तर जय करके, निज विजय ध्वजा फहराई थी ॥

फिर जिनको संसार में, मिला धनंजय नाम ।
करवाना यज्ञ पूर्ण भी, था जिनका ही काम ॥

पुनि जिनकी शक्ती के आगे, साधारण नर की बात नहीं ।
सुरपति भी चाहें तो हरगिज़, कर सकते कुछ उत्पात नहीं ॥
उन महाबली अर्जुन को तुम, इस तरह दुःख पाते लखकर ।
कापुरुषों सदृष्य बैठे हो, क्यों नहिं लाते बल भृकुटीपर ॥
और प्रभु ये सुन्दर युगल मूर्ति, रण चतुर बली सब गुणखानी ।
तलवार चलाने में यकता, आजानुबाहु रिपु दुखदानी ॥
जिन नाम दुःख का सुना नहीं, सुख में ही समय बिताया है ।
हा उन सहदेव नकुल का भी, सारा शरीर कुम्हलाया है ॥
क्या इन पीले चहरों ने भी, तुम पर कुछ असर नहीं डाला ।
क्षत्रियों का ऐसा शान्त भाव, मैंने न कभी देखा भाला ॥
ये सब समझो भीमार्जुन अरु, सहदेव नकुल निज बाणों से ।
यदि चाहें तो कर सकते हैं, रिपुओं को रहित पिराणों से ॥
पर ये तो निज धर्मानुसार, बस जान तुम्हें जेठा भाई ।
चुप हैं, पर आप समर्थ होय, दिखलाते क्यों निश्चिन्ताई ॥

क्षत्राणी के पुत्र हो, तुम, हे प्राणाधार ।
अस्तु तुम्हें शोभा नहीं, देते पोच विचार ॥

जो क्षत्री अवसर आने पर, अपना भुजबल न दिखाता है ।
कायरपन कर धारन सिर पर, लड़ने से जीव चुराता है ॥
सारी दुनियां वाले उसकी, हर समय बुराई करते हैं ।
"ये क्षत्रि नहीं क्षत्री कलंक", यों कह कर मनमें हंसते हैं ॥
समयानुसार जो सदय और, निष्ठुर होना न जानता है ।
उसको समुदाय क्षत्रियों का, सच्चा क्षत्री न मानता है ॥
इसलिये मेरी बिनती सुन कर, इस शान्त भाव को पलटा दो ।
क्षत्रियों के मासिक बल दिखला, अपने रिपुओं से बदला लो ॥

जो क्षत्री निज शत्रु को, करता क्षमा प्रदान ।
उसकी हो सकती नहीं, उन्नति जग दरम्यान ॥

पत्नी की उत्तेजना पूर्ण, बातें सुनतेहि गदाधारी ।
अति हरषाये और कृष्णा पर, एक प्रेम भरी दृष्टी डारी ।
फिर करके नमन युधिष्ठिर को, बोले बलवीर मृदुल बानी ।
हे भ्रात द्रौपदी ने जो कुछ, समझाया वो है सुख दानी ॥
कर पै कर धर बैठे रहना, क्षत्रियों को नहीं सुहाता है ।
बस उनके लिये पराक्रम ही, एक सर्व श्रेष्ठ कहलाता है ॥
दुर्योधन ने जो राज लिया, वो रण करके न लिया भाई ।
किन्तू छल से हमको हराय पापी ने सब सम्पति पाई ॥
इसलिये इसे वापिस लेना, होगा अधर्म का काम नहीं ।
बिन राज पाट पाये राजन् मिल सकता है आराम नहीं ॥
माला हर समय शान्ती की, जपने वाले किस राजा को ।
बतलाओ राज मिला भाई, फिर क्यों न हमें निरआशा हो ॥

दान. धर्म. तप, होम यज्ञ, सज्जन का सत्कार ।
कहलाता है बस यही, क्षत्रि-धर्म सरकार ॥

हमको उत्तमता से करने, के लिये राज उद्धार करो ।
इस समय यही कर्तव है नृप, इसमें मत सोच विचार करो ॥
धिक्कार है मेरे जीवन को, जो योंही बीता जाता है ।
बल है पर उसे दिखाने का, हा शोक समय नहिं आता है ॥
हे भाई नहीं सहा जाता, हमसे अब वन का दुख भारी
अस्तू जितना हो सके जल्द, कर डालो रण की तैयारी ॥
अव्वल तो हमें यक़ीन है ये, दुर्योधन से जय पावेंगे ।
मरगये तोभि कुछ सोच नहीं, निश्चय सुर लोक सिधावेंगे ॥
पर धर्म न वो पालेंगे हम, जिसमें शत्रू तो हरषावें ।
और सगे कुटुम्बी दुखित होयँ, कइ प्रकार के संकट पावें ॥

बचन भीम के श्रवण कर, दुखित हुये नरनाथ ।
धर धीरज आखिर कहा, सुनो हमारे भ्रात ॥

क्यों बात मर्म बेधक कहकर, हे भाई हमें जलाते हो।
घावों पर नमक लगा करके, दुखिया को दुख पहुँचाते हो॥
जिस समय जुआ खेलने लगा, कुछ ऐसी बुद्धी चकराई।
जिससे ये ध्यान रहा न मुझे, क्या करता हूँ प्यारे भाई॥
हा क्या ही अच्छा था यदि तू, उस समय क्रोध से गरमाकर।
मेरे ये हाथ काट देता, हथियार कोई पैना लाकर॥
तो खेल एकदम रुक जाता, यहां तक न कभी नौबत आती।
इस दुख से तो कर कटने के, दुख में रहती शीतल छाती॥
लेकिन अब तो मजबूरी है, जो कहा है उसे निभावेंगे।
जीते जी कभी सत्य मग तज, उल्टे मग पर नहिं जावेंगे॥
क्योंके मुझको ये मालुम है, ये प्राण व रिश्तेदार सभी।
यश, कीर्ति बड़ाई, धर्म, विजय, धन से पूरित भंडार सभी॥
ये सब कीमत में कमती हैं, हे प्रिय भ्राता सच्चाई से।
इसलिये सत्य नहिं छोडूंगा, पालूंगा निर्भयताई से॥
अस्तू अवधी तक चुप्प रहो, जिमि बीते समय बिताओ तुम।
मैं तुम से भी हूँ दुखित अधिक, ये जान हृदय समझाओ तुम॥

अति उदास हो चुप रहे, भीमसेन बलवान।
इतने में आये तहां, व्यास मुनी गुणखान॥

ऋषिराई को अवलोकत ही, सबने उठ इन्हें जुहार किया।
एक उत्तम आसन बिछा दिया, बिठला आदर सत्कार किया॥
ये दुखी युधिष्ठर वैसे ही, लख इन्हें और बेचैन हुये।
अत्यन्त यत्न करने पर भी, आंसुओं में सारे नैन हुये॥
बोले जलधार बहाते हुये, इस दुनियां में हे मुनिराई।
सत, धर्म, शुद्ध आचरणों की, कुछ क़दर न देती दिखलाई॥
निज धर्म से चलने वाला तो, दुख ही में देखा जाता है
और अत्याचारी अन्यायी निशि दिन वृद्धी को पाता है॥

देखो दुर्योधन ने हमको, किस क़दर सताया तंग किया।
कई बार हमारे प्राणों को, हरने का उसने ढंग किया॥
फिर जुआ खिलाकर छला मुझे, सारे वैभव को हथियाया।
और पत्नी को सबके सन्मुख, हे मुनि नंगी करना चाया॥
लेकिन दुख पाने के बदले, वह निशि दिन मौज़ उड़ाता है।
फिर सैनिक बल भी उसका प्रभु, क्रम क्रम से बढ़ता जाता है॥
क्योंकि कृप, द्रौणाचार्य, कर्ण, नृप भूरिश्रवा, अश्वथामा।
जयद्रथ, गंगानंदन आदिक, धनुवेद विशारद बलधामा॥
ये तो उनके साथी ही हैं, इनके सिवाय वे नरराई।
जो लड़े थे हमसे लेकिन प्रभु, हारे थे विजय नहीं पाई॥
अब अपनी अपनी सेना ले, जा मिले हैं दुष्ट सुयोधन से।
और अति आदर सत्कार पाय, होगये मित्र सच्चे मन से॥

गो मुझको विश्वास है, भीष्म, द्रौण, कृप शूर।
रखते हैं हम पर सदाँ, प्रेम भाव भरपूर॥

पर कुरुओं का अन खाने से, उनका ही साथ निभावेंगे।
अन्तावस्था तक करेंगे रण, हरगिज नहिं पीठ दिखावेंगे॥
फिर ये साधारण वीर नहीं, धनुवेद की प्रतिमूरति जानो।
इकले ही त्रिभुवन विजय करें ऐसे योधा हैं पहिचानो॥
इनमें से जब मुझको मुनिवर, उस कर्ण की सुधि आजाती है।
दिल में धड़कन सी होती है, अतिशय दहशत छा जाती है॥
क्योंकि उसका तनु त्राण प्रभु, है दिव्य न वेधा जा सकता।
अब कहो कौन हैं दुनिया में, जो उसे पीर पहुँचा सकता॥
फिर धनुर्वेद विद्या में भी, मुनि वो यकता है ज़माने में।
सो महारथी सदृष्य फुरती, दिखती है शस्त्र चलाने में॥
ये सब अन्दाज़ लगाया है, यदि वीर कर्ण गरमाजावे।
तो जग एकत्रित होकर भी, उसको न विजय करने पावे॥

अस्तू ऐसे रण धीरों से, घिर कर हे मुनि वो कुरुराई ।
हमको न राज वापिस देगा, बस ये ही देता दिखलाई ॥
बल इतना नहिं पास में, जो रण कर जय पायँ ।
कहो मुनी कैसी करें, किसविधि मन समझायँ ॥
बचन श्रवण कर भूपके, लेकर लम्बी स्वांस ।
व्यासदेव कहने लगे, होउ न पुत्र उदास ॥
तुम धर्म-धुरंधर होकर भी, दुख है अज्ञों सम फरमाते ।
पापी सुख, धर्मी दुख पाता, ये व्यर्थ बात कहते जाते ॥
सच ये है जो सुख दुख मिलता, शुभ अशुभ कर्मका फल जानो ।
जो बोओगे काटोगे वही, इसमें न झूंठ है अनुमानो ॥
जो पूर्व जन्म में अति उत्तम, कर्मों को करके आता है ।
वो पाप करे तो भी जग में, फलता व फूलता जाता है ॥
पर जिसके अशुभ कर्म हैं वो, कितने भी प्रयत्न करवावे ।
लेकिन न पूर्ण सुख मिले उसे, जब तक न अशुभ फल चुक जावे ॥
दुर्योधन कुकर्म करके भी, जो सुख पाता है नरराई ।
ये उसके पूर्व सुकृतों का, उत्तम फल देता दिखलाई ॥
किन्तू मन में ये ध्यान रखो, वह सदा न मौज उड़ायेगा ।
होते हि अंत शुभकर्मों का, इक क्षण में ही नस जायेगा ॥

❀ गाना ❀

प्रभू नहीं करते हैं अन्याय ॥
जैसे जिसने किये हैं कर्तव, इस दुनियां में आय ।
भोगेगा उनका फल निश्चय, कभी न बचने पाय ॥ प्रभू ॥
करे दुष्ट नर लाख दुष्टता, जगकी नज़र बचाय ।
पर उस अंतरयामी से कुछ, गुप्त न रहने पाय ॥ प्रभू ॥
जबतक पूर्व सुकृत हैं अच्छे, कभी न विपता आय ।
चाहें करे पाप कितने ही, लेकिन सुख ही छाय ॥ प्रभू ॥

हे सुकुमारी लावण्यमई, शशि वदनी कोमल तन वाली ।
कर मेरा हृदय शान्त जलदी, हे हंसगमनि सुखमाशाली ॥

बोली कृष्णा हो दुखित, रे रे पापी धूर्त ।
चुप हो अपने महल जा, हे अधर्म की मूर्ति ॥

तू समझ पराई नारि मुझे, जा घर अपना मन समझाले ।
क्यों फटे में पांव फंसाता है, कुछ दिन संसार हवा खाले ॥
जिसने परस्त्री को ताका, उसने यम का आह्वान किया ।
मिलगया धूल में जलदी ही, प्राणों ने तुरत पयान किया ॥
लंका पति रावन का वृतान्त, क्या तुझे न मालूम हुआ अभी ।
सीता पर डाली बुरी दृष्टि, होगया था नाश कुटुम्ब सभी ॥
फिर गौतम नारि अहिल्या का, अपने हृदय में ख्याल करो ।
क्या मिला था दण्ड पुरंधर को, कुछ सोचो और मलाल करो ॥
सुग्रीव की पत्नी हरने से, बाली का सत्यानाश हुआ ।
इन घटनाओं को सुनकर भी, क्या मन में नहीं प्रकाश हुआ ॥
जो अपना भला चाहता है, जा चलाजा मत कर लड़काई ।
वरना ये दिल में जानले खल, बस तेरी मृत्यु निकट आई ॥
हर समय पांच गंधर्व मेरी, करते हैं सदा से रखवारी ।
रहते हैं हरदम गुप्त हुये, है जिनमें बल विक्रम भारी ॥
जो मुझे तू हाथ लगावेगा, वे लखते ही आजावेंगे ।
चाहे तुझमें अतुलित बल हो, पर सहज हि मार गिरावेंगे ॥
इसलिये बावला बने मती, तज पाप मार्ग सत मग में आ ।
मैं नारि दूसरों की हूं ये, गिनकर अपने मन को समझा ॥

द्रुपद नन्दनी ने इसे, इतना कहा बुझाय ।
लेकिन हटा न दुष्ट ये, बोला अति रिसिआय ॥

दासी ! दासी !! ये अकड़ तेरी, अब निश्चय तुझे रुलायेगी ।
याती कहना ले मान मेरा, वरना अतिशय दुख पायेगी ॥
मैं तो करता हुँ खुशामद अरु तू इतराती ही जाती है ।
क्या मुझको मामूली समझा, जो ये फटकार बताती है ॥
मैं यहां का सेना नायक हूँ, फिर भाई हूँ महारानी का ।
बस अदब से बातें कर वरना, पावेगी फल नादानी का ॥

सुनले, यदि मम विनय पर, दिया नहीं कुछ ध्यान ।
तो मेरी तलवार ये, लेगी तेरे प्रान ॥
कृष्णा फिर कहने लगी, सुनकर इसकी बात ।
अज्ञानी निज भवन जा क्यों करता उत्पात ॥

रखयाद अगर दीनों को तू, इस तरह दुःख पहुँचायेगा ।
तो फिर वह त्रिभुवन पति तेरी, मिट्टी में शान मिलायेगा ॥
पापी तलवार बेकसों को, नहिं है दुख पहुँचाने के लिये ।
बलकी अनाथ के शत्रू को, वध यमपुर भिजवाने के लिये ॥
यदि तू मद में मदमाता हो, दीनों पर इसे चलायेगा ।
तो काल दण्ड भी तव सिर के, पल में दो टूक बनायेगा ॥
सेनापति होकर दासी पर, तलवार चलाना चाहता है ।
रे कायर दुर्बुद्धी क्यों तू, निज कुल में दाग लगाता है ॥
बस सुनले जो नर पतिव्रता, नारी को कुदृग निहारेगा ।
वो पापात्मा अति ही दुर्गति, करवा कर देह विसारेगा ॥
और स्त्री भी जो सुपने में, पर पुरुष का ध्यान लगायेगी ।
नरकों की घोर अग्नि में वो, वर्षों रह दुःख उठायेगी ॥

अस्तु चलाजा धाम निज, मेरा ध्यान बिसार ।
अपनी नारी से करो, केवल जग में प्यार ॥

❀ गाना ❀

मूर्ख ! पतिव्रत धर्म सब धर्मों से उत्तम धर्म है ।
इससे बढ़कर नारि के हित का न कोई कर्म है ॥
आके जिस स्त्री ने जगमें धर्म ये पाला नहीं ।
वह बहुत ही मन्दभागिन, पापनी, बेशर्म है ॥
दान, जप, तप, होम अर्चन, कीर्तन भगवान का ।
इसके आगे तुच्छ है ऐसा तो इसका मर्म है ॥
छोड़ सकती हूँ नहीं मैं इस अलौकिक धर्म को ।
तू तो क्या है चाहे जग भी मुझसे होवे गर्म है ॥
जा चलाजा दुष्ट क्यों तलवार दिखलाता मुझे ।
पतिव्रता के क्रोध से फौलाद होती नर्म है ॥

ये सुन आशा से रहित, हो भगिनी के पास ।
पहुँचा अरु कहने लगा, सुनो मेरी अरदास ॥

इस दासी की सुन्दरता लख, मैंने सब ज्ञान भुलाया है ।
यहां तुम्हरे महलों में आकर, एक नया रोग लिपटाया है ॥
यदि तुमको मुझपर प्यार है कुछ, यदि मुझको भ्रात जानती हो ।
तो मुझे दुर्दशा ग्रस्त देख, क्यों नहीं यत्न तुम ठानती हो ॥
जैसे हो वैसे कह सुन कर, दासी को जल्दी अपनाओ ।
दो मुझे प्राण का दान बहिन, इसके संग शादी करवाओ ॥
और नहीं तो ये सच्ची जानो, मैं प्राण त्याग कर डालूंगा ।
यदि ये युवती मेरी न हुई, तो ज़हर घोलकर खालूंगा ॥

दया आगई रानि को, सुनकर बंधु विलाप ।
बोली टुक धीरज धरो, तजो सकल संताप ॥

मैं भेजूंगी सैरिन्ध्री को, तेरे घर से मदिरा लाने ।
उस समय इसे फुसला लीजो, निकलेंगे अरमां मन माने ॥
ये सुन पापी कर शांत चित्त, अपने घर पहुँचा सुख पाकर ।
एक कमरे में जाकर बैठा, हर तरह से उसको सजवाकर ॥
यहां अवसर पाकर रानी ने, सैरिन्ध्री को झट बुलवाया ।
एक सोने का प्याला देकर, धीरे धीरे यों समझाया ॥
लग रही है मुझको तृषा अधिक, कीचक के भवन चली जाओ ।
उत्तम और खुशबूदार सुरा, इसके अंदर भरवा लाओ ॥
अपने मन में मत फिक्र करो, मैंने उसको समझाया है ।
तेरी इज्जत करने के लिये, उससे यहां प्रण करवाया है ॥

हुई विवश द्रौपद सुता, आंखों में भर नीर ।
चली दुष्ट के महल को, सुमिरत मन यदुवीर ॥

हिरनी सदृष्य चौकन्नी हो, हर तरफ देखती जाती थी ।
दिल धड़क धड़क करता था अरु, छाती भरती ही आती थी ॥
जब पहुँची उसके महलों में, कीचक आगे लेने आया ।
बोला मैं धन्य हुआ प्यारी, तेरे मुख का दर्शन पाया ॥
जिस पल से तुम्हें निहारा है, सारी बुद्धी खो डाली है ।
तेरी चितवन ने मेरे पर, कुछ अजब मोहनी डाली है ॥
देखो ये सोने के कंगन, ये कर्णफूल शोभा वाले ।
ये वस्त्र रेशमी सजे हुये, ये सुन्दर कंचन के प्याले ॥
और ये फूलों की मृदुल सेज, तेरे हि लिये है मंगवाई ।
फिर अनगिनती दासियां भि हैं, जो करेंगी तेरी सेवकाई ॥
इन मैले कपड़ों को त्यागो, सुन्दर आभूषण तन धारो ।
इस मंजुल सैया पर सुख से, आ बैठो दुख सब तज डारो ॥

यों कहकर दुर्बुद्धि ने, पकड़ा इसका हाथ।
द्रुपद सुता का क्रोध से, लगा कांपने गात ॥

बोली मुझको न अनाथ समझ, हैं पांच वीर भर्तार मेरे।
जो नाश करसकें दुनियां का, ऐसे हैं वे सरदार मेरे ॥
इक सती साध्वी नारी को, क्यों बातों में फुसलाता है।
मामूली गहनों कपड़ों को, किस शेखी से दिखलाता है ॥
नादान ये मैले फटे हुए, वस्तर इन सब से ज्यादा हैं।
ये सत के ऊपर खड़े हुए, वे अधर्म पर आमादा हैं ॥
तू निश्चय मारा जावेगा, वरना मैं तुझको बतलाती।
मेरे घर का ऐश्वर्य विभव, जो लखता छाती फटजाती ॥
कर छोड़ दुरात्मा छोड़ मेरा, नहिं तो रानी दुख पावेगी।
यदि सुरा न जल्दी वहां गई, मुझको फटकार सुनावेगी ॥

पर कीचक को उस समय, कहां था इतना होश।
सारे अंग अनंग का, छाय रहा था जोश ॥

जब बचनों का न प्रभाव पड़ा, तब तो सैरिन्ध्री घबराई।
दे झटका अपना हाथ छुड़ा, हिरनी सम भागी भयपाई ॥
इक मामूली सी नारी को, बलवीर न बस में कर पाया।
खिसियाकर क्रोधित हो मनमें, वह भी इसके पीछे धाया ॥
बोला दुष्टा कहाँ जाती है, करतूत का मजा चखाऊंगा।
दमभर में होश भुला दूंगा, बेतों से खाल उड़ाऊंगा ॥
मेरे सन्मुख किसकी हिम्मत, जो मदद करे आगे आकर।
मेरे भुजबल को देख देख, जलते हैं देवों के भी पर ॥
यों पेच ताव खाता खाता, ये पीछे धाया जाता था।
लख इसे, द्रौपदी का शरीर, भय से अकुलाया जाता था ॥

झट भाग सभा में पहुँची ये, बोली महाराज सहाय करो ।
कीचक के अत्याचारों से, मुझ अबला का दुख हाय हरो ॥
जो जो उसने दुर्वाक्य कहे, कर याद मेरा जी जलता है ।
इस धर्म राज्य में वो पापी, कैसी बद चालें चलता है ॥
उस दुष्ट बुद्धि व्यभिचारी से, नृप सहाय करो मुझ अबला को ।
मैं शरन हूँ चित में धर्मधार, प्रभु पीर हरो मुझ अबला की ॥
ये कहती थी इतने ही में, कीचक भी वहाँ चला आया ।
झट बाल पकड़ लातें मारी, अबला को भुजबल दिखलाया ॥

ऐसा अत्याचार कर, चला गया वह नीच ।
रोई रानी द्रौपदी, गिरी सभा के बीच ॥

बुत बने हुये सब तकते थे, नहिं था कोई हिम्मत वाला ।
कीचक के कामों से दुख पा, जो करता कुछ गड़बड़ झाला ॥
महाबली भीम इस सभा में थे, ऐसा अपमान सहा न गया ।
पत्नी की यों दुर्गती देख, उनसे चुपचाप रहा न गया ॥
दम भरमें भृकुटी कुटिल हुई, आँखें अग्नी बरसाने लगी ।
आगया पसीना मस्तक पर, देही में लाली छाने लगी ॥
छिपगया होट दांतों के तले, बलवीर ने झट उठना चाहा ।
कीचक को बध करने के लिये, हथियार कोई लेना चाहा ॥

धर्मराज ये भाव लख, हुये बहुत बेचैन ।
आकर्षित कर भीम का, ध्यान, तरेरे नैन ॥
भाई का संकेत सुन, तुरत दबगया जोश ।
इतने ही में आगया, द्रुपद सुता को होश ॥

अपमान का मनमें कर खयाल, राजा पै इक दृष्टी डाली ।
ऐसी कराल भरू क्रोध युक्त, जैसे देखे नागिन काली ॥

बोली, नृप ! धर्म क्या भूल गये, क्या तुम्हें भी लाज नहीं आती ।
मेरी इतनी दुर्दशा देख, क्यों आपकी फटी नहीं छाती ॥
हे भूप तुम्हारे ही सन्मुख, उस पापी ने अपमान किया ।
कर पदाघात बालों को गह, खींचा ताना हैरान किया ॥
क्या यही न्याय तुम करते हो, क्या येही धर्म्म तुम्हारा है ।
तुम कभी राज्य के योग्य नहीं, चोरों सम कर्म्म तुम्हारा है ॥
धिक्कार सभा वालों को भी, जिनकी आंखें तकती हि रहीं ।
पत्थर सम बैठे रहे यहां, मुझ पर लातें पड़ती हि रहीं ॥
इन्साफ भूप ने किया न जब, तब किसके पास चली जाऊं ।
यहां धर्मात्मा न नज़र आता, किस तरह न्याय मैं करवाऊं ॥

भूल गये क्या सुधि मेरी, तुम भी पांचों वीर ।
पापी के अपमान से, जलता हाय शरीर ॥

हे महाबाहु अब कहां हो तुम, क्यों मुझपर दया न लाते हो ।
क्या तुमने धर्म्म विसार दिया, हे नाथ क्यों देर लगाते हो ॥
सुन हांक आपकी प्राणपते, थर्राता है रिपुदल सारा ।
अचरज है तुम्हरे ही सन्मुख, किस बुरी तरह मुझको मारा ॥
तुम अतुलित बलशाली होकर, क्लीबों सम सब सहते जाते ।
हा तेज तुम्हारा गया कहां, अबला पर दया न दिखलाते ॥

* गज़ल *

हा ! वक्त बदलता है जिस क्षण मे,
तब कोई भी दृष्टी आता नहीं ।
फिरजाती हैं आंखें सगों तक की,
एक बचा भी नेह दिखाता नहीं ।

माने जाते है जो इस जगत मे अजय,
क्रोध आने पर खाते है निश्चर भी भय ।
वे हुये है चुपचाप हा ! इस समय,
मेरे दुःख को कोई मिटाता नहीं ।
एक दिन वो था के जरासा भी दुख,
मेरा कोई नहीं देख सकता था हा !
अब पिटती भी लख कर हाय मुझे,
अचरज है तरस कोई खाता नहीं ।
भाग्य दुनियां में जिसका के ऊंचा रहे,
मान उसका जगत मे होता रहे ।
गिरते ही इसके अदना भी,
खातिर मे उसे फिर लाता नहीं ।

कहा युधिष्ठिर ने सुनो, सैरिन्ध्री धर ध्यान ।
अंतःपुर जावो तुरत, होउ नहीं हैरान ॥

दुनियां में पतिव्रता नारी, बहुधा तकलीफ उठाती है ।
पर इससे जीवन उज्जवल कर, पति सहित स्वर्ग में जाती है ॥
धर धीरज समय बिता डालो, मत समझो वो बच जायेगा ।
गंधर्वों की कोपानल में, मानिन्द पतंग जल जायेगा ॥
यह वक्त मदद का ठीक नहीं, पांचों ने यही बिचारा है ।
इसलिये न अबतक प्रगट हुये, ऐसा अनुमान हमारा है ॥
वे उचित समय के आते ही, कीचक का बध कर डालेंगे ।
कर शान्त चित्त घर में जावो, तेरा सब दुःख हर डालेंगे ॥

सुन वचन क्रोध में जली हुई, पंचाली घर में जा पहुँची ।
उसका ऐसा बद हाल देख, रानी झटपट वहां आ पहुँची ॥
बोली हैं ! तुम रोती क्यों हो, क्या किसी ने मारा पीटा है ।
सब बाल भि बिखर रहे सिर के, क्या इनको पकड़ घसीटा है ॥
जब हाल कहा सब कृष्णा ने, सुन रानी हिय में दहलाई ।
और कहा कि पापी कीचक की, निश्चय ही मृत्यु निकट आई ॥

कछुक देर तहँ ठहर कर, कृष्णा व्याकुल चित्त ।
वासस्थान चली गई, कीना जा प्राश्चित्त ॥

करके अस्नान वस्त्र धोये, पर धीर नहीं मनमें आई ।
कीचक के वध का कुछ उपाय, सूझा नहिं इससे घबराई ॥
आंखें जलधार बहातीं थीं, कमरा ऐकान्त व निरजन था ।
था धीर धरैया कोई नहीं, आशा से गत सब जीवन था ॥
अस्तु एक कोने में जाकर, दिल खोल के खूब बिलाप किया ।
पर किसी ने भी उसके ढिंग आ, इस दुख में नहीं मिलाप किया ॥
रोते रोते थकगई बहुत, आंसू पोंछे निज नयनों से ।
लम्बी स्वासों को लेती हुई, बोली करुणायुत वयनों से ॥
जगदीश ! क्या दुख ही सहने को, मैं भूमंडल पर आई हूँ ।
क्या चूक मेरी होगई प्रभो, जो ऐसी क़िस्मत लाई हूँ ॥
अन्याय हर तरफ छाया है, जहां देखो वहीं अंधेरा है ।
हे दीनबन्धु रक्षा करना, सब तरह बिपत ने घेरा है ॥

योंही रोते कलपते, हुआ भीम का ख्याल ।
मनमें कुछ धीरज बंधा, उठी तुरत वो बाल ॥

चुकी थी पूरन अर्धरात, छा रहा था गहरा अंधियारा ।
समय वृकोदर से मिलने, कृष्णा ने बाहर पग धारा ॥

इनका मकान भी पास हि था, झट जा पहुँची घर के भीतर ।
देखा इक तरुवर के समान, वो वीर पड़ा है शैय्या पर ॥
निद्रा में बिल्कुल बेसुध है, लम्बे घुर्राटे आते हैं ।
है राज शान्ती का चहुँ दिशि, मृतवत् अवयव दिखलाते हैं ॥
झट निकट जाय व्याकुलता से, कृष्णा इस तरह उठाती है ।
जिस तरह सिंहनी दहशत पा, निद्रित बनराज जगाती है ॥
कहती है पति जागो तो सही, क्यों बे फिक्री से सोते हो ।
क्या प्राण देह में रहे नहीं, किसलिये न मम दुख खोते हो ॥
बलवान की नारी को निर्बल, हरकर कैसे सुख पावेगा ।
सन्देह नहीं वो एक रोज, मर अन्त नरक में जावेगा ॥

कृष्णा की यह बात सुन, हुआ भीम को चेत ।
बोला प्राण प्रिये यहां, आई हो किस हेत ॥

किसलिये यह चहरा उतर रहा, क्यों आंखें अश्रु बहाती हैं ।
होगया है तन दुबला पतला, क्यों पीत वर्ण दरशाती हैं ॥
मुझको सब सच्चा हाल बता झट अपने भवन चली जावो ।
करदूँगा सारा दुःख दूर, धीरज रक्खो मत घबरावो ॥
बोली कृष्णा जिसका स्वामी, भूपाल युधिष्टिर सम होवे ।
वो कहां सुखी रह सकती है, कबतक धीरज रक्खे रोवे ॥
तुम भी लखते हो दुःख मेरा, पर ज़रा मदद नहि करते हो ।
भाई की आज्ञा मान सदा, मेरा कुछ ध्यान न धरते हो ॥
कुरुओं के हाथों से मैंने, हा कैसा घोर दुःख पाया ।
फिर बनवासों में ताभिसाल, कितना संकट मुझपर आया ॥
उन विषम घोर क्लेशों की सुधि, अब भी मम हृदय जलाती है ।
मरना तो मैं चाहती हूँ अति, लेकिन नहिं मृत्यु आती है ॥

पर इस कीचक की हठधर्मी, अब निश्चय मुझको मारेगी ।
अब यह कृष्णा कर आत्मघात, सचमुच ही देह बिसारेगी ॥

नाथ तुम्हारे सामने, उसने मारी लात ।
फिर भी तुम्हरे हृदय में, लगी नहीं आघात ॥

अतुलित बलशाली होकर भी, अबला सम निर्बल हो बैठे ।
अपमान मेरा होता है मगर, तुम सारी बुद्धी खो बैठे ॥
यदि नाव को मल्लाह तज देवे, वो डूब नीर में जावेगी
नारी का पति रक्षा न करे, तो किसको विनय सुनावेगी ॥
फिर पति भी केवल एक नहीं तुम पांच हो और बलशाले हो ।
फिर भी पत्नी का दुःख देख, तुम मदद न देने वाले हो ॥
तुम मुझे प्यार नहिं करते हो, बेहतर है मेरा मरजाना ।
बस फूलो फलो सुःख पावो, दूसरी नारि ब्याह कर लाना ॥

पत्नी को हृदय लगा, पोंछ दृगन का नीर ।
बोले तेरा दुःख लख, जलता सकल शरीर ॥

पंचाल-नन्दिनी मेरा भी, इस दुख से बदन भुना जाता ।
हो जावो चुप अब धीर धरो, बस ज़्यादा नहीं सुना जाता ॥
सचमुच तेरा दुख बेहद है, धिक्कार मेरे बाहु बल को ।
गांडीव धनुष धारन करने, वाले धिक्कार अर्जुन को ॥
हा ! मुझे शोक अति होता है, लख कीचक की हठ धर्म्मी को ।
जब सभा में लात लगाई थी, धारन करके बेशरमी को ॥
हम उसी समय उस पापी के, मस्तक का चूर्ण बना देते ।
मिट्टी में सारा गर्व मिला चिरकाल के लिये सुला देते ॥
यदि भूप विराट् मदद करते, उनको भी स्वाद चखाता मैं ।
यहां तक कि उनकी सेना को, चौपट कर तब सुख पाता मैं ॥

लेकिन मुझको लाचार किया, जेठे भाई के नयनों ने।
यों खून का घूंट पिलाया है, उन धर्म्मपुत्र के वयनों ने॥

बोली कृष्णा आपतो, चुप हैं प्राणाधार।
मुझ दुखियारी पर गिरा, सहसा वृहत पहार॥

उन धर्म्मराज की आज्ञा का, अब कबतक समय निहारोगे।
बोलो कब तक मैं शान्त रहूँ, किस दिन मेरा दुख टारोगे॥
आंखों को खोल बिलोको तो, मेरा कैसा बदहाल हुवा।
सब तन को दुर्बल देख देख, क्या तुमको नहीं मलाल हुआ॥
देखो टुक मेरे हाथों को, क्या बुरी दशा दृष्टी आती।
चन्दन को नित घिसते घिसते, उड़गया मांस खूं चमकाती॥
महारानी की कंघी चोटी करते करते हैरान हुई।
उंगलियां रात दिन दुखती हैं, हा! दुख में कैसी जान हुई॥
इस पर फिर वो पापी कीचक, नित मुझे कुवाक्य सुनाता है।
हर तरह विनय मैं करती हूँ, पर जरा दया नहिं लाता है॥
वो है उद्दण्ड निश्चर सदृश, सब को उस से डर लगता है।
यदि तुम भी डरे तो फिर मेरा, सद्धर्म कहाँ रह सकता है॥
यदि वो कलतक मारा न गया, सच जानों मैं विष खालूंगी।
उस कामी कुत्ते के करसे, कब तक निज बदन सम्हालूंगी॥

* गाना *

हाय ये दुख नित्य का मुझ से सहा जाता नहीं।
सुख का दिन आयेगा कब हा ये नज़र आता नहीं॥
इससे तो उत्तम है येही जहर खाकर प्राण दूं।
ऐसी बद हालत में रहना तो मुझे भाता नहीं॥

जन्म राजा के यहां विधि ने दिया क्या सोचकर ।
भाग्य तो इतना है कम, के कुछ कहा जाता नहीं ॥
है भरोसा सिर्फ तुम्हरा ही मुझे हे प्राणधन ।
बाकी चारों को हृदय इस योग्य ठहराता नहीं ॥
इसलिये तैयार हो पापी को वधने के लिये ।
मेरी विनती पै वो दुर्बुद्धी नजर लाता नहीं ॥

सुन पत्नी के दुःख को, गरज उठा वो वीर ।
आंखें अंगारा हुई, गरमा गया शरीर ॥

बोला ज्यादा नहिं सह सकता, कल निश्चय उसको मारूंगा ।
इस में भाई की आज्ञा की, हरगिज नहिं राह निहारूंगा ॥
तुझ अबला पर संकट ढाकर, वो जीता रहे जमाने में ।
धिक्कार है मेरे हाथों को, लानत है गदा उठाने में ॥
जब तक मेरे दम में दम है, तेरा न धर्म जा सकता है ।
मारूंगा निश्चय कीचक को, कोई न अब बचा सकता है ॥
तू उसको बातों में फुसला, नाटकशाला में ले आना ।
मैं उसे वहीं बध डालूंगा, मत भेद किसी को बतलाना ॥
सुन बचन हृदय कुछ शान्त हुआ, पंचाली घर वापिस आई ।
सोगई आनकर शैय्या में, लेकिन न इसे निद्रा आई ॥
जैसे तैसे वो रात कटी, होते हि प्रात कीचक आया ।
बोला तेरी क्या इच्छा है, क्या मेरा रूप नहीं भाया ॥
... निराश लौटने में, तेरा नुकसान सरासर है ।
इस पुर विराट में नहीं कोई, जो बल में मेरे हमसर है ॥

वो धाक मेरी यहां छाई है, डरते हैं मुझसे महाराजा ।
मैं सेनप नहीं असलियत में, हूं यहां की गद्दी का राजा ॥
कल की बातों को चित में ला, जब मैंने तुझको मारा था ।
चूं तक भी किसी ने करी नहीं, सोचो क्या रुआब हमारा था ॥
करले अब अंगीकार मुझे, तेरा सेवक बन जाऊँगा ।
जितनी स्त्रियां हैं उन सबसे, तेरी सेवा करवाऊंगा ॥

बोली कृष्णा ध्यान धर, सुनो हमारी बात ।
गंधर्वों के कोप से, मेरा हृदय डरात ॥

पर आज अर्ध रात्री बीते, तुम नाटकशाला में आना ।
है वो बिलकुल ऐकान्त जगह, वहां करूंगी तेरा मनमाना ॥
नहिं जानत हैं गंधर्व उसे, सुख की हरगिज न कसर होगी ।
बस मेरी आपकी उस घर में, अति सुख से रात बसर होगी ॥
उन लोगों से बचने के लिये, मैंने यह युक्ति निकारी है ।
यह भेद किसी को मिले नहीं, नहिं होगी हानि तुम्हारी है ॥

बोला कीचक श्रेष्ठ है, आऊंगा उस ठौर ।
उस घर से उत्तम प्रिया, जगह नहीं है और ॥

खिलगया है हृदय कमल मेरा, तेरी प्यारी बातें सुनकर ।
क़िस्मत ने पलटा खाया है, जो मिली तेरे सम हूर नज़र ॥
जावो अब घर में गमन करो, मैं भी अपने घर जाता हूँ ।
नाटकशाला में आने का, बस अभी से साज सजाता हूँ ॥
श्रोताओं ! कामी पुरुषों को, परिणाम नहीं दृष्टी आता ।
मोठी बातों के सुनते ही, मन मृग तृष्णा में फंस जाता ॥
रोके से रुकते कभी नहीं, मृत्यू मुख में घुस जाते हैं ।
ऐसे अंधे जो होते हैं, अपना जीवन खो आते हैं ॥

कीचक ने अपनी मृत्यु रूप, सैरिन्ध्री को नहिं पहिचाना ।
उसकी मीठी बातों को सुन, अपने को खुश किस्मत जाना ॥

अल किस्सा कीचक गया, अपने घर की ओर ।
आई कृष्णा दौड़कर, बल्लभ थे जिस ठौर ॥

मौका पा सारा हाल कहा फिर बोली भूल नहीं जाना ।
वो दुष्ट वहाँ आजावेगा, जीवन हर यमपुर पहुँचाना ॥
विश्वास दिलाया बल्लभ ने, कृष्णा तो महलों में आई ।
उस तरफ भवन जा कीचक ने, कई तरह की वस्तू मंगवाई ॥
निर्मल जल से अस्नान किया, उत्तम उत्तम कपड़े धारे ।
मोके मोके पर आभूषण, पहरे द्युति वाले रतनारे ॥
फिर अधिक सुरा का पान किया, दिन काटा अति कठिनाई से ।
जब अर्ध रात्री बीत गई, तब निकला आतुरताई से ॥
झटपट नाटकशाला पहुँचा, जहां भीम खड़े थे छिपे हुये ।
था अन्धकार सारे घर में, ये था अति मदिरा पिये हुये ॥
उस नशे में कुछ सुधबुध न रही, अंदाज से उनके निकट गया ।
और इनको सैरिन्ध्री हि जान, आतुर हो तन से लिपट गया ॥
फिर कहा प्रिये चुपचाप हो क्यों, क्या डर है हंसो हंसावोना ।
व्याकुलता को अब शान्त करो, दुखिया को अधिक दुखावोना ॥

धीमे स्वर से पांडुसुत, बोले मत घबराउ ।
होता है अब शान्त मन, कछुक देर गम खाउ ॥
यों कहकर बलवीर ने, पकड़े इसके बाल ।
लात जमा घूंसा दिया दिया जमी पर डाल ॥

उड़गया नशा सब कीचक का, सोचा द्रुपदा ने दगा किया ।
मुझको भोली भाली बातें, कह ज्ञान ध्यान सब भुला दिया ॥

अच्छा पापिन कुछ धीर धार, इसको यम लोक पठाता हूँ ।
आता हूँ फिर तेरे समीप, करणी का मज़ा चखाता हूँ ॥

कहा भीम ने भूलजा, कामी कुत्ते नीच ।
उसे न अब देखेगा तू, आई तेरी मीच ॥

तू नर होकर गंधर्वों से, किसतरह विजय पा सकता है ।
जो पर नारी को तकता है, उस को न सुःख आसकता है ॥
पर कीचक ने इन बातों का, उत्तर न दिया मुट्ठी कसकर ।
इस जोर से मारी छाती में, जो पड़े वृकोदर धरती पर ॥
पर झटपट अपने को सम्हाल, उठ खड़े हुये और वार किया ।
एक टांग अड़ा धक्का मारा, कीचक को भूपर डार दिया ॥
फिर बाल पकड़ खींचने लगे, हो विकल वो पापी चिल्लाया ।
तब गला दबाय वृकोदर ने, इस खल को यमपुर पहुँचाया ॥
तिसपर भी गुस्सा कम न हुआ, नफरत से एक ठोकर मारी ।
रगड़ा धरती पर कई बार, तब शान्त हुई तबियत सारी ॥
फिर हाथ पांव और मस्तक को, तत्काल उदर में घुसा दिया ।
इस तरह घमंडी कीचक को, एक गेंद के माफिक बना दिया ॥
आवाज लगा कर कृष्णा को, तहां भीम ने अग्नी उपजाई ।
वो खड़ी हुई थी पास हि में, सुनते ही स्वर भीतर आई ॥
उस खल की यह दुर्दशा देख खुश हो भर्ता को नमन किया ।
सब तरह से पत्नी का हितकर, श्री भीमसेन ने गमन किया ॥

प्रात समय दरबार में, पहुँची खबर तमाम ।
कीचक को गंधर्व ने, पहुँचाया सुरधाम ॥

सुन खबर नरेश उदास हुगे, बोले यह पुर वीरान हुवा ।
हा ! भुजा हमारी टूट गई, यह घर माफिक समशान हुवा ॥

इतने में उसके सौ भाई, आये तहां रुदन मचाते हुये ।
हाथों से मस्तक को धुनते, आंखों से अश्रु बहाते हुये ॥
कुहराम मचगया घर भर में, आखिर नृप ने धीरज धारा ।
बोले हे वीरों मरघट जा, अब दाह कर्म्म करदो सारा ॥
सुन बचन नाट्यशाला आये, कीचक की अरथी बंधवा कर ।
मरघट की ओर बढ़े जल्दी, रोते चिल्लाते दुख पाकर ॥
संयोग से मग में कृष्णा को, इन सब ने खड़े हुये पाया ।
इसकी सूरत को लखते ही, इन लोगों को गुस्सा आया ॥
बोले इस दुष्टा के कारण, कीचक ने प्राण गंवाया है ।
ले चलो पकड़ के मरघट में, इसका भि काल नियराया है ॥
भाई के शव के साथ साथ, इसको भी तुरत जलावेंगे ।
बस उसकी मृत्यू का बदला, इससे इस तरह चुकावेंगे ॥

यों कहे पकड़ा झट इसे, दुष्टों ने ललकार ।
बांधा शव के साथ में, रोई द्रुपद दुलारि ॥

बोली गंधर्व मदद करना, पापी मरघट लेजाते हैं ।
दुर्वचनों से मुझ दुखिया को, यह दुष्ट पीर पहुँचाते हैं ॥
इस समय जो देर हुई तुमको, मुझको जिन्दा नहिं पावोगे ।
होवेगा भस्म शरीर तुरत, रो रोकर अश्रु बहावोगे ॥
सुन आरत बानी कृष्णा की, बलवीर शीघ्र तिलमिला उठे ।
झट वस्त्र फेंक तन खाक मली, सिन्दूर लगा तमतमा उठे ॥
होगये अरुण दोनों लोचन, मानो दो अग्नी बाण चढ़े ।
भृकुटी धनु का आकार हुई, फुरती से उठ आगे को बढ़े ॥
जा चढ़े रसोई की छत पर, कूदे और जंगल में धाये ।
...ों के बध की नीयत कर, बलवीर बहुत ही झुंझलाये ॥

एक लम्बा वृक्ष उखाड़ लिया, धर कांधे पै समशान गये ।
कीचक के भाई लखते ही, इस विकट मूर्ति को जान गये ॥
बोले गंधर्व चला आया, अब अपनी कुशल नहीं भाई !
भागो झट यहां से जीव बचा, नहिं सब की मौत निकट आई ॥

करते थे यों बात वे, भीम इधर रिसियाय ।
कर में पेड़ सम्हाल कर, गिरे बीच में आय ॥

जिस तरह बनेटी फिरती है, ऐसे ही वृक्ष घुमाने लगे ।
कीचक के सब भ्राताओं को, करनी का मजा चखाने लगे ॥
वे अरथी को भू पर रख कर, भागे, पर भाग नहीं पाये ।
वो विकट मार हर तरफ करी, भय से व्याकुल हो थर्राये ॥
भूमी पर आखिर गिरने लगे, बारी बारी से जी खो कर ।
कुछ देर में सारे लेट गये, वो भीम ने दिखलाये जोहर ॥
फिर कृष्णा को अरथी से खोल, मरघट में लहाशें पहुँचाई ।
सबको ऊपर नीचे चुनकर, धर लकड़ी अग्नी चेताई ॥
होगये भस्म उप कीचक सब, बोले तब भीम मधुर वानी ।
हे प्राण प्रिया ! घर मे जावो, होगई तुम्हारी मन मानी ॥

मैं भी आता हूं तुरत, लेकर कुछ विश्राम ।
सुन आज्ञा द्रौपद सुता, चली गई निज धाम ॥

राजा ने जब यह खबर सुनी, गंधर्वों के भय से घबरा ।
दरबार से उठ सोचते हुये, बोले यों रानी के ढिंग जा ॥
हे प्राण प्रिया गंधर्वों ने, यह कैसा द्वन्द मचाया है ।
कीचक के सब भ्राताओं को, यमपुर का अतिथि बनाया है ॥
सैरिन्ध्री है अति रूपवती, रक्षक उसके बलशाली हैं ।
उसका यहां रहना ठीक नहीं, क्यों झगड़े की जड़ पाली है ॥

बेहतर है उसे निकालो तुम, वरना ये राज चोपट होगा ।
क्या खबर प्रिया, गंधर्वों की, अब भेट में कोन सुभट होगा ॥

इसी तरह कर रहे थे, राजा रानि विचार ।
इतने में पंचालि से, आंख हुई दोचार ॥

बोली रानी हे सैरिन्ध्री, गंधर्व के अत्याचारों से ।
भय खाती है रैय्यत सारी, हैरान हो दुर्व्यवहारों से ॥
इसलिये यहां से चलदे तू मैं तुझको रख कर पछताई ।
तेरे हि सबब भ्राताओं पर, इस तरह की घोर विपत्त आई ॥

कहा द्रौपदी ने दया, करो रानि चित लाय ।
कुछ दिन में गंधर्व गन, ले जावेंगे आय ॥
काट रहे थे दिवस ये, "श्रीलाल" इस ठौर ।
उत कुरुओं ने क्या किया, सुनो वही बागौर ॥

॥ ग्यारवां भाग सम्पूर्ण ॥

महाभारत ॐ बारहवां भाग

कुरुओं का गौ हरन

श्रीलाल

महाभारत ॐ बारहवाँ भाग

कुरुओं का गौ हरन

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—

महाभारत पुस्तकालय, अजमेर.

मुद्रक—के हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

तृतीयावृत्ति २०००

विक्रमी सम्वत् १९९४
ईस्वी सन् १९३७

मूल्य ।-) आने

❀ प्रार्थना ❀

दर्श निज दास को तुम क्यों न दिखाते मोहन ।
ध्यान विनती पै मेरी क्यों नहीं लाते मोहन ॥
भक्त वत्सल हो अगर भक्त के प्रणपालक हो ।
भक्ति वरदान मुझे क्यों न दिलाते मोहन ॥
पाप के बोझ से दिन रात दबा जाता हूँ ।
हाथ में हाथ ले तुम क्यों न उठाते मोहन ॥
मुझ से पापी व अधम कितने हि तारे तुमने ।
मेरी हालत पै रहम क्यों नहीं खाते मोहन ॥
तुमसा दानी जो मिले फिर क्यों कसर रहजाये ।
चरण की शरण में तुम क्यों न रमाते मोहन ॥

मङ्गलाचरण

रक्ताम्बर धर विघ्न हर, गौरीसुत गणराज ।
करना सुफल मनोर्थ प्रभु, रखना जन की लाज ॥
सृष्टि रचन, पालन, हरन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश ।
बानी, रमा, उमा सुमिल, रक्षा करहु हमेश ॥
वन्दहुं व्यास विशाल बुधि, धर्मधुरंधर धीर ।
"महाभारत" रचना करी, परम रम्य गम्भीर ॥
जासु वचन रवि जोति मम, मेटत तम अज्ञान ।
वंदहुं गुरु शुभ गुण भवन, मनुजरूप भगवान ॥

* ॐ *

नारायणं नमस्कृत्य, नरंचैव, नरोत्तमम् ।
देवी, सरस्वतीं, व्यासं ततो "जय", मुदीरयेत् ॥

कथा प्रारम्भ

बारह वर्ष खतम हुये, लगा तेरवां साल ।
दुर्योधन ने दूत कुछ, बुलवाये तत्काल ॥
और कहा नदी, नद, बन, उपवन, पर्वत के शिखर, गुफाओं में ।
शत्रुओं और मित्रों के घर, जनपूर्ण नगर और गांवों में ॥
चतुराई से निज भेष बदल, दूतों सब जगह सिधाना तुम ।
पांडवों सहित पांचाली का, हर तरह से पता लगाना तुम ॥
यदि खबर मिली उन लोगों की, फिर उनको वन भिजवावेंगे ।
देंगे तुमको गहरा इनाम, कई गांव का धनी बनावेंगे ॥

कौरवपति का हुक्म पा, चले दूत पुलकाय ।
सभी जगह देखा मगर मिले न पांचों भाय ॥
हो निराश हस्तिनापुर आये, दरबार में गये सुयोधन के ।
जहां बैठे थे कृप, द्रोण भीष्म, और रविसुत मय दुःशासन के ॥
बोले महाराज परिश्रम कर, हमने सब जा देखा भाला ।
पर उनका खोज मिला न कहीं, संभव है जीवन तज डाला ॥
बन के संकट सहते सहते, होगये थे कृश पांचों भाई ।
इसलिये छोड़ अपना शरीर, सब दुःखों से छुट्टी पाई ॥
होगये आप शत्रुओं रहित, निष्कंटक राज चलाओ अब ।
आनन्द से करो प्रजा पालन, सब सोच फिकर बिसराओ अब ॥

समाचार इक और है, सुनलो कृपानिधान ।
कीचक ने भ्रातों सहित, खोई अपनी जान ॥

इनके मरजाने का कारण, कहते हैं पुर विराट् वाले ।
गंधर्वों ने अति क्रोधित हो, आ प्राण सबों के हर डाले ॥
बैठा था यहां त्रिगर्त भूप, जिसका शुभ नाम सुशर्मा था ।
था ये भी महाबली योधा, संग्राम में अद्भुत कर्मा था ॥
लेकिन कीचक ने कई बार, इसको रण मांहि हराया था ।
अनगिनती योधाओं को वध, भू में सब गर्व मिलाया था ॥
कीचक के वध की खबर पाय, इस नृप को परमानन्द हुआ ।
जितना पहिले तेजस्वी था, अब उससे यह चौचंद हुआ ॥
योधा कीचक के मरने से, नृप विराट् तेजो हीन हुये ।
उस वीर के प्राण गमाते ही, बलहीन और अति दीन हुये ॥
अच्छा अवसर है कौरवेश, सेना ले उन पर चढ़ जाओ ।
जिनसे हम हारे आज तलक, उनको अब नीचा दिखलाओ ॥
उस पुर में लाखों गायें हैं, है द्रव्य बहुत सब लावेंगे ।
हर वर्ष खिराज वसूल करें, निज विजय ध्वजा फहरावेंगे ॥

दुर्योधन ने कर्ण से, पूछी इस में राय ।
कहा इन्होंने ठीक है, लो सेना सजवाय ॥

पर पांडव हैं अति ही ज्ञानी, वे मरे नहीं जीते होंगे ।
किसी पुर में अति चतुराई से, रहते खाते पीते होंगे ॥
करते होंगे वे कालक्षेप, जब वर्ष पूर्ण हो जावेगा ।
हर एक वीर क्रोधित होकर, रण करने को चढ़ आवेगा ॥
इस साल में कुछ दिन बाकी हैं, अपनी सामर्थ्य बताओ तुम ।
कुछ और भी दूतों को भिजवा, एक बार फेर ढुंढ़वाओ तुम ॥
कीचक जैसे बलवानों का, मरजाना भी आश्चर्य हुआ ।
मेरा तो है अन्दाज यही, पांडवों के द्वारा कार्य हुआ ॥
[इ]स पुर पर धावा करने में, मैंने दो काम विचारे हैं ।
[स]ब उपस्थित जनों सुनो, दोनों में लाभ हमारे हैं ॥

सेना द्वारा जब धावा कर, उनकी गउऐं हर लावेंगे ।
यदि पांडव वहां हुये तो वे, निश्चय लड़ने को आवेंगे ॥
प्रण है ये भूप युधिष्ठिर का, जब गौ पै संकट आता है ।
जब तक वो नहीं निवारण हो, हरगिज न अन्न जल खाता है ॥
अस्तू यदि पांडव प्रगट हुये, अव्वल तो देह बिसारेंगे ।
और नहीं तो तेरह वर्षों को, वे बन में फेर सिधारेंगे ॥
वे न मिले तो फिक्र नहीं, निश्चय होगी जीत ।
बल भी कुछ बढ़जायगा, अस्तु ठीक है नीति ॥
सब वीर हुये सहमत इससे, तब सेन सुशर्मा सजवा कर ।
दुर्योधन को मस्तक नवाय, चलदिया अगाड़ी हर्षा कर ॥
फिर कुरुपति ने भी तत्पर हो, झट रण का डंका बजवाया ।
मतवाले मस्त हाथियों को, सब साज लोह का पहराया ॥
चतुरंग सेना तैयार हुई, चलपड़े तुरंत, गज मतवाले ।
रथि, महारथी, अतिरथी चले, कुछ पैदल थे भट बलवाले ॥
उस अकथ सैन के चौतरफा, ध्वनि शंख आदि की छाई थी ।
था रव अति विकट नगाड़ों का, बज रही थी कई सहनाई थी ।
गा गा कर मारू राग सभी, वे वीर गर्जते जाते थे ।
डिगमिग करती थी भूमि सभी, और शैल लर्जते जाते थे ॥
इस बृहत् फौज में शामिल थे, नृप कलिंग व भगदत नरराई ।
जयद्रथ, लक्ष्मण काम्बोज भूप, अति समर भयंकर भयदाई ॥
दुःशासन शकुनी, कृतवर्मा, और कर्ण, शल्य अति बलधामा ।
श्री कृपाचार्य, भीषम व द्रौण, महारथी वीर अश्वत्थामा ॥
नृप सोमदत्त अरु वाहलीक, सब भूरिश्रवा भटमानी के ।
होगये इकट्ठे वीर यहां, सह विकरण अति बलवानी के ॥
ये सब अगणित फौज ले, चले सहित अति ठाट ।
कुछ दिवसों में जाय कर, घेरा नगर विराट् ॥

दक्षिण की वीर सुशर्मा ने, गायें हरली धावा करके ।
कुछ ग्वाल मरे कुछ कैद हुये, कुछ भागे जीव बचा करके ॥
पहुँचे भूपति पै जाय सभी, बोले हा हाय अनर्थ हुआ ।
हरली सब गौ सुशर्मा ने, सब यत्न हमारा व्यर्थ हुआ ॥
धावो महाराज वेग धावो, यदि वक्त गया पछताओगे ।
यदि वो अपने घर जा पहुँचा, फिर गउओं को नहिं पावोगे ॥
हैं तन्त्रिपाल अति बुद्धिमान, जिन खुरा रोग उपजाया है ।
क्षणभर में सारे पशुओं को, निश्चल एक जगह बनाया है ॥

प्राण सरिस गौजाति पर, सुनकर ऐसी भीर ।
गुस्से से महाराज का, गरमागया शरीर ॥

संकेत सभा वालों को कर, बोले वीरों क्या देरी है ।
उस दुष्ट कृतघ्न सुशर्मा ने, अपनी सब गउएं घेरी हैं ॥
कीचक के कर से ये पापी, कइ बार हारकर भागा है ।
अब उसको मरा हुआ सुनकर, आया यहां फेर अभागा है ॥
कुछ फिक्र नहीं हिम्मत करके, तुम भी अब कीचक बन जाओ ।
दे दण्ड दुष्ट को भुजबल से, गउओं को शीघ्र छुडा लाओ ॥
हम लोगों के जीवित रहते, यदि वे सब हरली जायेंगी ।
तो फिर क्या ये दुनियां हमको, क्षत्री कहकर अपनायेगी ॥

कभी नहीं वह कहेगी, हमको क्षत्रि-कुमार ।
बल्कि नीच पामर अधम, वंश - लजावन—हार ॥

इसलिये तुम्हारा धर्म है ये, गउओं को मत जाने देना ।
जिस तरह बने वीरों रण कर, उनको तत्काल छुडा लेना ॥
यह सुनतेही कि गउओं पर, किसी तरह का संकट आया है ।
हरएक क्षत्रि का कर्त्तव्य है, जो आर्य देश में जाया है ॥
कि गौ पीड़क को फौरन ही, भुजबल से यमपुर पहुँचावे ।
य और काम में चित्त धरे, पर प्रथम न भोजन तक खावे ॥

गौ मात सताई जाय रहीं, ये लख जो चुप हो जाते हैं ।
वे पापात्मा इन्सान नहीं, पशु से बदतर कहलाते हैं ॥
उनको चहिये जग को न कभी, अपना काला मुँह दिखलावें ।
बल्की जो सब से निकट होय, उस कुये में गिर कर मरजावें ॥
भ्राताओं ! गौ रक्षा हित ही, हम लोगों ने तन धारा है ।
जबतक इनको न छुड़ावेंगे, उतरेगा ऋण न हमारा है ॥
कुछ सोचो और विचार करो, गौ माता ने हम तुम सब पर ।
कितने भारी उपकार किये, करती है करेगी जीवनभर ॥
जननी ने तो बचपन में ही, निज पय का स्वाद चखाया है ।
उसमे भी स्वार्थ बुद्धि रक्खी, निस्वार्थ कभी नहिं प्याया है ॥
पर गउओं को तो लखो, स्वारथ से मुख मोड़ ।
देती हैं नित पय हमें, बछड़ों तक को छोड़ ॥
हमने हि नहीं पूर्वजों ने भी, इसके ही पय का पान किया ।
है यही हमारी सच्ची मां, इसने हि हमें बलवान किया ॥
ऐसी उपकारिन के ऊपर, वीरों अब आफत आई है ।
इस समय चुप्प रहजाने में, होगी अपनी न भलाई है ॥
अस्तु उठकर कस कमर और, ले रिपुनाशक तलवारों को ।
दिखलादो योधाओं रण में जाकर जौहर हत्यारों को ॥
जबतक कर में तलवार रहे, तन मांहि जबतलक जान रहे ।
तबतक गौ हरने वालों का, रण में होता बलिदान रहे ॥
धिक धिक है उन आंखों को जो, हो सितम गौ पर अन्ध देखें ।
वे कर भी बिल्कुल व्यर्थ हैं जो, गौ पीड़क की जां रहने दें ॥

गाना

देखना क्षत्रियों निज धर्म गमाना न कभी ।
बड़ों की कीर्ती मे दाग लगाना न कभी ॥

गौ रक्षा को ही हम इस जगत मे आये है ।
स्वप्न मे भी यह कर्तव्य भुलाना न कभी ॥
समझो बस गाय को ही भाइयो सच्ची माता ।
इसके दुख मेटने मे मुंह को छिपाना न कभी ॥
अस्तु तत्पर हो तुरत अपने शस्त्र ले लेकर ।
देर यदि हो गई तो वक्त ये आना न कभी ॥

कहो सभा वालो कहो, खोलो जरा जबान ।
चुप होगे क्या गाय पर, विपता आई जान ॥
नृप वचन श्रवण करते करते, इनपर बस लाली छाने लगी ।
होगई कुटिल भृकुटी पल में, आंखें अग्नी बरसाने लगी ॥
झट बोल उठे एक हि स्वर से, कर में हथियार उठा करके ।
नहिं महाराजा हम कभी नहीं, बैठेंगे मौन साध करके ॥
ये तब होगा जब भारत में, योधा न एक भी पायेगा ।
क्षत्रियों के सारे वंशों का, नामो निशान मिट जायेगा ॥
जब तक क्षत्री हैं दुनियां में, तब तक तलवार चलावेंगे ।
गौ हरने वाले दुष्टों को, यमपुर का अतिथि बनावेंगे ॥
पूजेंगे गौ को माता सम, हर के उसके संकट सारे ।
भारत की भूमि गुंजादेंगे, करके इसके शुभ जयकारे ॥
नृप जब तक सीने में दिल है, दिल में मा का नेह पायेगा ।
तब तक न किसी में हिम्मत है, जो इनको हर ले जायेगा ॥
इसलिये भूप बस उठो और, झट रण का डंका बजवादो ।
कसवाउ हाथियों पर हौदे, घोड़ों पर जीनें डलवादो ॥
सभासदों के बचन सुन, हर्ष उठे महाराज ।
सेनप को आज्ञा हुई, सजो युद्ध का साज ॥
सुन हुक्म तयारी शुरू हुई, सज २ अगणित रथ आने लगे ।
होगये सवार रथी सारे, और अस्त्र शस्त्र चमकाने लगे ॥

सारथी रथों के ऊपर चढ़, चोटी पर ध्वजा गाड़ते थे।
काले बादल सम भयदाई, मदमस्त हस्ति चिंघाड़ते थे॥
धीरे धीरे चतुरंग सेना, मैदान में आकर जुड़ने लगी।
होगया शुरू धौंसे का स्वर, बाजों की अति ध्वनि होने लगी॥
महाराज सुनहला कवच धार, आ पहुँचे आतुरताई से।
झट मध्य भाग के खड़े हुये, फिर बोले अपने भाई से॥
हे शतानीक! बल्लभ, ग्रंथिक, और तन्त्रिपाल को बुलवाओ।
ऋषि कंक को भी मम आज्ञा से, रण के साजों से सजवाओ॥
ये चारों वीर दृष्टि आते, ये भी निज बल दिखलावेंगे।
अनुमान है मेरा ये रण में, हरगिज नहिं पीठ बतावेंगे॥

इधर कररहे थे नृपति, सेना को तैयार।
उधर कथा जो रहगई, सुनो सभी सरदार॥

"नगरी की गायें हरी गई", जब रैयत ने ये सुन पाया।
तज दिया एक दम काम सभी, सब के तन में गुस्सा छाया॥
बोले, नृप क्या खामोश हुये, या नहीं उन्होंने सुधि पाई।
जो अबतक गौ छुड़ाने की, तरकीब न कोई करवाई॥
अच्छा कुछ फिक्र नहीं चाहे, नृप अपना धर्म गमा देवें।
वैभव के वशीभूत होकर, गउओं का ध्यान भुला देवें॥
लेकिन हम लोग हरा जाना, उनका अवलोक नहीं सकते।
जबतक दम में दम बाकी है, घर में छिप बैठ नहीं सकते॥

अस्तु भाइयों चल पड़ो, तजकर काम तमाम।
जब तक गौ पर भीर है, नहीं हमें आराम॥

कर ये सलाह पुरवासी भी, तलवार व डंडे ले ले कर।
चल दिये छुड़ाने गौओं को, वृद्ध जवान सब मिलजुल कर॥
आगे आते ही क्या देखा, नृप विराट की सेना भारी।
भूपाल सुशर्मा से लड़ने के लिये कर रही तैयारी॥

और महाराजा खुद घूम घूम, उनको व्यूह बद्ध बनाते हैं।
जो वीर जहां के लायक है, उसको बस वहीं टिकाते हैं॥
ये कहते ही सब चकराये, पहिले गौ का जयकार किया।
फिर बड़े प्रेम से भूपति का, ले नाम जगह को गुंजा दिया॥
अपनी रैयत का गौओं पर, लख सनेह दृढ़ नृप हरषाये।
और मुखियाओं को निकट बुला, सुख सहित बचन यों फरमाये॥
हे पुरवालों! अवलोक तुम्हें, मुझको अत्यन्त खुशी छाई।
पर अब तुम लौट चले जाओ, हम जाते हैं रण के ताईं॥
अव्वल तो हम लावेंगे ही गौओं को शीघ्र छुड़ा करके।
यदि हम सारे बलिदान हुये, तो फिर तुम लड़ना जा करके॥

लौटी रैयत श्रवण कर, नृप आज्ञा तत्काल।
इधर भूप रण को चले, सुमिर हृदय गोपाल॥

धन घोर शब्द बाजों का था, गज धूल उड़ाते जाते थे।
जोशीले वीर मस्त होकर, बस मारू राग सुनाते थे॥
धुन थी सब को देखें जल्दी, गौ हर ले जाने वालों को।
कीचक के मरते ही पुर पर, अतिशय दुख दाने वालों को॥
इसलिये शीघ्रता से चलकर, लगभग संध्या को कटकाई।
गोपद चिन्हों को तकती हुई, रिपुओं के निकट चली आई॥

नृप विराट् की फौज को, सन्मुख आती जान।
त्रिगर्तियों ने भी किया, लड़ने का सामान॥

गौओं की रचा का प्रबंध, करके झट व्यूह बनाय दिया।
होगये खड़े मैदां में सब, और धनु पर बाण चढ़ाय लिया॥
ज्योंही ये कुछ आगे आये, लोहे से लोहा बजने लगा।
ऐसा लोमहर्षण युद्ध हुआ, सर एक एक का कटने लगा॥
बह चली लहू की नदी विकट, लोथों पर लोथें गिरती थीं।
जन्तुक, वेताल, गिद्ध खावें, योगिन खप्पर ले फिरती थीं॥

घोड़ों से घोड़े गज से गज, पैदल से पैदल भिड़ते थे।
रथवालों के सन्मुख आकर, रथवाले क्रोधित लड़ते थे॥
रवि अस्ताचल में पहुँच गया, रण बंद नहीं होने पाया।
उस अंधकार में अंधाधुंध, वीरों ने भुजबल दिखलाया॥
वो झपट झपट रण करते थे, परवाह नहीं थी प्राणों की।
गिरते थे फिर उठ लड़ते थे, करते थे चोटें बाणों की॥

अटकल से होता रहा, कछुक देर संग्राम।
इतने में नभ में हुये, प्रगट चन्द्र सुख धाम॥

छिड़ गया फेर घन घोर युद्ध, वर्षा सम शस्त्र बरसने लगे।
घायल योधा चिल्लाते हुये, पानी के लिये तरसने लगे॥
रुंधगये बहुत घुड़ चालों में, बहुतेरे गज की टक्कर खा।
अगणित नर रथ के नीचे दब, गिर गये भूमि पर चक्कर खा॥
मौका पा वीर सुधर्मा झट, कुछ सुभटों को संग ले धाया।
बाणों से योधाओं को बध, भूपति के निकट चला आया॥
कुछ तीव्र बाण ऐसे मारे, घोड़े बिल्कुल निर्जीव हुये।
मर गया सारथी भी कटकर, नृप भी घायल निःसीव हुये॥
फिर अपने रथ से कूद पड़ा, ले गदा हाथ ऐसा मारा।
जिससे भूपाल हुए बेसुध, स्यंदन भी टूट गया सारा॥
तब कैद कर लिया झट इनको, और अपने रथ में बिठलाकर।
ओलों सम बाण चलाता हुआ, चल दिया सुधर्मा हरपाकर॥

मत्स्य देश की सेन तब, भागी जान बचाय।
कंक ऋषी कहने लगे, बल्लभ के ढिंग जाय॥

नृप विराट को बन्दी करके, वो वीर सुधर्मा ले धाया।
इनके आश्रय में हम सब ने, सब तरह का सुख आनन्द पाया॥
मौका है यही ऋण देने का. जिस तरह बने जल्दी जावो।
बधकर सब सेन सुशर्मा की, भुजबल से उन्हें छुड़ा लावो॥

चले हुक्म को मानकर, लगे उखाड़न नीम ।
कहा कंक ने पास जा, करते हो क्या भीम ॥
ऐसा अद्भुत कर्तव न करो, सब समझेंगे ये वृकोदर है ।
कुछ दिनों और धीरज रक्खो, अब गुप्त हि रहना बेहतर है ॥
सुन वचन हाथ धनु बाण धार, रथ पर चढ़ दौड़े गरमाकर ।
वो विकट मार की बाणों की, रिपु गिरे तुरत चक्कर खाकर ॥
ये देख सुशर्मा ने जल कर, अपने रथ का मुंह फेर लिया ।
आज्ञा दी अपने सुभटों को, जिन भीम को आकर घेर लिया ॥
इतने में माद्री नन्दन भी, तलवार घुमाते आ पहुँचे ।
जिस जगह खड़े थे भीमसेन, उस जगह तुरत ही जा पहुँचे ॥
ये देख वृकोदर पुलकाये, वो घोर भयंकर रण ठाना ।
कुछ नहीं दिखाई देता था, कब तीर निकाला कब ताना ॥
फिर धनुषबाण को डाल दिया, योधा ने गदा उठाय लई ।
हाथी घोड़ों को मार मार, शोणित की नदी बहाय दई ॥
कुछ देर तलक अति युद्ध किया, मर गये बहुत रिपु दल वाले ।
कुछ जान बचा कर भाग गये, तब गरजे भीम गदा वाले ॥
जा पहुँचे निकट सुशर्मा के, एक बार में घोड़ों को मारा ।
सारथि का मस्तक चूरन कर, तत्काल उसे भू पर डारा ॥
विध्वंस कर दिया रथ को भी, ये देख सुशर्मा घबराया ।
चाहा जल्दी से रण तजकर, भागूं, पर भाग नहीं पाया ॥
बीचहि में बलबीर ने, अपना जोर लगाय ।
पकड़लिया औरबांधकर, रथ में दिया बिठाय ॥
फिर अपने महाराज के, सारे बंधन खोल ।
चले भीम भ्राता निकट, गिरधर की जय बोल ॥
पहुँच युधिष्ठिर के, बोले, बलवानी भीम गदाधारी ।
हाराज ! सुशर्मा हाजिर है, क्या देवें इसे सजा भारी ॥

सुन कर भ्राता के बचनों को, वे धर्म धुरंधर नरराई ।
अतिशय आनन्दित हुये और, यों कहन लगे मन मुस्काई ॥
बल्लभ ! अब इसको जाने दो, निज करणी का फल पाया है ।
कटवा कर अपनी सेना सब, बन कैदी अति शरमाया है ॥
आशा है आगे कभी नहीं, ये दुःस्साहस दिखलावेगा ।
औरों का धन हरने के लिये, यों सेन सजा नहिं आवेगा ॥

छोड़ सुशर्मा को दिया, हुक्म भीम ने पाय ।
लज्जित हो वह चलदिया, सबको शीश झुकाय ॥

ज्योंहीं शत्रू मैदान छोड़, कुरु सेना की जानिब धाये ।
त्यों ही महाराजा के योधा, गउओं को निकट हांक लाये ॥
इनके सुखदायक दर्शन कर, सब को आनन्द हुआ भारी ।
रण का सब श्रम होगया दूर, बनगई बदन की छवि न्यारी ॥
तब नृप ने पांडु कुमारों को, प्यारी प्यारी से गले लगा ।
यों कहा मैं ऋणी तुम्हारा हूँ, बस गिनों आज से मुझे सगा ॥
ये राज पाट धन धाम धरणि, जो कुछ है तुम अपनी जानो ।
आजन्म नगर में बास करो, कर राज हर तरह सुख मानो ॥

भुजबल से रिपु को हरा, रक्खा मेरा मान ।
धन्य वीर तुम धन्य हो, युद्ध चतुर गुणवान ॥

सुन बचन युधिष्टिर कहन लगे, क्यों हमें आप शरमाते हैं ।
हम सब के अनदाता होकर, किस कारण विनय सुनाते हैं ॥
जो कुछ हमने यहां काम किया, वो सब कर्त्तव्य हमारा था ।
कुछ आप सरिस हितकारी पर, अहसां करना न विचारा था ॥

अस्तु सुखसहित आज तो, डालो यहीं पड़ाव ।
दूत बुलाकर जीत की, खबर नगर भिजवाउ ॥

सेन सहित महाराज तो, करते थे विश्राम ।
*उत्तर की कुरु सेन ने, हरलीं गाय तमाम ॥

गोपालों का सरदार तुरत, अपने रथ पर चढ़कर धाया ।
आ पहुँचा राज महल में और, †उत्तर कुमार को समझाया ॥
युवराज ! राज की गउओं को, कुरुपति हरके ले जाय रहे ।
गोपालों को कर छिन्न भिन्न, अति तीव्र बान बरसाय रहे ॥
महाराज नगर की रक्षा का, दे गये हैं सारा भार तुम्हें ।
इसलिये अवसि करना चहिये, गो की रक्षा का कार तुम्हें ॥

कहन लगे उत्तर कुंवर, सुनो गोप धर ध्यान ।
करता मैं कुरु सेन से, लड़ने का सामान ॥

लेकिन क्या करूं विवस हूँ मैं, है नहीं सारथी पास मेरे ।
बिन इसके बोलो किस प्रकार, मैं युद्ध करूं हे दास मेरे ॥
इसलिये कहीं से ढूंढ शीघ्र, एक उत्तम सा सारथि लाओ ।
और मेरे चपल तुरंगों को, झटपट स्यंदन में जुड़वाओ ॥
फिर लखना तुम मेरा कौशल, किस तरह बान बरसाता हूँ ।
उस अतुल सेन के दमभर में, सब होश हवास भुलाता हूँ ॥
लखकर नगरी को फौज रहित, वे दुष्ट यहां चढ़ आये हैं ।
गोपालों को भुजबल दिखला, गउओं को लेकर धाये हैं ॥
लेकिन जब वे सन्मुख रण में, उत्तर के तीर निहारेंगे ।
तो मन में अति भय भीत होय, रण तज कर यही विचारेंगे ॥
ये पांडु-पुत्र श्री अर्जुन हैं, वा हैं स्वर्गेश वज्रधारी ।
या धनुर्वेद ने तन धर कर, कीन्हीं लड़ने की तैयारी ॥

*उत्तर दिशा ।
† उत्तर-महाराज विराट् का लड़का ।

※ गाना ※

कुरुओं के एक पल मे सब होश भुलादूंगा ।
दुर्योधनादि को झट भूमी मे सुलादूंगा ॥
उत्तर कुंवर के रहते गायें नगर से जावें ।
ऐसा न कभी होगा मै जान लड़ादूंगा ॥
गिनते है निजको वे सब दुनियांके श्रेष्ट योधा ।
उनका घमंड सारा मिट्टी मे मिलादूंगा ॥
हे गोप जल्द जाकर ला सारथी कहीं से ।
रण मे मै आज रिपुओ का खून वहादूंगा ॥

खड़े हुये थे पास ही, अर्जुन भी रणधीर ।
हरषाये अति श्रवण कर, उत्तर की तकरीर ॥

फौरन पंचाल नंदिनी के, ढिंग जाय इन्होंने फरमाया ।
हे प्रिया तेरवें साल से भी, कुछ अधिक समय होने आया ॥
अस्तू मैं भय से रहित हुआ, तुम उत्तर को ये समझाओ ।
रथ का सारथि ब्रहन्नला बना, तत्काल युद्ध में ले जाओ ॥
इसने अर्जुन के संग रहकर, जीती है एक लड़ाई भी ।
इसलिये युद्ध में लेजा कर, देखो इसकी चतुराई भी ॥
यदि वो मुझको ले जावेगा गायें सारी ले आऊँगा ।
और पापी दुर्योधन को भी, थोड़ा सा मजा चखाऊँगा ॥

कृष्णा ने जाकर कहा, उत्तर से ये हाल ।
सुन इसने श्रीपार्थ को, बुलवाया तत्काल ॥

और कहन लगा हे बृहन्नला, कुरुओं ने दन्द मचाया है ।
पुर की सब गायें हरी और, गोपों को मार भगाया है ॥
आ रहा है गुस्सा तो मुझको, पर विन सारथि लाचारी है ।
यदि इसमें तू कुछ मदद करे, हो पूरी आश हमारी है ॥
मुझको ये मालूम हुआ अभी, तू चतुर है अश्व चलाने में ।
अस्तू चल जल्दी साथ मेरे, क्या रक्खा है यहां गाने में ॥

कुरुओं को भुज बल से जय कर, गायें सारी ले आऊंगा ।
फिर घर आकर तुझको निश्चय, परितोषक खूब दिलाऊंगा ॥
अर्जुन बोले मैं क्या जानूं, रथ हांकन किसको कहते हैं ।
हम तो हे कुँवर यहां निशिदिन, गाते व नाचते रहते हैं ॥
यदि कहो तो आसावरी, देश, ठुमरी, केदारा, कव्वाली ।
हिंडोल, मेघ, दीपक, मल्हार, सोरठ, व भैरवी, भोपाली ॥
सारंग, टोड़ी, दादरा, ख्याल, भैरव, सिंधू, श्री राग सभी ।
लावनी सोहनी, मालकोश, आदिक बतलाऊँ तुरत अभी ॥
गायक को सारथि करते हो, क्यों तुमने बुद्धी बिसराई ।
कुछ सोचो क्लीवों ने भि कभी, रण में चतुराई दिखलाई ॥
पर खैर तुम्हारी मन्शा है, तो फिर मैं किम नट सकता हूँ ।
तनु त्राण मुझे भी पहिरा दो, मैं साथ तुम्हारे चलता हूं ॥

उत्तर ने निज हाथ से, पहिराया तनुत्राण ।
बैठे रथ में शीघ्र ही, कर में ले धनुबाण ॥

ये देख उत्तरा कहन लगी, गुड़ियों के वस्त्र बनाऊंगी ।
कुरुओं के कपड़े ले आना, नहिं तो गालियाँ सुनाऊँगी ॥
अर्जुन बोले यदि राजकुँवर, सेना को मार हटावेंगे ।
तो हम ये सच्ची कहते हैं, उनके कपड़े ले आवेंगे ॥
कह इतना पार्थ तुरत रथ को, रजधानी के बाहर लाये ।
इन की ऐसी चतुराई लख, उत्तर कुमार अति चकराये ॥
और निर्भयता से कहन लगे, रथ को अब वेग चलाओ तुम ।
गौ हरने वालों के सन्मुख, मुझको जल्दी पहुँचाओ तुम ॥
ये सुन रथ हांक पवन सदृष्य, सेना के ढिंग जा ठहराया ।
उस जलनिधि सम कौरवदल को, लख राज कुँवर अति घबराया ॥
हिन हिना रहे थे अश्व तहां, मद मस्त हस्ति चिंघाड़ते थे ।
रण बाजों के गम्भीर शब्द, कानों के पर्दे फाड़ते थे ॥

कहिं शंख बज रहे थे व कहीं, सहनाई की ध्वनि आती थी ।
हज्जारों स्वर्ण स्यंदनों पर, बहु रङ्ग ध्वजा फहराती थी ॥
वीरों के शस्त्रों की चमकें आती थीं दृष्टि दामिनी सम ।
अति धूल गगन में छाने से, हो रहा था दिवस यामिनी सम ॥
अतुलित बल शाली वीर कई, सेना की रक्षा करते थे ।
फुरती से आगे पीछे को, स्यंदन दौड़ाते फिरते थे ॥
होगये कुँवर के रोम खड़े, बोला अर्जुन से भयखाकर ।
हे बृहन्नला रथ को फेरो, लेचलो हमें अपने घर पर ॥

मैं इकला कहु किस तरह, इन पर करूँ प्रहार ।
नेत्र खोल सेना लखो, जल निधि सरिस अपार ॥

इनसे तो सुरपति भी लड़कर, नहिं जीतेगा निश्चय हारे ।
बतलाओ कैसे मृग शावक, सिंहों के झुन्डों को मारे ॥
सेना से लड़ना दूर रहा, लखते ही होश भुलाया है ।
छागया अंधेरा आंखों में, सारा शरीर थर्राया है ॥
ले चलो फिरा कर रथ मेरा, मैं तेरे चरण पकड़ता हूं ।
हे बृहन्नला बस दया करो, आरत हो विनती करता हूं ॥
सब सेना लेकर पिता मेरे, दक्षिण की तरफ सिधारे हैं ।
हम इकले क्या कर सकते हैं, कुरुओं के अब पौबारे हैं ॥

राज कुंवर की बात सुन, पांडु सुवन बलवीर ।
बोले, उत्तर अभी से, क्यों खोते हो धीर ॥

हैं शान्त अभी सारे शत्रु क्या संकट तुम पर आया है ।
छिः क्षत्री बालक होते हुये, डरपोकपना दिखलाया है ॥
घर में घमंड से कहते थे, कुरुओं को मार भगाऊँगा ।
नगरी की सारी गौओं को, तत्काल छुड़ाकर लाऊंगा ॥
वे सारी बातें गईं कहां, लखते हि कटक क्यों घबराये ।
यदि ऐसा था तो कृत बना, क्यों मुझको अपने संग लाये ॥

सिंहों के पुत्र कहा करके, मत स्यार बनो आगे धावो ।
वीरोचित कर्म करो उत्तर, साहस रक्खो मत घबराओ ॥
जो सच्चे वीर कहाते हैं, बढ़कर पीछे नहिं हटते हैं ।
या तो रिपुओं का जीवन लें, या समर क्षेत्र में कटते हैं ॥
क्षत्री वीरों को भाग्यहि से, संग्राम की भूमी मिलती है ।
क्योंकि इनकी बस इसी जगह, मुरझाई कलियां खिलती हैं ॥
यदि जय पाई तो नाम हुआ, मरगये तो स्वर्ग चले जाते ।
इसलिये युद्ध मैदां लखकर क्षत्री नहिं डरते, हरषाते ॥
फिर एक बात यहां और भी है, तुम गौ रक्षा को आये हो ।
है धर्म. मुक्ति उनकी करना, फिर काहे को शरमाये हो ॥

उनकी मोक्ष न हुई यदि, मोक्ष तुम्हारी होय ।
उभय भांति अच्छाहि है, क्यों जाते यश खोय ॥

हे बृहन्नला चाहे जो हो, मम धर्म रहे या मिट जावे ।
चाहे स्त्रियां हंसे मुझे, या पिता भी आंखे दिखलावें ॥
कौरव चाहे सर्वस्व हरें, गायें जावें या शहर लुटे ।
ले चल मेरे रथ को वापिस, लख फौज मेरा तो हृदय फटे ॥
ये रज है या घनघोर घटा, हैं बाजे या मेघ गरजते हैं ।
तलवारें बिजली सम चमकें, योधा किस भांति तरजते हैं ॥
कुछ ओर छोर नहिं सेना का, मानो समुद्र लहराय रहा ।
ये देख धड़कता है हृदय, तन मूर्छित होता जाय रहा ॥
इसलिये चलो घर को वापिस, हरगिज नहिं युद्ध करूंगा मैं ।
हे बृहन्नले मत देर करो, इस समय न एक सुनूंगा मैं ।
क्यों नहीं फेरता रथ को तू, क्यों मेरे प्राण गंमाता है ।
ले राज कुंवर तो पैदल ही, महलों को भागा जाता है ॥

यों कह उत्तर कूद कर, भाग चला अकुलाय ।
पर अर्जुन ने क्रोध कर, पकड़ा आगे जाय ॥

बल पूर्वक रथ पर बिठा दिया, और कहा तुझे लड़ना होगा ।
क्षत्री सम धनुष बाण लेकर, रण में कटना मरना होगा ॥
धिक धिक है तेरे साहस को, जो पीठ दिखा भागा जाता ।
इससे उत्तम है रण में मर, क्यों नहिं तू स्वर्ग धाम पाता ॥
नादान ! क्षत्रि होकर तू गौ, रक्षा से जीव चुराता है ।
पापात्मा ! अपना धर्म त्याग, क्यों कुल में दाग लगाता है ॥

सूर्ख गऊ वह चीज है, जिसका केवल दर्श ।
सब विघ्नों को नाश कर, पहुंचाता है हर्ष ॥

फिर यदि नित सेवा की जावे, तो क्या कहना उसके फलका ।
सिद्धि कर जोड़े खड़ी रहे, कभि अंत न आवे मंगल का ॥
फिर जिसके अंग प्रत्यंग सभी, अति पवित्र माने जाते हैं ।
यहां तक के मल व मूत्र भी तो, उत्तम कामों में आते हैं ॥
जिसका पय पीकर तूने और, तेरे वृद्धों ने बल पाया ।
उसकी रक्षा से मुख मोड़त, धिक तुझे, क्यों क्षत्री कहलाया ॥
ये गौ सेवा का ही फल है, जिससे रघुकुल दृष्टि आता ।
वरना ये कभी का दुनियां से, निज नाम निशान मिटा जाता ॥
महाराज दलीप, नंदिनी की, रक्षा में प्राण विसर्जन को ।
यदि तत्पर नहीं हुये होते, तो तरसते नित सुत दर्शन को ॥
फिर यदुकुल भूषण यदुनंदन, गिरिवर धारन करने वाले ।
नटवर, मधुसूदन, चक्रपाणि, दुष्टों का मद हरने वाले ॥
उन कृष्णचन्द्र ने भी करके, गौओं की अतिशय सेवकाई ।
"गोपाल" नाम को पाया है, फिर क्यों तैंने बुधि बिसराई ॥
ऐसी अति दुर्लभ वस्तु को, कुरुगण हर कर लेजाय रहे ।
तू क्षत्री है फिर भी तेरे, सब अंग अंग मुरझाय रहे ॥
इससे तो येही उत्तम था, तू पुरुष नहीं नारी होता ।
तो किसी आदमी के घर में, रह उसको सुख कारी होता ॥

रे निर्लज्ज पिता तेरे, केवल गौ के काज ।
बुड्ढे होकर भी गये, लड़ने के हित आज ॥
और तू जवान होकर भी निज, मुंह को नादान छिपाता है ।
क्या भूल गया क्षत्री पनको, जो कायरता दिखलाता है ॥
मालुम होता है लगती है, निज धर्म से प्यारी जान तुझे ।
मैं रहूंगा सदा अमर जग में या है ये मिथ्या ज्ञान तुझे ॥
पर सुन, "जब जब इन हाथों ने, रथ को रण में पहुंचाया है ।
तो जब तक रिपु का बध न हुआ, वापिस न कभी लौटाया है ॥
अब भी नहिं लौटेगा सुनले, नहिं भविष्य में भी जायेगा ।
जब तक जिन्दा है बृहन्नला इसमें न फर्क कुछ आयेगा" ॥
इसलिये शीघ्र रथ पर चढ़कर, गौ माता का उद्धार करो ।
कानों तक निज कोदंड तान, रिपुओं पर तीखी मार करो ॥

❀ गाना ❀

शोक है क्षत्रिसुत होकर तू कायरता दिखाता है ।
वंश के मान मे नादान क्यों बट्टा लगाता है ॥
गर्व से घर मे तो कहता था गौओ को छुड़ाऊंगा ।
वधूंगा शत्रुओं को फेर अब क्यों मुंह छिपाता है ॥
देश का और गौओं का भला हो इसलिये क्षत्री ।
जन्मते है तू फिर क्यों पांव को पीछे निज हटाता है ॥
सिंह का पुत्र है बस सिंह सम शक्ति दिखा उत्तर ।
खेलता है जो प्राणो पर वो जय निश्चय हि पाता है ॥

बोला उत्तर अति आरत हो, मैं तेरी विनती करता हूं ।
कर दया मुझे जाने दे तू चरणों में सिर को धरता हूं ॥
घर ले चल मुझको मित्र मेरे, तेरा घर धन से भर दूंगा ।
क्यों वृथा मुझे मरवाता है, मैं तुझे क्रोड़पति कर दूंगा ॥
हा छाया जाता तम दृग में, सब अंग शिथिल होते जाते ।
ओ वज्र हृदय सुनते हो नहीं, क्यों नहीं मुझे घर पहुंचाते ॥

तब हंस बोले कुन्ति सुत, उत्तर मत घबराउ ।
करने दो अब रण मुझे, तुम सारथि होजाउ ॥
हे कुवंर मैं अपने भुजबल से, गौओं को अभी छुड़ाता हूँ ।
रिपुओं की सेना में घुसकर, लखना क्या द्वंद मचाता हूँ ॥
ले चलो शीघ्र अब रथ वहां पर, जहां मरघट दृष्टि आता है ।
और मध्यमें जिसके अति विशाल, एक शमी वृक्ष दिखलाता है ॥
पांडवों ने वन जाती बिरियां, अपने सब अस्त्र छिपाये हैं ।
अर्जुन की किरपा से मैंने, सारे भेदों को पाये हैं ॥
ये सुन उत्तर कुँवर को, हुआ तनिक विश्वास ।
रथ दौड़ा कर ले गया, शमी वृक्ष के पास ॥
फिर अर्जुन का हुक्म पा, चढ़ा पेड़ पर जाय ।
सारे शस्त्र उतार कर, दिये पार्थ को लाय ॥
जब खोले अस्त्र धनंजय ने, नक्षत्रों सम चम चमा उठे ।
उनका अद्भुत प्रकाश लख कर, युवराज मार कह कहा उठे ॥
बोले वे योधा कहां गये, जो इन्हें उठा रण करते थे ।
सुन इन धनुषों का विकट घोष, शत्रू हृदय में डरते थे ॥
क्या तुम्हें वृहन्नल मालुम है, अब कहां हैं वे पांचों भाई ।
और अग्नि कुंड से निकली थी, वो कहां है कृष्णा सुखदाई ॥
बोले मुस्काकर पांडु पुत्र, बतलाता हूँ धर ध्यान सुनो ।
तुम जिसे वृहन्नल मानते हो, बस उसे आज से पार्थ गिनो ॥
आखिर सब हाल बताय दिया, सुन राजकुंवर अति हर्षाये ।
कर जोड़ चरण में शीश झुका, बोले अब दिन अच्छे आये ॥
हे मेरा बाहु हम धन्य हुये, हम लोगों पर किरपा करना ।
अनजाने में जो वाक्य कहे, उनको चित मांहि नहीं रखना ॥
इस समय मेरा डर दूर हुआ, फरमाओ क्या करना होगा ।
बनता हूं खुशी से सारथि मैं, बोलो अब किन चलना होगा ॥

आनन्दित हो पार्थ ने, बदला अपना भेष ।
कवच आदि धारन किये, दूर किये सब क्लेश ॥
बोले रथ हांको तुरत चलो शत्रु के तीर ।
देखूंगा किस गर्व से, आये कौरव वीर ॥
उत्तर को ऐसी आज्ञा दे, धनु की टंकोर करी भारी ।
उस महा कठोर शब्द को सुन, थर्राई कुरु सेना सारी ॥
घोड़ों का हींसन बन्द हुआ, सारे हाथी खामोश हुये ।
होगई गुप्त बाजों की ध्वनि, छोटे मोटे बेहोश हुये ॥
पड़गये हाथ ढीले सबके शस्त्रों की चमकें मन्द हुईं ।
एक दम सन्नाटा छायगया, कुल काररवाई बन्द हुई ॥
अपशगुन भी होने लगे तहां. कई स्यार दुखित हो रोते थे ।
करते थे जन्तु भयानक रव, हथियार छूटकर गिरते थे ॥
आ बैठे काग ध्वजाओं पर, कितनी हि टूटकर गिरने लगीं ।
कुछ उल्कापात दृष्टि आये, वायु भि वेग से चलने लगी ॥
कहा द्रोण ने भीष्म से, ठीक नहीं आसार ।
आज युद्ध में पार्थ से, होगी अपनी हार ॥
वे दिव्य अस्त्र संचालन की, सब क्रिया सीख कर आये हैं ।
निज तप से देवों को खुशकर, वर भी अगणित ही पाये हैं ॥
हम लोगों में कोई उनके, सन्मुख न ठहरने पावेगा ।
जो उनके शर जालों में फसा, वो निश्चय मारा जावेगा ॥
कहा कर्ण ने आप क्यों, डरते हो आचार्य ।
हम अपना भुजबल दिखा, करेंगे पूरा कार्य ॥
क्या ताब है अर्जुन की हमसे, इकला लड़कर जिन्दा जावे ।
तुम लखना मेरी ताकत को, जिस समय पार्थ सन्मुख आवे ॥
गुण गाते हो नित अर्जुन के, कुरुपति को नीच बताते हो ।
पांडवों के बल का वर्णन कर, क्यों वृथा डराना चाहते हो ॥

हर्षित हो दुर्योधन बोला, बेहतर है अर्जुन आजावे।
अवधी से प्रथम प्रगटने में, बनवास फेर भेजा जावे॥
ये बातें सुन गंगा–नंदन, बोले कहां ध्यान तुम्हारा है।
होगया खतम सब वर्ष तभी, अर्जुन ने यहां पग धारा है॥
ये ज्योतिष है कुछ कपट नहीं, यहां चाल नहीं चलने की है।
इसमें तुम टांग अड़ाओ मत, हरगिज न दाल गलने की है॥
इसको न जुए का खेल गिनो, कर कपट चाल कहदो जीते।
चल दिया सांप पीटो लकीर, हो जाउ सजग वे दिन बीते॥

करते थे ये बात सब, अर्जुन ने हर्षाय।
दूरहि से निज शंख को, दीन्हा तुरत बजाय॥

रथ के पहियों की घड़घड़ाट, और देवदत्त की ध्वनि सुनकर।
कौरव सेना को कहन लगे, आचार्य तुरत सन्मुख आकर॥
वीरों! झट अस्त्र शस्त्र लेकर, होजावो सजग लड़ने के लिये।
बलवान पार्थ वायू सदृष्य, आ रहे युद्ध करने के लिये॥
होता है शब्द रथ चलने से ऐसा, मानो बादल गरजा।
रफ्तार भी इतनी ज्यादा है, देखो ये भू मंडल लरजा॥
है ज्ञात शंख की विकट ध्वनी, धनु की टंकोर भि परिचित है।
आरहे हैं अर्जुन सच जानो, देरी करना अब अनुचित है॥
झट व्यूह बना डालो अपना, वरना बचना मुश्किल होगा।
उस वीर केसरी का हर एक, जोशीला शर कातिल होगा॥
कौरवपति भी अति जोश में आ, बोले अब वीरों डट जाओ।
हुशियार कदम पीछे न हटे, चाहे तुम रण में कट जाओ॥
आने वाला योधा चाहे, अर्जुन हो या हो सुरराई।
डरना न, जोश से रण करना, बिसराकर सब कायरताई॥
जो भागा सच जानो वीरों, मैं उसको मार गिराऊंगा।
शत्रू को बधने से पहिले, उसको यमलोक पठाऊंगा॥

सेना का तुरत प्रबंध करो, हे भीष्म पितामह बढ़ आओ ।
बोलो हम कैसा व्यूह रचें, किस तरह करें रण समझाओ ॥
कहा भीष्म ने ध्यान धर, सुनलो मेरा उपाय ।
चाहता हूँ चतु भाग में, सब सेना बट जाय ॥
एक टुकड़े की रक्षा में तो, कुरुपति अपने घर को जावें ।
और भाग दूसरे के मनुष्य, सब गौ घेर के ले जावें ॥
बाकी दो भागों से हम सब, अर्जुन के रथ को तोड़ेंगे ।
उसको मारें या मर जावें, पर पीठ कभी नहिं मोड़ेंगे ॥
ये सुन दुर्योधन चला गया, गउएँ भी तुरत हटा डालीं ।
तब भीष्म ने बाकी सेना की, फुरती से की देखा भाली ॥
समझाया द्रोण गुरु को झट, तुम मध्य में अपना रथ रखना ।
अश्वत्थामा तुम बांई दिशि, हो खड़े वार करते रहना ॥
हाँ कृपाचार्य दाहिनी तरफ, आगे बलवीर कर्ण जावें ।
और हम सेना के पीछे रह, सब विधि सहायता पहुँचावें ॥
इस प्रकार परबंध कर, खड़े हुये ये वीर ।
इतने में रथ पार्थ का, आया इनके तीर ॥
दो बाण चलाये अर्जुन ने, एक गुरु चरणों में आयगिरा ।
और एक कान पर होता हुआ, कुछ आगे बढ़कर जायगिरा ॥
बोले गुरु सेनाध्यक्ष सुनो, एक शर से छूआ चरणों को ।
इससे मतलब है अर्जुन ने, कीन्हा है नमन मम चरणों को ॥
और बाण दूसरा कान के ढिंग, आ मुझसे कुशल पूछता है ।
होजाउ सजग गांडीव से अब, विषधर सम तीर छूटता है ॥
जब बहुत निकट आगये पार्थ, उत्तर से बोले रथ रोको ।
उस कुरुकुल अधम सुयोधन को, एक बार ध्यान देकर देखो ॥
इन लोगों से न लड़ूंगा मैं, उसको ही आज हराऊंगा ।
जो हारा ये सब हारेंगे, यों गायें शीघ्र छुड़ाऊंगा ॥

इनमें तो नहीं नजर आता, वो देखो भागा जाता है ।
उड़ने से रज नभ मंडल में, बादल सा दृष्टी आता है ॥
ले चलो मुझे उस तरफ वीर, इन महारथियों को छोडो तुम ।
हाथों की फुरती दिखलाओ, घोड़ों को झटपट मोड़ो तुम ॥
ये सुन उत्तर ने रथ फेरा, कौरव सेना सब जान गई ।
अर्जुन के दिली इरादे को, अपने मन में पहचान गई ॥
सस्तू ये भी निज पीठ मोड़, अर्जुन से लड़ने को धाये ।
इतने में वीर धनंजय बस, गउओं के निकट चले आये ॥
शर जाल छोड़ने लगे तुरत, सेना आच्छादित करडाली ।
मुंह पर रख देवदत्त फूंका, वो शोर हुआ पृथ्वी हाली ॥
धनु को टंकोरा बार बार, वायू सम रथ को दौड़ाया ।
कर भौंचक्का सब वीरों को, गायों को झटपट लौटाया ॥

दौड़ी गायें नगर को, पहुँची भीतर आय ।
हिम्मत हुई न काहु की, रोके उनको धाय ॥

यह कर ये वापिस फिरने लगे, इतने में सेना घिर आई ।
होगये इकट्ठे सभी आन, बज उठी तुरत ही सहनाई ॥
पा नृप आज्ञा भूपति कलिंग, सबसे पहिले तैयार हुये ।
कस कमर पांच हथियार बांध, एक दृढ़ रथ पर असवार हुये ॥

लेकर अपनी सेन सब, करते शोर महान ।
अर्जुन के सन्मुख चले, ज्यों केहरि पर स्वान ॥

चहुँ ओर से घेर लिया इनको, कई तरह के अस्त्र चलाने लगे ।
पकड़ो मारो जाने न पाय, यों काल विवश चिल्लाने लगे ॥
अर्जुन के रथ के सन्मुख आ, इस राजा ने रथ ठहराया ।
झट धनुष चढ़ा कई शर मारे, तब इनको भी गुस्सा आया ॥
धनु अर्ध चन्द्र आकार हुआ, लगगई प्रत्यंचा कानों पे ।
इसके छुटते ही बाण चले, आ बनी शत्रु के प्राणों पे ॥

जैसे बांबी में सर्प घुसे, यों कवच वीर भीतर धाये ।
अनगिनती रिपु हो विकल हृदय, खा चक्कर भूमी पर आये ॥
फटगया शत्रु दल बादल सम, बाणों की वो आंधी आई ।
नृप कलिंग ने ये दशा देख, अपनी चतुराई दिखलाई ।

तान शरासन पंच दश, शर छोड़े इकबार ।
पांडु पुत्र ने काट कर, दिये मही में डार ॥

फिर गुस्सा खा तेवर बदला, बाणों का गजब प्रहार किया ।
ढक दिया पार्थ का रथ सारा, कुछ देर उन्हें बेकार किया ॥
अर्जुन ने अग्नी बाण चला, कर दिया भस्म सब तीरों को ।
इस तरह क्रोध से तकने लगे, ज्यों हाथी देखे कीरों को ॥
कुछ बाण निकाले तरकस से, गांडीव पै उनको संधाना ।
छोड़े ऐसे लहराते चले, ज्यों लहराते विषधर नाना ॥
लगतेही रथ को चूर्ण किया, घोड़ों को भी बे जान किया ।
हरलिया सारथी का जीवन, इस तरह खूब घमसान किया ॥
फिर एक तीव्र शर कर में ले, हृदय में कलिंग के मारा ।
कर बेसुध उस अवनीपति को, बलवीर ने भूमी पर डारा ॥

उसके गिरते ही तुरत, भगी फौज ले जान ।
विकरण आये सामने, लगे चलाने बान ॥

फुरती से वार पर वार किये, सब चोट बचाई अर्जुन ने ।
हो क्रोधित उसने शक्ति तजी, शर से लौटाई अर्जुन ने ॥
वो बाण बड़ा भड़ तजता था, ये बीच में काट गिराते थे ।
और अवसर पाकर अपने भी, कुछ तीर चलाते जाते थे ॥
वो विकर्ण खंडन करते थे, यों बहुत देर संग्राम हुआ ।
कोई भी पीछे हटा नहीं, नहिं रण का कुछ अंजाम हुआ ॥
आखिर विकर्ण ने गुस्सा खा, अर्जुन पर शर की मार करी ।
कुन्ती सुत ने भी धनुष चढ़ा, रिपु पर शर की बौछार करी ।

लेकिन फिर भी कोई न हटा, तब क्रुद्ध हुये कुंती नंदन ।
एक वज्र अस्त्र ऐसा मारा, कर दिया चूर्ण उसका स्यंदन ॥
आ पड़ा विकर्ण धरणि तल में, पर संभलके ज्योंही उठने लगा ।
इतने में शर एक और लगा, खा चक्कर वापिस गिरने लगा ॥
अर्जुन ने और भी शर मारे, हो गया विकर्ण धराश्याई ।
लख उसकी दशा सूर्य-नंदन, सन्मुख आये आतुरताई ॥

ये लख उत्तर कुँवर से, बोले पार्थ पुकार ।
अबके आया है सुभट, रहना अति हुशियार ॥

चौ तरफ घुमाओ स्यंदन को, सब ओर कटक आ छाई है ।
ले बीच में हमको रिपुओं ने, भयदायक मार मचाई है ॥
अर्जुन की आज्ञा के माफिक, उत्तर ने झट रथ को हांका ।
इस तरफ पार्थ ने प्रस्तुत हो, श्री कर्ण के मस्तक को ताका ॥
छोड़ा फिर बाण शरासन से, रविसुत ने टुकड़े कर डाला ।
और निज बाणों से अर्जुन के, घोड़ों को विकल बना डाला ॥
फिर अतिशय फुरती दिखला कर, अर्जुन पै वार अपार किये ।
तब अग्नि बाण से पारथ ने, क्षण मे सब तीर निवार दिये ॥
भागी सेना अग्नी से जल, तब कर्ण ने वरुण बाण छोड़ा ।
झट आग बुझा आश्वासन दे, सेना के लोगों को मोड़ा ॥
उस वरुण बाण ने अर्जुन पर, इतना ज्यादा जल बरसाया ।
जिससे वो रथ डूबने लगा, तब इनका पवन अस्त्र धाया ॥
सब पानी सूख गया फौरन, आंधी से सेना उड़ने लगी ।
कई रथों की ध्वजा पताकायें, वायु से टूट कर गिरने लगी ॥

नाग अस्त्र तब कर्ण ने, छोड़ा अति अकुलाय ।
उसकी ताकत से तुरत, आंधी गई बिलाय ॥

यों दोनों वीर क्रुद्ध होकर, आपस में शर मारन लागे ।
आखिर कुछ देर बाद रण तज, घायल हो रविनन्दन भागे ॥
पर तुरतहि अपने को सम्भाल, अर्जुन पर बाण चलाने लगे ।
ये देख क्रुद्ध हो कुन्ती सुत, रविसुत को वचन सुनाने लगे ॥
हे कर्ण ! तू मनमें कहता है, है मेरे सम कोइ वीर नहीं ।
जितना बल विक्रम मुझ में है, वैसा कोई रणधीर नहीं ॥
दुर्योधन के सन्मुख तैंने, मुझको जो वाक्य सुनाये हैं ।
उन सबका मजा बताने को, हम तेरे सन्मुख आये हैं ॥
जिस गुस्से को द्वादश वर्षों, मैंने चित माँहि छिपाया है ।
वो सारा आज प्रगट करने, अर्जुन मैदां में आया है ॥

कहा कर्ण ने व्यर्थ क्यों, करता है बकवाद ।
ठहर तनिक ही देर में, बतलाता हूं स्वाद ॥

यों कह संधाना कठिन बाण, अर्जुन की छाती में मारा ।
जा बैठा तीर निशाने पर, झट लगी निकलने खूंधारा ॥
घायल हो जैसे पंचानन, अपने घातक पर आता है ।
त्यों पार्थ की इच्छा से उत्तर, रथ को समीप ले जाता है ॥
वहां था अर्जुन ने तीव्र बाण, शत्रू पै चलाना शुरू किया ।
सिर पैर हाथ धड़ में गहरी, चोटें पहुंचाना शुरू किया ॥
कट जाते पै शर बीचहि में, तो भी कुछ मग्गें बच जाते ।
शत्रू के तन से भिड़ते ही, झट कवच चीर कर घुस जाते ॥
एक बाण चलाया इस ढंग से, कट गई कर्ण की धनु डोरी ।
नय और धनुष ले रविसुत ने, अर्जुन के कर की नस तोरी ॥
ढीली मुट्ठी पड़गई तुरत, ये देख पांडु सुत गरमाये ।
कर हाथ ठीक अति फुरती से, रविनंदन पर शर बरसाये ॥

कर दिये कर्ण के तीर व्यर्थ, फिर एक बाण ऐसा मारा ।
हर लिया सारथी का जीवन, घोड़ों को भी भूपर डारा ॥
आखिर धनु कानों तक चढ़ाय एक शर मारा वक्षःस्थल पर ।
जिससे हो कर्ण असुध फौरन, गिरगये वहीं युद्धस्थल पर ॥

पटक सारथी ने उन्हें, रथ में, किया पयान ।
कृपाचार्य ने क्रोध कर, छोड़े अपने बाण ॥

सब ओर बाण ही बाण हुये, रवि छिपा अंधेरा छायगया ॥
उत्तर कुमार ये हाल देख, हृदय में अति अकुलाय गया ।
बोला अर्जुन से प्राण चले, इस समय वेग उद्धार करो ।
लगते हैं शर तन मे आकर, शत्रू पर झटपट वार करो ॥
अर्जुन ने उसको विकल देख, झट छोड़ा तीर हुताशन का ।
होगये भस्म सब अस्त्र शस्त्र, जलगया धनुष कृप हाथन का ॥
जब पीर हुई तब मेघ बाण, छोड़ा विपता सब अलग हुई ।
ले और धनुष शर संधाने, मनमें कोपानल प्रगट हुई ॥
पर बश न चला कुछ अर्जुन से, घबराकर कृपाचार्य भागे ।
तब गुरु द्रोण धनु कर में ले, आये अपने शिष के आगे ॥

अर्जुन ने गुरु देव को, किया सहर्ष प्रणाम ।
हाथ जोड़ कहने लगे, सुनो गुरु बलधाम ॥

दुर्योधन ने कर कपट जाल, जो दुःख हमें पहुंचाये हैं ।
बस मेरा मन ही जानता है, जैसे कुछ कष्ट उठाये हैं ॥
भरतू वो कुटिल दुराचारी बस कट्टर शत्रु हमारा है ।
उसको ही दंड देने के लिये, रण में मैंने पग धारा है ॥
इसलिये मेरा कुछ दोष नहीं, गुरु आप नष्ट मन से जाना ।
हूं विवश मैं रण करने के लिये, बस इसी हेतु शर संधाना ॥

लेकिन पहिले तुम वार करो, मैं पीछे हाथ दिखाऊँगा।
ऐसी हो मेरी इच्छा है, पहिले नहिं तीर चलाऊँगा॥

दे असीस गुरु देव ने, छोड़ा बाण प्रचंड।
अपने कौशल से किये, अर्जुन ने दो खंड॥

इस तरह गुरु और चेले का, आपस में रण आरम्भ हुआ।
दोनों ही तरफ से अनगिनती, शर का चलना प्रारम्भ हुआ॥
होगये बाण ही बाण तहां, थे दोनों सुघड़ धनुर्धारी।
दोनों दिव्यन्त्र जानते थे, करते थे मार भयंकारी॥
उन बाणों से रण भूमी में, कभि अग्नि प्रगट हो जाती थी।
होती थी कभी जलकी वर्षा, कभी प्रचंड आंधी आती थी॥
क्षण में होता था अंधकार, कुछ भी न नजर में आता था।
कभी बाण अंधेरे को ग्रस कर, अपनी ज्योति दिखलाता था॥
चलते थे सर सर बाण वहां, दोनों योधा ललकारते थे।
गर्जन तर्जन कर अमित बार, वो मार भयंकर मारते थे॥
शर गिरते थे ऐसे रथ पर, जैसे बूंदें पर्वत पै गिरें।
हटजायँ कभी पीछे को अति, कभी सन्मुख आकर वार करें॥
धीरे धीरे दोउ क्रुद्ध हुये, अति तीव्र बाण छोड़न लागे।
दहगई चाल रथ की ऐसी, कई योधा घबराकर भागे॥
जिस तरह हुआ था किसी समय, संग्राम इन्द्र वृत्तासुर का।
बस इसी तरह ये भिड़ते थे, कोई न डरा पीछे सरका॥
आखिर अर्जुन ने क्रोधित हो, कुछ तीव्र बाण ऐसे मारे।
होगये गुरु घायल जिससे, बह गये रक्त के परनाले॥

सब फुरती जाती रही, लगा कांपने गात।
तब गुरु सुत ने पार्थ के, पहुंचाई आघात॥

अर्जुन ने अपना ध्यान हटा, अश्वत्थामा को ललकारा ।
गांडीव पै एक बाण रख कर, फुरती से गुरु सुत के मारा ॥
अवसर मिलगया द्रोण गुरु को, वहां से हट पीछे चले गये ।
अश्वत्थामा सन्मुख आकर, बस लगे छोड़ने तीर नये ॥
ये भी विख्यात महारथि थे, अति पराक्रमी महा बलवानो ।
आते ही शर बरसाने लगे, थे क्रुद्ध देख पितु की हानी ॥
क्षण भर में अगणित तीर चला, ढक दिया जल्द रथ पारथ का ।
ये देख कुपति होगया तुरत, वो वीर केसरी भारत का ॥
सब तीर काट निज धनुष तान, अश्वत्थामा पर वार किया ।
लगगई झड़ी बाणों की तहां, चहुँदिश से कठिन प्रहार किया ॥
थकगये तीर रोकत रोकत, तब अश्वत्थामा घबराये ।
कुछ दूर हटे तिरछे होकर, कई तीर पार्थ पर बरसाये ॥
अवसर पाकर चतुराई से, गुरुसुत ने ऐसा शर मारा ।
कटगई पार्थ की धनुष डोर, होगया खुशी कुरु दल सारा ॥
अर्जुन ने जितनी देरी में, अपने धनु को ज्या युक्त किया ।
उतनी हि देर में गुरुसुत ने, घोड़ों को गृंसे रक्षा किया ॥

घायल उत्तर को किया, फेर किया संधान ॥
अर्जुन का उर ताक कर, मारा तीक्षण बान ॥

होगये धनंजय भी घायल, पर इसकी कुछ परवा न करी ।
गो चोट लगी थी अति गहरी, लेकिन मुंह से कुछ आह न करी ॥
पर उत्तर को घायल लख कर, होगया क्रुद्ध अर्जुन फौरन ।
वो घोर भयंकर मार करी, बन गया विकल शत्रु फौरन ॥
घोड़े घायल होकर भागे, अश्वत्थामा का रथ टूटा ।
गांडीव धनुष से इतने में, एक पर वाला विषधर छूटा ॥

सन्नाता हुआ तुरत पहुंचा, गुरुसुत के तन में समा गया ।
इस दुख से व्याकुल हो फौरन, अश्वत्थामा रथ घुमा गया ॥

हांकमार कर शीघ्र तब, कुरुपति गुस्सा खाय ।
अर्जुन के सन्मुख गया, अपना रथ दौड़ाय ॥

अपने चौतरफा सेना कर, रण के बाजों को बजवाता ।
धनु की टंकोर सुनाता हुआ, बल से गर्वित हो मदमाता ॥
आगया तहां आतुरता से, सब भ्राताओं को साथ लिये ।
जिस जगह खड़े थे वीर पार्थ, गांडीव धनुष सन्धान किये ॥
सब कुरु सेना से घिरे हुये, दुर्योधन को आते लख कर ।
उत्तर से बोले पांडु तनय, शारंग पर एक तीर रख कर ॥
हे वीर बहुत हुशियारी से, अब के रथ को दौड़ाना तुम ।
इस घटा समान कटक को लख, दिल में न कहीं दहलाना तुम ॥
गुरु कृपा से मैं कुछ ही क्षण में, सब छिन्न भिन्न कर डालूंगा ।
यदि भगा नहीं तो तो पापी को, निश्चय इस रण में मारूंगा ॥
देखो सेना के मध्य में वो, कंचन का रथ दिखलाता है ।
जो सबसे बड़ा व ऊँचा है, तेजो मय दृष्टी आता है ॥
है वो ही रथ दुर्योधन का, उस तरफ मुझे लेकर दौड़ो ।
सेना से कुछ भी काम नहीं, झटपट घोड़ों का मुंह मोड़ो ॥

उत्तर ने रुख फेर कर, हांका रथ तत्काल ।
घड़घड़ात करता हुआ, दौड़ा मानों काल ॥

ये लख कुरु सेना क्रुद्ध हुई, अर्जुन का रस्ता रोक लिया ।
झट घेर के रथ को चहुँ दिशि से, बस तीर मारना शुरु किया ॥
अर्जुन भी क्रोधित हो मन में उनके ऊपर ऐसा टूटा ।
ज्यों गज झुंडों में सिंह गिरे, लख रिपुओं का धीरज छूटा ॥

होगया शुरू घनघोर युद्ध, धनु की टंकोरें आने लगीं ।
ओलों सम बाण बरसने लगे, वीरों की जानें जाने लगीं ॥
घोड़ों का हींसन शुरू हुआ, हाथी चिंघाड़ मचाने लगे ।
छाया बाजों का घोर शब्द, योधा ललकार सुनाने लगे ॥
पहियों के घड़घड़ाट का रव, चौतरफा फैल गया रण में ।
हल चल से ऐसी धूल उठी, तम फैलगया नभ मंडल में ॥
उस समय यदि रण भूमि में, पहियों का शब्द नहीं होता ।
तो उनकी स्थिति है वा नहीं, ये जानना सहल नहीं होता ॥
केवल गज घंटों की ध्वनि से, जाना जाता था कुंजर हैं ।
धरु मारु पकड़ने की अवाज, जतलाती बीर दिलावर हैं ॥

अंधकार में पार्थ ने, छोड़े बाण कराल ।
ऐसे सन्नाते चले, जैसे क्रोधिन व्याल ॥

खा चोटें खंड खंड होकर, हाथी घोड़े तहां गिरने लगे ।
घायल योधा चक्कर खाकर, गिर भू पर खूब तड़फने लगे ॥
बह चली खून की नदी तुरत, रुकगया धूल कन का उड़ना ।
कुछ हवा चली तम नाश हुआ, होगया प्रकाश तहां दूना ॥
झट सम्भल गई कौरव सेना, गर्जन तर्जन बहु भांति किया ।
हो एकत्रित एक ही साथ, अर्जुन पर विषम प्रयान किया ॥
थे वे हुशियार प्रथम ही से, रथ को इस तरह घुमाने लगे ।
जैसे कुम्हार का चाक फिरे, और तीर कई बरसाने लगे ॥
चलते थे सर वो धार दार, झट कवच चीर घुस जाते थे ।
जिससे घायल हो वीर तहां, धड़ गिरते दृष्टी आते थे ॥
निर्जीव शरीरों से झट पट, पट गया युद्धस्थल सारा ।
होगये हजारों मुंड हीन, बह चली प्रबल शोणित धारा ॥

इस तरह शीश कट कट गिरते, ज्यों पत्थर लुढ़कें गिरवर से ।
गिरते ही फटते थे मानों, फूटे दधि हांडी टक्कर से ॥

नदी खून की बन गई, खूब तेज थी धार ।
बहते थे धड़, हाथ, पग, पहिये बेशुम्मार ॥

करते थे खेल बेताल भूत, भैरव पिशाच हर्षाते थे ।
भर भर खप्पर पीते थे खूं, आनन्दित हो सुख पाते थे ॥
कहिं मुंड माल योगिन धारें, गावें नाचें और किलकारें ।
कहिं गिद्ध, चील, कउवे आदिक, चोंचों से लोथों को फारें ॥
अंतड़िया पकड़ नभ में धावें, आपस में लड़ें छीनें झपटें ।
रोते थे कुत्ते बुरी तरह, और स्यार भयंकर शोर करें ॥
बनगई भयावन युद्ध भूमि, कायर लखकर थर थर कांपे ।
होगई सेन व्याकुल बेकल, हाथों से छूट पड़ीं चापें ॥
ऐसा भयदायक दृष्य बना, तेरह वर्षों का रुका हुआ ।
अति उग्र मूर्ति धर कर अर्जुन, फिरता था तहां यमराज हुआ ॥
सेना की ऐसी दशा देख, दुर्योधन ने रथ बढ़ा दिया ।
क्रोधित हो, लाकर फुरती से, अर्जुन के सन्मुख खड़ा किया ॥
फिर लगा छोड़ने तीव्र बाण, घायल करदिया धनंजय को ।
लख पार्थ ने शत्रू को सन्मुख, झट बाण चढ़ाया रिपुक्षय को ॥
मारा दुर्योधन के उर में, लेकिन उसने झट काट दिया ।
अनगिनती तीर चला करके, अर्जुन के रथ को पाट दिया ॥

कठिन तीर संधान कर, काटे सारे बान ।
एक साथ दश शर दिये, दुर्योधन के तान ॥

गिरगया धनुष हाथों से छूट, रथ पर कुरुपति मुरझाय गिरे ।
ये दशा देख, कर क्रोध भीष्म, अर्जुन से फौरन आय भिरे ॥

बोले अर्जुन सम्भलो उत्तर, श्री भीष्म पितामह आये हैं।
जिन रण कर परशुराम जी को, भुजबल दिखलाय हराये हैं॥
यों कह झट दंड प्रणाम किया, उनसे आशीर्वाद पाया।
फिर खड़े हुये रण करने को, तन में कुछ कुछ गुस्सा छाया॥

दोनों थे रण बांकुरे, युद्ध केसरी वीर।
हांक मार कर छोड़ते, थे अनगिनती तीर॥

टकराते थे शर आपस में, चोटें न किसी के आती थी॥
घनघोर युद्ध को देख देख, कायर की फटती छाती थी॥
घंटे भर तक संग्राम हुआ, अति विकट भयंकर भयदाई।
दोनों ने बाण चलाने में, अद्भुत कौशलता दिखलाई॥
लेकिन कोई पीछे न हटा, तब गंग तनय ने गरमा कर।
अति तीव्र वेग वाले कई शर, मारे अर्जुन के हृदय पर॥
पर इनको तुरत नष्ट करके, कुंती सुत ने निज चतुराई।
दिखलाई लेकिन भीषम के, तन पै न चोट बिल्कुल आई॥
इसके उपरान्त वीर दोनों, ले दिव्य अस्त्र तैयार हुये।
छिड़गया भयानक युद्ध तुरत, आपस में अगणित वार हुये॥
रोमांच खड़े करने वाला, लख समर भयंकर भयकारी।
हो चकित देखने लगी शीघ्र, रण तज कर कुरु सेना सारी॥
जैसे गिरि को ढक लेती है, मेघों से गिर कर जलधारा।
त्यों ही अर्जुन ने भीषम का, ढक दिया बान तीरों द्वारा॥

ये लखकर गांगेय ने, छोड़े बाण प्रचंड।
पार्थ शरों के पलक में, किये काट कई खंड॥

इस प्रकार ये दोनों योधा, आपस में तीर चलाते हुये।
उस समर क्षेत्र में फिरने लगे, रण कौशलता दिखलाते हुये॥

कुछ ही क्षण में अनगिनत तीर, बस दसों दिशाओं में छाये ।
ऐसा अद्भुत चातुर्य देख, नभ स्थित सुर अति हर्षाये ॥
आपस में करने लगे बात, देखो तो इन योधाओं को ।
मानों धनुर्वेद मूर्ति दो धर, दिखलाते युद्ध कलाओं को ॥
प्राकृत नर हो देवों से भी, ज्यादा फुर्ती बतलाते हैं ।
अचरज है किस आसानी से, ये दिव्य अस्त्र बरषाते हैं ॥
कब तीर निकाल धनुष पर रख, कब खींच उसे फिर कानों तक ।
ये बान चलाते हैं इसका, नहिं लगता हमको पता तलक ॥
बस जैसे सूरज की जोती, आंखों से लखी न जाती है ।
त्यों ही इन दोनों वीरों पर, पलभर न दृष्टि ठहराती है ॥

देवों की ये बात सुन, हरषाये सुरराय ।
दोनों वीरों पर तुरत, दिये पुष्प बरसाय ॥

इतने में एक अवसर पाकर, कुन्ती नंदन ने शर मारा ।
उसने लगते ही भीषम के, धनु का गुण तुरत काट डारा ॥
उसही क्षण में एक और तीर, गांडीव पै रख कर संधाना ।
ताना डोरी को कानों तक, छाती का भेदन अनुमाना ॥
छोड़ा फिर तीर निशाने पर, भीषम उससे नहिं बच पाये ।
हृदय में लगते ही फौरन, होशो हवास सब बिसराये ॥
ये देख सारथी इन्हें तुरत, संग्राम भूमि से लिवागया ।
फिर पिटे हुये रिपुओं ने आ, एक साथ घोर रण मचा दिया ॥

अर्जुन ने तब गर्ज कर, छोड़ा मोहन बान ।
मूर्छित हो सब गिर पड़े, चली गई जिमि जान ॥
फिर उत्तर से विहंस कर, बोले पांडु-कुमार ।
कुछ वीरों के जाय कर, बस्तर लेहु उतार ॥

क्योंकि घर जाते ही इनको, उत्तरा मांगने आवेगी ।
वो सुकुमारी अति सुख पाकर, गुड़ियों के वस्त्र बनावेगी ॥
पर खबरदार भीषम के ढिंग, हरगिज न भूल कर जाना तुम ।
दुर्योधन आदिक वीरों के पस वस्त्राभूषन लाना तुम ॥
दादा होशो हवास में हैं, वे इसकी काट जानते हैं ।
इसलिये न उधर पांव देना, हम तुम से यही बखानते हैं ॥

चला कुंवर हरषाय कर, किये इकट्ठे चीर ।
वस्त्राभूषण साथ ले, आया रथ के तीर ॥

आ बैठा स्यंदन में फौरन, लख विजय पार्थ परपाने लगे ।
और देवदत्त को मुख पर रख, ताकत से उसे बजाने लगे ॥
कर पूरित ध्वनी दिशाओं में, चलदिये सहर्ष पृथानन्दन ।
उत्तर भी अति आनन्दित हो, हांकने लगा झट पट स्यंदन ॥
इतने में कौरव वीर उठे, दुर्योधन ने रण की ठानी ।
यह देख पितामह निकट आय, बोले विनीत कोमल बानी ॥
क्या अपनी अक्ल गमा बैठे, अब भी कुछ करना बाकी है ॥
मिल दई धूल में इज्जत तो, अब रण में मरना बाकी है ।
तुम लोग जिस समय बेसुध थे, अर्जुन चाहता वध करदेना ।
क्षण भर में सारे वीरों की, वो योधा जानें हर लेता ॥
लेकिन वो धर्म धुरंधर है, इसलिये दया कर छोड़ा है ।
कर विजय प्राप्त निज भुजबल से, यश पाकर रथ को मोड़ा है ॥
उत्तम है जान सलामत ले, दुर्योधन अब घर को चलदो ।
नहिं है कुछ शोभा लड़ने में, अपनी मद शेखी रहने दो ॥

दुर्योधन वापिस गया, अर्जुन ने हर्षाय ।
विजय खबर भेजी तुरत, एक दूत बुलवाय ॥

फिर पहुंचे मरघट में जाकर, अर्जुन ने पूर्व भेष धारा।
रख दिये वृक्ष पर अस्त्र सभी, कुछ देर पड़ाव तहां डारा॥
बोले उत्तर से हम सबका, ये भेद न जाहिर कर देना।
जब तक हम प्रगट नहीं होवें, बेहतर है चुप साधे रहना॥
कह देना यही पिता जी से, हम ही गायें ले आये हैं।
कौरव वीरों को हमने ही, भुजबल से मार भगाये हैं॥

"जैसी आज्ञा होयगी, वही करूंगा काम।"
यों कह उत्तर कुंवर ने, कीन्हा इन्हें प्रणाम॥

महाराज विराट विजय पाकर, जब अपने महलों में आये।
उत्तर व बृहन्नल के रण में, जाने के समाचार पाये॥
सुन खबर बहुत बेचैन हुये, सेना नायक को बुलवाकर।
बोले उत्तर की मदद करो, फौरन रण भूमि में जाकर॥
दो समाचार मुझको जल्दी, वो जिन्दा है या स्वर्ग गया।
लेकिन उसका बचना है कठिन, जब बृहन्नला सारथी भया॥
नर्तक क्या जाने किस प्रकार, रथ हांका जाता है रण में।
निश्चय ही मृत्यु हुई होगी, उस बालककी कुछ ही क्षण में॥

कहा कंक ने बृहन्नला, सारथि जिसका होय।
उसको इस संसार में, जीति न सकि है कोय॥

निश्चिंत रहो सब सोच तजो, गउवें लौटा कर लावेंगे।
कौरव गन कितना भी चाहें, हरगिज न जीतने पावेंगे॥
इतने में दूत चला आया, बोला नृप के जयकार रहें।
नित धर्म पताका फहरावे, मारे शत्रू लाचार रहें॥
उत्तर कुमार ने अन्नदाता, यह खबर यहां भिजवाई है।
कौरव सेना को कर परास्त, सारी गउवें लौटाई हैं॥

सुनते ही नृप आनन्द हुये, उस दूत को गहरा द्रव्य दिया ।
पुर सजने को आज्ञा देदी, रैयत ने झट कर्तव्य किया ॥
फिर चौपड़ उड़ने लगी तहां, महाराज खूब हर्षाते थे ।
और कंक ऋषी को बेटे की, करणी बतलाते जाते थे ॥
कहते थे इकले लड़के ने, कैसा भुजबल दिखलाया है ।
बिन कटकाई कुरु सेना को, क्षण भर में मार भगाया है ॥
जिसमें भीषम, कृप, द्रौण, कर्ण, ऐसे थे महा धुनुर्धारी ।
कर इन्हें विजय युद्धस्थल में, उत्तर ने नाम किया भारी ॥
है पुत्र हमारा शूर वीर, सारे जग में लासानी है ।
न हुआ न ऐसा होवेगा, आहा कितना बलवानी है ॥

मुस्काकर कहने लगे, धर्मराज मति धीर ।
बृहन्नला जिस ओर हो, जीते वोही वीर ॥

सुन वचन क्रुद्ध भूपाल हुये, बोले क्यों बात बनाता है ।
एक नर्तक को मेरे सुत से, बल में ज्यादा ठहराता है ॥
उत्तर के गुण गा मूढ़मती, जिससे योधा डर कर भागे ।
मत करे प्रशंसा नर्तक की, बस खबरदार रहना आगे ॥
पर कुंती-सुत कहते हि गये, राजन् कहां ध्यान तुम्हारा है ।
है बृहन्नला अति बलशाली, झूंठा नहि वाक्य हमारा है ॥
सुरपति भी जीत नहीं सकता, भीषम द्रौणादिक वीरों को ।
ये बृहन्नला ही का दम है, जय की ऐसे रणधीरों को ॥
इसलिये बड़े ही वीर गिनो, क्यों उत्तर के गुण गाते हो ।
उस दूध मुंहे बच्चे को तुम, इतना बलवान बनाते हो ॥

ॐ गाना ॐ

साथी हो जिसका बृहन्नला जय वोहि पायेगा ।
हारेगा इन्द्र भी अगर सन्मुख जो आयेगा ॥
उत्तर के गुण बखानना हे नृप फिजूल है ।
बना है वो क्या युद्ध में ताकत दिखायेगा ॥
ये वीर बृहन्नल का ही दम है जो रण किया ।
वरना है कौन कुरुओ को जो यों हरायेगा ॥
अस्तू उसी को धन्यवाद दीजिये राजन् ।
आगे न कोई आपसे आंखें मिलायेगा ॥

फिर वो ही गुफ्तार सुन, अपनी भृकुटी तान ।
नृप विराट् ने कंक के, मारा पासा तान ॥
जापड़ा नासिका पर पासा, आघात से खून निकल आया ।
अंजलि में रोक लिया उसको, एक बूंद नहीं गिरने पाया ॥
हो जाता महा अनर्थ, यदी, थोड़ा भी नीचे गिरजाता ।
कई वर्षो तक उस नगरी में, दुर्भिक्ष काल दृष्टी आता ॥
गिरता है लहू नाक से अति, ये लख द्रौपदी चली आई ।
अति हित से सेवा करने लगी, इतने में एक खबर पाई ॥

राजकुंवर सारथि सहित, खड़े द्वार पर आय ।
आज्ञा दे महाराज अब, लीजे यहां बुलाय ॥

दे दिया हुक्म नृप ने फौरन, ये देख कंक ऋपि घबराकर ।
कानों में *चर के कहन लगे, आहिस्ता से समीप जाकर ॥

---

* दूत ।

हे दूत ! कुंवर को ही केवल, इस जगह बुलाकर लाना तुम ।
और बृहन्नला को समझाकर, पहिले घर पर भिजवाना तुम ॥
कहना ये हुक्म कंक का है, इस वक्त स्थान चले जाओ ।
फिर आजाना लेकिन अब तो, विश्राम करो कुछ सुस्ताओ ॥
रण के अतिरिक्त मेरे तन से, जो कोई खून निकालेगा ।
प्रण है ये वीर बृहन्नल का, बस उसे जान से मारेगा ॥
मेरा मुख खूं से भरा देख, उसको गुस्सा आजायेगा ।
फल ये होगा ये नृप विराट, निज जी से हाथ उठायेगा ॥

ये सुन दूत चलागया, उत्तर पहुँचा आय ।
पार्थ कंक का हुक्म पा, गये धाम हर्षाय ॥

उत्तर ने पितु को कर प्रणाम, फिर कंक ऋषी को शिर नाया ।
उनका मुंह खूं से रंगा देख, इसके मन में अचरज छाया ॥
जब हाल उसे मालूम हुआ, निज पितु से मांफी मंगवाई ।
फिर रण भूमी की सब गाथा, सिलसिले वार कह समझाई ॥
बोला, मेरी क्या हिम्मत थी, जो उन वीरों से रण करता ।
संग्राम में उनके सन्मुख जा, सह कुशल क्षेम वापिस फिरता ॥
मैं तो भगता था इतने में, एक देव कुमार निकट आया ।
उसही ने कुरुओं को हराय, गउओं को वापिस लौटाया ॥
होगया वो अंतरध्यान वहीं, कहगया है कल फिर आऊंगा ।
तबही अपनी असली सूरत, महाराजा को दिखलाऊंगा ॥
यों कह अंतःपुर में पहुँचे भगनी को भूषण वस्त्र दिये ।
होगई राज तनया प्रसन्न, आंखों से आनन्दाश्रु बहे ॥

प्रात समय करके सहार, पांचों पांडु कुमार ।
जाहिर होने के लिये, हुये तुरत तैयार ॥

झट न्हाय स्वच्छ कपड़े पहिरे, और इष्ट देव को सिर नाकर ।
जा पहुँचे राज सभा में ये, सब द्रुपद-सुता के हर्षाकर ॥

था अभी दूर दरबार समय, इसलिये न कोई आया था।
वो महा विशाल सभा मंडप, खाली हि इन्होंने पाया था॥
मत्स्य नृप के सिंहासन पर, भूपाल युधिष्ठिर जा बैठे।
माद्री सुत पीछे खड़े हुये, भीमार्जुन आगे आ बैठे॥
द्रोपदि खड़ी कृष्णा भि वहीं, दरबार का समय निकट आया।
जा पहुँचे तहां विराटेश्वर, ये दृश्य देख गुस्सा छाया॥
झट कहने लगे युधिष्ठिर से, हे कंक ये क्या व्यवहार किया।
क्या इसीलिये हमने तुझ को, धन दे तन मन से प्यार किया॥
सूझा है क्या उपहास तुझे, राजों सम भेष सुभेष बना।
राज्यासन पर आ बैठा है, मेरा डर कुछ भी नहीं गिना॥

मुस्काकर कहने लगे, अर्जुन कुन्ति-कुमार।
सोच समझकर बातको, कहो विराट भुवार॥

जो पुरषोत्तम सब गुण निधान, साक्षात धर्म की मूरत हैं।
हैं इन्द्रासन के लायक जो, और अति तेजस्वी भरत हैं॥
फिर हैं त्यागी दृढ़ व्रतधारी, ब्रह्मण्य यज्ञ करने वाले।
ज्ञानी व तपस्वी सतवादी, दीनों का दुख हरने वाले॥
रैयत के प्यारे दूरदर्शि, पांडवों में जेष्ठ श्रेष्ठ योधा।
बलवान जितेन्द्रिय क्षमावान, कौरव कुल के उत्तम पोधा॥
पृथ्वी के सारे भूप जिन्हें, आदर से शीश नवाते थे।
दासों की तरह सभा में रह, हरदम जिनके गुण गाते थे॥
और ब्राम्हण अट्ठासी हजार, जिनके यहां भोजन करते थे।
फिर जिनसे अतुलित द्रव्य पाय, याचक हो अयाचक फिरते थे॥
ये वे ही भूप युधिष्ठिर हैं, सबको सबविधि आनन्दायक।
फिर क्यों ये राजसिंहासन पर, हैं नहीं बैठने के लायक॥

पूर्ण हुआ अज्ञात में, रहने का अब साल ।
इसीलिये प्रगटे हैं ये, धर्मराज भूपाल ॥

बस फकत बतौर शकुन के ये, भूपति ने रस्म मनाई है ।
न के हे भूप तुम्हारी ये, रजधानी लेनी चाही है ॥
ये राज मुबारिक रहे तुम्हें, ये तो अब शीघ्र सिधावेंगे ।
तुम्हरे उत्तम व्यवहारों को, आजन्म खुशी हो गावेंगे ॥

सुनते ही इस भेद को, गये भूप घबराय ।
धर्मराज के पांव पर, गिरे तुरत ही जाय ॥

बोले महाराज क्षमा करना, मैंने अति धोखा खाया है ।
गिनकर एक मामूली ब्राह्मण, कई बार तुम्हें धमकाया है ॥
फिर कल जो पासा मारा है, वो कसूर है इतना भारी ।
कि फौरन ही मम गर्दन ये, करदी जावे तन से न्यारी ॥
हा शोक जगत का सर्व श्रेष्ठ, राजा दासों सम कार करे ।
और मुझ जैसा मति मन्द नीच, नहिं कुछ आदर सत्कार करे ॥
है कितनी बुरी बात राजन्, किम ये कलंक मिट पावेगा ।
हा नृप विराट् अब किस प्रकार, दुनियां को मुख दिखलावेगा ॥
दो धर्मराज बस जल्दी दो, भरपूर दण्ड अपराधी को ।
जिसने अतिशय दुर्वचन कहे, जग के नामी सतवादी को ॥

नृप विराट् के वाक्य सुन, उठे युधिष्ठिर वीर ।
तुरत इन्हें हृदय लगा, बोले वचन गंभीर ॥

जो किया आपने मेरे संग, बर्ताव कमीनक नरराई ।
वो हरगिज बुरा न था बल्की, था हर प्रकार से सुखदाई ॥
इसकी ऐवज में मुझको ही, चहिये कि आपको सिरनाऊं ।
न के उल्टे तुम से ही नृप, सिर निज पांवों पर रखवाऊं ॥

अहसानमन्द हूँ मैं तुम्हरा, और रहूंगा जब तक ये दम है ।
क्योंकि तुमने यहां रक्ख हमरा, बस मिटादिया सारा गम है ॥
ये साल हमारे लिये भूप, था अति ही दुखप्रद भयकारी ।
यदि आप दया नहिं दिखलाते, क्या जाने क्या होती ख्वारी ॥

धन्यवाद प्रभु को प्रथम, फिर तुमको भूपाल ।
जिनकी कृपाकटाक्ष से, बीतगया ये साल ॥
नृप विराट् फिर कह उठे, हे गुणज्ञ नरनाथ ।
ये तो कहो कि हैं कहाँ, तुम्हरे चारों भ्रात ॥

जिन बहादुरों के बाणों से, पर्वत रज सम होजाते थे ।
अवलोक जिन्हें अति क्रोधयुक्त, निश्चर तक भी थर्राते थे ॥
फिर राजसूययज्ञ से पहिले, जिन वीरों ने भुजबल द्वारा ।
प्रत्येक दिशाओं में जाकर, जय किया था भूमि खंड सारा ॥
वे आर्यदेश के होनहार, सच्चे सपूत कहाँ बसते हैं ।
उनके दर्शन के लिये भूप, ये मेरे नेत्र तरसते हैं ॥

धर्मराज कहने लगे, सुनो भूप मति धीर ।
नजर उठा देखो यहीं, खड़े हैं चारों वीर ॥

मेरी दाहिनी दिशि हृष्टपुष्ट, आजान बाहु रिपु क्षयकारी ।
जिनको अबतक बल्लभ समझा, अब समझो भीम गदाधारी ॥
फिर बांईं तरफ निहारो तो, जो तेज पुंज की मूरत है ।
रिपुओं का मद हरने वाले, और धनुर्वेद की मूरत है ॥
जिनने इस जगह वृहन्नल बन, महलों में गाने सिखलाये ।
उत्तर कुमार के सारथि हो, जो गउएं जाय छुड़ा लाये ॥
ये वही महाबल अर्जुन हैं, सुर तक जिनके गुण गाते हैं ।
पा ऐसा उत्तम भ्रात भूप, हम भी हरदम हर्षाते हैं ॥

फिर मेरे पीछे खड़े हैं जो, सुकुमार अतुल शोभा वाले ।
जिन लोगों ने एक साल तलक, गौ अश्व आदि यहां पशु पाले ॥
जिनको तुमने कह तन्तिपाल, और ग्रन्थिक सदा पुकारा है ।
इनको समझो सहदेव नकुल, अबतो शक मिटा तुम्हारा है ॥

गजब गजब कह भूमि पर, गिरे विराट् नरेश ।
बोले हा मुझ नीच ने, दिये तुम्हें अति क्लेश ॥

जिनके दर्शन के लिये सदां, रहते उत्सुक, भारत वासी ।
जो हैं धनुवेंद विशारद अरु, रण धीर वीर सब गुणरासी ॥
फिर जो निज जीवन देवों से, भी बढ़कर नित्य बिताते थे ।
जिनके संकेतों पर हरदम, बेगिनती धावन धाते थे ॥
उन श्रेष्ठ नरों में से कोई, यहां आय कंक ऋषि कहलाया ।
और किसी ने भोजन करने में, अपने को नामी बतलाया ॥
बन क्लीव किसी ने महलों में, कर भेष जनाना वास किया ।
कोई गौ पालक बना किसी, ने घुड़शाला का काम लिया ॥
इन अपराधों से किस प्रकार, मैं छूटूंगा हे नरराई ।
बस फकत मृत्यु के सिवा और. देता न रास्ता दिखलाई ॥
पर ये तो मुझको बतलाओ, तुम लोगों की प्रिय पटरानी ।
द्रौपद की इकलौती कन्या, है कहां द्रौपदी महारानी ॥

धर्मराज कहने लगे. देखो दृष्टि उठाय ।
सैरिन्ध्री के भेष में. थी कृष्णा सुखदाय ॥

सुनतहि विराटेश्वर बोले, हा हाय अनर्थ किया मैंने ।
भूमंडल की सम्राज्ञी से, दासी का काम लिया मैंने ॥
नहिं रहा दिखाने के लायक. अपनी ये शकल जमाने में ।
चलदूंगा बस घर तज बन को. कुछ धरा न राज चलाने में ॥

हाथ पकड़कर भूप का, बोले धर्म नृपाल ।
महाराज तज दो सकल, ऐसे नीच ख़याल ॥

इसमें कुछ अचरज नहीं नृपति, ये समय की है सब बलिहारी ।
पल में गरीब धनवान बने, पल में धनाढ्य की हो ख्वारी ॥
नृप हरिश्चन्द्र जैसों को भी, इस काल ने नाच नचाया था ।
कर राज पाट से च्युत पल में, भंगी का दास बनाया था ॥
फिर बिकी सरे बाजारों में, वो पतीव्रता तारा रानी ।
कुछ दमयन्ती की कथा पढ़ो किस कदर हुई थी हैरानी ॥
इनके मुकाबिले में हमने, नृप कुछ भी दुख नहिं पाया है ।
तुम्हरे आश्रय में सुख पूर्वक, रहकर सब साल बिताया है ॥

❀ गाना ❀

सुनो भूप भावी टरे नहि टारी ।
सारी दुनियां यतन करके हारी ॥

सुर, नर, मुनि अरु ऋषि जितने भी, हुये है जगत मंझारी ।
फँसके इसके फन्दे सब ने, भोगे हैं संकट भारी ॥ सुनो० ॥
गुरु वशिष्ठ ने राजगद्दि का रक्खा था लगन विचारी ।
पर वो मिली न रामचन्द्र को, बन की हुई तैयारी ॥ सुनो० ॥
बड़े बड़ों की बात भी इसने, जब इक पल में बिगारी ।
क्षुद्र मनुज की फिर क्या गिनती, किस विधि होय सुखारी ॥सुनो०॥
हानि, लाभ, यश, अपयश ये सब समय की है बलिहारी ।
अन्तु सदा चित को थिर रक्खे, सुमिरे नित गिरधारी ॥सुनो०॥

अपराधी नो आप के, हम हैं है गुणवान ।
क्यों के कीचक के हरे, हम लोगों ने प्रान ॥

उसने पंचाली पर कुदृष्टि, डाली थी इससे मारा है।
और उसके भ्राताओं का भी, लखके कुकर्म संहारा है॥
अब चाहो हमको माफ करो, या दंड दिलाओ नरराई।
खाकर तुम्हरा ही नमक फेर, इस कदर करी है निठुराई॥

बोले नृप उस नीच का, था ऐसाहि कसूर।
ठीक हुआ जो दुष्ट वो, हुआ यहां से दूर॥

उसके बध की तो बात नहीं, मम पुर भी यदि गारत होता।
तो भी मै राजा कभी नहीं, हृदय में कुछ आरत होता॥
ये तो इस देवी ने अतिशय, नृप सहनशीलता दिखलाई।
जो ऐसे अत्याचारी की, बातों पर ध्यान नहीं लाई॥
यदि अपने मुखसे थोड़ा भी, जो ये दुर्वचन सुना देती।
तो निश्चय था कीचक तो क्या, सब पुर को भस्म बनादेती॥

अच्छा अब इस जिक्रका, छोड़ो ध्यान भुवार।
कान लगा मम बात को, सुनो धर्म अवतार॥

बलवीर धनंजय ने मेरे, लड़के की जान बचाई है।
अस्तू इनको मम प्रिय पुत्री, देने की मन ठहराई है॥
बस येही हैं उपयुक्त पात्र, उत्तम है पाणी-ग्रहन करें।
हम लोगों से नाता जोड़ें, आनन्दित हो यहां चैन करें॥

कहा पार्थ ने उचित है, हम तुम में सम्बन्ध।
काम करो यदि एक तुम, होय मुझे आनन्द॥

मैंने अंतःपुर में रह कर, उत्तरा को गान सिखाया है।
कितनी हि बार पुत्री कहकर, उनको मम निकट बुलाया है॥
उसने भी मुझ को कई वर्ष, कर दिना मेरा सन्मान किया।
जो कुछ मैं शिक्षा देता था, आचार्य मान कर कान किया॥

अस्तु मम सुत अभिमन्यू से, उसकी शादी करवा दीजे।
है वो भी देव कुमार सरिस, इतना कहना मेरा कीजे॥
कहा भूप ने हो खुशी, ठीक आप की बात।
बुलवाओ अभिमन्यु को, किसी दूत के हाथ॥
केवल आज्ञा की देरी थी, एक दूत द्वारिका को धाया।
संदेशा पांडु—नन्दनों का, आनन्द-कंद को बतलाया॥
सुनतेहि इन्हों ने हर्षित हो, शादी का सब सामान लिया।
और अभिमन्यू को संग लेकर, पुर विराट को प्रस्थान किया॥
हलधर व सात्यकी आदि कई, चलपड़े साज कर ठाठ सभी।
कुछ दिनों बाद चलते चलते, ये पहुँचे नगर विराट सभी॥
द्रौपद व शिखंडी धृष्टद्युम्न, ये भी निज सेना सजवा कर।
आ पहुँचे धौम्य पुरोहित संग शादी की सब खबरें पाकर॥
कृष्णा के सब पुत्रों को भी, ये अपने संग में लाये थे।
इनके अतिरिक्त कई राजा, नाना देशों से आये थे॥
लख एकत्रित इन पुरुषों को, पांडवों को मोद अपार हुआ।
फिर शुभ मुहूर्त के आते ही, फेरों का तुरत विचार हुआ॥
होगया विवाह अभिमन्यू का, आखिर उत्तरा कुमारी से।
मित्रों ने अति हर्षित होकर, दी बधाई बारी बारी से॥
पांडवों को बंधन मुक्त देख, सब आगन्तुक गण हरषाये।
कई दिनों नाच और रंग रहा, गायकों ने सब के गुण गाये॥
कुछ दिन करके आनन्द चैन, लख कर उत्सव न्यारे न्यारे।
होगये इकट्ठे एक रोज, फिर राज सभा में जा सारे॥
पावें किम निज राज्यको, धर्मराज नरनाह।
"श्रीलाल" इसके लिये, करने लगे सलाह॥

॥ बारहवां भाग सम्पूर्ण ॥

महाभारत ॐ तेरहवां भाग

पांडवों की सलाह

श्रीलाल

हाभारत ॐ तेरहवा भाग

पांडवों की सलाह

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—

महाभारत पुस्तकालय, अजमेर.

द्रक—के. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

तीयावृति २००० | विक्रमी सम्वत् १९९८ ईस्वी सन् १९३ ५ | मूल्य ।; आने

॥ स्तुति ॥

(राग ध्रुपद)

तू है सब जग अधार ॥

लीला तेरी अपार, पावे नहीं कोई पार ।

सुर नर मुनि गये हार, तू है सब जग० ॥

मैंने जगमें जनम धार, पाप किये हैं अपार ।

करना दया हे मुरार, तू है सब जग० ॥

भक्तों का तू है प्यारा, दुष्टों को मारन हारा ।

हे करतार सिरजनहार, मम दुख टार, तू है सब जग० ॥

मङ्गलाचरण

रक्ताम्बर धर विघ्न हर, गौरीसुत गणराज ।
करना सुफल मनोर्थ प्रभु, रखना जन की लाज ॥
सृष्टि रचन, पालन, हरन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश ।
बानी, रमा, उमा सुमिल, रक्षा करहु हमेश ॥
बन्दहुं व्यास विशाल बुधि, धर्मधुरंधर धीर ।
"महाभारत" रचना करी, परम रम्य गम्भीर ॥
जासु वचन रवि जोति मम, मेटत तम अज्ञान ।
बंदहुं गुरु शुभ गुण भवन, मनुज रूप भगवान ॥

* ॐ *

नारायणं नमस्कृत्य, नरंचैव, नरोत्तमम् ।
देवीं, सरस्वतीं, व्यासं ततो "जय", मुदीरयेत् ॥

कथा प्रारम्भ

नृप विराट् के भवन में, पांचों पांडव आय ।
पहुँचे अपने साथ ले, इष्ट मित्र समुदाय ॥

श्री कृष्णचन्द्र हलधर, सात्यकि, अनिरुध, प्रद्युम्न यादव वंशी ।
नृप विराट्, उत्तर धृष्टद्युम्न, द्रौपद व शिखंडी शशिअंशी ॥
पांडवों के पांचों पुत्र और, अभिमन्यु आदि सब बलधामा ।
बैठे सुख पूर्वक आसनपर, इतने में बोले घनश्यामा ॥
राजाओं तुमको मालुम है, शकुनी ने कपट चाल करके ।
पांडवों को बन भिजवाया है, इनका सब राजपाट हरके ॥
यदि रन में इनपर विजय पाय, धन लेलेता न बुराई थी ।
पर धर्म विमुख हो उसने तो, छल से सब सम्पति पाई थी ॥
इतना हि नहीं उस कपटी ने, बन का प्रण भी करवाया था ।
द्वादश वर्षों तक प्रगट और, एक साल गुप्त ठहराया था ॥
पांडव गन चाहें तो बल से, सब पृथ्वी जय कर सकते हैं ।
लेकिन ये धर्म धुरंधर हैं, मर्याद नहीं तज सकते हैं ॥

पालन कर सत धर्म का, भोगे कष्ट अनेक ।
समय बिताया दुःख से, तजी न अपनी टेक ॥

यद्यपि कौरव लोगों ने इन्हें, सब तरह का दुख पहुँचाया है ।
फिर भी इन पांचों ने अब तक, उनपर नहिं क्रोध दिखाया है ॥

आगे को भी इच्छा है नहीं जो करें बुरा भ्राताओं का।
इससे अंदाज लगालो तुम, इनके अति मृदुल स्वभावों का॥
इस समय ये पांचों चाहते हैं, मिलजाय हमारा राज हमें।
जो बाहुबल से जीता है, उसका हो प्राप्त बस ताज हमें॥
पर ये भी आप जानते हैं, कितना लोभी है दुर्योधन।
चौपड़ में हो उस पापी ने, दिखलाया कितना कपटीपन॥
उसने सौ सौ छलों द्वारा चेष्टा की राज पाने के लिये।
लाक्षागृह की इन पांचों को, यमपुर को भिजवाने के लिये॥
इन सब बातों पर दृष्टी रख, बतलाओ क्या करना चाहिये।
किस तरह कौरवों से इनका, सब राजपाट लेना चाहिये॥
कौरव पांडव दोउ भाई हैं, दोनों हो राजी खुशी रहें।
मिलजाय राज पांडवों का सब, कह दो जैसे ये सुखी रहें॥

पक्षपात से रहित जब, सुनी कृष्ण की बात।
हलधर यों कहने लगे, हो कर पुलकित गात॥

सरदारों कैसी उत्तम है, सारी बातें गिरधारी की।
हैं धर्म के मालिक और जैसी, ज्ञाती हैं दुनियांदारी की॥
ये बातें कौरव और पांडव, दोनों वंशों को सुखकर हैं।
जैसी इनको सुखदायक हैं, वैसी हो उनको हितकर हैं॥
महाबली कुन्ति सुत भ्राता हो, ले राज सबर करना चाहते।
पर होने हुये भि कुकर्मों का, ये सत्व नहीं हरना चाहते॥
बेहतर है कौरव गण इनको, खो हर्षित हिस्सा दे डालें।
मिल जुलकर दोनों वंश रहें, आपस में प्रेम भाव पालें॥

अस्तु हमारी राय है, एक दूत तहँ जाय।
दुर्योधन को नम्र हो, सब संदेश सुनाय॥

क्यों के कुल राज सुयोधन के, इस समय हाथ में है भाई।
इसलिये सभा में जाकर के, दिखलानी होगी नरमाई॥
अस्तू वो चर मृदुबैनों से, पहिले खुश करे सुयोधन को।
मांगे फिर अति विनीत होकर, पांडवों के राज पाट धन को॥
ऐसा करने से निश्चय ही, उनसे संधी हो जावेगी।
बिन फूट पड़े आसानी से, भूमी भी सब मिल जावेगी॥

नरमी का प्रस्ताव सुन, बिगड़े सात्यकि वीर।
खड़े हुये और क्रोध से, बोले होय अधीर॥

हलधर ऐसी बातें न कहो, नरमी दिखलाना ठीक नहीं।
सर्पों को पय का पान करा, विष अधिक बढ़ाना नीक नहीं॥
कुछ सोचो तो उन दुष्टों ने, किस कदर जाल फैलाया है।
एक धर्मात्मा सज्जन नर को, कर कपट की चाल हराया है॥
जो जुये में बिलकुल चतुर नहीं, उसको शठता से बैठा कर।
छीना है राजपाट सारा, फिर कैसे उन्हें झुकावें सर॥
होगये वर्ष तेरह व्यतीत, इस समय ये सभी स्वतंत्र हुये।
बन गये राज के अधिकारी, क्यों कर जोड़े परतंत्र हुये॥
यदि धर्मराज को धर्म युक्त, बातों को वे नहिं मानेंगे।
तो हम ये सोगंद खाते हैं, उनके विरुद्ध रण ठानेंगे॥

कठिन घोर संग्राम कर, उनको वश में लाय।
धर्मराज के चरण पर, देंगे तुरत गिराय॥

यदि फिर भी राजी नहीं हुये, निश्चय वे यमपुर जावेंगे।
और अर्ध राज की ऐवज में, कुन्ती-सुत सारा पावेंगे॥
बोलो उनमें से कौन वीर, अर्जुन के सन्मुख आवेगा।
किस में बल है जो भीम से लड़, जिन्दा हि लौट घर जावेगा॥

जिस समय चक्र को कर में ले, ननवारी रन में उतरेंगे।
तो कहो हैं कितने वीर वहां, जो वार इन्हों का सहलेंगे॥
फिर माद्री पुत्रों के सन्मुख, होवेगा कौन बली उनका।
जब रण भूमी में चमकेगा, तलवारों का जौहर इनका॥
अभिमन्यु द्रौपदी के सब सुत, अरु महारथी धृष्टद्युम्न बली।
संग्राम में जब ये पहुँचेंगे, तोड़ेंगे सब रिपुओं की नली॥
फिर हम भी सब एकत्र होय, शकुनी व कर्ण दुःशासन को।
दम मारके सब दुर्योधन के, लेलेंगे झट राज्यासन को॥

धर्म विरुद्ध ये है नहीं, बुरा कहे नहिं कोय।
अन्यायकारी शत्रु को, मारे पाप न होय॥

❀ गाना ❀

शत्रु के सामने नर्मी न दिखायेंगे कभी।
सांप को दूध पिला विष न बढ़ायेंगे कभी॥
पाप गिनता हूं मैं तो दुष्ट से विनती करना।
करेंगे युद्ध ही पर सिर न झुकायेंगे कभी॥
"मांगना" क्या भला ये धर्म क्षत्रियों का है।
बल से ही लेंगे मगर अयश कमायेंगे नहीं॥
कहे से राज दिलादें यदि कौरव तब तो।
ठीक है, वरना वे फिर सुख न उठायेंगे कभी॥

कहा द्रुपद ने ठीक है, कहा जो तुमने वीर।
किन्तु कुछ दिनों और भी, मन में धारो धीर॥

इसमें सन्देह नहीं सात्यकि, पांडव पूरे अधिकारी हैं ।
पर अभी राज जो करते हैं, वे कौरव अति कुविचारी हैं ॥
दुर्योधन कभी खुशी होकर, इनको न राज लौटावेगा ।
वह अन्धा सुत की ममता से, हां में हां तुरत मिलावेगा ॥
हैं पराधीन भीषम व द्रौण, इस काम में बोल नहीं सकते ।
और कर्ण व शकुनी शठता वस, शुभ अशुभ को तोल नहीं सकते ॥
मुझको दिखलाई देता है, उन लोगों से लड़ना होगा ।
वे मृदुता से नहिं समझेंगे, अस्तु कटना मरना होगा ॥
इसलिये प्रथम ये काम करो, कुछ दूतों को भिजवाओ तुम ।
संग्राम का सब भूपालों को, न्यौता देकर बुलवाओ तुम ॥
इसके उपरान्त दूत भिजवा, दुर्योधन को समझावेंगे ।
यदि मानगया तो अच्छा है, और नहीं तो युद्ध मचावेंगे ॥
हम लोगों की मृदु बातें सुन, दुर्योधन निर्बल जानेगा ।
हमको यदि बली निहारेगा, तो मुमकिन है डर मानेगा ॥

कहा कृष्ण ने ठीक है, द्रुपद राज की बात ।
पांडु सुतों का काम सब, सौंपो इनके हाथ ॥

हमतो विवाह में आये थे, इसलिये लौट कर जाते हैं ।
अपने सब दिली इरादे को, एक बार फेर दोहराते हैं ॥
जहां तक सम्भव हो सन्धी ही, कर लेना सुखदायक होगा ।
दोनों कुल की हानी न होय, सब तरह यही लायक होगा ॥
यदि दुर्योधन लालच में आ पांडवों की बात नहीं माने ।
अन्याय के वशीभूत होकर, जो वह लड़ने ही की ठाने ॥
तो उचित है पांडु नन्दनों को, अपने मित्रों को बुलवावें ।
इन सब लोगों के आने पर, सन्देश मुझे भी भिजवावें ॥

पहिले सन्धी की करो, हर प्रकार कोशीश ।
सुफल न हो तब रन करो, अन्त में बिस्वा बीस ॥

यों कह आदर सत्कार पाय, यदुओं को संग ले गिरधारी ।
घर चले गये यहां द्रुपद आदि, सब करन लगे रण तैयारी ॥
कुन्ती पुत्रों ने निज पड़ाव, उपलव्य नगर में गेर दिया ।
और मदद नृपों से लेने को, दूतों को फौरन भेज दिया ॥
ये खबर पाय दुर्योधन भी, मित्रों को तुरत बुलाने लगे ।
यों दोनों पक्षों की जानिब, अन गिनती राजे आने लगे ॥
सब जगह और भूमंडल में, सब अपनी कटक सजाते थे ।
संग्राम की इच्छा रखते हुये, हर्षित हो दौड़े आते थे ॥
पृथ्वी पर जहां दृष्टि डालो, चतुरंग सेना दिखलाती थी ।
बाजों की ध्वनि से मस्त होय लड़ने को बढ़ती आती थी ॥

सब ही थे रण बांकुरे, याद्ध बल की खान ।
सजे हुये रन साज से, सुन्दर तेज निधान ॥

शर, परसु, शक्ति, तोमर, त्रिशूल, तलवार, धनुष, मुग्दर, भाले ।
कई तरह के अस्त्र शस्त्र लेकर, आगये तहां लड़ने वाले ॥
कुन्ती सुत ने नगरों में तो, अन गिनती दूत पठाये थे ।
पर कृष्णचन्द्र को लाने को, खुद अर्जुन को भिजवाये थे ॥
सुन हुक्म बड़े भाई का ये, चलदिये द्वारका हरषा कर ।
दुर्योधन भी ये खबर पाय, दौड़ा जल्दी चढ़कर रथपर ॥
और पहिले अर्जुन से ये ही, पहुँचा यदुपति के मंदर में ।
जिस जगह कृष्ण आनन्दकन्द, सोते थे शैया सुन्दर में ॥
जा बैठा तुरत सिरहाने ये, इतने में पार्थ चले आये ।
और बैठे पांवों की जानिब, लखि दुर्योधन को चकराये ॥

दोनों हि प्रतिज्ञा करने लगे, सच्चिदानन्द के जागन की ।
उत्कंठा थी दोउ वीरों को, प्रभु से सहायता मांगन की ॥

कछुक देर के बाद में, जागे कृष्ण सुजान ।
वीर धनंजय की तरफ, पहुँचा पहिले ध्यान ॥

फिर दृष्टि गई दुर्योधन पै, दोनों से पूछी क्षेम कुशल ।
कर जोड़ इन्होंने कहा यही, प्रभु कृपा से है सब विधि मंगल ॥
फिर बोले कुरुपति हे माधव, इस रण में आप कृपा करके ।
मेरी ही जानिब से लड़ना, आया हूँ यही आश धरके ॥
वैसे तो दोनों वंशों पर, है प्रेम बराबर यदुपत का ।
लेकिन हम पहिले आये हैं, सो करो पक्ष मेरे मत का ॥
है लोक रीति ये ही स्वामी, जो पहिले विनय सुनाता है ।
सज्जन नर पहिले उसही का, हर तरह से काम बनाता है ॥

कहा कृष्ण ने आप ही, पहुँचे पहिले आय ।
लेकिन पहिले दृष्टि मम, पड़ी पार्थ पै जाय ॥

इसलिये ये सोचा है राजन, मैं मदद करूंगा दोनों की ।
जहां तक मुझ से बन सकेगा मैं, बस पीर हरूंगा दोनों की ॥
एक ओर मेरी चतुरंग सेन, जो नारायणी कहाती है ।
है अगम शत्रु लोगों के लिये, और अजीत मानी जाती है ॥
जिसका एक एक वीर मुझ सम, रखता है बल रन करने का ।
संग्राम भूमि में खड़ा होय, कुछ शोक न करता मरने का ॥
ऐसी प्रसिद्ध मेरी सेना, एक तरफ सहायता देवेगी ।
कर क्रोध विपक्षी वीरों के, हो सन्मुख लोहा लेवेगी ॥
और तरफ दूसरी मैं इकला, केवल पीताम्बर धारन कर ।
हो शस्त्र हीन जा बैठूंगा, लड़ने की सब इच्छा तज कर ॥

अर्जुन छोटे हैं अस्तु यही, मांगे पहिले क्या चाहते हैं ।
मेरी या मेरी सेना को, किसको इच्छा जतलाते हैं ॥
सुन युक्ति पूर्ण हरि की बानी, अर्जुन ने तनिक विचार किया ।
नारायण श्री कुंजविहारी को, ले लेना ही स्वीकार किया ॥
दुर्योधन नारायणी कटक, पाकर मन में हरषाने लगे ।
फिर पहुंचे हलधर के समीप, उनसे सहायता चाहने लगे ॥

कहा राम ने किसी की, मैं नहिं करूं सहाय ।
दोनों बंधु समान हैं, किसे मदद दी जाय ॥

सुन ऐसा उत्तर हलधर का, दुर्योधन भवन चले आये ।
श्री हरि की उत्तम सेना पा, आनन्दित हो मन हरषाये ॥
यहां बोले अर्जुन से यदुपति, क्यों मुझको रक्खा विरुद्ध नहीं ।
मैं रहूंगा हरदम शस्त्र रहित, फिर करूंगा हरगिज युद्ध नहीं ॥
सेना कुछ तो सहाय देती, हो जाता बल निश्चय ज्यादा ।
क्यों मुझे अकेले को हि पार्थ, होगये लेन को आमादा ॥

हाथ जोड़ सिर नाय कर, बोले पार्थ सुजान ।
दुनियां में कोई नहीं, तुम समान भगवान ॥

तुम चाहो बिना अस्त्र के ही, दुष्टों का बध कर सकते हो ।
इतनी शक्ती प्रभु आपमें है, अनगिनत सृष्टि रच सकते हो ॥
मैं सेना संग्रह करने को, इस समय यहां नहिं आया था ।
कुछ और हि कारण है जिसने, भाई ने मुझे पठाया था ॥
इस दुनियां में तुम्हारे समान, प्रभु कोई भी नीतिज्ञ नहीं ।
संसार में ऐसा विषय नहीं, जिसमें गिरधर तुम ! विज्ञ नहीं ॥
इसलिये तुम्हारी सहाय मात्र, हमको रस्ता दिखलायेगी ।
जब कारज कारन होंगे तुम तो, खुद विजय लक्ष्मी आयेगी ॥

फिर एक और भी काम मेरा, हे कृष्ण पूर्ण करना होगा ।
इस महा युद्ध में तुम्हें प्रभु, मेरा सारथि बनना होगा ॥

कह तथास्तु गोपाल ने, दीन्हा हृदय लगाय ।
फेर युधिष्ठिर के निकट, पहुँचे दोनों आय ॥

इसके उपरान्त युधिष्ठिर के, ढिंग अगनित भूपति बलशाली ।
आ गये मदद देने के लिये, जिन के बोझे से भू हाली ॥
महारथी वीर युयुधान भूप, इक अक्षौहिणी सेन सजवा ।
चलदिये युद्ध की इच्छा कर, जोधीले रण बाजे बजवा ॥
अपने मित्रों को संग लेकर, था जिनमें अतुलित बल भारी ।
वे चन्देरी नृप हर्ष युक्त, आये सेना ले भय कारी ॥
मगधेश के राजा जयतसेन, जो महा वीर कहलाये थे ।
इक अक्षौहिणी कटक लेकर, उपलव्य नगर में आये थे ॥
इनके पीछे नृप धृष्टकेतु, इक अक्षौहिणी संग लेकर ।
आ पहुँचे पास युधिष्टिर के, संग्राम के लिये कमर कस कर ॥
द्रौपद व विराट् सात्यकी ने, अपनी सब सेना मंगवाई ।
उपलव्य नगर के आस पास, उत्तम भूमी में ठहराई ॥
इनके अतिरिक्त सैकड़ों ही, भूमंडल के नृप भटमानी ।
होगये इकट्ठे यहां आय, कुरुओं से लड़ने की ठानी ॥

हुई सात अक्षौहिणी, भूप युधिष्टिर पास ।
अनगिनती रणधीर लख, हुई विजय की आस ॥

उस ओर सुयोधन के समीप, उसके शुभचिंतक आये थे ।
अपने संग में रणधीर वीर, वे गिनती योधा लाये थे ॥
सब से पहिले भगदत्त भूप, उत्तर जलनिधि की सीमां तक ।
सारे भूपाओं को संग ले, आ मिले सुयोधन से झटपट ॥

अर्जुन छोटे हैं अस्तु यही, माँगे पहिले क्या चाहते हैं।
मेरी या मेरी सेना की, किसकी इच्छा जतलाते हैं॥
सुन युक्ति पूर्ण हरि की बानी, अर्जुन ने तनिक विचार किया।
आखिर श्री कुंजबिहारी को, ले लेना ही स्वीकार किया॥
दुर्योधन नारायणी कटक, पाकर मन में हरषाने लगे।
फिर पहुँचे हलधर के समीप, उनसे सहायता चाहने लगे॥

कहा राम ने किसी की, मैं नहिं करूं सहाय।
दोनों वंश समान हैं, किसे मदद दी जाय॥

सुन ऐसा उत्तर हलधर का, दुर्योधन भवन चले आये।
श्री हरि की उत्तम सेना पा, आनन्दित हो मन हरषाये॥
यहां बोले अर्जुन से यदुपति, क्यों मुझको रखा विरुद्ध नहीं।
मैं रहूँगा हरदम शस्त्र रहित, फिर करूंगा हरगिज युद्ध नहीं॥
सेना कुछ तो सहाय देती, हो जाता बल निश्चय ज्यादा।
क्यों मुझे अकेले को हि पार्थ, होगये लेन को आमादा॥

हाथ जोड़ सिर नाय कर, बोले पार्थ सुजान।
दुनियां में कोई नहीं, तुम समान भगवान॥

तुम चाहो बिना अस्त्र के ही, कुरुओं का बध कर सकते हो।
इतनी शक्ती प्रभु आपमें है, अनगिनत सृष्टि रच सकते हो॥
मैं सेना संग्रह करने को, इस समय यहां नहिं आया था।
कुछ और हि कारन है जिससे, भाई ने मुझे पठाया था॥
स दुनियां में तुम्हरे समान, प्रभु कोई भी नीतिज्ञ नहीं।
संसार में ऐसा विषय नहीं, जिसमें गिरधर तुम! विज्ञ नहीं॥
इसलिये तुम्हारी सलाह मात्र, हमको रस्ता दिखलायेगी।
जिस जगह आप होंगे उस जां, झट विजय लक्ष्मी आयेगी॥

फिर एक और भी काम मेरा, हे कृष्ण पूर्ण करना होगा ।
इस महा युद्ध में तुम्हें प्रभू, मेरा सारथि बनना होगा ॥

कह तथास्तु गोपाल ने, दीन्हा हृदय लगाय ।
फेर युधिष्ठिर के निकट, पहुँचे दोनों आय ॥

इसके उपरान्त युधिष्ठिर के, ढिंग अगनित भूपति बलशाली ।
आ गये मदद देने के लिये, जिन के बोझे से भू हाली ॥
महारथी वीर युयुधान भूप, इक अक्षौहिणी सेन सजवा ।
चलदिये युद्ध की इच्छा कर, जोशीले रण बाजे बजवा ॥
अपने मित्रों को संग लेकर, था जिनमें अतुलित बल भारी ।
वे चन्देरी नृप हर्ष युक्त, आये सेना ले भय कारी ॥
मगधेश के राजा जयतसेन, जो महा वीर कहलाये थे ।
इक अक्षौहिणी कटक लेकर, उपलव्य नगर में आये थे ॥
इनके पीछे नृप धृष्टकेतु, इक अक्षौहिणी संग लेकर ।
आ पहुँचे पास युधिष्ठिर के, संग्राम के लिये कमर कस कर ॥
द्रौपद व विराट् सात्यकी ने, अपनी सब सेना संगवाई ।
उपलव्य नगर के आस पास, उत्तम भूमी में ठहराई ॥
इनके अतिरिक्त सैकड़ों ही, भूमंडल के नृप भटमानी ।
होगये इकट्ठे यहां आय, कुरुओं से लड़ने की ठानी ॥

हुईं सात अक्षौहिणी, भूप युधिष्ठिर पास ।
अनगिनती रणधीर लख, हुई विजय की आस ॥

उस ओर सुयोधन के समीप, उसके शुभचिंतक आये थे ।
अपने संग में रणधीर वीर, वे गिनती योधा लाये थे ॥
सब से पहिले भगदत्त भूप, उत्तर जलनिधि की सीमां तक ।
सारे भूपाओं को संग ले, आ मिले सुयोधन से झटपट ॥

अर्जुन छोटे हैं अस्तु यही, मांगे पहिले क्या चाहते हैं ।
मेरी या मेरी सेना की, किसकी इच्छा जतलाते हैं ॥
सुन युक्ति पूर्ण हरि की बानी, अर्जुन ने तनिक विचार किया ।
आखिर श्री कुंजबिहारी को, ले लेना ही स्वीकार किया ॥
दुर्योधन नारायणी कटक, पाकर मन में हरषाने लगे ।
फिर पहुँचे हलधर के समीप, उनसे सहायता चाहने लगे ॥

कहा राम ने किसी की, मैं नहिं करूं सहाय ।
दोनों वंश समान हैं, किसे मदद दी जाय ॥

सुन ऐसा उत्तर हलधर का, दुर्योधन भवन चले आये ।
श्री हरि की उत्तम सेना पा, आनन्दित हो मन हरषाये ॥
यहां बोले अर्जुन से यदुपति, क्यों मुझको रखा विरुद्ध नहीं ।
मैं रहूँगा हरदम शस्त्र रहित, फिर करूंगा हरगिज युद्ध नहीं ॥
सेना कुछ तो सहाय देती, हो जाता बल निश्चय ज्यादा ।
क्यों मुझे अकेले को हि पार्थ, होगये लेन को आमादा ॥

हाथ जोड़ सिर नाय कर, बोले पार्थ सुजान ।
दुनियां में कोई नहीं, तुम समान भगवान ॥

तुम चाहो बिना अस्त्र के ही, कुरुओं का बध कर सकते हो ।
इतनी शक्ती प्रभु आपमें है, अनगिनत सृष्टि रच सकते हो ॥
मैं सेना संग्रह करने को, इस समय यहां नहिं आया था ।
कुछ और हि कारन है जिससे, भाई ने मुझे पठाया था ॥
इस दुनियां में तुम्हारे समान, प्रभु कोई भी नीतिज्ञ नहीं ।
संसार में ऐसा विषय नहीं, जिसमें गिरधर तुम! विज्ञ नहीं ॥
इसलिये तुम्हारी सलाह मात्र, हमको रस्ता दिखलायेगी ।
जिस जगह आप होंगे उस जां, झट विजय लक्ष्मी आयेगी ॥

फिर एक और भी काम मेरा, हे कृष्ण पूर्ण करना होगा ।
इस महा युद्ध में तुम्हें प्रभू, मेरा सारथि बनना होगा ॥

कह तथास्तु गोपाल ने, लीन्हा हृदय लगाय ।
फेर युधिष्ठिर के निकट, पहुँचे दोनों आय ॥

इसके उपरान्त युधिष्ठिर के, ढिंग अगनित भूपति बलशाली ।
आ गये मदद देने के लिये, जिन के बोझे से भू हाली ॥
महारथी वीर युयुधान भूप, इक अक्षौहिणी सेन सजवा ।
चलदिये युद्ध की इच्छा कर, जोशीले रण बाजे बजवा ॥
अपने मित्रों को संग लेकर, था जिनमें अतुलित बल भारी ।
वे चन्देरी नृप हर्ष युक्त, आये सेना ले भय कारी ॥
मगधेश के राजा जयतसेन, जो महा वीर कहलाये थे ।
इक अक्षौहिणी कटक लेकर, उपलव्य नगर में आये थे ॥
इनके पीछे नृप धृष्टकेतु, इक अक्षौहिणी संग लेकर ।
आ पहुँचे पास युधिष्ठिर के, संग्राम के लिये कमर कस कर ॥
द्रौपद व विराट् सात्यकी ने, अपनी सब सेना मंगवाई ।
उपलव्य नगर के आस पास, उत्तम भूमी में ठहराई ॥
इनके अतिरिक्त सैकड़ों ही, भूमंडल के नृप भटमानी ।
होगये इकट्ठे यहां आय, कुरुओं से लड़ने की ठानी ॥

हुई सात अक्षौहिणी, भूप युधिष्ठिर पास ।
अनगिनती रणधीर लख, हुई विजय की आस ॥

उस ओर दुर्योधन के समीप, उसके शुभचिंतक आये थे ।
अपने संग में रणधीर वीर, बे गिनती योधा लाये थे ॥
सब से पहिले भगदत्त भूप, उत्तर जलनिधि की सीमां तक ।
सारे भूपालों को संग ले, आ मिले दुर्योधन से झटपट ॥

भूप शल्य ने भी सुना, होगा रन घनघोर ।
ले निज सेना चलदिये, धर्मराज की ओर ॥

दुर्योधन को जब खबर मिली, मामा सेना ले आते हैं ।
और पांडु राज के पुत्रों को, देने सहायता जाते हैं ॥
उनको प्रसन्न करने के लिये, इसने फौरन एक चाल चली ।
रस्ते में कई भवन बनवा, चीजें रखवाईं भली भली ॥
महा बली शल्य यहां ठहर ठहर, आनन्द से काल बिताते थे ।
पांडवों को आशिष देते हुये, आगे को बढ़ते आते थे ॥
चलते चलते कुछ दिन में जा, एक स्वच्छ भवन में वास किया ।
उसकी मीनाकारी विलोक, कारीगर को शाबास दिया ॥
टकटकी बांध तकते हि रहे, फिर एक दास को बुलवाया ।
घर की छवि वर्णन करते हुए, हर्षाय उसे यों समझाया ॥
कुन्ती सुत के जिस सेवक ने, पा हुक्म ये भवन बनाया है ।
उत्तम मीनाकारी करके, इसको सब भांति सजाया है ॥
उसको मेरे सन्मुख लाओ, वह है इनाम का अधिकारी ।
अचरज है किस उत्तमता से, की है सुन्दर मीनाकारी ॥

कुन्ती सुत का नाम सुन, दुर्योधन का दास ।
चकराया और चलदिया, तुरत सुयोधन पास ॥

इस समय सुयोधन भी वहांपर, हाजिर था रूप छिपाये हुये ।
उसके समीप झट दास गया, आश्चर्य सहित घबराये हुये ॥
मामा को खूब प्रसन्न देख, ये उनके निकट चला आया ।
कर जोड़ चरण में शीश झुका, सब सच्चा किस्सा समझाया ॥
जब शल्य को ये मालूम हुआ, सब दुर्योधन का काम है ये ।
इसने ही सुख पहुँचाया है, इसका ही इन्तजाम है ये ॥

बोले हम अति खुश हुये, दुर्योधन गुण खान ।
जो इच्छा हो मांगलो, हमसे सुत वरदान ॥

बोला कुरुपति हे मामा तुम, मेरे हि पक्ष में आजाओ ।
जितनी सेना है पास मेरे, उसके सेनापति बनजाओ ॥
वरदान शल्य ने दिया यही, फिर कहा सुयोधन जाओ तुम ।
मैं बनूंगा सेनापति तेरा, सच जानों मत घबराओ तुम ॥
इस समय पांडवों के समीप, मिलने के लिये सिधाता हूँ ।
उनकी सब क्षेम कुशल लेकर, जल्दी ही लौटा आता हूँ ॥

चलागया ये बात सुन, कौरवपति हरषाय ।
शल्य पांडवों के निकट, पहुँचे सत्वर आय ॥

पांचों से मिल आनन्द हुये, फिर जगह ग्रहण कर नरराई ।
दुर्योधन को वर देने की, सारी गाथा कह समझाई ॥
फिर कहा त्रयोदश वर्षों तक, तुमने अति कष्ट उठाये हैं ।
अब दया हुई परमेश्वर की, जिससे अच्छे दिन आये हैं ॥
तुमने धारा है धर्म सदां, वह धर्म यहां रक्षक होगा ।
पापात्माओं के लिये वही, धर काल रूप भक्षक होगा ॥
रिपुओं को रन में कर परास्त, निश्चय आनन्द उड़ाओगे ।
सम्राट् बनोगे दुनियां के, जीवन सुख माहिं पिताओगे ॥

❀ गाना ❀

धर्म का अनुसरन करना कभी बिरथा न जाना है ।
पालता है जो इसको सर्वदा वो सुख ही पाना है ॥
समय आनन्द के तो इसको हरकोई निभालेता ।
मगर जीवन उसी का धन है जो दुख में निभाता है ॥
नहीं है धर्म के बल से कोई बल बढ़के दुनियां में ।

इसी के बल से नर होता अमर और मोक्ष पाता है ॥
कहूँ ज्यादा क्या इसके पालने वाले के काबू में ।
वो आनन्द कंद होजाता जो सुख सागर कहाता है ॥
निभाया है इसी उत्तम धरम को तुमने हे वीरों ।
करेगा नष्ट ये रिपु को मुझे येही लखाता है ॥

हो प्रसन्न अति धर्मसुत, बोले शीश झुकाय ।
मेरी भी इक प्रार्थना, सुनो भूप चित लाय ॥
कुरुपति की सेवा के बदले, तुमने जो सौगंद खाई है ।
वह हर प्रकार से ठीक हि है, इसमें नहिं तनिक बुराई है ॥
लेकिन छल कर दुर्योधन ने, निज दल में तुम्हें मिलाया है ।
और हमें सहायता से तुम्हरी, रख विमुख ज़रूर पहुँचाया है ॥
इसकी एवज में हे मामा, एक काम तुम्हें करना होगा ।
जिस डर से मैं दहलाता हूँ, रन में वह डर हरना होगा ॥
वो भय ये है यदि कभी कर्ण, कुरुओं के सेनापति होंगे ।
तो निश्चय ही अर्जुन उनसे, लड़ने को उत्तेजित होंगे ॥
उस समय कर्ण के सारथि बन, तुम अर्जुन की रक्षा करना ।
और तीक्ष्ण वचनों के द्वारा, उसका सब तेजो बल हरना ॥
कहा शल्य ने आपकी, बात हमें मंजूर ।
करदेंगे हम कर्ण का, तेज नष्ट भरपूर ॥
अपमान सभा में किया बहुत, कृष्णा सि साध्वी नारी का ।
इसलिये दण्ड का पात्र है वह, होवेगा मरन अनारी का ॥
हम होंगे रथ हांकन वाले, लड़ने में बाधा डालेंगे ।
करदेंगे सब उत्साह भंग, अर्जुन को अवश्य बचालेंगे ॥

धर्म पुत्र को धैर्य दे, इस प्रकार ये वीर।
अपनी सेना साथ ले, गये सुयोधन तीर॥

फिर जयद्रथ, भूरिश्रवा, केकय, काम्बोज भूप, नृप कृतवर्मा।
श्री भोजराज और सोमदत्त, नृप बाह्लीक भीषण कर्मा॥
नृप कलिंग, सुशर्मा, नृप अवंति, अरु वीर हलंबुश भयदाई।
पहुँचे दुर्योधन के समीप, ले लेकर अपनी कटकाई॥
छोटे मोटे अनगिनत भूप, इनके अतिरिक्त चले आये।
कोसों तक तम्बू खड़े किये, ये देख सुयोधन हरषाये॥
एकादश अक्षौहिणी कटक, धीरे धीरे एकत्र हुई।
खाने की आसानी से कह, भागों में तुरत विभक्त हुई॥

अष्टादश अक्षौहिनी, दोनों कुल की ओर।
हुईं इकट्ठी, मचगया, आर्यवर्त में शोर॥

दुनियां के बड़े बड़े क्षत्री, तेजस्वी अतुलित बल वाले।
नाना शस्त्रों से सजे हुये, देवों तक से लड़ने वाले॥
जिनके चलने से भूमंडल, मानिंद पात के हिलता था।
बोली ऐसी थी जिस को सुन, सिंहों का प्राण निकलता था॥

पाय निमंत्रण युद्ध का, युद्ध केसरी वीर।
हुये इकट्ठे हिंद में, जग के सब बलवीर॥
इस प्रकार जब होगये, साथी बेशुमार।
तब पांडव करने लगे, मित्रों सहित विचार॥

फरमाया पंचालेश्वर ने, अब दूत वहां भेजा जावे।
क्या है दुर्योधन के मन में, इस के द्वारा जाना जावे॥
इसमें सन्देह नहीं उसने, जब कटक इकट्ठी करली है।
तो लड़े बिना नहिं मानेगा, दुर्भाग्य ने बुद्धी हरली है॥

फिर भी है अपना धर्म यही, एक दफे उसे समझावेंगे ।
यदि सुना नहीं तो आखिर को, रण में चल शस्त्र उठावेंगे ॥
इस समय जो संधी हो जावे, क्षत्रियों का क्षय बच जावेगा ।
और हरा भरा ये आर्यवर्त, हरगिज़ न बिगड़ने पावेगा ॥
मेरा है पुरोहित बुद्धिमान, इसको ही दूत बनावें हम ।
संधी थापन के लिये इसे, दुर्योधन पै भिजवावें हम ॥

मांगे आधा राज्य ये, जाय सुयोधन पास ।
हैं जिसके हकदार अब, कुन्ती सुत गुणरास ॥

ये सलाह सभी को भली लगी, झट उस ब्राह्मण को बुलवाया ।
सब हाल बखूबी समझा कर, दुर्योधन के ढिंग भिजवाया ॥
जापहुँचा तुरत सभा में ये, जहां बैठे थे कौरव सारे ।
भीषम, दुर्योधन, कर्ण आदि, कर धारन गहने रतनारे ॥
लोगों से अति सन्मान पाय, जा टिका पुरोहित आसन पर ।
इनकी सब क्षेम कुशल पूछी, फिर अपनी कहदी हरषा कर ॥
आखिर अपना कर ऊंचा कर, बोला सुनलो सरदार सभी ।
मैं जो कहना चाहता हूँ वह, है धर्म भरी गुफ्तार सभी ॥
तुम धर्म तत्व सब जानत हो, फिर भी मैं याद दिलाता हूँ ।
मुझ ब्राह्मण का है धर्म यही, भूलों को राह बताता हूँ ॥
पांडु और ये धृतराष्ट्र भूप, हैं एकहि नर की संताने ।
अधिकार है दोनों का समान, ये झूठ नहीं है सब माने ॥
इन्साफ से आधी गद्दी के, हैं पांडु तनय सब अधिकारी ।
फिर क्यों धृतराष्ट्र तनय गनने, हथियाली है भूमी सारी ॥

इकतो अति आनन्द से, देखें मौज बहार ।
एक विपिन में वासकर, भोगें कष्ट अपार ॥

फिर तुमको ये भी मालुम है, किस तरह से उन्हें सताया है ।
कर कपट चाल इस शकुनी ने, सब राज पाट हथियाया है ॥
होगये हैं तेरह वर्ष उन्हें, अनगिनती दुःख उठाते हुये ।
तज सकल सुःख संन्यासी बन, अपना सब काल बिताते हुये ॥
फिर भी अन्याय सुयोधन का, कर दया समस्त भुलाया है ।
संधी थापन के लिये मुझे, उन लोगों ने भिजवाया है ॥
इसलिये आप सरदारों से, मैं यही प्रार्थना करता हूँ ।
संधी करवादो क्यों कि मैं, भारत के क्षय से डरता हूँ ॥
ले पक्ष पांडु के पुत्रों का, योधा तत्पर हैं लड़ने को ।
आज्ञा की राह देखते हैं, संग्राम में कटने मरने को ॥

पर कुन्ती सुत कर रहे, उन्हें अभी खामोश ।
संधी यदी हुई नहीं, तो फैलेगा जोश ॥

अपनी मामूली कटक देख, दुर्योधन हर्षित होता है ।
और पांडु सुतों का बल बिलोक, भावी वश भय नहिं जोता है ॥
अर्जुन इकले ही काफी हैं, सब सेना को बधने के लिये ।
दुर्योधन के रणधीरों को, रण में शिक्षा देने के लिये ॥
फिर हरि के सदृश बुद्धिमान, यहां पर किस को बतलाते हो ।
इन बातों पर करलो विचार, क्यों वृथा नाश करवाते हो ॥

सत्य धर्म का पक्ष ले, धर्मराज का राज ।
दिलवादो संधी करो, मेटो सभी अकाज ॥
संधी का प्रस्ताव सुन, हर्ष शान्तनु पूत ।
कहा धर्म के योग्य है, धर्म पुत्र करतूत ॥

अक्षौहिणि सात इकट्ठी कर, फिर भी हैं भमेपर अड़े हुये ।
अब चाहते हैं संधी करना, ये जान रोंगटे खड़े हुये ॥

परमेश्वर उन्हें सुखी रक्खे, ये आशिर्वाद हमारा है ।
होवेंगे आखिर सुखी वही, जिन धर्म धीर धर धारा है ॥
इसमें संदेह नहीं ब्राह्मण, प्रण माफिक अवधि बिताई है ।
होगये राज के अधिकारी, है सत्य न कुछ चतुराई है ॥
अर्जुन के सदृश वीर पुरुष, नीतिज्ञ सरिस बनवारी के ।
इस कुरु सेना में नहीं कोई, जो हैं सब तुल्य अनारी के ॥
भीषम के मुख से अर्जुन की, सुन कीर्ति कर्ण अति गरमाया ।
कर आंखें लाल अग्नि सदृश, उस ब्राह्मण को यों समझाया ॥
हे विप्र जुये में हार मान, वे पांडु तनय लाचार हुये ।
प्रण वश हो तेरह वर्षों को, बन जाने को तैयार हुये ॥
इसमें न हमारा कुछ कसूर, जो कुछ है उनका ही जानो ।
यदि वे प्रण के माफिक चलते, पाते ब राज सत्य मानो ॥
तेरह वर्षों की अवधी से, वे पहिले ही प्रगटाये हैं ।
और राज मांगते हैं अपना, क्यों उनके दुरदिन आये हैं ॥
पा मदद विराटरु द्रौपद की, वे अपने मनमें हर्षाते ।
वे हैं नादान फूंक से जो, गिरिको विचलित करना चाहते ॥
हम लोगों को डर दिखलाना, है व्यर्थ प्रयास पांडवों का ।
"कुरुओं को जीतेंगे" ये सब, है झूंठ कयास पांडवों का ॥
यदि धर्मराज धर्मानुसार, निजराज की इच्छा रखते हैं ।
प्रण पूर्ण करें पहिले फिर हम, सब राज उन्हें देसकते हैं ॥
उत्तम है फिर द्वादश वर्षों, जंगल में जाय निवास करें ।
अज्ञातवास कर एक साल, फिर राज की हमसे आस करें ॥

बिना हुये प्रण पूर्ण हम, कभी न देंगे राज ।
लड़ेंगे जो वे मूर्ख बन, होगा घोर अकाज ॥

एकादश अक्षौहिणी कटक, तत्पर है उनके नाशन को ।
यदि लड़े तो वे पछतावेंगे, पावेंगे नहीं सिंहासन को ॥
बोले भीषम हे रवि नन्दन, क्यों कोरी बात बनाते हो ।
पिट चुके हो अर्जुन के कर से, फिर भी शेखी दिखलाते हो ॥
उसने तो अभी हाल में हो, कुरुओं को मार भगाया था ।
सारी गउएं छुड़वाली थी, तब जोश तेरा कहां आया था ॥
ब्राह्मण की सारी बातों की, कुछ कदर करो सुख पावोगे ।
सन्धी करलो वरना रन में, मर कर यम सदन सिधावोगे ॥

भीषम का प्रस्ताव सुन, हर्षे लोचन अन्ध ।
सन्धी करने का किया, झटपट एक प्रबन्ध ॥

पहिले ब्राह्मण को विदा किया, बोले मैं दूत पठाता हूं ।
कह देना पांडु कुमारों से, सन्धी थापन करवाता हूँ ॥
ये सुन उसने प्रस्थान किया, धृतराष्ट्र ने संजय बुलवाया ।
सब ऊंच नीच बातें कह कर, हर प्रकार उसको समझाया ॥
आखिर में कहा जिस तरह हो, सन्धी थापन करके आना ।
पांडवों के मनकी सब बातें, हमको यहां आकर बतलाना ॥

चला गया ये बात सुन, संजय हर्षित होय ।
पहुँचा पुर उपलव्य में, मगमें कुछ दिन खोय ॥

पांडवों के डेरे में जाकर, अतिहित से उन्हें प्रणाम किया ।
सब कुशल पूछ अपनी कह कर, आरम्भ तुरत निज काम किया ॥
बोला, धृतराष्ट्र जनेश्वर ने, यों कहा जो सन्धी होजावे ।
तो सर्व श्रेष्ठ ये कौरव कुल, इस समय नाश से बच जावे ॥
करते आये हो आज तलक, अपराध क्षमा दुर्योधन के ।
हर समय धर्म को पाला है, कभि फंसे नहिं मोह में धन के ॥

मुझको सच्चे दिल से कहदो, किस तरह सन्धि थापन होवे ।
जिससे अनगिनती वीरों का, नहिं रण में वृथा मरन होवे ॥
हैं एक ओर हरि भीमार्जुन, महारथी वीर अति बलवानी ।
और तरफ दूसरी भीष्म, द्रोण, और कर्ण महाबल भटमानी ॥
इस रण में चाहे जो जीते, परिणाम भयंकर ही होगा ।
इसलिये भूप यहां सन्धी का, करलेना हित कर ही होगा ॥

सुन संजय की बात को, बोले धर्म कुमार ।
हम रण करने के लिये, हुये थे कब तैयार ॥

लड़ने के वाक्य कहे न कभी, फिर तुमने क्यों भय पाया है ।
संग्राम से उत्तम हमने तो, संधी को ही बतलाया है ॥
संधी होवे तो कौन पुरुष, लड़ने को उत्तेजित होगा ।
है कौन जो व्यर्थ हि झगड़ा कर, अपने मन में न दुखित होगा ॥
यदि विना परिश्रम किये हुये, मन चीती बातें होजावें ।
हैं ऐसे मूर्ख कौन जो फिर, उनको पूरा करने धावें ॥
हे संजय बुद्धि सुयोधन की, डायन तृष्णा ने भरमाई ।
होगया लोभ के वशीभूत, कुछ भी नहिं देता दिखलाई ॥
इन विषयों का जितना सेवन, हो उतना ही बढ़ जावेंगे ।
तृप्ती होगी नहिं प्रलय तलक, दिन पर दिन रंग दिखावेंगे ॥
यदि आग में घृत आहूती दो, बुझने की ऐवज चमकेगी ।
है हाल वासनाओं का यही, भोगोगे उतनी भड़केगी ॥
है यही हाल दुर्योधन का, विषयों में फंसता जाता है ।
सुख वस्तु इकट्ठी करके भी, वह अधिकअधिकअधिकाता है ॥

फंसा लोभ के जाल में, कौरव कुल अवनेश ।
रहा ज्ञान नहिं धर्म का, अब उसको लवलेश ॥

उसने सोचा है कर्ण वीर, अर्जुन को मार भगावेगा।
इनके भगते ही सकल कटक, फट छिन्न भिन्न हो जावेगा॥
लेकिन उस दिन की याद करें, जब गायें हरने आये थे।
तब इकले वीर धनंजय ने, सब ही के होश भुलाये थे॥
फिर भी मैं उन्हें भुलाता हूँ, जितने कुछ दुःख उठाये हैं।
क्लेशों पर धूल डालता हूँ, जो कुरुपति ने पहुँचाये हैं॥
तैयार हूँ संधी करने को, केवल एक, इन्द्रप्रस्थ लेकर।
रन होगा नहीं, जो दुर्योधन, ये देदेगा हर्षित होकर॥

संजय बोले आपका, है विचार सुखमूल।
तो भी धर्म विचार कर, चलो भूप अनुकूल॥

नृप धृतराष्ट्र ने कहा है ये, "तुम धर्ममूर्ति हो सतवादी।
फिर क्यों अधर्म में रत होकर, बनते पापी मिथ्यावादी॥
होता है राज का लोभ बुरा, बस इसी के वश हो दुर्योधन।
कुछ भी नहिं देना चाहता है, इसमें है नहिं उसका दूषन॥
पर तुम्हें धर्म गति मालुम है, होता है युद्ध दुःखदाई।
फिर क्यों उससे हो विमुख पुत्र, फौजें एकत्रित करवाई॥
इच्छा थी राज छीनने की, तो इतने दिन क्यों सब्र किया।
पहिले ही फौज इकट्ठी कर, क्यों कुरुओं पर नहिं जब्र किया॥
उस समय तो धर्म धुरंधर बन, चलदिये तुरत उठ जंगल में।
पर अब क्यों अपना धर्म छोड़, देते बाधा कुरु मंगल में॥

अस्तु शांति धारन करो छोड़ राज का मोह।
करो वही जिससे भुवन, होय न बन्धु विद्रोह"॥
कहा कृष्ण ने बार बार, है उत्तम उपदेश।
धर्म पुत्र को धर्म का, करते नृप आदेश॥

संजय ! धृतराष्ट्र समीप जाय, मेरी ये बातें कह देना ।
तुमको शोभा नहिं देता है, पांडवों को धर्मोपदेश देना ॥
यदि धर्म तुम्हारे अन्दर था, उस समय न क्यों दृष्टी आया ।
जब जुये के हेतु पांडवों को, था इन्द्रप्रस्थ से बुलवया ॥
फिर चलता था जिस समय शकुनि, छल से सम्भाल कर पासों को ।
उस समय कहां रख छोड़े थे, सतधर्म के सब विश्वासों को ॥
और जब दुर्बुद्धी दुःशासन, कृष्ण को गहि कर लाया था ।
तब किस कारण चुप साधी थी, क्यों धर्म का ज्ञान भुलाया था ॥
उस समय आप खामोश हुये, अब धर्मोपदेश सुनाते हैं ।
उखली में सिर को देके अब, चोटों से बचना चाहते हैं ॥
इतना होने पर भी हम तो, करते हैं कामना सन्धी की ।
दोनों कुल का हित चाहते हैं, है चाह नहीं प्रति द्वंदी की ॥
जितना मैं इन्हें प्यार करता, उतना ही उनको चाहता हूं ।
इससे मैं भी बस बार बार, सन्धी को चाह जताता हूं ॥

पर, संजय ! धृतराष्ट्र का, जो है दिली विचार ।
सो न धर्म अनुकूल है, नहीं है उसमें सार ॥

उनकी मंशा है पांडु तनय, अपना सब राजपाट तजकर ।
बन में जा योगाभ्यास करें, काटें जीवन बन फल खाकर ॥
लेकिन ये बात असम्भव है, इसको हम कभी न मानेंगे ।
हकदार राज के होते हुये, क्यों बन जाने की ठानेंगे ॥
कहना उन लोगो से जाकर, अब इनका राज दिलादेवें ।
पांडव उस के अधिकारी हैं, कुल को मृत्यू से बचालेवें ॥
यदि इसमें आना कानी की, ये क्षत्री धर्म निभावेंगे ।
निज राज पाट लेने के लिये, नहिं किंचित त्रुटी दिखावेंगे ॥

होवेगा फिर संग्राम अवश्य, कुरुगन न कभी बच सकते हैं।
निज राज को क्षत्री, रिपुओं के, हाथों में देख न सकते हैं।।
इन सब बातों का कर विचार, कहना क्यों पाप पालते हो।
क्यों करते हो कुल का विनाश, क्यों नहीं राज दे डालते हो।।

❀ गाना ❀

सन्धी हि करना ठीक है उत्तम न रार है।
कुरुओ की इसमे होयगी हानी अपार है।।
तेरह वरस का प्रण था वो पूर्ण हो गया।
अब इनका राज इनको ही मिलने में सार है।।
सुर तक भी पांडवों का नहीं हक दबा सकें।
कुरुदल तो फिर क्या चीज है किसमें शुमार है।।
कह देना जाके संजय तू उनको ये संदेशा।
हक देदें वरना युद्ध को हम सब तैयार हैं।।

सार एकता में हि है, नहीं फूट में सार।
स्वस्तू करके संधि को, क्यों न मिटाते रार।।

होते ही हरि की बात पूर्ण, फिर बोले कुन्तीसुत, संजय!।
लो इन्द्रप्रस्थ भी तजता हूँ, चाहता हूँ नहीं युद्ध अभिनय।।
मैं केवल पांच गांव लेकर, तैयार हूं संधी करने को।
बस इतनाही वे दे देवें, नहि करें यत्न कट मरने को।।
संजय ने सारी बातें सुन, सिर झुका सभीको नमन किया।
फिर हस्तिनापुर की जानिब को, निज रथ पर चढ़कर गमन किया।।
धृतराष्ट्र के महलों में जाकर, संदेशा नृप को भिजवाया।
महाराजा ने अति उत्सुक हो, इनको निज सन्मुख बुलवाया।।

जा टिके भूप को शीश झुका, एक उत्तम आसन पर संजय ।
पूछा नृप ने झट बतलाओ. पांडवों ने भेजा है क्या कह ॥

क्षेम कुशल कहकर कहा, सुनो भूप चित लाय ।
जो न करोगे सन्धि तो, कौरव कुल नस जाय ॥

मैं थका थकाया आया हूँ. आज्ञा दो घर को जाऊंगा ।
कल सभा में उनका संदेशा, सब हर्फ़ बहर्फ़ बताऊंगा ॥
पा आज्ञा संजय विदा हुये, राजा ने विदुर को बुलवाया ।
इन पण्डित चातुर ज्ञानी ने, कई तरह भूप को समझाया ॥
फिर दोनों ने आराम किया, कुछ देर बाद भिनुसार हुआ ।
कर प्रात कृत्य हरएक मनुज, दरबार के हेतु तयार हुआ ॥
सब नियत समय पर पहुँच गये, निज निज आसन पर जा बैठे ।
संजय भी अपने आसन पर, कुछ देर बाद ही आ बैठे ॥

अवसर लख कर होखड़े, बोले संजय वीर ।
धर्मराज ने जो कहा, सुनो सभी रणधीर ॥

इतना कह कर संजय ने कुछ, पांडवों का हाल सुनाय दिया ।
जो कही थी बातें श्रीहरि ने, उनको पूरा दोहराय दिया ॥
विस्तार से फिर सब कथन किया, उनकी सेना का हाल सभी ।
उन गांवों का जो मांगे थे, बतलाय दिया अहवाल सभी ॥

हाथ जोड़ धृतराष्ट्र से, कहे वचन समुझाय ।
अब मेरी भी प्रार्थना, सुनो भूप चितलाय ॥

महाराज मैंने पांडव दल का, अति अद्भुत हाल निहारा है ।
लड़ने की तैयारी लख कर, सब छूटा धैर्य हमारा है ॥
ये बात आप निश्चय जानें, उनके बलका कुछ पार नहीं ।
यदि इन्द्रादिक भी चढ़ आवें, कर सकते हैं संहार नहीं ॥

पांचों पांडव, द्रौपद, विराट, महावीर शिखंडी, अभिमन्यू ।
उत्तर, सात्यकि अरु धृष्टद्युम्न, श्री कृष्ण सकल संकट दमनू ॥
इनके अतिरिक्त हजारों ही, बलवान वहां पर आये हैं ।
जिन लोगों ने बाहुबल से, निश्चर तक मार गिराये हैं ॥
महाराज कभी हाथों से तर, क्या पार समुद्र किया जाता ।
अग्नी से पिघला हुआ स्वर्ण, क्या मुख में झेल लिया जाता ॥
क्या संभव है एक थप्पड़ से, कैलाश पहाड़ टूट जाये ।
क्या वह भी सुख पासकता है, जिनसे जगदीश रूठ जाये ॥
प्रज्वलित हुताशन को चाहे, हाथों से मनुष्य बुझा डाले ।
तलवार से सूर्य चन्द्रमा को, कर छिन्न भिन्न भूपर डाले ॥
ये मुमकिन है छोटे मच्छर, फूंकों से पर्वत उड़ा सकें ।
पर संभव नहीं आपके सुत, उन धर्म पुत्र को हरा सकें ॥

कारण इसका है यही वे हैं धर्म-धुरीन ।
पुत्र आपके, पाप में. रहत सदा लवलीन ॥

कर व्रत धारन उन लोगों ने, कई तरह के कष्ट उठाये हैं ।
दुर्योधन की छद्द चालों से, हर तरह वे बचते आये हैं ॥
इस समय भूप धर्मानुसार, वे हुये राज अधिकारी हैं ।
[illegible] दे गांव [illegible] करदो, ऐसी ही विनय हमारी है ॥
होगये हैं इतने तेजस्वी, छल रहित धर्म का पालन कर ।
सन्मुख देखा नहिं जाता है, [illegible] न ठहरने पलकों पर ॥
[illegible] लोभ की कोई भी [illegible], इनको न [illegible] पावेगी ।
उनका तप तेजोमय [illegible], जल्दी हि नष्ट हो जावेगी ॥
यदि फिर भी वे [illegible]

है प्रभु के यहां इन्साफ नहीं, झूंठी सब धर्म बड़ाई है ।
दबगया न्याय पांवों नीचे, अन्याय ने पदवी पाई है ॥
इसलिये सत्य जानों भूपति, पांडव जबतक संसार में हैं ।
तबतक उनका ले राज भूप, तव पुत्र काल की डाढ़ में हैं ॥
छिड़गया कहीं जो महा युद्ध, सब सुत संहारे जावेंगे ।
है उचित आप संधी करलें, नहिं आखिर में पछतावेंगे ॥

अचरज मय एक बात जो, वहां निहारो भूप ।
कहता हूं समझाय कर, अद्भुत परम अनूप ॥

श्री अर्जुन का गांडीव धनुष, बिन खींचे खिंचता जाता है ।
तर्कस से बाणों का समूह, खुद बखुद निकलता आता है ॥
हिलती है दिन में कई बार, वो गदा भीम की भयकारी ।
गो पड़ी भूमि पर रहती है, फिर भी करती कौतुक भारी ॥
जिस तरह केंचुली को तजकर, नागिन बाहिर को आजाती ।
सहदेव नकुल की तलवारें, तज म्यान रंग ये दिखलाती ॥
आती ये ध्वनि नभ मण्डल से, सुन जिसे तुम्हें अचरज होगा ।
"हे धर्मराज तुम्हारे सिर पर, कब राज मुकुट शोभित होगा ॥
हे वीर गदाधार तुम किस दिन, कर में ये गदा उठाओगे ।
संग्राम में रिपु सन्मुख जाकर, कब खूं की नदी बहाओगे ॥
हे वीर केसरी भारत के, हे ! हे ! गांडीव धनुष धारी ।
किस समय दिव्य रथ पर चढ़कर, तुम करोगे रन की तैयारी ॥
हे माद्रितनय सहदेव नकुल, तलवारें कब रंग लायेंगी ।
किस रोज अधर्मी पुरुषों को, करनी का मजा चखायेंगी ॥

हे पंचाली कब तेरे, बंधेंगे सिर के बाल ।
तेरी हालत देख कर, होता हमें मलाल" ॥

हे महाराजा ये बातें लख, मेरा तो हृदय धड़कता है ।
कई दिन से आठों पहर मेरा, ये बांया नेत्र फड़कता है ॥
इस सर्व श्रेष्ठ कौरव कुल की, अब कुशल नहीं दिखलाती है ।
मुझको तो सारे भारत की, दुर्दशा दृष्टि मे आती है ॥
यदि तुमने सन्धी नहीं करी, सच जानो रण छिड़ जावेगा ।
और आपके सारे पुत्रों का, संहार अवश्य हो जावेगा ॥
हे भूप पान्डु धर्मानुसार, चाहते हैं राज सुयोधन से ।
इसलिये आप सब दे डालो, क्यों करते वृथा रारि उनसे ॥

पान्डु पुत्र हैं धर्म पर, विजय उन्हीं की होय ।
अस विचार महाराज तुम, संधि करो जिय जोय ॥
सुन संजय की बात को, हुये नृपाल उदास ।
पुत्रों से कहने लगे, लेकर लम्बी सांस ॥

पुत्रों! संजय की बातें सुन, हमने तो यही विचारा है ।
पांडव अतुलित बलशाली हैं, उनसे न चलेगा चारा है ॥
अर्जुन ने स्वर्ग लोक में जा, शस्त्रों की शिक्षा पाई है ।
कर श्रवण भीम का बाहूबल, मेरी बुद्धी चकराई है ॥
फिर उनकी रण सामिग्री भी, सब तरह योग्य उत्तम होगी ।
और यहां पै जितनी बातें हैं, अब पांडु सुतों से कम होंगी ॥
अस्तू उन लोगों से लड़ना, नहिं उचित लखाई देता है ।
रन में निश्चय कौरव कुल का, अब नाश दिखाई देता है ॥
उनका प्रस्ताव धर्म का है, जो कुछ वे मांगें देडालो ।
इस श्रेष्ठ वंश की इज्जत को, कर संधी पुत्र बचाडालो ॥

गाना

रण से हानी हि पुत्र उठावेगा तू ।
संधी करले, नहीं पछतावेगा तू ॥

स्वर्ग में अर्जुन ने जाकर शस्त्र सीखे हैं कई ।
भीम सम बलवान भी दृष्टी मुझे आता नहीं ॥
ऐसे वीरों को कैसे हरायेगा तू ॥ रण से० ॥
और फिर है साथ उनके भक्तवत्सल यदुपति ।
अस्तु लड़ने की हृदय मे मूर्ख तू ठाने मती ॥
वरना जान वृथा हि गमायेगा तू ॥ रण से० ॥
वे तो बैठे है सभी अब अपने प्रण से मुक्त हो ।
इस समय मे उनको उनका राज पाट दिया न, तो ॥
जग मे पापी अधर्मी कहायेगा तू ॥ रण से० ॥
इससे उनका हक उन्हे देकर, सुलह करडाल अब ।
खुश हो छाती से लगा अब करदे दूर मलाल सब ॥
ऐसा करने से सुयश कमायेगा तू ॥ रण से० ॥
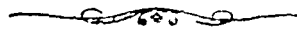
ये सुन भीषम आदि सब, हुये प्रसन्न महान् ।
बोले सुलह हि ठीक है, दोनों के दरम्यान ॥

लेकिन कुबुद्धि दुर्योधन को, ये सलाह पसंद नहीं आई ।
होगई कुटिल भृकुटी फौरन, बोला क्रोधित हो चिल्लाई ॥
हे पिता ! पिता !! क्यों डरते हो, क्यों चहरा पीत बनाया है ।
किस बात में रिपुओं से हम को, तुम ने हलका ठहराया है ॥
क्या भीषम का बल भूलगये, जिन परसुराम को जीत लिया ।
इक बार अकेले दादा ने, कई भूपों को भयभीत किया ॥
फिर गुरु द्रोण, अश्वत्थामा, और किरपाचार्य हमारे हैं ।
अर्जुन उस तरफ अकेला है, अपने समझो बो बारह हैं ॥
उस भीम को मैं अपने बल से, संग्राम में अवश्य हराऊंगा ।
हूं मैं भी गदा चलाने में, यकना ये सब दिखलाऊंगा ॥

मैं हूँ इस समय चक्रवर्ती, सब भूप मेरे आधीन में हैं ।
पांडव बेचारे दुखियारे, तेरह में हैं न तीन में हैं ॥

एकादश अक्षौहिणी, कटक हमारे पास ।
उधर सात हैं, भूप तुम, करो विजय की आस ॥

कुछ ध्यान करो मेरे बलका, पांडव कितना घबराये हैं ।
वे अर्ध राज लेते लेते, अब पांच गांव पर आये हैं ॥
कुछ दिन में इससे भी हटकर, वे एक गांव ही मांगेंगे ।
इससे आगे फिर वे पांचों, मेरी आज्ञा पर नाचेंगे ॥
होवेंगे कुछ दिन में सेवक, उनका डर करना छोड़ो तुम ।
मुझको अति बलशाली गिनकर, बस संधी से मुख मोड़ो तुम ॥

दुर्योधन की बात सुन, घबराये नरनाथ ।
बोले बेटा किसलिये, करते हो उत्पात ॥

उत्तम है उनका राज सौंप, अपनी रैयत को पालो तुम ।
वे अर्ध अंश के मालिक हैं, वह अंश उन्हें दे डालो तुम ॥
पांडव पूरे सतवादी हैं, धर्मानुसार प्रस्ताव किया ।
छल छिद्र का इसमें काम नहीं, फिर भी उनको बेताब किया ॥
तो रखना याद युद्ध में वे, अपनी सब कसर निकालेंगे ।
इसमें सन्देह नहीं तुमको, बाहुबल से मल डालेंगे ॥
सोचो हमने उन लोगों को कितनी पीड़ा पहुँचाई है ।
उस सती नारि पंचाली को, जंगल जंगल भटकाई है ॥
फिर भी उनका धीरज देखो, किस कदर नम्रता धारी है ।
जिसको बल से ले सकते हैं, वे उसके लिये भिखारी हैं ॥
उनके सद्धर्माचरन देख, सुर भी सराहना देवेंगे ।
हम पाप युद्ध में फंसे यदी, जग में अपयश ही लेवेंगे ॥

इसी सोच और फिक्र में, रहूँ सदा बेचैन ।
व्याकुलता निशदिन रहे, रहें अश्रु में नैन ॥
दुर्योधन ये सब सह न सका, बोला गुस्से में झला कर ।
हे पिता ! किसलिये संधि करें, क्यों राज अंश देवें डर कर ॥
ऐसे सतवादी व्रतधारी, देखे हैं कई जमाने में ।
मन शान्त करो, मम रिपुओं के, क्या रक्खा है गुण गाने में ॥
मैं भी प्रतिदिन नियमानुसार, देवों का पूजन करता हूँ ।
गुण गा अर्चन वंदन करके, नित ध्यान चित्त में धरता हूँ ॥
फिर केवल पांडु नन्दनों की, वे मदद करें मैं रह जाऊं ।
ऐसा होना नामुमकिन है, वे सुख देखें मैं दुख पाऊं ॥
पांडव मनुष्य हैं हम भी हैं, पर उनमें अति बलशाली हैं ।
फिर तुमने क्यों चिन्ता करके, निज काया क्षीण बनाली है ॥
सारे वीरों को जाने दो, यदि कर्ण को मैं संग ले जाऊं ।
तो सच समझो उन पांचों को, संग्राम में मार भगा आऊं ॥
रणमें जय उन सब लोगों का, तुम सुनोगे नाम पराजय का ।
तब समझोगे सच्चा मतलब, हे पिता ! मेरे शुभ आशय का ॥

किया समर्थन कर्ण ने, इन बातों का खूब ।
फिर बोले हर्षाय कर, सुन कौरव कुल भूप ॥

हे नृप ! मैंने श्री परसुराम, से दिव्य अस्त्र शिक्षा पाई ।
इसलिये युद्ध में पांचों की, नहिं चलेगी कुछ भी चतुराई ॥
इस बात की सौगंद खाता हूं पांडवों को मार भगाऊंगा ।
दुर्योधन को रण में जिताय, अक्षत शरीर से आऊंगा ॥

भीषम ये नहिं सह सके, बोले वचन सक्रोध ।
कर्ण ! कर्ण ! खामोश रह, मृत्यू विवश अबोध ॥

पांडवों को बधने की सौगंद, बस तजदे कर्ण अहंकारी।
क्यों अपने साथ कुरु कुल की, करवाता है लड़कर ख्वारी॥
पार्थों जितने बलवानी हैं, तू उनका दसवां अंश नहीं।
कर लाख यत्न तो भी उनका, हरगिज होगा निध्वंस नहीं॥
तुझको कुछ लाज न आती है, क्यों वृथा गर्व में इतराया।
नादान क्या अब तक नहीं तैंने, उनके बल का परिचय पाया॥
जब गंधर्वों से युद्ध हुआ, तू वहीं खड़ा था लड़ने को।
फिर आना पड़ा पार्थ को क्यों, कुरुओं की रक्षा करने को॥
फिर पुर विराट में इकले ही, अर्जुन ने तुम्हें भगाया था।
उस समय महा क्यों विषम हुआ, क्यों नहि भुजबल दिखलाया था॥
जब अर्जुन ने कुल सेना को, कर बेसुध वस्त्र उतारे थे।
क्यों नहीं वीरता दिखलाई, उस वक्त में कहां सिधारे थे॥
फिर क्यों खाली शेखी जताय, इनको उन्मत्त बनाते हो।
है बुद्धि तुम्हारी काल विवश, कुरुओं को क्यों मरवाते हो॥

ये बातें सुन कर्ण को, हुआ बहुत सन्ताप।
कहा, पितामह व्यर्थ क्यों, क्रोधित होते आप॥

पांडव ज्यादा बल वाले हों, या होवें कम हिम्मत वाले।
देखूंगा पहिले बल तुम्हरा, लो मैंने शस्त्र फेंक डाले॥
प्रण करता हूं जिस समय आप, होंगे धरती शायी रन में।
तब कुरुओं की रक्षा के हित, लूंगा शस्त्रों को हाथन में॥
यों कह के तो घर चले गये, दुर्योधन को फिर समझाया।
लेकिन उपदेश हुआ जो, था उसके न ध्यान में कुछ आया॥

ये हालत कुरुनाथ जी, हुये बहुत बेचैन।
मन ही मन करने लगे, अश्रु पूर्ण कर नैन॥

*** गाना ***

आपस का युद्ध हाय अब, निश्चय ही रंग लायेगा ।
कुरुओं का अब जहांन मे, नामो निशां न पायेगा ॥
पुत्र मेरा अज्ञान है, पापी है अघ की खान है ॥
चलके अधर्म मार्ग पर, जीवन से कर उठायेगा ॥
जायेगा इसके साथ ही, देश का इल्म हुनर सभी ।
द्वापर पलट के शीघ्र अब, कलियुग जहां मे छायेगा ॥
मैं कहते कहते थक गया, उसके न कुछ असर भया ।
ऐसे कपूत पुत्र से, क्या कभी चैन आयेगा ॥
करना दया जगत्पती, होवे न देश दुर्गती ।
तेरी दया रहेगी तो, ये न बिगड़ने पायेगा ॥

आखिर चक्षु विहीन ने, सभा कर दई भंग ।
सुना युधिष्ठिर राज ने, यहां का सारा रंग ॥

हो दुखी कुन्तिसुत ने तुरंत, बुलवाया शारंगपानी को ।
श्रीकृष्ण द्वारिकानाथ प्रभू, जन-मन-रंजन सुखदानी को ॥
उनके आने पर नम्र होय, यों कहा नाथ अब बतलाओ ।
मन में संकल्प विकल्प उठें, सतमारग क्या है दिखलाओ ॥
संदेश जो संजय लाया था, वह सुना आपने गिरधारी ।
धृतराष्ट्र की बुद्धी तो देखो, होगए हैं कैसे कुविचारी ॥
वे राज नहीं देना चाहते, और रखते आशा अंधी की ।
यों रहेगी क्यों कर शांति प्रभू, है बलिहारी मति अंधी की ॥
ये पक्का मुझे भरोसा था, ये अवधि बीत जब जायेगी ।
तब निज बलसे जय करी हुई, सारी भूमी मिल जायेगी ॥

पाला है इसीसे धर्म मैंने, ये सब दिन दुख में काटे हैं ।
फिर भी धृतराष्ट्र ने सुत वश हो, मम मग में कांटे पाटे हैं ॥
लेकिन अब रिश्तेदारों का, दुख मुझसे नहिं देखा जाता ।
बन्धुओं की शक्लें पीत देख, अब मेरा हृदय फटा जाता ॥
हो नाश नहीं कौरव कुल का बस इसीलिये ये ठानी है ।
ले पांच गांव मैं सब्र करूं, कितने दिन की जिन्दगानी है ॥
किन्तु दुर्बुद्धि दुर्योधन ने, प्रस्ताव नहीं मंजूर किया ।
है कितने दुख की बात प्रभो, अधिकार से हमको दूर किया ॥

रखा शांतचित अन्ततक, अब नहिं धीरज होय ।
लेलूंगा निज राज को, चाहे जो कुछ होय ॥

चाहे मरजायँ बन्धु बांधव, इस समय न दहशत लाऊंगा ।
कर चुका सन्धि का यत्न बहुत, अब निश्चय युद्ध मचाऊंगा ॥
तुम हो शुभचिन्तक दोनों के, कहदो किस तरह भलाई हो ।
हमको शुभ रस्ता बतला कर, इस समय में नाथ सहाई हो ॥

कुन्तीसुत की बात सुन, रहे कृष्ण अरगाय ।
बोले सोच विचार कर, सुनो युधिष्ठिर राय ॥

इस घोर युद्ध होने से प्रथम, मैंने ये बात विचारी है ।
जा स्वयम् संधि का यत्न करूं, होजाय तो अति शुभकारी है ॥
दोनों कुल के हित साधन में, मैं पूरी शक्ति लगाऊंगा ।
सब तरह शुभाशुभ समझा कर, सचमुच संधी कर आऊंगा ॥
जो इसमें मैं कृतकार्य हुआ, ये चन्द्र वंश अक्षत होगा ।
यहां तक सारा भूमण्डल भी नहिं रण से क्षत विक्षत होगा ॥

कहा युधिष्ठिर ने प्रभो, मत जावो उस ओर ।
हुये इकट्ठे भूमि के, पापात्मा नहिं ठौर ॥

इस राज पाट के लालच ने, दुर्योधन की मति मारी है ।
समझाये से नहिं समझेगा, बस लड़ो यही शुभकारी है ॥
इस समय आप यदि जावेंगे, होगा आदर सत्कार नहीं ।
जिस जगह अधर्मी बैठे हों, तहां होता है सुविचार नहीं ॥
इसमें सन्देह नहीं स्वामी, जो कहोगे वो हित कर होगा ।
लेकिन सच जानो दुर्योधन, कुविचार का ही अनुचर होगा ॥
बाकी जितने राजागन हैं, सब उसके वशीभूत जानो ।
सब करेंगे उसकी हां में हां, ये सत्य वाक्य मेरे मानो ॥
फिर विपति का आना संभव है, कट्टर रिपु के घर जाने में ।
इन उल्टी पल्टी बातों को, क्या रक्खा है समझाने में ॥

पीछे हरिस्यों व्यर्थ ही, करो सोच नरनाथ ।
दुर्योधन की बुद्धि से, परिचित हूँ सब भांति ॥

खटता के बस हो दुर्योधन, जो मुझ पर हाथ उठायेगा ।
तो ये मन में पक्की जानो, वो करनी का फल पायेगा ॥
मेरे क्रोधित हो जाने पर, है कौन जो उसकी मदद करे ।
क्या मृग समूह में ये बल है, जो पंचानन की जान हरे ॥
दुर्योधन का कुछ खौफ़ नहीं, है खौफ़ युद्ध छिड़जाने का ।
इस सुन्दर देवलोक सदृश, भारत के पलटा खाने का ॥
इस समय संधि थापन करना, बस ये ही हृदय विचारा है ।
होगया यदी ये काम फतह, तो जीवन सफल हमारा है ॥
हम यत्न करेंगे अन्त तलक, फिर भी न संधि होने पाई ।
तो जानेंगे ऐसा ही है, विधि का विधान है नरराई ॥

सफल हुये तो ठीक है, विफल अयश नहिं तात ।
कारन हमने अंत तक, की संधी की बात ॥
कुन्ती सुत कहने लगे, ठीक आपकी राय ।
करो संधि की चेष्टा, शायद फल मिल जाय ॥

फिर कहा भीम ने नम्र होय, मधुसूदन मेरी बात सुनो ।
दुर्योधन को अति पापात्मा, कलियुग का ही अवतार गिनो ॥
किस काम के करने से कितनी, हानी होगी ये ज्ञान नहीं ।
मद में इतना हो रहा जिस, शुभअशुभकी कुछ पहचान नहीं ॥
फिर साथी भी उसके हर दम, रन की सलाह बतलाते हैं ।
झूंठी सच्ची बातें गढ़कर, हमरे विरुद्ध भड़काते हैं ॥
बनगया है वह इतना कट्टर, धमकाये से नहिं मानेगा ।
चाहे जीवन का नाश होय, लेकिन रन की ही ठानेगा ॥
इस समय जो दोनों पक्षों में, रन सामग्री एकत्र हुई ।
लख उसे प्रभू मेरी हालत, डर से किस कदर विचित्र हुई ॥
हे माधव यदि संग्राम हुआ, कुछ ख्याल करो क्या फल होगा ।
सृष्टी पलटा खाजावेगी, ये आर्यवर्त्त बेबल होगा ॥
होवेगा कौरव वंश नाश, है मुझे फिक्र इसका भारी ।
इसलिये जहां तक सम्भव हो, सन्धी करना है गिरधारी ॥

भरत वंश जग में रहे, हम पावें दुख भूर ।
सोच नहीं अति हर्ष से, करते हैं मंजूर ॥

पर्वत का भार रहित होना, अग्नी का शीतल हो जाना ।
जैसे ये अचरजकारी हैं, त्यों भीम में कोमलता आना ॥
जो घोर शत्रुओ से लड़ना, समझे था अपना धर्म सदां ।
जिसने दुष्टों को दबना ही, कर रक्खा था निज कर्म सदां ॥
जंगल में जिसको अष्ट पहर, रन चिन्ता अग्नि जलाती थी ।
क्रोधित हो दांत पीसना था, पर शांति कभी नहिं आती थी ॥
रहते थे लोचन लाल लाल, भृकुटी धनु सदृश चढ़ी हुई ।
कुरुओं से बदला लेने की, रहती थी इच्छा बढ़ी हुई ॥
बनवास के तेरह वर्षों को, जिसने था दुःख बिताये थे ।
अब खुश था बदला लेने को, क्योंकि शुभ दिन नियराये थे ॥

श्रोताओं आज वही योधा, उलटी इच्छा जतलाता है ।
जिसका स्वभाव था महा उग्र, वह नरमाई दिखलाता है ॥
कहता है सन्धी करने को, अरमान युद्ध का तज डाला ।
क्या मुमकिन है छेड़ा जाकर, हो जाय नम्र विषधर काला ॥
कहां गया बनवास दुख, गई कहां प्रण पूर्ति ।
हुआ ये क्या, जो उग्र था, बना शान्ति की मूर्ति ॥
अपमान प्रिया पंचाली का, इसने क्यों आज भुलाया है ।
क्या दुर्योधन का बल विलोक, इसके दिल ने डर खाया है ॥
लेकिन श्रोताओं नहीं नहीं, ये वीर अतुल बलशाली है ।
डर क्या है इसका ज्ञान नहीं, यहां तो कुछ बात निराली है ॥
बह क्या है वह है देश प्रेम, जो इसको शान्त बनाता है ।
इस जननी जन्म भूमि का ही, है खौफ जो डर दिखलाता है ॥
इसने सोचा रन करने से, ये भारत श्रोणित मय होगा ।
होवेगा नाश क्षत्रियों का, वह भयकारक अभिनय होगा ॥
जा पड़ेगा अंधकार में ये, जाने कितने दुख झेलेगा ।
होवेगा किस हद तलक पतन, फिर जाने किस दिन चमकेगा ॥
यही सोचकर डालता, ये संधी की नींव ।
धन्य देश भक्ती तेरी, धन्य भीम बलसींव ॥
अर्जुन बोले संधी होना, मुझको न कठिन दृष्टी आता ।
इसका होना दोनों कुल को, बस लाभ लाभ ही पहुँचाता ॥
यों कहा नकुल ने नरमी से, जो सुने न दुर्योधन राई ।
तो फिर कुछ गरमी दिखलाना, अनुचित नहिं होगा सुरसांई ॥
पांडवों का रण सामग्री लख, है कौन जो लड़ने आयेगा ।
इसलिये मुझे विश्वास है ये, प्रभु का मतलब हो जायेगा ॥
पर भ्राताओं की शान्त सलाह, सहदेव को नहीं पसंद आई ।
कर नेत्र लाल वे बोल उठे, करना न संधि त्रभुवन सांई ॥

कृष्णा का जो अपमान हुआ, वह नहीं भूलने लायक है।
किस तरह करें संधी उससे, जो हम सबको दुख दायक है॥
अपमान का प्रायश्चित होना, दुर्योधन का मरजाना है।
अस्तू उस दुष्ट अधर्मी का, दुनियां से खोज मिटाना है॥

बिना दुर्योधन मृत्यु के, मिटे नहीं संताप।
संधी करने के लिये, करो गमन मत आप॥

करदिया समर्थ सात्यकि ने, इसका अति जोश दिखाते हुये।
फिर बोली कृष्णा अवसर पा, आंखों से अश्रु गिराते हुये॥
हे प्रभु जो दुख दुर्योधन ने, हम लोगों को पहुंचाये हैं।
वे सभी आप को मालुम हैं, जैसे कुछ कष्ट उठाये हैं॥
फिर भी जाते हैं आप वहां, संधी थापन करने के लिये।
जिनको बधना ही उत्तम है, उनका जीवन रखने के लिये॥
उस बड़े विशाल राज में से, कुल पांच गांव लेना चाहा।
फिर भी उस दुष्ट दुर्योधन ने, नहीं इन तक को देना चाहा॥
उसकी बुद्धी होगई नष्ट, आ पड़ी काल की परछाई।
तबही तो ये अच्छी बातें, उस मूर्ख को नहीं पसंद आई॥
ये बात विचित्र नहीं भगवन्, पापी खुद मृत्यु बुलाते हैं।
होकर भावी के वशीभूत, उलटे रस्ते पर जाते हैं॥
उम्मेद नहीं है संधी की, फिर भी यदि जाते हो जाओ।
लेकिन सब राज मिले तबही, संधी करना ये चित लाओ॥
है क्षत्री धर्म यही रिपुको, बस साम दाम ही दिखलावे।
यदि माने नहीं तो निश्चय ही, उसको अति दंड दिया जावे॥
तुम साम दाम दिखलाय चुके, अबतो बधने की बारी है।
ये उचित धर्म पालन करते, फिर क्यों कायरता धारी है॥
हां धर्म शास्त्र तो बार बार, बतलाते क्षत्री धर्म यही।
फंस जाय जो अनुचित लालच में, उसका बध करना ही है सही॥

फंसा है अनुचित लोभ में, दुर्योधन दुख मूल ।
फिरभी तुम क्यों चल रहे, क्षत्री धर्म प्रतिकूल ॥

जिस तरह अवध का वध करना, ये पाप कर्म कहलाता है ।
बस उसी तरह वध को न वधे, तो उचित न माना जाता है ॥
क्या बात मेरे अपमानों की, दी भुला इसी से जाते हो ।
क्यों मेरे ताजा घावों पर, तुम नमक पीस भुरकाते हो ॥
दुनियां में मुझ सम हत भागिन, हे प्रभू नहीं दृष्टी आती ।
रा धर्म पालती हुई भि मैं, नित विपता में फंसती जाती ॥
हैं जिसके पितु द्रौपद नरेश, अरु धृष्टद्युम्न सम भाई है ।
महाराज पांडु की पुत्र वधू, जिन जग में कीरत पाई है ॥
फिर पांच इन्द्र सम तेजस्वी, सबगुण निधान भर्तार मेरे ।
और पांच पुत्र बलवान वीर, सब तरह से आज्ञाकार मेरे ॥
फिर तुम जैसों से श्रीकृष्ण, जिस नारि की रिश्तेदारी है ।
ऐसी सौभाग्य शालिनी की, किस कदर हुई प्रभु ख्वारी है ॥
उस समय में दासी दासी कह, मुझको पुकारते थे पापी ।
मम बालों को खींचते हुये, नहिं डर विचारते थे पापी ॥
जब किया प्रयोग अधर्मी ने, इस तन से वस्त्र हटाने का ।
तब प्रभू आपने दिया काम, विनती सुन लाज बचाने का ॥
कर ऐसा घोर अधर्म प्रभू, जीवित हैं अन्ध पुत्र सारे ।
तब धिक है वीर गदाधर को, जिसने नहिं उनको संहारे ॥
और वीर धनंजय भी निश्चय, हैं पात्र धिक्कारे जाने के ।
जिनको कुछ भी परवाह नहीं, मुझ अबला के दुख पाने के ॥

काम करन का समय है, बनते हैं निष्कर्म ।
सकते क्यों कर पाल ये, क्षत्रि जाति का धर्म ॥

जाने दो इस दुखिया की बात, ये दुखहि भोगने आई है।
पर वह पूरी होनी चाहिये, जो इन्होंने सौगन्द खाई है॥
क्या इतना भी नहि ज्ञान रहा, प्रण कर जो नहीं निभाता है।
वह क्षत्री सुरपुर जाने का, अधिकार कभी नहिं पाता है॥
जिसने जंगल में जयद्रथ से, दुखिया का धर्म बचाया था।
पापी कीचक को भी जल्दी, करनी का फल दिखलाया था॥
वे वीर भी आज नम्र होकर, बैठे हैं धर्म कमाने को।
कुछ फिक्र नहीं ये द्रुपद राज, तत्पर हैं रन में जाने को॥
हे प्रभु मेरे पांचों लड़के, और प्यारे धृष्टद्युम्न भाई।
अभिमन्यू को संग में लेकर, मारेंगे उनकी कटकाई॥
मेरे अपमानों का बदला, जब तक न चुकाया जायेगा।
तब तक मेरा ये दुखित हृदय, हरगिज न शान्ती पायेगा॥
जब तक न भुजा दुःशासन की, कट भूमी पर गिर जावेगी।
दुर्योधन की बाईं जंघा, जबतक न नष्ट हो पावेगी॥
यह दुष्ट शकुनि और कर्ण वीर, नहि जावेंगे यमपुर जबतक।
हे कृष्ण आप सच्चो जानो, ये मन न सुखी होगा तबतक॥
फिरभी यदि जाते हो जावो, पर चाह पूर्ण करके आना।
देखो इन बालों को इनकी, वहां पर मत याद भूल जाना॥

इसी प्रतिज्ञा में किये, तेरह वर्ष व्यतीत।
होजावे ये शुभ समय कहीं न अब विपरीत॥

॥ गाना ॥

कर रहे हैं हम पर अत्याचार वे कई वर्ष से ।
अब भी क्या उन पापियों पर रहम खाया जायेगा ॥
शोक है क्षत्री कहा नरमी दिखाते शत्रु पै ।
दूध क्या क्षत्रानियों का कुछ भी रंग न लायेगा ॥
जितनी तुम नरमी दिखाते उतने ही तनते है वे ।
अस्तु बिन उनको बधे नहिं राज मिलने पायेगा ॥
फिर प्रतिज्ञा भी है मम पतियों की उनको वधन की ।
इसलिये प्रस्ताव सन्धी का न ठीक कहायेगा ॥
फिर भी जाते हो जावो, पर सफल होगे न तुम ।
क्योंकि बातों से न खल, हरगिज सुपथ मे आयेगा ॥

द्रौपद पुत्री, द्रौपदी, ऐसे बचन सुनाय ।
खड़ी रही खामोश हो, प्रभु सन्मुख सिरनाय ॥

सुन बचन कृष्ण ने धैर्य दिया, बोले देवी मत घबराओ ।
होवेगी इच्छा पूर्ण तेरी, कुछ धीर धरो मन समझाओ ॥
तुम्ह सरिस साध्वी नारी का, ये क्रोध वृथा नहि जावेगा ।
हां कालकी मूरत कुछ दिन में, रिपुओं का खोज मिटावेगा ॥
जिस तरह आज तुम रोती हो, बस उसी तरह कुछ काल गये ।
रोवेंगी कौरव नारि सभी, पतियों का मृत्यु मलाल किये ॥
यदि मेरी हितकारी बातें, जो नहीं अंध सुत ने मानी ।
तो कौरव कुल नश जावेगा इस को जानो सत की बानी ॥

"श्रीलाल" यों कह विदा, हुये कृष्ण भगवान ।
हस्तिनापुर की ओर को, किया तुरत प्रस्थान ॥

तेरहवां भाग सम्पूर्ण

महाभारत ॐ चौदहवां भाग

कृष्ण का हस्तिनापुरगमन

श्रीलाल

महाभारत चौदहवाँ भाग

कृष्ण का हस्तिनापुर गमन

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—

महाभारत पुस्तकालय, अजमेर.

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

द्वितीयावृत्ति १००० | हिन्दी सम्वत् [illegible] ईस्वी सन् [illegible] | मूल्य ।-) आने

❁ स्तुति ❁

तुम्हरे सिवा कोई जगदीश, जन दुख टारन हार नहीं है ॥
भाई बांधव रिश्तेदार, हैं सब मतलब ही के यार ।
सब विधि जांच लिया संसार, इसमें कुछ भी सार नहीं है॥तुम्हरे॥
अस्तू नेह सभी से तोड़, आया शरन तुम्हारी दौड़ ।
देना कहीं न तुम मुख मोड़, मेरे और अधार नहीं है॥तुम्हरे॥
पापी हूं पर है ये ज्ञान, आकर शरण तेरी भगवान ।
ऐसा रहा न जीव जहान, जोके उतरा पार नहीं है॥तुम्हरे॥
रखना शरण पड़े की लाज, करना पूर्ण सभी मम काज ।
सुनना विनय गरीबनिवाज, तुम सम करुणागार नहीं है॥तुम्हरे॥

मङ्गलाचरण

रक्ताम्बर धर विघ्न हर, गौरीसुत गणराज ।
करना सुफल मनोर्थ प्रभु, रखना जन की लाज ॥
सृष्टि रचन, पालन, हरन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश ।
बानी, रमा, उमा सुमिल, रक्षा करहु हमेश ॥
बन्दहुं व्यास विशाल बुधि, धर्म धुरंधर धीर ।
महाभारत रचना करी, परम रम्य गम्भीर ॥
जासु वचन रवि जोति सम, मेटत तम अज्ञान ।
बन्दहुं गुरु शुभ गुण भवन, मनुजरूप भगवान ॥

* ॐ *

नारायणं नमस्कृत्य, नरंचैव, नरोत्तमम् ।
देवीं, सरस्वतीं, व्यासं ततो जय, मुदीरयेत् ॥

कथा प्रारम्भ ।

बुला सात्यकी वीर को. बोले यों यदुराय ।
दारुक सारथि, से कहो. रथ को लाय सजाय ॥
मुझको संधी करने के लिये. रिपुओं के घर जाना होगा ।
लख उनका क्रूर स्वभाव मित्र. कुछ शस्त्र भी ले जाना होगा ॥
मालूम नहीं वे पापात्मा. हमसे किस तरह पेश आयें ।
सोचा है मैंने इसीलिये. सबविधि तयार होकर जायें ॥
वैसे तो कौरवगन सारे. मुझको न हानि पहुंचा सकते ।
लख मुझे क्रोध में भरा हुआ. नहिं कभी सामने आसकते ॥
लेकिन ये नीति बताती है. शत्रू से जब मिलने जावें ।
पहले ही से लाजिम है. रक्षा प्रबन्ध करके धावें ॥
इसलिये हमारे स्यंदन में. रख के नाना हथियार कई ।
कुछ महारथी भी साथ में हों. पैदल और अश्वसवार कई ॥
खाने पीने की चीजे भी. ले चलें साथ नौकर चाकर ।
तुम भी तजवार आवो जल्दी. संग चलो हमारे हर्षाकर ॥
सुन आज्ञा श्रीकृष्ण की. सात्यकि ने गुणवान ।
किया इकट्ठा जाय कर. जलद सभी सामान ॥
दस महारथी पैदल हजार और इतने ही घोड़े वाले ।
ले गये साथ यदुनन्दन के. ले धनुष बाण बर्छी भाले ॥
जा बैठे प्रभु रथ के भीतर. दारुक को हुक्म सुनाय दिया ।
सुनते [illegible] जिसने झट पट घोड़ों को [illegible] चलाय दिया ॥

धृतराष्ट्र ने जब ये ख़बर सुनी, हृदय में हर्ष अपार हुआ ।
किस तरह वे अपनी ओर मिलें, बस इसका फिक्र सवार हुआ ॥
सोचा उनको रत्नादिक दे, मैं अपने बस में लाऊंगा ।
सब रीति राजनीती की तज, अब भेद रीति दिखलाऊंगा ॥
होगये जो वे हम लोगों के, रन में सहाय करने वाले ।
तो फिर हम इन्द्रादिक से भी, होंगे न कभी डरने वाले ॥
पांडव बेचारे करेंगे क्या, यदि लड़े पराजय पावेंगे ।
लेकिन वे ऐसा करेंगे क्यों, जब हरि अपने हो जावेंगे ॥
हैं कृष्ण पांडवों के खूंटे, इन्हीं के बल पर नाचते हैं ।
हम लोगों को धमकी देकर, अपना सब राज याचते हैं ॥
है यही क्रिया जिससे ये रन, पल में मेटा जा सकता है ।
प्रभु को अपनालेने से ही, मम पुत्र चैन पा सकता है ॥
इसमें तो कुछ संदेह नहीं, अब राज पाट के अधिकारी ।
होगये हैं सभी तरह पांडव, दे देना ही है शुभकारी ॥
लेकिन मम पुत्र सुयोधन की, ममता मुझको भरमाती है ।
बस इसीलिये मेरी बुद्धी, शुभ मग से हटती जाती है ॥

करना दया दयाल प्रभु, हूं बेबस लाचार ।
छोड़ नहीं सकता हुं मैं, अपने सुत का प्यार ॥

ये कर विचार इस बुड्ढे ने, भीषम व विदुर को बुलवाया ।
असली मतलब को मन में रख, इन लोगों से यों फरमाया ॥
हमने अपने दूतों द्वारा, ये खबर हाल में पाई है ।
पांडुओं के बनकर दूत यहां, आते खुद श्री यदुराई हैं ॥
वे हैं हम सब के माननीय, फिर आत्मीय हैं संबन्धी ।
हो रही है घर घर बात यही, वे आते हैं करने संधी ॥
अस्तू तुम उनके आदर का, परबन्ध उचित करवा डालो ।
एक अति ही उत्तम महल देख, सब तरह उसे सजवा डालो ॥

दुःशासन, शकुनी, कर्ण सभी, जावें उनकी अगवानी को ।
और सजे हुये पुर रस्तों से, लावें उन शारंगपानी को ॥
जितने यादव हैं उन सब में, श्रीकृष्ण शिरोमणि कहलाते ।
क्या इन्हें भेंट देना होगा, इन बातों को हम समझाते ॥

चार अश्व प्रति रथ जुड़ें, द्रुतगामी बलवान ।
ऐसे सोलह स्वर्णमय, देंगे सुन्दर यान ॥

मतवाले हृष्ट पुष्ट ऊंचे, दो कम दस हाथी सजवाना ।
सौ दासी दास अलंकृत कर, उनकी सेवा में भिजवाना ॥
सुन्दर सचित्र कोमल कम्बल, जो गिरि प्रदेश से आये हैं ।
मृग चर्म जो चीन मनुष्यों ने, "कर" स्वरूप में भिजवाये हैं ॥
फिर कोष में जितने माणिक हैं, सुन्दर खुश रंग प्रभा वाले ।
जिनके दिन रात एकसे ही, रहते हैं उज्वल उजियाले ॥
इन सब अमूल्य चीज़ों को हम, देना चाहते गिरधारी को ।
हैं इनके वे उपयुक्त पात्र, जल्दी जा करो तयारी को ॥

कहा भीष्म ने आप का, है ये उचित विचार ।
लायक हैं सन्मान के, सब विधि जगताधार ॥

यों कह दुर्योधन को बलवा, नृप की सब बातें समझाईं ।
जिनको सुन प्रभु के रस्ते में, उसने कई चीज़ें रखवाईं ॥
अनगिनती घर बनवाय दिये, उनको सुख पहुंचाने के लिये ।
फिर आज्ञा दी सारे पुर को, सब तरह से सजवाने के लिये ॥
लख कृष्ण पै इतना गाढ़ प्रेम, श्री विदुर भेद सब जान गये ।
ये चाहते हरि को अपनाना, ये रहस्य तुरत पहिचान गये ॥
बोले राजन तुमने अपना, इस समय जो मन दरसाया है ।
जगने उनको इससे ज्यादा, आदर का पात्र बनाया है ॥
सेवा हो यदुनन्दन की, इससे बढ़कर न भलाई है ।
पर ये बतलाओ क्या तुमने, आंतरिक चाह दिखलाई है ॥

यदि सच्चा प्रेम तुम्हारा है, श्री हरि प्रसन्न हो जावेंगे।
सन्मान चहे कुछ भी न होय, फिर भी वे प्रेम दिखावेंगे॥
सच्चे मनवालों के वस में, आनन्दकन्द हो जाते हैं।
कुछ ऊंच नीच का भेद न रख, निज जन को झट अपनाते हैं॥
अपनाना चाहे यदी, हरि को बिन सत प्रेम।
होवे बृथा प्रयत्न सब, है ये सच्चा नेम॥
जितनी तुमने प्रभु आदर की, निज मनमें बात बिचारी है।
उसमें सत प्रेम प्रभाव नहीं, छलयुत ये क्रिया तुम्हारी है॥
तुम चाहते हो रत्नादिक दे, हरि को निज ओर मिला लेवें।
रिश्वत से उनको बसमें कर, उस ओर से इन्हें हटा लेवें॥
पर तुम्हरा ये सारा प्रयत्न, सच मानो निष्फल जावेगा।
सारे भूमंडल का धन भी, बिचलित न उन्हें कर पावेगा॥
जग को मालुम है श्री हरि पै, पांडव कितनी श्रद्धा रखते।
जैसी शिक्षा ये देते हैं, उसका ही अनूसरन करते॥
तुम भी यदि उनकी इच्छा को, सच्चे दिल से पूरी करदो।
छल कपट और दुर्बुद्धी को, मन से निकाल बाहिर धरदो॥
तो ये निश्चय जानो यदुपति, बन जावेंगे तुम्हरे हितकारी।
कुछ और नहीं केवल सच्चे, हृदय के मित्र हैं गिरधारी॥
क्या है हरि इच्छा तुम्हें, देता हूं समझाय।
"चाहते हैं दोउ बंश में, संधि तुरत होजाय"॥
वे दोनों के शुभचिन्तक हैं, बस इसी से कष्ट उठाया है।
उनका उपदेश सुनो राजन, ये उत्तम अवसर आया है॥
श्रीहरि का आना सफल होय, बस यही हमारी इच्छा है।
उनकी बातें सुन निज कुल की, रक्षा करना ही अच्छा है॥
उनका आदर सत्कार भूप, बस उनका रुख रख कर होगा।
ये ही उन प्रभु की इच्छा है, ऐसा करना हितकर होगा॥

हरि अनुशासन मान कर, करो संधि धृतराष्ट्र ।
रहे देश में शान्ती, नष्ट न होवे राष्ट्र ॥

* गाना *

सत के दाम बिहारी, बिना सत न रीझे मुरारी ॥
जिसने किया छल प्रभु के सग मे, रहा वो नित्य दुखारी ।
बिना सत न रीझे मुरारी० ॥
प्रेम दिखाने वालों के हित आते हैं झट गिरधारी ।
बिना सत न रीझे मुरारी० ॥
सद्भावों के भूखे हैं भगवन, समझो ये बात हमारी ।
बिना सत न रीझे मुरारी० ॥
अपनाना चाहते यदि हरि को, करो सप्रेम तयारी ।
बिना सत न रीझे मुरारी० ॥

दुर्योधन बोला श्रीकृष्ण पांडवों को छोड़ नहीं सकते ।
रत्नादिक ले हम लोगों से, वे नाता जोड़ नहीं सकते ॥
ये सच है वे हैं उचित पात्र, इन सब चीजों को पाने के ।
पर भेंट इस समय देने से, होवेंगे अर्थ डर जाने के ॥
वे समझेंगे पांडव दल से, हम लोगों ने भय खाया है ।
पस इसीलिये खुश करने को हमने ये द्रव्य दिखाया है ॥
संधी सम्बन्धी बातों को जब मानने को तैयार नहीं ।
तब उनको भेंट दिखाने का ढंग तो बिना विचार नहीं ॥
पर उनका समयोचित आदर मैं करूंगा हर्षित हो करके ।
जहाँ तक सम्भव होगा हमारे मैं दूंगा उनको खुश करके ॥
अपने जीते जी कभी नहीं, पांडवों को राज दिलाऊंगा ।
निज बाहु बल से सदा मैं उन [illegible] सेवा करवाऊंगा ॥
जिस तरह [illegible] [illegible] [illegible], उसके तरकीब निकाली है ।
पांडवों के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ज्योंति कृष्ण ने —

यदि सचा प्रेम तुम्हारा है, श्री हरि प्रसन्न हो जावेंगे ।
सन्मान चहे कुछ भी न होय, फिर भी वे प्रेम दिखावेंगे ॥
सच्चे मनवालों के वस में, आनन्दकन्द हो जाते हैं ।
कुछ ऊंच नीच का भेद न रख, निज जन को झट अपनाते हैं ॥

अपनाना चाहे यदी, हरि को बिन सत प्रेम ।
होवे वृथा प्रयत्न सब, है ये सच्चा नेम ॥

जितनी तुमने प्रभु आदर की, निज मन में बात विचारी है ।
उसमें सत प्रेम प्रभाव नहीं, छलयुत ये क्रिया तुम्हारी है ॥
तुम चाहते हो रत्नादिक दे, हरि को निज ओर मिला लेवें ।
रिश्वत से उनको वश में कर, उस ओर से इन्हें हटा लेवें ॥
पर तुम्हरा ये सारा प्रयत्न, सच मानो निष्फल जावेगा ।
सारे भूमंडल का धन भी, विचलित न उन्हें कर पावेगा ॥
जग को मालुम है श्री हरि पै, पांडव कितनी श्रद्धा रखते ।
जैसी शिक्षा ये देते हैं, उसका ही अनूसरन करते ॥
तुम भी यदि उनकी इच्छा को, सच्चे दिल से पूरी करदो ।
छल कपट और कुबुद्धी को, मन से निकाल बाहिर धरदो ॥
तो ये निश्चय जानो यदुपति, बन जायेंगे तुम्हरे हितकारी ।
कुछ और नहीं केवल सच्चे, हृदय के मित्र हैं गिरधारी ॥

क्या है हरि इच्छा तुम्हें, देता हूं समझाय ।
"चाहते हैं दोउ वंश में, संधि तुरत होजाय" ॥

वे दोनों के शुभचिन्तक हैं, बस इसी से कष्ट उठाया है ।
उनका उपदेश सुनो राजन, ये उत्तम अवसर आया है ॥
श्रीहरि का आना सफल होय, बस यही हमारी इच्छा है ।
उनकी बातें सुन निज कुल की, रक्षा करना ही अच्छा है ॥
उनका आदर सत्कार भूप, बस उनका कथन रख कर होगा ।
यही उन प्रभु की इच्छा है, ऐसा करना हितकर होगा ॥

हरि अनुशासन मान कर, करो संधि धृतराष्ट्र ।
रहे देश में शान्ती, नष्ट न होवे राष्ट्र ॥

* गाना *

सत के दाम बिहारी, बिना सत न रीझे मुरारी ॥
जिसने किया छल प्रभु के सग मे, रहा वो नित्य दुखारी ।
बिना सत न रीझे मुरारी० ॥
प्रेम दिखाने वालों के हित आते हैं झट गिरधारी ।
बिना सत न रीझे मुरारी० ॥
सद्भावों के भूखे है भगवन, मानना ये बात हमारी ।
बिना सत न रीझे मुरारी० ॥
अपनाना चाहते यदि हरि को, करो सप्रेम तयारी ।
बिना सत न रीझे मुरारी० ॥

दुर्योधन बोला श्रीकृष्ण, पांडवों को छोड़ नहीं सकते ।
रत्नादिक ले हम लोगों से, दे नाना जोड़ नहीं सकते ॥
ये सच है वे हैं उचित पात्र, इन सब चीज़ों को पाने के ।
पर भेट इस समय देने से, होवेंगे अर्थ डर जाने के ॥
वे समझेंगे पांडव दल से, हम लोगों ने भय खाया है ।
बस इसीलिये खुश करने को हमने ये द्रव्य दिलाया है ॥
संधी सम्बन्धी बातों को जब मानने को तैयार नहीं ।
तब उनको भेंट दिलाने का, मेरा तो किंचित विचार नहीं ॥
पर उनका समयोचित आदर मैं करूंगा हर्षित हो करके ।
जहां तक सम्भव होगा हमसे, मैं दूंगा उनको खुश करके ॥
अपने जीते जी कभी नहीं, पांडवों को राज दिलाऊंगा ।
निज बाहु बल से [illegible] मैं [illegible] उनको [illegible] [illegible] ॥
जिस तरह से बन [illegible] आवेगी उसने तरकीब निकाली है ।

यदि सच्चा प्रेम तुम्हारा है, श्री हरि प्रसन्न हो जावेंगे ।
सन्मान चहे कुछ भी न होय, फिर भी वे प्रेम दिखावेंगे ॥
सच्चे मनवालों के वस में, आनन्दकन्द हो जाते हैं ।
कुछ ऊंच नीच का भेद न रख, निज जन को झट अपनाते हैं ॥
अपनाना चाहे यदी, हरि को विन सत प्रेम ।
होवें वृथा प्रयत्न सब, है ये सच्चा नेम ॥
जितनी तुमने प्रभु आदर की, निज मनमें बात विचारी है ।
उसमें सत प्रेम प्रभाव नहीं, छलयुत ये क्रिया तुम्हारी है ॥
तुम चाहते हो रत्नादिक दे, हरि को निज ओर मिला लेवें ।
रिश्वत से उनको वसमें कर, उस ओर से इन्हें हटा लेवें ॥
पर तुम्हरा ये सारा प्रयत्न, सच मानो निष्फल जावेगा ।
सारे भूमंडल का धन भी, विचलित न उन्हें कर पावेगा ॥
जग को मालुम है श्री हरि पै, पांडव कितनी श्रद्धा रखते ।
जैसी शिक्षा ये देते हैं, उसका ही अनूसरन करते ॥
तुम भी यदि उनकी इच्छा को, सच्चे दिल से पूरी करदो ।
छल कपट और कुबुद्धी को, मन से निकाल बाहिर धरदो ॥
तो ये निश्चय जानो यदुपति, बन जावेंगे तुम्हरे हितकारी ।
कुछ और नहीं केवल सच्चे, हृदय के मित्र हैं गिरधारी ॥
क्या है हरि इच्छा तुम्हें, देता हूं समझाय ।
"चाहते हैं दोउ वंश में, संधि तुरत होजाय" ॥
वे दोनों के शुभचिन्तक हैं, बस इसी से कष्ट उठाया है ।
उनका उपदेश सुनो राजन्, ये उत्तम अवसर आया है ॥
श्रीहरि का आना सफल होय, बस यही हमारी इच्छा है ।
उनकी बातें सुन निज कुल की, रक्षा करना ही अच्छा है ॥
उनका आदर सत्कार भूप, बस उनका रुख रख कर होगा ।
ये ही उन प्रभु की इच्छा है, ऐसा करना हितकर होगा ॥

हरि अनुशासन मान कर, करो संधि धृतराष्ट्र ।
रहे देश में शान्ती, नष्ट न होवे राष्ट्र ॥

* गाना *

सत के दास बिहारी, बिना सत न रीझे मुरारी ॥
जिसने किया छल प्रभु के मग मे, रहा वो नित्य दुखारी ।
बिना सत न रीझे मुरारी० ॥
प्रेम दिखाने वालों के ढिंग आते है झट गिरधारी ।
बिना सत न रीझे मुरारी० ॥
सद्भावों के भूखे है भगवन, मनलो ये बात हमरी ।
बिना सत न रीझे मुरारी० ॥
अपनाना चाहते यदि हरि को, करो सप्रेम तयारी ।
बिना सत न रीझे मुरारी० ॥

दुर्योधन बोला श्रीकृष्ण पांडवों को छोड़ नहीं सकते ।
रत्नादिक ले हम लोगों से, वे नाता जोड़ नहीं सकते ॥
ये सच है वे हैं उचित पात्र, इन सब चीज़ों को पाने के ।
पर भेंट इस समय देने से, होवेंगे अर्थ डर जाने के ॥
वे समझेंगे पांडव दल से, हम लोगों ने भय खाया है ।
बस इसीलिये खुश करने को, हमने ये द्रव्य दिलाया है ॥
संधी सम्बन्धी बातों को जब मानने को तैयार नहीं ।
तब उनको भेंट दिलाने का, मेरा तो निरा विचार नहीं ॥
पर उनका समयोचित आदर मैं करूंगा हर्षित हो करके ।
जहां तक सम्भव होगा मुझसे मैं दूंगा उनको खुश करके ॥
अपने जीते जी कभी नहीं, पांडवों को राज दिलाऊंगा ।
निज चार दल में रहा मैं पर अपनी सेना बढ़ाऊंगा ॥
जिस तरह हे दल में आवेंगे उसके तरकीब निकाली है ।
पांडवो के रास्ते में इस दम, सब ज्योति कृष्ण ने डाली है ॥

यदि कृष्ण यहां बंदी होवें, वह प्रभा नष्ट हो जायेगी ।
रिपुओं के रस्ते को फौरन, वह तेजोहीन बनायेगी ॥
हो हताश पांडव सकल, कभी करें नहिं युद्ध ।
यही नीति उपयुक्त है, सुन्दर पाप विरुद्ध ॥
ये बातें भीष्म पितामह को, अच्छी न लगी वे क्रुद्ध हुये ।
बोले दुर्बुद्धी ! क्यों तेरे, सब विचार धर्म विरुद्ध हुये ॥
तुझको अनर्थ करने की ही, बस फिक्र रातदिन रहती है ।
हो गया काल के वशीभूत, बुद्धी विरुद्ध मत देती है ॥
बस ध्यान में रख यदि हरिको तू, कुछ भी हानी पहुंचायेगा ।
मैं सत्य रूप से कहता हूं, तत्कालहि मारा जायेगा ॥
हैं कृष्ण हमारे घर के ही, बस मित्र गिनो या सम्बन्धी ।
दोनों कुल अक्षय रहें ये गुन, वे आते हैं करने संधी ॥
हम लोगों ने उनके द्वारा, कुछ दुःख न कभी उठाया है ।
फिर क्यों ऐसे सज्जन नरको, बंदी करना मन भाया है ॥
क्या राज नीति भी भूलगया, वे बनकर दूत यहां आते ।
रे दुष्ट बुद्धि ! 'चर' कभी नहीं, बन्धनके पात्र गिने जाते ॥
यों कह भीषमपितामह, चले गये निज धाम ।
दुर्योधन करने लगा, अगवानी का काम ॥
सब भ्राताओं को हुक्म दिया, गहने कपड़े धारन करलो ।
निज २ रथ सब विधि सजवा कर, फूलों की मालायें धरलो ॥
कुछ सेना भी निज साथ में ले, अगवानी को प्रस्थान करो ।
सब तरह खुशी दरसाते हुये, श्री हरिका अति सन्मान करो ॥
सुन आज्ञा सारे साज सजा, सब हस्तिनापुर बाहिर आये ।
कुछ देर बाद आनन्दकंद, सच्चिदानन्द भी नियराये ॥
आगे बढ़कर सब लोगोंने, अति प्रेम से उनसे भेट करी ।
उत्तम फूलों की गंधयुक्त, मालायें उनके कंठ धरी ॥

कर मध्य में यादवनन्दन को, सब चले हृदय में हर्षित हो ।
पुरवासी आनन्दित होकर, सब लखें रूप आकर्षित हो ॥
जिस तरह बीच में तारों के, तारापति शोभित होते हैं ।
ऐसे ही कुरुओं से घिर कर, श्रीकृष्ण दिखाई देते हैं ॥
सजरहा था पुर उत्तमता से, अनगिनत ध्वजा फहरातीं थीं ।
चहुं दिशि से वायु में मिलकर, खुशबू की लपटें आतीं थीं ॥

रस्ते के दोनों तरफ, खड़े मनुज सानन्द ।
विकसित सी अति प्रेम से, देखें नारी वृन्द ॥
धीरे धीरे कृष्ण का, रथ महलों के पास ।
पहुंचा तब अति हर्ष से, उतरे प्रभु गुणरास ॥

नृप धृतराष्ट्र जिस घर में थे, तहां जा पहुंचे श्री यदुराई ।
देखा राजाओं से घिर कर, बैठे महाराजा सुखपाई ॥
प्रभु को आया सुन हर्षित हो, होगये खड़े राजा सारे ।
आदर कर प्रभु का भली भांति, एक स्वर्णासन पर बैठारे ॥
कर संभाषण कुछ देर यहां, गये भीष्म के लीलाधाम प्रभू ।
उनसे सब क्षेम कुशल कहकर, कुन्ती से मिले सुखधाम प्रभू ॥

प्रियपुत्रों की याद में, माता थी बेचैन ।
हरि को लख छाती भरी, अश्रू पूर्ण हुये नैन ॥

कुछ देर बाद धीरज धरकर, ले दीर्घ स्वांस कुन्ती ने कहा ।
हे कृष्ण ये जीवन धारन कर, मैंने तो दुख ही दुःख सहा ॥
वैधव्य का तो दुख था ही मुझे, फिर धन संपति भी नष्ट हुई ।
बांधव सारे होगये शत्रु, धृतराष्ट्र की बुद्धी भ्रष्ट हुई ॥
अब उधर से हे मधुसूदन, ये पुत्र वियोग सताता है ।
बस इसी सोच में दिन पर दिन, कुन्ती जाती ये माता है ॥
हो गये हैं तेरह वर्ष पूरे, देखे इन दिल के टुकड़ों को ।
भोले भाले और धर्मनिधान, तेजस्वी प्यारे मुखड़ों को ॥

हा कैसा दुःख सहा होगा, उस धर्म-धुरीन युधिष्ठिर ने ।
किस तरह से दिवस बिताये हैं, अतिही बलवान वृकोदर ने ॥
उस दिव्य अस्त्र जानन हारे, अर्जुन ने क्या दुख पाया है ।
क्या जाने माद्री पुत्रों ने, कैसे ये समय बिताया है ॥
हा छाती भर आती है जब, करती हुं याद पंचाली की ।
जो दिन थे खाने पीने के, तब बनी मूर्ति कंगाली की ॥
लेकिन अबतो हो गई पूर्ण, उनकी सब सौंगद यदुराई ।
फिर काहे को चुप चाप हैं अब, क्यों धारी है कायरताई ॥
इस समय क्षत्रि धर्मानुसार, उन लोगों को चलना चहिये ।
जिस राज के वे अधिकारी हैं, उसको झटपट लेना चहिये ॥

बोले हरि बूआ धरो, धीरज कुछ दिन और ।
सुख दुःखों को जानलो, समय समय के दौर ॥

हे बुआ आप हैं बीरपत्नि, भर्तार तुम्हारे बीर हि थे ।
जिन किया था सब संसार विजय, आजानुबाहु रणधीर हि थे ॥
फिर आप वीर माता भी हैं, सुत हैं तुम्हरे सब बलशाली ।
और पुत्रवधू भी पतिव्रता, आ मिली है तुमको पंचाली ॥
सब दुख के दिवस व्यतीत हुये, अब भाग्य सूर्य उगने वाला ।
कुछ दिन में पांचों पुत्रों का, छावेगा जग में उजियाला ॥
इतना कह कर जगदीश ईश, चलदिये भवन दुर्योधन के ।
देखा वह बैठा है सुख से, बस बीच में सब राजा गन के ॥

खड़ा हुआ लख कृष्ण को, नृपन सहित कुरुईश ।
आसन पर अति प्रेम से, बैठारे जगदीश ॥

सब कुशल पूछ अपनी कहकर, फिर कृष्णचन्द्र से फरमाया ।
षटरस व्यंजन तैयार हुये, भोजन करिये श्री यदुराया ॥
लेकिन मधुसूदन ने इसकी, स्वीकार करी नहिं महमानी ।
और कहन लगे धर ध्यान सुनो, हे कुरुकुल भूषण गुणखानी ॥

दूतों की ये मर्यादा है, जिस काम हेतु वे जायँ कहीं ।
जब तक वह पूर्ण नहीं होवे, हरगिज भी भोजन खायँ नहीं ॥
मैं भी यहां दूत पांडवों का, बनकर आया हूं दुर्योधन ।
और संधी के संदेश को, तुम तक लाया हूं दुर्योधन ॥
अस्तू जिस समय काम मेरा, सब ठीक ठाक हो जायेगा ।
तबही ये कृष्ण मुदित होकर, तुम्हरे यहां भोजन खायेगा ॥

वचन श्रवण कर कृष्ण के, बोल उठा कुरुईश ।
काम आपका होय या, नहीं होय जगदीश ॥

इसका मैं जिम्मेदार नहीं, कल सभा में देखा जायेगा ।
जो कुछ भी निश्चय होगा वो, आंखों के सन्मुख आयेगा ॥
लेकिन मेरे यहां खाने में, कहदो क्या हर्ज तुम्हारा है ।
क्या मुझे आपने शत्रु गिना, जो यह विचार चित धारा है ॥
निश्चय जानो भगवन् मन में, मैं कुटिल भाव नहिं रखता हूं ।
गिन कर तुमको महमान मेरा, भोजन करने को कहता हूँ ॥
इसके अतिरिक्त आपका मैं, सम्बन्धी भी हूँ यदुराई ।
तो भी क्या कारण है तुमने, स्वीकार करी नहिं पहुनाई ॥

कारण ही यदि जानना, चाहते हो भूपाल ।
सावधान होकर सुनो, बोले दीन-दयाल ॥

जग में इन्सान प्रेम के वश, होकर या तो अन्न खाता है ।
अथवा उस समय ग्रहण करता, जब के दुर्भिक्ष हो जाता है ॥
इन दोनों में से हे कुरुपति, इस जगह एक भी बात नहीं ।
न तो तुम प्रेमी हो और न, भोजन की हमको कमी कहीं ॥
इसके अतिरिक्त सज्जनों से, जो सदा शत्रुता रखता है ।
उसका अन्न दूषित हो जाता, खाने में पातक लगता है ॥
तूने बचपन में ही अरे, इन सत्पुरुष आत्माओं को ।
अनिमित्त संकट पहुंचाया है, कर नाश उनकी आशाओं को ॥

इसलिये तेरा स्पर्श किया, अन कभी नहीं हम खायेंगे।
जिस जगह मिलेगी शुद्ध चीज, तत्काल वहीं पर जायेंगे॥
इस हस्तिनापुर में फ़कत, एक विदुर का धाम।
अति उत्तम है अस्तु तहँ, जाय करूं आराम॥
कह इतनी बात सुयोधन से, उठ खड़े हुए शारंगपानी।
जा बैठे अपने स्यंदन में, बोले दारुक से मृदुबानी॥
हे सूत हमारा रथ हांको, लेचलो विदुर के हर्षाई।
इस जगह एक पल भी रहना, लगता है हमको दुखदाई॥
गो धृत्तराष्ट्र सुत दुर्योधन, है इस नगरी का भूपाला।
और ऋद्धिसिद्धि का रहता है, इसके घर में नित उजियाला॥
लेकिन दारुक! दिल के अन्दर, नहिं सच्चा प्रेम हमारा है।
बस इसीलिये इसका घर तज, मैंने तहां गमन विचारा है॥
हैं विदुर हमारे परमभक्त, अति सहनशील सच्चे त्यागी।
स्थिर बुद्धी सुख दुःख रहित, धर्माचरणों में अनुरागी॥
अस्तु करो मत देर अब, खींचो तुरत लगाम।
पहुंचाओ बस शीघ्र ही, मुझे विदुर के धाम॥
सुन वचन कृष्ण के दारुक ने, घोड़ों को हवा बनाय दिया।
पल में श्री विदुर महात्मा के, घरपर हरि को पहुंचाय दिया॥
लखते ही भक्तराज का घर, वे भक्तवत्सल पुलकाय गये।
हो रहित निमेष लगे लखने, दृग में प्रेमाश्रु छाय गये॥
कुछ देर बाद कह उठे तुरत, हे दारुक नेत्र उठा करके।
देखो तो भवन विदुरजी का, स्थिर निज हृदय बना करके॥
यद्यपि साधारण सा घर है, लेकिन सौंदर्य अनोखा है।
क्या कोई राजमहल अब तक, इसके सदृश्य अवलोका है॥
जिसके चित में ईर्षा, मान और अपमान।
लोभ, मोह, क्रोधादि का, रहत न नामो निशान॥

है वही हमारा परम भक्त, उसही के गुण हम गाते हैं ।
जिस तरह सुखी वो रहे सदा, बस वोही साज सजाते हैं ॥
सज्जन के तुलसी चन्दन को, दुर्जन नर के अतुलित धन से ।
हम श्रेष्ठ समझते हैं दारुक, कहते हैं ये सच्चे मन से ॥
मैं तुम्हें आज बतला दूंगा, सब भेद यहां पर आने का ।
दुर्योधन के उस स्वर्ग तुल्य, उत्तम घर के ठुकराने का ॥

इतना कह रथ से उतर, शीघ्र गरीबनिवाज ।
गये विदुर के द्वार पर, और दई आवाज़ ॥

पर यहां उपस्थित थे न विदुर, केवल उनकी अर्धांगिन थी ।
थी ये भी पतिव्रता नारी, हरि चरणों की अनुरागिनि थी ॥
जिस समय से इसने सुना था ये, आनन्दकन्द श्री यदुराई ।
पांडु पुत्रों की जानिब से, आये हैं सन्धी के तांई ॥
तब ही से ये अति इच्छुक थी, दर्शन को मुकुट बिहारी के ।
बनवारी, पिताम्बर—धारी, कंसारी, कृष्ण मुरारी के ॥
कहती थी हे विधि मुझ समान, पापिन पर वे जन-मन-रंजन ।
क्या कभी दया दिखलावेंगे, किरतार्थ करेंगे दे दर्शन ॥
इतने ही मे सुन पड़ी इसे, शारंगपानी की प्रिय बानी ।
इतनी हर्षी चातकनी ज्यों, मानो मिल गया स्वांति पानी ॥
जिस तरह ये बैठी थी घर में, बस उसी तरह झट उठ धाई ।
नहिं रहा बदन का ध्यान तलक, कुछ ऐसी पुलकावलि छाई ॥

सोच रही थी नारि ये, धन्य धन्य मम धाम ।
धन्य हमारा भाग्य है, आये जो घनश्याम ॥

जिनके दर्शन के लिये सदा, योगीराज मुनीश्वर रहते हैं ।
एकान्त जाप कर निश्चल हो, पूजन आराधन करते हैं ॥
फिर भी जो होते प्रगट नहीं, उनको प्रत्यक्ष निहारूंगी ।
अब इन तरसती आंखों को, दर्शनकर तृप्त कर डारूंगी ॥

यही सोचती सोचती, आई द्वार समीप ।
देखा सन्मुख हैं खड़े, यदुकुल-कमल-प्रदीप ॥
नीलाम्बुज, नीलमणी सदृष्य, या नील मेघ सम द्युति वाला ।
है वर्ण यशोदा—नन्दन का, कर रहा चहूँदिशि उजियाला ॥
सिर पर है अनुपम क्रीट मुकुट, मकराकृत कुंडल कानन में ।
और शरद-पूर्णिमा के शशिसम, छवि है नटवर के आनन में ॥
उन्नत लिलाट पर सुघड़ तिलक, बनमाला कंठ सुहाती है ।
तन ढ़का है सब पीताम्बर से, कर में मुरली दरसाती है ॥
मुस्काय रहे हैं मंद मंद, आनन्दकंद जन सुखदाई ।
लख अद्भुत छवि छविसागर की, श्री विदुर पत्नि अति हरषाई ॥
टकटकी बांध कर तकने लगी, पर तृप्ति नहीं हो पाती थी ।
जितना लखती थी उतनी ही, आकांक्षा बढ़ती जाती थी ॥
आखिर अमृत दर्श से, दृग की प्यास बुझाय ।
आनन्दित हो चित्त में, बोली ये सिरनाय ॥
हे महामृत्यु के मृत्युरूप, हे जन के भय हरने वाले ।
हे ब्रह्मांडों के सृजन हार, पालक और लय करने वाले ॥
तुम्हरे गुण गाने में समर्थ, नहिं सुर तक भी हो पाते हैं ।
यहां तलक वेद भी नेति नेति, कह कर बस चुप हो जाते हैं ॥
फिर मैं किस भांति कहूँ भगवन्, हूँ बुद्धि हीन अबला नारी ।
है भक्ति भाव लवलेश नहीं, बस शरण हूँ तुम्हरी गिरधारी ॥
लीला अपरम्पार लख, तुम्हरी हे जगदीश ।
चित्त स्थिर होता नहीं, डिगता बिस्वे बीस ॥
हैं कहीं आप आकार रहित, आकार कहीं हष्टी आते ।
बनते हैं निर्गुण किसी जगह, और कहीं सगुण माने जाते ॥
फिर व्यक्त और अव्यक्त ये सब, गुण भी तो नाथ तुम्हारा है ।
[illegible]नियों के कर्ता होकर भी, निज नाम अकर्ता धारा है ॥

करते भृकुटि विलास से, जग के सारे काम।
तो भी तुम निष्काम ही, कहलाते घनश्याम ॥
हे विधि के विधि, देवों के देव, हे दीनबंधु, अंतरयामी ।
हे पद्मनाभि, हे पद्मापति, हे दुष्ट दलन, त्रिभुवन-स्वामी ॥
हे करुणानिधि, करुणा करके, सुनलो कुछ करुण पुकार मेरी ।
कर जोड़ प्रार्थना करती हूँ, डूबे न नाव मंझधार मेरी ॥
और निशि दिन तुम्हरे चरणों में, हे गिरधर चित ये लगा रहे ।
छल, कपट, ईर्षा, राग द्वेष, मद, मोहादिक से हटा रहे ॥

❀ गाना ❀ (तर्ज मराना)

नमामी मुरलीधर नमो नंद नंदन ।
संतन सुखद दुष्ट दानव निकंदन ॥
दयामय दयादृष्टि दीनो पे रखना ।
द करना [illegible] सदा दुःख भंजन ॥
न आता मुझे होम जप दान करना ।
नहीं ज्ञात पूजन जपं नैव वंदन ॥
भरोसा है केवल तुम्हारे चरन का ।
तुम्हीसे लगी है, हे जन-चित-रंजन ॥
सुधर जाय जीवन मेरा कुंज बिहारी ।
वही कीजिये करुणा नाथ पूरन ॥

यों कहती कहती विदुर पत्नि, अति स्नेह में विह्वल होकर ।
आनन्द के अश्रु बहाती हुई, गिर गई प्रभु के चरणों पर ॥
प्रेम देख उनका गये, यदुपति श्री गुनधाम ।
क्षेम कुशल पूछन लगे, कर कर प्रेम स्वाम ॥
तब कहन विदुर पत्नी बोली, हे दीनबन्धु करुणासागर ।
हे सिद्ध-मन-मानस राज-हंस, हे पुरुषोत्तम सब गुण आगर ॥

किस तरह करूं वर्णन भगवन्, मैं अपनी भाग्य बड़ाई का।
पा रही हूं दर्शन घर बैठे, सच्चिदानन्द सुखदाई का॥
हे प्रभू आपके आगम की, जब से मैंने सुधि पाई है।
तब से दर्शन के लिये नाथ, अति आतुरताई छाई है॥
अब हुआ कलेजा शांत मेरा, लख दर्श तुम्हारा सुखदाई।
थी मैं तो सब साधन विहीन, पर दया आपने दिखलाई॥
अब अपनी पद रज से पवित्र, हे जगदीश्वर मम धाम करो।
दूरी से चलकर आये हो, कुछ सुस्ताओ आराम करो॥
इतना कह विदुर पत्नि इनको, ले गई भवन में हर्षाकर।
अति हित से अर्घ प्रदान किया, एक शुभ आसन पर बिठलाकर॥
फिर हाथ जोड़ कर खड़ी हुई, ये लख कर बोले बनवारी।
हे सती लाव कुछ खाने को, लग रही भूख हमको भारी॥
सुन वचन प्रभू के आतुर हो, ये झट एक कमरे में धाई।
और पके हुये अति ही उत्तम, कुछ कदली फल संग ले आई॥
बोली इसको तो ज़रा, चाखो कृष्ण मुरार।
षट रस व्यंजन भी अभी, करती हूँ तैयार॥
यों कह इसने एक केला ले, छीला तो सही लेकिन हृदय।
था नहीं ठिकाने नटवर के, सुन्दर स्वरूप में था तन्मय॥
हो रही थी ये अति ही प्रसन्न, आनन्दकन्द के आने से।
जिस तरह चकोरी होती है, हिमकर का दर्शन पाने से॥
पर और तरफ कुछ ध्यान न था, तकती थी श्याम बिहारी को।
मैं कौन हूं और क्या करती हूं, तज कर इसको सुधि सारी को॥
अस्तू केला तो छीला पर, गूदे पै तनिक न ध्यान दिया।
और छिलके को कर में लेकर, बनवारी का सन्मान किया॥
देख अलौकिक प्रीति को, मुस्काये भगवान।
छिलका ही खाने लगे, अतिशय स्वाद बखान॥

इतने ही में विदुर भी, आ पहुंचे इस ठौर ।
लखते ही श्रीकृष्ण को, हुई प्रसन्नता घोर ॥

बोले धन्य उदय हुआ है अब, फल पूर्व सुकृतों का सारा ।
मरुस्थल में अति सुखदायक, यह निकली गंगा की धारा ॥
जिनका दर्शन पाने के लिये, सुर, नर, मुनि भटका करते हैं ।
जिनकी एक दया दृष्टि ही से, पापी तक भव से तरते हैं ॥
जो देव हैं सारे देवों के, धारा है जिन्होंने गोवर्धन[1] ।
कंसादि[2] निश्चरों का पल में, कर दिया जिन्होंने मद मर्दन ॥
फिर वक्षःस्थल त्रिपुरारी का, है जिनप्रभु का क्रीड़ा स्थल ।
जो आशा रहित की आशा हैं, कहलाते हैं जो जन-वत्सल ॥
वे ही करुणानिधि जगन्नाथ, मेरे घर मांहि पधारे हैं ।
होगया धाम ये पवित्र आज, धन धन सौभाग्य हमारे हैं ॥

इतने ही में विदुर की, दृष्टि पड़ी तत्काल ।
देखा छिलका खा रहे, नंद—नंदन गोपाल ॥
लख ऐसा व्यवहार ये, झटपट आगे आय ।
कहन लगे निज पत्नि से, मन में अति दुख पाय ॥

कर रही हो ये क्या गजब प्रिया, हा! छिलका इन्हें खिलाती हो ।
और अति ही स्वाद युक्त गूदा, भूमी पै फेंकती जाती हो ॥
क्या तुमको इतना ज्ञान नहीं, भगवान यही हमारे हैं ।
इनकी ही दया दृष्टि से हम, जग में पाते सुख सारे हैं ॥

सुनतेही पति के वचन, हुआ पत्नि को ज्ञान ।
हाथ जोड़ प्रभु से कहा, क्षमा करो भगवान ॥

होगया है दोष अभागिनि से, इसको मत हृदय में लाना ।
कर कृपा दयानिधि दीनबन्धु, मेरा अपराध भूल जाना ॥

[illegible]

हा ! जिनको उत्तम से उत्तम, पकवान खिलाना चहिये था ।
भर स्वर्णपात्र में गंगाजल, सह हर्ष पिलाना चहिये था ॥
उनको गूदा तक दिया नहीं, छिलके से पेट भराया है ।
अपने ही हाथों हा कैसा, ये भारी पाप कमाया है ॥
यों कहती हुई विदुर-पत्नी, प्रभु के चरणों में जाय गिरी ।
श्री विदुर ने भी अति व्याकुल हो, गिरधर की अतिशय विनय करी ॥

लखकर दोनों की दशा, बोले श्री यदुराय ।
सोच फिकर सब छोड़ दो, सुनो बात चित लाय ॥

भक्ती से अर्पण किया हुआ, कुछ भी हो मुझको प्यारा है ।
बिन भक्ति सुधा सम भोजन भी, फीका है, कड़ुवा, खारा है ॥
हे भक्तों ! हम तो भूखे हैं, सद्भावों के सच्ची जानो ।
है जिनका बिलकुल शुद्ध हृदय, मम भक्त वही हैं पहिचानो ॥
उनके शुभ हाथों से अर्पण, अति तुच्छ वस्तु भी करी हुई ।
लगती है बस मुझको ऐसी, मानो अमृत से भरी हुई ॥
ये सच जानो ग्वालों ने भी, मुझको पकवान खिलाये हैं ।
राजाओं के घर भी मैंने, अति उत्तम भोजन पाये हैं ॥
मक्खन और दूध मलाई भी, खाने को अतिशय खाई है ।
पर उत्तमता इस छिलके सम, नहिं किसी वस्तु में पाई है ॥
आहा था कैसा मधुर स्वाद, इस प्रेम से अर्पित भोजन में ।
उसको बतलाने की शक्ती, नहिं हो सकती है बैनन में ॥

बचन प्रभू के श्रवण कर, भक्त विदुर तत्काल ।
बोले क्यों करते मुझे, शर्मिन्दा गोपाल ॥

है कहां भला ये स्वाद रहित, केले का छिलका ईश प्रभो ।
और कहां वो सुन्दर, सरस, मधुर, पकवान मेरे जगदीश प्रभो ॥
फिर भी बखानते जाते हो, छिलके की अतिशय प्रभुताई ।
बोलो, क्या हो सकती है कभी, जल और दूध की समताई ॥

कहा कृष्ण ने हे विदुर, धर्मवान गुणरास ।
मम वचनों पर क्या तुम्हें, होत नहीं विश्वास ॥
क्या था ग्वालों के पास ज़रा सोचो तो इसको चितलाई ।
जिसके वस होकर के हमने, उन लोगों की झूंठन खाई ॥
फिर घर में मक्खन होते भी, गोपियों का ही क्यों अपनाया ।
क्या भरा था उन अबलाओं में, जो घर का मुझे नहीं भाया ॥
ऐ विदुर हृदय में उन सब के, बस सच्चा प्रेम हमारा था ।
बस यही सबब है स्नेह सहित, उनका सब कुछ स्वीकारा था ॥
वही प्रेम अवलोक कर, तुम्हरे चित्त मझार ।
छिलका खाकर भी मैंने, पाया सुःख अपार ॥
श्रोताओं इस जगत में, फ़कत प्रेम है सार ।
वशीभूत इसके सदा, रहते जगनाधार ॥

* गाना *

प्रेम के भूखे हैं भगवान ॥

चाहे करो होम व्रत पूजन अथवा दो अति दान ।
बिना प्रेम ऐसा है जैसे ऊसर बोया धान ॥ प्रेमके ॥
जग के झगड़ों में तो करते सब ही खर्च महान ।
उसमें खर्च होय नहिं कौड़ी तो भी देत न ध्यान ॥ प्रेमके ॥
नर तन पाकर किया न जिसने हित से हरि गुणगान ।
उसका जग में जन्म वृथा है कूकर काग समान ॥ प्रेमके ॥
अस्तु जगत से चित्त हटा कर तजकर मद अभिमान ।
प्रेम करो उन दुख-भंजन से तब होगा कल्यान ॥ प्रेमके ॥

सुन वचन विदुर ने पुलका कर, आनन्दकन्द के पांव गहे ।
और वही देर तक अति हित से, नटवर के गुण गाते रहे ॥
फिर षटरस व्यंजन बनवाकर, सन्मान किया जगसांई का ।
रख सुन्दर शय्या पर बिठाय, कुछ हाल कहा कुनबाई का ॥

सुनते सुनते सोगये वहीं, भक्तन सुखदायक यदुराई ।
आनन्द से प्रातःकाल हुआ, पूरब में छाई अरुणाई ॥
त्यागी सय्या यदुनन्दन ने, कुछ देर बाद अस्नान किया ।
फिर नित्यनेम से निवृत्त हो, सूरज को अर्घ प्रदान किया ॥
इतने ही में आगये तहां, दुर्योधन इन्हें बुलाने को ।
सुन वचन तुरत आज्ञा देदी, मित्रों को साज सजाने को ॥
कुछ देर बाद सब को लेकर, चलदिये सभा को यदुनन्दन ।
जहां बैठे थे धृतराष्ट्र भूप, संग लिये कई अवनीपतिगन ॥

इनके जाते ही उठे, धृतराष्ट्र भूपाल ।
ये लखकर अतिशीघ्र सब, खड़े हुए नरपाल ॥
अभिवादन करने लगे, हर्षित हो जगदीश ।
इतने में आये तहां, नारद, कण्व मुनीश ॥

ये देख भीष्म ने आतुर हो, इन लोगों का सन्मान किया ।
अर्चन, वन्दन, पूजन करके, अतिहित से अर्घ प्रदान किया ॥
फिर इनके योग्य पितामह ने, कंचन के आसन मंगवाये ।
और अति सनेह दर्साते हुये, मुनियों को उन पर बैठाये ॥
इसके उपरान्त कृपासिन्धू, बैठे एक सुघड़ सिंहासन पर ।
फिर सभी उपस्थित राजागन, बैठे जा निज निज आसन पर ॥
दरबार की वह अनुपम शोभा, वर्णन करना आसान नहीं ।
कोई भी ऐसा था न वहां, जो तेजो बल की खान नहीं ॥
भारत के मुख्य मुख्य योधा, नक्षत्रों सम चमचमा रहे ।
उनके चमकीले स्वर्ण खचित, हथियार भि शोभा बढ़ा रहे ॥

भीष्म, द्रौण, कृप, कर्ण अरु, अश्वथामा वीर ।
दुर्योधन मय भ्रातगण, भूरिश्रवा रणधीर ॥

महारथी शल्य अरु बाहलीक, काम्बोज भूप, सिन्धू राजा ।
इनके अतिरिक्त सैकड़ों ही, थे वहां उपस्थित महाराजा ॥

और मध्य में ऊंचे आसन पर, धृतराष्ट्र आसनासीन हुये ।
जिनके सन्मुख सिंहासन पर, शोभित माधव छविपीन हुये ॥
दक्षिण भुज ओर सात्यकी थे, पांचों हथियार सजाये हुये ।
थे बाईं तरफ गुणज्ञ विदुर, चन्दन की खोरि लगाये हुये ॥
पीछे शोभित थे मित्र वर्ग, जो साथ प्रभु के आये थे ।
चहुं ओर खड़े थे चोबदार, बलवानी सजे सजाये थे ॥
जिस तरह सुधा के पीने से, तृप्ती न कभी हो पाती है ।
बस इसी तरह राजाओं की, दृष्टी हरि पर टिक जाती है ॥
छा गया है चहुं सन्नाटा, इक टक हो सभी निहारते हैं ।
क्या कहेंगे दीनदयाल प्रभु, ये ही सब बात विचारते हैं ॥

सन्नाटे को देख कर, स्थिर हो यदुवीर ।
धृतराष्ट्र की ओर लख, बोले वचन गंभीर ॥

हे भरतवंश भूषण नृपाल, जिस हेतु यहां मैं आया हूं ।
बतलाता हूं धर ध्यान सुनो, जो कुछ सन्देशा लाया हूं ॥
आपस में संधि थापन करना, ये ही उद्देश हमारा है ।
इसमें प्रयत्न करने के लिये, मैंने यहां पर पग धारा है ॥
हे भूप आपका कौरव—कुल, विख्यात है सब भूमंडल में ।
सतधर्म में इसके योग्य कोई, है वंश नहीं अवनीतल में ॥
इस कुल के पूरब पुरुषों ने, इसको अति श्रेष्ठ बनाया है ।
धर्मानुसार पालन करके, इतना ऊंचा पहुंचाया है ॥
ऐसे सर्वोत्तम कुल में नृप, होना अधर्म का ठीक नहीं ।
दुष्टे व दुष्टों के भ्रम को, कर देना नष्ट ये ठीक नहीं ॥
फिर जब अधर्म करने वाले यदि आप स्वयम् ही हो जावें ।
तो बतलाओ फिर किस प्रकार, छोटे मनुष्य शिक्षा पावें ॥
हैं सार भरत कुल में प्रधान सब गण आपके हाथ में है ।
धर्मानुसार शासन करो, कुछ सार न थोड़ी बात में है ॥

पुत्र तुम्हारे हो गये, क्रूर, धूर्त, चालाक।
रोको, नहिं कट जायगी, कौरव कुल की नाक॥
सब पुत्रों की विपरीत बुद्धि, अब रंग लाने ही वाली है।
इनके संग इस भारत की भी, शोभा जाने ही वाली है॥
इस विषय को ठंडा नहीं किया, और लापरवाई दिखलाई।
तो कुल होगा जड़ से विनष्ट, कट मरेंगे सारे नरराई॥
ये दोष तुम्हारे सिर होगा, नहिं मेटे से मिट पायेगा।
इसलिये भूप संधी करलो, वरना सब आगे आयेगा॥
बस तुम्हरी इच्छा मात्र से ही, ये बिपति दूर हट सकती है।
क्यों करवाते हो सर्वनाश, इसमें न कीर्ति मिल सकती है॥
हे भूप पांडवों पर तुमने, हर समय सनेह दिखाया है।
अब भी तो उनसे प्रेम रक्खो, क्यों हृदय कठोर बनाया है॥
हो पितृ हीन जब बचपन में, वे निकट तुम्हारे आये थे।
तब तुमने ही कृपा करके, उनके सब काम बनाये थे॥
पालन पोषण कर भली भांति, क्षत्री की विद्या सिखलाई।
सब तरह समर्थ किया उनको, अब क्यों धारी है निठुराई॥
इस समय वे दुख के मारे हैं, हे भूप दया उनपर लावो।
उन दीन अनाथ बालकों को, अपना हि जान कर अपनावो॥
आरत जन की रक्षा करना, हे नृप ये धर्म तुम्हारा है।
पूर्वज सब करते आये हैं, क्यों मौन आपने धारा है॥
उन लोगों ने आजतक, पाला अपना धर्म।
दुखमें फंस कर भी नहीं, किया कोई दुष्कर्म॥
फिर उन्होंने संग तुम्हारे तो, नहिं कभी बुरा व्यवहार किया।
तुम्हरी आज्ञा को पिता तुल्य, गिन कर सब कारोबार किया॥
ये आपहि की आज्ञा तो थी, जिसने उनको बरबाद किया।
२९ महलों में रहने की, एवज जंगल आबाद किया॥

हां एक नहीं दो चार नहीं, बारह वर्षों तक नित्यप्रती ।
निर्जन वन में दुख भोगा है, धारन कर सब ने साधु वृती ॥
फिर एक साल हो पराधीन, सेवक बनना स्वीकार किया ।
हर तरह निभाया निज प्रणको, तजने का नहीं विचार किया ॥
उन लोगों की सुन दुःख कथा, क्या हृदय नहीं दुख पाता है ।
तुम सम पाषाण हृदय राजन, दुनियां में दृष्टि न आता है ॥
उन धर्म पुत्र की याद करो, जो तुम्हें पिता सम जानते हैं ।
सुन दुर्वच आपका मुंह छोड़, झट वन जाने की ठानते हैं ॥
समझाते हैं भीमार्जुन को, अनहित न करो कौरव कुल का ।
क्या ऐसे सुत को दुख देना, परिचय देना बाहु बल का ॥
छत्री जिस नर को कहते हैं, भीमार्जुन हैं उसकी मूरत ।
ऐसे पुत्रों की वन दुख से, होगई पीत सारी सूरत ॥
जिनके दिन थे महलों में रह, कोमल शैया पर सोने के ।
क्या वे लायक हो सकते हैं, कंटकों पूर्ण वन सोने के ॥
उस पतिव्रता पंचाली का, दुख कहते छाती फटती है ।
दुनियां की सर्व श्रेष्ट रानी, रंकों सम वन में फिरती है ॥

महलों में जिसको नहीं, सके थे देख निहार ।
किया आपके पुत्र ने, उसी पै अत्याचार ॥

बेचारी मासिक धर्म से थी, फिर भी न इन्हें लज्जा आई ।
बुलवाया खास सभा में और, नंगी करने की ठहराई ॥
क्या तुम्हारे थे वंशानुसार, सुन खास हुआ बोलो राजा ।
उसका सब इस लड़के का पाप, धर तुला में फिर तोलो राजा ॥
महाराज आपके पूर्व पुरुष, अबलाओं के दुख हरता थे ।
देते थे दंड कुकर्मी को, सज्जन जन के सुख करता थे ॥
हा उसी वंश में हुआ आज, दुष्कर्म भयानक भयकारी ।
होकर समर्थ फिर तुम ने क्यों, इनकी न रोक दुष्टाचारी ॥

ऐसे दुस्तर दुख सहकर भी, वे हुये आप के विरुध नहीं ।
और तव पुत्रों की ओर से भी, हैं उनके भाव अशुद्ध नहीं ॥
अच्छा जो बीतगई सोगई, अब आगे की चिन्ता करिये ।
कर संधी आधा राज दिला, उन लोगों की विपता हरिये ॥
था प्रण ये तुम्हरा महाराज, जब अवधि पूर्ण हो जावेगी ।
तब पांडु-सुतों कों हर्ष सहित, सब भूमी देदी जावेगी ॥
कर डालो है अवधी समाप्त, सब राज पाट अब दिलवादो ।
और तुम्हरे पुत्रों से उनको, इस तरह खुश कर मिलवादो ॥
कौरव पांडव के मिलने से, ये वंश अजय हो जावेगा ।
यदि इन्द्र भि चढ़कर आया तो, इसको न जीतने पावेगा ॥
करना सब दुनियां का शासन, ज्यों अखिल स्वर्ग के सुरराई ।
अनगिनत भूप सेवक बनकर, नित करेंगे सेवा हरषाई ॥
तुम स्वयम् धर्म के ज्ञाता हो, धर्मानुसार ही काम करो ।
संधी थापन कर चैन सहित, मृदुशैया पर आराम करो ॥
तुम पिता हो वे तुम्हरे बालक, हैं राज पाट के अधिकारी ।
हक़दार को उसका हक़ देकर, बस करो निवारन महामारी ॥
महाराज आप यदि चाहोगे, ये घोर अनर्थ नहीं होगा ।
संधी से भाई, भाई को, बधने में समर्थ नहीं होगा ॥
अपने अनर्थकारी सुत को, समझा कर सन्धी कर डालो ।
पांडवों का पैतृक राज दिला, उन लोगों का दुख हर डालो ॥

❀ गाना ❀ (राग सोरठ)

सन्धी करलो हे नरराई, रणमें नहीं भलाई है ॥
करते हो क्यों नाश देश का, बुद्धि कहां बिसराई है ।
सम्पति में सुख विपति में दुख है, क्यों न नीति ये भाई है ॥
ये सब तुम्हरे दुष्ट सुतों की, हे भूपति कुटिलाई है ।
जो के उन सज्जन पुरुषों पर, इतनी आफत ढाई है ॥

पूर्ण होगई है अवधी फिर, क्यों धारी निठुराई है।
दे दो उनका राज नहीं तो, होगी बहुत बुराई है ॥
जहँ जहँ फूट पड़ी आपस में तहँ तहँ मची लड़ाई है।
अस्तु एकता ही हे राजन् सर्वकाल सुखदाई है ॥

संधी से दोउ वंशये, करेंगे निशि दिन चैन ।
अस्तु इसे थापन करो. मान हमारे बैन ॥
इतना कहकर खामोश हुये. जन-मन-रंजन गिरधरधारी ।
सुन नीति युक्त सभी बातें. भूपों को खुशी हुई भारी ॥
लेकिन सब मन में दबा गये. कुछ भी न प्रगट करने पाये ।
दुर्योधन को क्रोधित लखकर. चुप हुये हृदय में दहलाये ॥
अलबत्ता ऋषियों ने उठ कर. दुर्योधन को उपदेश दिया ।
पांडवों से संधी करने को. सब प्रकार से आदेश किया ॥
फिर कहा सन्त ने. वे पांचों. वर-पुत्र सुरों के कहलाते ।
हैं उनमें गुण देवों सदृष्य. इसलिये अजय माने जाते ॥
अपने इस सर्व श्रेष्ट कुल की. रक्षा करना ही हितकर है ।
रण किसी तरह भी ठीक नहीं. मिलकर रहना ही सुखकर है ॥
पर काल विवश दुर्योधन ने. वह सुनी नहीं हित की बानी ।
कर लाल नेत्र वह तमक उठा. बोला चुप रहो मुनी ज्ञानी ॥
जंगल में रह तुम लोगों को. फल कंद मूल खाना आना ।
कर नेत्र बन्द मनही मनमें. निर्गुण के गुण गाना आना ॥
जिसका सब जीवन निर्जन में. बीता वह क्या जग की जाने ।
जो योगी है वह जानें किम. इस राजनीति की पहिचानें ॥
कृपा करो मुनिराज अब. करो जीभ को बन्द ।
मुझे नहीं जानूं हूं अब. जिनमें तुम आनन्द ॥
सुन था सुन पे उद्दंड उत्तर. व्याकुल धृतराष्ट्र भूपाल हुये ।
बोले हे मुनियो क्षमा करो. इस सुत से अति दुखियार हुये ॥

उपदेश आपने दिया है जो, वह सब प्रकार हितकारी है ।
लेकिन इसने मृत्यु बस हो, अपनी सब बुद्धि बिसारी है ॥
देख कृष्ण की ओर फिर, बोले यों भूपाल ।
बात आपकी ठीक है, धर्मोचित गोपाल ॥
लेकिन केशव लाचार हूं मैं, क्या करूं जबकि स्वाधीन नहीं ।
दुर्बुद्धि, कुकर्मी, दुर्योधन, है स्वतंत्र मम आधीन नहीं ॥
जो बात मैं करना चाहता हूं, उसको ये कभी न मानेगा ।
चाहे वो हित की बात हि हो, लेकिन ये अनहित जानेगा ॥
इसलिये कृपा करके स्वामी, इस दुष्ट बुद्धि को समझाओ ।
जिस तरह बने इसको कह सुन, माधव ! सीधे रस्ते लाओ ॥
संधी करना या रन करना, इसकी इच्छा पर निर्भर है ।
यदि मान गया सुख पायेगा, और नहीं तो नाश सरासर है ॥
धृतराष्ट्र के वाक्य सुन, श्रीकृष्ण मुसकाय ।
कुरुपति से कहने लगे, सुन भाई चितलाय ॥
व्यवहार इस समय का तेरा, इस श्रेष्ट वंश के योग्य नहीं ।
इसका दुखदायक फल होगा, कुछ मिलेगा सुख उपभोग नहीं ॥
पूर्वजों का जीवन चरित देख, अनुसरन करो उनके मत का ।
क्यों वृथा युद्ध से करते हो, सम्पूर्ण नाश जन सम्पति का ॥
धर्मावलम्बि जन कभी नहीं, अन्याय के मारग पर जाते ।
ये कर्म हैं केवल दुष्टों के, जो नहीं पाप से घबराते ॥
क्षत्री के अगनित धर्मों में, रन करना भी बतलाया है ।
कर इसका गूढ विचार बहुत, एक मुख्य समय ठहराया है ॥
शत्रु पुर पै धावा कर दे, या जबरन भूमि दबा लेवे ।
तो धर्म है क्षत्री का रन कर, शत्रु को मार भगा देवे ॥
ये मतलब रन करना राजन, निश्चय हानी पहुंचाता है ।
ऐसा करने वाला पापी, गति भ्रष्ट क्षत्रि की पाता है ॥

ये धर्म से राज मांगते हैं, संग्राम नहीं करना चाहते ।
फिर क्यों अनर्थ युद्ध रन करके, बंधु बांधव को मरवाते ॥
यदि सुःख भोगना चाहते हो, यदि इच्छा है कुल रखने की ।
तो शीघ्र संधि थापन करलो, दरकार नहीं रन करने की ॥

संधी में उपकार नहिं, केवल तुम्हरा तात ।
ये करने से होंयँगे, सुखी पितामह, भ्रात ॥

इतने हि नहीं कृप, द्रोण गुरु, अश्वत्थामा आदिक योधा ।
यहां तक भारत के सभी वीर, सत्तम कुलीन कुल के पौधा ॥
दुनियां की सभी जाति जाती, संधी से खुश हो जावेगी ।
ये प्राकृति छवि देखी ही रह, हर दम आनन्द दिखावेगी ॥
इसलिये दुर्योधन विनय मान, शुभ काम में आगे बढ़ जाओ ।
कुन्तीनन्दन से संधी कर, बंधुओं के सदृश अपनाओ ॥
यदि रन चंडी यहीं जाग उठी, कितना अनर्थ हो जावेगा ।
ये स्वर्ग तुल्य भारत प्रदेश, शमशान दृष्टि में आवेगा ॥
मालुम है तुमको कितनी हैं, दोनों पक्षों की कटकाई ।
सोचो अष्टादस अक्षौहिणि, नश्वर हैं लड़ने के ताईं ॥
जग के नामी नामी योधा, कटि बद्ध हैं जान गमाने पर ।
इनके विनाश की बात सोच, दुःखी रहतो न ठिकाने पर ॥
इक दृष्टि घुमा देखो तो सही, यहां पर बैठे भूपालों को ।
फिर ध्यान धरो पांडव दल में, एकत्र हुवे छितिपालों को ॥
क्या उत्तम उत्तम वीर रत्न, हो गये इकट्ठे आँगन में ।
हा मोह इन्हें मरवाते हो, क्या रक्खा ऐसे स्वारथ में ॥

रक्षित है जिनसे अवनि, करें प्रजा प्रतिपाल ।
[illegible] कुल को, [illegible] न काल ॥

[illegible] [illegible] रहना है ।
जिनके भय से [illegible] [illegible] न किसी को जिनना है ।
[illegible] [illegible] धर्मानुसार [illegible]

जो दान, यज्ञ, जप, व्रत आदिक, करते हैं और कराते हैं ।
जिनके तप से बकरी व सिंह, रह एक संग हर्षाते हैं ॥
होता है जन्म जिन लोगों का, दुर्बल के दुःख मिटाने को ।
ऐसे लालों का वृथा हि क्यों, तैयार हो नाश कराने को ॥
अपने मित्रों का पाक लहू, इस भूपर में मती बहाओ तुम ।
इस पुन्य रूप प्रिय भारत को, मत वृथा कलंक लगाओ तुम ॥
फिर दोनों दल के श्रेष्ठवीर, जितने भी हैं संबन्धी हैं ।
फिर भी तुम रन करना चाहते, इतनी क्या बुद्धी अंधी है ॥

दादा, मामा, भ्रात, गुरु, आदिक नातेदार ।
इनकी हत्या के लिये, क्यों होते तैयार ॥

जिस दम इन लोगों के खूं की, बह जावेगी जल सम धारा ।
नभ में उत्पात शुरू होंगे, कांपेगा ये भारत सारा ॥
पलटा खावेगा द्वापुर युग, कलियुग स्थान जमावेगा ।
फैलेगी अराजकता यहां पर, सब रँग बदरँग हो जावेगा ॥
जग की हानी तो कम होगी, लेकिन भारत गारत होकर ।
सब धूलि धूसरित होवेगा, अपने प्रिय पुत्रों को खोकर ॥
वो महा प्रलय का भयदायक, जब दृश्य नेत्र सन्मुख होगा ।
इसको मरघट सम देख कौन, फिर लखने का इच्छुक होगा ॥
जब नक्षत्रों सम कान्तिवान, यहां के बलवान निहत होंगे ।
कुहराम मचेगा सभी जगह, घर वाले विकल दुखित होंगे ॥
हो जावेंगे लाखों बच्चे, बिल्कुल अनाथ अति दीन दुखी ।
और वीर पति मातायें भी, खोकर पति सुत होंगी न सुखी ॥
होवेगी नष्ट शस्त्र विद्या, सब देश में तम छा जावेगा ।
दुनियां में इस वैदिक मत का, नामोनिशान नहिं पावेगा ॥
बढ़ जावेगी विधवा संख्या, और फैलेगा व्यभिचार यहां ।
[illegible] उत्पन्न वर्णसंकर, फिर रहेगा वर्ण विचार कहां ॥

उत्तम उपदेश न पाने से, योधाओं की सन्तान सभी ।
दुर्दशाग्रस्थ हो जावेगी, खोकर जाती अभिमान सभी ॥

संभव है उस समय में, ये भारत गुणखान ।
हो जावे परतंत्र फिर, खोकर अपनी शान ॥

इसलिये दुर्योधन कहा मान, मत नष्ट करो वैभव सारा ।
क्यों अपनी प्रिय सन्तानों को, पहुंचाते हो संकट भारा ॥
क्यों इस भारत का खून मित्र, अपनी गर्दन पर लेते हो ।
क्यों करवाते हो काला मुख, क्यों नहीं संधि कर लेते हो ॥
यदि तुम भी जीत गये तो क्या, श्मशान में राज चलाओगे ।
सब भूमि क्षत्रियों रहित बना, क्योंकर मन में सुख पाओगे ॥
इस तरुण देश को दुर्योधन, इस समय न वृद्ध बनाओ तुम ।
इन उत्तम उत्तम वीरों का, नाहक मन खून बहाओ तुम ॥
इन सारे वृद्ध जनों की तो, संधी करने की इच्छा है ।
इन सारे वृद्ध जनों की इस आज्ञा को, पूरा करना ही अच्छा है ॥
अस्तू इनकी इस आज्ञा को, पूरा करना ही अच्छा है ॥
है धर्म यही सत पुत्रों का, पितु, मा की आज्ञा को माने ।
जो कुछ वे उचितादेश करें, उसको ही धर्म तत्व जाने ॥

अस्तु पिता के हुक्म से, संधि करो तत्काल ।
भारत गारत हो नहीं, रहे सदा खुशहाल ॥

चाहता है भला अपना तथा अपनी जातिका ।
कर डाल संधि सबकी है बस कामना यही ॥

सुन प्रभु की बात उपस्थित गन, घबरा कर तुरत उदास हुये ।
संग्राम का दुखदाई फल सुन, झट तेजो हीन हताश हुये ॥
सबकी ऐसी ही राय हुई, संधी होजाना हितकर है ।
वरना ये घोर महामारी, भारत प्रदेश को दुखकर है ॥
लेकिन दुर्योधन की आकृति, जैसी थी वैसी बनी रही ।
गो प्रभु ने उसको हर प्रकार, उसके ही हित की बात कही ॥
वह कुलांगार ये बातें सुन, होगया क्रोध से अंगारा ।
चहरा सारा तम तमा उठा, आंखों ने रक्तवर्ण धारा ॥
उसको क्रोधित लख राजागन, डर के मारे कुछ कह न सके ।
नीची नजरें कर मौन हुये, लेकिन भीषम चुप रह न सके ॥
बोले जगदीश मुरारी ने, हे कुरुपति जो उपदेश दिया ।
उसको यदि शठता के वस हो, तैंने जो नहिं कुछ कान किया ॥
तो रखना याद भूमि के सब, क्षत्री रन में मर जावेंगे ।
तेरी भी मृत्यु खबर सुन कर, ये मात पिता दुख पावेंगे ॥
करी समर्थन विदुर ने, भीष्म पिता की बात ।
बोले गुरु क्यों देश को, पहुंचाता आघात ॥
अबतक अर्जुन ने हे कुरुपति, तनु त्राण को धारन नहीं किया ।
धनुवां पै तीव्र बाण धरकर, शरमंत्र उचारन नहीं किया ॥
अबतक हरि ने सारथि बन कर, चतुराई नहीं दिखाई है ।
कर क्रोध भीम ने अभी तलक, नहिं भीषण गदा उठाई है ॥
सहदेव, नकुल के हाथ अभी, पहुँचे हैं नहीं तलवारों पर ।
उनके साथी वीरों की भी, नहिं दृष्टि पड़ी हथियारों पर ॥
इसलिये अभी है समय मूर्ख, उपदेश कृष्ण का ध्यान में ला ।
रन के फल का कर ख्याल, गुरु बातों को सन्मान में ला ॥

वरना चौपट हो जावेगी, ये ऋषियों की भूमी सारी ।
सब दाग लगेगा तुझको ही, तू कहलावेगा क्षयकारी ॥
इसलिये प्रेम से अर्पण कर, पांडवों को उनका राज सभी ।
अरु नहीं तो जड़ से जावेगी, इस कौरव कुलकी लाज सभी ॥

कुरुपति ने इस बात पर, दिया नहीं कुछ ध्यान ।
यदुपति से कहने लगा, अपनी भृकुटी तान ॥

हे मधुसूदन किसके बल पर, तुम मेरी निन्दा करते हो ।
तुम दूत हो दूत बने पै रहो, क्यों वृथा हि यहां अकड़ते हो ॥
है काम तुम्हारा केवल यह, यहां से संदेशा लाने का ।
और उसके उत्तर को वापिस, उन लोगों तक पहुँचाने का ॥
पर दूत धर्म से विमुक्त होय, तुमने जो बात बनाई है ।
उसको सुन अबतक शान्त हूँ मैं, पर आगे नहीं भलाई है ॥
पांडवों में कितना बल देखा, जो मुझे डराने आये हो ।
मच्छर बनकर निज फूकों से, क्यों शैल उड़ाने धाये हो ॥
था ध्यान मुझे कुन्ती-नन्दन, निज धर्म पालने वाले हैं ।
जो प्रण कर डाला फिर उसको, हरगिज न टालने वाले हैं ॥
पर आज मुझे मालूम हुआ, वे बगुला भक्त कहाते हैं ।
जाहिर में साधू रूप धरें, बगलों में छुरी दबाते हैं ॥
सारा संसार जानता है, है जुए का शौक युधिष्ठिर को ।
उसका चसका लग जाने से, खेले शकुनी संग खातिर हो ॥
दुर्भाग्य से हार, फस गये फिर, बनवास गमन के बंधन में ।
था प्रण यह वर्ष गुप्त होंगे, द्वादश काटेंगे कानन में ॥
जैसे तैसे बन में रह कर, दे बारह वर्ष बिताय दिये ।
अज्ञातवास के भी आखिर, सारे सामान सजाय लिये ॥
लेकिन प्रण के माफिक केवल [illegible] नहीं [illegible] पाया ।
[illegible] से ही इस अर्जुन ने, रन में झगड़े को [illegible] ॥

इसलिये उन्हें तेरह वर्षों, जंगल में फिर जाना चहिये ।
जो कसम यहां पर खाई थी, कर पूर्ण उसे आना चहिये ॥
यदि वे धर्म धुरीन हैं, फेर करें बनवास ।
ये सब काम समाप्त कर, करें राज की आस ॥
थोड़ी सी कटक इकट्ठी कर, मुझको धमकी दिखलाते हैं ।
राजा विराट अरु द्रौपद के, बल पर इतने इतराते हैं ॥
क्या हम उन तुच्छ मेंढकों से, अजगर होकर डर जायेंगे ।
हम क्षत्री हैं डर से रिपु को, हरगिज नहिं शीश झुकायेंगे ॥
वे क्या हैं यदी इन्द्र आवें, तो भी न विजय कर पावेगा ।
फिर जग का साधारण क्षत्री, मुझको क्या आंख दिखावेगा ॥
देखो इन गंगा-नन्दन को, इन कर्ण वीर का ध्यान करो ।
ये बैठे हैं गुरु-द्रौण, ये कृप, हे हरि इनका सन्मान करो ॥
कस कमर जिस समय ये योधा, संग्राम भूमि में जावेंगे ।
हारेंगे सब दुनियां वाले, जो एक साथ भी आवेंगे ॥
इतना होने पर भी केशव, गिर गये जो हम रण भूमी में ।
तो भी उत्तम है तन तजकर, जावेंगे झट सुर भूमी में ॥
है यही क्षत्रि का उचित धर्म, शर-शैया पर आराम करे ।
पर रिपु के आगे शीश झुका, कुल को न कभी बदनाम करे ॥
अधिकारी इस राज का, मैं ही हूँ गोविंद ।
फिर क्यों इसको मांगते, पांडवगन मतिमंद ॥
मेरे शैशव काल में, उन्हें देदिया राज ।
अब मैं बालिग होगया, क्यों न धरूं सिर ताज ॥
इसलिये साफ़ ही कहता हूं, जबतक जिन्दा है दुर्योधन ।
तबतक धरती का क्षुद्र अंश, पा सकते नहीं पांडु-नन्दन ॥
चाहे रन में सन्मुख आवें, या दिखलावें कुछ नरमाई ।
लेकिन जबतक मैं जीवन हूं, वे कभी न होंगे नरराई ॥

ज्यादा तो देना दूर रहा, जो सुई की नोक बराबर हो ।
इतनी भी नहीं दिलाऊंगा, चाहे संग्राम सरासर हो ॥
इसलिये लौट जावो केशव, संधी को मैं तैयार नहीं ।
यदि ज्यादा बात बढ़ाओगे, हो जावेगी तकरार यहीं ॥

दुर्योधन की बात सुन, हुआ कृष्ण को क्रोध ।
बोले दुर पापात्मा, कपटी नीच अबोध ॥

रे कुरुकुल के सकलंक चन्द्र, तू वीर गती ही पावेगा ।
अपने दुस्तर व्यवहारों से, निश्चय दुर्गती करावेगा ॥
समराग्नि अवश्य ही भड़केगी, इसमें कुछ शक संदेह नहीं ।
पावेगा निज करनी का फल, ये बचेगी हरगिज देह नहीं ॥
रे कुलांगार ! बचपन में, तैंने विष दिया वृकोदर को ।
वरणावत मांहि जलाने को, बनवाया था लाक्षा घर को ॥
फिर उन लोगों का वैभव लख, तू डाह के वश हो जलने लगा ।
कर सभा भवन की याद निरा, दुःख पाने हाथ मसलने लगा ॥
फिर छल करके जूवे से हरा, सब राजपाट उन वीरों का ।
उनके हिरदय को छेद दिया, दुर्वाक्यों रूपी तीरों का ॥
फिर उन लोगों की प्राण-प्रिया, उत्तम कुल सम्भूता नारी ।
उसको बालों से दुलवा कर, खींची थी सभा मांहि भारी ॥
कटु वाक्यों की बौछार भी की, बलनी सम भाग हृदय हुआ ।
तो भी उन धर्म-धुरीनों से, नहिं गुस्से का अभ्युदय हुआ ॥
रे मूढ़ मते ! ये कर्म तेरा, अति दुखदायक अपकारी है ।
रिपु भी रिपु से संग करे नहीं, वैसी की तूने ख्वारी है ॥
उनका सौंपकी राज छीन, अब वृथा गर्व से फूला है ।
होगया पूर्ण मद फिर भी तू, है तेरे की बुद्धि भूला है ॥

विनय युक्त मृदु वाक्य से, मांगत पांडव राज ।
दो दुष्ट अब भी सखो, निर्भय काज अकाज ॥

मृदु बातों से मत दिला राज, लेकिन संग्राम दिलावेगा।
फिर आधे का कुछ ज़िक्र नहीं, सारा ही कर में आवेगा॥
जो बड़ों के वचनों को तज कर, अपनी मनमानी करते हैं।
वे कुल-कलंक इस दुनियां में, हो विपता ग्रस्त विचरते हैं॥
उनकी न इष्ट सिद्धी होती, मिलती हैं हरजां फटकारें।
हो जाती है गति स्वान सरिस, जो उन्हें विलोकें दुतकारें॥
इन हित वचनों को ध्यान में ला, अभिमान छोड़दे अभिमानी।
नहिं अन्त समय पछतावेगा, जो सुनी नहीं मेरी बानी॥

धर्मराज जिस समय में, क्षुधित सिंह कीभांति।
टूटेंगे तव सेन पर, तोड़ेंगे व्युह पांति॥

जैसे सूखे तृण को अग्नी, गिन अमके भस्म बनाती है।
या अति बरषा तरु आदिक को, पल में बहाय ले जाती है॥
त्योंही इनके शर द्वारा जय, तव कटक न्यून होजावेगा।
उसकी चिन्ता से व्याकुल हो, तब तू मनमें पछतावेगा॥
जिस समय असाधारन बलिष्ट, ले गदा हाथ में भयकारी।
संग्राम भूमि में आवेंगे, जैसे यमराज दंड धारी॥
सेना में घुस विध्वंस करें, निर्भय हो हांक सुनावेंगे।
उस बीर वृकोदर को लख कर, मम बचन ध्यान में आवेंगे॥
जब तेरे सन्मुख मतवाले, हाथी संहारे जावेंगे।
उनके मस्तक पर गदा चोट, शोणित की धार बहावेंगे॥
भूमी में गिर उनका समूह, जब तन तज सुरपुर जावेगा।
उस समय का भीषण द्रश्य देख, तू निज मन में पछतावेगा॥
जिस समय काल सम भीमसेन, पकड़ेंगे तव भ्राताओं को।
निज बल से धरनी पर गिराय, तोड़ेंगे हाथों पावों को॥
उनका करुणा-क्रंदन सुन कर, तू हत चेतन हो जावेगा।
उस समय में सुरम्य निश्चयही, निज भूल पै तू पछतावेगा॥

जब अर्जुन गांडीव ले, कपिध्वज रथ पै बैठ ।
क्रोधित होकर आयँगे, मिटेगी तब सब ऐंठ ॥
और फिर जिस समय वे बलवानी, धनु को टंकोर सुनावेंगे ।
वायू के सदृश्य फुरती से, अपने रथ को दौड़ावेंगे ॥
जब तू उनके बाणों द्वारा, विचलित निज कटक निहारेगा ।
तब व्याकुल हो अपने सिरपर, हो दुखित दोऊकर मारेगा ॥
जिसने सुरपति की सब शक्ती, कर डाली व्यर्थ भुजा बल से ।
खाण्डव को दग्ध कराय दिया झट अग्नी की दावानल से ॥
जिससे रन कर त्रिपुरारी भी, संतोषित हो हरषाये हैं ।
तू उसे जीतना चाहता है, किन लोगों ने बहकाये हैं ॥
जो बलवानी भू मंडल को, हाथों पर अधर उठालेवे ।
या केवल मुक्कों के द्वारा, हिमगिरि को चूर्ण बना देवे ॥
कर देवे पतित अमरपुर से, सारे देवों को भुज बल से ।
तो भी शायद वह रन में आ, जीते अर्जुन को कौशल से ॥
लखेगा उसही वीर को, जब रणमांहि सक्रोध ।
तब मम बातें याद कर, होगा मन को बोध ॥
जिस समय वीर सहदेव नकुल, तलवार हाथ में धारेंगे ।
तेरी सेना के वीरों के, सिर काट २ महि डारेंगे ॥
उनको जिस समय धूल में तू, पद से ठुकराते पावेगा ।
रोवेगा उनकी दशा देख, तब ज्ञान हृदय में आवेगा ॥
श्री भीष्म पितामह, द्रोण, कर्ण, संदेह नहीं बलशाली हैं ।
लेकिन ये काम न आवेंगे, विधना की गती निराली है ॥
वे भीष्म शिखंडी को लखकर, पुरुषार्थ न कुछ कर पावेंगे ।
शिव के वर से उसके सन्मुख, जाते ही मारे जावेंगे ॥
गुरु द्रोण की मृत्यू होवेगी, फिर धृष्टद्युम्न के हाथों से ।
ऐसे रणधीरों को खोकर, क्या जय पावेगा बातों से ॥

हैं कर्ण भी बांके धनुधारी, पर कुंडल कवच गमा करके ।
हो गये निबल तन त्यागेंगे, श्री अर्जुन के शर खा करके ॥
जिस समय युद्ध भूमी में तू, क्षत्रियों के शोणित की धारा ।
अवलोकेगा लहराती हुई, तब पावेगा संकट भारा ॥
भूपालों के जिन मुकटों को, लाखों नर शीश झुकाते हैं ।
और जिनकी वृहत भुजाओं का, पूजन कर सब हर्षाते हैं ॥
उन मुकुटों को लख अस्त व्यस्त, अरु भुज को कौवों से खाते ।
क्या जय के भरोसे रहोगे तुम, उस समय भी मद में मदमाते ॥

नृप वीरों का नाश जब, होवेगा इक बार ।
सकेगा कैसे रोक तू, आंखों से जलधार ॥

फिर वहां उसी रन भूमी में, जो ल्हाशों से संकुल होगी ।
रिश्तेदारों के शोणित से, तर जहां की मिट्टी कुल होगी ॥
बस उसी लहू की कीचड़ में, घायल हो जब तू फिसलेगा ।
उस असह्य यातना के कारन, मुख के द्वारा खूं उगलेगा ॥
मरने से पहिले व्याकुल हो, पीड़ा से जब चिल्लायेगा ।
उस समय मूढ़ मेरा ये सब, उपदेश ध्यान में आयेगा ॥

❀ गाना ❀

(तर्ज़.—किससे करिये प्यार यार खुदगरज़ जमाना है ।)

हट करके क्यों मूर्ख देश का नाश कराता है ॥
भारत को भारत रत्न गिन, गिन सब गुण की खान,
जगत गुरु कहला कर सबको, देता है ये ज्ञान ।
इसीसे मुकुट कहाता है ॥ हट करके ॥
इसके धर्म, दुर्दिनों ने तो, करके यत्न विशाल,
दिया है हमको बढ़ दिन में, अति ही उच्च कमाल ।
और तू मान गंवाता है ॥ हट करके ॥

जानेदे दुनियां की बातें, ध्यान स्वर्ग का धार,
सुरों का भि यहां के लोगोंने, किया है अति उपकार ।
इन्द्र अबतक गुण गाता है ॥ हठ करके ॥
किसी वस्तु का पतन सहल है, मुश्किल है उत्थान,
अस्तु मूर्ख इस हरेभरे को मतो बना समशान ।
समय जाकर नहीं आता है ॥ हठ करके ॥

ये सब सुनकर भी यदी, चाहत है तू रार ।
कर तैयारी शीघ्र ही, वे भी हैं तैयार ॥
संग्राम का कुल भविष्य सुनकर, दरबारी सारे घबराये ।
आंसू गिरना आरम्भ हुआ, छविहीन हुये तन कुम्हलाये ॥
संधी करने के लिये वहां, सबही संकेत जनाते थे ।
पर प्रगट न करते थे क्योंकि, दुर्योधन से दहलाते थे ॥
लख हाव भाव राजाओं के, दुःशासन अतिशय घबराया ।
आकर समीप कौरवपति के, धीरे धीरे यों समझाया ॥
हे भ्राता ! भूपों के विचार, अब पलटा खाते जाते हैं ।
सुन कृष्णचन्द्र की बातों को, संधी की चाह जनाते हैं ॥
और आप सुलह के हैं विरुद्ध, इसलिये कहीं ये नरराई ।
तुम पर कुछ वार न कर बैठें, अस्तु यहां से चलदो भाई ॥
सुनते ही दुर्योधन शंकित हो, चल दिया सभा को त्यागन कर ।
शकुनी, रवि-सुत, दुःशासन भी, धाये इसके पीछे सत्वर ॥
बाहिर आ चारों जने, खड़े हुये इक ठौर ।
कहा करें इस बात पर, करन लगे सब गौर ॥
बोला शकुनी इस नटवर ने, यहां आकर फंद मचाया है ।
भूपों को उलटी सीधी कह, अपने विरुद्ध उकसाया है ॥
कुरु, वीर सघन जो राजागन, हृदय से मित्र हमारे थे ।
पांडवों से रन करने के लिये, हथियार जिन्होंने धारे थे ॥

अब उनका तेवर तो देखो, सुनते हि बचन यदुराई के ।
तत्पर होगये सुलह के लिये, तजकर सब भाव लड़ाई के ॥
लेकिन अबतक यदुनन्दन का, सिक्का न पूर्ण जम पाया है ।
राजाओं ने योंहीं सा कुछ, ऊपरी भाव दरसाया है ॥
लेकिन यदि ये देता हि रहा, वक्ता तो फिर हानी होगी ।
सब नृप शत्रु बन जावेंगे, पांडवो की मनमानी होगी ॥
अस्तु जितना भी जल्दी हो, इस यादव-नन्दन को टालो ।
राजाओं को समझा बुझाय, उनका संदेह मिटा डालो ॥

सुन कर शकुनी के बचन, दुर्योधन रिसियाय ।
कहन लगा माम्मा सुनो, मेरा मत चित लाय ॥

इस बड़बादी यदुराई को, यहां से क्यो सूखा टालते हो ।
ये हैं अपना शत्रू अस्तू, क्यों नहीं क़ैद कर डालते हो ॥
इस कुटिल ने मेरा अति उत्तम, पकवान तलक नहिं स्वीकारा ।
और जी भर के अपमान किया, इस सभा में दुर्वचनों द्वारा ॥
फिर स्यार सरिस पांडवों को भी, इस ही ने शेर बनाया है ।
है ये ही सब झगड़े की जड़, इसही ने जाल बिछाया है ॥
इसलिये इसे बंदी करलो, यहां से बचकर मत जाने दो ।
कुछ फ़िक्र करो मत बूढ़ों का, चिल्लावें तो चिल्लाने दो ॥
इसके बैदी बनते ही सब, पांडव हताश हो जावेंगे ।
सब अपना तेजो बल नृप भी, फिर मित्र भाव दरसावेंगे ॥
यों कह पापात्मा दुर्योधन, शकुनी आदिक को संग लेकर ।
प्रभु को कैदी करने के लिये, आगया लौट वापिस भीतर ॥

दुर्बुद्धी कुरुराज के, दुर्भावों को जान ।
मन ही मन मुस्कारहे, वे गुणज्ञ भगवान ॥

अन्त बंदी करने की इन्हें, ज्योंही कुरुपति ने ठहराई ।
त्योंही एक पल की देर न कर, हँस पड़े जोर से यदुराई ॥

इनके हंसते ही यकायक, एक महा तेज तहां छाय गया ।
आश्चर्य चकित होगये सभी, शोरोगुल तुरत विलाय गया ॥
फिर एक नहीं दो चार नहीं, लाखों ही रूप जनार्दन के ।
उस अतुल तेज में दृष्टि पड़े, उड़ गये होश दुर्योधन के ॥
भौंचक्का होकर तकने लगा, इतने ही में माया सारी ।
होगई गुम रहगये फ़कत, इक दुष्ट निकंदन गिरधारी ॥

फिर निज आसन त्याग कर, खड़े हुये यदुराय ।
चलती बिरियां भूप से, कहा सुनो चितलाय ॥

होगया मेरा कर्त्तव्य पूर्ण, हर तरह आपको समझाया ।
लेकिन वह सारा वृथा गया, तुम पर न असर पड़ने पाया ॥
ये हाल युधिष्ठिर से कह कर, कर्त्तव्य से छुट्टी पाऊंगा ।
मेरा अभिवादन ग्रहण करो, अब शीघ्र लौट कर जाऊंगा ॥

यों कह सात्यकी संग ले, चले तुरत गोपाल ।
पहुंचे कुन्ती के भवन, दीनानाथ दयाल ॥

कर चरन वन्दना कुन्ती की, दर्बार का हाल कहा सारा ।
फिर बोले मैं उस पापी को, समझाते समझाते हारा ॥
वह सुनता नहीं किसीकी भी, मृत्यु सिर पर आ छाई है ।
बस इसीलिये हित की बातें, उसको पसन्द नहिं आई हैं ॥
कुछ कहना हो सन्देश कहो, पांचों को जाय सुनाऊंगा ।
यहां से मेरा मन उचट गया, ज्यादा न ठहरने पाऊंगा ॥

श्रीकृष्ण के बैन सुन, कर कुछ देर विचार ।
बोली कुन्ती अन्त में, वचन समय अनुसार ॥

हे कृष्ण ! युधिष्ठिर से कहना, तू धर्मनन्द का ज्ञाना है ।
फिर क्यों स्वधर्म के पालन में, लापरवाई दिखलाना है ॥
क्षत्री किसलिये अवनितल में, लेते हैं जन्म क्या ज्ञान नहीं ।
न चलता है उसके विरुद्ध, कुछ हानि लाभ का ध्यान नहीं ॥

निज प्रजा को पाले पुत्र सरिस, क्षत्री का मुख्य धर्म है ये ।
वह मिटना चला जा रहा है, तेरा नहिं उत्तम कर्म है ये ॥
रहता है धर्म में मग्न सदा, अरु कर्म की याद भुला डाली ।
बस इसीलिये दुख सहता है, होकर भी अतुलित बलशाली ॥
जिस तरह शास्त्र ने विप्रों का, शास्त्राध्यन ये धर्म कहा ।
और वैश्यों का खेती करना, शूद्रों का सेवा कर्म कहा ॥
बस इसी तरह क्षत्री नर का, रैयत पालन बतलाया है ।
उससे तुम विचलित होते हो, क्यों अपना ज्ञान भुलाया है ॥

प्रजा तुम्हारी शत्रु के, हाथों पाती क्लेश ।
बल होते भी सुत तुम्हें, नहिं है दुख लवलेश ॥

क्या स्वर्ग से वंचित रहना है, अस्तू रिपु का संहार करो ।
जिस तरह से हो उनका वध कर, निज राज का आ उद्धार करो ॥
हा शोक है मुझ दुखियारी को, क्या तुमको याद नहीं आती ।
तुम सम तेजस्वी सुत जन कर, हो पराधीन अति दुखपाती ॥
था समय एक जब निज कर से, विप्रों को दान दिलाती थी ।
दुखियों को घर में आश्रय दे, उनका सब दुःख मिटाती थी ॥
अब कंगालों की बोली सुन घर के अन्दर छिप जाती हूं ।
देने को कौड़ी एक नहीं, मुख दिखलाते शरमाती हूं ॥
है शोक, अतिथि घर पर आकर, हो निराश वापिस फिर जाये ।
इससे ज्यादा कुछ दुख नहीं चाहती हूं हिरदय फट जाये ॥
आश्रय देती थी औरों को, अब खुद आश्रित हो रहती हूं ।
इससे जल्दी उद्धार करो, बस येही शिक्षा देती हूं ॥
अब क्षत्रि धर्म में तत्पर हो, रिपुओं को यमपुर पहुंचाओ ।
तुम वीर मातु के जाये हो बस कायरता मत दिखलाओ ॥

करो लोप मत भूमि से, अपने पितु का नाम ।
क्षत्रि धर्म पालन करो, करो युद्ध संग्राम ॥

फिर भीमार्जुन, सहदेव, नकुल, इन सबको यों समझा देना ।
तुम क्षत्री हो अस्तु रन में, बस क्षत्रीपना दिखा देना ॥
कहना क्षत्राणी के लड़के, रन में निज रक्त बहाते हैं ।
माता के दूध पान का ऋण, यों खून बहाय चुकाते हैं ॥
कर गर्भ में धारन तुम सबको, मैंने जो कष्ट उठाया है ।
उसका अब ऐवज़ देने का, उपयुक्त समय अब आया है ॥
करना दृढ़ हो कर्तव्य पालन, मेरे पय की लज्जा रखना ।
जीतेजी रिपुओं के सन्मुख, मस्तक न कभी नीचा करना ॥

नामर्दों सम बैठना, नहीं तुम्हारा धर्म ।
रन में जा मारे मरे, है ये क्षत्री कर्म ॥

क्षत्री की सन्तानें हो कर, शत्रुओं का नाश नहीं करते ।
श्वानों सम घर में पड़े पड़े, हो तेजो भ्रष्ट उदर भरते ॥
उनको जानों कुल के कलंक, पित्रों का नाम मिटाते हैं ।
ऐसे कायर डरपोक मनुज, मर अन्त नर्क में जाते हैं ॥
जबतक मैं अब युधिष्ठिर को, सिंहासन पर नहिं देखूंगी ।
और तुम लोगों को इधर उधर, नहिं खड़े हुये मैं पेखूंगी ॥
तब तक नहिं मन शीतल होगा, अस्तु पुत्रों ये काम करो ।
यदि लाज है कुछ क्षत्रीपन की, शत्रु का काम तमाम करो ॥
नहिं दुख है मुझको जुवे में, सब राज पाट छिन जाने का ।
घर साधु भेष बन में जाकर, तुम लोगों के दुख पाने का ॥
लेकिन दुख है उन बातों का, रिपुओं ने जो करवाई थीं ।
जब द्रुपद सुता घिघियाती हुई, हो विकल सभा में आई थी ॥
अपमान तुम्हारी पत्नी का, क्या तुमने सभी भुलाय दिया ।
अपने प्रण को तो याद करो, क्या उसको भी बिसराय दिया ॥
जीवित हैं वे सारे पापी, धिक्कार तुम्हारी ताकत को ।
बैठे हो इमि चुपचाप हुये, जैसे कोई [illegible] को ॥

उठो युद्ध में जायकर, करो शत्रु संहार ।
या शर शैया लाभकर, जाओ सुरपुर द्वार ॥

बस इसीलिये पाला तुमको, या तो रिपुवध करके आना ।
वरना अपना ये काला मुख, मुझको न आनकर दिखलाना ॥
तुम चारों यदि एकत्रित हो, शत्रू का नाश बिचारोगे ।
तो निश्चय है उसको जल्दी, मृत्यू के घाट उतारोगे ॥

कृष्णा के अपमान का, मन में रख कर ध्यान ।
रण की तैयारी करो, क्षत्रि धर्म पहचान ॥

फिर उस प्रिय पुत्र वधू को भी, हे केशव धीरज बंधवाना ।
कहना पुत्री इन वर्षों में, तुमने भोगे संकट नाना ॥
पर अपना धर्म नहीं छोड़ा, तुम धन्यवाद के लायक हो ।
मैं आशिष देती हूं आगे, तेरा जीवन सुखदायक हो ॥
इस समय वीर पत्नी बनकर, ये अन्तिम धर्म निभाना तुम ।
अपने पतियों को रिपुओं से, रन करने को उकसाना तुम ॥
अपनी अपमान जनक बातें, कह, उनको उत्तेजित करना ।
जिस तरह जोश आवे उनको, बस वही कार्य करती रहना ॥
तेरी बातों का असर तुरत, पतियों पर रंग जमायेगा ।
इस समय का ये कर्तव्य तेरा, आगे आनन्द दिखायेगा ॥
बाकी उनके दल वालों को, मम आशिर्वाद सुनादेना ।
कहना है क्षत्री धर्म यही, संग्राम में जान लड़ादेना ॥

क्षत्रानी निज पुत्र को, करे प्रसव यहि हेतु ।
राखे लज्जा दूध की, लड़े जाय रण खेत ॥

❁ गाना ❁

संदेश ये हमारा पुत्रों को सुना देना ।
तुम क्षत्रि होके क्षत्रीपन को न गंमादेना ॥

रखना समर में लज्जा सब मिलके मेरे पय की ।
जीतेजी शत्रुओं को ना पीठ दिखा देना ॥
क्लीबों सदृश्य रहना नहिं धर्म तुम्हारा है ।
बलकी है रणमें जाकर निज जान लड़ा देना ॥
कौरव-सभा में तुमने जो की थी प्रतिज्ञायें ।
करने की उनको पूरन मत याद भुला देना ॥
जो है तुम्हारा कर्तव तुमको बता रही हूं ।
कहिं मेरी बात को तुम हँसकर न उड़ा देना ॥
चाहते हो यदि मुझको अपना ये मुह दिखाना ।
तो नाश पहिले रिपुका तुम करके बता देना ॥

बस इतना सा संदेश मेरा, पुत्रों से कहना गिरधारी ।
जाओ अब सुःख सहित जाओ, यात्रा होवे अति शुभकारी ॥
ये सुन कुन्ती को कर प्रणाम, बाहिर आये गोपाल प्रभू ।
चढ़ रथ पर मित्रों को संग ले, चलदिये तुरत नंदलाल प्रभू ॥
होगई भेट यदुनन्दन की, श्री वीर कर्ण से आगे जा ।
"कुछ काम है तुम से" यों कहकर, निज रथ में इनको लिया बिठा ॥
उस नगर से बाहिर आते ही, एकान्त जगह दृष्टी आई ।
तब धर्म युक्त हित की बातें, बोले मुस्काकर यदुराई ॥
वीर कर्ण तुम रात दिन, करते हो सत्संग ॥
इससे कारण धर्म के, जानो सारे अंग ॥
ये बात तुम्हें मालुम होगी, तुम भी कुन्ती के बेटे हो ।
इसकी कन्यावस्था में हुये, अतः तुम सब से जेठे हो ॥
वरदान दिया था सूरज ने, उससे ही ये जन्म तुम्हारा है ।
इस समय तेरा हित करने को, मैंने एक काम विचारा है ॥
तुमको अपने संग ले चल के, उनको सब हाल सुनाऊंगा ।
अधिकार सभी कुन्ती सुतका, हे कर्ण मैं आज दिलाऊंगा ॥

महाबाहु भीम रथ के पीछे, बस खड़े हो चंवर डुलावेंगे।
अर्जुन घोड़ों की राथ थाम, हो हर्षित उन्हें चलावेंगे॥
सारे पांडव, सारे यादव, सारे पंचाल देश वाले।
हर्षित हो शीश झुकावेंगे, उत्तम उत्तम नर गुण वाले॥
धौम्य पुरोहित करेंगे, राज्यभिषेक तुम्हार।
द्रुपद सुता भी आपको, समझेगी भर्तार॥
हे वीर ये उत्तम अवसर है, बंधुओं को गले लगाओ तुम।
आनन्द से इस भूमंडल के, सम्राट् हो राज चलाओ तुम॥
है धर्म तुम्हारा जननी को, सब भांति सुःख पहुंचाने का।
ऐसा शुभकारी समय फेर, है बार बार नहिं आने का॥
श्री कर्ण को यदुपति ने कितनी, उत्तम पदवी देनी चाही।
कह दिया तुम्हें कर जोड़ेंगे, आनंदित हो पांचों भाई॥
त्रैलोक्य सुंदरी कृष्णा पर, तेरा भी हक़ हो जायेगा।
हर एक यादव और पंचाली, तव सन्मुख शीश झुकायेगा॥
पा इनकी मदद सुगमता से, राजा होगा भूमंडल का।
दे तिलक धौम्य कर देंगे तुझे, नायक सारे पांडव दल का॥
लेकिन ये धर्म-धुरीन कर्ण, इनका क्या उत्तर देता है।
हे श्रोताओं धर ध्यान सुनो, क्या उत्तम बातें कहता है॥
कहा कर्ण ने जो कही, तुमने दीनानाथ।
है वह सर्व प्रकार से, मेरे हित की बात॥
पर मैं तैयार नहीं केशव, उसको पूरी करने के लिये।
इस राज लोभ के फंदे फंस, सच्चे मग को तजने के लिये॥
दो दिन का है जीवन जग में, आखिर मृत्यू आजावेगी।
फिर भविष्य में कर्मानुसार, ये आत्मा सुख दुख पावेगी॥
इसलिये मैं रहता हूं सतर्क धर्मानुसार हो चलता हूं।
यदि अच्छा काम नहीं होता, तो बुरा भी करते डरता हूं॥

मैं कुन्ती का जेठा सुत हूं, ये बात ठीक है गिरधारी ।
पर कुन्ती ने वह किया नहीं, जो करे पुत्र संग महतारी ॥
मेरा जब जन्म हुआ माधव, तब माता ने कुछ कदर न की ।
डलवाया सरिता में मुझको, मेरे सुख दुख की खबर न ली ॥
प्रभु कृपा से अधिरथ ने मेरी, ली जान बचा पत्नी को दिया ।
आनन्दित हो कर बचपन में, मैंने उसका ही दूध पिया ॥
वे मुझे पुत्रवत् जानते हैं, मैं उन्हें मात पितु कहता हूं ।
तब धर्म छोड़ उनसे कैसे, हे प्रभु अलग हो सकता हूं ॥
रखती है मुझसे प्रेम पत्नि, मेरा भी प्रेम उसी पर है ।
मंझधार में उसे छोड़ देना, ये दुर व्यवहार सरासर है ॥

चाहे सब ब्रह्माण्ड का, मुझे राज मिल जाय ।
तो भी धर्म तजूं नहीं, कहता हूं सत भाय ॥

इसके अतिरिक्त दुर्योधन ने, मुझ पर जो दया दिखाई है ।
सब अंग देश का राज दिया, भाई सम प्रीति बढ़ाई है ॥
हर तरह से मुझे खुशी रक्खा, अब रन के समय बदल जाऊं ।
उसका अन खा तन पाला है, किस तरह कृतघ्नी कहलाऊं ॥
फिर अर्जुन के वध करने की, मैंने जो सौगंद खाई है ।
अर्जुन ने भी मेरे वध की, उस सभा में बात सुनाई है ॥
यदि मैं उनसे मिल जाऊंगा, दोनों का प्रण नस जायगा ।
दोनों निज धर्म विमुख होंगे, दोनों को पाप दबायेगा ॥
इसलिये प्रार्थना है मेरी, दोनों के प्रण का पालन हो ।
मैं रण में उसका पतन करूं अथवा बलिदान मेरा तन हो ॥
एक विनय और भी है स्वामी, इसको [illegible] सुनाना तुम ।
मेरा ये जन्म वृत्तान्त प्रभु, पांडवों को नहीं सुनाना तुम ॥
यदि धर्म राज सुन पावेंगे, मैं हूं उनका जेठा भाई ।
दे राज [illegible] देंगे, देंगे हमको [illegible] ॥

भीम रथ के पीछे, बस खड़े हो चंवर ढुलावें
घोड़ों की राथ थाम, हो हर्षित उन्हें चलावें
पांडव, सारे यादव, सारे पंचाल देश वा
हो शीश झुकावेंगे, उत्तम उत्तम नर गुण वा
धौम्य पुरोहित करेंगे, राज्यभिषेक तुम्हार ।
द्रुपद सुता भी आपको, समझेगी भर्तार ॥
ये उत्तम अवसर है, बंधुओं को गले लगाओ तु
से हम भूमंडल के, सम्राट् हो राज चलाओ तु
तुम्हारा जननी को, सब भांति सुःख पहुंचाने क
शुभकारी समय फेर, है बार बार नहिं आने क
को यदुपति ने कितनी, उत्तम पदवी देनी चा
या तुम्हें कर जोड़ेंगे, आनंदित हो पांचों भा
सुंदरी कृष्णा पर, तेरा भी हक़ हो जायेग
यादव और पंचाली, तब सन्मुख शीश झुकायेग
की मदद सुगमता से, राजा होगा भूमंडल क
क धौम्य कर देंगे तुझे, नायक सारे पांडव दल क
ये धर्म-धुरीन कर्ण, इनका क्या उत्तर देता
नाओं धर ध्यान सुनो, क्या उत्तम बातें कहता
कहा कर्ण ने जो कही, तुमने दीनानाथ ।
है वह सर्व प्रकार से, मेरे हित की बात ॥
तैयार नहीं केशव, उसको पूरी करने के लि
ज लोभ के फंदे फंस, सच्चे मग को तजने के लिये ॥
का है जीवन जग में, आख़िर मृत्यू आजावेगी ।
भविष्य में कर्मानुसार, ये आत्मा सुख दुख पावेगी ॥
मैं रहता हूं सतर्क, धर्मानुसार हो चलता हूं ।
इच्छा काम नहीं होता, तो बुरा भी करते डरता हूं ॥

मैं कुन्ती का जेठा सुत हूं, ये बात ठीक है गिरधारी ।
पर कुन्ती ने वह किया नहीं, जो करे पुत्र संग महतारी ॥
मेरा जब जन्म हुआ माधव, तब माता ने कुछ कदर न की ।
डलवाया सरिता में मुझको, मेरे सुख दुख की खबर न ली ॥
प्रभु कृपा से अधिरथ ने मेरी, ली जान बचा पत्नी को दिया ।
आनन्दित हो कर बचपन में, मैंने उसका ही दूध पिया ॥
वे मुझे पुत्रवत् जानते हैं, मैं उन्हें मात पितु कहता हूं ।
तब धर्म छोड़ उनसे कैसे, हे प्रभू अलग हो सकता हूं ॥
रखती है मुझसे प्रेम पत्नि, मेरा भी प्रेम उसी पर है ।
मंझधार में उसे छोड़ देना, ये दुर व्यवहार सरासर है ॥

चाहे सब ब्रह्माण्ड का, मुझे राज मिल जाय ।
तो भी धर्म तजूं नहीं, कहता हूं सत भाय ॥

इसके अतिरिक्त सुयोधन ने, मुझ पर जो दया दिखाई है ।
सब अंग देश का राज दिया, भाई सम प्रीति बढ़ाई है ॥
हर तरह से मुझे खुशी रक्खा, अब रन के समय बदल जाऊं ।
उसका अन्न खा तन पाला है, किस तरह कृतघ्नी कहलाऊं ॥
फिर अर्जुन के बध करने की, मैंने जो सौगंद खाई है ।
अर्जुन ने भी मेरे बध को, उस सभा में बात सुनाई है ॥
यदि मैं उनसे मिल जाऊंगा, दोनों का प्रण नस जायेगा ।
दोनों निज धर्म विमुख होंगे, दोनों को पाप दबायेगा ॥
इसलिये प्रार्थना है मेरी, दोनों के प्रण का पालन हो ।
मैं रण में उसका पतन करूं, अथवा बलिदान मेरा तन हो ॥
एक विनय और भी है स्वामी, उसको मतनाथ भुलाना तुम ।
मेरा ये जन्म वृतान्त प्रभू, पांडवों को नहीं सुनाना तुम ॥
यदि धर्म राज सुन पायेंगे, मैं हूं उनका जेठा भाई ।
वे राज एक दम तज देंगे, देदेंगे मुझको बरियाई ॥

मम प्रण है कुरु ईश को, लखकर उसकी प्रीति ।
पान्डु सुतन का राज सब, दूं भुज बल से जीत ॥
अस्तू उसको मम हाथों से, दुर्योधन निश्चय पायेगा ।
ये हुआ तो फिर पांडव कुल से, सब राज कार्य हट जायेगा ॥
पर मैं यह चाहता हूं माधव, हों जेष्ट कुन्तिसुत नरराई ।
धर्मानुसार वे चलते हैं, फिर हैं मेरे छोटे भाई ॥
उस सभा में उन्हें कुवाक्य कहे, उनका दुख मुझे सरासर है ।
अस्तू उनके हाथों मरना, सब तरह से मेरा बेहतर है ॥
जीतेंगे पांडु पुत्र पांचों, कारन वे धर्म धुरंधर हैं ।
इस ओर सुयोधन शकुनि आदि, हैं कुटिल पाप के किंकर हैं ॥
बचपन में मुझे ध्यान होता, पांचों पांडव मम भाई हैं ।
कुन्ती माता ने जन्म दिया, श्री सूर्य देव बरदाई हैं ॥
तो इनका ही होकर रहता, लेकिन अबतो लाचारी है ।
प्रण किया इधर रन करने को, यदि त्यागूं तो मम ख्वारी है ॥
अच्छा अब मुझे विदा करदो, मैं हरगिज वहां न जाऊंगा ।
तुम भी उपलव्य नगर जाओ, फिर रन में दर्शन पाऊंगा ॥

❀ गाना ❀

(तर्ज —ये तमन्ना है के अरमान न जाने पाये)

प्राण रहते तो कभी आन गमाऊंगा नहीं ।
चाहे तन जाय मगर अयश कमाऊंगा नहीं ॥
धर्म के सामने है तुच्छ राज त्रिभुवन का ।
फंस के लालच में हृदय सत से हटाऊंगा नहीं ॥
अमर तो हूं नहीं दो दिन की जिन्दगी के लिये ।
धर्म तज स्वप्न में भी पाप मे जाऊंगा नहीं ॥
नर का कर्तव्य है जो कहना पूर्ण कर देना ।
इसकी तिहूंकाल में भी याद भुलाऊंगा नहीं ॥

अपनाने में कर्ण को, विफल हुये गोपाल ।
तब उसको देकर विदा, लौटे दीन दयाल ॥
श्री हरि के पीठ मोड़ते ही, अपशगुन भयानक होने लगे ।
भूचाल आगया भूमी पर, और स्वान बेतरह रोने लगे ॥
बिन बादल वर्षा होती थी, गिरते थे जलते अंगारे ।
कहिं दावानल प्रारम्भ हुई, होगये धराश्यायी तारे ॥
धड़ धड़ की आवाज़ें आईं, बिन बिजली के नभ मंडल से ।
वायू का इतना वेग बढ़ा, उड़गई वस्तु अवनीतल से ॥
पड़ गई मंद रवि की ज्योती, छागया सब तरफ अंधियारा ।
कुछ ज्ञान दिशाओं का न रहा, होगई न्यून यमुना धारा ॥
हाथी अनिष्ट सूचक स्वर से, चिंघाड़ते थे व्याकुल होकर ।
रोते थे घोड़े खड़े खड़े, होगये सुस्त सब बल खोकर ॥
रन बाजों की आवाजें जो, कायर को मर्द बनाती थीं ।
वे आज मर्द को कायर कर, हृदयमें भय उपजाती थीं ॥
होगये सभी तेजो विहीन, आपड़ी शीश मृत्यू छाया ।
ये हाल देख सब रैयत का, डर के मारे जी घबराया ॥
कुन्ती पर इस बात का, पड़ा विशेष प्रभाव ।
देख भयानक अपशगुन, हुई बहुत बेताब ॥
सोचा यदि रन छिड़ जायेगा, होगा अनर्थ अति भयकारी ।
पल भर में छिन्न भिन्न होगी, जग की क्षत्री जाती सारी ॥
दुर्योधन का सबसे ज्यादा, है कर्ण सहायक बलवानी ।
इसके ही फक़त भरोसे पर, उस पापी ने रन की ठानी ॥
यदि कर्ण इधर आजायेगा, होगा निराश धृतराष्ट्र तनय ।
संग्राम की जड़ कट जायेगी, होवेंगे सब क्षत्री निर्भय ॥
इसलिये कर्ण के पास जाय, सब जन्म वृतान्त सुनाऊं मैं ।
कह दूं मैं तेरी माता हूं, यों कह इस ओर मिलाऊं मैं ॥

वह पूरा ज्ञानी धर्मी है, मम बात कभी नहिं टालेगा ।
इसके हटते ही दुर्योधन, तत्काल संधि कर डालेगा ॥

कुन्ती ऐसा सोच कर, गई गंग के तीर ।
नित जप करते थे जहां, कर्ण वीर मति धीर ॥

वहां जा देखा निज लड़के को, लवलीन है रवि आराधन में ।
कटि तक जल में है खड़ा हुआ, आती है मन्त्रध्वनि कानन में ॥
चुपचाप खड़ी होगई तहां, आखिर जब जाप समाप्त हुआ ।
तब लखा कर्ण ने जननी को, अनुराग हृदय में व्याप्त हुआ ॥
फिर भक्ति भाव से नमन किया, बोला माता क्यों आई हो ।
मुझको क्या आज्ञा होती है, कैसा सन्देशा लाई हो ॥

सारा जन्म वृतान्त कह, आंसुओं से भर नैन ।
हृदय लगाकर कर्ण को, बोली कुन्ती बैन ॥

मेरे लड़के होकर फिर क्यों, पांडुओं से प्रीति न रखते हो ।
कुरुपति से मित्र भाव रखकर, उसकी ही सेवा करते हो ॥
ये बात तुम्हारी ठीक नहीं, सुत इसमें पाप सरासर है ।
पितु मा को सुख पहुंचाना ही, दुनियां में सबसे बेहतर है ॥
दुष्टों ने छल के पासों से, जो राज पाट हथियाया है ।
तेरे भ्राताओं को जिसने, वन भिजवा दुख पहुंचाया है ॥
मैं चाहती हूं मेरे होकर, उस राज का झट उद्धार करो ।
रिपुओं को यमपुर भिजवा कर, राजा बन खूब विहार करो ॥
अर्जुन अरु तुम एकत्रित हो, जो चाहो वह कर सकते हो ।
ये राज कौनसी गिनती में, देवों तक का हर सकते हो ॥
तुम हो सब पुत्रों से जेठे, फिर सारे गुण की खानी हो ।
आ मिलो इधर और राज करो, तब ही मेरी मन मानी हो ॥
तुम क्षत्री के लड़के होकर, जो सूत पुत्र कहलाते हो ।
इसमें मेरा जी जलता है, क्यों नहीं असल बनजाते हो ॥

कहा कर्ण ने आपकी, बात नहीं मन्जूर ॥
ये करने से होयगी, धर्महानि भरपूर ॥

हे मात धर्म छोड़ते हुये, तुझको तो ग्लानि नहीं आई ।
अरु मुझे विमुख करने के लिये, क्यों तेरी बुद्धी ललचाई ॥
लेकिन ये सत्य जान जननी, आजन्म धर्म छोडूंगा नहीं ।
ये प्राण रहें या चले जायं, पर प्रण से मुख मोडूंगा नहीं ॥
वास्तव में क्षत्री होते भी, मैं सूत पुत्र कहलाता हूं ।
तेरे ही आचरणों से मैं, इस समय घोर दुख पाता हूं ॥
यदि तू मुझको निष्ठुर बनकर. सरिता जल में नहिं डलवाती ।
तो क्षत्री जाती में मेरी, ऐसी दुर्गति न दृष्टि आती ॥
हा क्षत्री का बालक होकर, पीया है दूध शुद्रानी का ।
हो गया शुद्र फिर किस प्रकार, अधिकार रहा क्षत्रानी का ॥
मुझको सारथि का सुत कह कर, कोई जिस समय बुलाता है ।
उस समय तेरा वह घोर कर्म, दृग के सन्मुख आजाता है ॥

पैदा होते ही यही, करती काम तमास ।
उत्तम था, होता नहीं, दुनियां में बदनाम ॥

पाला नहिं माता का कर्तव. मुझको तब क्षत्रि बनाने को ।
पर अब मतलब के समय जननि. आई है हुक्म सुनाने को ॥
मैं तो फिर भी पालन करता, लेकिन *प्रण वश लाचारी है ।
दुर्योधन का साथी बनकर, अबतो लड़ने की धारी है ॥
कौरव नरेश मेरा हर दम, आदर ही करते आये हैं ।
मेरे भुजबल के आश्रित हो. पांडुओं से बैर बढ़ाये हैं ॥

---

* कर्ण ने दुर्योधन से जो आजन्म साथ रहने का प्रण किया था उसका हाल तीसरे हिस्से में आचुका है पाठक देखलें ।

उनको इस समय निराश करूँ, हे जननी धर्म नहीं मेरा ।
निज मालिक के सन्मुख झूँठा, बनने का कर्म नहीं मेरा ॥

अपने स्वामी मित्र से, पाय सदा सत्कार ।
समय पड़े तज जातजे, जायं नर्क आगार ॥

लेकिन तेरा यहाँ पर आना, में निष्फल नहीं बनाऊँगा ।
तेरे सन्मुख सच्चे दिल से, ये प्रण करताहूँ निभाऊँगा ॥
तेरे सब पुत्रों को तजकर, केवल अर्जुन पर वार करूँ ।
मारूँ या उसके हाथ मरूँ, पर उन पर नहीं प्रहार करूँ ॥
हम में से कोई नष्ट होय, तेरे तो पाँचों बने रहें ।
यदि कर्ण मरा तो अर्जुन है, और पार्थ मरा तो कर्ण रहे ॥
इसलिए सोच तजदो जननी, घर जा सुख से आराम करो ।
हम करें हमारा प्रण पूरा, तुम वृद्ध हो जा विश्राम करो ॥

चली गई "श्रीलाल" तब, कुन्ती अपने धाम ।
इधर युधिष्ठिर के निकट, जा पहुँचे घनश्याम ॥

॥ श्री कृष्णार्पणमस्तु ॥

महाभारत ॐ पन्द्रहवां भाग

युद्ध की तैयारी

श्रीलाल

महाभारत पन्द्रहवाँ भाग

युद्ध की तैयारी

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—

महाभारत पुस्तकालय, अजमेर.

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

द्वितीयावृति २०००

विक्रमी सम्वत् १९९५
ईस्वी सन् १९३८

मूल्य
।) आने

॥ प्रार्थना ॥

॥ छन्द ॥

हे कृष्ण कृष्ण सुरा सुरेश विधेश शेष सुईश्वरं ।
तुम्हरो न ईश सु ईश सबके चर अचर व्यापक परं ॥
सिद्धेश हे भुवनेश, काटन क्लेश मम रक्षा करो ।
गोविंद दामोदर मुरारी शरण तुम्हरी चित धरो ॥
सुखधाम हे घनश्याम पूरन काम राम मुकुन्द हे ।
मद मोह कामादिक खलन का नाश कर बृजचंद हे ॥
भय अभय में शुभ अशुभ में सुख दुःख में तुम नाथ हो ।
भव सिन्धु डूबत शरण तुम्हरी कृपाकर प्रभु साथ हो ॥

मङ्गलाचरण

रक्ताम्बर धर विघ्न हर, गौरीसुत गणराज ।
करना सुफल मनोर्थ प्रभु, रखना जन की लाज ॥
सृष्टि रचन, पालन, हरन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश ।
वानी, रमा, उमा सुमिल, रक्षा करहु हमेश ॥
वन्दहुं व्यास विशाल बुधि, धर्मधुरंधर धीर ।
"महाभारत" रचना कर्ता, परम रम्य गम्भीर ॥
जासु वचन रवि जोति सम, मेटत तम अज्ञान ।
वंदहुं गुरु शुभ गुण भवन, मनुजरूप भगवान ॥

* ॐ *

नारायणं नमस्कृत्य, नरंचैव, नरोत्तमम् ।
देवी, सरस्वतीं, व्यासं ततो "जय", मुदीरयेत् ॥

कथा प्रारम्भ

सन्धी करने में विफल, हो कर श्री यदुवीर ।
आये वापिस लौट कर, पान्डु सुतों के तीर ॥

बोले मैंने हर तरह करी, बातें सन्धी हो जाने की ।
लेकिन दुर्बुद्धि सुयोधन की, इच्छा है युद्ध मचाने की ॥
इसलिये राज लेने के लिये, बस युद्ध मचाना ही होगा ।
पापी, दुष्टों का दुनिया से, अब नाम उठाना ही होगा ॥
हर तरह प्रयत्न किया इसका, ये आर्यवर्त समशान न हो ।
जिससे रक्षित है भूमि सभी, वह क्षत्रि जाति बे जान न हो ॥
विद्यायें लोप न होयँ यहां, अज्ञान अंधेरा दूर रहे ।
प्राकृतिक दृष्य आनन्द दायक, हर समय यहां भरपूर रहे ॥
लेकिन होनी कुछ और हि है, चाहता है समय पलटा-खाना ।
बस इसीसे अच्छी बातों का, उसने मतलब उल्टा जाना ॥
अब दोष नहीं हमको राजन्, सन्धा का सब बिधि यत्न किया ।
दुष्टों को सीधे मारग पर, लाने का बहुत प्रयत्न किया ॥

कुरुओं को दिखला चुके, साम, दाम, अरु भेद ।
दण्ड नीति से अन्त में, करो तुरत उच्छेद ॥

कुन्ती का भी ये ही मत है, प्रतिपालन क्षत्री धर्म करो ।
शत्रू को बध, ले राज पाट, रैयत पालन का कर्म करो ॥

सुन वचन कृष्ण के धर्मराज, आंखों में आंसू भर लाये ।
दुर्योधन की बातें सुन कर, हो दुखित हृदय में पछताये ॥
बोले जिस कुरुकुल के वधको, मैं हुआ तैयार बचाने को ।
पर धीरज सुःख गिना मैंने, जंगल में रह दुखपाने को ॥
जिसके कारण भ्राताओं को, मैंने दुख बेशुम्मार दिये ।
उनके जोशों को अनुचित कह, सब भांति उन्हें लाचार किये ॥
वह ही क्षय होना चाहता है, सारे होगये प्रयत्न वृथा ।
इस सर्व श्रेष्ठ कौरव कुल का, अब होवेगा विध्वंश यथा ॥
संग्राम न हो इसका उपाय, कुछ भी न दृष्टि में आता है ।
इसका भीषण परिणाम सोच, ये हृदय बहुत घबराता है ॥
निज कुल के वृद्धों के ऊपर, कैसे हथियार उठावेंगे ।
किस तरह उचित रस्ता तजकर, हम अनुचित मग पर जावेंगे ॥

पूज्य नरों को मार कर, करें राज उद्धार ।
ये नहिं उत्तम कर्म है, धर्म विरुध व्यवहार ॥

यों कह कर धर्म राज व्याकुल, होगये, पार्थ ने समझाया ।
ये समय नहीं दुख पाने का, कर्तव्य करने का दिन आया ॥
सोचो उन वाक्यों को मनमें, जो माता ने कहलाये हैं ।
उनको पूरा करने के दिन, हे भ्रात इस समय आये हैं ॥
है प्रजा हमारी संकट में, शत्रू नित दुख पहुँचाते हैं ।
उन बेबस दीन गरीबों पर, क्या अत्याचार दिखाते हैं ॥
यदि हम उनको न बचावेंगे, क्या उत्तर देंगे ईश्वर को ।
ये पाप लगेगा हमको ही, किस रक्खेंगे ऊंचा सिर को ॥

हमको लेना चाहते, धर्म सिद्ध अधिकार ।
फिर कैसे हो जायगा, पाप पूर्ण व्यवहार ॥

❀ गाना ❀

(तर्ज—आलस नादान हिन्दुस्तान मे तू कैसे आया)

उठिये महाराज क्षत्री धर्म का अब पालन करिये ॥टेर॥
चुप रहना ठीक न भाई, दिखलाओ रण चतुराई,
मा ने ये चाह जताई, रिपु बधना है सुखदाई,
तज के आराम रिपु के सामने बस चल कर लरिये ॥ उठिये० ॥
कौरव है दुष्ट अधर्मी, करते जाते वेशर्मी,
दिखलाओ ना तुम नर्मी, बध लायक है दुष्कर्मी,
सेना सजवाय बल दिखलाय, दुष्टो का मद हरिये ॥ उठिये० ॥
क्षत्री का है ये बाना, पहिले खल को समझाना,
माने नहि तो धमकाना, आखिर मे दंड दिलाना,
करके कर्तव्य इसही भांति, नृप भवसागर तरिये ॥ उठिये० ॥
इस समय न करी लड़ाई, और कायरता दिखलाई,
तो होगी जगत हंसाई, अति पाप लगेगा भाई,
अस्तू डरपोक पन के ख्याल चित के बाहिर धरिये ॥ उठिये० ॥

सुन वचन युधिष्ठिर ने आखिर, सब उदासीनता तज डाली ।
जी कड़ा किया आगया जोश, आंखों में झट छाई लाली ॥
फिर एक दूत को बुलवा कर, बोले सब सेना में जाओ ।
कुल मुख्य मुख्य योधाओं को, मेरी आज्ञा से लेआओ ॥
सुनते हि दूत ने फुरती से, सबको नृप आज्ञा समझाई ।
कहदिया कुन्ति सुत के समीप, एकत्रित हो जावो भाई ॥
आ पहुँचे दमभर में सारे, वह सभा मंडलाकार हुई ।
रत्नाभूषण दमदमा उठे, शस्त्रों की चमक अपार हुई ॥

बांके मनवाले गदावाले, मूंछों पर हाथ फेरते थे ।
आजानु भुजाओं पर खुश हो, मदमाती दृष्टि गेरते थे ॥
जब एकत्रित होगये सभी, बोले सहर्ष कुन्ती नंदन ।
मित्रों ! सन्धी करने के लिये, थे स्वयम् गये थे वृजचंदन ॥
दुर्योधन को सब विधि समझाया, लेकिन मेहनत बरबाद हुई ।
हित की बातें सुनने पर भी, उसकी तबियत नाशाद हुई ॥
इस कारण हम लाचार हुये, थे भीषण युद्ध मचाने को ।
दुष्टों का सारी भूमी से, बस नाम निशान मिटाने को ॥

तुम्हारी कृपा कटाक्ष से, होगी इच्छा पूर्ण ।
धर्म युद्ध में हो प्रवृत, करें शत्रु मद चूर्ण ॥

है सप्तोहिणी सात सेना, सब सात भाग में बट जावे ।
कहना है सेनप के पद पर, अब कौन कौन रक्खा जावे ॥
महाराज द्रुपद सामर्थी वीर, नृप चेकीतान, विराटेश्वर ।
बलवान शिखंडी, धृष्टद्युम्न, और भीम गदाधारी सुखकर ॥
ये सातो वीर महारथ हैं, संग्राम शास्त्र जानन हारे ।
सब शस्त्र शस्त्र विद्या में निपुण, शत्रू मन दहलावन हारे ॥
अध्यक्ष बनेगा धृष्टद्युम्न, इन सातों सेना पतियों का ।
बल विक्रम तेज वीर्य से यह, करदेगा नाश आपतियों का ॥
इन सब की देखारेख करें, अर्जुन गांडीव धनुर्धारी ।
इसके अनुसार करो जाकर, सेना सजने की तैयारी ॥
सुन सब योधा हर्षाय गये, जयकार युधिष्टिर का कहकर ।
आज्ञा देदी सजने के लिये, निज निज सेना में जा जा कर ॥

पल में हलचल मचगई, गरज उठे सब वीर ।
तैयारी करने लगे, आतुर हो रणधीर ॥

तनु त्राण बदन पर धारन कर, पांचों हथियार लगाते थे ।
फुरती से इधर उधर जाकर, निज निज वाहन सजवाते थे ॥
चिंघाड़ गजों की शुरू हुई, अगणित तुरंग हिन हिना उठे ।
पैदल सेना का शब्द हुआ, रथ के पहिये गड़ गड़ा उठे ॥
सैनिक फुरती से दौड़ दौड़, कहते थे देर न होजावे ।
जल्दी से सब सामान सजो, देखो कोई वस्तु न रहजावे ॥
इन सब आवाजों ने मिलकर, एक महा शब्द उपजाय दिया ।
तूफान वेग ने सागर में, अति गहरा शोर मचाय दिया ॥
जिस जगह शान्ति रूपा देवी, अपना अधिकार जमाये थी ।
आनन्द से सारी सेना को, निन्द्रा में असुध बनाये थी ॥
बस उसी जगह कुछ देरी में, मचगया कुलाहल बाजों का ।
कुछ भी न समझ में आता था, वह शब्द हुआ आवाजों का ॥
बस अरुणोंदय होते होते, तैयार हुई सेना सारी ।
लहराती थी सागर समान, करती थी शंख ध्वनी भारी ॥

भूप युधिष्टिर ने प्रथम, कुछ सैनिक बुलवाय ।
कृष्णा की रक्षा निमित, राखे यहां टिकाय ॥

फिर धौम्य पुरोहित ने फौरन, प्रज्वलित करी अग्नी भारी ।
मंत्रों का शुद्ध उचारन कर, रिपु नाशन आहुती डारी ॥
इस अग्निसिखा की सेना ने, दे परिक्रमा सौगन्द खाई ।
बोले, "हम अंतावस्था तक, संग्राम करेंगे नरराई ॥
जबतक इस तन में एक बूंद, शोणित बाकी रह जावेगा ।
तब तक ये हृदय शत्रु बध में, संकोच कभी न दिखावेगा" ॥
ये सब हो चुकने पर नृप ने, विप्रों से रण आज्ञा मांगी ।
उनके हित बचन श्रवण करके, हो हर्षित एक तोप दागी ॥

भगवान का मनमें नाम सुमिर, जा बैठे रथ में नरराई ।
इनके शुभ जय जय कारों की, सेना में महाध्वनी छाई ॥
हिलगया गगन मण्डल सारा, कपकपा उठी ये भूमि सभी ।
कर नमन इष्ट को सैनिक भी, होगये वाहनारूढ़ तभी ॥

चली कटक कुरुक्षेत्र को, उड़ी धूरि आकाश ।
हिली अवनि अति बोझसे,छिपा तमारि प्रकाश ॥

शुभ सगुन अनेकन होने से, सब के मन में आनन्द हुआ ।
रणके बाजों की ध्वनि सुनकर, तनमें उत्साह चौचंद हुआ ॥
बाजों की ध्वनि के साथ साथ, सब वाहन पांव उठाते थे ।
मद से गर्वित बलवान वीर, हो मस्त झूमते जाते थे ॥
सेना के अगले हिस्से में, यमराज सदृश्य दंडधारी ।
प्रति ध्वनित दिशायें करते हुये, चलरहे थे भीम गदाधारी ॥
दक्षिण दिशि अर्जुन महाबली, गांडीव शरासन हाथ लिये ।
सारथी भेष में यदुनंदन, जगदीश जगत्पति साथ लिये ॥
उस दिव्य कपिध्वज रथपर चढ़, धनु की टंकोर सुनाते हुये ।
उल्लसित भाव से चलते थे, वीरों का जोश बढ़ाते हुये ॥
थे बांई दिशि में धृष्टद्युम्न, जिनका था जन्म हुताशन से ।
कर में थे स्वामिकार्तिक सम, रथ में बैठे वीरासन से ॥
करते थे गमन सैनिकों संग, लड़ने का जोश हृदय में था ।
सब वीरों को उल्लसित देख, जयका संतोष हृदय में था ॥

शोभित पिछले भाग में, थे द्रौपद गुणवान ।
वीर शिखंडी आदि संग, चलते थे बलवान ।

सेना के मध्य सुशोभित थे, वे धर्म धुरंधर भूपाला ।
जिनका कंचन मय ऊंचा रथ, करता था चहुंदिशि उजियाला ॥

थे इनके साथ असंख्य धनुष, अनगिनती बाण प्रत्यंचायें ।
तनुत्राण अमित शस्तर अपार, लड़ने की सारी सुविधायें ॥
थे वे हिसाब दृढ़तर स्यंदन, खाने पीने की सामिग्री ।
घायल को स्वस्थ बनाने की, थी संग में औषधियां सबरी ॥
बस व्यूह बनाये चलती थी, इस तरह पान्डु सेना सारी ।
इसकी रण-नियम-बद्ध गतिलख, मनमें होता अचरज भारी ॥
जिस समय फैलती थी सेना, मानिंद समुद्र लखाती थी ।
होती था संकुचित तब लगभग, हो सहस्र ध्यान में आती थी ॥
मारू बाजे सुन सैनिक गन, मारू ही राग सुनाते थे ।
प्राणों को त्रण समान गिनकर, सब मार मार चिल्लाते थे ॥
कहते थे रिपुओं के सिर को, तीरों का लक्ष बनायेंगे ।
मस्तक उलझा कर बरछी को, हम मुंड माल पहरायेंगे ॥
हम मर्द नहीं, जो रन में जा, रिपु को न यम सदन पहुँचावें ।
उनके अंगों को काट काट, तलवार की ताकत दिखलावें ॥
बस धन्य धन्य हम लोग हुये, शुभकर्म से ये शुभ दिन आया ।
शत्रू के सन्मुख चल करके, अब करेंगे अपना मन चाया ॥

जा पहुँचे कुरुक्षेत्र में, चलते चलते वीर ।
अपने अपने शंख की, करी गूंज गम्भीर ॥

मरामती युधिष्ठिर ने फिर कर, सब जगह खूब देखी भाली ।
लखकर एक समतल भूमी को, छावनी तहां अपनी डाली ॥
सेना के चौतरफा प्रभु ने, एक गहरी खाई खुदवाई ।
और गुप्त रूप से चुनी हुई, रक्खी उसमें कुछ कटकाई ॥
कर दिये कटक के भाग कई, फिर शिविर तहां बनवाने लगे ।
भोजन, रन की सामिग्री से, सबको सब तरह सजाने लगे ॥

कर तैयारी हर तरह, पांडव सहित उछाह ।
रण छिड़ने की वीर सब, लगे देखने राह ॥

उस तरफ हस्तिनापुर से प्रभु, हो निराश जब वापिस आये ।
तब दुर्योधन ने कर्ण शकुनि, और दुःशासन को बुलवाये ॥
बोले इनके आजाने पर, हे मित्रों रन निश्चय होगा ।
तब इसमें भी सन्देह नहीं, इस क्षत्रि जाति का क्षय होगा ॥
नहिं मिली सफलता माधव को, अस्तू वे दुःख दिखाते हुये ।
पहुँच गये पांडवों के समीप, केवल मुझपर रिसियाते हुये ॥
इसलिये बात ये ठीक गिनो, रिपुओं को वे उकसावेंगे ।
हम लोगों से रन करने को, झट कटक सजा कर लावेंगे ॥
तुम भी आलस का त्याग करो, बजवादो रन की सहनाई ।
दे डालो हुक्म सैनिकों को, साजें तुरन्त सब कटकाई ॥
तुम कुरुक्षेत्र प्रस्थान करो, देखो एक भूमि युद्ध लायक ।
शत्रु नहां बाधा कर न सकें, गाड़ो खेमें आनँददायक ॥
इस पुर से ले रन भूमी तक, एक गुप्त रास्ता बनवाओ ।
भोजन की वस्तु युद्ध चीजें, तत्काल वहां पर पहुँचाओ ॥

सूरज उगने ही तुरत, करेंगे हम प्रस्थान ।
मेरी आज्ञा मानकर, साजो सब सामान ॥

कर दिया शुरू इन लोगों ने, सब काम सैन सजवाने का ।
और कुरुक्षेत्र में जगह ढूँढ़, सुन्दर खेमे गड़वाने का ॥
अरुणोदय होते ही कुरुपति, सेना की छावनी में आये ।
देखा तैयार हैं सब योधा, यह जान हृदय में हरषाये ॥
कर देख रेख, सब सेना को, ग्यारह हिस्सों में बांट दिया ।
सेनापतियों के योग्य देख, उत्तम वीरों को छांट लिया ॥

जो बने थे ग्यारह सेनापति, वे महारथी बलवानी थे ।
थे धनुर्वेद विद्या ज्ञाता, तेजस्वी गुण की खानी थे ॥
थे इनमें शामिल गुरू द्रोण, महारथी शल्य, अश्वत्थामा ।
काम्बोज भूप, सिन्धू नरेश, नृप वाह्लीक, कृप बलधामा ॥
रविनन्दन कर्ण धनुर्धारी, नृप भूरिश्रवा भीषण कर्मा ।
धुर्योधन का मामा शकुनी, यादव वंशी नृप कृतवर्मा ॥
ये ग्यारह थे सेना नायक, कुन्ती पुत्रों से लड़ने को ।
पा हुक्म दुष्ट दुर्योधन का, संग्राम में कटने मरने को ॥
इन सब की खूब प्रसंशा कर, सब विधि आदर सत्कार किया ।
उत्साह बढ़ाया सब ही का, यों अपना पक्ष तयार किया ॥

सैनाध्यक्षों को लिये, दुर्योधन नरनाथ ।
पहुँचे भीषम के भवन, जाय नवाया माथ ॥

फिर हाथ जोड़ बोले दादा, इस समय दया मुझ पर लाओ ।
मेरी इस वीर बाहिनी के, तुम मुख्य सेनपति बनजाओ ॥
बिन सेना नायक के सेना, चाहे बलवती अपर होवे ।
पर निश्चय वह शत्रू दल से, चींटी सम अपनी जां खोवे ॥
हैं आप शुक्र सम ज्ञानवान, हम लोगों के हितकारी हैं ।
इसलिये पितामह मदद करो, बस येही विनय हमारी है ॥
तेजस्वी चीजों में सूरज, तारापति ज्यों शीतलता में ।
देवों में हैं जिस तरह इन्द्र, ज्यों कुबेर धन बाहुलता में ॥
त्यों इसी तरह वीरों में तुम, दुनियां के श्रेष्ट धनुषधारी ।
यदि आप बिमुख हो जावेंगे, कुरु सेना की होगी ख्वारी ॥
तुम्हरे भुजबल से रक्षित हो, देवों तक से जय पावेंगे ।
पांडवों की क्या गिनती दादा, वे सहजहि मारे जावेंगे ॥

भीष्म बोले हे कौरवेश, तेरे आश्रय मैं रहता हूँ।
इसलिये युद्ध के नौते को, मजबूरन स्वीकृत करता हूँ॥

धर्म तत्व को सोच कर, दूंगा तेरा साथ।
करूंगा भुजबल से तुझे, पूरी तरह सनाथ॥

लेकिन मन में ये याद राख, तू इसमें सफल न होवेगा।
क्योंकि फलती नहिं पाप बेल, अन्तू आखिर में रोवेगा॥
हैं श्रीकृष्ण जिनके साथी, हे मूर्ख उन्हें किसका डर है।
हैं उनके लिये अग्नि शीतल, विष भी अमृत सम सुखकर है॥
जिनके चरणों का ध्यान लगा, ऋषि मुनि कई जन्म बिताते हैं।
तो भी उनके प्रत्यक्ष दर्शन, नहिं होते हैं थक जाते हैं॥
वे चतुराई जिन लोगों के, आ बंधे प्रेम की पाश में हैं।
हैं वेही बड़भागी भूपर, वेही बस विजय आश में हैं॥
है इसका उधर क्यों के राजन, पांडवों को धर्मात्मा जानो।
और जिधर कृष्ण हैं उसी ओर, है विजय ये सत्य बात मानो॥
है युद्ध मुझे आनँददायक, कर्त्तव्य पालन होजावेगा।
रण भूमी मिलने से मेरा, आत्मा निर्मल बन जावेगा॥

यदपि एक प्रण ध्यान दे, सुन कुरवंश भुवार।
अवसर आये भी कभी, हनूं न पान्डु कुमार॥

जितना मैं तुम्हें प्यार करता, उतना ही उनको चाहता हूं।
इसलिये उन्हें नहिं मारूंगा, येही इच्छा जतलाता हूं॥
लेकिन तुझको खुश करने को, रिपु सेना मार गिराऊंगा।
ले सुन "दस हजार रथियों को, प्रतिदिन यम सदन पठाऊंगा"॥

* गाना *

सब कुछ करूंगा पर न तू पायेगा कभी जय ।
कारण कि है उस ओर श्रीकृष्ण दयामय ॥
होती है जिस मनुष्य पै उनकी नजर महर ।
दुनियां के बन्धनो से वो होता है झट अभय ॥
उनसे विमुख होकर चहे कितना भी करे यत्न ।
होवेगा नहीं स्वप्न मे भी उसका अभ्युदय ॥
पांडव धरमधुरीन है, हैं भक्त प्रभू के ।
जीतेंगे वेही इसमे न कुछ जान तू संशय ॥
खाया है तेरा अन्न अस्तु नटना शुभ नहीं ।
शक्तीनुसार रण मे करूंगा मै शत्रु क्षय ॥

ये सुनकर भी दुर्योधन ने, इनको सेनापति नियत किया ।
ले अपनी सुदृढ़ बाहिनी को, कुरुक्षेत्र का फौरन मार्ग लिया ॥
अपशगुन हुये मगमें नाना, पर काल विवश नहिं पहिचाने ।
लेकिन भीषम उनको विलोक, अपने हृदय में अकुलाने ॥
जब पहुँचे कुरुक्षेत्र में जा, देखा खेमे हैं तने हुये ।
और बीच में कुछ उत्तम उत्तम, मणिमय मंडप हैं बने हुये ॥
इनमें सब सेना ठहराई, रखवाई चीजें खाने की ।
सारा प्रबंध कर. तैयारी, की रिपु से युद्ध मचाने की ॥

शकुनी यों कहने लगा. सुन गुरुकुल अवनेश ।
बुला दूत इक शत्रु पै, भेजो कटु संदेश ॥

दुर्योधन ने हर्षित होकर, शकुनी के सुत को बुलवाया ।
अपमान जनक दुर्वाक्यों का, कड़ुवा संदेशा भिजवाया ॥

इन तीनों के वचन सुन, कुरुपति आंखें पोंछ ।
कहन लगा वीरों वृथा, क्यों करते हो सोच ॥
जब से सृष्टी उत्पन्न हुई, तब ही से नियम चला आता ।
जिसने दुनियां में जन्म लिया, कुछ समय बाद वापिस जाता ॥
यहां के सुख थोड़े दिनों के हैं, फिर दुख का आना निश्चित है ।
ये नियम कभी त्रिकाल में भी, नहिं टलता ये मेरा मत है ॥
बस इसी नियम के माफिक हम, अति दुर्लभ सुःख उठा करके ।
अब अंत समय इस हालत को, होगये प्राप्त यहां आ करके ॥
लेकिन ये दशा हमें मित्रों, लगती है बस अति ही प्यारी ।
क्षत्री जिस गति को चाहते हैं, वो पाई हमने शुभकारी ॥
इससे बढ़कर एक और खुशी, इस समय मुझे दृष्टी आती ।
लख कर तुम तीनों को सजीव, दुख में भी हरषाती छाती ॥
तुमने जितना हो सका हमें, जय दिलवाने का यत्न किया ।
पर भाग्य के अद्भुत चक्कर ने, उसको पूरा नहिं होने दिया ॥
इसमें न तुम्हारा दोष तनिक, होनी नहिं मेटी जा सकती ।
काल को जाने क्या बात होय, ये नहीं समझ में आ सकती ॥
अस्तू मेरी मृत्यु का, करो न ज़रा मलाल ।
मरते ही हम जायंगे, स्वर्ग लोक तत्काल ॥
यों कहते कहते पीड़ा से, हो उठे विकल अति कुरुराई ।
लख महाराजा की यद हालत, बोला गुरुसुत अति रिसियाई ॥
५.८ वे पांचव पांडव गन, अति नीच और अन्यायी हैं ।
६ पद पर हम सब लोगों के, संग कीन्ही बहुत बुराई है ॥
न अधर्मियों ने भीष्म, द्रोण, और कर्ण को छल से मारा है ।
फिर तुमको भी दुर्नीती के, द्वारा यहां पर संहारा है ॥
जितना दुख हुआ नहीं मुझको, निज पिता के मारे जाने पर ।
जितना इस समय हो रहा है, तुम्हरी बद तर हालत लखकर ॥

बढ़ता आता है मुझे, महा भयंकर क्रोध।
करूंगा निश्चय बैर का, मैं आजहि परिशोध।
हरि भजन कीर्तन धर्म कर्म, जो कुछ मैंने अब तलक किया।
और श्रद्धा माफिक जीवन में, जितना भी मैंने दान दिया॥
इस समय प्रतिज्ञा करता हूँ, उन सब को साक्षि बना करके।
कि आजहि सब अन्यायों का, मैं रहूंगा बदला ले करके॥
ये करने ही से मुझे, होगा नृप आराम।
अस्तु हुक्म दो ताकि मैं, पूर्ण करूं निज काम॥
अश्वस्थामा के बचनों को, कर श्रवण सुयोधन हरषाया।
और कृपाचार्य जी के हाथों, तत्कालहि पानी मंगवाया॥
फिर किया इसे अंतिम सेनप, और कहा वीर अब जाओ तुम।
जिस तरह बने उन दुष्टों से, अपना सब बैर चुकाओ तुम॥
इससे हर्षित हो गुरुसुत ने, कुरुपति को हृदय लगाय लिया।
और भीषण सिंहनाद करके, सारी दिशाओं को कंपा दिया॥
इसके उपरान्त वीर तीनों, ले विदा तुरत ही उठ धाये।
चढ़ निज निज रथ पर घोड़ों को, पांडवों की जानिब दौड़ाये॥
थी कृष्ण पक्ष की रात्री ये, छारहा था चहुँदिशि अंधियारा।
कुछ भी नहिं दृष्टी आता था, बिल्कुल निस्तब्ध था मग सारा॥
चलते चलते ये वीर सभी, पांडवों की सेना के ढिंग आ।
बिन शब्द किये खामोशी से, उतरे रथ से मन में हरषा॥
सन्नाटा था कटक में, करते थे सब सैन।
अश्वस्थामा देख ये, कहनलगा मृदु बैन॥
हे कृपाचार्य हे कृतवर्मा, मैं तो डेरों में जाता हूं।
और काल सदृष्य भ्रमण करके, सब को यमलोक पठाता हूँ॥
तुम दोनों वीर द्वार पर रह, अपना बाहू बल दिखलाना।
जो इधर से भगता दृष्टि पड़े, बध उसे भूमि पर पौढ़ाना॥

इतना कहकर अश्वस्थामा, तलवार हाथ में लिये हुये।
घुसगया तुरत कटकाई में, अति भीषण आकृति किये हुये॥
सब से पहिले दुष्ट ये, धाया उसही ओर।
रहता था अति सुःख से, धृष्टद्युम्न जिस ठौर॥
इसने डेरे में आते ही, क्या देखा सुन्दर सैया पर।
सोरहा है द्रौपद का लड़का, थकजाने से वेसुध होकर॥
फूलों की अगणित मालायें, उसके चहुँ ओर लखाती हैं।
और हवा के झोके से चहुँदिशि, उत्तम खुशबू फैलाती हैं॥
लख पिता के घातक को सन्मुख, गुरु पुत्र हुआ क्रोधित भारी।
और दांत किटकिटा एक लात, उस सोते योधा के मारी॥
जैसे ही वो चैतन्य हुआ, इसने बालों को पकड़ लिया।
दे धक्का पूरी ताकत से, उस वीर को भू पर गिरा दिया॥
घोर नींद के एक दम, होजाने से भंग।
शिथिल हो रहे थे सकल, धृष्टद्युम्न के अंग॥
फिर एक साथ अपने तनपर, आक्रमण देख वे घबराये।
पर इससे अश्वस्थामा के, पंजे से निकल नहीं पाये॥
अस्तू इसको भूपर गिराय, गुरुपुत्र जोर दिखलाने लगा।
लातें और घूंसे मार, मार, वे हद पीड़ा पहुँचाने लगा॥
लख द्रोण पुत्र का क्रूर कर्म, ये भी गुस्से से लाल हुआ।
लेकिन वे बस हो जाने से, इसके चित मांहि मलाल हुआ॥
कुछ और तो करते बना नहीं, केवल अपने नाखूनों से।
इस खल के तनको खुरच खुरच, कर दिया खूब तर खूनों से॥
पर आखिर में जब ये देखा, ये दुष्ट बाज नहिं आवेगा।
पशुओं की तरह मेरा जीले, कर ही ये यहां से जावेगा॥
तब बोले पंचालेश तनय, गुरु सुत मुझको यों मत मारो।
हथियार कोई पैना लाकर, मेरे जीवन को संहारो॥

शस्त्र चोट से वीर जो, खोता है निज प्रान ।
जाकर सीधा स्वर्ग में, पाता सुःख महान ॥
सुन धृष्टद्युम्न के बचनों को, आचार्य पुत्र फरमाने लगा ।
रे कुलांगार तेरे ऊपर, मैं क्यों हथियार चलाने लगा ॥
निरअस्त्र अवस्था में पितु का, जी हरने वाले अन्यायी ।
तू कभी स्वर्ग के योग्य नहीं, पावेगा नर्क हिं दुखदाई ॥
इतना कह और लगाने लगा, ये पूरी ताकत से लातें ।
जिससे तत्कालहि प्राण तजे, उस वीर ने खा खा आघातें ॥
कर श्रवन द्रौपदी भ्राता का, चिल्लाना अंतावस्था का ।
एक दम पलटा खागया दृष्य, डेरों की सकल व्यवस्था का ॥
सारे योधागन जाग उठे, और लेले धनुष बान धाये ।
अश्वत्थामा के ढिंग आकर, एक साथ अमित शर बरसाये ॥
पर गुरु सुत था अतिही प्रवीण, शारंग से बान चलाने में ।
अस्तू उसने कुछ देर न की, इन सबको मार गिराने में ॥
फिर निज कर में तलवार धार, ये चहुँदिशि फिरने फिराने लगा ।
निद्रित व अध जगे वीरों के, भूमी पर शीश गिराने लगा ॥
द्रौण पुत्र का इस समय, था स्वरूप विक्राल ।
खड्ग हाथ में था उठा, खूं से था तन लाल ॥
ये लख पांडव दल वालों ने, इसको सच मुच निश्चर जाना ।
अस्तू वहां से चल देने को, सबने अपने चित में ठाना ॥
आखिर ये सब भागते हुये, ज्यों ही दरवाजे पर आये ।
त्यों ही कृतवर्मा और कृप ने, बध इन्हें यमसदन पहुँचाये ॥
उस तरफ द्रौपदी के पांचो, पुत्रों ने जब ये शोर सुना ।
ले धनुष बान दौड़े फौरन, गुस्से से इनका हृदय भुना ॥
और ढिंग आ अश्वत्थामा पर, अति पैने तीर चलाने लगे ।
पर बश न चला उलटे घायल, होकर ये वापिस जाने लगे ॥

लेकिन गुरुसुत ने घेर इन्हें, निर्दयता से संहार किया ।
फिर आगे जाय शिखंडी का, तलवार से फौरन प्राण लिया ॥
गज अश्वों ने श्रवण कर, कोलाहल अति घोर ।
डर के मारे एक दम, डाले बंधन तोर ॥
और अति फुरती से डेरों में, वे इत उत दौड़ लगाने लगे ।
इनके पांवों से दब दब कर, अगणित नर जान गमाने लगे ॥
यों पांच चार घंटों में ही, होगया तबाह कटक सारा ।
मानो कर मदद गुरु सुत की, मृत्यू ने सबको संहारा ॥
कृतवर्मा को इस समय, आया एक बिचार ।
डेरों में अग्नी लगा, करदें सबकी छार ॥
ये सोच आग सुलगा जल्दी, इसने सब तरफ लगाय दई ।
इस पावक को वायू ने भी, चल जल्द मदद पहुँचाय दई ॥
होगया अग्निमय शिवर तुरत, सब बचे हुये बेजान हुये ।
इस प्रकार से इन दुष्टों के, पूरे दिल के अरमान हुये ॥
श्री कृष्णचन्द्र के कौशल से, सात्यकी और पांचो भाई ।
जीवित रहगये और बाकी, सबने निज देही बिसराई ॥
प्रातकाल से प्रथम ही, ये तीनों हरषाय ।
दुर्योधन ढिंग आगये, अपने रथ दौड़ाय ॥
क्या लखा अचेत पड़े हैं नृप, खूं धार बदन से जारी है ।
आरहे स्वांस धीमे धीमे, और मरने की तैयारी है ॥
र गीदड़ स्वान स्यार आदिक, घेरा डाले हैं खड़े हुये ।
रन कुल के महाराजा का, आमिष खाने को अड़े हुये ॥
चपि राजा का अन्त समय, अब बिल्कुल पास लखाता है ।
ह रहे हैं अंग शिथिल सारे, और हिला जुला नहीं जाता है ॥
तोभी वे किसी तरह अपने, हृदय को धीर बंधा करके ।
कर रहे निवारण पशुओं का, निज सीधा हाथ उठा करके ॥

देख भूप के हाल को, हुये ये बहुत उदास ।
आंसू ढरकाते हुये, आये इनके पास ॥
कुछ देर बाद अश्वत्थामा, बोला हे कौरव कुलराई ।
यदि प्राण बदन में बाकी हैं, तो सुनो बात एक चित लाई ॥
हमने इस निशि में शत्रु कटक, जो बचा था सब संहारा है ।
पंचाली के सब पुत्रों को, मय धृष्टद्युम्न के मारा है ॥
इस समय बचे जीवित केवल, अर्जुन आदिक पांचों भाई ।
सात्यकी और गिरधारी सहित, बाकी सब ने देह बिसराई ॥
यदि ये भी सातों मिलजाते, तो इनका भी जी हरलेता ।
और आजहि महाराजा तुमको, मैं बिना शत्रु के करदेता ॥
पर मालुम होता है सब को, ले महा चतुर वो बनवारी ।
छिपगया है किसी जगह जाकर, पाकर मुझसे दहशत भारी ॥
पर फिक्र नहीं अन्यायों का, मैंने ऐवज भरपूर लिया ।
बस आज हो रही खुशी मुझे, दुख रंज शोक सब दूर किया ॥
ये सुनते ही धुर्योधन के, तन में कुछ चेतनता आई ।
और मृत्यु समय पर भी उसके, चहरे पर मुस्काहट छाई ॥
धीमे धीमे स्वर से बोला, हे वीर खूब ही काम किया ।
मरती बिरियां ये सुखदायक, बातें सुनाय आराम दिया ।
अब मिलूंगा तुम से सुरपुर में, इस समय न बोला जाता है ।
लो धन्यवाद अब दुर्योधन, तन तजकर स्वर्ग सिधाता है ॥
इतना कह कुरुराज ने, छोड़दिये निज प्राण ।
तीनों वीरों को हुआ, ये लख दुःख महान ॥
आखिर भूपति को हृदय से, वे बारंबार लगा करके ।
पांडवों के डर से चले तुरत, निज निज स्यंदन दौड़ा करके ॥
हस्तिनापुर पहुँचे कृपाचार्य, कृतवर्मा द्वारावति धाया ।
और व्यासदेव के आश्रम में, गुरुसुत ने निज को पहुँचाया ॥

धृष्टद्युम्न का सारथी, था एक चतुर महान ।
किसी तरह इस कस्लसे, भागा लेकर प्रान ॥
और प्रातकाल के होते ही, वो इत उत चक्कर खाने लगा ।
आतुरता से श्रीकृष्ण सहित, पांडवों का पता लगाने लगा ॥
इतने में वन में से आता, इसको कपिध्वजरथ दृष्टि पड़ा ।
ये लख बस हाय हाय करता, ये घबरा कर उस ओर बढ़ा ॥
पांडु सुतों से कहदिया, जाकर सारा हाल ।
सुनते ही ये सुधि भुला, गिरे भूमि तत्काल ॥
कर इन्हें होश में किसी तरह, ले आये तहां गिरधर झटसे ।
जहां दैवयोग से एक शिविर, रहगया था बाकी जलने से ॥
यहां आते ही पांचों भाई, हो व्याकुल रुदन मचाने लगे ।
सब से ज्यादा श्री धर्मराज, अपने मन में दुख पाने लगे ॥
इतने में आई द्रुपद सुता, अकुलाती रोती चिल्लाती ।
लेती पांचों पुत्रों का नाम, और बार बार धुनती छाती ॥
आते ही इनके निकट, गिरी मूर्छा खाय ।
होश हुआ जिस समयतो, निकली मुख से हाय ॥
फिर धर्मराज से कहने लगी, मेरे प्रिय भाई बलवानी ।
और पांच वीर सुत दिनकर सम, छटवां अभिमन्यू सुखदानी ॥
इन सबको यम के अर्पण कर, पालिया राज तुमने भारी ।
होगई आपकी आज्ञा में, सह सागर बसुंधरा सारी ॥
पर जब से मैंने सुना है ये, अश्वत्थामा ने यहां आकर ।
निद्रा में बेसुध पुत्रों को, बध, पठा दिया यम के घर पर ॥
तब से उनकी दुख अग्नि मुझे, बस भस्मीभूत बनाती है ।
उस दुष्ट अधर्मी गुरुसुत पर, बेहद रिस बढ़ती आती है ॥
अस्तू जब तक उस पापी का, संहार किया नहिं जायेगा ।
तब तक महाराजा कभी नहीं, ये हृदय शान्ती पायेगा ॥

बस धनुष बान धारन करके, झट उस खल के पीछे धाओ ।
और जैसे भी होसके उसे, बध करके यमपुर पहुँचाओ ॥
यदि वो पापी मारा न गया, मैं कभी न भोजन खाऊंगी ।
इस महाशोक में घुल घुलकर, अपने भी प्राण गमाऊंगी ॥

धर्मराज अति दुखित थे, अस्तु न दिया जवाब ।
पे लखकर द्रौपद सुता, हुई बहुत बेताब ॥

और आकर भोमसेन के ढिंग, बोली जलधार बहा करके ।
बिन तुम्हरे और नहीं कोई, जो मम दुख मेटे जा करके ॥
जिस तरह आपने जंगल में, जयद्रथ से मुझे बचाया था ।
फिर पुर विराट में कीचक बध, मेरा सब शोक घटाया था ॥
बस इसी तरह उसको संहार, पुत्रों का बदला ले डालो ।
तुम ही हो अतुलित बलशाली, इससे मेरा संकट टालो ॥

❀ गाना ❀

धरूं मै धीरज हे ईश क्योंकर, मिला है कैसा हा दुःख भारी ।
सिधारे पांचो हि पुत्र इकदम, करी है किस्मत ने कैसी ख्वारी ॥
लिया है बस जन्म मैने जबसे, मिला नहीं पल भी सुःखतबसे ।
ये दुःख सहते वो दुःख सहते, फिकर मे बीती है आयुसारी ॥
हैं पांच पति सब गुणो की खानी, समर की विद्या है पूर्ण जानी ।
सिवाय इनके है वे भी रक्षक, कि जो कहाते है वृजविहारी ॥
ऐसे उत्तम जनों के होते, भी मेरे पांचों सुतो को सोते ।
सिधारा वो पापी प्राण लेके, लगा है दिल पर ये जख्मकारी ॥
अस्तू सिधावो हे प्राण प्रीतम, लगादो खल को ठिकाने इकदम ।
तभी मिटेगा हृदय से ये गम, मरेगा जब वो अधर्माचारी ॥

द्रुपद सुता का रुदन सुन, गरज उठा वो वीर ।
कहा प्रिये धीरज धरो, बनो न अधिक अधीर ॥

मैं इसी कुकर्मी गुरुसुत को, यमपुर की ओर पठा देता ।
पदला लेकर प्रिय पुत्रों का, तुम्हरा सब शोक मिटा देता ॥
लेकिन क्या करूं विप्र है वो, यदि मुझ से मारा जावेगा ।
तो ब्रह्म हत्या का अति भीषण, पातक आ मुझे दबावेगा ॥
इसलिये द्रौपदी धीर धरो, अपने चित को मत कलपाओ ।
होते हैं विप्र अवध्य सदा, ये जान हृदय को समझाओ ॥

द्रुपद सुता कहने लगी, अच्छा हरो न जान ।
लेकिन इक अरमान तो, पूरा करो सुजान ॥

आजन्म से ही उसके सिरपर, एक मणि है बहुत प्रभावाली ।
उसको ही बस ले आओ तुम, खुश हो जावेगी पंचाली ॥
ये सुन हरषाये भीमसेन, सारथी नकुल को बना लिया ।
गुरुसुत से मणि लेने के लिये, स्यंदन पर चढ़कर गमन किया ॥
इस समय विचारा भगवन ने, अश्वत्थामा है धनुधारी ।
श्री भीम के इकले जाने से, संभव है कुछ होवे ख्वारी ॥
इसलिये मदद करने के लिये, अर्जुन को भी जाना चहिये ।
जिस तरह बने उस पापी से, वो सुंदर मणि लाना चहिये ॥

ये विचार भगवान ने, स्यंदन लिया सजाय ।
चले पिछाड़ी भीम के, अर्जुन को बैठाय ॥

चलते चलते ये दोनों रथ, श्री व्यास के आश्रम में आये ।
क्या देखा ऋषियों से घिरकर, बैठे हैं गुरुसुत मुरझाये ॥
[illegible]वतेहि सुतों के घालक को, गरजे बलवीर गदाधारी ।
[illegible] झट उसके सन्मुख जाकर, कीन्हीं लड़ने की तैयारी ॥
जब अश्वत्थामा ने देखा, बलवान वृकोदर आता है ।
और उसके पीछे कपिध्वज रथ, हरि अर्जुन सहित लखाता है ॥
तब दहशत खा सोचने लगा, ये प्राण अब निश्चय जावेंगे ।
ये दोनों वीर मुझे पल में, भूमी पर पर तुरत सुलावेंगे ॥

नहिं है तनुत्राण मेरे तन पर, धनु और तरकस भी पास नहीं ।
ये ऋषि मुनि मुझे बचा लेंगे, इसकी भी बिलकुल आस नहीं ॥
इतने में आया इसे, ब्रह्म अस्त्र का ध्यान ।
सोचा बस येही फकत, रख लेगा मम जान ॥
ये विचार अश्वत्थामा ने, एक बड़ा सा तिनका उठा लिया ।
ब्रह्मास्त्र मन्त्र से मंत्रित कर, इस प्रकार कहना शुरू किया ॥
किस लिये यहां पर आये हो, हे भीम हे अर्जुन गिरधारी ।
क्या तुमको भी नहिं लगती है, अपनी अपनी जानें प्यारी ॥
जिस तरह रात में उन सबको, मैंने यम धाम पठाया है ।
बस उसी तरह तुम भी जाओ, तुम्हारा भि समय नियराया है ॥
यह कहकर अश्वत्थामा ने, उस तिनके को कर में धारा ।
"पांडवों से रहित भूमि होवे", ये दारुण फिकरा उच्चारा ॥
फिर छोड़ दिया वायू में उसे, छुटतेहि गगन थराय गया ।
कपकपा उठी धरती सारी, एक गुबार रविपर छाय गया ॥
अर्जुन ने भी शीघ्र ही, ब्रह्म अस्त्र प्रगटाय ।
छोड़ दिया गरमाय कर, अपना धनुष चढ़ाय ॥
भिड़गये परस्पर दोनों शर, मचगया कुलाहल त्रिभुवन में ।
चहुँदिशि में अगनी फैल गई, अति भय उपजा सबके मन में ॥
ये लखते ही आतुर होकर, आये तहां व्यास मुनी ज्ञानी ।
और कहन लगे तुम दोनों ने, क्यों जग के नाशन की ठानी ॥
तुम से पहिले होगये यहां, सैकड़ों महारथि धनुधारी ।
पर उन्होंने जग में कभी नहीं, छोड़ा ब्रह्मात्र भयंकारी ॥
फिर तुमने क्यों हानी कारक, ऐसे साहस का काम किया ।
तुम दोनों ही अपराधी हो, दोनों ने सबको दुखःदिया ॥
अस्तु शीघ्र लौटाय लो, अपने अपने बान ।
वरना इस ब्रह्मांड की, होनी हानि महान ॥

ये सुनते ही अर्जुन ने तो, अपने शर को लौटाय लिया।
पर लौट सका नहिं गुरुसुत से, गो उसने बहुत प्रयत्न किया॥
इसका था यही सबब इस ने, निद्रित पुरुषों को मारा था।
इस महा भयंकर पातक से, इसने निज तेज बिसारा था॥
लौटा सका न तीर जब, तब ये हुआ उदास।
कहन लगा अति नम्र हो, सुनो व्यास गुणरास॥
कल निशि को कुकर्म करने से, मैंने सब तेज गमाया है।
बस इसीलिये ये ब्रह्मअस्त्र, मुझसे न लौट ने पाया है॥
अब नहीं रहूँगा यहां पर मैं, जंगल में तुरत सिधाऊंगा।
कर ईश भजन निज जीवन के, अंतिम दिन वहीं बिताऊंगा॥
शर तो फिर सकता नहीं मगर, पांडवों की जान बचाता हूँ।
और उत्तरा के गर्भस्थ पुत्र, पर इसको शीघ्र चलाता हूँ॥
श्रीकृष्ण ने बात ये, मान लई तत्काल।
चुप रहकर कुछ देर फिर, बोले दीन दयाल॥
तूने जीवन में कई बार, हे मूरख पाप कमाया है।
अब अन्त में इस बालक को बध, सिर पर अति बोझ बढ़ाया है॥
इसलिये मणी देकर हमको, जा द्रौण पुत्र बनमें जा तू।
जीतेजी दुनियां वालों को, निज काला मुंह मत दिखला तू॥
ये वच हो अश्वत्थामा ने, झट अपनी मणी निकाल दई।
और व्यासदेव को शीश झुका, फौरन हिमगिर की राह लई॥
इस तरह मणा ले भीमार्जुन, वापिस निज डेरां में आये।
लख कुशल पूर्वक इन सब को, श्री धर्मराज अति हरषाये॥
कृष्णा भी मणि देख कर, गई बहुत पुलकाय।
धर्मराज के मुकुट पर, दीन्हीं उसे लगाय॥
इस समय एक आश्चर्य हुआ, जिस वक्त पार्थ और बनवारी।
गुरु के सुत अश्वत्थामा से, ले आये थे मणि द्युतिकारी॥

जैसे ही ये डेरों में आ, उतरे नीचे कपिध्वज रथ से ।
त्योंही वह बज्जर सरिस कड़ा, स्यंदन होगया भस्म झट से ॥
पांडवों ने जब हरि से पूछा, इसके जल जाने का कारन ।
तब हृदय में कुछ सुस्ता कर, यों कहन लगे जग के तारन ॥
श्री भीष्म, द्रोण और कर्णआदि, वीरों के दिव्य शरों द्वारा ।
होगया था दग्ध कभी का ये, सुन्दर कपिध्वज स्यंदन सारा ॥
लेकिन हमने निज शक्ती से, इसको अब तलक चलाया है ।
अब युद्ध होगया पूर्ण अस्तु, सब प्रभाव मैंने हटाया है ॥
वचन श्रवण कर कृष्ण के, सबको हुआ अनन्द ।
शीश झुका कहने लगे, जय जन सुखद मुकुंद ॥
इस प्रकार पूरी हुई, महा भयङ्कर रार ।
तब उदास हो धर्म सुत, करने लगे विचार ॥
बोले, अब किसके हाथों ये, दारुण संदेश भेजा जावे ।
है कौन जो धृतराष्ट्र पै जा, उनको सब बातें बतलावे ॥
डर है, रन का वृत्तान्त सुनकर, यदि कुपति होगई गंधारी ।
और उसने यदि कुछ शाप दिया, तो होगी हम सब को ख्वारी ॥
इतनी महनत से प्राप्त करी, ये जय निष्फल हो जावेगी ।
हे कृष्ण कहो तुमही कैसे, ये घोर विपति टलपावेगी ॥
बोले नटवर धीरज रक्खो, हम ही हस्तिनापुर जावेंगे ।
कर कुछ भी यत्न तुम्हें तो हम, उसके गुस्से से बचावेंगे ॥
यों कह दीनानाथ प्रभु, पहुँचे पुर में जाय ।
संक्षेप से भूप को, दिया हाल बतलाय ॥
फिर कहा तुम्हारे पुत्रों ने, सन्मुख लड़ प्राण गमाये हैं ।
इससे निश्चय ही वे सारे, सीधे सुरलोक सिधाये हैं ॥
इसमें न दोष पांडवों का है, ये तुम्हरे सुत अत्याचारी ।
उन धर्म धुरीनों को हरदम, देते हि रहे संकट भारी ॥

गो मैंने सभा मांहि आकर, उन सबको बहु विधि समझाया।
लेकिन भावी के वश होकर, नहिं कीन्हा मेरा मनचाया॥
आखिर ये घटना घटी, हुये सभी बेजान।
होता है महाराज बस, होनहार बलवान॥
धर धीरज अपने पुत्रों का, अब ध्यान छोड़दो नरराई।
जिस जिसने जग में जन्म लिया, निश्चय निज देही बिसराई॥
निज पिता सरिस पालत तुम्हरा, करने को पांडव तत्पर हैं।
क्योंकि आजन्म से ही वे सब, ज्ञानी और धर्म धुरंधर हैं॥
यह कह कर श्रीकृष्णने, किया तुरत प्रस्थान।
धृतराष्ट्र ने खबर सुन, पाया दुःख महान॥
गंधारी और कुन्ती मां भी, सुनते ही अश्रु बहाने लगी।
श्रीमान विदुर की तबियत भी, बस बुरी तरह घबराने लगी॥
आखिर सबने धीरज धरकर, झट कुरुक्षेत्र प्रस्थान किया।
कुरुओं की सब नारियों को भी, अनगिनत रथों पर चढ़ा लिया॥
पाजारों से जब जाने लगी, अति शोक ग्रसित ये ललनायें।
तब रैयत भी दुख पा दृग से, लगगई बहाने धारायें॥
कुरुक्षेत्र में आगये, जब ये सब नर नार।
तब तो इनके दुःख का, रहा न पारा वार॥
कोसों तक ये रण की भूमी, थी पटी हुई लहाशों द्वारा।
छोटी मोटी सरिता समान, बहती थी शोणित की धारा॥
ी रहे थे हिंसक पशु रुधिर, कौवे अति शोर मचाते थे।
ते लोथों को फाड़ फाड़, हड्डी और मांस चबाते थे।
प्रिय पती पुत्र भ्राताओं की, ऐसी खराब हालत लखकर।
स्त्रियां रही नहिं आपे में, गिरगई भूमी पै खा चक्कर॥
धृतराष्ट्र ने इस समय, संजय को बुलवाय।
पूछा युद्ध वृतान्त सब, उससे अति दुख पाय॥

सुनतेहि वचन महाराजा के, संजय ने हाल कहा सारा ।
जिस तरह पांडवों ने मिलकर, कौरव वीरों को संहारा ॥
जब नृप को ये मालूम हुआ, इकलेहि भीम ने बल दिखला ।
मेरे सौ के सौ पुत्रों को, बधकर भूमीपर दिया सुला ॥
तब तो इसको अति क्रोध हुआ, पर उसको मन में दबा लिया ।
और भीम कहां है, बार बार, बस यही पूछना शुरू किया ॥

ताड़ गये नटवर तुरत, इसके मन को बात ।
करना चाहता वृद्ध ये, गुस्से से प्रतिघात ॥

इसलिये भीम के ही समान, लोहे का पुतला बनवा कर ।
रक्खा इस बुड्डे के आगे, कुछ देर बाद प्रभु ने लाकर ॥
नृप धृतराष्ट्र की गुस्से से, बुद्धी थी नहीं ठिकाने पर ।
किस तरह भीम का प्राण हरूं, सब ध्यान था इसी निशाने पर ॥
इसलिये स्वेष में आ करके, ये उस पुतले से लिपट गया ।
और उसेहि असली भीमसमझ, बल सहित दबाना शुरू किया ॥
गो सौ वर्षों से अधिक उम्र, अंधे की होने आई थी ।
लेकिन अब भी अद्भुत शक्ती, तन में देती दिखलाई थी ॥
अस्तू ज्योंही दाबा इसने, प्रतिमा को दांत किटकिटा कर ।
त्योंही वह बज्र सरिस मूरति, गिर पड़ी भंग हो भूमी पर ॥
इसके भी उर में चोट लगी, और मुख से खून निकल आया ।
जिससे ये ईर्षालू बुड्ढा, सुधि खो गिरता दृष्टी आया ॥
कुछ देर बाद जब होश हुआ, तब भीम भीम चिल्लाने लगा ।
मस्तक पर दोनों हाथ मार, दृग से जलधार बहाने लगा ॥

इसकी हालत देखकर, नँद नंदन गोपाल ।
सन्मुख आये और झट, बता दिया सब हाल ॥

फिर बोले हे नृप धृतराष्ट्र, तू ने सब नीती जानी है ।
व्यवहार नीति, सद्धर्म नीति, और राज नीति पहचानी है ॥

तो भी तूने श्री भीष्म विदुर, और गुरु का कहना नहीं किया।
निज अत्याचारी पुत्रों को, रण से नहिं रोका, लड़ने दिया ॥
इसलिये तुही अपराधी है, तेरेहि सबब से प्रिय भारत।
खोकर अपने बलवानी सुत, होगया आज बिल्कुल गारत ॥
इतना करवा कर भी तेरे, चित में नहिं तनिक विचार हुआ।
अब भी बलवीर वृकोदर को बधने के लिये तयार हुआ ॥
क्या इसका जीवन हरने से, तेरे सुत जीवित होजाते।
अब तो संभलो महाराजा तुम, क्यों निज मुख काला करवाते ॥

गाना (तर्ज–सोरठा)

अब तो सोचो भूप वृथा मत पाप कमाओरे ॥
भीष्म विदुर ने कहा था तुमको, पुत्रन को समझाओरे।
हरी भरी भारत भूमी को नृप मत हीन बनाओरे ॥
किया नहीं उनका कहना तब अब फिर क्यों पछताओरे।
बोया था जैसा कि वृक्ष तेंने वैसा ही फल पाओरे ॥
बीत गई सोगई मगर नृप अब तो चित समझाओरे।
अन्तिम दिन अपने जीवन के हरि के हेतु लगाओरे ॥

गंधारी ने भी सुना, रण का जब सब हाल।
तब इसकी भी क्रोध से, भृकुटी हुई कराल ॥
था गुस्सा सारा नटवर पर, सोचा इसने ही चाल बता।
पांडवों के द्वारा मम सुत के, वीरों को यमपुर दिया पठा ॥
दि ये छल कपट नहीं करता, दुर्योधन निश्चय जय पाता।
१ काहे को हम लोगों के, यह दिवस देखने में आता ॥
कर ये विचार गंधारी ने, श्री गिरधारी को श्राप दिया।
कि पावेगा तू उसका फल, जो कुछ कि यहां अनर्थ किया ॥
यानी विध्वंस कराया है, जैसे तैंने मेरे कुल का।
बस उसी तरह सम्पूर्ण नाश, हो जावेगा तेरे कुल का ॥

गंधारी के शाप को, सुनकर दीनानाथ ।
मुसका कर चुप हो रहे, कही न कुछ भी बात ॥
इसके उपरान्त युधिष्ठिर ने, संजय को निकट बुला करके ।
बोले वीरों की दहन क्रिया, की सब चीजें लाओ जाके ॥
ये सुनते ही इसने अगणित, दूतों को पुर में भिजवाया ।
और मृतक संस्कारों का सब, सामान तुरत ही मंगवाया ॥
इसके उपरान्त नारि नर सब, रोते रण भूमी में आये ।
और मरे हुये सब वीरों को, तत्काल इकट्ठे करवाये ॥
कुछ देर बाद होकर तयार, अनगिनत चितायें जलने लगीं ।
होगईं सती पत्नियां कई, कई मातायें तड़फने लगीं ॥
यहां कीबिधिसम्पूर्णकर, रोते रोते वीर ।
जा पहुँचे कुछ देर में, गंगा जी के तीर ॥
और तर्पण करने लगे सभी, इससमय कुन्ति अतिबिलखाई ।
आंखों से अश्रु बहाती हुई, श्री धर्मराज के ढिंग आई ॥
और बोली हे सुत, अर्जुन ने, जिस धनुधारी को मारा है ।
और जिसको तुम सबने अबतक, कह सूत पुत्र उच्चारा है ॥
वह महाबली तेजस्वी कर्ण, था तुम सब का जेठा भाई ।
श्री सूर्यदेव का दिया हुआ, मेरा ही सुत* था सुखदाई ॥
इसलिये उसे भी जलांजली, अपना भाई कह करके दो ।
हो गई आज मैं महा दुखी, ऐसा बलवानी बालक खो ॥
करते हि श्रवण इन बचनों को, दुख हुआ युधिष्ठिर को भारी ।
चारों भ्राताओं ने भी झट, बिसरादी तन की सुधि सारी ॥
दीर्घ स्वांस परित्याग कर, बोले धर्म कुमार ।
माता तैंने इस समय, दीन्हा दुःख अपार ॥

* कर्ण का जन्म वृतान्त दूसरे भाग मे आचुका है पाठक देखलें ।

यदि ये पहिले बतला देती, कि कर्ण हमारे भाई हैं।
तुझसे ही प्रगट हुये हैं अरु, श्री सूर्यदेव वरदाई हैं॥
तो विडम्बना पंचाली की, नहिं सभा मांहि होने पाती।
टल जाते बन के दुःख सारे, तबियत नित रहती हरषाती॥
यहां तक मचता नहिं भारत में ये युद्ध भयानक भयकारी।
रहती यस हरदम हरी भरी, ये जननी जन्म भूमि प्यारी॥
क्यों तैंने सब बातें छिपाय, हम लोगों पर विपता ढाई।
हां ऐसा उत्तम भ्रात गया, किस तरह धीर धारें माई॥

※ गाना ※

हाय ये कैसा बुरा दुष्कर्म हमने कर दिया।
निज सहोदर भ्रात का हाथों से जीवन हर लिया॥
था नहीं भाई हमारा हाय साधारण मनुज।
देवताओं तक को देकर दान मुख उज्ज्वल किया॥
धनुर्विद्या में भी उसके सम नहीं था भूमि पर।
करके उससे शत्रुता कोई नहीं जग मे जिया॥
उसके गुणगन याद करके चित फटा जाता मेरा।
जय तो पाई है मगर हरषायेगा नहि मम जिया॥

यों कह जलांजलि दई, रविसुत को तत्काल।
ठहरे कुछ दिन के लिये, फेर यहां भूपाल॥
इतने में आये तहां, नारद व्यास मुनीश।
"श्रीलाल" लखकर इन्हें, सबने नाया शीश॥

॥ इति शुभम् ॥

(पं० राधेश्यामजी की रामायण की तर्ज़ में)

अमूल्य रत्न | **श्रीमद्भागवत और महाभारत** | छपगये

श्रीमद्भागवत क्या है ?

ये वेद और उपनिषदों का सारांश है, भक्ति के तत्वों का परिपूर्ण ख़ज़ाना है, परमार्थ का द्वार है, तीनों तापों को समूल नष्ट करने वाली महौषधी है, शांति निकेतन है, धर्म ग्रन्थ है, इस कराल कलिकाल मे आत्मा और परमात्मा के ऐक्य करा देने का मुख्य साधन है, श्रीमन्महर्षि द्वैपायन व्यासजी की उज्वल बुद्धि का ज्वलन्त उदाहरण है तथा भगवान श्रीकृष्ण का साक्षात् प्रतिबिम्ब है ।

महाभारत क्या है ?

ये मुर्दा दिलों में नया जीवन पैदा करने वाला है, सोये हुए मानव समाज को जगाने वाला है, बिखरे हुये मनुष्यों को एकत्रित कर उनको सच्चे स्वधर्म का मार्ग बताने वाला है, हिन्दू जाति का गौरव स्तम्भ है, प्राचीन इतिहास है, नीति शास्त्र है, धर्मग्रन्थ है और पांचवां वेद है ।

ये दोनों ग्रन्थ बहुत बड़े हैं अस्तु सर्व साधारण के हितार्थ इनके **अलग अलग** भाग कर दिये गये हैं, जिनके नाम और दाम इस प्रकार हैं:—

श्रीमद्भागवत

सं०	नाम	सं०	नाम
१	परीक्षित शाप	११	उद्धव ब्रज यात्रा
२	कंस अत्याचार	१२	द्वारिका निर्माण
३	गोलोक दर्शन	१३	रुक्मिणी विवाह
४	कृष्ण जन्म	१४	द्वारिका बिहार
५	बालकृष्ण	१५	भौमासुर वध
६	गोपाल कृष्ण	१६	अनिरुद्ध विवाह
७	वृन्दावनविहारी कृष्ण	१७	कृष्ण सुदामा
८	गोवर्धनधारी कृष्ण	१८	वसुदेव अश्वमेध यज्ञ
	[illegible]विहारी कृष्ण	१९	कृष्ण गोलोक गमन
	[illegible]उद्धारी कृष्ण	२०	परीक्षित मोक्ष

[illegible]क प्रत्येक भाग की कीमत चार आने

महाभारत

सं०	नाम	मूल्य	सं०	नाम	मूल्य
१	भीष्म प्रतिज्ञा	।)	१२	कुरुओं का गौ हरन	।-)
२	पाडवों का जन्म	।)	१३	पाडवों की सलाह	।)
३	पांडवो की अस्त्र शि.	।-)	१४	कृष्ण का हस्ति. ग.	।-)
४	पांडवों पर अत्याचार	।-)	१५	युद्ध की तैयारी	।)
५	द्रौपदी स्वयंवर	।)	१६	भीष्म युद्ध	।-)
६	पाडव राज्य	।)	१७	अभिमन्यु वध	।-)
७	युधिष्ठिर का रा. सू. य	।)	१८	जयद्रथ वध	।-)
८	द्रौपदी चीर हरन	।-)	१९	द्रोण व कर्ण वध	।-)
९	पाडवों का वनवास	।-)	२०	दुर्योधन वध	।-)
१०	कौरव राज्य	।-)	२१	युधिष्ठिर का अ. यज्ञ	।)
११	पाडवों का अ. वास	।)	२२	पाडवों का हिमा. ग	।)

* सूचना *

कथावाचक, भजनीक, बुकसेलर्स अथवा जो महाशय गान विद्या में योग्यता रखते हों, रोज़गार की तलाश में हों और इस श्रीमद्भागवत तथा महाभारत का जनता में प्रचार कर सकें तथा जो महाशय हमारी पुस्तकों के एजेण्ट होना चाहें हम से पत्र व्यवहार करें ।

पता—मैनेजर-महाभारत पुस्तकालय, अजमेर.

महाभारत ॐ इक्कीसवां भाग

युधिष्ठिर का अश्वमेध यज्ञ

श्रीलाल

महाभारत ॐ इक्कीसवाँ भाग

युधिष्ठिर का अश्वमेध यज्ञ

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—

महाभारत पुस्तकालय, अजमेर.

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

द्वितीयावृति १००० | विक्रमी सम्वत् १९९५, ईस्वी सन् १९३८ | मूल्य ।) आने

॥ स्तुति ॥

दर्श निज दास को गिरधर दिखादोगे तो क्या होगा।
मेरी बिगड़ी हुई को गर बनादोगे तो क्या होगा॥
फँसी है आन कर नैया मेरी मंझधार में भगवन्।
कृपा कर के उसे तटपर लगादोगे तो क्या होगा॥
उबारे हैं कई पापी अधर्मी दीन जन तुमने।
मेरे आवागमन को भी छुड़ा दोगे तो क्या होगा॥
दान, पूजन, भजन, सुमिरन नहीं कुछ मुझको आता है।
भिखारी हूँ दया का गर दिखादोगे तो क्या होगा॥

मङ्गलाचरण

रक्ताम्बर धर विघ्न हर, गौरीसुत गणराज।
करना सुफल मनोर्थ प्रभु, रखना जन की लाज॥
सृष्टि रचन, पालन, हरन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश।
बानी, रमा, उमा सुमिल, रक्षा करहु हमेश॥
बन्दहुं व्यास विशाल बुधि, धर्म धुरंधर धीर।
महाभारत रचना करी, परम रम्य गम्भीर॥
जासु वचन रवि जोति मम, मेटत तम अज्ञान।
बन्दहुं गुरु शुभ गुण भवन, मनुजरूप भगवान॥

* ॐ *

नारायणं नमस्कृत्य नरंचैव, नरोत्तमम् ।
देवीं, सरस्वती, व्यासं ततो जय मुदीरयेत् ॥

कथा प्रारम्भ

जन्में थे जिस रोज से, धर्मराज मति धीर ।
तब से लेकर आज तक, रहे सदां गम्भीर ॥
गो संकट पड़े अनेकों ही, सब राज पलक में दूर हुआ ।
अपमान प्रिया पंचाली का, कुरुओं द्वारा भरपूर हुआ ॥
फिर बारह वर्षों तक बन में, कई प्रकार की विपता पाई ।
इसके उपरान्त साल भर तक, की पुर विराट में सेवकाई ॥
घन घोर युद्ध में भी कितनी, बातें अवलोकी दुखकारी ।
लेकिन श्रीमान कुन्ति नंदन, हर समय रहे धीरज धारी ॥
पर रण समाप्त होने के बाद, जब कुरुक्षेत्र की भूमी पर ।
नृप ने निज रिश्तेदारों की, लहाशें अवलोकी इधर उधर ॥
और सुना दिल हिलाने वाला, विधवाओं का करुणा क्रंदन ।
तो इकदम श्री महाराजा का, व्याकुल होगया तमाम बदन ॥
तिसपर आई जब इन्हें, वीर कर्ण की याद ।
तबतो तबियत और भी, हुई बहुत नाशाद ॥
वह चली दृगों से अश्रुधार, और चहरा तेजोहीन हुआ ।
मणि खोये हुये सर्प सदृष्य, वो भारतेश्वर दीन हुआ ॥
बहुतेरा यत्न किया अपने, हृदय को धीर बंधाने का ।
गुजरी बातों पर धूल डाल, तबियत को शाँत बनाने का ॥
लेकिन प्रयत्न सब व्यर्थ हुआ, पल पल में ये दुख बढ़ने लगा ।
जिससे मानिन्द बालकों के, नृप घबराकर तड़फने लगा ॥

कुछ देर बाद जब न्यून हुआ, आवेश और थिरता आई ।
तब भ्राताओं से कहन लगे, ये धर्म धुरन्धर नरराई ॥
हा ! नाशवान राज्य के लिये, हमने कैसा दुष्काम किया ।
निज कुल के साथ साथ सारे, क्षत्रियों का काम तमाम किया ॥
इतना हि नहीं बल्की सुजान, रणधीर वीर पंडित ज्ञानी ।
निज प्रण का पालक दयावान, और हरिश्चन्द्र सदृष्य दानी ॥
उस कर्ण सहोदर भ्राता को, रणभूमी में संहारा है ।
हा ! हाय हमारे सम जग में, कोई न अधम हत्यारा है ॥
अब तो येही श्रेष्ठ है, सकल राज्य परित्याग ।
करें विपिन में जाय कर, ईश्वर से अनुराग ॥
बिन ऐसा किये नहीं होगा, प्रायश्चित इन दुष्कर्मन का ।
अस्तू भगवत का सुमिरण कर, हम करेंगे बोझ हलका मनका ॥
महाराजा का ऐसा विचार, भाइयों को पसन्द नहीं आया ।
आश्चर्य और दुख हुआ इन्हें, आखिर में अति गुस्सा छाया ॥
सोचा अपराध कौरवों के, हम बचपन से सहते आये ।
तनमें ताकत होने पर भी, नहिं कभी क्रोध उन पर लाये ॥
अतिशय विडम्बना पत्नी की, और जंगल के संकट भारी ।
हम रहे भोगते किसी तरह, हृदय में अति धीरज धारी ॥
आखिर प्रण के माफिक पूरी, तेरह वर्षों की अवधी कर ।
हमने निज राजपाट मांगा, दुष्टों से अति विनीत होकर ॥
दिया उन्होंने तब दुख पा, हम लोगों ने संग्राम किया ।
दिन श्रम कर बाहूबल से, दुष्टों का काम तमाम किया ॥
राज्य धर्मानुसार, तब कहीं सुख घड़ी आई है ।
भूपन के दिल में जाने, फिर भी क्यों कुमति समाई है ॥
तजरहे हैं धर्म क्षत्रियों का, होकर भी अतिशय ज्ञानी ये ।
और हम सब की आशाओं पर, चाहते हैं फेरना पानी ये ॥

ऐसा मन में सोचकर, चारों पांडु कुमार ।
पति सहित कहने लगे, सुनो धर्म अवतार ॥
ये समझ आपकी कैसी है, क्यों उल्टे मग पर जाते हो ।
किसलिये हमारी महनत को, अब अन्त में वृथा बनाते हो ॥
पहिले तो क्षत्रि धर्मानुसार, रण में बाहूबल दिखलाया ।
और कर विध्वंस शत्रुओं का, निज राज्य भूमि पर फैलाया ॥
अब इन सब का त्यागन करके, बनना चाहते हो सन्यासी ।
क्या यही धर्म शुभ कहलाता, बोलो हे ? भ्राता गुणरासी ॥
हम लोगों के विचार से तो, ऐसा कुकर्म करने वाला ।
नहिं कभी स्वर्ग का सुख लखता, पाता है नर्क हि मतवाला ॥
यदि तुमको तप ही करना था, तो क्यों कुरुओं का नास किया ।
क्यों नहीं प्रथम ही कर विचार, जंगल में ही सन्यास लिया ॥
भाई यदि कर्म त्यागने से, मिलजाती सिद्धी सुखकारी ।
तो पर्वत और वृक्ष आदिक, बनजाते सिद्ध बड़े भारी ॥
सच तो ये है जो चले, नित निज धर्मनुसार ।
वही पुरुष अति श्रेष्ट है, वही जाय भव पार ॥
हैं आप क्षत्रि कुल के भूषण, फिर नृप की पदवी पाई है ।
इसलिये प्रजा पालन व यज्ञ, करना ही अति सुखदाई है ॥
यदि इस स्वधर्म का त्यागन कर, तुम जंगल मांहि सिधाओगे ।
तो सच जानो राजन् मन में, नहीं कभी सद्‌गती पाओगे ॥
भ्राताओं के वाक्य सुन, बोले धर्म—कुमार ।
चाहे कितना भी कहो, हमसे तुम इस बार ॥
लेकिन सुमार्ग छोड़ेंगे नहीं, वो करेंगे जो चित धारी है ।
इस नाशवान दुनियां में तो, आदि से अन्त तक ख्वारी है ॥
हम फँसे थे मोह में इसीलिये, निश दिन दुख ही दुख पाया है ।
अब कहीं प्रभू की किरपा से, सत ज्ञान हृदय में छाया है ॥

अस्तू सन्यास ग्रहण करके, हम निश्चय बन में जावेंगे।
हरि के चरणों में चित्त लगा, तत्काल शान्ती पावेंगे॥
तुम सभी वीर व्रतधारी हो, अस्तू रण बातों में निश्चय।
दे सकते हो उपदेश कई, जिससे आखिर में होवे जय॥
किन्तु धर्म सम्बन्ध में, तुम्हें हमारी बात।
चहिये हरदम माननी, सुनो परम प्रिय भ्रात॥
है ध्यान ये तुम्हरा वैभव से, बढ़कर जग में कोई चीज नहीं।
लेकिन मेरे विचार से तो, ये बात आपकी ठीक नहीं॥
इसमें फँसनेवाला न कभी, सुख और शान्ती पाता है।
पर ब्रह्म ज्ञान जाना जिसने, वो ही आनन्द उड़ाता है॥
ये सुनते ही महर्षी, वेदव्यास सुजान।
हाथ उठा कहने लगे, सुनो भूप गुणखान॥
भ्राताओं की आशाओं को, एकदम मत वृथा बनाओ तुम।
कुछ दिन इनके संग रहकर नृप, अति सुख से राज चलाओ तुम॥
इसके उपरान्त विपिन में जा, श्री जगदीश्वर के गुण गाना।
और करके सच्चा ज्ञान प्राप्त, उस श्रेष्ट मोक्ष पद को पाना॥
इस कुरुक्षेत्र की भूमी पर, संग्राम हुआ जो भयकारी।
इसमें नहिं तुम्हारा दोष तनिक, ये थी हरि की इच्छा सारी॥
अस्तु सोच तज चित्त में, धीर धरो तत्काल।
उत्तर दाता हो नहीं, तुम इसके भूपाल॥
वेद व्यास मुनीश्वर ने, राजा को इस विधि समझाया।
उनके संशययुत चित को, नहिं समाधान होने पाया॥
दीनबंधु करुणानिधान, जगदीश जगत्पति गिरधारी।
अति नम्र भाव से कहन लगे, हे भूप तजो चिन्ता सारी॥
संग्राम क्षत्रि जाती के लिये, अनुचित नहिं कभी बनाया है।
जब से ये सृष्टि हुई तब से, ऐसा ही होता आया है॥

निज राजा की रक्षा के निमित्त, रिपु बधना कभी अधर्म नहीं।
अस्तू ये रण करके तुमने, कुछ किया भूप दुष्कर्म नहीं॥
फिर यहाँ पर जो जो मृतक हुये, वे क्षत्रि जाति के भूषण थे।
डरपोकपना और कायरता, आदिक नहिं उनमें दूषण थे॥
उन लोगों ने धर्मानुसार, सन्मुख लड़ जान गमाई है।
तब इसमें भी सन्देह नहीं, सब ही ने शुभ गति पाई है॥
ऐसों के लिये शोक करना, ये कहां की बुद्धीमानी है।
है खुशी का अवसर फिर तुमने, क्यों दरसाई हैरानी है॥

*** गाना ***

धरो धीर भूपाल चिन्ता बिसारी,
टले नाहि होनी किसी से भी टारी।
हुआ है यहां युद्ध जो ये भयंकर,
थी इसमें विधाता की ही चाह सारी।
तजा है यहां फेर जिस जिसने जीवन,
वे कायर नहीं थे, थे अति शक्तिधारी।
इसी से बदन छोड़ते ही उन्हे बस,
मिला है तुरत स्वर्ग का सुःख भारी।
है बिल्कुल वृथा सोच ऐसो का करना,
ये मौका खुशी का है हे धर्मधारी।

अस्तु सोच तज भूप अब, चलो नगर तत्काल।
करो धर्म अनुसार बस, रैयत की प्रतिपाल॥
तिसपर भी कुछ शक है तुमको, तो नरराई एक काम करो।
सब के कथनानुसार पहिले, निज सिंहासन पर पांव धरो॥
इसके उपरान्त शातनू सुत, भीषम के पास सिधाना तुम।
और जितनी भी शंकायें हों, सबको निर्मूल बनाना तुम॥

उन ब्रह्मचारी ने बड़े बड़े, ऋषियों से शिक्षा पाई है।
इसलिये ज्ञान में उन समान, देता न कोई दिखलाई है॥
जिस समय मृत्यु होगी उनकी, तब भारत की भूमी सारी।
एक उत्तम रत्न गमा करके, हो जावेगी व्याकुल भारी॥
सूरज जब तक दक्षिण दिशि से, उत्तर दिशि में नहिं आवेंगे।
तब तक वे सच्चे व्रतधारी, निज प्राणों को ठहरावेंगे॥

उनकी मृत्यू से प्रथम, चलना उनके पास।
उपदेशामृत कर श्रवण, करना शंका नास॥

आनन्दकंद के वचनों को, नहिं टाल सके श्री नरराई।
उठ खड़े हुए और नगरी में, जाने की इच्छा जतलाई॥
ये सुनते ही सब हर्ष उठे, चलने का साज सजाने लगे।
घोड़ों से जुते हुये स्यंदन, अति गड़गड़ाट फैलाने लगे॥

हुए जिस समय यान पर, धर्मराज असवार।
सुन्दरता उस वक्त की, थी बस अपरम्पार॥

सोलह सफेद घोड़ों से जुता, स्यंदन था नृप का द्युतिकारी।
थे जिस पर सारथि महावीर, बलवानी भीम गदाधारी॥
फिर उत्तम छत्र लगाये थे, अर्जुन राजा के मस्तक पर।
और ढुला रहे थे चंवर आदि, सहदेव नकुल हर्षित होकर॥
इनके दाहिनि दिशि शोभित थे, आनन्द कन्द श्री यदुराई।
सात्यकी सहित रथ में बैठे, चल रहे थे चित में पुलकाई॥
आगे आगे ऋषि मुनी कई, शुभ मंत्र सुनाते जाते थे।
पीछे थे रिश्तेदार सभी, भूपति संग बढ़ते आते थे॥
इस प्रकार से चलते चलते, सब हस्तिनापुर के ढिंग आये।
इनके आने की सुधि पाकर, सारे पुरवासी हरषाये॥
झट सजा दिये घर दर अपने, कई पताकायें फहराने लगीं।
वायू में मिल भीनी भीनी, खुशबू की लपटें आने लगीं॥

ये लख अति हर्षित हुये, धर्मराज गुणखान ।
घुसे नगर में कर हृदय, इष्ट देव का ध्यान ॥
और जा पहुँचे कुछ देर बाद, महलों के भीतर नरराई ।
फिर श्रेष्ठ महूरत आने पर, राज्याभिषेक की ठहराई ॥
ऋषियों ने अति हर्षित होकर, एक स्वर्ण सिंहासन मंगवाया ।
और निल्हा धुला कुंती सुत को, आदर से उसपर बैठाया ॥
पहिले तो धौम्य * पुरोहित ने, आनंदित हो काढ़ा टीका ।
बाद इसके ऋषि मुनि मित्रों ने, अरमान निकाला निज जीका ॥
इस तरह युधिष्ठिर ने पाया, वापिस निज विस्तृतराज सभी ।
और करन लगे दुख शोक भुला, रैयत पालन का काज सभी ॥
कुछ दिन में निज राज्य का, करके उचित प्रबंध ।
गये कुन्तिसुत एक दिन, हरि के घर सानंद ॥
क्या लखा सुघड़ रत्नों से जड़े, एक अति उत्तम सिंहासन पर ।
आसनासीन हैं गिरधारी, कुछ अद्भुत शोभा धारन कर ॥
दैदीप्यमान है क्रीट मुकुट, मस्तक पर श्री यदुराई के ।
और वक्षःस्थल पर शोभित है, कौस्तुभ मणि जन सुखदाई के ॥
श्यामल शरीर पर पीतांबर, अति ही सुन्दर दरसाता है ।
तन से एक अद्भुत तेज निकल, चहुँदिशि प्रकाश फैलाता है ॥
पत्थर की मूरति सम प्रभु के, निश्चल हैं अंग प्रत्यंग सभी ।
नेत्र भी बंद हैं अस्तु दृष्टि, आते समाधि के ढंग सभी ॥
ध्यानावस्थित देख कर, हरि को पांडु कुमार ।
मन ही मन कहने लगे, विस्मित होय अपार ॥
अचरज है जगदीश्वर होकर, कर रहे हैं किसका ध्यान प्रभू ।
है कौन भाग्यशाली जिस की, हैं याद में ये गुणखान प्रभू ॥

* धौम्य ऋषि का हाल पांचवे भाग में आया है पाठक देख लें ।

ब्रह्मा से लेकर मच्छर तक, सब तो इनके गुण गाते हैं ।
पाने के लिये दर्श इनका, अनगिनती जन्म गमाते हैं ॥
फिर भी उनमें विरला हि कोई, इतना किस्मतवर होता है ।
जो निहार कर प्रत्यक्ष इन्हें, निज जन्म मरण को खोता है ॥

किन्तु आज क्यों बहरही, है ये उल्टी गंग ।
त्रिभुवनपति को भी लगा, ध्यान करन का रंग ॥

इस तरह सोचते हुये भूप, कर जोड़ मौन धारन करके ।
हो रहे खड़े प्रभु के सन्मुख, चरणों में शीश नमन करके ॥
और लगे देखने हर्षित हो, अद्भुत छवि श्याम विहारी की ।
कंसारी, दीन दुःख हारी, जन सुखकारी गिरधारी की ॥
कुछ देर बाद यदुनन्दन के, अंगों में चेतनता आई ।
होगया पूर्ण वो ध्यान तुरत, खुलगये विलोचन सुखदाई ॥
लखकर निज सन्मुख राजा को, आनन्दकंद मन मुस्काये ।
और बोले भूपति कुशल तो है, फरमाओ यहां कैसे आये ॥

कहा भूप ने आप की, दया से करुणाकंद ।
सब प्रकार से हर समय, रहता है आनन्द ॥

लेकिन यहां आते ही मुझ को, एक शंका छाई है भारी ।
कर दया दृष्टि उसको तुरन्त, दीजिये मिटा हे गिरधारी ॥
कर रहे थे किसका ध्यान आप, आंखें मीचे तनमय होकर ।
क्या तुमसे भी बढ़कर कोई, है इस ब्रह्मांड में हे नटवर ॥
जग के कर्त्ता, भर्ता, हर्ता, यदुराई तुम्हीं कहाते हो ।
हो आदि अंत से रहित और, पुरुषोत्तम माने जाते हो ॥
फिर निराकार, आकार सहित, दोनों ही रूप तुम्हारे हैं ।
है गुणों का पारावार नहीं, गा गा कर सुर नर हारे हैं ॥
ऐसे होकर हे भक्त सुखद, कर रहे थे आप याद किसकी ।
है ऐसा श्रेष्ट कौन तुम्हरे, चित में बसगई शक्ल जिसकी ॥

यदि इस रहस्य के सुनने का, मैं अधिकारी हो सकता हूँ ।
तो दीनबन्धु किरपा करके, कह दीजे विनती करता हूँ ॥
धर्मराज के वाक्य सुन, मंद मंद मुस्काय ।
लीलाधर कहने लगे, सुनो भूप चितलाय ॥
जिनके पितु का दरजा जग में, नृप शांतनू ने पाया था ।
और जिनको तरन तारनी श्री, गंगाजी ने उपजाया था ॥
फिर पिता को खुश करने के लिये, छोड़ा था राज जिनने सारा ।
और देवों से भी हो न सके, वह ब्रह्मचर्य व्रत था धारा ॥
अथवा जो इकले ही काशी, कन्याओं को हर लाये थे ।
खुद परशुरामजी भी रण कर, जिनको न हराने पाये थे ॥
जिनके धनुका गुन घन गर्जन, सम कठोर शब्द सुनाता था ।
जो धनुर्वेद ही थे जिन सम, योधा न कोई दरसाता था ॥
फेर जिन्होंने पढ़ा था, चार वेद का ज्ञान ।
धर्म विषय में जिन सरिस, था नहिं जग में आन ॥
अथवा कर युद्ध जिन्होंने अब, उत्तम शर शैया पाई है ।
और उतरायण रवि आने तक, स्वासों की गति ठहराई है ॥
बस उन्हीं धीर गम्भीर वीर, श्री भीष्म बाल ब्रह्मचारी की ।
सुन्दर मूरति इस समय मैंने, अपने हृदय में धारी थी ॥
क्योंकि वे ध्यान कर रहे हैं, इस समय शुद्ध चित से मेरा ।
अस्तू मेरे भी प्राणों ने, बस किया था जाय वहीं डेरा ॥
हैं भीष्म हमारे परम भक्त, प्राणों से बढ़कर प्यारे हैं ।
भक्तों का ध्यान धरें निशदिन, ये ही कर्तव्य हमारे हैं ॥

*** गाना ***

सुन राजन बचन हमारे, मुझे लगते हैं भक्त पियारे ॥
सचे मन से एकहि बारा, ध्यान मेरा जिस जिसने धारा ।
मेटे हैं संकट सारे, सुन राजन बचन हमारे ॥

भक्तो को दुनियां के मांही, हे कुन्ती सुत पलभर नाहीं।
सकता हूँ देख दुखारे, सुन राजन वचन हमारे॥
इस जग में हैं लाखो ही नर, भक्त वहुत कम होते हैं पर।
कहता हूँ सत्य पुकारे, सुन राजन वचन हमारे॥
भक्तो से मै दूर नहीं हूँ, भक्त जहां हैं मैं भी वहीं हूँ।
भक्त हैं प्राण पियारे, सुन राजन वचन हमारे॥

वात एक अव कुन्ति सुत, सुनो लगाकर ध्यान।
कुछ ही दिन में भीष्मजी, छोड़ेंगे निज प्रान॥
तव जैसे शशि के छिपते ही, हो जाती तेज हीन रजनी।
त्योंही इनकी मृत्यु से हीन, वन जावेगी भारत अवनी॥
इसलिये चलो उनके समीप, उन के मरजाने से पहले।
और पूछो, "धर्म" वस्तु क्या है, निज राज चलाने से पहले॥
उनके सदृष्य अनुभवी मनुज, नहिं कहीं भी देता दिखलाई।
उनके मरते हि जान लेना, छिप गया ज्ञान का दिनराई॥

यदुराई की वात सुन, हरषाये भूपाल।
तैयारी करने लगे, चलने की तत्काल॥

वुलवा कर सव भ्राताओं को, आज्ञा दी साज सजाने की।
फिर की नटवर से भी विनती, भीषम के पास सिधाने की॥
आखिर अपने संग ले सव को, रणधीर वीर कुन्ती नन्दन॥
जा पहुँचे कुरुक्षेत्र में जहां, शोभित थे श्री गंगानन्दन।
और देखा दादा के चहुँदिशि, वैठे हैं अगणित सन्यासी॥
इनके सिवाय दृष्टी आते, यहां नारद मुनी भी गुणरासी।
जैसे उपासना करते हैं, इन्द्र की देवता हरषाकर।
त्योंही ऋषि मुनि भीषमजी के, गा रहे हैं गुणगण पुलकाकर॥

सबने इनके निकट जा, लेले अपना नाम।
शीश टिकाकर भूमिपर, किया सहर्ष प्रणाम॥
लख पांचों पांडु कुमारों को, हरषाये गंग तनय भारी।
और सबके सिर पर हाथ फेर, दीन्ही आशिष अति सुखकारी॥
फिर अपने दोनों हाथ जोड़, गिरधारी की अस्तुति कीन्ही।
इसके उपरान्त इन सबों को, तहं बैठन की आयसु दीन्ही॥
कुछ देर तलक तो शांति रही, फिर कहने लगे श्री यदुराई।
हे पितामहा ये कुन्ति सुवन, आये हैं शिक्षा के ताईं॥
अस्तु कर किरपा श्री मुख से, कुछ धर्मोपदेश सुना दीजे।
जो जो इनकी शंकायें हैं, उनको निर्मूल बना दीजे॥
गंग तनय कहने लगे, सुनो सच्चिदानन्द।
पूर्ण आपके हुक्म को, करता मैं सानन्द॥
लेकिन क्या करूं विवश हूं मैं, घायल है सकल शरीर प्रभो।
अति अधिक पीर होने के सबब, छुट रहा मेरा सब धीर प्रभो॥
होगई मूढ़ बुद्धि भी मेरी, मूर्छा दमदम पर आती है।
मैं बहुत रोकता हूं तो भी, तबियत घबराई जाती है॥
बस केवल कृपा तुम्हारी से, मैं रखे हुए हूं प्रान मेरा।
इसलिये क्षमा करिये भगवान्, हो रहा ध्यान बे ध्यान मेरा॥
इसके सिवाय जब आप यहां, हैं विद्यमान अंतरयामी।
तब गैर की क्या आवश्यकता, उपदेश सुनाने की स्वामी॥
जहां सूर्य प्रकाशित हो वहां पर, दीपक क्या भला कहायेगा।
अमृत मिलने पर कौन है जो, सरिता के जल से न्हायेगा॥
हे ईश धर्म के धर्म हो तुम, वेदों के वेद कहाते हो।
हो ज्ञान के ज्ञानरु शास्त्रों के, निर्माता माने जाते हो॥
इसलिये आप ही श्री मुख से, नृप को उपदेश सुनाइयेगा।
जो कुछ भी इनकी शंका हो, उसको तत्काल मिटाइयेगा॥

गुरु के सन्मुख शिष्य जिमि, दे न सके उपदेश।
तिमि तुम्हरे सन्मुख प्रभू, करूं मैं किम आदेश॥
सुन कर भीषम के वचनों को, नटवर का हृदय भर आया।
हो गये खड़े और हाथ उठा, कर इस प्रकार से फरमाया॥
मेरे वर से हे गांगेय, नश जायेंगे तुम्हरे क्लेश सभी।
वेदना मूर्छा आदिक का, रहने न पायेगा लेश कभी॥
फिर भूख प्यास भी तुम्हें कभी, अब नहीं सताने पायेगी।
राजस और तामस छोड़ बुद्धि, सात्विकपन को अपनायेगी॥
और रहेगी दिव्य दृष्टि तुम्हरी, मरते दम तक हे गुणखानी।
मुनियों को भी जो दुर्लभ है, पावोगे वह गति सुखदानी॥
श्रीकृष्ण के वाक्य सुन, हरषाये मुनिवृन्द।
प्रेम सहित सब कह उठे, जयति सच्चिदानन्द॥
वरदान से कुंज विहारी के, भीषम का सब दुख दूर हुआ।
आ गई बदन में शक्ति तुरत, चित्त में उछाह भरपूर हुआ॥
दोउ हाथ जोड़ कर कहन लगे, हे दीनवन्धु हे गिरधारी।
हे भक्तों के आनन्दायक, हे त्रिभुवन पति हे वनवारी॥
हे विधि के विधि तुम्हरे वर से, हो गई दूर सब पीर मेरी।
आ गई सावधानी चित में, वन गई बुद्धि गम्भीर मेरी॥
अब तत्पर हूं कहने को उसे, जो ज्ञान दास ने पाया है।
ले करके ही जिसका आश्रय, अपना सब जन्म विताया है॥
इतना कह कर गंगासुत ने, महाराजा को संकेत किया।
और विषय में निज शंकाओं के, पूछन का खुश हो हुक्म दिया॥
भीष्म पितामह के वचन, सुन हर्षे भूपाल।
शीश झुका कर जोड़कर, कहन लगे तत्काल॥
हे दादा सब कोई मुझ से, कहते हैं राज चलाने को।
लेकिन असमर्थ हूं मैं बिलकुल, ये भारी बोझ उठाने को॥

अस्तू सबसे पहले मुझको, बस राज धर्म समझा दीजे।
क्या कर्तव है राजाओं का, इसको सम्पूर्ण बता दीजे॥
राजा के बचनों को सुन कर, हरषाये गंग तनय भारी।
और कहन लगे हे कुन्तिसुवन, तेरी बुद्धी पर बलिहारी॥
अति ही उत्तम है प्रश्न तेरा, सुन मुझको आनन्द छाया है।
धरकर धीरज अब श्रवण करो, जो शास्त्रों ने बतलाया है॥
ये राज्य धर्म सब धर्मों में, सर्वोपरि माना जाता है।
सारी दुनियां का बस येही, आधार भूत कहलाता है॥
जिस प्रकार अंकुश होता है, गज को बस में रखने के लिये।
अथवा जैसे लगाम होती, घोड़ा काबू करने के लिये॥
त्यों ही करने को वशीभूत, जग के सब जीवों को राजन्।
ये राज्य धर्म ही होता है, ऐसा चित में समझो राजन्॥

जिमि रवि तम का नाश कर, उजियाला फैलाय।
तिमि ये मेट कुमार्ग को, सतमारग दिखलाय॥

अब मैं तुझको हे पान्डु पुत्र, नृप के कर्तव्य सुनाता हूँ।
कैसा राजा उत्तम होता, ये सारी बात बताता हूँ॥
अव्वल तो हर एक अवनि पति, बस धर्म शील होना चहिये।
और प्रजा के हित के लिये उसे, निन दान धर्म करना चहिये॥
फिर रहना चहिये नित्यप्रती, उत्साही अरु अति उद्योगी।
है यही कर्म जो होता है, राज्य के लिये अति उपयोगी॥
यदि किसी कार्य में देती हो, नृप को निष्फलता दिखलाई।
तो कभी नहीं अपने चित्त में, आने देवे व्याकुलताई॥
बल्की दूनी हिम्मत से उसे, पूरा करने में लग जावे।
और जबतक सफल मनोर्थ न हो, नहिं पीछे हटे न घबरावे॥

नृप को चहिये सत्य से, कभी न मोड़े मुःख।
यही वस्तु संसार में, पहुँचाती है सुःख॥

जिसने सचाई को तजकर, झूठी बातों को अपनाया।
वो भूप जगत में थोड़े ही, दिवसों रहता दृष्टी आया॥
अस्तु चाहे कितना भी दुख, मस्तक पर आकर छाजावे।
धरकर धीरज सब सहन करे, लेकिन न सत्य को बिसरावे॥
फिर शासन करते समय भूप, दिखलावे अति नरमी भी नहीं।
और जिससे सब ही डर जावें, दरसावे वो गरमी भी नहीं॥
किन्तु बसंत के सूरज सम, बस हाल रखे हरदम अपना।
तज पक्षपात को न्याय करे, अघ का न कभी देखे सपना॥
गर्भिणी नारि जैसे अपने, मनका प्रिय काम न करती है।
बल्की जो गर्भ को हितकारक, होता वो चित में धरती है॥
त्योंही राजा का धर्म है ये, तजकर अपने आरामों को।
हर समय करे रैयत को सुख, पहुंचाने वाले कामों को॥

रहता जिसके चित्त में, नित संशय का वास।
करता जो न त्रिकाल, कोई का विश्वास॥

फिर जिसका सच्चा और सरल, बर्ताव न दृष्टी आता है।
निज वशीभूत रैयत का जो, सर्वस्व लूटना चाहता है॥
ऐसे दुष्कर्मी राजा का, रहता निष्कंटक राज नहीं।
दिन रात उपद्रव होते हैं, सजता न शांति का साज कहीं॥
सच तो ये है पितु के घर में, जिमि सब सुत मौज उड़ाते हैं।
त्योंही जिस नृप के पुरवाले, निर्भय हो समय बिताते हैं॥
जो होते हैं जो पूर्ण तथा, अन्याय न्याय जानन हारे।
कर्त्तव्य कर्म में चतुर तथा, होते उदार वृत्ती वारे॥
फिर जो नृप को जीवन अर्पण, करने में भय नहिं लाते हैं।
रहते झगड़े टंटों से अलग, और राजनिष्ठ कहलाते हैं॥
ऐसी रैयत वाला भूपति, सब भूपों में सर्वोत्तम है।
पर जो न प्रजा पालन करता, वो दुष्ट मूर्ख अधमाधम है॥

एक बात फिर और है, सुनलो कुन्ति कुमार ।
हो जाता है समय भी, राजा के अनुसार ॥
जिस समय भूप अपना कर्तव, सच्चे हृदय से करता है ।
तो कलियुग भी निज देह पलट, सतयुग का बाना धरता है ॥
किन्तू जो नृप मद मत्त होय, अपना सद्धर्म भुला देता ।
तो आनन्ददायक सतयुग भी, कलियुग का रूप बना लेता ॥
फिर एक बात का ध्यान और, रक्खे चित में नित नरराई ।
दुर्बलों को संकट पहुंचाना, होता न कभी भी सुखदाई ॥
प्रभु ने राजा को भेजा है, दुष्टों का जी हरने के लिये ।
और दीन गरीब विचारों की, सब विपत दूर करने के लिये ॥
जो अवनीपति इस कर्तव को, नहिं पूरी तरह निभाता है ।
तो जीते जी कई दुख पाकर, मर अंत नरक में जाता है ॥
चित माहिं कदाचित कुटिल भूप, दे निबल को दुख इतराता हो ।
"कमज़ोर मेरा क्या करलेंगे", ऐसा अंदाज लगाता हो ॥
पर उसको इस बात का, रखना चहिये ध्यान ।
दुर्बल दुर्बल हैं नहीं, किन्तु हैं सबल महान ॥
जो शक्ति नहीं होती अच्छे, अच्छे वीरों की बाहों में ।
उससे भी कई गुनी ज्यादा, होती निर्बल की आहों में ॥
जिमि मृतक चर्म की फूंकों से, फौलाद भस्म हो जाती है ।
तैसे ही आह गरीबों की, अति सबलका खोज मिटाती है ॥
सरदी से ठिठरे हुये और, पापी पुरुषों से सताये हुए ।
रोग से ग्रसित भूखे प्यासे, हर तरह हीन कुम्हलाये हुये ॥

अस्तु याचना से प्रथम, करे निबल का काम ।
यही भूप के लिये है, सुखद और सुख धाम ॥
जिस नरराई ने राग द्वेष, मद काम क्रोध को जीत लिया ।
शास्त्रों में वर्णन किये हुए, शुभ राज धर्म को ग्रहण किया ॥
जिसके पुर में दीनो धनाढ्य, आनन्द से उमर बिताते रहे ।
धन धान्य पूर्ण रहकर हर दम, राजा के गुण गण गाते रहे ॥
बस नींव उसी अवनीपति के, राज्य की सुदृढ़ है पहिचानो ।
है वही मनुज नृप की पदवी, पाने लायक ये अनुमानो ॥
हे धर्मराज अव्वल तो है, अति मुश्किल नर शरीर पाना ।
यदि दैवयोग से मिल भी गया, तो सहज नहीं नृप बनजाना ॥
अनगिनती जन्मों के सुकर्म, जब एकत्रित हो जाते हैं ।
तब कहीं जीव को परमात्मा, राजा का पद दिलवाते हैं ॥
ऐसे उत्तम दर्जे को पा, जो नर बन जाते अभिमानी ।
तजकर सतपथ को कुपथ में जा, करने लगते निज मनमानी ॥
वे महामूर्ख हैं हीरे की, कुछ कदर न कर बिसराते हैं ।
और खरीद कर बदले में कांच, हरषाते हैं पुलकाते हैं ॥
फल ये होता पुन्य सब, हो जाते झट नष्ट ।
जाकर वे पशु योनि में, पाते हैं फिर कष्ट ॥
इतना कहकर चुपचाप रहे, कुछ देर तलक गंगानन्दन ।
[illegible]र हाथ उठा कर कहन लगे, धर ध्यान सुनो हे कुन्तिसुवन ॥
[illegible]के अति उत्तम कर्मों को, नृप पद पानेवाला प्रानी ।
होता स्वभाव से ही धार्मिक, सतवादी सब गुण की खानी ॥
लेकिन यद सोहबत पल भर में, उसका सब ज्ञान भुलाती है ।
और जमा के अपना पक्का रंग, बस नीच कर्म करवाती है ॥
आगे पीछे भूप के, लगजाते दो नीच ।
रखते हैं उसको सदां, अंधकार के बीच ॥

इन दो नीचों में से इक तो, नर चुगल खोर कहलाता है ।
और चापलूस के नाम से बस, दूसरा पुकारा जाता है ॥
है इनका काम सज्जनों की, चुगली नित राजा से खाना ।
और नृप के चित्त में जुये अहि, व्यसनों की इच्छा उपजाना ॥
इनको करने के लिये ये खल, ऐसा कुछ ढोंग रचाते हैं ।
होकर विनीत चिकनी चुपड़ी, कुछ ऐसी बात बनाते हैं ॥
कि इनको अपना हितू समझ, नृप चक्कर में फस जाता है ।
इनके बचनों को वेद वाक्य, गिनकर निज काम चलाता है ॥

अस्तु भूप को चाहिये, खुशामदी से दूर ।
रहे सदा और शिष्ट को, अपनावे भरपूर ॥

हे पांडुपुत्र सारांश है ये, नृप धर्मवान होना चहिये ।
रणधीर वीर कोविद ज्ञानी, पंडित सुजान होना चहिये ॥
फिर चहिये अपनी रैयत की, सुतवत रक्षा करने वाला ।
दुष्टों और देश द्रोहियों को, अति कड़ा दंड देने वाला ॥
इसके अतिरिक्त नाय प्रियता, इन्द्रिय दमन और सचाई ।
भय दया, अहिंसा क्षमा, धर्म, आदिक गुण धारे नरराई ॥

※ गाना ※

अपने हृदय में जिसने ये राज धर्म धारा ।
समझो उसी नृपतिने निज जन्म को सुधारा ॥
मदमत्त होके जिसने दीनों का दिल दुखाया ।
उसने ये लोक और वह परलोक भी बिगारा ॥
पालन प्रजा का करना दुष्टों को दण्ड देना ।
इतना हि कर्म नृप को देता है सुःख भारा ॥
दुर्लभ नृपति के पद को पाकर ये चहिये नर को ।
त्यागे कभी न सत को पाले स्वधर्म सारा ॥

यही भूप के कर्म हैं, यही राज्य का सार।
जो इसके माफिक चले, पावे सुःख अपार॥
इस तरह भीष्म ने रण समाप्त, होने से लेय दिवाकर के।
उतरायण आने तक नितप्रति, उपदेश दिया हरषाकर के॥
इस राज धर्म के अतीरिक्त, तप धर्म, मोक्ष के धर्मों का।
अध्यात्म योग, वर्णाश्रमादि, अनगिनती उत्तम कर्मों का॥
अति गूढ रहस्य छप्पन दिनतक, श्री धर्मराज को समझाया।
जिसको सुनकर नृप सहित सभी, लोगों के चित में सुख छाया।
आखिर उत्तरदिशि की जानिब, आये जैसे ही दिनराई।
त्योंही श्री गंगानन्दन ने, तन के तजने की ठहराई॥
होगये जमा स्त्रियों सहित, भीषम के रिश्तेदार सभी।
और अपना अपना नाम सुना, बस करने लगे जुहार सभी॥
लख इन्हें शान्तनू-नंदनने, अति पुलका कर आशिष दीन्ही।
फिर प्राण त्यागने खातिर, ऋिषि मुनियों से आज्ञा लीन्हीं॥
सबसे सब विधि भेटकर, अंत में इनके नैन।
चले उस तरफ थे जहाँ, नटवर करुणाऐन।
गिरधर से आखें मिलते ही, भीषम को परमानन्द हुआ।
कर अंत समय प्रभु के दर्शन, चित में उछाह चौचन्द हुआ॥
कर जोड़ प्रेम से मन ही मन, आनन्द कंद को सिर नाया।
द गद होगया हृदय सारा, रोमांच बदन में हो आया॥
खिर जैसे तैसे अपने, हृदय को धीर बंधा कर के।
स्तुति करने लगे तुरत, यदुराई की पुलका कर के॥
हे जगदीश्वर जगपते, गिरधर राजिवनैन।
खुशी हूजिये कर श्रवण, मेरे अंतिम बैन॥
हे अजर अमर हे दोप रहित, हे पवित्र धाम वाले स्वामी।
हे मन और बुद्धी से अगम्य, हे दीनबंधु अंतरयामी॥

हे हिरण्य-गर्भ हे आत्मरूप, हे अविनाशी हे यदुराई।
हे वेद जनक हे आदि पुरुष, आया हूँ तुम्हरी शरणाई॥
हे अनंत जिनको पूर्णतया, नहिं किसीनेभी अवतक जाना।
थक गये शेष शारद महेश, सुर असुर नाग किन्नर नाना॥
इस सकल जगत को निज बल से, जो इकले ही प्रगटाते हैं।
कर पालन पोषण अन्त में जो, फिर उसको नष्ट बनाते हैं।
कहलाते हैं फेर जो, जन रक्षक सुख धाम।
ऐसे दीनदयाल को, सादर करहुँ प्रणाम॥
फिर जिनको खुश करने के लिये, नित यज्ञ रचाया जाता है।
अर्चन वन्दन पूजन करके, जिनका यश गाया जाता है॥
जो रहते हैं सबके चित में, सबके आत्मा कहलाते हैं।
सब को सब विधि जानते हैं जो, जो व्यापक माने जाते हैं॥
फिर जिनको परंब्रह्म कहकर, सम्बोधन करते हैं योगी।
और जिनका अतुल विराट रूप, हृदय में धरते हैं योगी॥
जो सर्वरूप सर्वज्ञ आदि, नामों से पुकारा जाता है।
उस महापुरुष को गंग-तनय, आदर से शीश नवाता है॥
जिनके बलका आज तक, मिला नहीं है पार।
अनगिनती ब्रह्मांड जो, लेते सहजहि धार॥
फिर जिनका तेज है रवि से बढ़, शीतलता अधिक सुधाकर से।
वायू से श्रेष्ट पराक्रम है, गम्भीरता है अति सागर से॥
जिनका स्वरूप है बुद्धि और, इन्द्रियों के जानन योग नहीं।
जो सत व असत दोनों ही हैं, जिनकान आदि और अंत कहीं॥
उन जगत्पती आनन्द कंद, श्री कृष्णचन्द्र जगसांई को।
मैं प्रणाम करता हूँ हित से, कर दूर सकल दुचिताई को॥
फिर जिनको सकल पुराणों ने, पुरुषोत्तम कह उच्चारा है।
जिनके सुन्दर पद पद्मों से, प्रगटी गंगा की धारा है॥

जो एक होय कर भी अनेक, रूपों में देते दिखलाई।
नज दिव्य सेज को जिन्होंने है, श्री शेष की शैया अपनाई॥
जिनका स्वरूप वर्णन करते, मनका मनत्व मारा जाता।
द्रष्टा बन जाता दृश्य तुरत, और वक्ता वक्तव हो जाता॥
अस्तु जिन्हें कोई नहीं, सका प्रत्यक्ष निहार।
उस अव्यक्त स्वरूप को, प्रणवहुँ बारम्बार॥
हे विश्वम्भर हे विश्वात्मन, हे विश्व को प्रगटाने वाले।
हे लीलाधर हे मोक्ष रूप, हे सकल भुवन के उजियाले॥
हे नमस्कार मम बार बार, हे भक्त सुखद सादर तुमको।
कर दया दयानिधि दीनबंधु, भवसागर पार करो मुझको॥
हे हृपीकेष तुमने दी है, जो दिव्य दृष्टि उसके द्वारा।
मैं तुम्हरा प्राकृत रूप न लख, लखता हूँ विराट रूप सारा॥
पुंडरीकाक्ष ! तुम्हरा मस्तक, हो रहा है व्यास सकल घन में।
पांवों में पृथ्वी समा रही, छा रहा तेज सब त्रिभुवन में॥
वास्तव में जगदीश तुम, हो अनादि अव्यक्त।
किन्तु भक्त के वास्ते, बन जाते हो व्यक्त॥
हे प्रभु मैंने मुनि सेवा में, वर्षों का समय बिताया है।
तब कहीं उन्होंने थोड़ा सा, तुम्हरा प्रभाव बतलाया है॥
सौ यज्ञ रचाने वाला भी, निश्चय भूमी पर आता है।
पर कृष्ण का यश गाया जिसने, वह तुरत मोक्ष पद पाता है॥
चलते फिरते सोते जगते, जो कृष्ण का नाम सुमिरते हैं।
करते हैं कृष्ण का ही पूजन, और कृष्ण का ही व्रत रखते हैं॥
वे तजते ही नश्वर शरीर, नहिं जरा भटकने पाते हैं।
बल्की झट होकर कृष्ण रूप, श्री कृष्ण में जाय समाते हैं॥
अस्तृ हे अलसी-पुष्प सरिस, अति ही सुन्दर कांती धारी।
हे अच्युत हे गोविंद प्रभू, हे पीताम्बर धर बनवारी॥

मैं प्रणाम करता हूँ तुमको, हे कृपा सिंधु किरपा लाओ ।
इस दीन हीन का सोच मिटा, जल्दी स्वधाम में पहुँचाओ ॥

* गाना *

बिन, तुम्हरी दया गिरधारी नहीं होते है जीव सुखारी ॥
चाहे अतुलित दान दिलावे, यज्ञ करे चहे तीरथ जावे ।
पर न मिटे दुख भारी ॥ बिन० ॥
पर प्रभु जिन पर कृपा दिखावें, जन्म मरन उनके मिट जावें ।
पावें गति सुखकारी ॥ बिन० ॥
दीन जान मुझ पर भी स्वामी, दया दिखाओ अंतरयामी ।
आया हूँ शरण तुम्हारी ॥ बिन० ॥

इस प्रकार करके विनय, गंग तनय बलधाम ।
तनिक देर चुपचाप रह, फिर बोले हे श्याम ॥
उत्तर में रवि आ पहुँचे हैं, इसलिये प्रभू आज्ञा दीजे ।
ताके प्राणों का त्याग करूं, इतना कहना मेरा कीजे ॥
कर वचन श्रवण सच्चिदानन्द, भीषम के पास चले आये ।
और प्रेम दृष्टि से देख इन्हें, यों कहन लगे अति हरषाये ॥
हे शान्तनू-नन्दन तुमने, नहिं कोई पाप कमाया है ।
हर समय स्वच्छ आचरण राख, अपना सब जन्म बिताया है ॥
अस्तू खुश हो देता हूँ तुम्हें, आज्ञा वसुलोक* सिधाने की ।
जहां से आये थे भूमी पर, बस उसी भुवन में जाने की ॥
आयसु पा गोविंद की, हरषे गंग-कुमार ।
बंद किये दोउ नेत्र झट, कृष्णरूप हिय धार ॥
फिर योग से ज्यों ज्यों प्राणों को, वे ब्रह्मांड में लेजाने लगे ।
त्यों त्यों नीचे के अंग सभी, तेजस्वी दृष्टी आने लगे ॥

* वसुलोक का हाल पहिले भाग में आ चुका है ।

आखिर उनके मस्तक में से, एक ज्योति निकल बाहर आई ।
इस तरह महा मनि भीषम ने, अपनी देही को बिसराई ॥
भीषम सदृश्य अनुभवी, सकल गुणों की खान ।
इस वसुंधरा पर कहीं, हुआ नहीं कोई आन ॥
इनके जीवन के कामों की, यदि समालोचना की जावे ।
तो सिवाय धर्माचरणों के, कुछ और नहीं दृष्टी आवे ॥
जब भी जो इन्होंने काम किया, था नहीं सचाई से खाली ।
बस आदि से लेकर अंत तलक, शास्त्रों की मर्यादा पाली ॥
केवल निज पितु के सुख के लिये, आजन्म ब्रह्मचर्यः धारा ।
अति ही दुर्लभ सब राज्य और, पत्नी के सुख को तज डारा ॥
फिर भ्राताओं के पुत्रों को, पाला और सद् उपदेश दिया ।
होते हि योग्य उनको झटपट, अति हित से राज्यभिषेक किया ॥
ये मालुम होते हुये भी कि, कौरव सब दुष्ट अधर्मी हैं ।
और पांडव पूरे सतवादी, कर्तव्य निष्ट और धर्मी हैं ॥
ये केवल निज कर्तव्य समझ, दुर्योधन के साथी बनकर ।
लड़ने के लिये तयार हुये, हथियार हाथ में धारन कर ॥
इनके सब बर्ताव पर, करते जब हम गौर ।
यही विदित होता है कि, इस सम हुआ न और ॥
अल किस्सा इनके मरते ही, सब ही को दुःख हुआ भारी ।
फिर अति सुन्दर एक चिता बना, की दग्ध करन की तैयारी ॥
करके अंतेष्टि क्रिया आखिर, ये सब आये गंगा तट पर ।
और देने लागे जलांजली, चितमें अति शोकाकुल होकर ॥
इस समय फेर श्री धर्मराज, व्याकुल हो रुदन मचाने लगे ।
तब कृष्ण व वेद व्यास मुनी, इनको उपदेश सुनाने लगे ॥
और कहा अंत में नृप तुम्हें, अब अश्वमेध करना चहिये ।
चित की अशान्ति दुःखशोक सभी, इसके द्वारा हरना चहिये ॥

इन दोनों के वचन सुन, धर्मराज भूपाल ।
अति उदास हो चित्त में, कहन लगे तत्काल ॥

भगवन् मुझ को ये मालुम है, यह यज्ञ सकल सुख करता है ।
मन के व वचन के कर्मों के, सारे पापों को हरता है ॥
लेकिन मुझको ये अनुष्ठान, करना लगता अति ही भारी ।
क्योंकि इस महा घोर रण में, होगई नाश सम्पति सारी ॥
फिर आस पास के राजपुत्र, और प्रजा है दीन अवस्था में ।
इस हालत में यज्ञ करने की, किस तरह से करूं व्यवस्था मैं ॥

ये सुनकर कहने लगे, मुनिवर वेद व्यास ।
धन के लिये नृपाल तुम, होउ न तनिक उदास ॥

हम यत्न बताते हैं जिससे, इतनी सम्पति मिल जायेगी ।
इस एक यज्ञ की बात है क्या, सौ में भी नहीं चुक पायेगी ॥
एक समय किसी महाराजा ने, हिमिगिर पर यज्ञ रचाया था ।
उस समय दक्षिणा में उसने, धन इतना अधिक दिलाया था ॥
कि चल न सका वो विप्रों से, तब वे सारे मजबूर हुये ।
और छोड़ द्रव्य को उसी जगह, वे तुरत वहां से दूर हुये ॥
वो ढेर स्वर्ण का अभी तलक, है पड़ा वहीं पर नरराई ।
उसको अपने घर में लाकर, ये यज्ञ रचाओ सुखदाई ॥

इतना कह मुनिराज ने, जगह दई बतलाय ।
ये सुन धन लाने चले, पांचों पांडव भाय ॥

जाती विरियां प्रभु से बोले, एक बात सुनो हे जगदीश्वर ।
हम तो पांचों ही जाते हैं, धन लाने शैल हिमालय पर ॥
और कृप्या आप यहां रहकर, ताया को ज्ञान सुनाते रहें ।
है उन्हें सुतों का शोक बहुत, अस्तू धीरज बंधवाते रहें ॥

इतना कह कुछ फौज को, लेकर अपने साथ ।
धौम्य पुरोहित के सहित, चले शीघ्र नर नाथ ॥

अगणित सरितायें वन उपवन, कई उत्तम नगर विहा करके ।
कुछ दिनों बाद बर्फ से ढके, गिरवर पर पहुँचे जा करके ॥
और फिर ढूंढी वह जगह तुरत, जो व्यास ने इन्हें बताई थी ।
और जिसने अपने गर्भ मांहि, अतुलित सम्पत्ति छिपाई थी ॥

यहां आ डेरे डाल कर, धर्मराज नर नाह ।
लगे देखने शुभ दिवस, के आने की राह ॥

आते ही उत्तम दिन सबने, हर्षित होकर उपवास किया ।
और बड़े प्रेम से अष्ट प्रहर, कैलाशनाथ का नाम लिया ॥
फिर अति उत्तम सामग्री से, पूजा कीन्हीं त्रिपुरारी की ।
देवेश, उमेश, महेश, प्रभो, कमारी, जन दुख हारी की ॥
इसके उपरान्त द्रव्य स्वामी, श्री कुवेर जी को सिर नाया ।
तब कहीं भूमि के खोदन का, हो खुशी हुक्म झट फरमाया ॥

आज्ञा पाते ही उठे, नृप के दास तमाम ।
भूमि खोदने का तुरत, शुरू कर दिया काम ॥

कुछ ही देरी के बाद वहां, अतुलित दौलत दृष्टी आई ।
निकले कई घड़े कढ़ाव आदि, ये लख हर्षे पांचों भाई ॥
आखिर सारे धनको लदवा, ऊंटों और रथों खच्चरों पर ।
हस्तिनापुर की ओर चले, यज्ञ करनकी इच्छा चित में धर ॥
श्रोताओं नगरी के समीप, ये तो कई दिन में आवेंगे ।
तब तक जो हाल रहगया है, उसको हम तुम्हें सुनावेंगे ॥
ये तुम्हें याद होगा जब के, अभिमन्यु स्वर्ग सिधाया था ।
तब उनकी पत्नि उत्तरा ने, जलकर मर जाना चाहा था ॥

पर श्री कृष्ण ने रोक इसे, यों कहा था तू है गर्भवती ।
इसलिये पति के साथ में तू, हरगिज नहिं हो सकती है सती ॥

बैठ गई थी उत्तरा, ये सुनकर मन मार ।
पुत्र दर्श की चाह से, चित में धीरज धार ॥

आगया जन्म लेने का समय, इसवक्त निकट उस बालक का ।
पांडवों के कुलके, नहीं नहीं, सब कौरव कुलके पालक का ॥
आखिर लड़का उत्पन्न हुआ, पर बिल्कुल ही छबि छीन था वो ।
हो रहा था स्याह बदन सारा, और फिर प्राणों से हीन था वो ॥
ब्रह्मास्त्र १ ने अश्वत्थामा के, इसको निर्जीव बनाया था ।
अपनी ज्वाला से गर्भहि में, जीवन को तुरन्त सुखाया था ॥
इस रण में पांडु कुमारों के, सब सुतों ने जान गमाई थी ।
अब आगे कौन भूप होगा, सबको ये चिन्ता छाई थी ॥
द्रौपदी, सुभद्रा, कुन्ति आदि, अभिमन्यू के इस बालक पर ।
बस आशा लगाकर बैठी थीं, सारे कुल का अधार गिनकर ॥

पै अकाल में ही इसे, प्राण हीन अवलोक ।
सभी नारियों को हुआ, महा भयानक शोक ॥

जिसमें उत्तरा की हालत तो, बस नहीं बखानी जाती थी ।
वो तरुणांगी निज मस्तक धुन, भूमी पै पछाड़ें खाती थी ॥
मर चुका था पति बचपन में ही, फिर थी जिस पर आशा सारी ।
वह प्रथम पुत्र भी नष्ट हुआ, ये लख उपजा संकट भारी ॥
अस्तू अति ही ऊंचे स्वर से, ये बाला रुदन मचाने लगी ।
हा भगवन् अब कैसी होगी, यों कह जल धार बहाने लगी ॥

१ देखो २० वों भाग ।

*** गाना ***

करूं मैं कैसी हे दीनबंन्धू धरूं हृदय मे हा धीर क्यों कर ।
होगी न कोई भी नारि मेरे सरिस अभागिन जहां के अंदर ॥
युवा अवस्था हुई है जबसे मिला नहीं कुछ भी चैन तब से ।
चले गये हैं गिराके प्रीतम पहाड़ दुख का हमारे सिर पर ॥
थी आशा मेरी भुवन पै सारी होऊंगी इसको लख सुखारी ।
मगर जनमते ही ये भी तन तज सिधाया है हाय कालके घर ॥
कहा था प्रभु ने वचन है मेरा बनेगा राजा ये पुत्र तेरा ।
दिखाया किस्तम ने कृष्ण के भी वचन को बिल्कुल गलत बनाकर ॥
ये सत्य है जबके वक्त फिरता हितू भी मुखसे न बात करता ।
बस अबतो येही उचित है मुझको तजूं ये जीवन चिता में जलकर ॥

एकाएकी श्रवण कर, शोर रुदन का घोर ।
अंतःपुर पहुंचे तुरत, नटवर नंद किशोर ॥

इनको लखने हि स्त्रियों का, होगया शोक दूना पल में ।
अति ही कातर स्वर मे रोकर, सारी गीरगईं अवनितल में ॥
आखिर ज्यों त्यों कर कुन्ती ने, अपने चित्त में धीरज धारा ।
और मृतक पुत्र के होने का, नटवर से हाल कहा सारा ॥
फिर कहा अंत में हे गिरधर, हे वासुदेव शारंगपानी ।
महा बाहु यदुकुल जीवन, हे भक्तसुखद सब गुणखानी ॥

तुम्हीं प्रतिष्ठा अरु गती, हो हमरी भगवान ।
तुम्हीं से जीवित पांडु कुल, है जग के दरम्यान ॥
अस्तु हे यदुवंशी योधा, एक विनय हमारी हृदय धरो ।
निज प्रियः भानजे के सुत को, कर किरपा जिन्दा शीघ्र करो ॥

जा रही थी जब जलने के लिये, उत्तरा पती १ के मरने पर ।
तब तुमने इससे कहा था ये, क्या करेगी तू तन बिसराकर ॥
है गर्भ में जो तेरे लड़का, वो नहिं साधारण प्राणी है ।
बल्कि है अति ही तेजस्वी, और सारे गुण की खानी है ॥
एक समय आयगा जब ये सुत, भारत का राज चलायेगा ।
कई राजाओं से पूजित हो, सम्राट की पदवी पायेगा ॥
पर केशव ये तो जन्मत ही, यमराज के भवन सिधारा है ।
अब कौन बनेगा महाराजा, कहां रहा वह वाक्य तुम्हारा है ॥

अस्तु प्रभू इस बालको, दे प्राणों का दान ।
सच्चा अपने वाक्य को, करिये कृपानिधान ॥

पुंडरीकाक्ष ! ये ही बच्चा, पांडव कुल का आधारा है ।
यदि ये जीवित नहिं हुआ तो फिर, नस जायेगा कुल सारा है ॥
इसलिये देवकीनन्दन इस, बालक में प्राण बुलाओ तुम ।
कौरव और पांडव वंशों को, होने से नष्ट बचाओ तुम ॥
यदि तुम चाहो कर सकते हो, जिंदा ये मरा हुआ त्रिभुवन ।
फिर इस एक नन्हें बालक की, क्या बात है सोचो तो भगवन ॥
इतना कह अति दुख के कारन, गिरगई कुन्ति बेसुध होकर ।
तब उठा इसे और धीरज दे, यों कहन लगे गिरधर नागर ॥

बुआ कभी नहिं होयगा, मेरा वचन अलीक ।
जो कुछ मैंने है कहा, होगा निश्चय ठीक ॥

इतना कहकर जगदीश ईश, आनन्दकंद श्री युदुराई ।
इन सब को सम्बोधन करके, यों बोले बानी सुखदाई ॥

---

१ देखो १८ वां भाग ।

मैंने निज मुख से झूंठ बात, यदि कभी नहीं फरमाई हो ।
होकर रण से पराङमुख यदि, मैंने न पीठ दिखलाई हो ॥
और गऊ ब्राह्मण यदि मुझको, प्यारे हों प्राणों से बढ़कर ।
करते हों बस हरदम निवास, यदि सत्य धर्म दिल के अंदर ॥
फिर न्याय पूर्वक यदि मैंने, केशी व कंस संहारा है ।
यदि चला हूँ मैं धर्मानुसार, अघ को न कभी चित धारा है ॥
तो ब्रह्म-अस्त्र द्वारा मृत्यू, को प्राप्त हुआ बस बालक ये ।
फौरन ही जिन्दा हो जाये, कुरु पांडु वंश का पालक ये ॥
होते ही प्रभु की बात पूर्ण, लड़के में चेतनता आई ।
हिल उठे हाथ और पांव दोऊ, चहरे पर सुन्दरता छाई ॥

ये लखते ही छागया, अंतःपुर में सुःख ।
प्रभु अस्तुति होने लगी, हवा हुआ सब दुःख ॥

लड़के का नाम परीक्षित रख, आनन्दकंद बाहिर आये ।
इस घटना के एक मास बाद, पांडवों के समाचार पाये ॥
कि धन लेकर आरहे हैं वे, ये सुनते ही शारंगपानी ।
झट नगरी के बाहिर आये, और कीन्हीं सादर अगवानी ॥
सब हाल श्रवण कर कुन्ती से, अति सुखी हुये पांचों भाई ।
और हाथ जोड़कर शीश झुका, यदुनन्दन की अस्तुति गाई ॥
फिर किया पौत्र का जन्मोत्सव, सज उठा हस्तिनापुर सारा ।
जलसे के कुछ दिवस बाद, श्री व्यास ने पुर में पगधारा ॥

पदवंदन कर व्यास के, बोले धर्म-कुमार ।
अश्वमेध यज्ञ के लिये, हैं अब हम तैयार ॥

जलदी से शुभ मुहूर्त लखकर, यज्ञ करने का कारज कीजे ।
और चाह हो जिन २ चीज़ों की, उनको हमसे मंगवालीजे ॥

ये सुन ऋषि ने शुभ समय देख, सामान यज्ञ का मंगवाया।
और दीक्षित करके राजा को, एक श्याम कर्ण हय छुड़वाया॥
इस घोड़े की रक्षा के लिये, अति पराक्रमी भट बलवानी।
अर्जुन को पास बुला करके, यों कहन लगे नृप गुणखानी॥
हे भाई तुमही लायक हो, घोड़े के संग जाने के लिये।
चहुंदिशि के राजाओं से लड़, इसको वापिस लाने के लिये॥
जो बिना लड़े कर दे देवे, उसकी तो कुछ भी बात नहीं।
लेकिन जो अकड़े उसका भी, हे भ्राता करना घात नहीं॥

केवल थोड़ा बल दिखा, बस में करना वीर।
जाओ प्रभु रक्खे सदा, तुम्हरा कुशल शरीर॥

आज्ञा पाते ही बली पार्थ, अपना प्यारा गांडीव उठा।
चल दिये तुरत रथ पर चढ़ कर, कुछ चतुरंगिनि सेना सजवा॥
कई काम जरूरी होने से, नृप ने गिरधर को ठहराये।
इसलिये कुन्ति नन्दन अर्जुन, इस समय अकेले ही धाये।
भारत की घोर लड़ाई में, कट मरे थे सारे बलवानी।
उनके बेटे पोते थे मगर, वे नहीं थे उन सम भटमानी॥
अस्तू जहां जहां वो अश्व गया, सब "कर" देते दृष्टी आये।
कुछ हठी युवा नृप लड़े किन्तु, वे हार मान वापिस धाये॥

इससे बिन कुछ विघ्न के, फिरता देश विदेश।
गया अंत में अश्व ये, त्रिगर्तियों के देश॥

यहां वीर सुशर्मा का लड़का, रविवर्मा महा धनुर्धारी।
करता था राज काज सारा, ले अपने संग सेना भारी॥
निज पिता के घातक अर्जुन को, अपने पुर में आया सुन कर।
ये महाराजा गरमाय उठा, पड़ गये तुरत बल भृकुटी पर॥

अपने सेनप को बुला, बोला ये भूपाल ।
सेनापति जाकर सजो, कटकाई तत्काल ॥

और इसके द्वारा अश्व पकड़, घुड़शाला भीतर पहुँचाओ ।
फिर भुजबल दिखा परम शत्रू , अर्जुन को यमपुर भिजवाओ ॥
ये सुन सेनप ने करी तुरत, सेना सजने की तैयारी ।
और इधर भूप भी रण को चला, धारन करके आयुध भारी ॥
आकर इन लोगों ने समीप, घोड़े को फौरन पकड़ लिया ।
चहुँदिशि से नाका बंदी कर, अर्जुन से लड़ना शुरू किया ॥
रविवर्मा के शर तजने की, फुरती अवलोक कुन्तिनन्दन ।
हो खुशी इसे बच्चा गिन कर, बस करन लगे साधारन रन ॥
फिर कहन लगे हे त्रिगर्तनृप, निश्चय ही तुम बलवानी हो ।
निज पिता सुशर्मा के सदृश्य, रण पंडित हो भटमानी हो ॥

हरषाये हम चित्त में, लख कर युद्ध तुम्हार ।
अब जल्दी से लाय कर दे दो अश्व हमार ॥

बहलाय दिया है मन तुम्हरा, हमने मामूली रण करके ।
अब घर जाओ नृप हरषा कर, मेरा उपदेश हृदय धरके ॥
भूपाल युधिष्ठिर ने चलती, बिरियां, ढिंग मुझे बुलाया था ।
और अति ही कोमल बानी से, ऐसा उपदेश सुनाया था ॥
धना मत किसी नरेश को तुम, जहां तक सम्भव हो हे भाई ।
स इसीलिये हम इस रण में, दिखलाय रहे हैं नरमाई ॥
द तुमने कहा नहीं माना, तो क्रोध अग्नि बढ़ जावेगी ।
जिससे पल भर में ही तुम्हरी, सब शान नष्ट हो जावेगी ॥

कुन्ति नन्दन पार्थ ने, समझाया इस तौर ।
पर उस हटी नरेश ने, किया नहीं कुछ गौर ॥

उल्टे क्रोधित हो धनुष चढ़ा, उसने एक ऐसा शर मारा ।
जिस ने लगते ही अर्जुन का, घायल कर दिया हाथ सारा ॥
ये लख गुस्से की हद न रही, इस पांडु पुत्र बलधारी की ।
गांडीव तानकर राजा को, बस बधने की तैयारी की ॥
दो चारहि शर छोड़े होंगे, कि वह लड़का घबराय गया ।
और हार मान घोड़ा देकर, फौरन निजभवन सिधाय गया ॥

यहां से मुक्ती पायकर, फेर अश्व तत्काल ।
पहुँचा जहां भगदत्त का, लड़का था भूपाल ॥

था ये भी अपने पिता सरिस, बलवानी वीर धनुर्धारी ।
इसने भी घोड़ा पकड़ तुरत, कीन्हीं लड़ने की तैयारी ॥
और आकर अर्जुन के समीप, बोला ये घमंडी राज कुंवर ।
हे पार्थ छोड़कर अश्व यहीं, बस लौट जाओ अपने घर पर ॥
वरना तुम्हरी रण चतुराई, बस धूल में अभी मिला दूंगा ।
सारी सेना को मार काट, यमपुर की तरफ पठा दूंगा ॥

कहा पार्थ ने वृथा ही, अपने गाल बजात ।
यदि कुछ बल है तो उसे, क्यों न मूर्ख दिखलात ॥

ये सुनते ही भगदत्त सुवन, एक वृहत हस्ति पर चढ़ धाया ।
और धनुश तान अति क्रोधित हो, शर झुंड पार्थ पर बरसाया ॥
लेकिन बलवान कुन्ति सुत ने, इस नृप की एक न चलने दी ।
बहुतेरा उसने यत्न किया, पर जरा दाल नहिं गलने दी ॥
पल पल में होता गया भूप, घायल इनके शर खाकर के ।
आखिर फिर जब कुछ बस न चला, तो भागा जान बचाकर के ॥
उपरान्त इसके घोड़े समेत, फिर अर्जुन सिंधु देश आये ।
जयद्रथ की मृत्यू की सुधिकर, यहां के कई योधा गरमाये ॥

साज कटक चतुरंगिनी, ये सब पहुँचे आय ।
करन लगे रण पार्थ से, अति उत्साह दिखाय ॥

कुन्ती सुत के धनुवां से भी, कई तरह के तीर बरसने लगे ।
जिनसे घायल हो शत्रु कई, गिरकर भूमी पर तड़फने लगे ॥
पर हटे नहीं ये लख कर के, अर्जुन ने उग्रमूर्ति धारी ।
कुछ तीव्र बाण तज कर उनको, कर दिया विकल पल में भारी ॥
धृतराष्ट्र की पुत्रि दुःशला ने, जो थी जयद्रथ की पटरानी ।
जब यहां का सारा हाल सुना, तो चित में अतिशय अकुलानी ॥
अपने नन्हे से पौते १ को, ले गोद में रोती चिल्लाती ।
चढ़कर स्यंदन पर तहां आई, जहां खड़े थे अर्जुन रिपुघाती ॥

पांडु पुत्र के चरण में, इस बालक का शीश ।
रख कर ये मांगन लगी, उसके लिए अशीश ॥

लख विधवा भगनी को सन्मुख, कुन्ती सुत हुये विकल भारी ।
रख दिया धनुष नीचे फौरन, और कहन लगे धीरज धारी ॥
प्रभु इस बच्चे को खुश रक्खे, ये आशिर्वाद सुनाता हूँ ।
अब जाओ बहन भवन जाओ, मैं भी बस आगे जाना हूँ ॥
यों कह घोड़े के साथ साथ, श्री पाँडु पुत्र आगे धाये ।
कई जगह युद्ध कर वीरों से, जय पाते मणिपुर में आये ॥
यहाँ के नृप बभ्रूवाहन ने, जब सुना कि पिता पधारे हैं ।
तो अति हरषाकर कहन लगा, धन धन सौभाग्य हमारे हैं ॥

यों कह दौड़ा शीघ्र ये, तज कर सारा काम ।
और पार्थ के पास आ, करने लगा प्रणाम ॥

---

१ जयद्रथ के पुत्र ने जब सुना कि अर्जुन ने पुर पर धावा किया है तो डर के मारे उसने आत्महत्या कर ली अस्तु दुःशाला पौते को लेकर आई थी ।

दैवयोग से आ गई, यहां उलूपी नारि ।
बभ्रूवाहन को निरख, बोली कुछ फटकारि ॥

रण की इच्छा से आये हुए, योधा का तू आगत स्वागत ।
नामर्दों सदृश्य करता है, तेरे क्षत्रीपन पर लानत ॥
अस्तू पहिले भुजबल दिखला, निज पिताको खुशी बनाओ तुम ।
इसके उपारन्त मुदित होकर, चरणों में शोश झुकाओ तुम ॥
कर चाह हृदय में लड़ने की, पितु हो, गुरु हो वा भाई हो ।
हो चाहे रिश्तेदार कोई, या इष्ट मित्र सुखदाई हो ॥
यदि अपने घर पर आ जावे, तो कभी न भय खाना चहिये ।
बल्की क्षत्रिय धर्मानुसार, निज शक्ती दिखलाना चहिये ॥
मैं तेरी सौतेली मां हूँ, इसलिये मेरा कहना मानो ।
तजकर सब संशय को बेटा, निज पितु से लड़ने की ठानो ॥
इसके उत्साहित करने से, बभ्रू रण को तैयार हुआ ।
फिर पिता पुत्र में घण्टों तक, तीरों से युद्ध अपार हुआ ॥
आखिर दे हांक पार्थ सुत ने, एक ऐसा तीक्षण शर मारा ।
जिसने लगते ही अर्जुन के, हृदय को तुरत बेध डारा ॥

जिससे थोड़ी देर में, तजे पार्थ ने प्राण ।
ये लखते ही हो गया, बभ्रू दुखी महान ॥

हा पिता हा पिता चिल्लाता, गिर गया तुरत चक्कर खाकर ।
ये सुनकर चित्रांगदा तुरत, आ पहुँची घटना स्थल पर ॥
और अपने लोचन लाल बना, उस नाग सुता को धिक्कारा ।
फिर कहा पती को मरवाकर, क्या पाया तैनें यश भारा ॥
अब या तो इसको जिन्दा कर, वरना में भी मरजाऊंगी ।
जिस जगह गये हैं पति देव, पल भर में वहीं सिधाऊंगी ॥

ये सुन दुख पाय नाग कन्या, अति आतुर हो यहां से धाई।
और कुछ ही देरी में लेकर, संजीवन मणि *वापिस आई॥

रक्खी मणि को पार्थ के, हृदय पर सुखमान।
जिससे कुछ ही देर में, जाग उठे बलवान।

ये सारा हाल श्रवण करके, इनको अत्यंत खुशी छाई।
फिर हृदय लगाय पत्नियों को, आगे जाने की ठहराई॥
दे यज्ञ का न्योता इन सबको, श्री कुन्ति सुवन आगे धाये।
भ्रमते भ्रमते कुछ दिनों बाद, आखिर हस्तिनापुर में आये॥

इसके आने की खबर, पाकर पांडव वीर।
चले चित्त में हर्षते, लेकर संग यदुवीर॥

पुर के बाहिर आ अर्जुन से, इन सब लोगों ने भेंट करी।
और अति ही उत्तम गंधयुक्त, मालायें इनके कंठ धरी॥
फिर इन्हें साथ लेकर पहुँचे, यज्ञशाला में चारों भाई।
इसके उपरान्त व्यास मुनि ने, यज्ञ के करने की ठहराई॥

आखिर कुछ दिन में किया, यज्ञ इन्होंने पूर्ण।
हर्ष मित्र व शत्रु का, हुआ गर्व सब चूर्ण॥

इस यज्ञ के बाद पांडवों का, कुल राज उपद्रवहीन हुआ।
ही वर्णों के लोगों का, मन धर्म मांहि लवलीन हुआ॥
कुछ दिनों बाद यदुपति, आनन्दकंद शारंगपानी।
भूपाल युधिष्ठिर के ढिंग आ, बोले विनीत कोमल बानी॥
हे धर्मराज कई दिवस हुये, मुझको द्वारावति से आये।
तब से पितु माता के सुंदर, दर्शन नहिं आंखों ने पाये॥

* उलपी ने अर्जुन को जिलाने की प्रतिज्ञा की थी, इसका हाल छटे भाग मे आ गया है।

अस्तु यदि आज्ञा हो तो मैं, आनंद सहित निज पुर जाऊं ।
और रिश्तेदारों के दर्शन, करके हृदय को बहलाऊं ॥
प्रभु का कहना कुन्तीसुत ने, अति ही कठिनाई से माना ।
फिर कहा, कृष्ण! हम लोगों को, कहिं घर जाकर न भूल जाना ॥

यों कहकर नृप ने लिया, सब सामान मंगाय ।
तत्पर चलने के लिये, हुये तुरत यदुराय ॥

प्रभु के जाने के समाचार, पल में हस्तिनापुर में छाये ।
दर्शन की चाह हृदय में धर, आतुर हो पुर वाले धाये ॥
केवल थोड़ी ही देरी में, हो गई जमा रैयत सारी ।
और लगी दिखाने नटवर के, दर्शनों की उत्कंठा भारी ॥
ये लखकर वीर युधिष्ठिर ने, सब लोगों का सत्कार किया ।
"दरबार आम होगा" ऐसा, हरषा कर फौरन हुक्म दिया ॥

ये सुन सारे खुश हुये, हुआ फेर दरबार ।
जिसमें थे छोटे बड़े, पुर के सब नरनार ॥

यहां मध्य में एक सिंहासन पर, आसनासीन थे बनवारी ।
जिसके समीप ही बैठे थे, नृप धर्मराज शोभाधारी ॥
दायें बायें भीमार्जुन और, सहदेव नकुल के आसन थे ।
और वहां विदुर धृतराष्ट्र के भी, कंचन मंडित सिंहासन थे ॥
विद्वान् विदुर की गोदी में, कुछ दिन का वह नन्हा बालक ।
युवराज परिक्षित बैठा था, कौरव पांडव कुल का पालक ॥
दरबार के एक तरफ थे सब, सेना के क्षत्री बलधारी ।
और तरफ दूसरी शोभित थे, मुनि योगी बाल ब्रह्मचारी ॥
इनके आगे सब पुर वाले, बैठे थे चुप्प लगाये हुये ।
सच्चिदानंद के चहरे पर, बस इकटक दृष्टि जमाये हुये ॥

सन्नाटा लख सभा में, धर्म राज मतिधीर।
करके सम्बोधन सबहि, बोले वचन गम्भीर॥

हे सकल उपस्थित सरदारों, हम लोगों के मंगलकारी।
अति स्नेही सुख देने वाले, सच्चिदानंद गिरवर धारी॥
जिनके गुण गण को अष्ट प्रहर, सुर असुर नाग नर गाते हैं।
वे कृष्ण आज हम लोगों को, तजकर द्वारावति जाते हैं॥
गो हमें खटकता है अतिशय, श्री कुंजविहारी का जाना।
पर बेबस हैं अस्तू चित को, ज्यों त्यों कर होगा समझाना॥
इन यदुनंदन के किये हैं जो, उपकार असिन हम लोगों पर।
उन सबका तो वर्णन करना, है मेरे लिये महा दुष्कर॥
लेकिन जो कुछ हैं याद मुझे, उनको ही मैं बतलाता हूँ।
टूटे फूटे शब्दों द्वारा, यदुराई के गुण गाता हूँ॥
ये इन्हीं की किरपा है जिससे, मैं बना राज का अधिकारी।
करके विध्वंस शत्रुओं को, वस में कीनी भूमी सारी॥
जब राजसूय १ यज्ञ करने की, हम लोगों ने ठहराई थी।
तब इन्हीं महात्मा ने हमको, कर दया मदद पहुँचाई थी॥
अति बली जरासंध इनके ही, कौशल द्वारा संसार हुआ।
शिशुपाल भी इनही के बल से, मरने के लिये तयार हुआ॥

कुरु सभा में फेर जब, दुःशासन दुख मूल।
द्रौपद की प्रिय पुत्रिका, खींचन२ लगा दुकूल॥

भी कर दया इन्होंने ही, साड़ी बेहद बढ़ाई थी।
यों दुष्ट अधम के हाथों से, अबला की लाज बचाई थी॥
वन ३ में भी धीरज दीन्हा था, हम सबको इन्हीं मुरारी ने।
और शाप ४ से दुर्वासा के भी, रक्षा की थी गिरधारी ने॥

१ देखो ७ वां भाग। २ देखो ८ वा भाग। ३ देखा ९ वा भाग। ४ देखा १० वा भाग।

फिर बारह बरसों की अवधि, पूरी करके दुर्योधन से।
मांगा था हम सबने अपना, कुल राजपाट सीधेपन से॥
लेकिन नट करके जब उसने, ठानी थी युद्ध मचाने की।
तब इन्हीं ने विपति उठाई थी, यहां आ उसको समझाने[1] की॥
प्रभु जानते थे यदि युद्ध हुआ, भारत गारत हो जायेगा।
वर्षों प्रयत्न करने पर भी, इस हालत में नहिं आयेगा॥
इसलिये स्वयं ये दूत बने, हो करके भी त्रिभुवन नायक।
पर कौरव पति ने सुने नहीं, इनके हित वचन सुःख दायक॥
आखिर सब पहुँचे कुरुक्षेत्र, कर में लेले हथियारों को।
वहां पर हम लोगों के अधार, अर्जुन लख रिश्तेदारों को॥
फंस गये मोह में और युद्ध, करने से जब इन्कार किया।
तब इन्हीं दयामय ने देकर, उपदेश[2] उन्हें तैयार किया॥
दादा[3] से लड़ते समय भी हम, जब नित्य प्रति घबराते थे।
तब ये ही अमृत वचन सुना, हमको धीरज बंधवाते थे॥

आगे जब जयद्रथ[4] नहीं, लगा पार्थ के हाथ।
संध्या होने आगई, छिपन लगे दिननाथ॥

तब इन्हों ने ही माया द्वारा, सूरज पलमांहि छिपाया था।
यों सिन्धु भूप को बध करवा, अर्जुन का प्राण बचाया था॥
वरना प्रण के माफिक भाई, अग्नी में जलकर मर जाता।
तो हम चारों में से भि नहीं, कोई जिन्दा रहने पाता॥

अस्तू हम सब के रखे, दीन बंधु ने प्राण।
जय जन दुख हारी प्रभो, जयति जयति भगवान॥

---

१ देखो १४ वा भाग। २ देखो १५ वां भाग। ३ देखो १६ वां भाग। ४ देखो १८ वा भाग।

गुरुसुत के नारायण शरसे१, भी यही बचाने वाले हैं ।
और यही कर्ण के नाग अस्त्र२, को वृथा बनाने वाले हैं ॥
आगे फिर जब नृप धृतराष्ट्र, पुत्रों की मृत्यु कथा सुनकर ।
अति क्रोधित होय वृकोदर को, तैयार हुये थे वधनेपर ॥
तब यही मूरती थी जिसने, श्री भीम३ की जान बचाई थी ।
लोहे की प्रतिमा आगे कर, ताया की प्यास बुझाई थी ॥
और लखो विदुर की गोदी में, जो बालमूर्त्ति दृष्टि आती ।
ये इन्हीं की किरपा का फल है, वरना ये कभी की नस जाती ॥
दे जीवन दान परिक्षित४ को, अनुपम उपकार किया प्रभुने ।
इस नसते हुये पांडु कुलको, कर दया उबार लिया प्रभुने ॥

सिवाय इनके सैंकड़ों, किये हमारे काम ।
ऋणी रहेंगे कृष्ण के, हम सब आठों याम ॥

* गाना *

(तर्ज.—वेदों का डंका आलम मे .. . ..)

त्रिभुवन में सुन्दर यश अपना फैला दिया श्याम विहारी ने ।
जन हेतु निगुण से सगुण बना दिखला दिया श्याम विहारी ने ॥
जग मे बढ़ गये अधर्मी थे, संतों को दुख देने वाले ।
उनका पल भर में नामो निशां, उठवा दिया श्याम बिहारी ने ॥
हो चला था सच्चा धर्म गुप्त, सब ओर पाप छाजाने से ।
कर दया उसे फिर से प्रचलित, करवा दिया श्याम बिहारी ने ॥
तज के दुनिया की आश सभी, जिन शरण गही थी नटवर की ।
उनको निज धाम सुनाम सहित, पहुँचा दिया श्याम विहारी ने ॥

---

१ देखो १९ वां भाग । २ देखो १९ वां भाग । ३ देखो २० वा भाग । ४ यह कथा इसी भाग में आ चुकी है ।

आ जन्म स्वार्थ मे फंसे रहे, नहि नाम प्रभू का लिया कभी ।
करके किरपा ऐसों को भी, अपना लिया श्याम बिहारी ने ।

इतना कहकर कुन्ती सुत ने, अति प्रेम से इनको सिरनाया ।
सब सभासदों ने भी सुखपा, भक्ती से इनका गुण गाया ॥
फिर यदुपति का एक ही स्वर से, सब जय जय कार सुनाने लगे ।
आखिर जब ये सब बंद हुवा, तब बनवारी फरमाने लगे ॥
हे धर्मराज तारीफ मेरी, श्री मुख से आप जो करते हैं ।
इससे हम अपने जीवन को, सचमुच ही धन्य समझते हैं ॥
पर असल में यदि देखा जावे, तो हम न बड़ाई योग्य कभी ।
ये आपके धर्माचरणों का, है भूप प्रत्यक्ष प्रभाव सभी ॥
तुमने बचपन से ले अबतक, हर समय धर्म को धारा है ।
बस वही मदद देने वाला, पद पद पर बना तुम्हारा है ॥
जो सत्य के होते अनुयायी, धर्मानुसार जो चलते हैं ।
उन महा पुरुषों की सत्य धर्म, निशि दिन रखवाली करते हैं ॥
क्या कहूँ अधिक धर्मात्मा से, मृत्यु भी हृदय डराती है ।
उसके तेजो प्रभाव को लख, सन्मुख आते थर्राती है ॥

अभिवादन अब गृहन मम, करो भूप सुखमान ।
द्वारावति को शीघ्र ही, करूंगा मैं प्रस्थान ॥

इतना कहकर आनन्द कंद, सबसे सब तरह भेट करके ।
चल दिये द्वारका की जानिब, अपने सुन्दर रथ पर चढ़ के ॥
इनके कुछ दिनों बाद कुन्ती, धृतराष्ट्र विदुर और गंधारी ।
चल दिये विपिन में तप करने, तन पर बल्कल वस्तर धारी ॥
शतयूप मुनि के आश्रम में, रह सभी तपस्या करने लगे ।
आनन्दायक परमात्मा का, अति हित से नाम सुमरने लगे ॥

एक रोज जेष्ठ कुन्तीसुत के, दिल में ये उत्कंठा छाई।
मांका दर्शन करना चहिये, अस्तु ये चले अति हर्षाई॥
होगई भेट सब से पहिले, श्रीमान विदुर जी से इनकी।
देखा मुख तो तेजो मय है, पर हालत दुर्बल है तनकी॥

विदुर इन्हें अवलोक कर, इनपर दृष्टि जमाय।
देरी तक लखते रहे, हिय में अति पुलकाय॥

लखते लखते हि महात्मा ने, निज प्राण योग बलके द्वारा।
अति आसानी से छोड़ दिये, निर्जीव कर लिया तन सारा॥
ये देख युधिष्ठिर दुखी हुये, फिर धृष्राष्ट्र के ढिग आये।
कर प्रेम से इन सब के दर्शन, हस्तिनापुर पहुँचे मुरझाये॥
कुछ दिनों बाद इस जंगल में, अति घोर प्रचंड अग्नि छाई।
जिस में जलकर कुन्ति[1] आदिक, तीनों ने ही देह बिसराई॥

सुनकर सारा हाल ये, धर्म राज गुणखान।
वचों सम तड़फन लगे, होकर दुखी महान॥
समझाया जब व्यास ने, तब हृदय को थाम।
"श्रीलाल" करने लगे, फेर राज का काम॥

१ इनके साथ संजय भी गये थे, ये किसी तरह आग में जलने से बच गये और हिमालय तपस्या करने चल दिये।

महाभारत ॐ बाईसवाँ भाग

पांडवों का हिमालय गमन

श्रीलाल

महाभारत — ॐ — बाईसवाँ भाग

पांडवों का हिमालय गमन

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—

महाभारत पुस्तकालय, अजमेर.

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

द्वितीयावृत्ति २०००

विक्रमी सम्वत् १९९६
ईस्वी सन् १९३९

मूल्य ।) आने

॥ स्तुति ॥

विनय मम सुनिये कृपानिधान ।

लोभ, मोह, मद आदि हृदय से शीघ्रहि करें पयान ।
रहे चित्त में निशदिन तुम्हरे श्री चरणों का ध्यान ॥
सुख, दुख, यश, अपयश में मनकी होवे वृत्ति समान ।
कभी क्रोध अंकुर नहिं उपजे मान हो या अपमान ॥
नाम मात्र जग के जीवों को अंश तुम्हारे जान ।
भेद बुद्धि तज सच्चे दिल से करूं सदा सन्मान ॥
जन्म मरण के चक्कर में फंस पाया दुःख महान ।
आवागमन दया कर अबतो मेटिये श्री भगवान ॥

मङ्गलाचरण

रक्ताम्बर धर विघ्न हर, गौरीसुत गणराज ।
करना सुफल मनोर्थ प्रभु, रखना जन की लाज ॥
सृष्टि रचन, पालन, हरन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश ।
वानी, रमा, उमा सुमिल, रक्षा करहु हमेश ॥
बन्दहुं व्यास विशाल बुधि, धर्मधुरंधर धीर ।
"महाभारत" रचना करी, परम रम्य गम्भीर ॥
जासु वचन रवि जोति सम, मेटत तम अज्ञान ।
वंदहुं गुरु शुभ गुण भवन, मनुजरूप भगवान ॥

* ॐ *

नारायणं नमस्कृत्य, नरंचैव, नरोत्तमम् ।
देवीं, सरस्वतीं, व्यासं ततो "जय", मुदीरयेत् ॥

कथा प्रारम्भ

कुरुक्षेत्र में रण हुये, बीते छत्तिस साल ।
और लगा सैंतीसवां, वर्ष आय जिसकाल ॥

बस इसी समय गंधारी का, वो [1]शाप सफल होने आया ।
यादवों की बुद्धी भ्रष्ट हुई, सिर पर तत्काल काल छाया ॥
ब्राह्मणों, देवताओं पर ये, अति राग द्वेष दिखलाने लगे ।
गउओं से श्रद्धा हटा लई, बूढ़ों का मान मिटाने लगे ॥
बस निशदिन पी करके सराब, सब चूर नशे में रहते थे ।
करते थे मन माने कुकर्म, हरि तक से भी नहिं डरते थे ॥
लख इनके दुर व्यवहारों को, यदुराई को चिन्ता छाई ।
पर अंत समय नजदीक समझ, बोले नहिं कुछ त्रिभुवन साईं ॥

एक दिवस मधु पान कर, कइ एक यादव वीर ।
दिल बहलाने के लिये, पहुँचे सागर तीर ॥

इस जगह एक तरु के नीचे, सुन्दर मृगचर्म बिछाये हुये ।
कइ ऋषि मुनि बैठे थे सुख से, जगदीश का ध्यान लगाये हुये ॥
थे नेत्र बंद इन लोगों के, और अंग शांति दरसाते थे ।
जो कुछ समाधि के ढंग होते, वे सारे दृष्टी आते थे ॥
मृत्यू से प्रेरित यदुवंशी, अवलोक इन्हें मुसकाने लगे ।
और उल्टी सीधी बातें कह, मुनियों की हंसी उड़ाने लगे ॥

---

1 इस शाप का हाल २० वे भाग मे आगया है ।

इसके उपरान्त कृष्ण सुत को, जो साम्ब पुकारा जाता था।
थी जिसकी उम्र बहुत ही कम, चेहरा सुन्दर दरसाता था॥
उसको स्त्री के वस्त्र पिन्हा, ये सब ऋषियों के पास गये।
फर कुटिल भाव से नमन उन्हें, कर जोड़ इस तरह कहत भये॥
ये स्त्री है गर्भ से, सुनो मुनी धर ध्यान।
सुत, कन्या में से कहो, क्या होगी संतान॥
उन तेजस्वी मुनि वृन्दों ने, सब, ज्ञान दृष्टि से जान लिया।
ये सारे हम से छल करते, ये मर्म तुरत पहचान लिया॥
अस्तू गुस्से से हो अधीर, आंखों को लाल बना करके।
वे योगी कहने लगे तुरत, ऊंचे निज हाथ उठाकर के॥
हे यदुराई की संतानों, क्यों मधु पोकर इतराते हो।
साधुओं से करते हुये हंसी, किसलिये न तुम शरमाते हो॥
इस हंसी मसखरी का प्रतिफल, दुष्टों जल्दी ही पावोगे।
बस शाप से हम लोगों के तुम, सब वंश सहित नश जावोगे॥
इसके मूसल पैदा होगा, तुम सबकी जां हरने वाला।
इस हरी भरी द्वारावति को, समशान भूमि करने वाला॥
ये सुनते ही सब यदुवंशी, हृदय में अतिशय अकुलाये।
और फौरन ही हरि के सुत के, स्त्री के वस्त्र उतरवाये॥
इनमें से तत्काल ही, निकला मूसल एक।
लखते ही जिसको हुये, सारे विगत विवेक॥
.ाखिर ज्यों त्यों धीरज धरकर, ये सब द्वारावति में आये।
और उग्रसेन के निकट जाय, हालात शाप के बतलाये॥
जिसको सुनकर नृप दुखी हुये, फिर मूसल को रितवा करके।
जलनिधि में झट डलवाय दिया, और बोले दूत बुला करके॥
मेरा ये हुक्म सुना आओ, पुर में जाकर तुम इसी समय।
"बस आज से कोई भी यादव, मधुपान करे नहिं किसी समय"॥

यदि आगे थोड़ी सी भि किसी, के घर शराब मिल जायेगी ।
तो उसको घर वालों समेत, झट सूली देदी जायेगी ॥
नृप की आज्ञा का किया, सब ही ने सन्मान ।
उसी रोज से एक दम, छोड़ दिया मधुपान ॥
तिसपर भी शापों का प्रभाव, दिन पर दिन रंग दिखाने लगा ।
उत्पात चहुँदिशि होने लगे, ज्यों २ अंतिम दिन आने लगा ॥
रूखी कठोर और धूल सहित, कंकरियें बरसाने वाली ।
अति प्रचंड वायू चलने लगी, चित में भय उपजाने वाली ॥
गिर गये उखड़ तरुवर अनेक, गिरि शिखर टूट कर चूर हुये ।
ढह पड़े अमित महलात भवन, कई नरों के जीवन दूर हुये ॥
सरितायें जहां से आई थीं, पल्टा खाकर उतही धाई ।
जल गये बहुत से जंगल भी, ऐसी कुछ दावानल छाई ॥
नक्षत्र टूट भूमि पै गिरे, घन अंगारे बरसाने लगे ।
मध्यान दुपहरी में दिनमणि, धुंधले से दृष्टी आने लगे ॥
वसुन्धरा हिलने लगी, दिन में बारम्बार ।
नगरी में आने लगे, चहूँ ओर से स्यार ॥
सारस ने निज बोली तजकर, उल्लू की बोली स्वीकारी ।
बकरें गीदड़ सम बोल उठे, यों बदलगई प्रकृती सारी ॥
फिर गौ ने जन्म दिया खर को, खच्चरी ने हाथी उपजाया ।
उत्पन्न किया कुत्ती ने चूहा, बिल्ली ने न्योला प्रगटाया ॥
जो वक्त पूर्वी हवा का था, उस समय पश्चिमी चलने लगी ।
अग्नी अपना असली स्वरूप, तज नीली पीली दिखने लगी ॥
खुशबू में बदबू प्रगट हुई, नदियों का खारा नीर हुआ ।
बनगया सिंधु मीठा पल में, रोगों से ग्रसित शरीर हुआ ॥
यादवों की अर्धांगिनियों को, सुपने में देता दिखलाई ।
मानो एक श्याम वर्ण नारी, मुस्काती घर में घुस आई ॥

और सुहाग सूचक चिन्हों की, चोरी कर भागी जाती है ।
नगरी में चहुँदिशि नाच नाच, हर्षित हो दौड़ मचाती है ॥
पुरुष स्वप्न में देखते, यदुवीरों का मास ।
गिद्ध आय कर खारहे, चित में भरे हुलास ॥
इसके अतिरिक्त मुरारी का, चल दिया चक्र नभ मंडल में ।
घोड़े रथ सहित अलक्ष हुये, ध्वज टूट गिरा अवनीतल में ॥
फिर तेरस के दिन महा दुखद, अति भयदायक मावस आई ।
लखकर इन सब अपशकुनों को, होगये सोच सब यदुराई ॥
और मुख्य मुख्य यदुवीरों को, झटपट अपने ढिंग बुलवाया ।
आजाने पर इन लोगों के, अति दुखित हृदय से फरमाया ॥
भारत के रण के समय में जो, अपशकुन हुये थे भयकारी ।
वे फिर दिखलाई देते हैं, अस्तू होता है शक भारी ॥
इसमें कुछ भी सन्देह नहीं, हम लोगों की हानी होगी ।
इसलिये चलो यात्रा करने, बस वोही सुख दानी होगी ॥
मान कृष्ण के बचन को, यदुवंशी घर आय ।
तैयारी करने लगे, यात्रा की हरषाय ॥
मच उठा तुरत ही कोलाहल, सब निज २ यान सजाने लगे ।
खाने पीने की चीजें ले, चलने की जल्दी मचाने लगे ॥
कुछ ही देरी में ये प्रभास, क्षेत्र के निकट आकर छाये ।
रहने लायक, कपड़ों के, अति उत्तम डेरे तनवाये ॥
परान्त इसके अति मधुर सरस, कई तरह के व्यंजन बनने लगे ।
नको खा खा कर यदुवंशी, मनमानी जगह विचरने लगे ॥
फिर प्रभु के सन्मुख ही सबने, मधु पान करन की ठहराई ।
ये देख कृष्ण ने आगे आ, यों कहा कि मत पीओ भाई ॥
लेकिन न किसी ने सुना जरा, कर दिये पात्र अगणित खाली ।
आगया नशा सब लोगों को, आंखों में झट छाई लाली ॥

हो मस्त नाचने लगा कोई, कोई कुछ गीत सुनाने लगा ।
लगगया कूदने कोई मनुज, कोई हंसने व हंसाने लगा ॥
इसी समय सात्यकि गया, कृतवर्मा के पास ।
मुस्काकर कहने लगा, ओ कुरुपति के दास ॥
तेंने अश्वस्थामा के संग, सोते *वीरों को मारा है ।
इस पातक से ये लोक और, अपना परलोक बिगारा है ॥
नहिं देखा चाहता मुख तेरा, जा दुष्ट यहां से भग जा तू ।
वरना तव जीवन हरलूंगा, अस्तू दृग ओझल होजा तू ॥
श्री हरि के पुत्र प्रद्युम्न ने भी, हरषा सात्यकि का साथ दिया ।
इनकी देखा देखी कितने, वीरों ने भी अपमान किया ॥
ये सुनते ही कृतवर्मा को, आगया क्रोध पल में भारी ।
भृकुटी चढ़गई धनुष सदृष्य, आंखों ने लाल रंगत धारी ॥
हाथ उठा कहने लगा, सात्यकि से ललकार ।
चुप होकर जा बैठ खल, क्यों करता तकरार ॥
कट गये थे जिसके हाथ दोऊ, भारत की घोर लड़ाई में ।
जो शस्त्र हीन होकर तुरन्त, बैठा था व्याकुलताई में ॥
उस भूरिश्रवा† पर दुष्ट तेंने, अपनी तलवार चलाई थी ।
हथियार रहित का बध करते, क्यों तुझे न गैरत आई थी ॥
अस्तू हे यादव-कुल-कलंक, धिक्कार तेरे बाहूबल को ।
जाने क्या सोच बिहारी ने, जीवित रक्खा तुझ सम खलको ॥
लेकिन अब खामोश हो, करले बन्द जबान ।
वरना मेरा शस्त्र झट, हरलेगा तव प्रान ॥
सुनते हि बचन कृतवर्मा के, सात्यकी वीर आपा तजकर ।
दौड़ा तलवार उठा करके, उसको बधने की चित में धर ॥

* इसका हाल २० वे भाग मे आगया है ।
† इसका हाल जानने के लिये पाठकों को १८ वा भाग देखना चाहिये ।

और कहन लगा रे कुलांगार, नृप भूरिश्रवा जहां धाया है ।
बस वहीं पहुँचने का अवसर, इस समय तेरा भी आया है ॥
झट देखते सब को एक नजर, मैं अब तलवार चलाता हूं ।
दुर्वचन सुनाने का प्रतिफल, सिर काट अभी बतलाता हूँ ॥
इतना कह कर सात्यकि ने निज, खांडे को तुरत चलाय दिया ।
सब के सन्मुख कृतवर्मा का, भूमी से नाम मिटाय दिया ॥
ये लखते ही उसके साथी, सात्यकी के निकट चले आये ।
और घेर के उसको चहुँदिशि से, कई तरह के शस्तर बरसाये ॥

देख भीड़ निज मित्र पर, कृष्ण पुत्र तत्काल ।
धाया लड़ने के लिये, करके आंखें लाल ॥

ठनगया तुरत घरघोर युद्ध, दोनों बढ़ बढ़ कर भिड़ने लगे ।
जिनसे प्रति चण में कई मनुज, गिर कर भूमि पर लुढ़कने लगे ॥
पर उनकी संख्या ज्यादा थी, अस्तू ये ज़रा देर लड़कर ।
होगये धराशायी आखिर, अपना प्यारा जीवन तज कर ॥

प्रभु के दृग सन्मुख हुआ, इनका काम तमाम ।
लेकिन उलटा वक्त लख, रहे चुप्प घनश्याम ॥

महाराजा उग्रसेन जो ने, जिस मूसल को रितवाकर के ।
डलवाय दिया था जलनिधि में, दूतों द्वारा भिजवा करके ॥
पर दैवयोग से वहा नहीं, बल्की समुद्र तट पर आकर ।
होगया इकट्ठा वह सारा, वायू को सुभग मदद पाकर ॥
हां पाय तरी जलकी उसमें, विधि वश कई कुल्ले फूटगये ।
र कुछ दिन में एक मूसल के, अनगिनती मूसल उगत भये ॥

बचा था टुकड़ा एक जो, रितने के उपरंत ।
उसका भी जल में बहा, कर डाला था अंत ॥

हरि इच्छा से इस टुकड़े को, लखने ही मछली निगल गई ।
कुछ दिवस बाद एक व्याधा ने, निज जाल में उसको फंसाली ॥

घर लाय पेट जब चाक किया, तब वो टुकड़ा बाहिर आया ।
लख इसे नुकीला व्याधा ने, शर फल की ऐवज लगवाया ॥
खलकिस्सा जब सात्यकी, और प्रद्युम्न कुमार ।
यदुवंशिन से मृत्यु पा, गये स्वर्ग आगार ॥
तब बचे हुये यदुवीरों ने, संग्राम भयंकर मचा दिया ।
हो काल से प्रेरित आपस में, मारना काटना शुरू किया ॥
उस समय में कुछ यादववंशी, सहसा हथियार रहित होकर ।
तट पर के उगे हुये डंडे, लेले धाये लड़ने सत्वर ॥
होगये शस्त्र से भी पैने, मुनि शाप से ये डंडे सारे ।
जिसके सिर पर पड़ जाते थे, बह जाते थे खूं के नारे ॥
अस्तू जब इन लोगों ने लखा, इनका प्रभाव शर से ज्यादा ।
तो सबही ये डंडे उखाड़, होगये लड़न को आमादा ॥
आखिर सब अस्त्र शस्त्र छूटे, और इनसे ही रण होने लगा ।
जिससे यादवों का झुंड तनिक, देरी में जीवन खोने लगा ॥
लड़ते लड़ते सब शेष हुये, बस महारथी कुछ बच पाये ।
वे भी मृत्यू के वश होकर, हलधर के निकट चले आये ॥
और लगे अकड़ने ये लखकर, बलराम ने हल मूसल द्वारा ।
इन बचे हुये यदुवीरों को, थोड़ी ही देर में संहारा ॥
इस प्रकार पूरा हुआ, ये यदुवंश तमाम ।
बचे फकत हलधरसहित, श्रीकृष्ण बलधाम ।
गो अपने सन्मुख ही प्रभुने, बेटे पोते लड़ते देखे ।
कुछ देर बाद आपस में फिर, सबको कटते मरते देखे ॥
यदि चाहते तो गिरवरधारी, यों नाश नहीं होने देते ।
अपने बलवान कुमारों को, जीवन न कभी खोने देते ॥
थी इतनी शक्ति दयामय में, लेकिन इस तरफ न ध्यान दिया ।
बल्की शापों को ही पूरा, करने का सब विधि काम किया ॥

अस्तू जब सब संहार हुये, तब इन्होंने दारुक बुलवाया ।
और अर्जुन को लाने के लिये, झट हस्तिनापुर में भिजवाया ॥
ये सुन दारुक तो गया, पांडु सुतों के तीर ।
आ पहुँचे निज महल में, इधर कृष्ण यदुवीर ॥
निज पिता को सारा हाल बता, आखिर में बोले बनवारी ।
जो होनी होती है वो कभी, नहिं टले स्वप्न में भी टारी ॥
इस कुल का था ये ही भविष्य, अस्तू फिजूल है दुख करना ।
इस समय यही लाज़िम है पिता, ज्यों त्यों करके धीरज धरना ॥

* गाना * तर्ज़–(शहाना)

न रहता कभी एक सा नित ज़माना,
है बिल्कुल वृथा चित्त इसमे फंसाना ।
नज़र जगमे आती हैं जो आज बातें,
कल उनका ज़रा भी न रहता ठिकाना ।
है ऐसी ही हालत पिता! स्वर्ग की भी,
वहां भी उपस्थित है आना व जाना ।
नियम है प्रकृतिका "बदलना" सदा ही,
है अस्तू उचित चित्त मे धीर लाना ।

अच्छा मैं तो अब जल्दी ही, हलधर के पास सिधाऊंगा ।
बाकी के दिवस जिन्दगी के, तप करके कहीं बिताऊंगा ॥
जु यहां पर आता होगा, उसको सब द्रव्य बता देना ।
बचे हुये यदु लोगों को, हस्तिनापुर तुरत पठा देना ॥
फिर तप करना आप भी, किसी विपिन में जाय ।
यों कह शीश नवाय कर, चले तुरत यदुराय ॥
जाते ही जंगल में हरि ने, क्या लखा एक तरु के नीचे ।
मस्तक में प्राण चढ़ाये हुये, बैठे हलधर आंखें मीचे ॥

कुछ देर बाद उनके मुख से, बिल्कुल सफेद और द्युतिकारी ।
थे जिसके मुंह हजार ऐसा, निकला एक नाग बड़ा भारी ॥
और कर प्रणाम यदुराई को, जाकर समुद्र में लीन हुआ ।
इसके जाते ही हलधर का, तन तुरत प्राण से हीन हुआ ॥
भाई के जाने पर प्रभु ने, अपने चलने की भी ठानी ।
अस्तू एक वृक्ष तले आकर, झट लेट गये शारंगपानी ॥
एक पांव के घुटने पर रखकर, निज पांव दूसरा यदुराई ।
होगये योग निद्रा में मग्न, तन की सारी सुधि बिसराई ॥

इसी समय मृग ढूंढता, एक व्याध बलधाम ।
आया उस बन में जहां, सोते थे घनश्याम ॥

ये वही शिकारी था जिसने, मछली का पेट चीर करके ।
एक तीर बनाया था अपना, उस मूसल का टुकड़ा लेके ॥
इस समय उसी शर को अपने, धनु पर वह व्याध चढ़ाये हुये ।
फिर रहा था बन में आतुर हो, हिरनों का ध्यान लगाये हुये ॥
इतने में इसकी दृष्टि पड़ी, श्री कृष्णचन्द्र के पांवोंपर ।
लख पद्म तुरत सोचा इसने, बैठा यहां एक हिरन छिपकर ॥

ये विचार कर व्याध ने, दिया तीर झट मार ।
लगते ही यदुवीर के, हुआ पांव के पार ॥

तब लेने को अपना शिकार, ज्यों ही व्याधा आगे आया ।
त्योंही दृग पड़े बिहारी पर, ये लख वो चित में घबराया ॥
फिर गिरधर के चरणों पर निज, सिर बार बार वो धरने लगा ।
आंखों से अश्रु बहाता हुआ, प्रार्थना क्षमा की करने लगा ॥
इसको धीरज देते देते, आनन्दकंद त्रिभुवन स्वामी ।
निज दिव्य तेज फैलाते हुये, बनगये स्वर्ग के अनुगामी ॥
जगदीश को आते हुये देख, यम, इन्द्र, वरुण, किन्नर सारे ।
अति हर्षा कर ऊंचे स्वर से, बस करन लगे जय जय कारे ॥

बज उठे सैकड़ों दिव्य वाद्य, अपसरायें गीत सुनाने लगीं ।
नंदन वन के शुभ पारिजात, खुश हो प्रभु पर बरसाने लगीं ॥
दिव्य सिंहासनपर बिठा, केशव को सानन्द ।
पूजन कर सुर ईश ने, पाया परमानन्द ॥
राज रहे यहां पर परम, सुख से दीनदयाल ।
सुनो सज्जनों ध्यान धर, अब दारुक का हाल ॥
पाते हि हुक्म यदुराई का, दारुक रथ पर असवार हुआ ।
और चला पांडु पुरको जानिब, दुख से चित में बेजार हुआ ॥
हो रहे थे पुर में पहिले ही, अपशकुन भयानक भयकारी ।
जिनको लखकर पांडव सारे, हो रहे थे शोकाकुल भारी ॥
कहरहे थे जाने किस्मत अब, हमको क्या रंग दिखायेगी ।
रहगया कौन सा दुख बाकी, अब जिसे हमें भुगवायेगी ॥
इतने में दारुक ने आकर, अपना संदेशा भिजवाया ।
जिसको सुनते हि युधिष्ठिर ने, उसको निज सन्मुख बुलवाया ॥
आकर दारुक ने दिया, दारुण हाल सुनाय ।
जिसको सुनते ही गिरे, पांडव मूर्छा खाय ॥
कुछ देर बाद जब होश हुआ, तो सब जलधार बहाने लगे ।
"हे समय तेरी बलिहारी है", यों कहकर सब पछताने लगे ॥
आखिर श्रीमान् युधिष्ठिर ने, यों कहा पार्थ से जाओ तुम ।
विधवा स्त्रियों व बच्चों को, एकत्रित कर ले आओ तुम ॥

* गाना *

अब वक्त क्या क्या रंग निज हमको दिखाता जायेगा ।
पा चुके अत्यन्त दुख क्या और भी कलपायेगा ॥
आ नहीं सकती हमारे ध्यान मे चालें तेरी ।
क्या खबर किस वक्त कैसा दृश्य तू दिखलायेगा ॥

किस तरह माने इसे रक्षक हैं जिसके खुद प्रभू ।
वो श्रेष्ठ कुल एकबारगी ही धूल मे मिलजायेगा ॥
सत्य है जग मे कोई हरदम न थिर रहता कभी ।
आज जो आया है निश्चय कल यहां से जायेगा ॥

आज्ञा पा अर्जुन वीर चले, कुछ दिन में द्वारावति आगये ।
अवलोक यहां का दुखद दृष्य, हृदय में अतिशय अकुलागये ॥
जो नगरी गिरधर के सन्मुख, सब विधि सुंदर दरसाती थी ।
इस समय सकल शोभा खोकर, विधवा सम दृष्टी आती थी ॥
पुर में नहिं कोई तरुण रहा, जहां देखो बूढ़े दिखते थे ।
स्त्रियें थीं वे सब विधवा थीं, कुछ बालक इत उत फिरते थे ॥
देख दुर्दशा नगर की, पांडु तनय बलवीर ।
अश्रु बहाने लग गये, धर न सके मन धीर ॥
आखिर ये ज्यों त्यों मन समझा, पहुँचे मन्दिर यदुराई के ।
श्री कृष्णचन्द्र आनन्द कंद, सच्चिदानन्द सुखदाई के ॥
जिस महल को लखके किसी समय, देवों का चित ललचाता था ।
था आज वो ऐसा श्रीविहीन, लखने को जी नहिं चाहता था ॥
यहां पार्थ के आने की सुधि पा, रुक्मणी आदि झट उठधाईं ।
और आकर अर्जुन के समीप, गिरगईं धरणि पर अकुलाईं ॥
इनको मुश्किल से धीर बंधा, वसुदेव निकट फिर पार्थ गये ।
निज नाम सुना आदर समेत, श्रीमामाजी के पांव गहे ॥
श्रीकृष्ण की मृत्यु खबर सुनकर, मुख से आहें भर रहे थे ये ।
छवि छीन हो भूमी पर गिरकर, दुख से विलाप कर रहे थे ये ॥
अर्जुन को सन्मुख निरख, अपना हाथ उठाय ।
कहन लगे वसुदेव यों, सुनो पार्थ चितलाय ॥

तुम्हरे प्रियमित्र मुकुट भारी, यदुवंश नाश होजाने पर।
यहां आये थे और कहा था ये, मुझको सब विधि धीरज देकर ॥
विधवा स्त्रियों व बच्चों की, हे पिता आप रक्षा करना।
कई प्रकार से उनको समझा, हर समय धीर देते रहना ॥
मैंने दारुक को भेजा है, कुछ दिन में अर्जुन आवेंगे।
वे इन सब को एकत्रित कर, हस्तिनापुर में लेजावेंगे ॥
इसलिये मित्र के कहने के, माफिक सब काम करो अर्जुन।
निज घर लेजा इनके पालन, पोषण का ध्यान धरो अर्जुन ॥
दृग से जलधार बहाते हुये, अर्जुन ने सब स्वीकार किया।
कर इन्हें इकट्ठे निजपुर को, चलने का फेर विचार किया ॥

इतने में वसुदेव ने, होकर खुशी महान्।
कृष्ण, कृष्ण कइ बार कह, छोड़े अपने प्रान ॥

इनके संग इनकी पत्नीयें, देवकी रोहिणी सती हुईं।
जो गति पाई वसुदेवजी ने, वो ही उनकी भी गती हुई ॥
तब इनकी उत्तर विधि करके, अर्जुन ने नगरी त्याग दई।
स्त्री बच्चों को संग लेकर, अपने पुर की झट राह लई ॥
बस इसी समय द्वारावति में, जलनिधि का पानी भर आया।
जिसने कुछ ही देरी में सकल, पुर को पैंदे में बैठाया ॥

ये लखकर विस्मित हुये, पांडु पुत्र गुणरास।
चलते चलते अंत में, पहुँचे क्षेत्र प्रभास ॥

यहां आ हरि, हलधर आदिककी, सब विधि उत्तर क्रिया कीन्ही।
जा सिंधु तीर व्याकुल चित से, फिर सबको जलांजली दीन्ही ॥
इस काम से छुट्टी पा अर्जुन, रथ पर असवार हुये आकर।
और प्रभु का नाम सुमिरते हुये, चल दिये हृदय में धीरज धर ॥
इस समय साथ में अर्जुन के, बालक व वृद्ध तो कमती थे।
लेकिन वस्त्राभूषण धारे, स्त्रियों के झुंड अनगिनती थे ॥

चल रहे थे महा शब्द करते, सैकड़ों यान शोभा वाले ।
रवि किरणे पड़ने से चहुँ दिशि, छारहे थे जिनके उजियाले ॥
गो सभी नारियां विधवा थीं, अस्तू अति मूल्यवान गहने ।
और रेशम आदिक के वस्तर, थे नहीं किसी ने भी पहने ॥

तो भी सबके पास में, जो कुछ था सामान ।
था लाखों के मूल्य का, हो नहिं सके बखान ॥

इसके अतिरिक्त द्वारका का, था कोष भी अर्जुन के संग में ।
इस तरह अमित धनवान बने, चल रहे थे ये बन के मग में ॥
चलते चलते कुछ दिनों बाद, एक बड़ा गहन जंगल आया ।
ये देख पांडु सुत ने सबको, इसके समीप ही ठहराया ॥
और कहा भजन पूजन करके, यहां थोड़ा सा विश्राम करो ।
फिर खाकर अति उत्तम भोजन, आगे चलने का काम करो ॥

अस्तु यहां ठहरे सकल, स्त्रि पुरुष अरुबाल ।
तैयारी करने लगे, भोजन की तत्काल ॥

इस जंगल में एक बहुत बड़ा, जत्था भीलों का रहता था ।
जो आने जाने वालों को, लूटा और मारा करता था ॥
जब लखा उन्होंने अतुल द्रव्य, केवल एक अर्जुन के संग में ।
तो इसे छीन लेने के लिये, उपजे विचार सबके तन में ॥
सोचा यदि ये धन हाथ लगा, सुख से जीवन कट जायेगा ।
और वंश में सौ पीढ़ी तक भी, धनका न कोई दुख पायेगा ॥
ये सोच शीघ्र हथियार उठा, ये सब बन के बाहिर आये ।
और ठहरे थे जहां यदुवंशी, आतुर हो उसी तरफ धाये ॥
झट चहुँ ओर से घेर इन्हें, मारो मारो चिल्लाने लगे ।
कर करके लोचन लाल लाल, सबको धमकी दिखलाने लगे ॥

उग्र मूर्ति इनकी निरख, गये सभी दहलाय ।
त्राहि त्राहि करने लगे, दृग से अश्रु बहाय ॥
फिर कहन लगे हे पांडु पुत्र, जल्दी से रक्षा को धाओ ।
इन दुष्ट लुटेरों को बध कर, तत्काल यम सदन पहुँचाओ ॥
तुम्हरे रहते ये पापात्मा, धनको ले भागे जाते हैं ।
स्त्रियों के गहने छीन छीन, उनको अति त्रास दिखाते हैं ॥
यदि तुमने ज़रा भी देर करी, ये वक्त हाथ नहिं आयेगा ।
अबलाओं की दुर्गति होगी, सारा धन भी लुट जायेगा ॥
नहिं रहा ठिकाना गुस्से का, इनका करुणा क्रंदन सुनकर ।
अस्तू वे कुन्ती पुत्र तुरत, दौड़े अपना धनुवा लेकर ॥
और निकट जाय उन भीलों के, ये कहन लगे गर्जन करके ।
नीचो ! यदि जीवन चाहते हो, तो भागो द्रव्य यहां धरके ॥
वरना तुम सब लोगों को मैं, प्राणों से हीन बनादूंगा ।
करके तन के टुकड़े टुकड़े, भूमी पर शीघ्र सुलादूंगा ॥
सब भीलों को पार्थ ने, समझाया इस तौर ।
पर उन लोगों ने नहीं, किया तनिक भी गौर ॥
किन्तू दूना उत्साह दिखा, वे लूट और मार मचाने लगे ।
तब तो गुस्से से हो अधीर, अर्जुन निज धनुष चढ़ाने लगे ॥
पर लाख यत्न करने पर भी, उसको ये नहीं चढ़ाय सके ।
एड़ी से लेकर चोटी तक, अपना सब जोर लगाय थके ॥
जिस बाहु बल से धनुप तान, लाखों वीरों को मारा था ।
वो अद्भुत बल इस अवसर पर, जाने किस ओर सिधारा था ॥
ये देख धनंजय चकित हुये, आगया क्रोध इनको भारी ।
अति मुशकिल से निज धनुष चढ़ा, कीन्हीं लड़ने की तैयारी ॥
जल बूंदों सम अनगिनत बान, ये तान तान बरसाने लगे ।
एक एक पल में कई भीलों को, वधकर भूमी पै गिराने लगे ॥

लेकिन एक अचरज और हुआ, जो थे इनके अक्षय तरकस ।
होगये तुरत ही शर विहीन, ये लखकर पार्थ हुये बेबस ॥
तब सोचा दिव्यस्त्रों से ही, अब मुझे यहां लड़ना चहिये ।
जैसे भी हो इन भीलों का, सम्पूर्ण नाश करना चहिये ॥
पर हा इस अवसर पर वे भी, अर्जुन को याद नहीं आये ।
राहू से ग्रसित चन्द्रमा सम, तब तो ये योधा कुम्हलाये ॥
धनुष नोक ही से लगे, आखिर मारन मार ।
लेकिन भीलों का नहीं, हुआ पूर्ण संहार ॥
वे इस बुड्ढे धनुधारी के, जिसने अपने भुजबल द्वारा ।
कई बार अनेकों वीरों को, था समर क्षेत्र में संहारा ॥
फिर जिसके हाथों की शक्ती, लख त्रिपुरारी* हरषाये थे ।
महाबली विकट आनन निश्चर, भय के मारे थर्राये थे ॥
उसके सन्मुख ही ये दस्यू, लेगये लूट कर धन सारा ।
दुर्दशा करी अबलाओं की, बूढ़े व बालकों को मारा ॥
यह समय की सब बलिहारी है, ये क्षुद्र को बड़ा बना देता ।
और कभी बड़ों को छोटा कर, उनका शुभ सुयश मिटा देता ॥
अलकिस्सा हो चित्त में, अर्जुन बहुत उदास ।
बचे हुओं को साथ ले, पहुँचे पुर के पास ॥
बस इसी जगह एक आश्रम में, श्री वेदव्यास मुनि रहते थे ।
दिन रात प्रेम से सुमिरन अरु, कीर्तन ईश्वर का करते थे ॥
लखते ही इनकी पर्ण-कुटी, अति स्वच्छ मनोहर सुखदाई ।
श्री पांडुतनय ने मुनिवर के, दर्शन करने की ठहराई ॥
अस्तू एक उत्तम जगह देख, साथियों को वहां पर बैठाकर ।
कुन्ती नन्दन इकला हि तुरत, पहुँचा मुनि के आश्रम जाकर ॥

---

* अर्जुन ने अपना भुजबल दिखा किस प्रकार महादेव जी को प्रसन्न किया था इसका हाल जानने के लिये पाठकों को ९ वां भाग देखना चाहिये ।

इस समय धनंजय के मुखपर, अति उदासीनता छाई थी ।
आरही थी लम्बी स्वांस, देह, दुर्बल देती दिखलाई थी ॥
आंखों से टपटप लगातार, बह रही थी अविरल जलधारा ।
फिर घायल होजाने के सबब, शोणित से तर था तन सारा ॥
ऐसी हालत से अर्जुन ने, मुनि के आश्रम में गमन किया ।
और भूमी पर मस्तक झुकाय, आदर से उनको नमन किया ॥

महा तपस्वी व्यास मुनि, लख अर्जुन का हाल ।
आतुर हो पूछन लगे, क्या है तुम्हें मलाल ॥

होरहा है क्यों मुख आज सुस्त, लम्बी स्वांसें क्यों आती हैं ।
क्या सबब है जिससे सब तनपर, शोणित की बूंद लखाती हैं ॥
क्या किसी से रण में हार गया, इसलिये ही तू छबि छीन हुआ ।
या हुई और कुछ दुर्घटना, कहदे तू क्यों असदीन हुआ ॥
अर्जुन बोले क्या कहूँ मुनी, कहते मस्तक चकराता है ।
ये समय भी आनन फानन में, क्या उलट फेर दिखलाता है ॥
विख्यात थे जो भूमण्डल पर, कांपे था जिनसे जग सारा ।
उन यदुओं को मुनि शाप ने इक, पलभर में मर्दन कर डारा ॥
होगई यादवों रहित धरा, सब मरे परस्पर लड़ भिड़कर ।
दुख देने वाली हुई है ये, घटना प्रभास के तीरथ पर ॥

इनके संग, "जिनका बदन, मेघ सरिस था श्याम ।
और चाल थी सिंह सम, थे जो बल के धाम ॥

फिर जिनके सिर पर क्रीट मुकुट, हरदम देता था दिखलाई ।
सुन्दर मन हरन लोचनों ने, शोभा थी पंकज सम पाई ॥
मकराकृत कुंडल फिर जिनके, कानों की शान बढ़ाते थे ।
जिनके मुख की सुन्दरता लख, सैकड़ों मदन शरमाते थे ॥
और जिनका कंठ सुशोभित नित, बस कौस्तुभ मणि से रहता था ।
शुभ पीताम्बर जिनके तनकी, अति छबी बढ़ाया करता था ॥

फिर गोवरधन धारन करके, जिनने ब्रज की रक्षा की थी ।
कर दिया था जमुना जलविषसम, उस नाग को शुभ शिक्षा दी थी ॥
और जो रखते थे सदां, मुरली अपने पास ।
कंस आदि का था किया, जिन्होंने सत्यानाश ॥
इसके सिवाय जो महापुरुष, भारत की घोर लड़ाई में ।
सारथी बने थे मेरे और, की थी रक्षा कठिनाई में" ॥
वे कृष्ण भी श्रीबलराम सहित, निज धाम गये हे मुनिराई ।
बिन उनके ये भूमी मुझको, देती है सूनी दिखलाई ॥
फिर एक दुर्घटना हुई और, आते ही जिसका ध्यान प्रभू ।
मस्तक में चक्कर आता है, बनता है चित हैरान प्रभू ॥
वो ये है मैं द्वारावति से, आता था स्त्रि बच्चे लेकर ।
कि कुछ चण्डाल लुटेरों ने, धावा कर दिया मेरे ऊपर ॥
ये लखते ही चाहा मैंने, गांडीव चढ़ाकर शर मारूं ।
इन दुष्ट लुटेरों को बधकर, तत्कालहि भूमी पर डारूं ॥
लेकिन मुनिवर जिस धनुवां को, मैं बिन ही कष्ट चढ़ाता था ।
और सुबह से लेकर संध्या तक, अनगिनती बाण चलाता था ॥
चढ़ा एक तो धनुष वो, अति महनत के साथ ।
फिर अक्षय तरकस हुये, शर बिहीन मुनिनाथ ॥
इसके सिवाय मैं भूल गया, दिव्यस्त्रों को भी प्रगटाना ।
चलदिये लुटेरे लूट मुझे, ये लख मैंने अति दुखमाना ॥
हे तपोराशि ! इन बातों में, क्या भेद है मुझको समझाओ ।
क्यों घटी ये सब दुर्घटनायें, इनका रहस्य अब कह जाओ ॥
सुन अर्जुन की बात को, मुनिवर आंखें मींच ।
कुछ देरी तक हो रहे, मग्न ध्यान के बीच ॥
आखिर बोले हे कुन्ति सुवन, इन बातों का मत सोच करो ।
ऐसा ही होने वाला था, बस ये बिचार कर धीर धरो ॥

यदुराई में इतना बल था, यदि वे चाहते तो त्रिभुवन को ।
कर देते उलट पुलट पल में, और होता नहिं कुछ श्रम उनको ॥
फिर इन साधारन बातों का, पलटा देना क्या मुश्किल था ।
पर करी उपेक्षा जान बूझ, क्योंकि उनका येही दिल था ॥
वे महा पुरुष यहां आये थे, भूमी का भार उतारने को ।
सतधर्म की रक्षा करने को, दुष्टों का दल संहारने को ॥
अस्तू करके सब काम पूर्ण, वे अपनें लोक सिधाये हैं ।
और हे प्रिय अर्जुन तुम्हरे भी, जाने के दिन नियराये हैं ॥

कृत्य कृत्य तुम भी हुये, कर देवों का काम ।
अस्तू तैयारी करो, जाने को निज धाम ॥

हे वीर जगत के दृष्यों को, पल में पलटाने का कारण ।
बस एक "समय" है यही बात, अपने चित मांहि करो धारण ॥
ये समय हि जग का बीज है बस, येही रचनायें रचता है ।
छिन में रंकों को नृप बनाय, नृप को फिर रंक भी करता है ॥
पा समय फूलता है तरुवर, फिर समय पाय नस जाता है ।
ये आदि, अंत, उत्थान, पतन, सब समय का खेल कहाता है ॥
बस इसी तरह तेरे शर भी, अपना कुल कर्तव दिखलाके ।
हो गये गुप्त अब समय पाय, अस्तू बैठो मन समझाके ॥

❀ गाना ❀

चित मे सोच करो मत अर्जुन समय की सब बलिहारी रे ।
समय रंक को राव बनादे भूपहि करे भिखारी रे ॥
इस दुनिया के भीतर नर का शत्रु मित्र कोउ नाहीं रे ।
मगर समय के फेर में पड़कर घटती घटना भारी रे ॥

समय पाय अति पवन चले अरु समय पाय नस जावे रे ।
समय से सरदी समय से गरमी समय की महिमा सारी रे ॥
समय सुःख मे दुख दिखलादे दुख मे सुख पहुँचावे रे ।
समय को जानो इस त्रिभुवन मे सबसे बड़ा खिलारी रे ॥

ये सुनकर कुन्ती सुवन, सारा दुःख भुलाय ।
अपने दल में आगया, मुनि को शीश झुकाय ॥
फिर सबको अपने संग लेकर, ये वीर हस्तिनापुर आये ।
और हुये थे जो द्वारावति में, हालात सभी वे बतलाये ॥
इसके उपरान्त लुटेरों की, कुल बात कही लज्जित होकर ।
फिर सुना दिया वो हुआ था जो, श्री व्यास मुनी के आश्रम पर ॥
जिसको सुनकर श्री धर्मराज, बोले बस अब हम लोगों के ।
होगये दिवस संपूर्ण भ्रात, दुनियां के सारे भोगों के ॥
अपने प्रिय मित्र हितू बांधव, बूढ़े बुजुर्ग सत व्रत धारी ।
चलदिये छोड़ कर धरा धाम, अब के जानो अपनी बारी ॥
इसलिये भाइयों राज पाट, धनधाम आदि से नेह तजो ।
और चल करके एकान्त जगह, उस जगदीश्वर का नाम भजो ॥
पौत्र परीक्षित होगया, सब प्रकार हुशियार ।
अस्तू सारे राज का, देदो इसको भार ॥
आगया पसंद भाइयों को, जो धर्मराज ने फरमाया ।
इससे सबने होकर तयार, चलने को चित में ठहराया ॥
फिर शुभ दिन देख इन सबों ने, हरषा अंतिम दरबार किया ।
छोटे मोटे दीनों अमीर, सबको हित से बुलवाय लिया ॥
आजाने पर सब लोगों के, श्री धर्म धुरंधर नरराई ।
नम्रता पूर्वक कहन लगे, मीठी बानी अति सुखदाई ॥

"प्रिय प्रजा गणों और सरदारो, हमने इस दुनियां में आकर ।
देवों को भी जो दुर्लभ है, आराम किये वे हरषाकर ॥
करते करते आनन्द चैन, वृद्धावस्था आछाई है ।
पर डायन तृष्णा अब भी नहीं, घटती देती दिखलाई है ॥
अस्तू अब हमने सोचा है, जग के सारे झगड़े छोड़ें ।
और बन में जाकर अंत में अब, जगदीश्वर से नाता जोड़ें ॥
क्योंकी आयू का पता नहीं, जाने कब होजाये पूरन ।
इसलिये त्याग सब राजपाट, करना चाहते प्रभु का सुमिरन ॥
फिर क्षत्रि धर्म भी कहता है, वृद्धावस्था के आने पर ।
कर्तव्य है हर एक नृप का ये, तप करे तुरत बन में जाकर ॥

पौत्र परीक्षित* होयगा, अब यहां का भूपाल ।
करेगा धर्मानुसार नित, तुम सब की प्रतिपाल ॥

है आश मुझे मेरी बिनती, स्वीकार करेंगे आप सभी ।
मेरे सदृष्य परीक्षित से, बस प्यार करेंगे आप सभी" ॥
इतना कहके अभिषेक किया, निज पोते का हरषा करके ।
फिर बोले वत्स मेरा कहना, सुन चित को शांत बना करके ॥
जब तक तू रहे जमाने में, धर्मानुसार हरदम चलना ।
करना न कभी मिथ्या भाषण, प्रण का परिपूर्ण ध्यान रखना ॥
फिर भूले से भी मित्रों को, कड़वी बातें न सुनाना तू ।
र एक का सहसा निज मन में, विश्वास कभी मत लाना तू ॥

जुआ कभी मत खेलना, है ये दुख का मूल ।
इसके व्यसनी से सदा, रहते प्रभु प्रतिकूल ॥

* इन्ही महाराज परीक्षित के पुत्र जन्मेजय हुये जिन्होने महाभारत की कथा वेद व्यास जी के शिष्य वैशम्पायन द्वारा सुनी, जिसका हाल प्रथम भाग की प्रस्तावना मे आगया है पाठक देखले ।

इसके अतिरिक्त प्रजा को तू, बे बात पीर मत पहुँचाना ।
बल्की सुतवत पालन करके, हर समय प्रेम ही दिखलाना ॥
देना दुष्टों को दंड कड़ा, अन्याय मार्ग गहना न कभी ।
रखना विप्रों को सदा खुशी, दी हुई वस्तु लेना न कभी ॥
फिर एक धर्म की बात और, हे तात तुझे बतलाता हूं ।
रक्षा करना नित गउओं की, बस ये आदेश सुनाता हूँ ॥
जिस जगह प्रेम के सहित पौत्र, ये गायें पाली जाती हैं ।
वहां दुख दरिद्र नहिं रह सकता, रिद्धी सिद्धी छा जाती हैं ॥

देख पराये द्रव्य को, ललचाना मत प्रान ।
किन्तू रहना दूर ही, उसको विष सम जान ॥

फिर परस्त्री को भी चित में, गुरु स्त्री सरिस समझना तू ।
मत फँसना छओं विकारों में, बल्की उनको बस करना तू ॥
नित दान धर्म करते रहना, भक्ती न छोड़ना भगवत् की ।
बस यही चंद बातें मैंने, बतलादी हैं तेरे हित की ॥

इस प्रकार निज पौत्र को, समझा धर्म कुमार ।
हाथ शीश पर फेर कर, आशिप दई अपार ॥

इसके उपरान्त युयुत्सू को, कुन्ती सुत ने बुलवाय लिया ।
और हित से प्रेम बचन कहकर, मन्त्री के पद पर नियत किया ॥
फिर धौम्य को राज पुरोहित कर, "गुरु" कृपाचार्य को ठहराया ।
श्रीकृष्ण के पोते बज्र* को झट, दे इन्द्रप्रस्थ सुख पहुँचाया ॥
श्रीकृष्ण की बहन सुभद्रा को, फिर राज मातु का पद देकर ।
इन सब की रखवाली करने, कर दिया नियत अति हर्षाकर ॥
इन सब बातों से छुट्टी पा, द्रौपदी सहित पांचों भाई ।
सुख से अति दान दिलाने लगे, याचकों को निज ढिंग बुलवाई ॥

---

* 'बज्र' के साथ तमाम यादव स्त्रियें व बच्चे इन्द्रप्रस्थ मे ही रहने लगे, रुक्मणी आदि चिता मे जलगईं और सत्यभामा तथा अन्य स्त्रियें तपस्या करने चली गईं ।

इस समय इन्होंने जो बांटा, वो दौलत थी इतनी ज्यादा ।
जिसका गिनना एक ओर रहा, लग नहीं सका था अन्दाजा ॥
फेर पत्नि सह पांडु सब, त्याग राजसी चीर ।
झट धारण करने लगे, वल्कल बसन शरीर ॥
करके मुनियों सम ठाठ बाठ, प्रभु का शुभ नाम सुनाते हुये ।
ये चले महा यात्रा करने, मुख से आनन्द दिखाते हुये ॥
इस समय प्रजा ने पाया जो, दुख, उसे बताना मुश्किल था ।
जिसके मुखपर थी हाय नहीं, ऐसा न वहां कोई दिल था ॥
केवल थे बस पांडव प्रसन्न, क्योंके जग के झंझट तजकर ।
जो था सब विधि आनंददायक, जारहे थे ये उस रस्ते पर ॥
जैसे ही इन सब का समूह पुर त्याग विपिन में बढ़ने लगा ।
त्योंही एक कुत्ता भी इनके, बस पीछे पीछे चलने लगा ॥
थे सब से आगे धर्मराज, पीछे थे भीम गदा धारी ।
इनके पीछे अति बलशाली, चलरहे थे पार्थ धनुर्धारी ॥
थे फिर क्रम से श्री नकुल, अरु सहदेव सुजान ।
इनके पीछे द्रौपदी, तिस पीछे था स्वान ॥
इस तरह इन्होंने क्रम बानाय, निशि दिन चलना अख्तियार किया ।
और सब भूमी की परिक्रमा, देने का हृदय विचार किया ॥
अस्तु सबसे पहिले पांडव, बस पूर्व दिशा की ओर चले ।
तहां बन उपवन नद नदी नगर, आदिक अवलोके भले भले ॥
जाकर सिंधु किनारे तक, निज पांव बढ़ाना रोक दिया ।
इस जगह पार्थ ने धनुष* और, तरकस पानी में फेंक दिया ॥
इसके उपरान्त इन्होंने फिर, दक्षिण दिशि चलने की ठानी ।
आखिर अपनी इच्छानुसार, होगये अग्रसर गुणखानी ॥

---

* विश्व विख्यात गांडीव धनुष और अक्षय तरकस अर्जुन को किस प्रकार मिले ये इसका हाल सातवें भाग में आगया है ।

करते अनेक तीरथ दर्शन, ये सब रामेश्वर ढिंग आये ।
कर इनकी पूजा प्रेम सहित, फिर पश्चिम की जानिब धाये ॥
चलते चलते कुछ दिनों बाद, पहुँचे द्वारावति के ढिंग आ ।
जल मग्न नगर के दर्शन कर, फिर उत्तर दिशि पद दिया बढ़ा ॥

थोड़े दिन में आगया, शैल हिमालय पास ।
देख पांडवों ने इसे, पाया परम हुलास ॥

यहां का प्राकृतिक दृष्य लखकर, श्री धर्मराज हर्षाय गये ।
रोमांच बदन में प्रगट हुआ, नेत्रों में जलकन छायगये ॥
अति कठिनाई से इस सुख को, अपने मन मांहि दबा करके ।
ये भ्राताओं से कहन लगे, निज स्वर को दीर्घ बना करके ॥
बन्धुओ ! उम्र भर में हमने, नाना प्रकार के सुख पाये ।
भोगे कई उत्तम राज भोग, सब दिन आनन्द में बिसराये ॥
संसारी जीवों को दुर्लभ, कई उत्तम यज्ञ किये हमने ।
विप्रों को ऋषियों मुनियों को, अनगिनती दान दिये हमने ॥
रण भूमी में भी कई बार, अति अधिक धीरता दिखलाई ।
फिर सकल नृपों को बस में कर, सम्राट की भी पदवी पाई ॥
पर शान्ति आत्मा को न मिली, नहिं मिटी चित्त वृत्तियां कभी ।
मद, लोभ, मोह, क्रोधादिक ये, दिन रात सताते रहे सभी ॥

किन्तु छोड़ते ही सकल, जग के मिथ्या फन्द ।
चित में अजब प्रकार का, छाय गया आनन्द ॥

इस समय आत्मा पूर्णतया, सुख शान्ति मई दरसाती है ।
चित की वृत्तियां भी गुप्त हुई, अब जरा दृष्टि नहिं आती है ॥
इसके अतिरिक्त भवन में तो, सरदी गरमी भी सताती थी ।
खाने पीने की घटत बढ़त, चित में अशान्ति उपजाती थी ॥

पर यहां इन बातों की परवा, ये हृदय तनिक नहिं करता है ।
जो समय के माफिक मिलजावे, उसही में धीरज धरता है ॥
फिर रमता जाता है दिन दिन, उस परम पिता के सुमिरन में ।
होगया हमारा जन्म सफल, आगये जो हम घर तज वन में ॥
अस्तू है धन्यवाद प्रभु को, जिसने सदबुद्धी उपजाई ।
छुड़वा कर विषय वासना सब, आनन्दमई राह दिखलाई ॥

जबके इतना सुख मिला, तजते ही संसार ।
तो आगे उसका नहीं, होगा पारा वार ॥

भाई के वचनों को सुनकर, अर्जुन और भीम गदाधारी ।
हर्षाये भ्रात व पत्नि सहित, फिर बोले बानो सुखकारी ॥
हे धर्मराज जो कुछ तुमने, इस समय बात फरमाई है ।
इसमें कुछ भी संदेह नहीं, वो सच्ची है सुखदाई है ॥
हमको तुम्हरी ही सत्ता ने, दिखलाया वो मारग सुन्दर ।
जिसको हम कभी नहीं पाते, चाहे करते श्रम आयू भर ॥
मद मोहादिक की रस्सी में, थे बंधे हुये हम तो सारे ।
कहां धरा था हमरे भाग्य में जो, लखते हम ये आनन्द भारे ॥

अस्तु ऋणी हम आपके, रहेंगे नित नरनाथ ।
लोहा भी क्षण मात्र में, तरा काठ के साथ ॥

. प्रकार ये बातें करते, आगे को बढ़ते जाते थे ।
स वर्फ से ढके हिमालय के, ऊपर को चढ़ते जाते थे ॥
कि इतने में अति सरदी पा, वो द्रुपद नन्दनी घबराई ।
गिरगई तुरत ही भूमी पर, और तत्क्षण देही बिसराई ॥
इसको एकाएक मृतक देख, श्री भीम बहुत चकराते हुये ।
श्री धर्मराज से कहन लगे, हृदय से दुःख दिखाते हुये ॥

ये आर्य! सुग्वद पंचाली ने, नहिं कभी अधर्म किया कोई ।
हम सबकी नित आज्ञा पाली, नहिं किसी को दुःख दिया कोई ॥
फिर क्या कारण है जो इसने, तत्काल प्राण बिसराया है ।
यदि मालुम हो तो कह डालो, किस पाप का प्रतिफल पाया है ॥

धर्मराज कहने लगे, भीम से सहित सनेह ।
एक कर्म के कारणे, छोड़ी इसने देह ॥

"हम पांचों को सम भावों से, देखे," था यही धर्म इसका ।
नहिं करे स्वप्न में भी दुर्भांति, था ये ही श्रेष्ट कर्म इसका ॥
लेकिन इसने ऐसा न किया, और पार्थ पै ज्यादा प्रेम रखा ।
बस यही सबब है इस प्रकार, तन छोड़ यहां पर गिरने का ॥
इतना कह बिन ही अवलोके, पत्नी की हालत धर्म कुंवर ।
भ्राताओं को अपने संग ले, चलदिये अगाड़ा को सत्वर ॥
ये बढ़े हि थे कि इसी समय, सहदेव वीर भी चक्कर खा ।
जा पड़ा वर्फ की भूमी में, एक पल में अपने प्राण गमा ॥
ये देख भीम फिर बोल उठे, इससे ऐसा क्या काम हुआ ।
जिसकी ऐवज में इसका भी, पत्नी सम काम तमाम हुआ ॥
इनके वचनों को फिर सुनकर, वे धर्म धुरंधर नरराई ।
चलते ही चलते बोल उठे, इसका भी भेद सुनो भाई ॥
ये अपने चित में गिनता था, मुझ सम नहिं बुद्धिमान कोई ।
हैं सभी अधूरे मेरे सम, नहिं सर्व गुणों की खान कोई ॥
बस इसी दोष के कारण से, ये गिरा यहां जीवन खोकर ।
जैसा कुछ होनहार होता, वह निश्चय रहता है होकर ॥

ये कह फिर बढ़ने लगे, धर्मराज गुण खान ।
तजे फेर कुछ देर में, नकुल ने अपने प्रान ॥

बंधुओं पै नेह रखने वाले, बलवीर वृकोदर ने सिरना ।
पूछा भाई से, नकुल के भी, गिरने का कारण देहु बता ॥
ये तो आरम्भ से ही हम पर, सच्चा सनेह दिखलाता था ।
चलता था नित धर्मानुसार, मुख से न झूंठ फरमाता था ॥
ऐसा आज्ञाकारी भाई, क्यों हमको छोड़ सिधाया है ।
हे धर्मराज ये दृश्य देख, मेरा हृदय घबराया है ॥
ये सुनकर फिर धर्मावतार, गम्भीर धीर कोविद ज्ञानी ।
वे कुन्ती नन्दन कहन लगे, हे भीम सुनो सत की बानी ॥

गोद्विज पालकजनसुखद, जग के सिरजन हार ।
कभी किसी भी जीवका, सकें न गर्व निहार ॥

ब्रह्मा से लेकर मच्छर तक, चाहे कोई भी हो प्रानी ।
यदि गर्व करे तो वे पल में, खंडन कर देते सुखदानी ॥
ये नकुल भी अपने स्वरूप को, लख लख कर नित इतराता था ।
दूसरे रूपवानों को ये, अपने से हीन बताता था ॥

इसके ही फल से गिरा, यहां नकुल मुरझाय ।
हरि इच्छा में भ्रातवर, कुछ नहिं पार बसाय ॥

पत्नी और निज भ्राताओं की, लख दशा पार्थ घबराते थे ।
ख से तो कुछ नहिं कहते थे, पर दृग से धार बहाते थे ॥
दुख से अति व्याकुल हो कुछ बरफ की भी सरदी पाकर ।
र गये अवनितल में ये भी, अपने प्राणों को बिसराकर ॥
के समान तिहुँ लोको में, था नहीं कोई भी धनुधारी ।
जिसके सन्मुख आ लड़ने में, थर्राते थे निश्चर भारी ॥
फिर था जो नरों में सिंह सरिस, सुरपति सदृष्य गुणखानी था ।
था जिसे हराना महा कठिन, बाहू बल में लासानी था ॥

ऐसे भाई को गिरा देख, बलवीर वृकोदर अकुलाये ।
लगगया घूमने सिर इनका, आंखों में अश्रूकन छाये ॥
आखिर अति ही कठिनाई से, हृदय में धीरज धर करके ।
निज ज्येष्ट भ्रात से कहन लगे, आंखों का नीर पोंछ करके ॥
हे अजातशत्रू देखो तो, हा ये कैसे आसार भये ।
महा बली धनंजय भी हम से, नाता तज स्वर्ग सिधार गये ॥
इस वीर ने तो सुपने में भी, नहिं पाप में चित्त फंसाया है ।
फिर किसके कारण से इसने, ऐसा खोटा फल पाया है ॥

वीर युधिष्ठिर कहउठे, सुनो भीम धर ध्यान ।
इसको भी निज शक्ति का, था पूरा अभिमान ॥

रण छिड़ने से पहिले इसने, यों कहा था मैं निज बल द्वारा ।
बस एकहि दिन में करदूंगा, कुरुओं का भस्म कटक सारा ॥
लेकिन इस बल के गर्वी ने, वो किया नहीं जो फरमाया ।
बस उस ही मिथ्या भाषण का, ऐसा प्रतिफल इसने पाया ॥
अस्तू हे भाई बढ़े चलो, दुख में न हाथ कुछ आयेगा ।
जैसा निश्चित है जिसके लिये, वो वैसा ही फल पायेगा ॥
ऐसा कह कर कुन्ती नन्दन, बिन तनिक शोक सन्ताप किये ।
आगे को चलने लगे तुरत, प्रभु के चरणों को धार हिये ॥
ये कुछ ही दूर गये होंगे, के भीम की भी बारी आई ।
इनके भी धुसने लगे पांव, उस बरफ में अरु सरदी छाई ॥
बहुतेरा यत्न किया अपने, पांवों को बाहिर लाने का ।
लेकिन प्रयत्न सब वृथा हुआ, अपना कुल जोर लगाने का ॥

तब अपनी भी मृत्यु को, निकट देख ये वीर ।
भाई से कहने लगे, बचन, धार उर धीर ॥

हे धर्मराज बाहूबल से, मैंने कई वृक्ष उखाड़े हैं।
मदमस्त हाथियों को कर से, भूमी पर तुरत पछाड़े है॥
लेकिन इस समय शक्ति मेरी, तज मेरा साथ सिधाई है।
इससे ये जाहिर होता है, मम अंत घड़ी नियराई है॥
अस्तू अपने प्रिय भ्राता का, अंतिम प्रणाम स्वीकारो तुम।
कर क्षमा सकल अपराधों को, किरपा दृष्टी से निहारो तुम॥
और यदि तुमको कुछ मालुम हो, कारण मेरे गिरजाने का।
तो कहो जिसे सुनकर प्रयत्न, मैं करूंगा मन समझाने का॥
सुन वीर वृकोदर की बातें, बोले कुन्ती सुत मृदुबानी।
हे भीम तू भी निज शक्ती का, था अपने चित में अभिमानी॥
गिन के न दूसरों को कुछ भी, तू निज बल से इतराता था।
और जो भी तबियत आती थी, औरों को वाक्य सुनाता था॥

इसीलिये तेरी हुई, दशा ये आखिरकार।
"गर्व नाश का मूल है", कहते शास्त्र पुकार॥

※ गाना ※

गर्व किसी का आजतक, थिर न रहा जहान मे।
जिसने किया घमंड वो, नष्ट हुआ एक आन मे॥
एक से एक बढ़के नर, हुये बली जमीन पर।
लेकिन गरूर करते ही, दाग लगा था शान मे॥
आदत है करुणासींव की, निर अभिमान जीव की।
करते हैं रात दिन मदद, आफतो के दरम्यान मे॥
अस्तू हरएक नरको ये, चहिये न गर्व कभी करे।
बढ़जावे कितना भी चहे, रहे प्रभू के ध्यान मे॥

इस तरह पति के साथ साथ, भ्राताओं के मरजाने पर ।
रहगये युष्ठिष्ठिर ही इकले, उस महा विशाल हिमालय पर ॥
और वह कुत्ता भी था जो के, पुर से इनके संग आया था ।
जिसने प्राणों को सरदी से, नहिं अभी तलक बिसराया था ॥
अस्तू इसको ही स्नेह सहित, ले साथ युधिष्ठिर चलने लगे ।
जगदीश का नाम सुमिरते हुये, गिरवर के ऊपर चढ़ने लगे ॥
बस इसी समय रथ सुरपति का, निज दिव्य तेज फैलाता हुआ ।
आकाश व पृथ्वी को अपनी, गम्भीर ध्वनी से कंपाता हुआ ॥
आकर कुन्ती सुत के समीप, ठहरा, तब देवों के नायक ।
उसमें से उतर निकट आकर, बोले हित बचन सुःखदायक ॥
हे पान्डु कुंवर आजन्म तैंने, हित से निज धर्म निभाया है ।
अस्तू ऋषियों को भी दुर्लभ अति उत्तम पद को पाया है ॥
अब मेरे रथ पर हो सवार, शीघ्र ही स्वर्ग में पांव धरो ।
वहां जो कुछ मिले आनन्द तुम्हें, हरषा उसको स्वीकार करो ॥

देख इन्द्र को सामने, चरणों शीश नवाय ।
धर्मराज कहने लगे, श्रवण करो सुरराय ॥

मेरे प्रिय भ्राता पत्नि सहित, गिर पड़े हैं अभी हिमालय पर ।
इनको यहां पर ही छोड़ प्रभू, क्या करूंगा मैं सुरपुर जाकर ॥
यह सुनकर वज्रपाणि बोले, प्रिय पत्नि सहित तेरे भाई ।
गिरते ही स्वर्ग सिधाये हैं, तहां उनसे मिलना हरषाई ॥
बस देर न कर आजा रथ में, और बड़े बड़े पुन्यों द्वारा ।
जो स्वर्ग धाम पाया तैंने, भोगो उसका आनन्द सारा ॥
ये सुन कुन्ती सुत सुख पाकर, बोले भगवन मैं चलता हूँ ।
पर एक विनय मम श्रवण करो, जो कुछ इस दम मैं कहता हूँ ॥

वो ये है हस्तिनापुर से ही, ये स्वान संग में आया है।
यदि इसे भी स्वर्ग ले चलो तो, होवे मेरा मन चाया है॥
जाने क्या कारण है मुझ पर, ये अतिशय भक्ति दिखाता है।
इसलिये इसे यहां तजने को, मेरा हृदय नहिं चाहता है॥

फेर आर्यों का प्रभू, है ये ही शुभ कर्म।
अपने जनको त्यागकर, करे न कभी अधर्म॥

सुरपति बोले आजन्म तेंने, धर्मानुसार चलकर राजन।
पाया वैभव यश कीर्ति और, स्वर्गीय सुःख हितकर राजन॥
उसको एक कुत्ते के कारण, क्यों तू बिसराना चाहता है।
है स्वान महा अपवित्र जंतु, तजदे, क्यों समय गमाता है॥
जब के तेंने बल से जीते, कुल राजपाट को छोड़ा है।
सुर दुर्लभ ऐसे सुःख और, दौलत से मुंह को मोड़ा है॥
यहां तक हि नहीं बल्की तेंने, त्यागा पत्नी भ्राताओं को।
फिर इसे छोड़ने में मुख से, क्यों भरता है तू आहों को॥

धर्मराज कहने लगे, सुनो शची भर्तार।
राज पाट धन धाम सब, नसते आखिर कार॥

अस्तू उन नश्वर चीजों को, तज देना ही था हितकारी।
इसीलिये तजकर उनको, पाया मैंने आनन्द भारी॥
भ्राताओं को जीते जी, मैंने न कभी भी त्याग किया।
सुख में दुख में यश अपयश में, हरदम उनसे अनुराग किया॥
लेकिन जब वे गिरपड़े यहां, अपना अपना जीवन खोकर।
तो जान डाल नहिं सकने के, कारण छोड़ा लचार होकर॥
लेकिन ये कुत्ता जीवित है, फिर किम इसको बिसराऊं मैं।
क्या है इसका कुसूर सुरपति इससे अनुराग हठाऊं मैं॥

अस्तू इसको तज कभी नहीं, मैं स्वर्ग लोक में जाऊंगा।
चाहे कुछ भी हो लेकिन मैं, हरगिज न अधर्म कमाऊंगा॥
खुशी होगये वचन सुन, इनके वे सुरभूप।
कुत्ता भी तत्काल ही, तजकर अपना रूप॥
यमराज बनगया और बोला, लेने के लिये इमतिहां तेरा।
मैंने इस कुत्ते का स्वरूप, हे कुन्ति सुवन स्वीकार करा॥
लख तुझको पूरा धर्मात्मा, ये हृदय बहुत हरषाया है।
अब चलो वहां, निज पुन्यों से, जो लोक तैंने सुत पाया है॥
ये सुनते ही कुन्ती सुत ने, आदर से इन्हें प्रणाम किया।
फिर इन्द्र के स्यंदन में चढ़कर, तत्काल स्वर्ग का मार्ग लिया॥
जा पहुँचे कुछ देर में, ये सारे सुरधाम।
कहा इन्द्र ने रह यहां, भोगो नृप आराम॥
उस सूर्य तेज सम तेजस्वी, सुरपुर में जाकर नरराई।
सब तरफ से अपना ध्यान हटा, लागे ढूंढन निज प्रिय भाई॥
लेकिन अति श्रम करने पर भी, नृप ने न उन्हें कहिं लख पाया।
पर एक बात देखी जिससे, इनके चित में अचरज छाया॥
वो ये थी एक सिंहासन पर, कई भूषण धारण किये हुये।
चहरे से खुशी दिखाता हुआ, अति दिव्य तेज को लिये हुये॥
बैठा है अंध-सुत दुर्योधन, ये लखते ही श्री नरराई।
पल में गुस्से से लाल हुये, बोले सुरपति से चिल्लाई॥
ले देवराज! इस दुष्ट क्रूर, पापी कौरवपति के संग में।
रहने को मैं नहिं आया हूं, ये कांटा था हमरे मग में॥
इस नीच ने बचपन से ही, हम सबका अति अपमान किया।
धोखा दे वीर वृकोदर के, भोजन में विष* को मिलादिया॥

* इसका हाल जानने के लिये २ तीसरा भाग देखना चाहिये।

फिर लाखा* गृह बनवा इसने, चेष्टा की हमें जलाने की ।
और छल से राजपाट हरके, की युक्ति विपिन भिजवाने की ॥

फेर सभा में पत्नि की, साड़ी† को खिचवाय ।
पापी ने सब तौर से, दीन्हा हृदय जलाय ॥

फिर येही दुष्ट अधर्मी है, जिसके कारण सब नरराई ।
मरगये परस्पर लड़भिड़ कर, होगई हीन भारत माई ॥
मैं नहीं समझता सबब है क्या, जो ऐसे अत्याचारी को ।
तो इस सुरपुर में जगह मिली, तजकर मर्यादा सारी को ॥
और जिन्होंने दुनियां में रहकर, हरदम निज धर्म निभाया है ।
लाखों क्रोड़ों का दान दिया, हित से हरि का गुण गाया है ॥
वे हमरे भ्रातागण जाने, किस लोक को प्राप्त हुये जाकर ।
क्या यही न्याय करते हैं प्रभू, त्रिभुवन में न्यायी कहलाकर ॥
अच्छा कुछ भी हो लेकिन मैं, नहिं यहां तनिक रहना चाहता ।
जहां पाप कर्म करने वाला, सन्मान का पात्र गिना जाता ॥
इससे जितनी जल्दी हो मुझे, भ्राताओं के ढिंग पहुँचाओ ।
मत देरी करो सुरेश किसी, अनुचर को फौरन बुलवाओ ॥

स्वर्ग वही मम है जहां, हैं मेरे प्रिय भ्रात ।
अस्तु शीघ्र ही वहां मुझे, पहुँचाओ सुरनाथ ॥

यहां उपस्थित नारद भी, ये कहन लगे अवसर पाई ।
हे धर्म धुरंधर चित में क्यों, ये व्यर्थ विकलता प्रगटाई ॥
ये नहीं है मृत्यु लोक राजन, रख याद ये स्वर्ग कहाता है ।
यहां राग ईर्षा आदिक का, नामो निशान नहिं पाता है ॥

---

* देखो ४ चौथा भाग । † देखो ८ आठवां भाग ।

इसलिये इन्हें चित से निकाल, बाहिर रखदो हे कुन्ति सुवन ।
और स्वर्ग के दुर्लभ सुःखों को, अपनाकर हरदम रहो मगन ॥
है मिली नरक में जगह तेरे, भाई व रिश्तेदारों को ।
उस अशुभ जगह में जाने के, तज डालो सकल बिचारों को ॥
निज भोग भोग कर जब वे सब, इस स्वर्ग लोक में आवेंगे ।
तब हम उनसे निश्चय तेरी, हे राजन् भेट करावेंगे ॥
पर समाधान इनको न हुआ, तब इन्द्र ने धावन बुलवाया ।
और उसके संग पांडु सुतको, झट नरक देखने भिजवाया ॥

इनके संग कुछ दूर तक, चलकर धर्म कुमार ।
पहुँचे आखिर जायकर, शीघ्र नरक के द्वार ॥

छारहा था यहां कुछ अंधकार, वायू अति गर्म लखाती थी ।
फिर पीप मांस रक्तादिक को, चहुँ दिशि से बदबू आती थी ॥
यहां पर बैठे यमदूत कई, हाथों में छुरी घुमाते थे ।
और काट काट पापियों का तन, पापों का मजा चखाते थे ॥
ये अंधकार, तो खतम हुआ, यहां से कुछ आगे जाने पर ।
फिर गर्म अग्नि सम बालू का, आया इनको मैदान नजर ॥
यहां बिछे हुये थे बड़े बड़े, नोकीले कांटे अनगिनती ।
जिसमें चलने से होती थी, पांवों की बहुत ही बुरी गती ॥
इसके अतिरिक्त युधिष्ठिर ने, देखी कहीं आग धधकती हुई ।
कहीं शिलायें पत्थर लोहे की, दुष्टों के सिर पर पड़ती हुई ॥
और कहीं तेल से भरे पात्र, अग्नी से खौलते हुये लखे ।
फिर कहीं गिद्ध अति हो दारुण, शब्दों से बोलते हुये लखे ॥
है गरज ये कि यहां की हरएक, वस्तू नफरत उपजाती थी ।
दिखती थी भयानकताई ही, जिस तरफ दृष्टि उठजाती थी ॥

पापी हत्यारे कुलांगार, धारा था जिन्होंने धर्म नहीं ।
जीवन भर पाप कमाया था, कभि किया कोई शुभकर्म नहीं ॥
उन जीवों को यम के अनुचर, कई तरह की त्रास दिखाते थे ।
जिससे दुख पाकर ये प्राणी, दारुण स्वर से चिल्लाते थे ॥
लख यहां का ऐसा विकट दृष्य, चित में भय उपजावन हारा ।
श्रीमान् कुन्ति के नन्दन का, कंपित होगया बदन सारा ॥

अस्तु दूत से कह उठे, चलेगा कितनी दूर ।
यहां की चीज़ें देखकर, होता दुख भरपूर ॥

यह सुनकर देवदूत बोला, यदि बिगड़ गई हालत चितकी ।
वो वापिस अपनी पीठ मोड़, मैं कहता हूँ तेरे हितकी ॥
करते हि श्रवण दुख से घबरा, लौटे ज्यों ही ये नरराई ।
त्यों ही चहुंदिशि से दर्द भरी, अनगिनती आवाजें आई ॥
हे धर्मराज! हे राज ऋषी, हे दयालु चित पांडू नन्दन ।
कर कृपा खड़े कुछ देर यहीं, तुम रहो हमारे मान बचन ॥
इस जगह आपके आते ही, हम लोगों का दुख दूर हुआ ।
मिट गई वेदनायें सारी, चित में आनन्द भरपूर हुआ ॥
सुनते ही दीन वाणियों को, नृप के चित में करुणाछाई ।
रहगये खड़े वे उसी जगह, और कहन लगे अति बिलखाई ॥
दीन वचन कहने वालो, तुम कौन हो कहां से आये हो ।
किया है ऐसा अघ तुमने, जो इतना कष्ट उठाये हो ॥

ये सुनते ही वे सकल, बोल उठे इक साथ ।
कुन्ती नन्दन ध्यान धर, सुनो हमारी बात ।

मैं कर्ण हूँ, मैं हूँ भीमसेन, मैं अर्जुन और नकुल हूँ मैं ।
समझो सहदेव मुझे हे नृप, और द्रुपद सुता व्याकुल हूं मैं ॥

फिर जानो मुझको धृष्टद्युम्न, हम सकल द्रौपदी नन्दन हैं ।
मैं द्रुपद हूँ और विराट हुँ मैं, हम सारे यहां दुखित मन हैं ॥
कर बचन श्रवण इन लोगों के, महाराज युधिष्ठिर अकुलाये ।
कुछ देर बाद फिर गुस्से से, इनके लिलाट पर बलआये ॥
और कहन लगे दुर्योधन ने, ऐसा क्या काम किया भारी ।
जिसके शुभ फल की ऐवज में, वो बना स्वर्ग का अधिकारी ॥
और मेरे सब भ्राताओं तथा, गुणवाले रिश्तेदारों ने ।
उस पतिव्रता द्रौपदी और, उसके पांचों सुकुमारों ने ॥
क्या पाप किया जिसके कारन, स्थान नरक में पाया है ।
ओ देव ! किया तैंने ये क्या, दिखलाई कैसी माया है ॥

यही सोचते सोचते, धर्मराज मति धीर ।
सम्बोधन कर दूत को, बोले बचन गंभीर ॥

हे भाई जिनका दूत है तू, उनके ढिंग जाकर कह देना ।
वो जेष्ट कुन्ति सुत चाहता है, दिनरात नर्क में ही रहना ॥
क्योंकि मेरे यहां रहने से, मेरे प्रिय पाते सुख भारी ।
इसलिये स्वर्ग में आने की, मैंने सब इच्छा तज डारी ॥

गया दूत ज्यों ही निरख, धर्मराज के तौर ।
त्यों ही वहां का होगया दृष्य और का और ॥

वो नरक एकदम गुम हुआ, बदबू तत्काल बिलाय गई ।
दुखभरी पुकार प्राणियों की, क्या जाने कहां समाय गई ॥
और इन चीजों की एवज में, छागया तुरत तहां उजियाला ।
मन भावन वायू चलने लगी, ये लख चकराये भूपाला ॥
इतने में इन्द्र, कुबेर, वरुण, यम आदि देव मुस्काते हुये ।
आगये तहां कुन्ती सुत की, मुख से जयकार सुनाते हुये ॥

और चकितविलोक पांडु सुतको, बोले सुरपति आगे आकर ।
हे भूप न्याय करते हैं सदा, प्रभु पक्षपात को विसराकर ॥
गो दुर्योधन ने किये कई, दुष्कर्म भयानक भयकारी ।
पर एक पुन्य से मिला उसे, कुछ देर स्वर्ग का सुखभारी ॥
वो ये था उसने अंत समय, क्षत्री का धर्म निभाया था ।
शत्रू के सन्मुख लड़कर के, निज जीवन को बिसराया था ॥

अस्तु स्वर्ग का पायकर, आनंद अपरम्पार ।
देखेगा वो शीघ्र ही, आय नर्क का द्वार ॥

और तेरे भ्रात पत्नि आदिक, थे उच्च कर्म करने वाले ।
धर्मानुसार चलते थे और, थे दीन दुःख हरने वाले ॥
किन्तू थोड़े पाप के सबब, सबने ये नर्क निहारा है ।
पर अब मत फिक्र करो राजन्, मिलगया उन्हें छुटकारा है ॥
फिर तैंने भी जो एक बार, निज मुख से झूंठ सुनाया था ।
अश्वत्थामा की मृत्यु खबर, फैला गुरुको* मरवाया था ॥
बस इसीलिये तुझको भी नर्क, देखना पड़ा है नरराई ।
अच्छे व बुरे कर्मों का फल, होता निश्चय सुख दुखदाई ॥

तू अपने चित में कहीं, करना ये न विचार ।
आया था मैं नर्क में, निज इच्छा अनुसार ॥

की सच तो ये है जैसी, होनी होने को होती है ।
ही बुद्धी होकर के, अपनी सब सुधबुध खोती है ॥
अब तुम आनन्द सहित, इस देव नदी में स्नान करो ।
दुख शोक क्लेश संताप सकल, चित से निकाल कर बाहिर धरो ॥

* इसका हाल जानने के लिये १९ वां भाग देखिये ।

और चलो हमारे साथ वहां, जहां है तुम्हरे चारों भाई ।
प्रिय द्रुपद दुलारी, सुत, बांधव, और इष्ट मित्र सब सुखदाई ॥
ये सुनकर ज्यों ही राजा ने, नभ गंगा में गोता मारा ।
त्योंही मनुष्य तन छूट गया, होगया शरीर दिव्य सारा ॥
इसके उपरान्त विमानों में, चढ़ सुरो सहित कुन्ती नंदन ।
चहुँ ओर तेज फैलाते हुये, आये सुरपति के सभा भवन ॥

बंधु बांधवों से यहां, मिलकर पांडु कुमार ।
इतने हरषे बह चली, आंखों से जलधार ॥

इस समय सभा की रौनक का, वर्णन करना आसान नहीं ।
था ऐसा यहां नहीं कोई, जो तेजो बल की खान नहीं ॥
गंधर्व यक्ष किन्नर सुर गण, और बड़े बड़े ऋषि मुनिराई ।
बैठे थे महा अनंदित हो, अति ही उत्तम शोभा पाई ॥
इनके अतिरिक्त यहां वे सब, जो धीर वीर व्रतधारी थे ।
फिर चले थे जो धर्मानुसार, और दीनों के हितकारी थे ।
और इनके संग भूपाल सकल, जिन युद्ध में प्राण गमाया था ।
इन सबने यहां उपस्थित हो, इस सभा का मान बढ़ाया था ॥
थे इनमें मुख्य शान्तनू-सुत, महा मती विदुर पंडित ज्ञानी ।
धृतराष्ट्र, द्रौण गुरु, कर्ण वीर, भूपाल युधिष्ठिर गुणखानी ॥
श्री भीम, पार्थ, सहदेव, नकुल, पंचाल नरेश, विराटेश्वर ।
अभिमन्यू, धृष्टद्युम्न, और वे, पंचाली के सब सुत सुंदर ॥

पांडु भूप भी थे यहां, कुन्ति, माद्री साथ ।
द्रुपद सुता, गंधारि भी, थी यहां पुलकित गात ॥

इनके सिवाय यदुवंशी भी, यहां सारे दृष्टी आते थे ।
लख एक दूसरे को सन्मुख, हृदय से हर्ष जनाते थे ॥

इतने ही में सच्चिदानन्द, आनन्दकंद जन सुखदाई ।
भूभार हरन करने वाले, वे कृष्णचन्द्र त्रिभुवन साई ॥
निज दिव्य तेज से चकाचौंध, सब दिशाओं में फैलाते हुये ।
इस सभा भवन में आपहुँचे, मन मंद मंद मुस्काते हुये ॥
लखते हि इन्हें सुर मुनि आदिक, होगये खड़े एकदम सारे ।
और बिठलाकर एक अति उत्तम, आसन पर बोले जयकारे ॥

फिर निज निज कर जोड़कर, प्रेम से शीश नवाय ।
"श्रीलाल" करने लगे, स्तुति सब हरषाय ॥

* स्तुति *

(तर्ज—थियेट्रिकल)

जय हो दीनन हितकारी, हम हैं सब शरण तुम्हारी ।
जब जब जग मे उपजें निश्चर, तब तब नर का तन धारन कर ।
हरते हो विपता सारी ॥ जय हो० ॥
आदि अंत तुम्हरा नहि स्वामी, जन सुखदायक अंतरयामी ।
कीरति जग विस्तारी ॥ जय हो० ॥
प्रेम सहित जो तुमको ध्यावे, रोग शोक उनके मिट जावें ।
पावें आनन्द भारी ॥ जय हो० ॥
बार बार मांगे सिरनाई, देहु दयाकर त्रिभुवन साई ।
चरण भक्ति सुखकारी ॥ जय हो० ॥

पूर्ण विनय के होत ही, पूर्ण होगया ग्रंथ ।
श्रोताओं हित से कहो, जय जय रुक्मणि कंथ ॥

❀ इति श्रीकृष्णार्पणमस्तु ❀

भीषम बोले हे कौरवेश, तेरे आश्रय में रहता हूँ ।
इसलिये युद्ध के नौते को, मजबूरन स्वीकृत करता हूँ ॥

धर्म तत्व को सोच कर, दूंगा तेरा साथ ।
करूंगा भुजबल से तुझे, पूरी तरह सनाथ ॥

लेकिन मन में ये याद राख, तू इसमें सफल न होवेगा ।
क्योंकि फलती नहिं पाप बेल, अस्तू आखिर में रोवेगा ॥
हैं श्रीकृष्ण जिनके साथी, हे मूर्ख उन्हें किसका डर है ।
है उनके लिये अग्नि शीतल, विष भी अमृत सम सुखकर है ॥
जिनके चरणों का ध्यान लगा, ऋषि मुनि कई जन्म बिताते हैं ।
तो भी उनके प्रतत्त दर्शन, नहिं होते हैं थक जाते हैं ॥
वे यदुराई जिन लोगों के, आ बंधे प्रेम की पाश में हैं ।
हैं वेही बड़भागी भूपर, वेही बस विजय आश में हैं ॥
हैं कृष्ण उधर क्यों के राजन, पांडवों को धर्मात्मा जानो ।
और जिधर कृष्ण हैं उसी ओर, है विजय ये सत्य बात मानो ॥
है युद्ध मुझे आनँददायक, कर्तव पालन होजावेगा ।
रण भूमी मिलने से मेरा, आत्मा निर्मल बन जावेगा ॥

तदपि एक प्रण ध्यान दे, सुन कुरवंश भुवार ।
अवसर आये भी कभी. हतूं न पान्डु कुमार ॥

जितना मैं तुम्हें प्यार करता, उतना ही उनको चाहता हूं ।
इसलिये उन्हें नहिं मारूंगा, येही इच्छा जतलाता हूं ॥
लेकिन तुझको खुश करने को, रिपु सेना मार गिराऊंगा ।
के सुन "दस हजार रथियों को, प्रतिदिन यम सदन पठाऊंगा" ॥

※ गाना ※

सब कुछ करूंगा पर न तू पायेगा कभी जय ।
कारण कि है उस ओर श्रीकृष्ण दयामय ॥
होती है जिस मनुष्य पै उनकी नजर महर ।
दुनियां के बन्धनो से वो होता है झट अभय ॥
उनसे विमुख होकर चहे कितना भी करे यत्न ।
होवेगा नहीं स्वप्न मे भी उसका अभ्युदय ॥
पांडव धरमधुरीन है, हैं भक्त प्रभू के ।
जीतेंगे वेही इसमे न कुछ जान तू संशय ॥
खाया है तेरा अन्न अस्तु नटना शुभ नहीं ।
शक्तीनुसार रण मे करूंगा मैं शत्रु क्षय ॥

ये सुनकर भी दुर्योधन ने, इनको सेनापति नियत किया ।
ले अपनी सुदृढ़ बाहिनी को, कुरुक्षेत्र का फौरन मार्ग लिया ॥
अपशगुन हुये मगमें नाना, पर काल विवश नहिं पहिचाने ।
लेकिन भीषम उनको विलोक, अपने हृदय में अकुलाने ॥
जब पहुँचे कुरुक्षेत्र में जा, देखा खेमे हैं तने हुये ।
और बीच में कुछ उत्तम उत्तम, मणिमय मंडप हैं बने हुये ॥
इनमें सब सेना ठहराई, रखवाई चीजें खाने की ।
सारा प्रबंध कर, तैयारी, की रिपु से युद्ध मचाने की ॥

शकुनी यों कहने लगा, सुन गुरुकुल अवनेश ।
भुला दूत इक शत्रु पै, भेजो कटु संदेश ॥

दुर्योधन ने हर्षित होकर, शकुनी के सुत को बुलवाया ।
अपमान जनक दुर्वाक्यों का, कटुवा संदेशा भिजवाया ॥

इस उलूक ने सारी बातें, कह डाली पांडु कुमारों को ।
फिर दुर्योधन को समझाया, कह उनके सकल विचारों को ॥

उत्तर सुन कुरुईश ने, सेनप लिये बुलाय ।
दी आज्ञा निज सेनको, साजो जल्दी जाय ॥

कल सूर्य निकलते ही मित्रों, संग्राम अवश्य छिड़ जावेगा ।
क्षत्रियों के कर्तव पालन का, कल उत्तम अवसर आवेगा ॥
रन की चीज़ों से सब प्रकार, सब वीरों से सजवा देना ।
और सूर्य निकलने से पहले, रण का डंका बजवा देना ॥
पा हुक्म सकल सेना नायक, तैयारी में लवलीन हुये ।
झूलें पड़गईं हाथियों पे, और घोड़े भी मय ज़ीन हुये ॥
पाडुओं ने जब दूतों द्वारा, कुरुदल सजने की सुधिपाई ।
इन लोगों ने भी कर सलाह, झट साजी अपनी कटकाई ॥

अरुणोदय से प्रथम उठ, दोनों सेना वीर ।
शौचादिक से हो निवृत, न्हाये निर्मल नीर ॥

सबने सुन्दर कपड़े पहिरे, गल में मालायें धारन की ।
सब शस्त्र बदन पर लगा लिये, जो कुछ थी कमी निवारन की ॥
कर प्रणाम अपने इष्टों को, चल डेरों से बाहिर आये ।
मैदान में आकर जमा हुये, सब युद्ध केसरी छविछाये ॥
इनको तैयार देखते ही, रन बाजों पर डन्का टूटा ।
वीरों की हिम्मत दुगुण हुई, नामर्दों का धीरज छूटा ॥
छागया शोर नभ मंडल में, धरती ध्वनि से दहलाय गई ।
हिलगये निकटवर्ती भूधर, कपकपी तरुन में आय गई ॥
सारे घोड़े हिनहिना उठे, हाथी चिंघाड़ सुनाते थे ।
बेगिनती रथ निज पहियों को, गड़गड़ाहट ध्वनि फैलाते थे ॥

आगया जोश रणधीरों को, आंखों से रक्तवर्ण धारा ।
दृष्टी हथियारों पर पहुँची, प्रभु नाम का गूंजा जयकारा ॥
थे सभी वीर्य बल में पूरे, चहरे तेजोमय भरे हुये ।
मानो तारे नभ मण्डल से, हो पतित भूमि पर खड़े हुये ॥

चढे जिस समय वीरगण, युद्धभूमि की ओर ।
भूमंडल हिलने लगा, हुआ गगन में शोर ॥

थी गोलाकार युद्ध भूमी, विस्तार पांच योजन का था ।
था पूर्वार्ध पांडव दल का, पश्चिमार्ध कौरवगन का था ॥
जिस समय ये दोनों सेनायें, निज २ रिपुओं की ओर बढ़ीं ।
तब ऐसा दृष्टि पड़ा मानो, पानी की दो नदियें उमड़ीं ॥
बिजली ज्यों शोभित होती है, सावन के काले बादल में ।
बस इसी तरह कंचन मय रथ थे प्रभा युक्त कुंजर दल में ॥
सूरज की किरणें पड़ने से, रथ ध्वजा छटा यों दिखलाती ।
जिस तरह शिखायें अग्नी की, वायू झोके से लहराती ॥
हुई सेना के आगे आगे, थे विशाल तन गज मतवाले ।
जिन पर धोंसा था रखा हुआ, और बजा रहे थे बल वाले ॥
इनके पीछे एक और झुंड, मय अम्बारी के जाय रहा ।
जिनमें केवल एक एक वीर, था बैठा कड़खा गाय रहा ॥
जाता था फिर स्यंदन समूह, रथियों को धारन किये हुये ।
थी मूछें जिनकी चढ़ी हुई, धनुबाण हाथ में लिये हुये ॥

थे फिर अनगिनती तुरंग, लिये हुये असवार ।
बाजों की आवाज में, थी तबियत सरशार ॥

इनके सवार भी मस्त होय, कौतुक दिखलाते जाते थे ।
घोड़ों को कभी कुदाते थे, कभि दौड़ाते ठहराते थे ॥

इनके पीछे टीडी दल सम, पैदल सेना दल जाय रहा।
हर्षित हो निज हथियारों को, रवि किरणों में चमकाय रहा॥
था किसी के कर में धनुषबाण, और कोई गदा उठाये था।
बरछी भाला था लिये कोई, कोई खंजर लटकाये था॥
थी छुरी कटारी चक्र परशु, हाथों में कितने वीरों के।
तलवार गंडासे और गुप्ती, थे कर में बहु रण धीरों के॥
थे कितने ही ऐसे योधा, जिन लट्ठ धरे थे कन्धों पै।
कुछ रस्सी लेकर धाये थे, विश्वास था जिनको फंदों पै॥
इस महा कटक के चलने से, नभ में अपार धूली छाई।
होगया अन्धेरा भूमी पर, देता था भानु न दिखलाई॥
उस समय दृष्टि आया मानो, सृष्टी क्रम ने पलटा खाया।
कर पंचतत्व मय जग विलीन, विधि ने रजकण का उपजाया॥
या घोर पाप से घबरा कर, भूमी निज दुःख सुनाने को।
जाती हो सुरपुर विधि समीप, उससे छुटकारा पाने को॥
आपस में एक दूसरे के, आकर समीप सब कटकाई।
ठहरी, इसके कुछ देर बाद, रवि की ज्योती दृष्टी आई॥

हुआ उजेला जिस समय, करके तम का भंग।
अचरज हुआ विलोक कर, दुहूं कटक का रंग।

सेनाओं के आगे वाले, वे हाथी कहां समाय गये।
चलदिये किधर स्यंदन घोड़े, पैदल किस जगह विलाय गये॥
होगई सेन दोउ व्यूह बद्ध, सेनपों की आज्ञा पाते ही।
पैतरा बदल कर खड़ी हुई, रण का संकेत जनाते ही॥
इस समय कुरू दल के आगे, थे शोभित श्री गंगानन्दन।
हिमगिरि के स्वच्छ शिखर सदृष्य, चमचमा रहा इनका स्यंदन॥

इस रथ के चारों घोड़े भी, थे श्वेत वर्ण गुण में नामी ।
पहिरे थे साज श्वेत रंग का, थे बलवानी और द्रुतगामी ॥
था श्वेत मुकुट मस्तक ऊपर, तन श्वेत कवच आच्छादित था ।
डाढ़ी भी श्वेत वर्ण की थी, धनु भी सुफेद ही शोभित था ॥
हर एक वस्तु गंगासुत की, बस श्वेत दृष्टि में आती थी ।
मध्यान सूर्य सम दमक रहे, दृष्टी न जहां ठहराती थी ॥
ले अक्षौहिणी कटक निज संग, श्री भीष्म पितामह धनु धारी ।
थे अग्र भाग में खड़े हुये, जैसे निश्चल भूधर भारी ॥
इन ब्रह्मचारी के दक्षिण दिशि, शोभित थे भरद्वाज नन्दन ।
लोहे का सुदृढ़ वज्र सदृष्य, था श्याम वर्ण इनका स्यंदन ॥
था कवच श्याम और धनुषश्याम, जिसकी डोरी भी कारी थी ।
बलवानी चपल तुरंगों ने, भी श्याम प्रभा ही धारी थी ॥
यमराज सरिस थे डटे हुये, हाथों में धनुष फिराते थे ।
गंगा नन्दन की तरफ देख, रनका संकेत जनाते थे ॥

अक्षौहिणी कटक लिये, खड़े अचल रणधीर ।
जिनकी आकृति देखकर, दहला जाय शरीर ॥

थे गुरू पुत्र अश्वथामा, भीषम की बाईं तरफ खड़े ।
कंचन मय रक्त वर्ण रथ में, पर्वत सुमेरु के सरिस अड़े ॥
अग्नी सम तेज दमकता था, सेना अपार संग लिये हुये ।
कर रहे थे रक्षा भीषम की, शत्रू सन्मुख मुख किये हुये ॥
सेना के पिछले हिस्से में, थे भूरिश्रवा नृप बलधारी ।
कुरु दल की रक्षा करते थे, ले कर में धनुष बाण भारी ॥
और मध्य में इस समुद्र दल के, जगमगा रहे थे दुर्योधन ।
थे खड़े हुये इनके रथ के, चौतरफा लाखों योधागन ॥

था रथ इनका ऊंचा विशाल, हरसू मणियों से जड़ा हुआ ।
और मणिमय नाग चिन्ह वाला, एक ध्वजा ग्वंभ था गड़ा हुआ ॥
दो सैनिक इन कौरव पति के, मस्तक पर चवंर डुलाय रहे ।
अनगिनती राजे महाराजे, मिल जयजय कार सुनाय रहे ॥
जिस तरह सुशोभित होते हैं, तारा–पति सारे तारों में ।
पस इसी तरह जगमगा रहे, दुर्योधन सब सरदारों में ॥

दुर्योधन के दाहिने, थे भगदत्त नरेश ।
हाथी पर असवार थे, लीन्हें संग जनेश ॥

थे वाईं ओर त्रिगर्त भूप, अपने वीरों को लिये हुये ।
इस तरह गया था कौरवदल, रिपुसे रन इच्छा किये हुये ॥
बलवान शल्य काम्बोज भूप, और जयद्रथ सिंधू महाराजा ।
करते थे सबदल की सम्भाल, ले अपने संग अगणित राजा ॥

उधर महारथ पार्थ ने, कीन्हा व्यूह निर्मान ।
जिसे देख भौंचक रहे, बड़े बड़े बलवान ॥

जो वीर फकत बाहू बल से, हाथी घोड़े मल डालते थे ।
लाखों योधाओं का समूह, ले वृक्ष नष्ट कर डालते थे ॥
जो बढ़वा नल सदृष्य रन में, करते थे भस्म शत्रु दल को ।
निज हांक सुना कर डालते थे, गुंजायमान नभ मंडल को ॥
थे श्रेष्ट गदा धारियों में जो, वे भीम वृकोदर बलशाली ।
सेना के अगले भाग में रह, करते थे दल की रखवाली ॥
था इनका सिंहध्वजा वाला, कंचन का रथ अति द्युतिकारी ।
दोनों हाथों में उठा हुई, थी गदा शत्रुदल क्षयकारी ॥
इन वीर के इर्द गिर्द अगणित, थे खड़े हुए सैनिक सजकर ।
हाथों में अस्त्र शस्त्र धारे, संग्राम के हेतु कमर कसकर ॥

तरफ दाहिनी भीम के, शोभित माद्रि कुमार ।
गरज रहे बनराज सम, लिये हाथ तलवार ॥

बलवान सात्यकी बांईं दिशि, संग में ले पान्डु कुमारों को ।
थे खड़े हुए निश्चलता से, ले साथ कई सरदारों को ॥
कौरव सेना को तकते थे, ज्यों मृगाधीश मृग झुंड़ों को ।
या नृपति दंड देने के लिये, क्रोधित हो ताके गुंड़ों को ॥
भूपति विराट पंचालेश्वर, अनगिनती वीर साथ में ले ।
सेना के पिछले भाग में थे, हथियार कई निज हाथ में ले ॥

पांडव दल के मध्य में, धर्म मूर्ति मतिधीर ।
शोभित कुंती जेष्टसुत, भूप युधिष्ठिर वीर ॥

तेजस्वी सूरज के समान, था नृप गुणखान दयावाला ।
जिसका मणिमय सुन्दर स्यंदन, फैलाय रहा था उजियाला ॥
चौतरफा था कुञ्जर समूह, और बीच में इनका स्यंदन था ।
ऐसा दिखलाई देता था, बिजली के सहित सघन घन था ॥
रत्नों से भूषित राज मुकुट, सिर के ऊपर चमचमा रहा ।
और ध्वजा में चित्रित स्वर्णचन्द्र, एक अद्भुत शोभा दिखा रहा ॥
थे घिरे हुए कुन्ती कुमार, ऋषिमुनि समूह से चौतरफा ।
जो मंत्र सुनाते थे उससे, होती रिपु पर आफत बरपा ॥
महावीर शिखंडी धृष्टद्युम्न, ले अपने संग सेना भारी ।
करते थे अति उत्तमता से, इन धर्मराज की रखवारी ॥
बलवान सुभद्रा के नन्दन, कर धारन कवच प्रभावाला ।
अपनी टोली को लिये हुये, तकते रिपु ज्यों विषधर काला ॥
चाहते थे रन आरम्भ होय, दुष्टों को हाथ दिखावें हम ।
अपमान का बदला ले लेकर, इनको यमसदन पठावें हम ॥

अर्जुन अपने रथ पर चढ़कर, सेना के चहुँदिशि जाते थे ।
जल्दी सुधारते थे उसको, जो कमी कहीं कछु पाते थे ॥
इस तरह धूल हटते हटते, व्यूह बद्ध होगई कटकाई ।
जब जिसे देखने वालों की, आपस में बुद्धी चकराई ॥
कौरव दल ने पांडव दल का, व्यूह उत्तम है ये ध्यान किया ।
पांडवों से अपने से उत्तम, रिपु के व्यूह को अनुमान किया ॥
पर थे आश्चर्यजनक दोनों, लख जिन्हें अक्ल चकराती थी ।
इस विकट किले बन्दी को तक, आंखें इकटक होजाती थीं ॥
मामूली ढंग से तकने में, मुख एक ध्यान में आता था ।
पर ध्यान से जिधर दृष्टि डालो, सेना का मुख दिखलाता था ॥

खड़ी कतारें इस तरह, अपना व्यूह बनाय ।
क्या मजाल थी पक्षि की, आर पार हो जाय ॥

तो भी सब से पीछे वाला, रिपु पर अघात पहुँचा सकता ।
कर निज बचाव आसानी से, अपनी ताकत दिखला सकता ॥
होने हि मोरचा बंदी के, योधा ललकार सुनाने लगे ।
अपने अपने हथियारों को, रवि किरणों में चमकाने लगे ॥
घोड़े हींसें गज चिंघाड़ें, रथ करें गड़गड़ाहट भारी ।
फिर घन गर्जन सम वाद्य बजें, यों कांप उठी भूमी सारी ॥
वो सेना थी ऐसी मानो, जलचरों पूर्ण दो सागर हों ।
तूफान से लहरें लेते हुये, मिलने के हेतू आतुर हों ॥
इस महासेन में चार पांच, रथ ध्वजा दृष्टि में आती थीं ।
जिनकी आभा लखकर आंखें, टकटकी बांध थक जाती थीं ॥

तालकेतु श्री भीष्म का, तारों से संयुक्त ।
वीर भीम का सिंह ध्वज, उत्तम आभा युक्त ॥

अर्जुन का अति भीषण कपिध्वज, कंचन मय चन्द्र धर्मसुत का ।
कुरुपति का मणिमय नाग चिन्ह, सुवरण का मोर पार्थ सुत का ॥
श्री गुरु का कमंडल के समान, केतू नभ में फहराता था ।
जलनिधि की नौका बल्लीमम, स्थिर दृष्टी में आता था ॥
होगये खड़े जब पृथ्वीपति, आपस में मरने कटने को ।
तब वसुन्धरा दुख से घबरा, तैयार होगई फटने को ॥
उस समय समस्त धरणि तल में, अपशगुन अमित आरम्भ हुये ।
लख जिन्हें नाश निश्चय होवे, वे सभी काम प्रारम्भ हुये ॥
सूरज की गर्मी न्यून हुई, पड़गया रोशनी में अंतर ।
केतू ग्रसता था बार बार, दम दम में हिलते थे भूधर ॥
चन्द्रमा पूर्णिमा की निशि को, हो तेजो हीन अलक्ष हुये ।
तारे मध्यान्ह दुपहरी में, मानिन्द रात के लक्ष हुये ॥
बिन मेघ के मेघ तुल्य गर्जन, सब नभ मंडल से आता था ।
कहिं कहीं बादलों का समूह, बालू व रक्त बरसाता था ॥

पत्थर भी बरसे कहीं, बरसे कहीं अंगार ।
मांस दृष्टि आया कहीं, ओले कहीं अपार ॥

प्रतिमायें बुरा समय लखकर, आंखों से अश्रु बहाती थीं ।
रोती थीं कभी कभी हंसती, हो कभी विकल चिल्लाती थीं ॥
ऐसा भी होता कभी कभी, ये खून की उल्टी करती थीं ।
आते थे कभी पसीने भी, कभि खड़ी खड़ी गिरपड़ती थीं ॥
वारीश हुआ मर्याद बिना, कई तटके गांव डुबाय दिये ।
अन गिनत जंगलों को पलमें, अग्नी ने भस्म बनाय दिये ॥
नदियें जलनिधि से पीठ मोड़, वहां चली जहां से आई थीं ।
तालाब, बावली के जलने, खूं की रंगत दिखलाई थी ॥

बिना बजाये दुन्दुभी, बजने लगीं अनेक ।
किसी मनुष्य को भी हुआ, इनसे नहीं विवेक ॥

ऐसा भी हुआ किसी पुर में, गैया ने गदहे को जाया ।
नारी ने अंगहीन काला, विकटानन बालक उपजाया ॥
बिन समय के फूल उठे तरुवर, ग्रीषम ऋतु में सर्दी आई ।
जो वक्त पच्छिमी हवा का था, उस समय चली थी पुरवाई ॥
वृक्षों पर खिलने लगे कमल, गेंदा पानी में उग आया ।
उस समय ने प्रकृती के विरुद्ध, ऐसे दृश्यों को दिखलाया ॥
हथियार बिना पैनाये ही, हो गये सतेज धारवाले ।
साधारन डंडे भी वहां पर, बनगये कठोर मारवाले ॥
अग्नी ने रक्तवर्ण तजकर, नीली पीली सूरत धारी ।
बदबू खुशबू में प्रगट हुई, यों बदल गई प्रकृति सारी ॥
भारत का सब प्राकृतिक दृश्य, उस समय यकायक बदल गया ।
आ पड़ी मृत्यु छाया सब जा, दुख शोक क्लेश का दखल भया ॥
कंपित होते थे बार बार, स्त्री पुरुषों के बदन सभी ।
भय उपजावन हारे अनिष्ट, होते वायू में शब्द सभी ॥

कुरुक्षेत्र में उस समय, आंधी चली प्रचण्ड ।
जिसके धक्के से तरु, गिरे होय दो खण्ड ॥

होगये इकट्ठे चील गिद्ध, लालच में आमिष खाने के ।
थे घात में कुत्ते अरु गीदड़, गज अश्वों के मरजाने के ॥
रन भूमी के चौपायों की, अंखियां अति अश्रु बहाती थीं ।
रथ ध्वजा वायु से टूट टूट, भूमी पर गिरती जाती थीं ॥

हुये काल वश वीर* सब, दिया नहीं कुछ ध्यान ।
रण करने की चाह से, हर्षित हुये महान ॥
इस प्रकार कुरु पांडुगन, लेले निज हथियार ।
सेन सहित जब होगये, लड़ने को तैयार ॥

उस समय महर्षी व्यासदेव, नृप धृतराष्ट्र के ढिंग आये ।
और कहा तेरे ही कर्मों से, ये महा भयंकर दिन छाये ॥
अब इसमें कुछ संदेह नहीं आपस में महाभारत होगा ।
जिससे निश्चय ही हराभरा, ये प्रिय भारत गारत होगा ॥
यदि तू उस कुटिल कुबुद्धि नीच, शठ दुर्योधन को समझाता ।
तो काहे को कुल क्षयकारी, ये समय देखने में आता ॥
अच्छा जो होना था वो हुआ, अब अपनी इच्छा बतलाओ ।
क्या इस अचरजकारी रण को, लखना चाहते हो कहजाओ ॥

दे सकता हूं मैं तुम्हें, दिव्य दृष्टि तत्काल ।
सकोगे जिससे देख तुम, रणका सारा हाल ॥
ये सुनकर कुछ देर तक, रहे नृपाल उदास ।
कहन लगे फिर अंत में, लेकर लम्बी सांस ॥

हे महामुने ! सारा जीवन, तो बिता दिया अन्धे रहकर ।
अब अंत समय में दृष्टी लूं, संग्राम देखने की खातर ॥

---

* इस भयंकर युद्ध में बलराम और रुक्म को छोड़कर उस समय के अन्य सब क्षत्रिय वीर सम्मिलित हुए थे, बलराम दोनों पक्षों पर समान प्रीति रखते थे इससे अलावा ये इस जातिक्षय को देखना भी नहीं चाहते थे अस्तु ये तो तीर्थाटन को चले गये । रुक्म भी अद्भुत पराक्रमी था, गांडीव धनुष के समान उसने विजय नामक दिव्य धनुष पाया था परन्तु वह बड़ा घमन्डी था इस कारण दोनों पक्षों ने उसकी सहायता लेने से इन्कार कर दिया ।

फिर वह भी उस युद्ध के लिये, जिसमें दुनियां के धनुधारी ।
और मुख्य तथा निज कुलकाही, होवेगा नाश भयंकारी ॥
अस्तू ऐ भगवान् क्षमा करो, ऐसा उपकार न चाहता हूँ ।
बस रण वृतान्त ही सुनने की, हृदय से चाह जताता हूँ ॥
करदो एक ऐसा मनुज नि त, जो नित्यप्रती संध्या को आ ।
जो हुआ होय रणभूमी में, वो सारा किस्सा दे बतला ॥
कर श्रवण भूप के वचनों को, मुनि ने संजय को बुलवाया ।
देदिया उसे वरदान तुरत, फिर धृतराष्ट्र से फरमाया ॥
ऐ भूप तुम्हें संजय नितप्रति, संग्राम का हाल सुनावेगा ।
जो कुछ भी होवेगा वहां पर, इससे नहिं छिपने पावेगा ॥

इतना कह कर व्यासजी, चले गये निज धाम ।
संजय नित कहता रहा, रण की कथा तमाम ॥
कुरुक्षेत्र का हाल अब, सुनो सुजन बरधीर ।
खड़े होगये जिस समय, लड़ने को सब वीर ॥

उस समय महाबल गंग-तनय, श्री भीष्म सिंह सम गरज उठे ।
फूंका फिर अपना दिव्य शंख, आकाश धरातल लरज उठे ॥
होगये बधिर सम सब योधा, उंगलियां डालदी कानों में ।
थलचर नभचर भी क्षुब्द हुये, हल चल मच गई विमानों में ॥
इतने में कुरु सेना में भी, होगया शुरू रन का बाजा ।
वह घोर कठोर अति शोर हुआ, जनु प्रलय काल बादल गाजा ॥
बांके मतवाले वीर सभी, निज निज हथियार उठाने लगे ।
उत्कंठित हो रन करने की, अतिशय जल्दी दिखलाने लगे ॥
आवेश में आकर ताल ठोक, रिपु को पुकारना शुरू किया ।
आगे पीछे दायें बायें, हो कज सुधारना शुरू किया ॥

देख ठाठ संग्राम का, मर्द हुये बे ख़ौफ़ ।
नामर्दों को आ गया, डर के मारे जौफ़ ॥

जो कच्चे थे कचरे समान, फिरते थे अपना पेट पकर ।
दम दम पै दस्त आरहे थे, शव सम होगये शान खोकर ॥
बिन मारे ही मरगये कई, फटगया कलेजा घोड़ों का ।
जहां हाथी तक भी दहल गये, क्या हाल कहें कमजोरों का ॥
ऐसा वह दृश्य भयानक था, लख जिसे काल भी दहलाया ।
सबने सोचा बस पृथ्वी का, अब निश्चय अन्तकाल आया ॥

पांडव दल ने भी करी, शंखों की आवाज़ ।
विकट शोर से एकदम, कांपी सकल समाज ॥

सब से पहिले उन अर्जुन ने, जो पांडव दल के नायक थे ।
शोभित थे जो कपिध्वज रथ पर, सब वीरों में जो लायक थे ॥
थे जिनके सारथि त्रिभुवन पति, उनके गुण का क्या कथन करें ।
ब्रह्मा, शंकर, सुरमुनि, सुरेश, जिनके नामों का मनन करें ॥
उनहीं अर्जुन ने लीला से, निज शंख देवदत्त बजा दिया ।
प्रभु ने भी अपना शंख उठा, उसके सुर में सुर मिला दिया ॥
ये देख युधिष्ठिर भीम और, सहदेव नकुल चारों भाई ।
द्रौपद, अभिमन्यु, धृष्टद्युम्न, सात्यकी आदि सब कटकाई ॥
धर अधर शंख ध्वनि करने लगी, पहिले से शोर दुचंद हुआ ।
ऐसा दृष्टी आया मानो, बस खंड खंड ब्रह्मांड हुआ ॥
सूरज के घोड़े मार्ग छोड़, घबराकर इधर उधर भागे ।
गिरि गुफा में बैठे हुये संत, तजकर समाधि फौरन जागे ॥
डिगमिगा उठी धरती सारी, दिग्गज चिंघाड़ सुनाते थे ।
पाताल लोक में शेष नाग, सुन विकट ध्वनी अकुलाते थे ॥

कंपित हो भूधरशिखर, गिरे धरणि पै आय ।
उछला जल वारीश का, पहुँचा नभ लौं जाय ॥

सब दृश्य एक दम बदल गया, ब्रह्मांड में हाहाकार हुआ ।
ब्रह्मा ने जाना सृष्टी के, बस मिटने का आकार हुआ ॥
कुछ देर बाद ध्वनि थिला गई, इस वक्त पार्थ को हर्ष हुआ ।
पढ़ गया हृदय अरु रिपुओं के, बध करने का उत्कर्ष हुआ ॥
अपना प्यारा गांडीव उठा, प्रभु से बोले कोमल बानी ।
दोनों सेना के बीच मुझे, ले चलो तुरत शारंगपानी ॥
देखूं दुर्बुद्धी दुर्योधन, किन के बल पर इतराया है ।
किन किन भूपों को संग लेकर, हम से जय पाने आया है ॥
और काल विवश सब भूपों को, जो २ उस खल के साथी हैं ।
तज दिया जिन्होंने धर्म मार्ग, सत पथ के जो आराती हैं ॥
उन लोगों को बाहूबल से, भूमी पर आज सुलाऊंगा ।
कुरुओं के संग सब दुष्टों का, दुनियां से नाम मिटाऊंगा ॥
अपमान प्रिया पंचाली का, कांटे के सदृष्य खटकता है ।
लख उसके सर के खुले बाल, हे कृष्ण हृदय ये फटता है ॥

मुस्काकर यदुबीर ने, रथ हांका तत्काल ।
दोनों दल के बीच में, जा पहुँचे गोपाल ॥
यों बोले फिर पार्थ से, वासुदेव हरषाय ।
देख धनंजय युद्ध का, ठाठ बाट चितलाय ॥

देखा अर्जुन ने निज कुटुम्ब, कौरव दल में लड़नेवाला ।
काका, मामा, भाई बन्धू, प्रिय मित्र भतीजा अरु साला ॥
फिर देखा भीष्म पितामह को, दुर्योधन के सेनापति हैं ।
निज गुरु द्रोण आचरज भी, शत्रू के दल के दलपति हैं ॥

कई और सगे संबंधी हैं, जो पूज्य दृष्टि के लायक हैं ।
जिनको वध करना नीति विरुद्ध, वे कौरव दल के नायक हैं ॥
ये देख धनंजय घबराये, अज्ञान से मति बौराय गई ।
ऐसा कुछ मोह ने घेर लिया, बल बुद्धी सभी बिलाय गई ॥
गो धर्म तत्व के ज्ञाता थे, थे सुभट वीर रणधीर बली ।
पर मोह का ऐसा चक्र चला, थिर बुद्धी रस्ता भूल चली ॥

दयाभाव ने पार्थ को, घेर लिया चहुँ ओर ।
होय दुखित श्रीकृष्ण से, बोले दोउ कर जोर ॥

हे कृष्ण सकल कुरु सेना में, जो जो यहां लड़ने आये हैं ।
वे सभी सगे संबंधी हैं, और इष्ट मित्र कहलाये हैं ॥
इन सुहृद जनों को देख देख, बुद्धी चकराती जाती है ।
सोगई वीर वृत्ती मेरी, व्याकुलता बढ़ती आती है ॥
तन कपकपात रोमांच होत, आंखों से अश्रु निकल आये ।
गांडीव गिरा ही जाता है, जीव्हा सूखत जिया घबराये ॥
मुझ से न यहां ठहरा जाता, हा कैसा घोर अनर्थ हुआ ।
बिन सोचे यहां चला आया, सब युद्ध परिश्रम व्यर्थ हुआ ॥
इनके खूनों से हाथ रगूं, ये मुझे न भला दृष्टि आता ।
ए कृष्ण फिरादो रथ जल्दी, ये अर्जुन अब वापिस जाता ॥

पुन्य नहीं है पाप है, आनन्द नहीं विषाद ।
सुकृत नहीं दुष्कृत है ये, धर्म नहीं अपवाद ॥

मैं विजय नहीं चाहता माधव, नहिं चाह राज के पाने की ।
आत्मीय जनों को बध करके, इच्छा नहिं सुःख उठाने की ॥
जिन सुहृद जनों के लिये कृष्ण, हम राज भोग सुख चाहते हैं ।
वे ही जीवन का लालच तज, रन करने को ठहराते हैं ॥

चाहे ये मुझे मार डालें, पर मैं नहिं हाथ उठाऊंगा।
त्रिभुवन का राज भी प्राप्त होय, तो भी नहिं शस्त्र चलाऊंगा॥
दुर्योधन पापी है बेशक, अपकीरति चहुँदिशि छाई है।
है आततायी तो भी नटवर, आखिर तो मेरा भाई है॥
गो ज़र ज़मीन से हीन किया, धोखा दे बन भिजवाया है।
घर का न घाट का रखा हमें, सब सत्यानाश कराया है॥
तो भी स्वारथ के वश होकर, क्यों इसका खून बहाऊं मैं।
एक नाशवान सुख के कारन, किस लिये अधर्म कमाऊं मैं॥

कौरवगन की बुद्धि प्रभु, फंसी पाप के फन्द।
धर्म ज्ञान जाता रहा, बने सभी जन अन्ध॥

ये तो कुछ भी न समझते हैं, कुलक्षय होने के दोष प्रभू।
पर मैं स्पष्ट देखता हूँ, होता है इसीसे सोच प्रभू॥
कुल के क्षय होने से उसके, सब धर्म नष्ट होजावेंगे।
तब अन्धकार लहां पाप देव, हर्षित हो दौड़े आवेंगे॥
अबलाओं पर इनका प्रभाव, जल्दी ही रंग जमावेगा।
उनके सुविचार नष्ट करके, व्यभिचार तुरत फैलावेगा॥
पैदायश वर्णशंकरों की, भारत में प्रभु होजावेगी।
फिर असल नकल की जांच कृष्ण, प्रिय देश से ही उठ जावेगी॥

पित्रों का होजायगा, पिंड दान जब बन्द।
धर्म सनातन लुप्त हो, चेतेगा पाखंड॥

जैसे आमिष को लखते ही, चहुंदिशा से काग झपटते हैं।
वैसे ही धर्म हीन कुल में, महा पातक आय चिपटते हैं॥
यों सारा कुल और कुल घातक, पड़ते हैं नरकों में जाकर।
ये जान बूझ कर भी स्वामी, क्यों जावें हम उल्टे मग पर॥

इसलिये क्षमा कीजे मुझको, मैं रन से हाथ उठाता हूँ ।
इस घोर कर्म से बचने को, हे कृष्ण छोड़ रन जाता हूँ ॥
चाहे ये उदर पालने को, भिक्षा वृती स्वीकारूं मैं ।
या भूखों मरते मरते ही, संसार में देह बिसारूं मैं ॥
परवाह नहीं तो भी मुझको, सब सहने को तैयार हूँ मैं ।
पर नाथ लडूंगा कभी नहीं, लाचार हूँ मैं इन्कार हूँ मैं ॥

यह कहकर अर्जुन बली, हो अत्यन्त उदास ।
धनुष फेंक निश्चल हुये, तज जीवन की आस ॥

नृप राज भ्रष्ट होजाने से, ज्यों मान हीन होजाता है ।
या राहू ग्रस्त भास्कर ज्यों, निस्तेज दृष्टि में आता है ॥
वैसे ही पार्थ मोह में फंस, तज धनुषबाण अति दीन हुये ।
पांडवों के प्राण बज्र हृदय, व्याकुलता से छवि छीन हुये ॥

देख धनंजय की दशा, विकल और बेचैन ।
उसे धीर देते हुये, बोले करुणाऐन ॥

ऐसे संकट के समय पार्थ, तुझको ये कैसा मोह हुआ ।
जो कीर्ति स्वर्ग की दायक है, उससे क्यों आज बिछोह हुआ ॥
तू क्षत्री है प्यारे अर्जुन, तेरा कर्तव तो लड़ना है ।
निज आन बान और इज्जत पर, निश्चल हो करके मरना है ॥
विख्यात है तेरा बाहूबल, जगमेंहि नहीं परलोकों में ।
सब धर्म जानता हुआ भी तू, क्यों फंसता झूंठे शोकों में ॥
जो बात सोचने के अयोग्य, उसपै क्यों ध्यान जमाता है ।
संग्राम के निमित यहां आकर, किसलिये न धनुष उठाता है ॥
रण भूमी में करुणा करना, ये अधोगति का लक्षण है ।
ज्ञानी होकर मूरख बनना, ये लक्षण नहीं कुलक्षण है ॥

अर्जुन इस समय दया तेरी, तुझको न स्वर्ग पहुँचायेगी ।
बलकी तेरी सब कीरति में, ये निश्चय दाग लगायेगी ॥
यश, कीर्ति रहित जीवन से तो, क्षत्री का मरना बेहतर है ।
इसलिये उठो और युद्ध करो, लड़कर मरना ही सुखकर है ॥

क्या ये कुरुगन आज ही, बने हैं रिश्तेदार ।
क्या तुझको इस बातका, नहिं था प्रथम विचार ॥

क्यों जान बूझकर मूर्ख बना, क्यों मोहने तुझे फंसाया है ।
क्यों क्षत्री धर्म पालने से, तैंने निज हृदय हटाया है ॥
जो अपना धर्म छोड़ता है, वह पाता नर्क दुःखदाई ।
इसलिये धनंजय युद्ध करो, बस तजो सखा कायरताई ॥

*** गाना ***

क्षत्रि होकर चात्रि सम कर्तव्य न तू दिखलायेगा ।
तो जहां से यश तेरा एक आन में मिटजायेगा ॥
शत्रु पर करना दया कहदे कहां की रीति है ।
मोह तेरा तुझको निश्चय नर्क मे पहुँचायेगा ॥
तू यहां आया है लड़ने शत्रुओ के सामने ।
फेर कायरपन दिखाना क्या भला कहलायेगा ॥
क्या हुये हैं अब ही रिश्तेदार कौरवगन तेरे ।
ऐसी नादानी की बातो मे क्या कर मे आयेगा ॥
अस्तु तज के शीघ्र सब अज्ञान अर्जुन युद्ध कर ।
येहि कर्तव्य इस समय तुझको सुयश दिलवायेगा ॥

सुन वचन कृष्ण के हाथ जोड़, बोले सदुःख कुन्ती नन्दन ।
इस कुलक्षय के भीषण फलका, कुछ ध्यान करो प्रभु वृजचन्दन ॥

तुम लड़ने को उकसाते हो, पर मुझसे लड़ा नहीं जाता ।
अपने ही घर के लोगों का, ये जीवन हरा नहीं जाता ॥
श्रुति शास्त्र आदि सब कहते हैं, वृद्धों की सेवा हितकर है ।
हो शस्त्र प्रहार पितामह पर, बोलो ये कहां तक सुखकर है ॥
जिन द्रोण गुरू की किरपा से, मैं बना धनुर्धर बलकारी ।
क्या चरन वंदना के बदले, सिर काटूं उनका गिरधारी ॥
मैं बहुत सोचता हूँ माधव, पर मोह का मुझपर वार हुआ ।
कर्तव्य कर्म की शिक्षा पर, इसका पूरा अधिकार हुआ ॥
बुद्धी ने भ्रम का आश्रय ले, सब होश हवाश भुलायदिये ।
कुछ ठीक नहीं कर सकता हूँ, चक्कर में हूँ दुखदाह हिये ॥
जब तक संशय अरु मोह मेरा, हृदय से चला न जावेगा ।
तब तक ये अर्जुन कभी नहीं, संग्राम में चित्त लगावेगा ॥
इसलिये आपकी शरन हूं मैं, हे दीनबंधु किरपा कीजे ।
कर मोह निवारन नाथ मेरा, समयोचित शुभ शिक्षा दीजे ॥

शिष्य रूप में आपके, सन्मुख आया नाथ ।
सत्यज्ञान उपदेश दे, कीजे मोहि सनाथ ॥
देख पार्थ को आर्तयुत, बिहंसे दीनदयाल ।
बोले नकली क्रोध से, सुन कुन्ती के लाल ॥

पंडित की सी बातें करता, अज्ञानी पूरा बना हुआ ।
जो बात अयोग्य सोचने के, है उसी सोच में लगा हुआ ॥
तुझ को खुद की तो खबर नहीं तू कौन कहां से आया है ।
करता है सोच कौरवों का ये ज्ञान कहां से पाया है ॥
क्या इस त्रिलोकी को पैदा, हे अर्जुन तुमही करते हो ।
कर इसका पालन भली भांति, क्या अंत में तुमही हरते हो ॥

"ये विश्व अनादि काल से है, बसता है इसमें अविनाशी।
है वही सत्य" ये वेद वाक्य, क्या है बिल्कुल मिथ्या भासी॥
तुम कहते हो कौरव गन को, मैं रन में कभी न मारूंगा।
तज युद्ध भूमि, कर साधु भेष, भिक्षा वृत्ती स्वीकारूंगा॥
तो क्या तू ही इन लोगों को, मारेगा तभी मरेंगे ये।
और नहीं तो चिरंजीव होकर, जग में सदैव विचरेंगे ये॥
"बस केवल एक मुझी से ही, है ये सब जग मरने वाला।"
है ऐसा ज्ञान कुन्तिनन्दन, भ्रम मांहि डाल देने वाला॥
ऐसा भ्रम मूलक अहंकार, हृदय में कभी न आने दो।
बस असल तत्व का ग्रहण करो, मिथ्या बातें सब जाने दो॥
संसार अनादि काल से है, ये सत्य बात मन में लाना।
इसका है सहज स्वभाव यही, "उतपन होना और नस जाना"॥

फिर क्यों इसका सोचकर, होते हो हैरान।
ज्ञानी बन कर्तव करो, गहो हाथ धनुबान॥

क्यों मोह में फसकर अर्जुन तुम, कर्तव पर ध्यान नहीं धरते।
चाहे जीवे व मरे कोई, ज्ञानी कुछ सोच नहीं करते॥
हम तुम और ये सब राजागन, दोनों दल की सेना सारी।
क्या पहिले पैदा नहीं हुई, या और न होंगे धनुधारी॥
ये आवागमन चक्र सदृश्य, हर वक्त हि भ्रमता रहता है।
ये बात जो कोई जानता है, उसको न मोह ग्रस सकता है॥
मृत्यू क्या है कुछ ज्ञान नहीं, बस इसीसे तुम घबराते हो।
तो उसका भेद बताता हूँ, क्यों व्याकुल हो अकुलाते हो॥
जिस तरह प्रथम बाल्यावस्था, इस शरीर में दृष्टी आती।
फिर तरुण अवस्था होने पर, वह प्रथम अवस्था नश जाती॥

लेकिन हरएक अवस्था संग, ये देह नाश नहिं पाती है ।
बस ऐसे ही आत्मा इकतन, को छोड़ और में जाती है ॥

हे अर्जुन तुम मनुष्य को, गिनो न सिर्फ शरीर ॥
बल्कि आत्मा भी गिनो, इसमें शामिल वीर ।

इन दो तत्वों में से आत्मा, है अजर अमर अरु अविनाशी ।
चैतन्य सत्य आनन्द मई, है निर्विकार अरु सुखराशी ॥
शस्त्रों में इतनी शक्ति नहीं, जो काट सके अविनाशी को ।
अग्नी भी जला नहीं सकती, इस आत्म तत्व सुखराशी को ॥
महा प्रलय के जल में ये आत्मा, हे अर्जुन डूब नहीं सकती ।
अति घोर प्रचंड हवा से भी, ये हरगिज सूख नहीं सकती ॥
फिर और वस्तु की क्या गिनती, जिससे ये नाश करी जावे ।
ये है अवध्य सर्वत्र सदां, अरु नित्य अचल मानी जावे ॥
फिर तर्क शास्त्र की भी दलील, इसको पहिचान नहीं सकती ।
संसार की सर्व साधनायें, इसको अनुमान नहीं सकती ॥
है निराकार निर्लेप सदां, अरु निगुण निरंजन सुखकंदन ।
है आदि मध्य और अंत रहित, यह तनवासी कुंती नन्दन ॥
इसलिये आत्मा का अर्जुन, किसलिये सोच तू करता है ।
ये सदां सत्य रहने वाला, क्या मारे से मर सकता है ॥

रही दूसरे तत्व की, जो शरीर कहलाय ।
वह तो पार्थ यथार्थ में, अनित्य माना जाय ॥

गर आज नहीं दो वर्ष बाद, या दो सौ वर्ष निकलने पर ।
यह नाश अवश्य ही होवेगा, है वृथा ध्यान देना इस पर ॥
यदि ये शरीर छुट भी जावे, तो भी कुछ दुख की बात नहीं ।
कर्मानुसार आगे जाकर, तत्काल मिलेगी देह नई ॥

इस तरह आत्मा अरु शरीर, ये सोच की वस्तु नहीं अर्जुन ।
रख ऐसा ज्ञान हृदय में तू, कर युद्ध मती घबरा अर्जुन ॥
तुम क्षत्रि जाति में जन्मे हो, निज धर्म विहित आचरन करो ।
पहुँचे हैं जिस मग से बुजुर्ग, तुम भी उसका अनुसरन करो ॥
जो लेय सहारा दीपक का, तम पूर्ण मार्ग में जाते हैं ।
जल्दी चलते रहने पर भी, वे ठोकर कहीं न खाते हैं ॥
बस इसी तरह धर्मानुसार, चलने वाले विजयी होते ।
करते अपनी सब चाह पूर्ण, माया का सारा बल खोते ॥
धर्मोचित रन से बढ़ करके, क्षत्री के लिये न हित कोई ।
निज धर्म त्यागने से ज्यादा, हे पार्थ नहीं अनहित कोई ॥
इसको न सिर्फ संग्राम गिनो, ये स्वर्गलोक का दरवाजा ।
होगया प्राप्त शुभ कर्मों से, तज इसे मूर्ख वापिस मत जा ॥

भाग्य तुम्हारा प्रबल है, प्राप्त हुआ संग्राम ।
हर्षित हो इसमें लगो, तज कर मोह तमाम ॥

जैसे मग में चलते चलते, यदि पारस पत्थर मिल जावे ।
या जमुहाई लेती बिरियां, मुख में अमृत की बूंद आवे ॥
मिल गया प्रभू की किरपा से, बस इसी तरह संग्राम तुम्हें ।
सारी ग्लानी तज युद्ध करो, अब और नहीं कुछ काम तुम्हें ॥
जो धर्म अनुकूल प्राप्त रनसे, तू पराङ्मुख हो जावेगा ।
तो निश्चित है स्वधर्म से गिर, अति भीषण पाप कमावेगा ॥
ज्यों शव चौड़े में रखने से, गीदड़ व काग खा जाते हैं ।
तैसे ही धर्महीन नर को, पातक झट आय दबाते हैं ॥
पापों में फंस हो जाय नष्ट, नर की संचित कीरति सारी ।
और कीर्तिहीन नरका मरना, अति उत्तम है हे धनुधारी ॥

अब तू हृदय में दया धार, यदि वापिस कदम बढ़ावेगा ।
तो क्या ये भाव शत्रुओं को, सच्चा विश्वास दिलावेगा ॥
कुरुवीर दया पर ध्या न दे, ये कहेंगे अर्जुन भाग गया ।
हम जैसे वीरों को लखकर, उसके मन में डर जाग गया ॥
जिस तरह सिंह का गर्जन सुन, हस्ती समूह दहलाता है ।
या ज्यो पक्षेन्द्र गरुड़ को लख, सांपों का दल छिपजाता है ॥
वैसे ही कौरव तुम्हें देख, डर के मारे कंपित होते ।
चहरे पीले पड़ जाते हैं, बाहू बल स्थंभित होते ॥
इस समय यदी तू युद्ध छोड़, रख दया भाव फिर जावेगा ।
वृद्धों के यश के साथ साथ, अपने यश को भि गमावेगा ॥
लख तेरी कायरता रिपु सब, दुर्वाक्यों की बौछार करें ।
तुझको नामर्द कह कह कर, मन माना खूब प्रहार करें ॥
होवेगा हृदय विदीर्ण तेरा, सुन सुन कर उन अपमानों को ।
इससे ज्यादा क्या दुःख विषय, सुनना होगा इन कानों को ॥

यदी मरगया पार्थ तू, जाय स्वर्ग आगार ।
जीते तो भूमी मिले, कर रन कुन्ति कुमार ॥

* गाना *

(तर्ज—हरी की याद का अरमा रहे रहे न रहे)

शोक तज ज्ञान यही चित्त मे लाओ अर्जुन ।
अमर है आत्मा इसको न भुलाओ अर्जुन ॥
और जो देह है वो थिर न रहेगी हरदम ।
अस्तु इसका भि फिकर दिल से हटाओ अर्जुन ॥
धर्म अनुसार जो कुछ कर्म सामने आवे ।
उसके करने में कभी दुख न दिखाओ अर्जुन ॥

मैं ये करता हूँ या वह काम किया था मैंने ।
ऐसे अभिमान को मत पास बुलाओ अर्जुन ॥
करता, भरता व अन्त, हरता वही ईश्वर है ।
यही विश्वास फकत चित मे जमाओ अर्जुन ॥
धर्म पालन मे मृत्यु, मृत्यु नही जीवन है ।
अस्तु निज जाति विहित धर्म निभाओ अर्जुन ॥

अर्जुन ने जब ये सुने, श्रीकृष्ण के बैन ।
बोला दोउ करजोड़ कर, अश्रु पूर्ण कर नैन ॥

ये माधव ये तो समझ गया, ये आत्म तत्व अविनाशी है ।
और पंच भूत मय नर शरीर, अविनाशी नहीं विनाशी है ॥
इसलिये है इनका सोच वृथा, क्योंके है सचा नियम यही ।
"जो अमर है वह नहिं नाश होय, और नाशवान थिर रहे नहीं" ॥
पर दैवयोग से आत्मतत्व, जो इस शरीर का त्याग करे ।
कर्मानुसार फिर जन्म धार, दूसर तन से अनुराग करे ॥
तब तो कुछ शोक नहीं नटवर, विधि के विधान से काम हुआ ।
जैसी होनी थी लिखी हुई, उसके माफिक अंजाम हुआ ॥
हे विन जब जान बूझ के हम, कर डाले नष्ट किसी तन का ।
तब तो इस घोर पाप से हम, पावेंगे फल निज करमन का ॥
ये नर शरीर है मुख्य द्वार, कर्मों के बन्ध मिटाने का ।
इस आत्मा को परमात्मा से, कर ज्ञान की प्राप्ति मिलाने का ॥
उस नर शरीर का बिना सबब, हे प्रभू क्यों नाश किया जावे ।
किस कारन अपने मस्तक पर, इस पाप को झेल लिया जावे ॥
क्यों मुझसे ऐसा घोर पाप, हे प्रभू आप करवाते हो ।
संग्राम की आज्ञा देते हुये, संकोच क्यों नहीं खाते हो ॥

मैं तो तुमको सच्चे दिल से, अपना शुभचिंतक जानता हूँ ।
और आपकी आज्ञा को हरदम, मैं वेद वाक्य ही मानता हूं ॥
लेकिन तुम अगुआ बन मुझसे, करवाते हो क्यों नर हत्या ।
करते हो इसीको तुम स्वधर्म, इसको सच समझूं या मिथ्या ॥
मैं प्रथम से ही अज्ञानी हूँ, अब मोह का प्रभू शिकार हुआ ।
कुछ भले बुरे का ज्ञान नहीं, अत्यन्त दीन लाचार हुआ ॥
इसलिये कृष्ण किरपा करके, इक ऐसा मार्ग बताओ तुम ।
अनुकूल हमारे धर्म के हो, अब वृथा न मुझे भ्रमाओ तुम ॥

चलने से उस मार्ग पर, लगे पाप नहिं मोय ।
किये कर्म बाधा न दें, मोक्ष अंत में होय ॥
कहा कृष्ण ने ध्यान धर, सुन अर्जुन चितलाय ।
जिस से होवे हित तेरा, कहूँ वही समझाय ॥

अब जो कुछ तुम्हें सुनाऊंगा, वह वर्णन बड़े काम का है ।
उसका आचरन स्वल्प सा भी, निश्चय मग मोक्ष धाम का है ॥
इस पर चलने वाले नर को, बाधा न कर्म पहुँचा सकते ।
और मोक्ष की अंतिम सीढ़ी से, उसको नहिं कभी हटा सकते ॥
जिसके वश हो ये आत्म तत्व, संसार चक्र में गिरता है ।
या जग से हट आसानी से, परमात्मा में जा मिलता है ॥
वह क्या वस्तू है सोचो तो, वह नर की बुद्धि कहाती है ।
बस यही फंसाती है जग में, और यही मोक्ष दिलवाती है ॥
जिसकी बुद्धी में पाप पुन्य, का कुछ संचार नहीं होता ।
जय और पराजय हानि लाभ, सुख दुःख विचार नहीं होता ॥
जो यश अपयश पर ध्यान न दे, नित आत्म तत्व में लगती है ।
रुपवमाप एक ही है जिसका, निष्काम कर्म में पगती है ॥

वह ही बुद्धी निश्चय अर्जुन, बस मोक्ष धाम ले जाती है।
यदि इसमें तृष्णा आय घुसी, तो आवागमन दिखाती है॥
चाहे ये सभी इन्द्रियां मिल, निज निज भोगों में लगी रहें।
रस, रूप, गंध, स्पर्श, शब्द, आदिक विषयों में पगी रहें॥
जो बुद्धी इन्द्रिय कामों को, नहिं कभी समझती है अपना।
इनको इसतरह देखती है, जैसे कोई देखे सपना॥
ऐसी बुद्धी सचमुच पारथ, बस मोक्ष दिलाने वाली है।
जग के सब बन्धन से नर को, तत्काल हटाने वाली है॥

दीप शिखा छोटी रहे, पर प्रकाश अति होय।
त्योंही अल्प सुबुद्धि भी, जन्म मृत्यु को खोय॥

जिस तरह अन्य पाषानों सम, पारस पत्थर नहिं होता है।
अथवा अमृत का एक बिन्दु, कभि दैवयोग से मिलता है॥
त्यों सम दर्शनी बुद्धि पारथ, दुर्लभ सारे संसार में है।
इसलिये इसे ही प्राप्त करो, येही उत्तम हर कार में है॥
जिनकी बुद्धी सत मार्ग छोड़, जग के विषयों में फंसती है।
कुछ सुःख मिले यह इच्छा रख, दिन रात परिश्रम करती है॥
उन लोगों को ये आत्म सुःख, पैदा होना अति दुर्गम है।
और जन्म मरन के चक्कर से, छुट जाना अति अगमागम है॥
मिलता है स्वर्ग नर्क अथवा, ये मृत्यू लोक उन लोगों को।
दर्शन न मोक्ष के होयँ कभी, नित भोगे अनित्य भोगों को॥
जिस बुद्धी में इच्छा प्रधान, रहती वह संसारी जानो।
जिसमें न कामना घुसती है, उसको ही सर्व श्रेष्ठ मानो॥

फल आशा को त्याग कर, करे काम जो बुद्धि।
मोक्ष धाम लेजाय वह, यही ज्ञान है शुद्ध॥

बस इसे हृदय में रख अर्जुन, धर्मोचित कर्तव करियेगा ।
कुछ भी न पाप तुमको होगा, विश्वास हृदय में धरियेगा ॥
फल आश रहित निज बुद्धी को, शुभ कर्मों में लग जाने दो ।
चाहे वे पूर्ण हों या ना हों, ग्लानी मनमें मत आने दो ॥
जो रहे एकसी सुख दुख में, वोही सम बुद्धि कहाती है ।
सब पापों से पल्ला छुडवा, फिर मोक्ष धाम लेजाती है ॥
जैसे ऊसर में पड़ा बीज, नहिं उगे वृथा ही जाता है ।
त्यों ही सम बुद्धी का कर्तव, बंधन में नहीं फंसाता है ॥
जबतक जीवे नर दुनियां में, फल आश रहित सब कामकरे ।
निज धर्म प्राप्त कर्तव्यों को, सम बुद्धी से अंजाम करे ॥
तब ही उसका जीवन शुभ है, और तभी मोक्ष पद पावेगा ।
जो स्वधर्म पालन भूलगया, तो जन्म मरन में जावेगा ॥

बस विवेक उरधार कर, करो धर्म प्रतिपाल ।
होजा निर्भय छोडकर, पाप पुन्य का ख्याल ॥

यह युद्ध धर्म से प्राप्त हुआ, ले शस्त्र खड़ा होजा अर्जुन ।
कर वीर वृत्ति स्वीकार शीघ्र, अब तनिक मोह मत ला अर्जुन ॥
आसक्ति रहित होकर रनमें, अपना सब ध्यान लगादे तू ।
निज धर्मोचित कर्तव करके, जगमें कीरति फैलादे तू ॥
बस यही ज्ञान तुझको अर्जुन, सच्चा रस्ता बतलावेगा ।
संसार चक्र से हटा शीघ्र, अखिर में मोक्ष दिलावेगा ॥

गाना

फल आश रहित कर्तव नहिं जग में फंसाता है ।
कर्त्ता को मोक्ष मारग आखिर में दिलाता है ॥

जैसे प्रबल हुताशन करती है नष्ट चीजें ।
त्योंही सुबुधि का कर्तव संसार नसाता है ॥
हानी हो लाभ हो या सुखदुख हो यश अयश हो ।
फंसता है इसमें जो भी वो मूर्ख कहाता है ॥
निष्काम कर्म जो नर आजन्म करे है वो ।
आवागमन से छुट कर बस मोक्ष ही पाता है ॥

अमृत सम श्रीकृष्ण के, सुनकर बचन रसाल ।
अर्जुन की आंखें खुली, हुआ दूर भ्रमजाल ॥

तत्काल प्रभू के चरन पकड़, बोले मैं आज कृतार्थ हुआ ।
हे प्रभू तुम्हारी किरपा से, मुझको अब ज्ञान यथार्थ हुआ ॥
खुलगये नेत्र मेरे माधव, पालन निज धर्म करूंगा मैं ।
क्षत्रियों के माफिक धनुप उठा, शत्रुओं से आज लडूंगा मैं ॥

"श्रीलाल" यों वाक्य कह, अर्जुन ने निजतीर ।
चढ़ा लिया गांडीव पै, क्रोध से होय अधीर ॥

॥ इति शुभम् ॥

महाभारत सोलहवां भाग

भीष्म युद्ध

श्रीलाल

महाभारत ॐ सोलहवाँ भाग

भीष्म युद्ध

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—

महाभारत पुस्तकालय, अजमेर

मुद्रक—चे. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

दूसरी बार २००० | विक्रमी सम्वत् १९९२ ईस्वी सन १९३५ | मूल्य ।-) आने

॥ प्रार्थना ॥

शंभू दास को दरश दिखादो जरा।
चिन्ता मेरे हृदय की मिटादो जरा॥
आपका दर्श है अज्ञान नशाने वाला।
दुनियवी मोह छुड़ा ज्ञान सिखाने वाला॥
नष्टकर जन्म मरन मोक्ष दिलाने वाला।
मेरे जीवन को सफल बनादो जरा॥ शंभू ॥
नाव मंझधार में है पार लगाना स्वामी।
जानकर दीन दया मुझ पै दिखाना स्वामी॥
तुच्छ बिनती को नहीं चित से भुलाना स्वामी।
शरने आया हूं दुःख हटादो जरा॥ शंभू ॥

मङ्गलाचरण

रक्ताम्बर धर विघ्न हर, गौरीसुत गणराज।
करना सुफल मनोर्थ प्रभु, रखना जन की लाज॥
सृष्टि रचन, पालन, हरन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश।
बानी, रमा, उमा सुमिल, रक्षा करहु हमेश॥
बन्दहुं व्यास विशाल बुधि, धर्म धुरंधर धीर।
महाभारत रचना करी, परम रम्य गम्भीर॥
जासु बचन रवि जोति सम, मेटत तम अज्ञान।
बन्दहुं गुरु शुभ गुण भवन, मनुजरूप भगवान॥

* ॐ *

नारायणं नमस्कृत्य, नरंचैव, नरोत्तमम् ।
देवीं, सरस्वतीं, व्यासं ततो जय, मुदीरयेत् ॥

❀ कथा प्रारम्भ ❀

अर्जुन को जब हो गया, निज कर्तव का ज्ञान ।
कर प्रणाम श्री कृष्ण को, लिया हाथ धनुबान ॥
फिर देवदत्त मुख पर रख कर, हर्षित हो ध्वनि कीन्ही भारी ॥
भूचाल आगया भूमी पर, थर्राय गई सेना सारी ॥
बज उठे सैंकड़ों रन बाजे, आगया समय रन करने का ।
धर्मोचित करतब के बस हो, उस युद्ध भूमि पर मरने का ॥
छागये देव नभ मंडल में, तकने के लिये लड़ाई को ।
पांडवों कौरवों की दुस्तर, उस जलनिधि सम कटकाई को ॥
जिसके योधा होकर तयार, मूछों पर हाथ फेरते थे ।
अभिमान सहित निज अंगों पर, मदमाती दृष्टि गेरते थे ॥
सेनापति निज सेना सम्भाल, आगे बढ़ने ही वाले थे ।
रिपुओं पै भूखे सिंहों सम, धावा करने ही वाले थे ॥
चढ़गये थे बान कमानों पर, चमचमा उठीं थीं तलवारें ।
क्षत्रियों की पंचानन समान, आती थी तहांपर ललकारें ॥
रथ के पहियों की गड़गड़ाट, घन गर्जन सरिख सुहाती थी ।
मदमस्त गजों की चिंघाड़ें, कायर का मन दहलाती थी ॥
इसी समय कुछ सोचकर, धर्मराज मति धीर ।
उतरे स्यंदन से तुरत, त्याग कवच धनु तीर ॥

फिर चले भीष्म की जानिब को, दोनों कर जोड़ पयादे ही ।
जैसे हो मंत्र मुग्ध कोई, इक टक लोचन चुप साधे ही ॥
पांडवों ने इनका हाल देख, निज २ स्यन्दन सब त्याग दिये ।
होगये पिछाड़ी भ्राता के, आश्चर्य चकित दुख दाह हिये ॥
यादव-नन्दन भी स्यंदन तज, सम्मिलित हुये इस टोली में ।
इतने में कहा युधिष्ठिर से, भ्राताओं ने मृदु बोली में ॥
हे भ्रात ! त्याग सब अस्त्र शस्त्र, क्यों रिपु सेना में जाते हो ।
ऐसी क्या मन में धुन छाई, जो भेद नहीं बतलाते हो ॥
क्या ज्ञान कौरवों का न रहा, ये भाई नहीं हैं घाती हैं ।
हैं दुष्ट कुकर्मी दुर्बुद्धी, हम लोगों के आराती हैं ॥
हमसे लड़ने की इच्छा कर, हथियार सभी ने धारे हैं ।
क्यों आप छोड़ कर शस्त्रों को, रिपुओं के यहां सिधारे हैं ॥

इन वचनों पर भूप ने, दिया नहीं कुछ ध्यान ।
तब मन में मुस्काय कर, बोल उठे भगवान ॥

हे भीमार्जुन नृप हरक़त लख, मनमें न बनो नाशाद कभी ।
वे धर्मवीर हैं पालेंगे, निज धर्म विहित मर्याद सभी ॥
है अभिप्राय कुन्ती-सुत का, बूढ़ों से रण आज्ञा लेना ।
पा उनका आशीर्वाद प्रथम, फिर रण करने में चित देना ॥
जो पुरुष बड़ों की अनुमति से, अपने सब काम चलाते हैं ।
वे सारे विघ्न विनाशन कर, झट विजय लक्ष्मी पाते हैं ॥

समाधान इनको हुवा, उधर युधिष्ठिर वीर ।
फुरती से चलते हुये, पहुँचे भीष्म तीर ॥

बोले दादा आज्ञा दीजे, हम लोगों को रण करने की ।
दे आशीर्वाद शक्ति भरदो, मुझमें स्वधर्म पर मरने की ॥
अपराध आप संग लड़ने का, लख मुझको विवश भुला देना ।
कर दया बाल पर दया सिंधु, सब दुख से मुझे बचा लेना ॥

लख शिष्टाचार युधिष्ठिर का, होगये खुशी गंगानंदन ।
बोले बेटा तुम सुखी रहो, तेरी जय हो कुन्तीनंदन ॥
ये बात तुम्हें मालुम होगी, दुर्योधन के आधीन हूं मैं ।
करतब के वश हो उसका हित, करने में हरदम लीन हूं मैं ॥
तो भी तुमको धर्मज्ञ समझ, दादा का नेह निभाऊंगा ।
इच्छा-मृत्यू होने पर भी, कुछ रस्ता अवश्य बताऊंगा ॥
जिस समय भीड़ तुम पर आवे, आजाना मेरे पास तभी ।
हित की बातें बतलादूंगा, होना मत तुम निरआश कभी ॥
सुन बातें कर प्रणाम इन को, श्री धर्मराज ने गमन किया ।
फिर द्रौण गुरू के पास जाय, उनके चरणों को नमन किया ॥
अनुमति मांगी रण करने की, फिर कहा गुरू इतना कीजे ।
तुम लड़ो इधर से ही लेकिन, कुछ हितोपदेश मुझको दीजे ॥
जिससे होवे कुछ भला मेरा, इस धर्मयुद्ध में जय पाऊं ।
अन्यायी दल को कर परास्त, हो सुखी आपके गुण गाऊं ॥

हर्षित हो गुरु देव तब, बोले वचन रसाल ।
मम आशिष से सुत तेरी, होगी जय तत्काल ॥

जब कृष्ण तुम्हारे मंत्री हैं, फिर मैं कैसा उपदेश करूं ।
एक तुच्छ जीव होकर कैसे, प्रभु से बढ़कर आदेश करूं ॥
तुम निश्चय जीतोगे बेटा, सतधर्म पालने वाले हो ।
गौ, ब्राह्मण, दीन, दुखारी का, सब दुःख टालने वाले हो ॥
दुर्योधन का अन्न खाया है, इसलिये पुत्र लाचारी है ।
पर ऐसे दुष्टों के संग रह, काया नित जलत हमारी है ॥
रण में गुरु का नाता तज कर, हमसे लड़ने मत सकुचाना ।
जिस तरह बने वैसे मुझको, संग्राम भूमि में पौढ़ाना ॥
क्योंकि जबतक मैं जिन्दा हूं, तुम विजय कभी नहिं पाओगे ।
जब ही तुम सुख भोगोगे जय, मुझको निर्जीव बनाओगे ॥

कर नमन इन्हें श्री धर्मराज, फिर कृपाचार्य के पास गये ।
ले इनकी आज्ञा आखिर में, श्रीशल्य के जाकर पांव गहे ॥
इनसे भी आशिर्वाद पाय, कुरुसेना से वाहिर आये ।
लख इनकी धर्मयुक्त वातें, दोनों दल मनमें हर्षाये ॥

दुर्योधन का भ्रात था, नाम युयुत्सु वीर ।
लख स्वभाव भूपाल का, पुलका गया शरीर ॥

झट दुर्योधन का साथ छोड़, आ मिला पांडु कटकाई से ।
बोला मैं तुम्हरी तरफ होय, रण करूंगा निर्भयनाई से ॥
कर लिया ग्रहण कुंतीसुत ने, और कहा खुशी से मिलजाओ ।
अपने दुष्कर्मी भ्रातों को, हे भ्रात मजा तुम दिखलाओ ॥
इतना कहकर श्री धर्मराज, अपने रथ पर असवार हुये ।
लख इन्हें सशस्त्र पांडु दल में, आनन्द के जय जय कार हुये ॥

समय जान कुरुराज ने, फूंका शंख कठोर ।
किया इशारा युद्ध का, बजे वाद्य घनघोर ॥

भीषम रण का संकेत समझ, सेना ले आगे वढ़ने लगे ।
पांडव भी अपना दल वटोर, कर अग्र वृकोदर चलने लगे ॥
हल चल दुहुंदल में प्रगट हुई, वज उठे हज़ारों नक्कारे ।
रथ के पहियों का शोर मचा, गर्जे योधा और ललकारे ॥
इस समय भीम घन के समान, ऐसे गरजे अपने दल में ।
हिलगई भूमि भूधर कंपे, तूफान अमित आया जल में ॥
कर गया पार सब शब्दों को, गर्जन इन वीर वृकोदर का ।
भयभीत हुये रिपुदल वाले, कपकपी उठी हृदय धड़का ॥
हाथी घोड़ों ने व्याकुल हो, मलमूत्र त्यागना शुरू किया ।
कुछ कुल कलंक नामर्दों ने, तज शस्त्र भागना शुरू किया ॥
गर्जन से सबको भीत बना, ले गदा गदाधर टूट पड़े ।
ज्यों भूखा नाहर क्रोधित हो, पशु के झुण्डों पर छूट पड़े ॥

लख उग्र मूर्ति कुन्तीसुत की, शत्रु भी फौरन घिर आये।
निज धनुष चढ़ा ओलों समान, बस तीर अनगिनत बरसाये॥
भिड़ गये दोउ दल आपस में, वो धावा घोर प्रचण्ड हुवा।
चकराये सुर नभ मण्डल में, सोचा पृथ्वी का खण्ड हुवा॥
सभी धनुष एकदम हुये, अर्ध चंद्र आकार।
विषधर सदृष तीर तहां, छूटन लगे अपार॥
कोदंडो का टंकोर शब्द, पल पल में बढ़ता जाता था।
टीडी दल सम दल बानों का, फुंकार मारता आता था॥
अश्वारोही हाथी सवार, तक तक कर शस्त्र चलाते थे।
पैदल क्रोधित हो ओंठ दबा, आपस में मार मचाते थे॥
सेनाओं का किलकिला शब्द, और सिंहनाद बलवीरों का।
बाजों का रव, गज घंट शोर, अरु निनाद धनु टंकोरों का॥
इन सब शब्दों ने एक होय, एक महा शब्द उपजाय दिया।
इतने शर नभ में छाय गये, जिन रवि को तुरत छिपाय दिया॥
कुछ देर तलक ये घोर युद्ध, होना हि रहा पर फल न हुआ।
कोई भी दल विपक्ष दल को, भंजन करने में सफल न हुआ॥
हांक मार धनुसाध तब, गंग-तनय रिसि आय।
अर्जुन के सन्मुख चले, अपना रथ हंकवाय॥
तेजस्वी वीर धनंजय भी, ले धनुष वाण सन्मुख दौड़े।
जा निकट हस्त लाघवता से, भीषम पर अगणित शर छोड़े॥
महाबली सात्यकी दौड़ गये, कृतवर्मा से रण की ठानी।
गर्जन तर्जन कर कई बार, हो क्रुध कर्मा अपनी नानी॥
वार दिया सुभद्रा-नंदन ने, आक्रमण ब्रहद्बल के ऊपर।
दो मारे तेज करारे शर, आगिरा तुरत सारथि भूपर॥
क्रोधित हो वीर वृकोदर ने, कुरुपति पै गदा प्रहार किया।
दुर्योधन ने भी ओंठ दबा, झट भीम पै अपना वार किया॥

भिड़ गये नकुल दुःशासन से, रिसिया कर तीर चलाने लगे।
रिपु के बाणों के टुकड़े कर, भूमी पै तुरत गिराने लगे॥
जाय भिड़े सहदेव भी, शकुनी से तत्काल।
अरुण नेत्र कर क्रोध से, छोड़े तीर कराल॥
महावली शल्य और धर्मराज, दे हांक परस्पर भिड़ते थे।
वो मार भयंकर होती थी, तो भी नीचे नहिं गिरते थे॥
यमराज तुल्य वे धृष्टद्युम्न, आतुर हो गुरु सन्मुख आये।
दे हांक करारे जहर बुझे, कई तीर गुरू पर बरसाये॥
उत्तर ने सोमदत्त सन्मुख, आके यों कहा ठहरजा तू।
ले संभल मैं बाण चलाता हूं, तज देह काल के घर जा तू॥
महारथी धृष्टकेतू को झट, वाह्लीक राज ने ललकारा।
झट दौड़ घटोत्कच ने सन्मुख, एक तीर हलंवुश के मारा॥
गुथ गये शिखंडी गुरु सुत से, कृपने केकय पर वार किया।
भगदत्त विराट योधाओं ने, आपस में खूब प्रहार किया॥
द्रौपद से जयद्रथ महारथी, और चेकीतान शुशर्मा से।
भिड़गये महावल भूरिश्रवा, युयुत्सु भीषणकर्मा से॥
जुटे वीर सब हो कुपित, ले ले तीर कमान।
महा मार होने लगी, युद्ध हुवा घमसान॥
दस, वीस, पचास, हजार नहीं, लाखों ही बाण बरसते थे।
योधा घायल हो भूमि गिरे, पानी के लिये तरसते थे॥
धीरे धीरे वो जोश बढ़ा, उन्मत्त होगये वीर सभी।
सुध भूल गये तन की सारी, गर्माय गये रणधीर सभी॥
उस समय पिता ने पुत्र हना, पोते ने दादा को मारा।
भाई ने भाई को गिराय, धर टांग पै टांग चीर डारा॥
गुरु चेले का नाता टूटा, साले बहनोई लड़ते थे।
और मित्र क्रोध कर मित्रों को, भूमी पर पटक रगड़ते थे॥

रथ झुण्ड रथों से जाय भिड़े, आपस में देते थे टक्कर।
पहियों से पहिये भिड़ भिड़ कर भूमी पर गिरे चूर्ण होकर॥
घोड़ों पर घोड़े जाय चढ़े, कुचला सारथि का बनादिया।
रथियों ने अगणित रथियों को, ले जान धरणि पर सुला दिया॥
श्यामवर्ण मदमत्त गज, लड़ें प्रचार प्रचार।
चिंघाड़ें अति शब्द कर, करें दांत से वार॥

इसी समय चढ़ हस्ति पर, शल्य वीर के पास ।
उत्तर चला रिसाय कर, कर वधने की आस ।।
उस महाकाय हाथी को लख, शल ने ये चाहा रोकूं मैं ।
इस चमकीली बरछी को झट, इसके मस्तक में भोकूं मैं ।।
यह कर खयाल बरछी मारी, पर हाथी ने परवाह न की ।
वह चली रुधिर धारा सरसे, तो भी मुख से कुछ आहन की ।।
उल्टी आंखें कर लाल लाल, घोड़ों के पद ठोकर मारी ।
चिंघाड़ा प्रलय काल सदृश, रथ तोड़ ध्वजा भी मथ डारी ।।
पुनि चाहा अपनी सूंड चला, इस शल्य को पकड़ उठालूं मैं ।
झटका दे दांतों से चबाय, सब अंग भंग करडालूं मैं ।।
इतने में मद्रदेश-पति ने, तलवार का ऐसा हाथ दिया ।
कट गिरी सूंड धरती ऊपर, हो विकल हस्ति ने शोर किया ।।
गिरगया तुरत बेजान होय, आ पड़ा कुंवर भी धरती पर ।
इतने में एक तीव्र शक्ती, दी शल्य ने उसकी छाती पर ।।
वह शक्ति बदन में समागई, निर्जीव करदिया उत्तर को ।
ये देख विराट आदिक योधा, सन्मुख दौड़े अति आतुर हो ।।
गंगसुवन ये देख कर, बढ़े तुरत रिसिआय ।
रोका वीरों को सपद, तीव्र बान बरसाय ।।
संध्या लगभग होने को थी, इस समय भीष्म अतिक्रुध हुये ।
वह मेघ बूंद सम शर मारे, कई योधा युद्ध विरुद्ध हुये ।।
वायू से प्रेरित नौका सम, पांडव सेना कांपन लागी ।
हो अस्त व्यस्त शर चोटों से, भागी दौड़ी हांपन लागी ।।
भीषम के छोड़े बानों से, पक्षीगण तक घायल होकर ।
चितकार सहित भूमी में गिरे, हो खंड खंड अरु जां खोकर ।।
महावीर ने उग्र मूर्ति धर कर, अपने दिव शर समूह द्वारा ।
पंचाल मत्स्य आदिक सेना, के वीरों को गिन गिन मारा ।।

सारी सेना शरविद्ध हुई, वीरों में हा हा कार हुवा ।
ये देख युधिष्ठिर घबराये, हृदय में शोक अपार हुवा ॥
मध्यान सूर्य के सन्मुख ज्यों, इक टक देखा नहिं जाता है ।
त्योंही भीषम का तेज देख, कोई नहिं आंख मिलाता है ॥
घायल हो योधा भीत हुये, घबरा कर पीठें दिखला दी ।
मिल गया व्यूह सब धूली में, होगई कटक की बरबादी ॥

रक्षक पांडव सेन का, हुवा न कोई वीर ।
खींच खींच कर भीष्म ने, मारे ऐसे तीर ॥

हो रहा था धनु मण्डला कार, टंकोरें बढ़ती जाती थीं ।
रथ घूम रहा था चौतरफा, रण हांक हृदय दहलाती थी ॥
पत्थर सम तीर बरसते थे, घबराहट थी पांडव दल में ।
रथ वाले घायल हो हो कर, गिरते थे भू पर पल पल में ॥
इस तरह श्याम होते होते, दस सहस्र रथी संघार किये ।
महारथियों को भी तीर मार, बेचैन विकल बेज़ार किये ॥
इस तरह प्रथम दिन पूर्ण हुवा, जय शंख बजाया भीषम ने ।
ले सेना डेरों की जानिब, झट पांव बढ़ाया भीषम ने ॥

पांडव दल भी हो विकल, लौटा होय हताश ।
देख पराक्रम भीष्म का, तजो विजय की आश ॥
धर्मराज अति दुखित हो, सेनापति ले साथ ।
डेरे में पहुंचे जहां, बैठे थे यदुनाथ ॥

जाते हि कृष्ण को नमन किया, फिर बोले हे अंतरयामी ।
भीषम ने महा पराक्रम कर, बेधी सारी सेना स्वामी ॥
जिस तरह हुताशन तिनके को, बिन श्रम के खाक बनाती है ।
बस इसी तरह भीषम शक्ती, हमको हानी पहुंचाती है ॥
यमराज, सुरेश, कुबेर, वरुण, रण में जीते जा सकते हैं ।
अति बली भयंकर निश्चर भी, पल में बस में आसकते हैं ॥

लेकिन भीषण कर्मा भीषम, उम्मेद नहीं जीते जावें।
फिर किस बल पर हम सेना को, उनसे लड़वाकर कटवावें॥
फिर वे इच्छा-मृत्यू भी हैं, क्यों अपनी मौत बुलावेंगे।
प्यारे तन को किस तरह त्याग, वे स्वर्गधाम में जावेंगे॥
इससे अब यही विचारा है, हम साधू भेष बनाते हैं।
दे बिदा हमारी सेना को, हे कृष्ण बनों में जाते हैं॥
मेरी किस्मत में राज नहीं, ये लिखा है कंदमूल खाना।
करना सब तरह इन्द्रि निग्रह, होहोकर कृश फिर मरजाना॥

बचन श्रवण कर भूप के, बोल उठे नंदलाल।
धैर्य धरो इस वक्त में, तजो शोक महिपाल॥

हे भूप आपके सेनापति, रण पंडित अरु बलशाली हैं।
फिर स्वयं धर्म भी रात दिना, करते तुम्हरी रखवाली हैं॥
मैं भी हृदय से चाहता हूं, हे भूप धर्म की जय होवे।
अन्याई दुष्ट मनुष्यों का, सब तरह समर में क्षय होवे॥
जग में कोई भी अमर नहीं, सब की मृत्यू आजाती है।
आगे पीछे जग जीवों का, निश्चय वो ग्रास बनाती है॥
इस ब्रह्म स्वरूप आत्मा को, तन है सब चीज़ों से प्यारा।
लेकिन जब ये दुख पाता है, चाहता इससे होना न्यारा॥
भीषम इच्छा मृत्यु हैं सही, पर जिस क्षण वे दुख पावेंगे।
तब मृत्यु कामना कर मन में, तुरतहि बैकुंठ सिधावेंगे॥

रण में निश्चय तजेंगे, भीष्मपितामह प्राण।
तुमतो क्षत्रिय धर्म का, पालन करो सुजान॥

* गाना *

वीर होकर नृपति क्यों धारते हैं आप कदराई।
हार और जीत तो रण में सदा से ही चली आई॥
आज पाई फतह कुरुओं ने तो कल तुम्हरी बारी है।
तुम्हारे पास भी है भूप अति बलवान कटकाई॥

अगर कल भी पराजय ही मिली तो भी न कुछ चिन्ता ।
अन्त में तुम ही जीतोगे सुनो ये बात चितलाई ॥
चले हो तुम हमेशा से हि अपने धर्म के माफिक ।
करेगा वोहि तुम्हरी रक्ष इस में कुछ फरक नाहीं ॥
उधर दुर्योधनादिक हैं छली और पाप के किंकर ।
करेगा भस्म उनका पापही उनको समय पाई ॥
फलाशा त्याग कर तुमतो रहो करते धरम पालन ।
जो होना है वही होगा रखो चहरे पै पुलकाई ॥

भगवान कृष्ण की बातों का, कर दिया समर्थन वीरों ने ।
कल करेंगे सब मिल घोर युद्ध, ये शपथ करी रणधीरों ने ॥
ढाढ़स बंधगया युधिष्ठिर को, डेरे में जा आराम किया ।
होते हि सुबह रण करने का, प्रारम्भ जल्द सब काम किया ॥
अर्जुन को व्यूह के आगे कर, मैदान में आई कटकाई ।
उस तरफ से कौरव सेना भी, भीषम के संग आकर छाई ॥
बजते हि शंख गंगासुत का, कुरुओं ने धावा बोल दिया ।
तलवार, धनुष, बरछी, भाला, खंजर हाथों में तोल लिया ॥
होगया शुरू घनघोर युद्ध, आपस में मार मचाने लगे ।
विषधर सम पैने बाणों से, कुंजर व तुरंग गिराने लगे ॥
धीरे धीरे बनगये भीष्म, सचमुच यमराज दंडधारी ।
उनकी चोटों से पांडु सेन, होगई विकल व्याकुल भारी ॥
हाथी घोड़े हो खंड खंड, भूपर गिरते थे चक्कर खा ।
घबराहट में होगये चूर्ण, स्यंदन स्यंदन से टक्कर खा ॥
ये देख धनंजय क्रुद्ध हुये, झट बोल उठे बनवारी से ।
रथ हांको जल्दी लड़ूंगा मैं, उन भीष्म महा धनुधारी से ॥
ऐसा मालुम होता है मुझे, वे अपना फर्ज़ निभावेंगे ।
दुर्योधन के शुभ चिन्तक बन, पांडव दल मार गिरावेंगे ॥

सुन अर्जुन की बात को, यदुनन्दन यदुराय ।
भीषम के ढिंग लेगये, अपना रथ दौड़ाय ॥
जैसा आश्चर्य दृष्टि आता, दो तेजों के भिड़जाने से ।
वैसा ही यहां नज़र आया, भीष्मार्जुन के टकराने से ॥
इन दोनों धनुषधारियों की, अति ही प्रचंड मुठभेर हुई ।
तीक्ष्ण बाणों के चलने से, सेना अपार तहं ढेर हुई ॥
कर क्रोध भीष्म अर्जुन ऊपर, अनगिनती तीर चलाते थे ।
और वीर केसरी कुन्ती सुत, भीषम पर शर बरसाते थे ॥
गिरजाते थे कट भूमी पर, दोनों के शर टकरा टकरा ।
फिर भी वे तीर चलाते थे, सांडों समान डकरा डकरा ॥
अति कौशल से लड़ने पर भी, दोनों ही अक्षत बने रहे ।
दोनों ही सिंहों के समान, गर्जन कर रन में तने रहे ॥
अगणित शर चलने से धनु की, टंकोरें बढती जातीं थीं ।
जिनकी अवाजें सेना के, लोगों का दिल दहलाती थीं ॥
छिपता था रथ बानों से कभी, अरु कभी प्रगट हो जाता था ।
इन वीरों की फुरती विलोक, हृदय में अचरज आता था ॥
हुआ युद्ध घण्टों तलक, हटा न कोई वीर ।
दिव्य अस्त्र फिर साधकर, गरजे ये रणधीर ॥
भीषम ने अपने शारंग पर, कर क्रोध अग्नि शर संधाना ।
ये देख पांडुदल कांप उठा, शर तीक्ष्णता लख भय माना ॥
शर छुटते ही दावा नल सम, वो घोर प्रचंड अग्नि फैली ।
रथ, हाथी, घोड़े जलन लगे, सब बिगड़ गई व्युह की शैली ॥
घबराय उठी सारी सेना, मेघास्त्र चलाया अर्जुन ने ।
कर घोर वृष्टि सब अग्नी को, पल मांहि बुझाया अर्जुन ने ॥
भीषम ने वायू अस्त्र छोड़, हाथी घोड़े विचलाय दिये ।
जो आगे बढ़ते थे उनको, शर आंधी से लौटाय दिये ॥

ये देख पार्थ ने नाग अस्त्र, छोड़ा सब आंधी दूर हुई ।
कुरुसेना की नागों द्वारा, फिर बरबादी भरपूर हुई ॥
तब गरुड़ अस्त्र से भीषम ने, सारे नागों को खपा दिया ।
कर शर वृष्टी पांडवदल पर, सब योधाओं को कंपा दिया ॥

ये अवसर उत्तम समझ, कुछ सेना मंगवाय ।
भीम गदा ले हाथ में, टूटे रिपु पर जाय ॥

वह अन्धाधुन्ध संग्राम किया, घबराय गई सेना सारी ।
कुछ भागी कुछ परलोक गई, लख इन्हें काल सम तनुधारी ॥
मद मत्त हठीले कुंजर गन, टक्करें गदा की खा खा कर ।
भीषण रव करते हुये तुरत, गिर गये भूमि में जां खोकर ॥
घोड़े अरु घोड़ों के सवार, इनके अव्यर्थ प्रहारों से ।
इस तरह गिरे अवनीतल में, ज्यों पत्थर गिरें पहारों से ॥
भर गया सकल कुरु सेना में, रन गर्जन वीर वृकोदर का ।
जहं देखो वहीं दृष्टि आता, स्थूल शरीर वृकोदर का ॥
योधा ने उछल उछल रन में, भूमी पर गिरा सवारों को ।
कर डाले टूक टूक उनके, लेकर उनकी तलवारों को ॥
पांवों से कुचल दिये कितने, कर से कितने हि मसल डाले ।
पग पकड़ घसीटा कितनों को, मुष्ठिक से कितने वध डाले ॥
जिस समय छूटती थी रथ पर, वह गदा भीम की भयकारी ।
रथ सहित सारथी मर जाता, घोड़ों की हो जाती ख्वारी ॥

यम प्रेरित जो सामने, आया इनके वीर ।
वह न लौट वापिस गया, रन में तजा शरीर ॥

भीषण कर्मा बलवान भीम, रथ उठा भिड़ाते थे रथ से ।
गहि हस्थि सुंड, चक्कर देकर, गज से टकराते थे झट से ॥
पटगई लाश पर लाश जल्द, वह चली खून की धार तहां ।
लख काल समान वृकोदर को, बस छाया हाहाकार तहां ॥

सुन आर्तनाद गंगासुत ने, अर्जुन से लड़ना छोड़ दिया।
करते थे रन जहां वली भीम, उस जानिब रथ को मोड़ दिया॥
जाते हि भयंकर वानों से, रथ चिन्ह भीम का तोड़ दिया।
रथ चूर्ण बना सारथि वध कर, घोड़ों का मस्तक फोड़ दिया॥
ये देख भीम रथ को तज कर, क्रोधित हो गदा उठा करके।
दौड़े भीषम की ओर तुरत, इच्छा थी मारूं जा करके॥
पर भीषम ने अति फुर्ती से, वह झड़ी लगाई वानों की।
आगे बढ़ना एक तरफ रहा, उल्टी हि पड़ी निज प्राणों की॥

घायल हो वापिस फिरे, भीमसेन तत्काल।
इधर भीष्म ने वध किये, दस सहस्र महिपाल॥

अवसर पा सात्यकि ने तक कर, भीषम के सारथि को मारा।
खा चोट धराश्यायी होकर, उसने झट जीवन तज डारा॥
रथ के घोड़े चमचमा उठे, स्यंदन ले फौरन हवा हुये।
यों गंगानन्दन मजबूरन, रन को तज फौरन अलग हुये॥
जिस समय धनंजय ने देखा, मैदान भीष्म से खाली है।
कुरु सेना की इस समय नहीं, होती उत्तम रखवाली है॥

चढ़ा धनुष गांडीव झट, अति विक्रम के साथ।
रिपु सेना पर जा चढ़े, लगे वधन नरनाथ॥

भूमी व गगन सब एक हुआ, इनके अगणित वानों द्वारा।
छिप गया सूर्य तम फैलगया, वे गिनती वीरों को मारा॥
कुरुओं ने लाखों शर छोड़े तो भी वे शर हट सके नहीं।
बूंदों सम पड़ते थे इन पर, काटे से भी कटसके नहीं॥
होगये चूर्ण लाखों स्यंदन, अन गिनती घोड़े जूझ गये।
परलोक गये रथवान अमित, कुछ चोटें खाकर सूजगये॥
विकटानन मतवाले कुंजर, कटकर होगये धराश्यायी।
लोथों से भूमी पटी देख, कौरव सेना अति घबराई॥

लगे दौड़ने चौतरफ, कुछ योधा घबराय ।
कछुक गजों की ओट में, लेटे स्वांस चढ़ाय ॥
कुछ कूदे शोणित धारा में, हाथों से तैर तैर भागे ।
फिर भी अगणित योधाओं को, अर्जुन के शर काटन लागे ॥
होगया व्यूह सब छिन्न भिन्न, इतने में भीषम फिर आये ।
निज सेना का बेहाल देख, अपने मनमें अति दुख पाये ॥
बोले गुरु से, देखो तो सही, अर्जुन कैसे शर मार रहे ।
सेना को छिन्न भिन्न करके, मम निर्मित व्यूह बिगार रहे ॥
लख इनकी उग्र मूर्ति योधा, व्याकुल हो भागे जाते हैं ।
पीछे पीछे विषधर समशर, फुंकार मारते धाते हैं ॥
इनको वापिस लौटा लेना, सम्भव न दृष्टि में आता है ।
फिर सूरज भी कुछ ही क्षण में, अस्ताचल जाना चाहता है ॥
इस समय यही उत्तम होगा, संग्राम स्थगित कर देना ।
और बचे हुये वीरों को ले, डेरों की जानिब चल देना ॥
ये बात भीषम ने शंख बजा, रन बंद करन संकेत किया ।
सुन कौरव दल ने हर्षित हो, जल्दी से तज रण खेत दिया ॥
देख पीठ कुरु सेन की, हर्षे अर्जुन श्याम ।
विजय शंख फूंका तुरत, यों दिन हुआ तमाम ॥
इस तरह पांच दिन बीत गये, अति घोर युद्ध होते होते ।
मतवाले हाथी घोड़ों अरु वीरों को जां खोते खोते ॥
भीषम, प्रण के माफिक प्रतिदिन, योधा दश सहस्र मारते थे ।
और अर्जुन भी कुरु सेना को, निज बल से खपा डारते थे ॥
आखिर षष्टम दिन आपहुंचा, इस रोज पार्थ ने भुजबल से ।
रिपुओं पे ऐसे शर छोड़े जैसे मेह बरसे बादल से ॥
भागी कुरु सेना जान बचा, ये देख सुयोधन घबराये ।
मुंह उतर गया रंग पीत हुआ, आखिर दिन मुंदे लौट आये ॥

निशि को भीषम के यहां, जा पहुंचे कुरुनाथ।
आर्त वचन कहते हुये, झुका दिया निज माथ॥

हे दादा ! दादा !! तुम समान, योधा न जहां में दूजा है।
खुद परसुराम ने हर्षित हो, जिनकी बाहों को पूजा है॥
फिर भी मेरी सेना नितप्रति, रिपुओं से पिट कर आती है।
जिसके रक्षक हैं आप सरिस, वह फ़ौज घोर दुख पाती है॥
ये बात है कितनी दुखदायक, तुम हो समर्थ फिर चुप रहते।
करते हो क्षमा पांडवों को, और वे नितप्रति मारा करते॥
इससे बस यही प्रगट होता, तुम हो रिपुओं से मिले हुये।
ज़ाहिर में मेरे साथी हो, असलियत में उनमें घुले हुये॥
तुम करोगे यों विश्वासघात, ये पता प्रथम जो लगजाता।
तो और हि इन्तज़ाम करके, दुर्योधन रण भूमी आता॥

कौरवपति की बात सुन, भृकुटी हुई कराल।
बोले भीषम क्रोध से, आंखे करके लाल॥

हे दुर्योधन विश्वासघाति, मुझको बतलाना ठीक नहीं।
जो है तत्पर निज करतव पर, उसको गरमाना नीक नहीं॥
जो कुछ तैंने मम भुजबल का परिचय इस समय बताया है।
उससे भी कई गुना ज्यादा, बल इस शरीर ने पाया है॥
मैं इकला ही पांडवों सहित, उनका सब दल बध सकता हूं।
यहांतक त्रिलोकी को भी मैं, निजबल से जय कर सकता हूं॥
लेकिन जो रक्षित धर्म से हैं, क्या वे जीते जा सकते हैं।
दृढ़ पिंजरे वाले तोतों को, बिल्ले कैसे खा सकते हैं॥
इस धर्म से व्याधि नष्ट होती, ग्रह भी मध्यम पड़ जाते हैं।
बन शत्रू धर्मवान नर के, सुरपति तक दुःख उठाते हैं॥
फिर क्या गिनती प्राकृत नरकी, धर्मी को कुछ दुख पहुंचावे।
क्या ताक़त अन्धकार की है, जो सूरज के सन्मुख धावे॥

निज धर्म अनुसार सदां से ही, पांडु-नन्दन चलते आते ।
जो बात धर्म से उल्टी है, उसपे न कभी मन ठहराते ॥
फिर हार किस तरह सकते हैं, जिन सदां से धर्म कमाया है ।
जहँ धर्म है जय तहँ होती है, शास्त्रों ने ये बतलाया है ॥

और रहा तू सदां से, धर्म विरुध कुरुनाथ ।
विजय लक्ष्मी किस तरह, आवे तेरे हाथ ॥

भाई भी तेरे पापी हैं, फिर कैसे सुख पा सकते हो ।
है ईश्वर सदां न्यायकारी, उसको किमि बहका सकते हो ॥
इसको पापों का उदय समझ, जो रन में तू नित हार रहा ।
बलवानों की रक्षा में भी, अपना सब कटक बिगार रहा ॥
जबतक पापों का फल तुझको, सम्पूर्ण नहीं मिल जावेगा ।
तबतक इसमें संदेह नहीं, निश्चय तू दुःख उठावेगा ॥
यदि नाव में पापी आ बैठे, वो डूब रसातल जाती है ।
त्यों ही मेरी, तेरे संग रह, कुछ भी नहिं पार बसाती है ॥
है अब भी समय मान कहना, इस घोर युद्ध को बंद करो ।
भाई भाई आपस में मिल, हर्षित होकर आनन्द करो ॥
वरना इस भरतखंड का सब, ऐश्वर्य नष्ट हो जावेगा ।
इसका कर्त्ता तू ही होकर, प्रलय तक नाम धरावेगा ॥

हरि से रहित पांडु सुत, कभी न जीते जायँ ।
चाहे सारे सुर असुर, एकत्रित हो आयँ ॥

मैंने निज कर्त्तव पालन में, गलती न कभी दिखलाई है ।
पांडव सेना को कई बार, बाहुबल से बिचलाई है ॥
ये परिचय तुझे मिला होगा, गर नहीं तो फिर बतलाऊंगा ।
कल के रण में प्रत्यक्ष तुझे, भुजबल का ज्ञान कराऊंगा ॥

❀ गाना ❀

भीष्म कल निज शक्ति का परिचय तुझे दिखलायेगा।
शत्रुओं के शीश पर बेहद विपता ढायेगा ॥
पर न पा सकता है जय, अति यत्न करने पर भी तू।
क्योंकि तू पापी है तुझको पाप तेरा खायेगा ॥
पांडु-सुत धर्मी हैं इससे उनका रक्षक धर्म है।
निश्चय हारेगा यदी सुरपति भी सन्मुख आयेगा ॥
और फिर इसके सिवा जगदीश भी उस ओर है।
अस्तु पानी आबरू पर तू अवश फिरवायेगा ॥
इसलिये कहता हूँ मूरख संधि करले, छोड़ हठ।
तेरे पीछे देश भी वरना-तबाह हो जायेगा ॥

ये सुनकर कुरुराज ने, गवन किया निज धाम।
भीषम ने भी सेज में, किया तुरत आराम ॥
भारतीय संग्राम का, था सप्तम दिन आज।
भोर होत कुरुसेन ने, सजा युद्ध का साज ॥

भीषम अति क्रोधित थे मन में, सुन दुर्योधन के तानों को।
होते हि प्रात तनुत्राण पहन, चुन चुन कर रक्खा बानों को ॥
रिपुओं को जो अति दुस्तर हो, ऐसा एक व्यूह बनाय दिया।
फिर रन भूमी में चलने का, सेना को हुक्म सुनाय दिया ॥
व्यूह के दरवाजों पर रखकर, कृप द्रोण आदि रणधीरों को।
बढ़गये भीष्म वधने के लिये, रिपु सेना के बल वीरों को ॥
पांडव सेना कलकी जय से, थी खड़ी तहां हर्षाति हुई।
करती थी सिंहनाद भारी, निज शस्त्रों को चमकाति हुई ॥

ये देख भीष्म ने आतुर हो, रण का संकेत जनाय दिया।
पांडव दल ने भी कदम तुरत, शत्रू की तरफ बढ़ाय दिया॥
सहसा बज उठे युद्ध बाजे, छागई ध्वनी नभ मंडल में।
दोनों फौजों की हलचल से, कपकपी हुई अवनीतल में॥
वीरों के कानों तक खिचकर, कोदंड मंडलाकार हुये।
वो तीव्र करारे शर बरसे, जो बेध कवच को पार हुये॥

हाथी से हाथी भिड़े, भिड़े बाजि से बाजि।
पैदल से पैदल भिड़े, रथी रथी से गाजि॥

मचगया घोर गज घंट शोर, अगनित घोड़े हींसने लगे।
दोनों दल आपस में मिलकर, कर सिंहनाद पीसने लगे॥
हो खंड खंड अनगिनत वीर, मरकर भूमी पर गिरते थे।
चोटें खा हाथी व्याकुल हो, चिंघाड़ मारते फिरते थे॥
रुंद गये कई योधा इनसे, कितनों को अश्वों ने मारा।
द्रुत गामि रथों ने जहां तहां, वीरों का चूरन कर डारा॥
बाज़ार मौत का गर्म हुआ, घायल चितकार मचाते थे।
उठते थे फिर चोटें खाकर, हो अंग भंग गिर जाते थे॥
इस समय कुरु कुल में प्रधान, भीषम ने उग्र रूप धारा।
वह छांट छांट कर शर मारे, जिससे बह निकली खूंधारा॥
इनके धनु की टंकोर वहां, सारे शब्दों को निगल गई।
रिपुओं की जमी हुई सेना, थोड़े हि समय में विचलगई॥
इस घोर युद्ध की भूमी को, छा ली थी इनके बानों ने।
होगई दिशायें लुप्त सभी, धीरज तज दिया जवानों ने॥
ज्यों बैल धान की कटी हुई, राशी को कुचल डालते हैं।
त्यों ही भीषम रिपु सेना के, वीरों की जां निकालते हैं॥
अगनित हाथी घोड़े वधकर, लाशों से भूमी पाट दई।
जिसको सन्मुख पाया उसकी, फौरन ही गर्दन कांट दई॥

जिस तरफ निकल जाते भीषम, मैदान तहां हो जाता था।
लख वृद्ध अवस्था की फुर्ती, ज्वानों को अचरज आता था॥
निज सेना को विचलित विलोक, द्रौपद, विराट आदिक धाये।
आगये नकुल, सहदेव, भीम, भीषम पर अति शर बरसाये॥
गंगासुत घायल हुये, फेर संभाला होश।
दौड़ा खूं अति वेग से, छाया तन में जोश॥
रथ हांका अर्धचन्द्र सदृश, इनके वारों को विफल किया।
फिर ताक ताक निज शर मारे, सारे वीरों को विकल किया॥
सहदेव, नकुल, द्रौपद, विराट, सय भीम के घूम गिरे भूपर।
ये देख सात्यकी, धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु सहित आये इनपर॥
पर भीषम के सन्मुख न टिके, कोई बेसुध हो भूमि गिरा।
कोई घायल हो बुरी तरह, रथ दौड़ा रन से तुरत फिरा॥
भूपाल युधिष्ठिर भी इनके, सन्मुख आने में दहलाये।
कर क्रोध भीष्म ने फुरती से, ऐसे तीक्ष्ण शर बरसाये॥
सेना में हाहाकार हुआ, सब हस्ति सवार विहीन हुये।
घोड़ों की पीठ हुई खाली, रथ सारथियों से हीन हुये॥
जो नीति में सुरगुरु के समान, धन में कुबेर के भाई थे।
ऐश्वर्य इन्द्र सम था जिनका, तेजाकृत में दिनराई थे॥
वे देव पुत्र सम महाराजे, मस्तक पर स्वर्ण मुकुट धारे।
श्रवणन में विद्युत सम कुंडल, पंकज सम लोचन अरुनारे॥
रथ खंड खंड होजाने से, मामूली नर सम फिरते थे।
खाते थे चोटें बार बार, गिरकर उठते फिर गिरते थे॥
लाशों से इतना खून बहा, उत्पन्न हुई सरिता भारी।
लख जिसे हृदय दहलाता था, थी ऐसी भयानक भयकारी॥
ले चली बहाकर खंडित रथ, वीरों के रुंड भुजाओं को।
घोड़ों के छिन्न भिन्न अवयव, मद मत्त हस्ति के पांवों को॥

ऐसा हत्या काण्ड लख, कृष्णी गये डराय।
त्राहि त्राहि करने लगे, हो व्याकुल घबराय॥

बोले, "हे पार्थ! करो रक्षा, हे धनधारी! जल्दी धावो।
भीषम के बानों से हमको, हे नाथ बचाकर अपनावो"॥
यों कहती हुई पांडु सेना, घबराकर इधर उधर भागी।
होगई नाश सब वीर वृती, हृदय में कायरता जागी॥
पर गंगा सुत ने फुरती से, बानों का जाल बनाय दिया।
यों भगते हुये शत्रुओं को, कर राह बंद अटकाय लिया॥
फिर तीव्र बान बरसा बरसा, उनको पशुवत काटने लगे।
पद शीश भुजायें छांट छांट मुरदों से महि पाटने लगे॥
मच गई प्रलय पांडव दल में, तज दी सबने जीवन आशा।
ये देख कृष्ण कुछ कुपित हुये, बोले अर्जुन से मृदु भाषा॥
तुम व्याज कर रहे सुस्ती से, भीषम चुस्ती दिखलाय रहे।
निज क्रोधानल में तुव सेना, सब भस्मी भूत बनाय रहे॥
भीषम यदि भीषण क्रोध करें, जीतें त्रिलोकी को पल में।
फिर ये मामूली छोटासा, पांडव दल है गा किस दल में॥

धरो धीर अब घोर रन नहीं कटक खप जाय।
भीषम का मुख मोड़ दो, तेज बान बरसाय॥

सुन वचन पार्थ अति क्रुद्ध हुये, धनु की टंकोर करी भारी।
भीषम के सन्मुख जा पहुंचे, बानों की कठिन मार मारी॥
जिस तरह शिकारी नया पशु, लखकर मन में हर्षाते हैं।
बस उसी तरह अर्जुन को लख, गंगा-नंदन मुस्काते हैं॥
और कहते हैं आवो आवो देखूं किम युद्ध मचाते हो।
किस तरह हमारे बानों से, तुम अपना बदन बचाते हो॥
इतना कह कर कपिध्वज रथ को तीरों के द्वारा छाय दिया।
[illegible] घोड़ों को घायल कर, लड़ने का ज्ञान भुलाय दिया॥

हरचंद कृष्ण ने ये चाहा, स्यंदन को शीघ्र घुमावें हम ।
भीषम के तीक्ष्ण बानों के, वारों को वृथा बनावें हम ॥
पर घोड़े टस से मस न हुये, होगया अचल रथ पारथ का ।
चकराये सुर नर हाल देख, ब्रह्मचारी के पुरुषारथ का ॥
रथ के निश्चल होते हि तुरत, भीषम ने ऐसे शर मारे ।
करदिये सारथी रथी विकल, बहते थे खूं के परनारे ॥
चोटें लगने से अर्जुन का, झांझरसा सकल शरीर हुआ ।
गांडीव हाथ से छूट पड़ा, व्याकुल हो बेसुध वीर हुआ ॥
बरस रहे थे यान पर, अब भी अगणित तीर ।
कवच बेदकर बदन को, पहुंचाते थे पीर ॥
ये श्री हरि से देखा न गया, भीषम पर अतिशय गरमाये ।
रथ छोड़ शीघ्र नीचे कूदे, ले चक्र चक्रपाणी धाये ॥
जिस तरह सिंह गज पर दौड़े, या जैसे बाज विहंग ऊपर ।
ऐसे ही माधव चक्र उठा, धाये श्री भीषम के सिर पर ॥
कंपायमान होगई धरणि, जिस समय चले त्रिभुवन सांई ।
सूरज पर एक गुबार उठा, सन्नाटे से आंधी आई ॥
गिरधारी को क्रोधित लखकर, वह चक्र अग्नि के तुल्य हुआ ।
ऐसी कुछ चमक हुई उसमें, जिसका अंदाज अतुल्य हुआ ॥
लख चक्रपाणि को कुरु सेना, भय के मारे अति घबराई ।
आवाजें तहां बुलन्द हुईं, "अब भीषम की मृत्यू आई" ।
महा धनुर्धर भीष्म ने, देखा दृष्टि उठाय ।
जान लिया ले चक्र को, आय रहे यदुराय ॥
जिनके गर्जन को विकट ध्वनी, गुंजाय रही नभ मंडल को ।
अरु बहुत शीघ्रता की धावनि, कंपाय रही अवनीतल को ॥
है रक्तवर्ण चहरा हरि का, निज कर में चक्र घुमाते हैं ।
अर्जुन के रक्षक होकर के, प्रभु मुझे मारने आते हैं ॥

निज जन के हेतु जनार्दन ने, अपने प्रण तक को भुला दिया ।
प्रण था मैं शस्त्र नहीं लूंगा, पर प्रेम वश्य हो उठा लिया ॥
है धन्य धन्य करुणालय को, जन पर किम दया दिखाते हैं ।
है धन्यवाद अर्जुन को भी, जो प्रेम पात्र कहलाते हैं ॥
इतना कहते कहते भीष्म, श्रीकृष्ण ध्यान में लीन हुये ।
रख दिया धनुष कर जोड़ लगे, तकने हरि सन्मुख दीन हुये ॥

जब देखा रथ के निकट, आ पहुँचे यदुराय ।
पुलकित हो कहने लगे, गंग-तनय मुस्काय ॥

आवो आओ पुंडरीकाक्ष अर्जुन के प्रिय सन्मुख आवो ।
हे चक्रपाणि झट चक्र चला निज पुण्य लोक में पहुंचावो ॥
मैं शीश झुकाता हूं गिरधर मारो जल्दी से बनवारी ।
ये लोग पीछे दोषक होंगे पर लोक भी होगा शुभकारी ॥
प्रभु तुम्हारी दृष्टि पलटने से, सब त्रिलोकी नश सकती है ।
जब प्राण देह तक नष्ट होवें, तब फिर मेरी क्या गिनती है ॥
अर्जुन के लिये उधर तुमने निज प्रण को तुरत भुलाय दिया ।
इधर मुझ सम क्षुद्र आत्मा का, कर कृपा मान बढाय दिया ॥

जय जन रक्षक जन सुखद जय जय जय गोविंद ।
जय त्रिभुवन स्वामी हरी, जय जय करुणा सिंद ॥

अन्त तक तुम्हरे चरन का न छुटे ध्यान प्रभू।
यही है प्रार्थना तुम से हे दयामय हमरी॥

गंगानंदन यों कहते थे, उस ओर पार्थ को होश हुआ।
ले चक्र कृष्ण को जाते लख, झट वीर हृदय में जोश हुआ॥
ये भी पीछे पीछे भागे, हरि को रस्ते में पकड़ लिया।
दोनों हाथों से नटवर के, पावों को फौरन जकड़ लिया॥
बोले हे नाथ शान्त हो अब, तुम्हरी सौगंद छुट जावेगी।
भूमंडल में अपयश होगा, लज्जा आ हमें दबावेगी॥
अपमान का मेरे ध्यान धार, रथ के सवार कर्तार बनो।
रन-सागर में रथ-नैया के, हे गिरधर खेवन हार बनो॥
मैं शपथ पूर्वक कहता हूं, अब सुस्ती नहीं दिखाऊंगा।
रन में कर अति विक्रम प्रकाश, रिपु को यमसदन पठाऊंगा॥
उत्तर बिन दीन्हें प्रभू, तुरत भये असवार।
फेर युद्ध में तेज शर, बरसन लगे अपार॥
प्रण के माफिक गंगासुत ने, दस हजार रथियों को मारा।
जब अस्त होगया मार्तण्ड, सेना ले वापिस पगधारा॥
पांडव सेना भी लौटगई, आराम कर लिया वीरों ने।
अरुणोदय होते ही रन का, फिर साज सजा रणधीरों ने॥
रण भूमी में आ गंगतनय, पांडव सेना मारने लगे।
विषधर सम तीक्ष्ण बानों से, वीरों को संहारने लगे॥
अर्जुन व भीम थे जले हुये, कलके रण में चोटें खाकर।
इसलिये शत्रु दल मथन लगे, गर्जन तर्जन कर खिजलाकर॥
छक्के छुटगये कौरवों के, लखकर इन दोनों वीरों को।
भयके मारे भागन लागे, अवलोक करारे तीरों को॥

जिस तरह इन्द्र ने वज्रधार, असुरों को मार भगाया था।
त्यों ही अर्जुन ने बानों से, रिपु सेना को बिचलाया था॥
जिस तरह रुई का ढेर अग्नि झट भस्मीभूत बनाती है।
त्योंही अर्जुन की शक्ती भी, वीरों का खोज मिटाती है॥
उस ओर गदाधर भीम बली, पिछले दुखों का सुमरन कर।
साक्षात काल सदृश दौड़े, हाथों में ब्रहत गदा लेकर॥
सारी सेना से दृष्टि हटा, खोजा कुरुपति के भ्रातों को।
यों गदा घुमाई क्रोधित हो, वे सह न सके आघातों को॥
होगये धरास्यायी कितने, कितने ही जी लेकर भागे।
लख उन्हें भागते हुए भीम, आतुर होकर पीछे लागे॥
कुछ दूरी पर जा पकड़ लिया, बोले शत्रुओं ठहर जाओ।
पिछले दुष्कर्मों का बदला, दुष्टों झटपट लेते जाओ॥
यों धर पछाड़ना शुरू किया, दे झटके भुजा तोड़ डाली।
पावों से धड़ को अलग किया, दोनों ही आंख फोड़ डाली॥

चिल्लाते थे विकल हो, धृतराष्ट्र के लाल।
थे दुख देते थे अधिक, खींच खींच कर खाल॥

लगभग पचीस पुत्र मारे, बाकी के रण तज हवा हुये।
तब अश्व हाथियों की जानिब, बलवीर गदाधर रवां हुये॥
भाम भाम से दोनों वीरों ने, रणक्षेत्र भयंकर बना दिया।
रिपुओं के अगणित वीरों को, ले जान भूमि पर सुला दिया॥
यों महामार करते करते, रवि के छिपने का समय हुवा।
पं देख सवाल दुर्योधन दल, मरने से कुछ २ अभय हुवा॥
जब अन्धकार छा गया पूर्ण, पांडव सेना वापिस आई।
उस ओर दुखित भांभर तन हो, झट लौट गई कुरु कटकाई॥

कुरुपति डेरे में गया, हत उत्साह उदास।
सलाह करी बुलवाय कर, निज मित्रों को पास॥

किस तरह हमें लड़ना चहिये, मित्रों से सब कुछ पूछ लिया।
फिर कुछ सवार संग में लेकर, भीषम की जानिब कूच किया॥
कीन्हा प्रणाम मस्तक झुकाय, दादा के डेरे में जाकर।
कुछ क्रोधित हो संकोच सहित, बोला उनकी आज्ञा पाकर॥
हे शत्रुनशावन पितामहा, विश्वासघात है ठीक नहीं।
सेनापति होकर धोका दे, ये चाल आपकी नीक नहीं॥
मैं तो तुम्हारे बाहूबल पर, ऊँची अभिलाषा करता था।
पांडव क्या हैं देवों तक से, रण करने में नहिं डरता था॥
पर देख रहा हूं दिन पर दिन, तुमरे आश्रित रह कटकाई।
पिटती ही जाती है रिपु से, क्या यही आपकी मनुसाई॥
इसका है सबब यही दादा, उन पर तुम प्रेम जताते हो।
जो खोल युद्ध में कभी नहीं निज बाहूबल दिखलाते हो॥
यदि है उन पर ही प्रेम प्रबल तो रण मत करो बैठ जाओ।
और कर्ण को गिनकर महाबली लड़ने को आज्ञा फरमाओ॥
हैं अङ्गराज मम शुभचिन्तक, जब वो सेनप बन जावेंगे।
तो निश्चय है पांडव दल को, पाण्डुओं के सहित खपावेंगे॥

इतना कहकर चुप हुआ, कौरव कुल अवनेश।
वचन बाण से भीष्म को, उपजा दुःख विशेष॥

वो वृद्ध वीर क्रोधित होकर, आंखें मीचे चुपचाप रहा।
फिर नेत्र खोल, कर शांत चित, दुर्योधन से इस तरह कहा॥
हे कौरवेश ! मैं अष्ट प्रहर, तेरे मंगल में रहता हूं।
तेरे हित साधन में हरदम, मैं लाखों संकट सहता हूं॥
सुन बेटा तेरी विजय हेतु, रण करने को लाचार हूं मैं।
रण भूमी में ले पक्ष तेरा, मरने तक को तय्यार हूं मैं॥
फिर तू काहे को बार बार, झूंठा इलजाम लगाता है।
किस कारण मेरे हृदय पर, नित वचन बाण बरसाता है॥

मैंने लाखों ही बार कहा, पांडव सब धर्म धुरंधर हैं ।
ये धर्म हि है जिसके बल से, उनकी रक्षा पर ईश्वर हैं ॥
जिनकी रक्षा जगदीश करें, वो किम मारा जा सकता है ।
क्या अमृत पीने वाले को, स्वपने में काल आसकता है ॥
फिर उनमें धर्मोचित बलके, अतिरिक्त बाहुबल अतुलित है ।
बस यही सबब है तव सेना, रण में नित उनसे विचलित है ॥

अर्जुन के बल का करो, केवल तुम अंदाज ।
डूबो जाकर नीर में, यदि आवे कुछ लाज ॥

खांडव बन का कुछ ध्यान धरो, बनवास फेर मन में लाओ ।
फिर पुर विराट पर दृष्टि डाल, यदि शर्म आय तो मर जाओ ॥
इक बार नहीं अनगिनत बार, अर्जुन का बल अवलोका है ।
फिर अपने सच्चे सैनप पर, किस कारण तुमको धोका है ॥
जिसको हो रोग पीलिये का, सब वस्तु पीत दृष्टी आती ।
वैसे ही स्वार्थ भरे नर को, निज कमजोरी नहि दिखलाती ॥
दुष्कर्मों ने तेरे मन पर, अज्ञान का पर्दा डाला है ।
इसलिये तुझे मालूम नहीं, क्या अंधियारा उजियाला है ॥
रख याद हृदय में दुष्ट मनुष्य, सुख तो कुछ ही दिन पाता है ।
पर दुःखों का कुछ पार नहीं, अनगिनतों जन्म गंवाता है ॥
तेरे पापों का घड़ा मूर्ख, अब शीघ्र हि है भरने वाला ।
कुछ ही दिन में दुर्योधन तू, दुनियां से है जाने वाला ॥
तत्पर हूं मैं अपने प्रण पर, और रहूंगा जबतक जग में हूँ ।
तू चाहे निःआशावादी कह, लेकिन मैं तो सत मग में हूं ॥
जाओ इस समय लौट जाओ, कल मेरा घोर युद्ध होगा ।
और कल ही रण में वृद्ध भीष्म, बस अंतिम बार क्रुद्ध होगा ॥

निश्चय ही कल युद्ध में, करूं पाण्डु दल नाश ।
तो पूरन कल होयगी, तेरी पूरी आस ॥

ये सुन दुर्योधन चला गया, तब गंगतनय सोचने लगे ।
आंखों का नीर दुखित मन से, धरकर धीरज पोंछने लगे ॥
सोचा सुख रहित शून्य जीवन, मुझको अब भला न लगता है ।
आगई सफेदी वृद्ध हुआ, दिन बदिन बदन ये थकता है ॥
भाई बांधव सहचर आदिक, मृत्यू के मुख में चले गये ।
और मैं वृथा हो पाता हूं, जग में रहकर दुख नये नये ॥
करतव पालन करते करते, भी मैं फटकारा जाता हूं ।
जीवन अर्पण करने पर भी, मैं धोखेबाज कहाता हूँ ॥
ऐसे दुष्टों की सोहबत से, जीवन त्यागन करना अच्छा ।
भूमी पर धर्मराज फैले, अस्तू मेरा मरना अच्छा ॥
मैं इच्छा-मृत्यू हूँ इससे, मृत्यू को स्वयं बुलाऊंगा ।
चाहे ये आत्मघात ही हो, पर मैं न कभी दहलाऊंगा ॥
मेरी मृत्यू से यहां, होय धर्म का राज ।
मस्तक से अन्याय के, उतर जायगा ताज ॥

❀ गाना ❀

(तर्ज—विधना ने दुख दिये भारी जी, कैसे करूं वीर)

पराधीनी दुखकारी जी, बता रहा ज्ञान ॥
इसके फन्दे फँस जग माहीं, रहे मनुष्य उदास सदा ही ।
होती है नित ख्वारी जी ॥ बता रहा ज्ञान ॥
स्वाधीनी में स्वर्ग से भी बढ़, है त नर्क सदा ही सुखकर ।
इसकी ही बलिहारी जी ॥ बता रहा ज्ञान ॥
दीनानाथ दया दिखलाना, पराधीनता में न फँसाना ।
तुम्हीं भक्त हितकारी जी ॥ बता रहा ज्ञान ॥

ये सोच भीष्म कुछ शान्त हुये, फिर शय्या पर आराम किया ।
जब भोर हुआ सुख से उठकर, रन में जाने का काम किया ॥
मस्तक रख लिया हथेली पर, उस वृद्ध वीर ब्रह्मचारी ने ।
रन में चलने की सेना को दे दी आज्ञा धनुधारी ने ॥
एक विकट व्यूह की रचना कर, दरवाजे पर खुद आप रहे ।
दांये बांये स्थानों को, कृप द्रोण आदि ने आन गहे ॥
शत्रू के सन्मुख आते ही, भिडगये भीष्म क्रोधित होकर ।
बाणों से सेना मार मार, बस लगे पटकने भूमी पर ॥
इनके धनु का टंकोर शब्द क्रम क्रम से बढ़ता जाता था ।
और युद्ध के सकल कुलाहल को, निज पेट में धरता जाता था ॥
आखिर बढ़ते बढ़ते वह रव, बज्जर के तुल्य कठोर हुआ ।
दहलाये रिपु सेना वाले, व्यूह टूटा उलटा तौर हुआ ॥
पांडव सेना के मुख्य मुख्य वीरों को बेसुध बना दिया ।
जो भी कोई सन्मुख आया, भूमी पर उसको सुला दिया ॥
जब पांडु कटक ने ये देखा, भागे से नहीं भलाई है ।
सन्मुख भी जान बचेगी नहीं, हर तरह मौत घिर आई है ॥
तब लड़कर जीवन तजने से, है उत्तम जग में बात नहीं ।
जो क्षत्री रण से विमुख होय, समझो वह उत्तम जाति नहीं ॥
ये सोच सकल पांडव सेना, भीष्म के चहुँ दिश आछाई ।
तब गंग-तनय ने क्रोधित हो, बाणों की संख्या बरसाई ॥

हाथी घोड़ों को किया, पल में हीन सवार ।
खंड खंड कर तीर से, पटके भूमि मंझार ॥

लाखों रथ अश्व विहीन हुये, सारथी रथी भी जूझ गये ।
कटगये किसी के हाथ पांव कितने चोटें खा सूज गये ॥
भीष्म के तीर एक ही को, कर मृतक चैन नहिं लेते थे ।
बल्कि एक एक बान दस को, बस यमपुर पहुंचा देते थे ॥

सारथी मार मारें रथि को, रथ तोड़ भूमि में घुस जावें ।
हाथी का मस्तक छेदन कर, फिर पूंछ की राह निकल जावें ॥
आतंक शरों ने मचा दिया, फुंकार मारते फिरते थे ।
बहुतों को बधकर एक साथ, तब कहीं भूमि पर गिरते थे ॥
यों तनिक देर में बाणों ने, रण दृश्य भयंकर बना दिया ।
स्यंदन के अवयव तोड़ तोड़, ल्हाशों के संग में बिछा दिया ॥
खंडित रथ मृतक हस्थि घोड़े, सिर पांव हाथ धड़ वीरों के ।
कुंडल व कवच धनु बान और, कई स्वर्ण मुकुट रण धीरों के ॥
मय अस्त्र व शस्त्र भुजाओं के, पल में पटगई भूमि सारी ।
ऐसा भयदायक दृश्य देख, अर्जुन से बोले गिरधारी ॥

अर्जुन देखो तो सही, ब्रह्मचारी का युद्ध ।
बड़े बड़े बेसुध हुये, लखकर जिसको क्रुद्ध ॥

क्या ऐसा रन देखा है कभी, देखो उनके शर जालों को ।
भेजा है जिन्होंने यमपुर में, लाखों ही क्षत्री लालों को ॥
वह सुनों मेघ गर्जन सदृश, आता है शब्द प्रत्यंचा का ।
बूंदों सम बाण बरसते हैं, है सिंह सरिस रव योधा का ॥
इकले गंगानन्दन मानो, सौ गंग तनय सम लड़ते हैं ।
लेते हैं घेर कई योधा, पर पल भर में गिर पड़ते हैं ॥
वह देखो पांडव सेना सब, भागी जाती आगे आगे ।
और इकले भीष्म सिंह सदृश, जाते पीछे पीछे भागे ॥
सीना तन कर होरहा दुगुन, उत्साह से गंगानन्दन का ।
कुछ सुनो तो अपने कान खोल, क्या भीषण रव है स्यंदन का ॥
बूढ़े तन में किस तेजी से, धारा बह रही पसीनों की ।
बाणों ने दुर्गति करदी है, अगणित वीरों के सीनों की ॥
आंखों में प्रलय रूप सदृश, देती है अग्नी दिखलाई ।
ये वृद्ध पितामह हैं या के, हैं वज्रपाणि श्री सुरराई ॥

देखो कैसा तेज है, जनु प्रत्यक्ष तमारि ।
धन्य पितामह धन्य तुम, धन्य वीर ब्रह्मचारि ॥

अर्जुन जल्दी धनुबान गहो, वरना मुश्किल आ जायेगी ।
भीषम के बाणों की अग्नी, हम को भी दुख पहुँचायेगी ॥
सेना की रक्षा में तत्पर, ले धनुष बान झट हो जाओ ।
उनकी शर धारा रोक तुरत, अपने बाणों को बरसाओ ॥

ये कह कर भगवान ने, हांके शीघ्र तुरंग ।
चले पार्थ के तीर भी, जनु परदार भुजंग ॥

काट गई भीषम की धनुडोरी, ये लख वे मन में गरमाये ।
ले धनुष दूसरा फुरती से, शर मेघ वृंद सम बरसाये ॥
मार डाला श्री हरि को घायल, घोड़ों को अचल बनाय दिया ।
अर्जुन को कपिध्वज रथ समेत, बाणों से तुरत छिपाय दिया ॥
फिर झुके कटक पर गंगतनय, वह महा मार मारने लगे ।
मच गई प्रलय पांडव दल में, हो विकल वीर भागने लगे ॥
बह चली तहां श्रोणित धारा, बन गई नदी न जाय बरनी ।
मानो यमपुर पहुँचाने को उत्पन्न हुई हो वैतरनी ॥
भीषम ने निज बाणों से जो, मदमत्त हस्ति संहारे थे ।
वे जहां तहां भूपर गिरकर, इनके बनगये किनारे थे ॥
बहते थे रजत छत्र इनमें, वह फेन सदृश चमकते थे ।
बनगई ढाल कच्छप समान, शर मछली सरिस दमकते थे ॥
बनगये मगर मृतक बाजी, रथ के पहिये घड़ियाल हुये ।
आपहुँची योगिन खप्पर ले, अरु नृत्य करत बैताल हुये ॥

आमिष भखी पक्षिगण अन्तावलि गहि धाहिं ।
दरामों को कई गृद्ध मिल, नोंच नोंच कर खाहिं ॥

हे पुत्रों ये मेरा प्रण है, स्त्री पर वार करूं न कभी ।
और नपुंसकों के भी सिरपर, हरगिज हथियार धरूं न कभी ॥
तुम्हारे दल मांहि शिखंडी * है, वह पुरुष नहीं है नारी है ।
इसलिये उसे नहिं मारूंगा, ये सत्य बात उर धारी है ॥
तुम उसको सेनापति बनाय, मेरे सम्मुख पहुँचा देना ।
उसके बाणों द्वारा मेरा ये सारा तन बिंधवा देना ॥
मैं तो मारूंगा नहीं उसे, वह अपना काम बना लेगा ।
इस तरह भीष्म का वध करके, पाण्डुओं को विजय दिला देगा ॥

और तरह नहिं होयगी, मम प्राणों की हानि ।
इसके माफिक जायकर करो प्रयत्न सुजान ॥

भीष्म की ऐसी बातें सुन, ये आ पहुँचे निजधाम सभी ।
सारा दुख संकट बिसरा कर, फिर लगे करन आराम सभी ॥
आगया युद्ध का दसवां दिन, दोनों सेना तैयार हुईं ।
आपस में कटने मरने को, धर्मानुसार लाचार हुईं ॥
अर्जुन ने वीर शिखंडी को, सेनप की पगड़ी बंधवा कर ।
निर्माण एक व्यूह का करके, रक्खा उसके दरवाजे पर ॥
रक्षा के निमित दाहनी दिशि, होगये पार्थ मय बनवारी ।
और बाईं दिश में खड़े हुये, ले भीषण गदा गदाधारी ॥
कइ योधा पिछली तरफ रहे, यों बढ़े अगाड़ी लड़ने को ।
भीष्म के आदेशानुसार, रण में उनका वध करने को ॥

आ पहुँची कुरुसेन भी, हुआ शुरू संग्राम ।
शोणित में लथपथ तुरत, भूमी हुई तमाम ॥

* शिखंडी का सम्पूर्ण हाल जानने के लिये पाठकों को पहिला और तीसरा हिस्सा देखना चाहिये ।

भीषम ने अपनी सेना का, व्यूह बहुत कठोर बनाया था ।
और मुख्य मुख्य योधाओं को, दरवाजों पर ठहराया था ॥
इसलिये शिखंडी का स्यंदन, गंगानन्दन तक जा न सका ।
ये लख अर्जुन ने धनुष चढ़ा, क्रोधित होकर शत्रू को तका ॥
बरसाये ऐसे तीव्र बाण, अगनित योधागन कटन लगे ।
इस तरह नाश करते करते, ये क्रम से आगे बढ़न लगे ॥
जा पहुंचे भीषम के समीप, ये लख हर्षे गंगानन्दन ।
अपनी मृत्यू को निकट देख, झट किये प्रभू के पदवन्दन ॥
फिर निज शक्ती का सर्व श्रेष्ठ, परिचय देने को खड़े हुये ।
तज डाला शान्त स्वभाव शीघ्र, गर्जे गुस्से में भरे हुये ॥
अति उग्ररूप धारन करके, सेना में प्रलय मचाने लगे ।
निज स्यंदन को दौड़ाते हुये, लोगों में भय उपजाने लगे ॥

वायू के संसर्ग से, त्रण को जैसे आग ।
अति प्रकाश करती हुई, दग्ध करे वे लाग ॥

त्योंही भीषम दिव्यस्त्रों को, बरसाते हुये प्रदीप्त हुये ।
लख उनकी तेजी वीर सभी, चोटें खा खा विक्षिप्त हुये ॥
रथ से रथियो को पटक पटक, निर्जीव बनाया भीषम ने ।
हाथी घोड़ों को काट काट, भूमी पै सुलाया भीषम ने ॥
कुछ घंटों में चौदह हजार, योधा मरकर परलोक गये ।
हाथी घोडे पचीस सहस्र, इनके शर खा तन नजन भये ॥
हिम्मत न किसी में रही वहां, जो शस्त्र उठा सन्मुख आवे ।
जिसको ये जरा देख लेवें, वह भय के मारे मर जावे ॥
पांडव सेना के मुख्य मुख्य, रणधीर वीर सरदार वहां ।
झांझर शरीर होगये तुरत, खाकर तीरों की मार वहाँ ॥

अर्जुन ने ऐसा दृश्य देख, यों कहा शिखंडी से भाई।
भीषम भीषण बाणों द्वारा, बधते हैं अपनी कटकाई॥

येही उत्तम समय है, करो धनुष सन्धान।
वृद्धवीर के हृदय में, मारो तीक्ष्ण बान।

बिन तेरे और नहीं कोई, इनको बधने के लायक है।
अस्तू जल्दी आक्रमण करो, देरी करना दुख दायक है॥
सुन बचन शिखंडी ने फोरन, इक भाले को कर में धारा।
कर क्रोध हवा में उठा उसे, भीषम की छाती में मारा॥
ये लख भीषम ने मुसका कर, इसपै एक तुच्छ दृष्टि डाली।
न रोका वार न मार करी, सेना बधते रहे बलशाली।
वो भाला तन से टकरा कर, गिरगया भूमि पर निष्फल हो।
ये देख शिखंडी धनुष चढ़ा, शर मारन लागा व्याकुल हो॥

ताक ताक ये मारता, धनु कानों लग तान।
पर तन से टकराय कर, गिर जाते थे बान॥

ये ऐसा वैसा बदन न था, था बदन बाल ब्रह्मचारी का।
फौलाद के सदृश था कठोर, दुर्भेद्य दुसह धनुधारी का॥
श्रोताओं तनिक विचार करो, इस ब्रह्मचर्य की महिमा पर।
क्या जगकी कोई भी वस्तू, हो सकती है इससे बढ़ कर॥
जिसने इसको स्थिर रक्खा, वह सब वैभव से पूर्ण हुआ।
नहिं दिया ध्यान जिसने इस पर, उसका जीवन सुख चूर्ण हुआ॥
जिमि नौका ही एक साधन है, वारीश पार जाने के लिये।
तिमि ब्रह्मचर्य की शक्ती है, दुःखों से पार पाने के लिये॥
है ब्रह्मचर्य ही सर्व सुःख, है यही तेज बल धन अपना।
है धर्म यही स्वास्थ भी यही, और है सच्चा जीवन अपना॥

धर्म अर्थ और काम का, है येही दातार ।
मुक्ति दिला फिर अन्त में, करे यही भव पार ॥

इसके ही वल से क्षुद्र मनुज, देवता सरिस वन जाता है ।
विन इसके अमरावतिपति भी जा बजा ठोकरें खाता है ॥
ये ब्रह्मचर्य का ही वल था, जिससे हनुमत ने एक छिन में ।
मुष्टिक द्वारा वेहोश किया, रावण से योद्धा को रन में ॥
फिर लांघ गये वारीश तलक इसके हि असर से कपिराई ।
गिरि शिखर भी झटपट उठालिये, नहिं कभी भीरुता दिखलाई ॥
पर आज दशा अपनी लख कर, होता है वहुत मलाल हमें ।
सिंहों के सुत होने पर भी सब कहते हैं शृगाल हमें ॥
इसका वस येही कारन है, हम ब्रह्मचर्य से हीन हुये ।
होगये जवानी में बुड्ढे, चहरे पीले छवि छीन हुये ॥
दे दई तिलांजलि इहलौकिक, अरु परलोकिक के सुःखों को ।
होकर अल्पायू एक फकत, अपनाया है वस दुःखों को ॥
इसलिये हृदय में कर विचार, ब्रह्मचर्य रत्न को अपनाओ ।
वारदुके हो अपना नाश बहुत, अब और नहीं ठोकर खाओ ॥
जिस तरह पैर में हाथी के, सबही के पैर समाते हैं ।
वैसे ही ब्रह्मचर्य में बस, सम्पूर्ण सुःख आजाते हैं ॥

* गाना *

रहते है जो ब्रह्मचारी, होते है वे बलधारी ।
बनजाती मुख छवि न्यारी, और पाते है सुखभारी ॥
जिस नर ने इसको नहि धारा, उसने अपना स्वास्थ बिगारा ।
नष्ट होगया जीवन सारा, रहा सदा ही ख्वारी ॥
येही साधन सर्व सुःख है, इसके बिना दुःख ही दुख है ।
आनन्द यही मनुज का सुख है, है यही हितकारी ॥

अस्तू ऐसा रत्न न छोड़ो, विषय वासना से मुख मोड़ो ।
ब्रह्मचर्य से नाता जोड़ो, येही विनय हमारी ॥

अल किस्सा वीर शिखंडी ने, हरचन्द वीरता दिखलाई ।
लेकिन श्रीगंगानन्दन के, तनपर न आंच बिलकुल आई ॥
लख इसके बाणों को निष्फल, अर्जुन से बोले गिरधारी ।
हे वीर तुम्हारे ही शर से, तन तजेंगे भीषम ब्रह्मचारी ॥

धनुष चढ़ा शर साध कर, ले शिखंडि की ओट ।
भीषम के तन पर करो, सखा शीघ्र ही चोट ॥

इन वचनों ने अर्जुन को दुःख, मानिंद तीर के पहुँचाया ।
एक दीर्घ स्वांस लेकर बोले, आँखों में अश्रू जल छाया ॥
हे भगवन् भीष्म पितामह को, मैं किस प्रकार संहारूँगा ।
जिस छाती पर बरसों लेटा, उस पर कैसे शर मारूँगा ॥
सब बदन धूलि धूसरित बना, बचपन में जब हम आते थे ।
ये यही पितामह हर्षित हो, गोदी में झट बिठलाते थे ॥
दिखलाते थे, हर समय प्रेम, पालन पोषण कर बड़ा किया ।
वरणानुसार शिक्षा दे हमें, अपने पांवों पर खड़ा किया ॥
क्या इसका येही एवज़ है, उनपर ही तीर चलाऊं मैं ।
सेवा करने के बदले में, संग्राम में मार गिराऊं मैं ॥

चाहे सब पांडव कटक, उनपर करे प्रहार ।
लेकिन मैं न लड़ूं कभी, जय हो अथवा हार ॥
कहा कृष्ण ने वीर तुम, हुये फेर गत धर्म ।
भूलगये उपदेश मम, "करो काम निष्कर्म ॥"

अपने मन में यह मत सोचो, भीषम को मैं हि गिराऊँगा ।
बल्कि स्वधर्म के माफिक मैं, अपना कर्त्तव्य निभाऊँगा ॥
तुम काल नहिं हो प्रिय अर्जुन, उसके एक निमित्त मात्र हो तुम ।
मारेगी उनको मृत्यु ही, इसलिये न कंपितगात्र हो तुम ॥
रण में ये ध्यान भूल जाओ, ये रिश्तेदार हमारा है ।
जो तुमसे आकर लड़े उसे, बधने का काम तुम्हारा है ॥
निजधर्म से मित्र! विमुख होकर, जग में न कभी यश पावोगे ।
बल्की जब उसे पूर्ण करलो, तब ही सुरलोक सिधावोगे ॥
सुन कृष्ण वचन अनइच्छा मे, ले ओट शिखंडी की, तककर ।
आखों से अश्रु गिराते हुये, मृदु तीर चलाये भीषम पर ॥
वे ब्रह्मचारी पांडव दल में, अति घोर प्रलय थे मचा रहे ।
हाथी घोड़ों योधाओं को, वध कर भूमी पर सुला रहे ॥
जब लखा कृष्ण ने तीरों से, सब सेना कटती जाती है ।
अर्जुन करते हैं मृदु युद्ध, अब निश्चय हार लखाती है ॥

तब अपनी भृकुटी चढ़ा, कुछ कठोर से वैन ।
अर्जुन का अपमान कर, बोले राजिवनैन ॥

हे वीर चतुर ज्ञानी होकर, क्यों यहां शिथिलता दिखा रहे ।
उस तरफ तुम्हारी सेना को, वे बानों द्वारा खपा रहे ॥
तुम तो हो इन्हीं विचारों में, ये दादा हैं मैं क्यों मारूं ।
किस कारण दया रहित होकर, रिश्तेदारों को संहारूं ॥
पर समर क्षेत्र में ये विचार, अति निन्दनीय माने जाते ।
ऐसा करने वाले क्षत्री, कुल के गौरव नहिं कहलाते ॥
यदि दया प्रेम के वश होकर, तुम यहां न बल दिखलाओगे ।
तो सब सेना कट जायेगी, जग में अति अयश कमाओगे ॥

इसलिये धर्म का ध्यान धार, सुस्ती को अलग निकाल धरो ।
शत्रू पर ऐसे अवसर में, तीक्ष्ण बाणों की मार करो ॥

बनवारी के वाक्य सुन, बोले पार्थ सुजान ।
मुझको ये मत आपका, जचा नहीं भगवान ॥

धिक्कार क्षत्रि के धर्म को है, हा कैसा दारुण बना हुआ ।
जिस में पोता निर्मोही हो, दादा को मारे खड़ा हुआ ॥
हे विधना क्यों उत्पन्न किया, तैंने मुझको ऐसे कुल में ।
जिस में हत्या ही धर्म होय, क्या और न था कुल भूतल में ॥

❀ गाना ❀

(तर्ज़ः— सांवरिया से हमें से नाहिं बनीरे)

मैं दादा का जीवन कैसे हरूंरे ॥
जिन्हों ने मुझे पाला, मैं मारूं उन्हीं को ।
यही क्या धरम है मैं कैसी करूंरे ॥ मैं दादा ॥
लगादो आग रण में, घुमाओ मेरे रथ को ।
पितामह पै शसतर मैं नाहि धरूंरे ॥ मैं दादा ॥
लगाते हो पातक, मुझे क्यों सांवरिया ।
बचाओ नाथ जन को मैं पैया परूंरे ॥ मैं दादा ॥
जन्म न हो मेरा, क्षत्री के कुल में ।
हे विधि सिर झुकाकर मैं विनती करूंरे ॥ मैं दादा ॥

इतना कह लाचार हो, लगे मारने बान ।
तेज करारे विष बुझे, धनु कानों लग तान ॥

करडाला अचल धनंजय ने, पल में भीषम के स्यंदन को ।
तीरों की अनगिनती चोटें, पहुँचाई गंगा-नन्दन को ॥

जब वह वायु सम द्रुतगामी, रथ अचल बनगया भारत में ।
अरु वृद्ध वीर घायल होकर, होगया हीन पुरुषारथ में ॥
तब अगनित योधा अवसर पा, इस वीर सिंह पर आ टूटे ।
फिर झट निर्दयता से इनपर, वह वज्र समान तीर छूटे ॥
पर इसको कुछ परवाह न कर, वह वीर केसरी ललकारा ।
धनुको फुरती से खींच खींच, गिन गिन कर वीरों को मारा ॥
लेकिन उन हाथों की फुरती, पल पल में घटती जाती थी ।
अर्जुन के शर घुस जाने से, कमज़ोरी बढ़ती आती थी ॥
बहता था रोम रोम से खूं, तम छाय रहा था नैनों में ।
तन में अति पीड़ा होने से, आगई शिथिलता बैनों में ॥
अर्जुन को शिखंडी के पीछे, लखते हि भीष्म ने जान लिया ।
बस आज हमारे जीवन का, अंतिम दिन है पहिचान लिया ॥

शान्तचित्त से रखदिये, रथ में तीर कमान ।
कर में ले तलवार को, गरजे सिंह समान ॥

कूदे फिर धरती के ऊपर, रिपुओं पर काल सरिस दौड़े ।
घायलपन की हालत में भी, हज़ारों के मस्तक फोड़े ॥
इतने में अर्जुन के शर से, तलवार टूट कर चूर हुई ।
तब निरस्त्र गंगानन्दन पर, शरकी चोटें भरपूर हुईं ॥
जिन से सब अंग प्रत्यंग बिधा, वे काबू सकल शरीर हुआ ।
शोणित की धारा बहने से, तत्काल शिथिल रणधीर हुआ ॥
लेकिन आंखें टकटकी बांध, प्रभु के चरणों को तकती थीं ।
इतनी विपता पड़ने पर भी, थी शान्त जरा नहिं डिगती थीं ॥
धीरे धीरे दृग के द्वारा, मोहन का रूप हृदय धारा ।
धीमी बोली से कई बार, शुभनाम प्रभू का उच्चारा ॥

होगये लीन रटते रटते, सुधि बिसर गई तनकी सारी।
सब दृश्य ब्रह्ममय दृष्टि पड़ा, भरगये सभी जां गिरधारी॥

तकते तकते कृष्ण को, गिरे धरनि पर वीर।
कमज़ोरी के कारने, बे सुध हुआ शरीर॥

अनगिनती वानों मे इनका, एक एक रोम था बिधा हुआ।
अस्तु गिर कर भी अधर रहे, नहिं भूमी का स्पर्श हुआ॥
क्षत्री के लिये जो उत्तम है, वैसी ही वीरगती पाई।
सोगये शरों की शय्या में, पर कायरता नहिं दिखलाई॥
जब गिरे भूमि पर गंगतनय, छागया अन्धेरा दिनकर पर।
वायु आंधी में पलट गई, भूचाल आगया भूमी पर॥
दहलाये गये ऋषिगन सारे, था हा हा कार बिमानों में।
दारुण दुख से कुरु सेना के, आगई शिथिलता प्रानों में॥
दुर्योधन कृपाचार्य आदिक, गुन कह कह रुदन मचाते थे।
यहां तक पशुगन भी व्याकुल हो, कर ऊंचा स्वर चिल्लाते थे॥

दुःशासन कुरुराज का, तब अनुसाशन पाय।
गया तुरत आचार्य ढिंग, दीन्हीं खबर सुनाय॥

ये अप्रिय बानी सुनते ही, आचार्य तुरत बेहोश हुये।
गिर गये भूमि पर चक्कर खा, अंग अंग शिथिल गत जोश हुये॥
आया जब होश गुरूजी को, रन फौरन बन्द कराय दिया।
अरु म्लान चित्त से स्यंदन को, भीषम की तरफ घुमाय दिया॥
पांडव दल भी इस घटना से, अति व्याकुलहो छबिछीन हुआ।
आगया तुरत हथियार फेंक, भीषम के निकट मलीन हुआ॥
जिस जिस क्षत्री ने जहां जहां, जब जब ये समाचार पाया।
तज शस्त्र दुखित हो भीष्म निकट, घबराता हुआ चला आया॥

क्या देखा कुरु कुल योद्धा का, छिद रहा शरों से अंग सारा ।
बूंदों के टप टप गिरने से, हो रही प्रगट शोणित धारा ॥
बानों के ऊपर आसन है, आंखें हैं बन्द पितामह की ।
कर रहे उचारन कृष्ण कृष्ण, है गति स्वछंद पितामह की ॥
अति अधिक पीर होने पर भी, सब अंग शांति दरसाय रहे ।
दुर्बलता के कारण उनके, सब स्वांस अहिस्ता आय रहे ॥

अश्रूधारा बह चली, देख भीष्म का हाल ।
सिरधुन व्याकुल हो, रुदन, करन लगे भूपाल ॥

हा ! इस सत्यानाशी रन में, होगई ये दुर्घटना कैसी ।
हा ! कुटिल कराल विधाता ने, पल में रच दी रचना कैसी ॥
जो थे सब वीरों में प्रधान, धनुवी अति श्रेष्ठ कहाते थे ।
ललकार सिंह सम थी जिनकी, सुन जिसे शत्रु दहलाते थे ॥
सोगे वे ही शर शैया में, ये भ्रात द्रोह परिणाम लखो ।
दुर्योधन की दुरनीती का, हट करने का अंजाम लखो ॥
जो पितु को सुख देने के लिये, बन गये थे बाल ब्रह्मचारी ।
कर दिया भस्म कामानल को, आजन्म नहीं ब्याही नारी ॥
जिन महारथी ने काशी में, अनगिनती भूप हराये थे ।
रनभूमी में खुद परशुराम, जिन को न जीतने पाये थे ॥
हा ! वही वीर रनधीर यती, क्षत्रीपन पर बलिदान हुआ ।
जा बसा स्वर्ग में तज शरीर, ये धराधाम सुनसान हुआ ॥
जो भुजबल में सुरपति समान, हिमआलय सम स्थिरता में ।
गाम्भीर्य दिखाने में जलनिधि, मेदनी सरिस सहिष्णुता में ॥
कर दस दिन सेना की रक्षा, प्रतिदिन दस सहस भूप बधकर ।
आंधी से गिरे हुये तरु सम, होगये अस्त बल दिखला कर ॥

शोक विकलता से भरे, सुन सब दल के बैन ।
भीषम ने अति दुःख से, खोले दोनों नैन ॥

बोले भूपो स्वागत तुम्हरा, लख तुमको हर्ष अपार हुआ ।
इसमें मत फिक्र करो भाई, जो काल का मुझ पर वार हुआ ॥
ये तो निश्चित ही है मित्रो, ये मृत्यु एक दिन आती है ।
इस पंच भूत मय जड़ तन से, आत्मा को पृथक् बनाती है ॥
लेकिन स्वधर्म पालन करते, जो जीव शरीर त्याग जावे ।
वह मौत नहीं है जीवन है, वह तत्क्षण ही मुक्ती पावे ॥
सच्चे क्षत्री जिस मृत्यू की, दिन रात कामना करते हैं ।
वह मिली मुझे क्यों आप फेर, दुख की ही भावना करते हैं ॥

इतना कह कुछ ठहर फिर, बोले गंग-कुमार ।
ध्यान पूर्वक बात मम, सुन कुरुवंश भुवार ॥

ये शीश लटकता है मेरा एक उत्तम तकिया लादे तू ।
जो मेरे सम क्षत्री के लिये, उपयुक्त हो शीघ्र लगादे तू ॥
कुरुपति मखमल का तकिया, लेकर इनके सन्मुख आया ।
पर ग्रहण किया नहिं भीषम ने, लख अर्जुन को यों फरमाया ॥
हे बेटा तुम हो बुद्धिमान, इतना कहना मेरा कीजे ।
मेरी उत्तम सैया जैसा, उत्तम ही सिरहाना दीजे ॥

दादा के मन की समझ, शीघ्र सराशन तान ।
सिर के नीचे भूमि में, तीन चलाये बान ॥

भूमी अरु सिर के बीच टिके, झट ठहरगया सिर भीषम का ।
शैयानुसार तकिया पाकर, अति हर्षाया मन भीषम का ॥

कुछ देर ठहर फिर भीष्म पिता, बोले दुर्योधनराई से ।
शर से पीड़ित होने पर भी, कर शांन्त चित्त दृढ़ताई से ॥
पानी की प्यास लगी मुझको, निर्मल जल मम मुख में डालो ।
लाओ बस देर लगाओ मत, मेरी ये अन्ताज्ञा पालो ॥
स्वर्ण पात्र में डालकर, लाया निर्मल नीर ।
लेकिन ग्रहण किया नहीं, बोले धरकर धीर ॥
अर्जुन ही मेरे मन माफिक, अति निर्मल नीर पिलायेगा ।
जिसने सिरहाना दिया मुझे, वो ही मम प्यास बुझायेगा ॥
सुन बचन पार्थ ने हर्षित हो, कर में गाँडीव धनुष धारा ।
भीषम के दक्षिण दिश जाकर, भूमी में वरुण बाण मारा ।
छुटते ही बान पाताल बिधा, निकला शुभ गंध सहित पानी ।
उस जल के मुख में जाने ही, होगई भीष्म की मनमानी ॥
स्वस्थिर हो कुरुराज को, किया फेर उपदेश ।
बेटा क्रोध बिसार कर, सुन मेरा आदेश ॥
ये मेरी अंतिम इच्छा है, ये रन बस आज निबट जाये ।
भाई से भाई बैर छोड़, आनन्द से आज लिपट जाये ॥
सुख से जावे घर राजा गन, सब बैर भाव खो जाने पर ।
सुख शान्ति प्रजा में फैल जाय मेरी मृत्यू हो जाने पर ॥
रखलो भारत की लाज पुत्र, तज राग द्वेष करलो संधी ।
कुछ और बात मन में न गिनो, पाण्डव हैं तुम्हारे सम्बन्धी ॥
इस समय सूर्य दक्षिण में हैं, जब वे उत्तर में आवेंगे ।
तब ही हम ये शरीर तजकर, निज पुन्यलोक को जावेंगे ॥
यद्यपि हम इच्छा* मृत्यू हैं, ये पिता का है वरदान हमें ।
उतरायण रवि उत्तम गिनकर, रखने होंगे ये प्रान हमें ॥

---

* भीष्म को इच्छा मृत्यु वर किस प्रकार प्राप्त हुआ इसका कुल हाल पांडव हिस्से में छपचुका है सब पाठक देखलें ।

इसलिये हमारे चौतरफा, इक गहरी खाई खुदवादो।
दो एक सन्तरियों को यहाँ पर, पहरा देने को रखवादो॥

तजदेवें जब प्रान हम, करना दग्ध शरीर।
पर इस शैया से मुझे, अलग न करना वीर॥

जावो अब शीघ्र लौट जावो, संध्या होने को आई है।
होगये उदय नभ में तारे, चहुँदिश अंधियारी छाई है॥
यों कह भीषम खामोश हुये, मस्तक में प्राण चढ़ाय लिया।
यों शान्ति प्राप्ति करने के लिये, तन को निर्जीव बनाय लिया॥
भीषम के कहने के माफिक, दुर्योधन ने सब काम किया।
फिर सब वीरोंने कर प्रणाम, डेरों में जा आराम किया॥
पर भीषम के उपदेशों पर, कुरुपति ने जरा न कान किया।
उस उत्तम अमूल्य शिक्षा पर, भावी वश हो नहिं ध्यान दिया॥

आपहुँचे भूपाल जब, अपने अपने धाम।
वीर कर्ण ने भीष्म को, तब जा किया प्रणाम॥

पिछला सब वैर भुलायदिया, आंखों में आंसू भरलाये।
भीषम के सन्मुख बैठ गये, और रुधे कंठ से फरमाये॥
हे दादा मुझे क्षमा करना, मैंने दुर्वाक्य सुनाये हैं।
अनगिनत बार स्पर्धाकर, कई दुख तुमको पहुँचाये हैं॥
तुम सम त्यागी व उदार चित्त, दुनियां में और नहीं कोई।
मुझ सम मतिमन्द अभागा भी, होगा जग में न कहीं कोई॥

कर्ण बली के बैन सुन, हर्षे गंग-कुमार।
प्रेम सहित उर लाय कर, आशिष दई अपार॥

फिर कहा कर्ण अच्छे आये, मैं तुम्हें देखना चाहता था ।
तुम सम दानी योधा को लख, ये नेत्र सेकना चाहता था ॥
हे कर्ण इसमें सन्देह नहीं, तुम भी अतुलित बल वाले हो ।
सुर असुर विजय कर सकते हो, वो मस्त और मतवाले हो ॥
यदि अर्जुन के रक्षक गुपाल, होंते नहिं, तुम जय करलेते ।
चाहे सुरपति भि मदद करते, तो भी तुम मार भगा देते ॥
लेकिन हरि से रक्षित पांडव, हरगिज भी जीते जायँ नहीं ।
त्रिलोकी के सब योधा भी, जय पत्र उन्हों से पायँ नहीं ॥
इसलिए वीर मम वचन मान, दुर्योधन को तुम समझाओ ।
इस घोर युद्ध को बंद करो, आपस में सन्धी करवाओ ॥
मैं तुम्हें दुरवचन कहता था, इसलिये कि तुम कुछ दुख पाओ ।
दुर्योधन का संग साथ छोड़, पांडओं में जाकर मिल जाओ ॥
तुम हो कुन्ती के ज्येष्ट पुत्र, सब पांडव तुम्हरे भाई हैं ।
भाई से भाई लडे यदी, उसमें नहिं होत भलाई है ॥
कर दिया क्षमा मैंने तुमको, हो सुखी वीर अब जावो तुम ।
यदि कर सकते हो संधी तो, कर, देश की शान बचाओ तुम ॥
बोले रविनंदन करूँ मैं क्या, अब तो दादा लाचारी है ।
प्रण है कुरुपति संग रहने का, यदि तज दूँ तो मम ख्वारी है ॥

गाना

(तर्ज—सोहनी)

हे पितामह कर्ण ये मजबूर है लाचार है ।
प्रण को तजने के लिये हरगिज नहीं तैयार है ॥
क्योंकि निज मुख से प्रतिज्ञा फिर पलट जाते हैं जो ।
उनको दर्शन स्वर्ग के करने का ना अधिकार है ॥

जानता हू मै भी ये कुरुपति के ख्याल न ठीक हैं ।
पर मेरा प्रण होगया ममहेतु कारागार है ॥
फेर अर्जुन और मुझ में है शुरू से वैर भी ।
अस्तु हम में एकता होना भि अति दुश्वार है ॥
जीत तो सकता नहीं हूं हरि से रक्षित पार्थ को ।
लेकिन उसके हाथ से मरने में बेड़ा पार है ॥
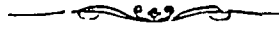
भीषम बोले हो गया, होनहार बलवान ।
अच्छा तो जाकर करो, लड़ने का सामान ॥
कर्ण वीर डेरे गये, नींद न आई रात ।
'श्रीलाल' ज्यों त्यों हुआ, आखिर कार प्रभात ॥

॥ इति शुभम् ॥

महाभारत ॐ सतरहवाँ भाग

अभिमन्यु वध

महाभारत — सतरहवाँ भाग

अभिमन्यु वध

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—

महाभारत पुस्तकालय, अजमेर.

दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर में मुद्रित.

तृतीय बार
१५००

सन् १९२९
सम्वत् १९८६

मूल्य
।=)

❀ स्तुति ❀

(राग मालकोस)

नमो वृज बिहारी नमो मन मोहन ।
नमामी दयासिन्धु तारन तरन ॥
न पाया किसी ने तेरे गुण का पार ।
हुये मूक ब्रह्मादि करके कथन ॥
दया दृष्टि जिसपै तेरी होगई ।
छुटा उसका तत्काल आवा-गमन ॥
पड़ी नाव मंझधार में पार कर ।
शरण हूं तेरी अय हे जन दुख हरन ॥

मङ्गलाचरण

रक्ताम्बर धर विघ्न हर, गौरीसुत गणराज ।
करना सुफल मनोर्थ प्रभु, रखना जन की लाज ॥
सृष्टि रचन, पालन, हरन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश ।
वानी, रमा, उमा सुमिल, रक्षा करहु हमेश ॥
बन्दहुं व्यास विशाल बुधि, धर्म धुरंधर धीर ।
महाभारत रचना करी, परम रम्य गम्भीर ॥
जासु वचन रवि जोति सम, मेटत तम अज्ञान ।
बन्दहुं गुरु शुभ गुण भवन, मनुजरूप भगवान ॥

* ॐ *

नारायणं नमस्कृत्य, नरंचैव, नरोत्तमम् ।
देवी सरस्वती, व्यासं ततो जय, मुदीरयेत् ॥

कथा प्रारम्भ

प्रात होत कुरुराज ने, किया एक दरबार ।
बना दिया गुरु द्रोण को, सेना का सरदार ॥
कर जोड़ चरन में शीश झुका, फिर बोला सुनिये गुरुराई ।
है आज से तुम्हरी रक्षा में, मुझ सहित सकल कुरुकटकाई ॥
हैं आप उच्चवंशी ब्राह्मण, युद्धी में भी लासानी हैं ।
धर्मज्ञ, राजनीतिज्ञ, यशी, इत्यादिक सब गुण की खानी हैं ॥
फिर हैं आचार्य कुरु कुल के, सेनप का पद स्वीकार करो ।
रिपु भय से पीड़ित सेना का, ले धनुषबाण उद्धार करो ॥
जैसे नैय्या पतवार बिना, या ज्यों स्यंदन बिन सारथि के ।
तैसे ही सेना रहे नहीं, पलभर भी बिन सेनापति के ॥
स्वामिकार्त्तिक करत हैं, जिमि सुर-सेन सहाय ।
तैसे ही मम सेन की, करो रक्ष द्विजराय ॥
ये सुनते ही कौरव दल ने, गुरु द्रोण का जै जैकार किया ।
सेनाध्यक्षों ने शीश झुका, आदर के सहित जुहार किया ॥
कर लिया ग्रहण आसन गुरु ने, फिर कहन लगे कुरुराई से ।
जबतलक रहेगी जां तन में, चूकूंगा नहीं भलाई से ॥
भीषम के बाद मुझे तुम ने, कर सेनप प्रेम दिखाया है ।
इसलिये तुम्हें वर देने को, मेरा हृदय हर्षाया है ॥
कहदो कौरव नरेश कहदो, मैं करूं कौनसा काम तेरा ।
जिससे तुमको आनंद मिले, और रहे जहां में नाम मेरा ॥

हर्षित हो कुरुईश ने, कहा सुनो आचार्य ।
एक बात चाहता हुं मैं, करो वही शुभ कार्य ॥
रथियों में श्रेष्ठ युधिष्ठिर को, रण में जा आप पकड़ लावें ।
मैं उसे कैद में रक्खूंगा, बस यही कृपा प्रभु दिखलावें ॥
उसको बस में करके गुरुवर, ये मत समझो मैं मारूंगा ।
बल्कि एक सुंदर कौशल से, मैं अपना भविष्य सुधारूंगा ॥
संग्राम भूमि में धर्मराज, यदि प्राणहीन होजावेंगे ।
तो ये निश्चय है अर्जुन फिर, हम सबका खोज मिटावेंगे ॥
इसलिये उन्हें बसमें करके, चौसर को फिर बिछवाऊंगा ।
जीतूंगा उन्हें कपट द्वारा, यों जंगल में भिजवाऊंगा ॥
दुर्योधन के हृदय को, पूर्ण पापमय जान ।
दुखी होय गुरु ने दिया, विघ्न भरा बरदान ॥
बोले, यदि पार्थ युधिष्ठिर की, रक्षा में जान लड़ावेंगे ।
तो सत्यरूप से कहते हैं, हम उन्हें पकड़ नहिं पावेंगे ॥
मैं अर्जुन का गुरु हूँ अवश्य, पर वो भी है कमज़ोर नहीं ।
शिव, इन्द्र से अस्त्र मिले उसको, अस्तू चल सकता ज़ोर नहीं ॥
कौशल द्वारा अर्जुन को यदि, तुम दूर हटाकर ले जाओ ।
तो निश्चय वीर युधिष्ठिर को, बस आज हि निज कैदी पाओ ॥
इतना कह गुरु द्रौण ने, किया व्यूह निर्मान ।
आज्ञा दी सब सेन को, चलो युद्ध मैदान ॥
सुनते हि हुक्म सेनावाले, हर्षित हो आगे बढ़ने लगे ।
भेरी मृदंग आदिक अनेक, जोशीले बाजे बजने लगे ॥
दुःशासन, कृप और कृतवर्मा, गुरु की बांई दिशि जाय रहे ।
दहिनी दिशि जयद्रथ, कालिंगभूप, शकुनी संग पांव बढ़ाय रहे ॥
सब से आगे नृप दुर्योधन, और कर्ण गर्जते जाते थे ।
उस तरफ पांडु दलवाले भी, रण हांक सुनाते आते थे ॥

कुछ देर बाद दोनों सेना, निज निज रिपु के सन्मुख आई ।
लड़ने का अवसर आते ही, सबके तनमें लाली छाई ॥
शंख बजा कर द्रौण ने, किया धनुष सन्धान ।
छांट छांट रिपु सेन पर, लगे मारने बान ॥
होगया भयानक युद्ध शुरू, भिड़गये परस्पर वीर बली ।
पटगई भूमि मृत पुरुषों से, शोणित की धारा निकल चली ॥
गुरु ने द्रौपद से रण ठाना, सहदेव पै शकुनी जा टूटे ।
कृतवर्मा और सात्यकी के, आपस में खूब तीर छूटे ॥
रविनन्दन अर्जुन सन्मुख आ, धनु तान बान बरसाने लगे ।
अर्जुन भी कट्टर शत्रू लख, अति पैने तीर चलाने लगे ॥
बलवीर शल्य ने गदा उठा, धावा कर दिया वृकोदर पै ।
चोटों का ऐसा शब्द हुवा, ज्यों गिरें शिलायें भूधर पै ॥
मतवाले मस्त हाथियों सम, दोनों रणहांक सुनाते थे ।
अपना अपना अवसर पाकर, चोटें भी करते जाते थे ॥
आखिर दोनों ने क्रोधित हो, एक साथ हि निज २ गदा उठा ।
आपस में ऐसा वार किया, दोनों हि गिर गये चक्कर खा ॥
पर भीम तुरत ही उठ बैठे, लख शल्य को बे सुध छोड़ दिया ।
कौरव सेना की तरफ तुरत, अपने पावों को मोड़ दिया ॥
सिंहनाद कर वीर वर, लगे मारने मार ।
तनिक देर में सब कटक, हुई विकल बेजार ॥
सुन सेना का करुणा क्रंदन, गुरु ने सबको धीरज दीन्हा ।
कर क्रोध युधिष्ठिर की जानिब, शर तजते हुवे गमन कीन्हा ॥
काई सम पांडव सेन फटी, लख तेज करारे बाणों को ।
सन्मुख कोई भी टिका नहीं, सब लगे बचाने प्राणों को ॥
विध्वंस शत्रुओं का करते, झट धरमराज पर पहुंच गये ।
शर तान तान ऐसे मारे, कुन्ती सुत झांझर बदन भये ॥

मरगये चक्र रक्षक दोनों, घोड़े घायल हो भूमि गिरे।
ये सुधि मिलते ही भीमसेन, ले गदा गुरू से आय भिड़े॥
पर बस नहिं चला वृकोदर का, गुरु ने वो सूरत धारी थी।
जो निकट गया बल जान लेउ, उसके प्राणों की ख्वारी थी॥
वह गदा वाण धारा आगे, अपना कर्तव दिखला न सकी।
हर चन्द भीम ने चाहा पर, आचार्य पै विपता आ न सकी॥
ये भी घायल हो विकल हुये, मिल गई राह गुरुराई को।
जा पहुंचे निकट और भी ये, वध कर पांडव कटकाई को॥

कुरु सेना ये देखकर, हर्षित हुई अपार।
गुरूदेव के नाम की, बोलो जै जै कार॥

कोलाहल ऐसा मचा दिया, गुरु ने प्रण पूरा करडाला।
बंदी कर लिया युधिष्ठिर को, अगणित वीरों को वधडाला॥
अर्जुन ने भी ये खबर सुनी, बोले प्रभु से हे बनवारी।
ले चलो तुरत रथ भ्राता पै, आई उन पर विपता भारी॥

घुमादिया रथ कृष्ण ने, धनुष इन्होंने तान।
बेगिनती कुरुसेन पर, मारे तीक्ष्ण बान॥

ये युधिष्ठिर के सन्मुख, रिपु सेना के टुकड़े करते।
ज, अश्वों का तीरों द्वारा, निर्दयता से जीवन हरते॥
इस समय गुरू जा पहुंचे थे, बिल्कुल ही निकट युधिष्ठिर के।
इच्छा थी उन्हें हस्तगत कर, लेजाऊं निज रथ में धरके॥
इतने में अर्जुन ने आकर, करदिया शुरू शर बरसाना।
होगया मनोर्थ विफल गुरुका, कर क्रोध पार्थ से रण ठाना॥

इसी समय दिनमणि गये, अस्ताचल की ओर।
फिरे हर्ष से पांडु सुत, अपना कटक बटोर॥

ये था रण का ग्यारवां दिवस, हो विफल मनोरथ गुरु आये।
कुरुपति के सन्मुख जाने पर, ये बहुत हि मनमें शरमाये॥

फिर कहन लगे जबतक अर्जुन, नहिं दूर हटाया जावेगा।
खुद इन्द्र भी भूप युधिष्ठिर को, तबतक न पकड़ने पावेगा॥
मैंने तो खूब चेष्टा की, कर कैद भूप को लाने की।
पर अर्जुन के शरजालों ने, मेरी नहिं दाल गला ने दी॥
इसलिये कोई हिम्मत करके, अर्जुन को रण में ललकारे।
उसको रणभूमी से हटाय, लेजाय दूर फिर शर मारे॥
ऐसा करने से वीर पार्थ, उसके संग युद्ध मचावेंगे।
हम पांडव सेना में घुसकर, झट पकड़ भूपको लावेंगे॥

*** गाना ***

है अर्जुन अति धनुधारी, फिर कैसे हो विजय हमारी॥
याद करो कुछ खांडव बनकी, मेटी थी उसने क्षुधा अगन की।
सुरपति भी गये हारी॥ फिर कैसे०॥
एकबार फिर बल दिखलाकर, गंधर्वों के करसे छुड़ाकर।
रक्खी थी लाज तुम्हारी॥ फिर कैसे०॥
अरु जब गायें लाये थे हरके, तब भी अर्जुन से रण करके।
हारी थी सेना सारी॥ फिर कैसे०॥
इसके सिवा जो हैं जग सांई, गाते हैं जिनके गुण मुनिराई।
सारथि हैं वे मुरारी॥ फिर कैसे०॥
तातु धनंजय अरु यदुपति जब, रणसे हटाये जावेंगे तब।
पूरेगी आश तुम्हारी॥ फिर कैसे०॥

द्रोण गुरू के वचन सुन, उठे त्रिगर्त नरेश।
बोले मेरा प्रण सुनो, कौरव राज जनेश॥
कुन्ती नंदन अर्जुन मेरा, अपमान हर समय करता है।
सुन उसके कडुवे बचनों को, ये हृदय रात दिन जलता है।

आता है मुझको क्रोध बहुत, पर कभी सुयोग नहीं पाया।
बस धन्यवाद इस घड़ी को है, बदला लेने का दिन आया॥
कलके रणमें अर्जुन को मैं, आगे बढ़कर ललकारूंगा।
संग्राम क्षेत्र से दूर हटा, एकाँत जायकर मारूंगा॥
यों मेरा मन भी खुश होगा, और धर्मराज फँस जावेंगे।
दोनों कांटे नस जाने से, हम तुम सब मौज उड़ावेंगे॥
मैं कसम धर्म की खाता हूं, जो कहा है वह दिखला दूंगा।
या तो कल मैं हिं मरूंगा या, अर्जुन का खोज मिटादूंगा॥
इतना कह वीर सुशर्मा ने, बुलवा अपने पांचों भाई।
कह दिया पार्थ से लड़ने को, साजो अपनी सब कटकाई॥

कल अर्जुन को घेर कर, करें विकट संग्राम।
होवे हित कुरुराज का, जग में पावें नाम॥

होते हि भोर द्वादस दिन का, बज उठीं हजारों सहनाईं।
निज २ आयुध चमकाति हुईं, रण में दोनों फौजें आईं॥
जा अर्जुन निकट सुशर्मा ने, कर लाल नेत्र गुस्से से कहा।
यदि ताकत हो आगे आओ, मैं लड़ने को ललकार रहा॥
इतना कह कर रण भूमी तज, इसने दक्षिण दिशि गमन किया।
बस अर्जुन ने शीघ्र आय, श्री धर्मराज को नमन किया॥
बोले भाई आज्ञा दे दो, त्रिगर्त नरेश बुलाता है।
इसलिये युद्ध करने के लिये, अर्जुन उस ओर सिधाता है॥
जो मुझे युद्ध में ललकारे, निश्चय उससे संग्राम करूं।
चाहे वह स्वयं काल ही हो, लेकिन नहिं पीछे कदम धरूं॥

धर्मराज कहने लगे, फिर जाना हे वीर।
मेरी रक्षा की प्रथम, करो शीघ्र तदबीर॥

गुरुवर ने मुझे पकड़ने की, कुरुपति से सोगंद खाई है।
बिन इसका यत्न किये तेरी, जाने में नहीं भलाई है॥

सुन वचन भूप के अर्जुन ने, झट सत्यजीत को बुलवाया ।
उसको रक्षा का भार सौंप, भूपति को ऐसे समझाया ॥
इसको अपना रक्षक समझो, ये गुरु से युद्ध मचायेगा ।
ये जिन्दा है तब तलक कोई, तुमको न पकड़ने पायेगा ॥
यदि दैवयोग से ये योधा, गुरु के द्वारा मारा जावे ।
तो तुम डेरों में चल देना, चाहे कोई भी ठहरावे ॥

इतना कह अर्जुन बली, भूखे सिंह समान ।
चले त्रिगर्तों की तरफ, धनुष कान लग तान ॥

जब त्रिगर्तियों ने यं देखा, अर्जुन इकले ही आते हैं ।
और कृष्ण सारथी बने हुये, फुरती से रथ दौड़ाते हैं ॥
सब लगे कूदने हर्षित हो, तालियें बजाकर शोर किया ।
धावा करने के लिये तुरत, अपना सब कटक बटोर लिया ॥
अर्जुन ने इन्हें अनंदित लख, यों कहा कृष्ण में ध्यान धरो ।
इन मरने वाले लोगों के, आनंद का तो अनुमान करो ॥
अपनी मृत्यु नजदीक देख रोने के बदले हंसते हैं ।
देखो तो किस बेफिकी से, ये ताली बजा उछलते हैं ॥
इनके हंसने का सबब एक, आया है ध्यान में हे स्वामी ।
"रण भूमी में जीवन तजकर, हम स्वर्ग के होंगे अनुगामी" ॥
यों कहते हुये वीर अर्जुन, इनकी सेना के निकट गये ।
इस जोर से देवदत्त फूंका, सारे त्रिगर्त्त थर्राय गये ॥

थरथरवत सेना हुई, हवा हुआ सब जोश ।
इस कठोर रव अश्व भी, हुये तहां गत होश ॥

कुछ देर बाद आपा संभाल, सबने एक साथ तीर मारे ।
अर्जुन ने अपने बाणों से, सब टुकड़े टुकड़े कर डारे ॥
फिर भी कर क्रोध त्रिगर्तवीर, अनगिनत तीर छोड़ने लगे ।
अर्जुन व देवकीनंदन का, चोटों से तन फोड़ने लगे ॥

ज्यों बूंदें गिरें सरोवर में, या फूलों पर भँवरे धावें।
बस ऐसे ही बेगिनती शर, अर्जुन के स्यंदन पर आवें॥
क्रोध हुवा पार्थ को, किया कठिन संधान।
काटे उनके तीर सब, फिर मारे निज बान॥
दमभर में इनके तीरों ने, सब सेना को विचलाय दिया।
कटगये कई हाथी घोड़े, बीसों को मृतक बनाय दिया॥
सावन भादों की झड़ी सरिस, वो झड़ी लगाई बाणों की।
कंपायमान सब शत्रु हुये, सबको पड़गई निज प्राणों की॥
सोचा सबने यदि यहां रहे, तो निश्चय मारे जावेंगे।
इसलिये चलो कुरुसेना में, वहां चलकर प्राण बचावेंगे॥
सभी वीर यह सोचकर, भागे जान बचाय।
देख सुशर्मा क्रोध से, बोला होठ चबाय॥
हे वीरवरों धिक्कार तुम्हें, तुम सच्चे क्षत्रि कहाते हो।
रण में कायरता दिखलाकर, क्यों कुल में दाग लगाते हो॥
ये काला मुंह दुर्योधन के, सन्मुख लेजाते शरमाओ।
अर्जुन से घोर युद्ध करके, बस उऋण धर्म से हो जाओ॥
यदि जीतोगे यश पाओगे, जो मरे तो स्वर्गवास होगा।
यदि भागे नर्क सिधाओगे, सब संचित पुन्य नास होगा॥
हमने दुर्योधन के सन्मुख, लड़ने की सौगंद खाई है।
वो अवश्य पूर्ण करनी होगी, भागे से नहीं भलाई है॥
एकत्रित हो संगठन बना, हम तुम सब मिलकर मार करें।
कर मध्य में कृष्ण धनंजय को, चौतरफा से बौछार करें॥
उत्तेजित हो वीर सब, आये वापिस लौट।
सबने मिलकर एकदम, की तीरों की चोट॥
तज जीवन आश कुपित होकर, सबने बेगिनती शर छोड़े।
छिपगया पार्थ का रथ सारा, घायल होगये सभी घोड़े॥

यहां तक अर्जुन और बनवारी, आपस में देख न पाते थे ।
शर वृष्टी से दोनों योधा, बस घायल होते जाते थे ॥
ये लख वायव्य अस्त्र लेकर, तत्काल पार्थ ने चला दिया ।
उसने क्षण में सब तीरों को, कर तित्तर बित्तर उड़ा दिया ॥

श्याम घटा को चीर कर, प्रगटे जैसे भान ।
त्योंही निकले एकदम, पार्थ और भगवान ॥

इस समय कृष्ण ने रास थाम, रथ हांकन कौशल दिखलाया ।
चक्कर देदिया कभी रथ को, कभि आगे पीछे दौड़ाया ॥
ये देख धनंजय खुशी हुये, झट तीव्र बाण छोड़ने लगे ।
सिर, पैर, हाथ योधाओं के, बेदर्दी से तोड़ने लगे ॥
भागई काम आधी सेना, कुछ घायल हो बेहोश हुई ।
कुछ काल समान पार्थ को लख, डर के मारे गत जोश हुई ॥
ये देख सुशर्मा जान बचा, रथ दौड़ा रण से हवा हुवा ।
उसका दल भी दुर्योधन की सेना की जानिब रवां हुवा ॥

हर्षित हो श्रीकृष्ण ने, रथ को दिया घुमाय ।
चले युधिष्ठिर की तरफ, जय का शंख बजाय ॥

ये कुछ ही आगे आये थे, इतने में एक आवाज आई ।
"मुझ से लड़ कर आगे जाना, बस रोको रथ हे यदुराई" ॥
सुनते हि शब्द आंखें उठाय, झट लगे देखने गिरधारी ।
और जान लिया भगदत्त भूप, आ रहा लिये सेना भारी ॥
बोले अर्जुन से मनमोहन, हे वीर तुरत धनुबान गहो ।
रिपु सन्मुख रथ लेजाता हूं, तुम रण करने को सजग रहो ॥
यों कह प्रभु ने स्यंदन हांका, अर्जुन ने धनु ज्यायुक्त किया ।
टंकारा उसको बार बार, शत्रू का बहरा बना दिया ॥
लख इन्हें सैकड़ों वीर चले, आगये शस्त्र को चमकाते ।
मारो पकड़ो रथ चूर्ण करो, इत्यादिक बातें फरमाते

देख घटा सम शत्रु दल, लिये हाथ हथियार ।
टक्कर सहने के लिये, हुये पार्थ तैयार ॥
मदमत्त हठीला युवा हस्ति, जैसे बनमें घुस जाता है ।
कर क्रोध लता और बेलों को, पल भर में तोड़ गिराता है ॥
बस इसी तरह कर भृकुटि कुटिल, घुस गया धनंजय रिपुओं में ।
फिरता था ऐसा अभय हुआ, ज्यों सिंह फिरे बन जीवों में ॥
पानी में चलती हुई नाव, पत्थर से टकरा जाने से ।
झट पैंदे में जा टिकती है, तिरती नहिं लाख तिराने से ॥
ऐसे ही अर्जुन की चोटें, खा खा कर सेना घबराई ।
लाखों उपाय करने पर भी, नहिं रुकी पीठ ही दिखलाई ॥
फटते ही रिपु सैन के, हुआ तुरत मैदान ।
जय पाने से पार्थ तब, गरजे सिंह समान ॥
भगदत्त क्रोध से गरमा कर, एक वृहत हस्ति पर चढ़ दौड़ा ।
फुरती से दांत किट किटा कर, एक तीव्र बाण इन पर छोड़ा ॥
अर्जुन ने उसको काट दिया, ये देख उसे गुस्सा आया ।
अपने मतवाले हाथी को, झट अंकुश दे सन्मुख लाया ॥
लखा पार्थ ने पर्वत सम, हाथी शिर पर दौड़ा आता ।
चंघाड़ से रथ के घोड़ों का, सब होश हवा होता जाता ॥
तब एक साथ कई तीर चला, कुंजर के मस्तक पर मारे ।
घायल होगया शीश उसका, बह चले खून के परनारे ॥
हो क्रोधित भगदत्त ने, छोड़े तीर अपार ।
अर्जुन अरु गोपाल के, हुये बदन के पार ॥
घायल होने से अर्जुन के, आगई शिथिलता हाथों में ।
ये देख और भी शर नृप ने, मारे दोनों के माथों में ॥
फिर अपने हाथी को बढ़ाय, कपिध्वज रथ के ऊपर आया ।
तब प्रभु ने रथ के घोड़ों को, दाहिनी तरफ को दौड़ाया ॥

अर्जुन ने उस हस्ति का, काट दिया तनु त्राण ।
अवनीपति भगदत्त के, मारे तीक्ष्ण बाण ॥
उस योधा ने शक्ती लेकर, अर्जुन के मस्तक पर मारी ।
होगया मुकट टेढा इनका, और चोट भी लगी बहुत भारी ॥
झट किरीट को सीधा करके, बोले बस खबरदार होजा ।
सुर पुर जाने के लिये दुष्ट, अब शीघ्रहि तू तयार होजा ॥
जग में जीवित नहिं रह सकता, मम मुकट को सरकाने वाला ।
बस डाल दृष्टि इस दुनियां पर, तब कूंच शीघ्र होने वाला ॥
मुसकाया भगदत्त नृप, सुन अर्जुन की बात ।
बोला ऐ नादान क्यों, मुझको डर दिखलात ॥
नालायक मैं तुझको यहां पर, बच्चों सम खेल खिलाता हूं ।
तेरी चोटें खाने पर भी, मन में नहिं गुस्सा लाता हूं ॥
रण में, मैं यदी मचल जाऊं, तिरलोकी भस्म बना डालूं ।
ब्रह्मा, विष्णू शिव आदिक को, मिट्टी में तुरत मिला डालूं ॥
आगया काल तेरा समीप, उसको मेरा बतलाता है ।
ले संभल यहां मैं मरता हूं, या तू यमलोक सिधाता है ॥
इतना कह वैष्णव अस्त्र उठा, मंत्रों द्वारा अभिमंत्रित कर ।
कर क्रोध जोर से छोड़ दिया, अर्जुन की छाती को तककर ॥
थी इस अस्तर की काट नहीं, ये पार्थ का ओज मिटा देता ।
यहां तक त्रिलोकी को सपुरुष, ये भस्मीभूत बना देता ॥
भगदत्त नरेश इसी के बल, अर्जुन को तृण सम गिनता था ।
इसके बाणों पर ध्यान न दे, दुरवचन सुनाय उछलता था ॥
पर जिसका रक्षक प्रभु होवे, उसका क्या मृत्यु बिगाड़ेगी ।
किस तरह लोमड़ी सन्मुख जा, धरती पर सिंह पछाड़ेगी ॥
दैवयोग से अस्त्र वो, लगा कृष्ण के आय ।
भक्त हेतु भगवान तब गिरे मूर्छा खाय ॥

शर की मर्यादा रखनी थी, इसलिये असुभ गोपाल हुये ।
ये देख पार्थ के गुस्से से, बस दोनों लोचन लाल हुये ॥
बोले ओ दुष्ट ठहरजा तू, सब तेरा होश भुलाता हूं ।
प्रभु को वेहोश बनाने का, हे पापी मजा चखाता हूं ॥
इतना कह गांडीव को, कानों तक झट तान ।
कुंजर के सिर पर दिया, तेज करारा बान ॥
जिस तरह जोर से गिरने पर, पर्वत में वज्र समाता है ।
या तेज दौड़ता हुआ सर्प, बिल में झटपट घुस जाता है ॥
वैसे ही अर्जुन के शर ने, मस्तक को फोड़ प्रवेश किया ।
हो गया विकल वो हस्ति बहुत, मुख द्वारा प्रगट कलेश किया ॥
गिरगया भूमि में दांत रगड़, हिल गया समर मैदां सारा ।
लख भौंचक्का सा राजा को, उसके भी एक तीर मारा ॥
छुट पड़ा हाथ से धनुष बान, भगदत्त वीर वेजान हुये ।
हरि जागे अर्जुन खुशी हुये, देवों में यश के गान हुये ॥
फिर निज सेना की तरफ, दीन्हा रथ दौड़ाय ।
जहां गुरु अति क्रोध से, रहे बाण बरसाय ॥
अर्जुन के दूर निकलने पर, गुरु ने व्यूह का निर्मान किया ।
निज प्रण अनुसार युधिष्ठिर को, लाने के लिये पयान किया ॥
होगया शुरू घनघोर युद्ध, आपस में अतिशय तीर चले ।
जिनकी चोटें खा सुरपुर को, अनगिनत वीर रणधीर चले ॥
जो पांडव कटक गुरुजी के, बढ़ने में विघ्न मचाती थी ।
लाखों तीरों द्वारा उनका, सारा श्रम वृथा बनाती थी ॥
वो गुरु के क्रोधित होते ही, घबराकर तेरह तीन हुई ।
नामी २ वीरों की तहां, दुख से आकृती मलीन हुई ॥
जा पहुंचे गुरु द्रौण तब, भूप युधिष्ठिर पास ।
सत्यजीत दौड़े तभी, तज जीवन को आस ॥

आते ही तीव्र बाण द्वारा, घोड़ों का बदन छेद डाला ।
सारथि के हृदय को तक कर, फुरती से एक तीर मारा ॥
फिर रथ बांई दिशि लेजा कर, गुरुवर की ध्वजा काट डाली ।
ये लख इनके सारे तन में, गुस्से से झट छाई लाली ॥
मारे दस बाण कलेजे में, लेकिन न सत्यजीत घबड़ाये ।
उल्टे क्रोधित हो धनुष चढ़ा, कई तीर गुरू पर बरसाये ॥
आखिर उनका कट गया धनुष, तब बान चला गुरुराई ने ।
झट उड़ा दिया सिर भूमि गिरे, पर आह न करी नरराई ने ॥
तब पार्थ के उपदेशानुसार, रण छोड़ युधिष्ठिर हवा हुये ।
यों शिकार करसे गया देख, आचार्य क्रोध से आग हुये ॥

रिपु सेना के चौतरफ, बनादिया शर जाल ।
चिकट मार मारन लगे, हुये वीर बेहाल ॥

इतने में अर्जुन आपहुंचे, पांडव सेना हर्षाय गई ।
अब कटक भूप दुर्योधन की, घबराय गई थर्राय गई ॥
अर्जुन ने निज बाणों द्वारा, गहरा आतंक मचाय दिया ।
कौरव सेना के वीरों को, कर घायल असुध बनाय दिया ॥

व्याकुल हो गुरुराज ने, संध्या आई जान ।
अपना कटक बटोरकर, तजा युद्ध मैदान ॥
दुखी हुवा कौरवपती, लख नितप्रति की हार ।
हुआ क्रोध आचार्य पर, उसको बेशुम्मार ॥

बड़बड़ करता वहां चला गया, अपने मित्रों को संग लेकर ।
जिस डेरे में आचार्य द्रोण, बैठे थे उत्तम आसन पर ॥
कर प्रणाम सन्मुख बैठ गया, और बोला लोचन लाल बना ।
हे गुरु आपके होते भी, मम सेना का क्या हाल बना ॥
पिटती है कौरव कटक रोज, वे दुष्ट जीतते जाते हैं ।
उनका न बाल बांका होता, मम वीर छीजते जाते हैं ॥

सुनता हूं नितप्रति संध्या को, उनकी ही जयध्वनि गुरुराई ।
है इसमें किसका दोष प्रभू, कुछ करो विचार चित्तलाई ॥
जिस दिन से उन भीषणप्रतिज्ञ, दादा भीषम धनुधारी का ।
भारत के तेजस्वी सूरज, बलवान बाल ब्रह्मचारी का ॥
होगया पतन, उस ही दिन से, हम शरण आपकी आये हैं ।
और आप समझते हैं हमको, मानो हम कोई पराये हैं ॥
ऐसा विश्वासघात करना, हे गुरू न तुम्हें सोहाता है ।
ऐसा करने वाले नर को, जग में कलंक लग जाता है ॥
हो प्रसन्न तुमने मुझे, दीना था वरदान ।
पूरा करने का उसे, भुला दिया क्या ध्यान ॥
तुम चाहते आज युधिष्टिर को, अपना कैदी कर ले आते ।
क्या ताव पांडुवीरों की थी, जो तुम से लड़कर जय पाते ॥
राजा के सन्मुख जाकर भी, तुमने उस पर नहिं वार किया ।
क्या यही प्रतिज्ञा पालन है, क्या यही मेरा उपकार किया ॥
अर्जुन के बाण आपको नित, रण में पीड़ा पहुंचाते हैं ।
और आप उसे चेला गिनकर, हर बार तरह देजाते हैं ॥
तुम जैसे दृढ़ प्रतिज्ञा नर का, है काम ये बहुत बुराई का ।
उन पर तुम दया दिखाते हो, यहां बल घटता कटकाई का ॥

ॐ गाना ॐ

आपके बल पर हि मुझ को बस फकत विश्वास है ।
युद्ध में सब शत्रुओं को जीतने की आश है ॥
तुम सरिस बलवान योधा है नहीं कोई यहां ।
आप यदि चाहे तो पल में पांडवों का नाश है ॥
भीष्म तो अब हैं नहीं तुमने भि गुरु जो ढील की ।
तो वे फिर कर जायेंगे कौरव कटक का ग्रास है ॥

अस्तु पुरुषारथ दिखा मम सेन की रक्षा करो ।
ये सुयोधन दल सहित तुम्हरे चरन का दास है ॥

कहन लगे गुरुवर सुनो, दुर्योधन गुण खान ।
तेरे ही हित के लिये, लड़ा रहा हूं जान ॥

पांडुओं को मैं रणभूमी में, अपना कट्टर शत्रू गिनता ।
और खास तोर पर अर्जुन से, मैं आगे हो हो कर भिड़ता ॥
पर जहां जगतपति सारथि हैं, तहां कैसे काम बनाऊं मैं ।
उनसे रक्षित अर्जुन को किम, रण में पीड़ा पहुंचाऊं मैं ॥
रण चालाकी धरणीधर की, अतिशय पुरुषारथ अर्जुन का ।
इनसे बस मेरा चले नहीं, किम काम बने तेरे मन का ॥
तो भी तेरा हित करने में, मैं अपनी जान लड़ाऊंगा ।
जिस तरह बनेगा कल निश्चय, प्रण पूरा कर दिखलाऊंगा ॥
अर्जुन को एकबार फिर तुम, एकांत हटा कर लेजाओ ।
एकत्रित हो कौशल द्वारा, जैसे हो उसको अटकाओ ॥
कल करूंगा ऐसा व्यूह निर्मित, जो नहीं किसी से विध पावे ।
धस जाय जो उसमें वीर कोई, वो निश्चय मर यमपुर जावे ॥

चक्र व्यूह का महारथी, मरेगा कोई वीर ।
संशय तज स्थान जा, धार हृदय में धीर ॥

सुनते हि सुयोधन चला गया, सोया सुख से हर्षित होकर ।
होते हि प्रात हथियार बांध, होगया तैयार कमर कस कर ॥
संसप्तकों ने हिम्मत कर, अर्जुन को रण में ललकारा ।
ले उन्हें कुरुभूमी से हट, दक्षिण की तरफ पांव धारा ॥

कृष्ण अर्जुन से होगया, सूना जब मैदान ।
तब गुरु ने हर्षाय कर, बुलवाये सब ज्वान ॥
भारत की तुमुल लड़ाई का, ये दिवस तेरवां आया था ।
सूरज ने उदय होय रण में, अपना प्रकाश फैलाया था ॥
कौरव सेना में हलचल थी, एकत्रित होते जाते थे ।
गुरुवर फुरती से घूम घूम, उनको व्यूह बद्ध बनाते थे ॥
धीरे धीरे अस व्यूह बना, जिसका आकार चक्र सम था ।
थे सात कोट इस में जिनका, भेदन करना अति दुर्गम था ॥
हरएक कोट के द्वारे पर, एक एक खड़ा था महारथी ।
ऐसा दृढ़ था सुरपति तक की, तोड़न की उसे न हिम्मत थी ॥
पहले व मुख्य दरवाजे पर, गुरु द्रोण खड़े थे अड़े हुए ।
ऐसे दिखते थे जैसे हों, यमराज क्रोध में भरे हुए ॥
द्वार दूसरे पर खड़े, जयद्रथ सिंधूराज ।
अचल अहेरी की तरह, साज युद्ध का साज ॥
रविनंदन कर्ण उपस्थित थे, व्यूह के तृतियः दरवाजे पर ।
चौथे पर कृपाचार्य योधा, पंचम पर गुरुसुत पुलकाकर ॥
थे छटे द्वार पर भूरिश्रवा, सप्तम पर शोभित कुरुराई ।
भ्राताओं के संग डटे हुए, ज्यों उड़गण में हों निशिराई ॥
ऐसा दुर्भेद्य व्यूह रचकर, गुरु लड़ने को तय्यार हुये ।
लख उसे अनोखा अचरज मय, चारों पांडव लाचार हुये ॥
ये देख बहुत चिन्ताकुल हो, अपने वीरों को बुलवा कर ।
बोले यों धर्मराज उनसे, आंसुओं से आंखें गीली कर ॥
हे वीरों आज द्रोण गुरु ने, एक चक्र व्यूह निर्माण किया ।
उसको वीरों से रक्षित कर, हमसे रण का सामान किया ॥
किस तरह व्यूह तोड़ा जाता, ये क्रिया पार्थ ने जानी है ।
लेकिन वे यहां मौजूद नहीं, इसलिये हुई हैरानी है ॥

संसप्तगण उनको लेकर, दक्षिण की तरफ सिधाये हैं।
उनका आना है कठिन आज, ये सुनकर हम घबराये हैं॥
यदि तुममें से कोई योधा, उस चक्र व्यूह को भेद सके।
तब तो इसमें संदेह नहीं, इस पांडव दल का खेद घटे॥
वरना अपनी सारी महनत, बरबाद आज हो जायेगी।
अन उपस्थिती उन अर्जुन की, निश्चय कलंक लगवायेगी॥

उठो वीर हिम्मत करो, करो व्यूह का नास।
जिससे अपना दल नहीं, पावे रिपु से त्रास॥
सुनते ही सब कह उठे, महाकठिन ये काम।
चक्रव्यूह का आजतक, सुना न हमने नाम॥

होता ये कैसा व्यूह राजन, किस तरह बनाया जाता है।
कितना लम्बा चौड़ा होता, कहां मुख्य द्वार दरसाता है॥
जब इसका कुछ भी ज्ञान नहीं, फिर उसमें कैसे जावेंगे।
यदि हठ करके हम गये वहाँ, स्वानों सम जान गमावेंगे॥
वीरों की बातें सुनते ही, चिन्ता कुल धर्म नृपाल हुवा।
आकृती मलीन बनी फौरन, प्रस्वेदों से तर भाल हुवा॥
फिर कहा धनंजय के सिवाय, क्या इस सारे भूमंडल में।
है ऐसा कोई वीर नहीं, जो तोड़े चक्र व्यूह पल में॥

बोल उठे सहदेव तब, सुनो भूप धर ध्यान।
चार व्यक्तियों को फकत, है तोड़न का ज्ञान॥

भगवान कृष्ण, गुरुदेव द्रौण, बल वीर प्रद्युम्न, अर्जुन भाई।
बस येही चारों जानते हैं, व्यूह भेदन की सब चतुराई॥
हा! अर्जुन रूपी सिंह न लख, कौरव गीदड़ चिल्लाते हैं।
रवि का प्रकाश घट जाने से, नक्षत्र निकलते आते हैं॥
सुन वचन विकल भूपाल हुये, निज दल की हार दृष्टि आई।
रुक गया कंठ आंसू निकले, हृदय में निराशा छाई॥

बोले, गांडीव धनुर्धारी, हे अर्जुन वीर कहां हो तुम ।
होता है तुम्हरा श्रम विनष्ठ, जल्दी आ दुःख मिटाओ तुम ॥
हा! दल का आज तुम्हारे बिन, है सर्व नाश होने वाला ।
नहिं बचेगा इस व्यूह में फंसकर, कोई योधा रोने वाला ॥
हे विधना! कैसा दिन आया, किस बुरी घड़ी में व्यूह बना ।
महनत बरबाद हुई सारी, हा! दुःख शोक से हृदय भुना ॥

रक्षक पांडव कटक का, दृष्टि न कोई आय ।
कौरव दल की हांक सुन, छाती फटती जाय ॥

रण में मेरी हि हार होगी, जो ये पहिले मालुम होता ।
तो क्षत्रिय खून बहाने को, तय्यार कभी नहिं मैं होता ॥
हा! रिस्तेदारों के खूं से, होगई लाल भूमी सारी ।
तो भी रण का नहिं अन्त हुआ, नहि मिटी राज तृष्णा भारी ॥
अच्छा वीरों कुछ फ़िक्र नहीं, मेरी अन्तिम आज्ञा पालो ।
कस कमर खड़े हो जाओ तुरत, निज निज शस्तर सब चमकालो ॥
तुम वीर हो सच्चे क्षत्री हो, है खून पवित्र शरीरों में ।
रिपुओं को आज दिखादो तुम, कितनी ताकत है तीरों में ॥
जब तक हाथों में धनुष रहे, तन मांहि जब तलक प्राण रहें ।
तब तलक कौरवों के सिर से, टकराते तुम्हरे बाण रहें ॥
अवसन्न न हो शरीर जबतक, रिपु डेरों को शमशान करो ।
ठोकर से ठुकरा कर उनको, आगे बढ़ बढ़ कर जान हरो ॥
अति शक्ति हीन जब हो जाओ, तब करो विसर्जन तन अपना ।
इस जन्म भूमि पर धर्म हेतु, बलिदान करो जीवन अपना ॥
काला मुंह होने से पहिले, वीरों मरजाना अच्छा है ।
जय की आशा तो दुर्लभ है, इसलिये यही मम इच्छा है ॥

ॐ गाना ॐ

(तर्ज—है बहारे बाग दुनियां चन्द रोज ।)

धर्म पर बलिदान होना धर्म है ।
आर्य पुरुषों का यही सत कर्म है ॥
जिसने अवसर पर इसे पाला नहीं ।
वह बड़ा ही दुष्ट खल बेशर्म है ॥
प्राण के भय से दिखाना पीठ को ।
वीर लोगो के लिये दुष्कर्म है ॥
अस्तु रण में जाके दिखलादो सभी ।
क्षत्रियो का खून कितना गर्म है ॥

धर्मराज के बचन सुन, दुखी हुये सब वीर ।
अश्रुधार बहने लगी, वृत्ति हुई गंभीर ॥

इन वीरों में एक बच्चा था, शुभनाम था जिसका अभिमन्यू ।
ये वीर धनंजय का सुत था, था अति तेजस्वी रिपुदमनू ॥
सब को दुख में निमग्न लखकर, ये वीर केसरी खड़ा हुआ ।
बोला कर नमन युधिष्ठिर को, रणधीर जोश में भरा हुआ ॥
सन्ताप तुम्हारा महाराज, मुझ से नहिं देखा जाता है ।
कुरुओं की हठधर्मी लख कर, ये खून उबलता आता है ॥
नहिं आपके वाक्य सुने जाते, हे धर्मराज धीरज धरिये ।
उस चक्रव्यूह के नाशन की, इस बालक को आज्ञा करिये ॥
बच्चे की ऐसी बातें सुन, नरराई ने आंखें खोली ।
आश्चर्य दिखाते हुये तुरत, बोले उससे मीठी बोली ॥
हे बेटा बड़े बड़े योधा, उसको न तोड़ना जानते हैं ।
सुनते ही उसका विकट नाम, पीठें दिखलाना ठानते हैं ॥

तुम छोटे से बच्चे होकर, क्या दिखलाओगे चतुराई ।
पहले समझादो सुत कैसे, ये विद्या तुम्हरे हाथ आई ॥
अभिमन्यू कहने लगा, सुनो भूप चितलाय ।
क्योंकर ये विद्या लिली, कहता हूँ समझाय ॥
ये गाथा बहुत दिनों की है, मैं जबकि गर्भ में आया था ।
तब एक रोज मम माता का, जी बुरी तरह घबराया था ॥
उसका मन बहलाने के लिये, पितु ने कई कथा सुनाई थी ।
उसमें ये व्यूह भेदने की, सारी किरिया भी आई थी ॥
पितु माता को समझाते थे, मैं गर्भ में सुनता जाता था ।
चत्री विद्या को चत्रि पुत्र, बस याद भी करता जाता था ॥
पर शोक मुझे इतना हि रहा, पूरी विद्या न जान पाई ।
केवल प्रवेश किरिया सुनकर, माताजी को निद्रा आई ॥
इसलिये रीति वो सुनी नहीं, कैसे बाहिर आना होता ।
भीतर घुसकर फिर किस प्रकार, इस जाल को सुलझाना होता ॥
कहा युधिष्ठिर ने तुम्हें, नहीं है पूरा ज्ञान ।
इसीलिये वहां भेजते, दहलाती है जान ॥
अव्वल तो घुसना दुस्तर है, घुस गये तो कैसे आओगे ।
उन दुष्ट कौरवों के बेटा, निश्चय शिकार हो जाओगे ॥
तुम हो प्राणों से भी प्यारे, सुकुमार मृदुल तनवाले हो ।
पालन पोषण सुखमांहि हुआ, पांडव कुलके उजियाले हो ॥
हम तुमको उस व्यूह में इकला, हरगिज न कभी जाने देंगे ।
तक हम जिन्दा हैं जग में, तुम पर न आँच आने देंगे ॥
विकट रण पंडित हैं, फिर व्यूह अभेद्य बनाया है ।
पार्थ नहीं, तुम कच्चे हो, हा ! कैसा दुर्दिन आया है ॥
अभिमन्यू बोला मुझे, गिनो न तुम सुकुमार ।
चत्री सुत नहिं होयगा, वंश लजावन हार ॥

मैं प्रण करता हूं द्रौण हैं क्या, यम, इंद्र, वरुण भी आवेंगे ।
तो आज युद्ध में वे हरगिज, मुझ से न जीतने पावेंगे ॥
यदि सकल सुरासुर मिलकर भी, बन जावें चक्र व्यूह रक्षक ।
तो भी निश्चय तोडूं उसको, डसलूं वीरों को ज्यों तक्षक ॥
मैं महाबली अर्जुन सुत हूं, फिर वीर मात का जाया हूं ।
गुरुवर की चालाकी लखकर, मनमें अतिशय गरमाया हूं ॥
तुम आज देखना मम भुजबल, वीरों के होश भुला दूंगा ।
अन्याई कुरुओं को बधकर, भूमी पर आज सुला दूंगा ॥
लव कुश भी दोनों बच्चे थे, पर कैसा भुजबल दिखलाया ।
कपिसेन सहित श्री लक्ष्मण को, मय भरत शत्रुहन पौढाया ॥
फिर आप मुझे छोटा लखकर, क्यों फिक्र मंद होते जाते ।
नाहर के बच्चे भी जग में, डरपोकपना क्या दिखलाते ॥
कर बाण वृष्टि कौरव दलपर, मैं आज बहादूं खूंधारा ।
दुष्टों को कुल दुष्कर्मों का, सब मजा चखा दूं बल द्वारा ॥
क्षत्री के पुत्र शत्रुओं की, वृद्धी को देख नहीं सकते ।
हस्ती का रव सुन सिंहपुत्र, झटपट उस पर हमला करते ॥

बचपन में ज्यों राम ने, असुर कटक को मार ।
यज्ञ को विश्वामित्र के, रक्षा करी भुआर ॥

त्योंही कौरव सेना बधकर, मैं सारा कष्ट मिटाऊंगा ।
हे पिता आज्ञा दो जल्दी, बस व्यूह भेदने जाऊंगा ॥
गुरुवर ने ये सोचा होगा, अर्जुन उस ओर सिधाया है ।
पांडव सेना को बधने का, ये उत्तम अवसर आया है ॥
अनउपस्थिती में अर्जुन की, बस चक्रव्यूह बनावें हम ।
पांडव वीरों को मार मार, यमपुर की ओर पठावें हम ॥
पर आज उन्हें मालुम होगा, अर्जुन सुत कैसे लड़ता है ।
किस तरह मनोरथ पर उनके, मुझ द्वारा पाला पड़ता है ॥

बतलादूंगा किस तरह, लड़ते क्षत्री वीर ।
करो भरोसा पितु मेरा, ऐसे न होउ अधीर ॥
अभिमन्यू के बचन सुन, गये भीम हरषाय ।
कहन लगे भूपाल से, ऊंची गदा उठाय ॥
हे भ्रात, वीर अभिमन्यू को, रिपुओं का खून बहाने दो ।
महाबली द्रौण के रचे हुये, उस चक्रव्यूह में जाने दो ॥
इसकी जोशीली बातें सुन, सेना में बल संचार हुआ ।
जो पुरुष मृतकवत बैठा था, उसको अब जोश अपार हुआ ॥
अभिमन्यु की तन रक्षा का, मैं भार शीश पर लेता हूं ।
दो इसको जाने की आज्ञा, कर जोड़ प्रार्थना करता हूं ॥
जब एकबार इसके द्वारा, व्यूह का दरवाजा टूट गया ।
तो सब समझो कौरवदल का, सुख भाग्य सितारा फूट गया ॥
फिर तो हम उसमें घुस करके, शत्रुओं में प्रलय मचादेंगे ।
सेनापति का सारा मनोर्थ, चुटकी में नाश बनादेंगे ॥
हुक्म दिया महाराज ने, जाओ राज कुमार ।
निज माता के लाड़िले, अर्जुन प्राणाधार ॥
कर नमन भूप को अभिमन्यू, तत्काल सभा बाहिर आया ।
अपना स्यंदन सजवाने को, सारथि को शीघ्रहि बुलवाया ॥
रथ सजने की आज्ञा देकर, प्रस्तुत होकर रण करने को ।
वे पहुंचा डेरे में फौरन, निज प्राण प्रिया से मिलने को ॥
वहां जाकर लखा उत्तरा को, लवलीन है निजी विचारों में ।
मस्तक रक्खा है हथेली पर, है शान्ति अंग सुकुमारों में ॥
वे चलागया उसके समीप, फिर भी उस स्वर्ण मूर्ती के ।
आसार न कुछ दृष्टी आये, उस गहन विचार पूर्ती के ॥
उसको ध्यानावस्थित लखकर, वे तनिक देर चुपचाप रहा ।
अपने नेत्रों को सफल बना, धीमे सुर में उससे यों कहा ॥

प्राणप्रिया प्राणेश्वरी, प्राण वल्लभे प्रान ।
हो किस गहन विचार में, कहां लगाया ध्यान ॥
सुनते हि शब्द होगये भंग, सब विचार उस सुकुमारी के ।
क्षणभर में मुसकाहट छाई, चहरे पर राज दुलारी के ॥
तत्काल हि वो उठ खड़ी हुई, पति को भक्ती से नमन किया ।
फिर कहा धन्य ये घड़ी हुई, प्राणेश ने यहां आगमन किया ॥
हे प्राणनाथ, रण दिवसों में, मुझको नित दर्शन दिया करो ।
दासी का है अनुरोध यही, बस नितप्रति सुध लेलिया करो ॥
बैठो स्वामी इस आसन पर, कुछ देर ठहर वापिस जाना ।
कितने हि दिनों में आज कहीं, प्राणेश हुआ तुम्हरा आना ॥
प्राण प्रिया, इतना नहीं, आज मुझे अवकाश ।
सुख से कुछ बातें करूं, बैठ तुम्हारे पास ॥
गुरुदेव द्रोण ने आज प्रिया, एक चक्रव्यूह निर्माना है ।
नृप के सन्मुख उसको मैंने, भंग करने का प्रण ठाना है ॥
इसलिये मुझे अब विदा करो, प्रण पूरा कर जब आऊंगा ।
तब तुम्हें खूब हर्षित होकर, सुख से मैं गले लगाऊंगा ॥
सनतेहि वचन उस नारी का, सहसा दायां लोचन फड़का ।
आंखों से आंसू रवां हुये, कुछ चक्कर आया दिल धड़का ॥
ऐसे अपशकुनों को लखकर, वह राजसुता घबराय गई ।
दुख की छाया के पड़ते ही, वो छुईमुई कुम्हलाय गई ॥
घुटने पृथ्वी पर टेक दिये, कर जोड़ दृष्टि ऊंची करके ।
वह अपने स्वामी से बोली, आखों से अश्रु हटा करके ॥
हे अतुलित द्रव्य उत्तरा के, रण में मत आज सिधाना तुम ।
मुझ अबला पर कर दया नाथ, मत अपनी पीठ दिखाना तुम ॥
क्षत्रानी निज पति पुत्रों को, रणहेतु सजाती आई है ।
वीरों की वीर पत्नियों ने, नहिं कायरता दिखलाई है ॥

मेरा भी है कर्तव्य यही, हर्षित हो तुम्हें विदाई दूं ।
मैं भी क्षत्री की कन्या हूं, चाहती हूं जगत भलाई लूं ॥
पर प्राणनाथ, अपशकुन देख, मेरा हृदय थर्राता है ।
आत्मा, अतिही दुर्भावों का, बस आश्रय लेता जाता है ॥
इसलिये नाथ मत गमन करो, अपशगुन जाल फैलावेंगे ।
मुमकिन है मुझे हमेशा को, तुमसे अवकाश दिलावेंगे ॥

चाहे सारा सुख मिटे, मिले नर्क में थान ।
मुझे सभी मंजूर है, तुम मत करो पयान ॥
इतना कहकर उत्तरा, व्याकुल हुई अपार ।
रुका कंठ हिचकी बंधी, बही दृगन जल धार ॥

लख प्राणप्रिया की यदहालत, अभिमन्यू उसे उठाता है ।
उसका कोमल कर, करमें ले, मृदु वचनों से समझाता है ॥
प्रियतमा, प्राणप्यारी सुखदा, ये अश्रु बहाना ठीक नहीं ।
तुम सच्ची क्षत्राणी होकर, करती हो दुख, ये नीक नहीं ॥
ये कमलनेत्र वाले आंसू, मुझको संतपित बनाते हैं ।
एक वीर पत्नि के ये बिचार, मनको अति दुख पहुंचाते हैं ॥
क्षत्रानी का सब धर्म जान, फिर क्यों बनती नादान प्रिया ।
मैं रण में जाता हूं, खुश हो, सुख का लय सज सामान प्रिया ॥
तज शोक प्राणप्यारी बस अब, दे मुझे बिदाई जाने को ।
है ताब नहीं अपशकुनों में, मुझको कुछ दुख पहुंचाने की ॥
जिसके मामा भगवान कृष्ण, और पितु गांडीव धनुषधारी ।
फिर जिसके ताया महाबली, है रक्षक भीम गदाधारी ॥
फिर जो खुद भी बलशाली है, उसका अपशकुन करेंगे क्या ।
कुशगण गीदड़ के तुल्य होय, सिंहों की जान हरेंगे क्या ॥

ज्ञात तुम्हें प्राणाधिके, है ये सारी बात ।
दुर्योधन मदमत्त हो, मचा रहा उत्पात ॥

इन दुष्ट कौरवों ने हमको, कैसे संकट पहुंचाये हैं।
सब राज पाट धन धाम छीन, जंगल जंगल भटकाये हैं॥
जब तक इस सारे कुरुकुल का, उच्छेद किया नहिं जावेगा।
तब तक स्वपने में भी हमको, पूरा आनन्द न आवेगा॥
है धर्म क्षत्रियों का ये ही, रिपु का साहस नहिं बढ़ने दे।
हर समय दमन करता हि रहे, उसको नहि जोर पकड़ने दे॥
तेरा है मुझ पर प्रेम बहुत, इसलिये जीव तव घबराता।
मेरा बिछुरन लखकर प्यारी, अत्यन्त बिकल होता जाता॥
ढाढ़स दो अपने हृदय को, तुम बीर पत्नि कहलाती हो।
क्यों मुझे प्रतिज्ञा से हटाय, जग में अपयश दिलवाती हो॥
बोलो, जग में है प्यार बड़ा, या प्रण करके पूरा करना।
क्षत्री तन पा रण में लड़ना, या पड़े पड़े घर में मरना॥
क्या यही तुम्हारी इच्छा है, अपनी सौगन्द को तोडूं मैं।
सच्चे स्वधर्म से नेह हटा, और पाप मार्ग से जोडूं मैं॥

इतना कह कर चुप हुआ, अभिमन्यू रणधीर।
क्षात्र तेज से होगया, अति तेजस्वि शरीर॥

स्वामी की सच्ची बातें सुन, उत्तरा की कायरता भागी।
चहरा आभा से दमक उठा, मनमांहि धर्म प्रियता जागी॥
बोली, स्वामी सारे जग में, बस धर्म हि श्रेष्ठ कहाता है।
इस लोक और परलोकों में, बस यही काम में आता है॥
अनुसरन धर्म का करने में, मेरी सब याद भुलाओ तुम।
जाओ रण में सुख से जाओ, रिपुओं का खोज मिटाओ तुम॥
निर्विघ्न यात्रा पूर्ण होय, वो चक्रव्यूह तोड़ा जावे।
अन्याई दुष्ट पापियों का, तीरों से सर फोड़ा जावे॥
उत्पन्न प्रेम के होने से, मन में कायरता आई थी।
इसलिये ये सची क्षत्राणी, तज धर्म पापमें

अब झलक धर्म की पड़ते ही, होगया है दूर मोह सारा।
मेरा असली कर्तव्य है क्या, इस पर जम गया स्नेह सारा॥

ॐ गाना ॐ

हर्ष है सुःख है मुझको हे प्राणेश्वर सिधाओ तुम।
करो प्रण पूर्ण अपना क्षत्रियों सम यश कमाओ तुम॥
भूल जाओ मुझे, मम प्यार को, आराम को धरके
ध्यान कर्तव्य का चित मे फक़त अपने जमाओ तुम॥
अधर्मी, दुष्ट, अन्यायी, छली, पापी नरों को वध।
जन्म भूमी पै अपनी धर्म का झंडा उड़ाओ तुम॥
क्षत्रियों के लिये है युद्ध भूमी ही सुघड़ तीरथ।
प्रेम से दर्श कर, जीवन सुफल अपना बनाओ तुम॥
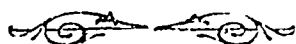
गमन करो प्राणेश अब, हर्षित हो सुख पाय।
प्रण पूरा होजाय जब, मिलना मुझ से आय॥
हृदय लगाकर पत्नि को, चलन लगा वो वीर।
माता भी आई तुरत, अपने सुत के तीर॥

कर प्रणाम अपनी माता को, सुत ने परतिज्ञा समझाई।
फिर नमित दृष्टि कर खड़ा हुवा, रण जाने की आज्ञा चाही॥
माता ने निज इकलौते को, सुकुमार नैन के तारे को।
पंकज सम लोचन वाले को, तेजस्वी प्राण पियारे को॥
रण में जाने को तत्पर लख, छाती से तुरत लगाय लिया।
आंखों से अश्रु निकलने ने, हृदय का भाव जताय दिया॥
ममता से मुख चुंबन कर मां, मस्तक पर हाथ फेरती थी।
अपने अति सुन्दर बालक को, हो रहित निमेष देखती थी॥

कुछ देर बाद सुध आने पर, बोली मात ये प्रन तेरा।
सारे त्रिभुवन में कर देगा, निश्चय उज्जवल जीवन तेरा॥
तुझ सम बालक के योग्य हि है, इतना ऊंचा साहस करना।
पर याद हृदय में रखना सुत, प्रण पूरा कर वापिस फिरना॥
तुम महारथी के लड़के हो, कुल में मत दाग लगा आना।
माधव की बहन सुभद्रा का, कहिं काला मुंह मत करवाना॥
मैंने तुम्हरा पालन पोषण, कर अपना दूध पिलाया है।
उस पय की लज्जा रखने का, हे पुत्र समय अब आया है॥
क्षत्री कन्या अपने सुत को, करती है प्रसव इसी कारन।
दुष्टों का खोज मिटा जग में, बस हो जावे कुल का तारन॥
दुनियां को आज दिखा देना, ये वीर सुभद्रा नंदन हैं।
जिनकी चोटें खाकर शत्रू, करते अति करुणा क्रंदन हैं॥
जाओ बेटा सुखसे जाओ, प्रभु तेरे रक्षक बनजावें।
मेरे प्रसाद से शस्त्र तेरे, रिपुओं के मस्तक बन जावें॥
तेरे बाणों आगे बेटा, रिपु विमुख होय बेजार रहे।
यदि रहे तुम्हारे सन्मुख तो, निज जाती का उद्धार रहे॥
महाराज जेष्ठ कुन्ती सुत सम, होजाय धर्म में पूर्ण मती।
और भीम गदा सम गदा तेरी, दृष्टी आवे रण में फिरती॥
तेरे सारंग की भीषणता, गांडीव से ज्यादा बढ़कर हो।
तलवार तेरी सहदेव नकुल, की तलवारों से बढ़कर हो॥

जाओ मेरे लाडिले, शीघ्रहि करो पयान।
रणभूमी ही क्षत्रि का, है असली स्थान॥

बस आज से मेरा नेह तजो, घर का आराम भूल जाओ।
सच्चा कर्तव्य पालन करने, जाओ बेटा सुख से जाओ॥
ये शरीर तो प्यारे बेटा, एक रोज छूट ही जावेगा।
यदि धर्म पर ये बलिदान हुआ, जीवन सार्थक बन जावेगा॥

इन वचनों को हृदय में रख, रण जाने का सामान करो ।
मैं टीका काढ़े देती हूं, प्रण पै जीवन बलिदान करो ॥

*** गाना ***

धर्म का दिल से तेरे ध्यान न जाने पाये ।
जान जाये मगर ये आन न जाने पाये ॥
क्षत्री का पुत्र है तू काम क्षत्रि सम करना ।
देखना कुल की कहीं शान न जाने पाये ॥
"देश द्रोही का हनन करना श्रेष्ठ कर्तव है ।"
आखिरी वक्त भी ये ज्ञान न जाने पाये ॥
सुनले, शत्रू न तेरी पीठ को रण मे देखें ।
दूध का मेरे कहीं मान न जाने पाये ॥

टीका काढ़ा मात ने, आज्ञा दी हर्षाय ।
चला अभिमन्यू तुरत, मा को शीश नवाय ॥
अपनी सेना में जा पहुंचा, ये वीर जोश में भरा हुआ ।
लख स्वामिकार्तिक सम उसको, सारा पांडव दल हरा हुआ ॥
जा चढ़ा शीघ्र अपने रथ पर, दे दिया हुक्म संचालक को ।
आनन्द सुरों तक में छाया, लख इस तेजस्वी बालक को ॥
आगे आगे इसका रथ था, सारा दल पीछे आता था ।
एक झुंड जोश फैलाने को, जोशीले वाद्य बजाता था ॥
इस तरह वीर चलते चलते, उस चक्रव्यूह सन्मुख आये ।
लख उसे सिंधु सम अन्तरहित, अपने मन में सब चकराये ॥
सेना सब तरफ खड़ी थी वहां, देता न द्वार था दिखलाई ।
कैसे व्यूह टूटेगा ये सुन, पांडव सेना अति चकराई ॥

अभिमन्यू ने घूम कर, खोजा पहला द्वार ।
देखा तहां खड़े गुरू, कुरुसेना सरदार ॥
शंख बजा अभिमन्यू ने, शुरू कर दिया युद्ध ।
दोनों दल भिड़ने लगे, हो आपस में क्रुद्ध ॥
कुछ देर खूब ही तीर चले वीरों ने बढ़ बढ़ कर मारा ।
जिससे तत्काल हि भूमी पर, बह निकली शोणित की धारा ॥
होगई दिशायें पूर्ण शीघ्र, हाथी घोड़ों के हींसन से ।
हथियार परस्पर भिड़ने और, वीरों के करुणा क्रंदन से ॥
इस समय वीर अभिमन्यू ने, जो समर वीरता दिखलाई ।
उसको सम्पूर्ण बताने की, शक्ती न लेखनी ने पाई ॥
जिस समय वो अपना धनुष चढ़ा, कौरव सेना सन्मुख धाया ।
पंक्तियां नरों की भंग हुईं, मैदां होता दृष्टी आया ॥
जल की बूंदें बरसाती हैं, जिस तरह घटायें सावन की ।
तैसेही इसने क्रोधित हो, तहां झड़ी लगादी बानन की ॥
कब तीर निकाला कब ताना, कब छोड़ा कोऊ न लखपाता ।
जब बाण बेध जाता तनको, तबही सबको अचरज आता ॥
खा इसके तीरों की चोटें, फिरते थे हस्ति भयातुर हो ।
गिरते थे योधा कट कट कर, कुछ जान बचाते आतुर हो ॥
क्षण में भूमी पट गई, घायल हुये अनेक ।
आती थी रण हांक तहां, अभिमन्यू की एक ॥
कोई भी नहीं समर्थ हुवा, इसके रथ को अटकाने को ।
जो सन्मुख आया साज सजा, तत्काल हि यमपुर जाने को ॥
यों करता हुआ महा प्रलय, अपने तीखे तीरों द्वारा ।
जा पहुंचा प्रथम द्वार पै ये, गुरुवर को सन्मुख ललकारा ॥
अभिमन्यू का साहस लखकर, होगये अनंदित गुरुराई ।
पर उसकी नन्हीं उमर देख, कर दया कहा यों मुसकाई ॥

हे वीर सुभद्रा के नंदन, अर्जुन की आंखों के तारे।
क्यों व्यर्थ हि प्राण गंवाते हो, घर जाओ वापिस सुकुमारे॥
इस चक्रव्यूह में जो योधा, दुस्साहस कर घुस जायेगा।
मैं सत्यरूप से कहता हूं, जिन्दा न लौट फिर आयेगा॥
हे गुरु जब बन जायगा, चक्रव्यूह का चूर्ण।
तब ही इस अभिमन्यु का, प्रण होवेगा पूर्ण॥
इस चक्रव्यूह का आज गुरु, मेरे द्वारा वेधन होगा।
जो इससे मुझको रोकेगा, उसका मस्तक छेदन होगा॥
यदि मुझ से लड़ते डरते हो, तो हटकर दूर चले जाओ।
मेरे निर्दोषी धनुआं को, गुरु हत्या में मत लिपटाओ॥
यों कह अन गिनती तीर चला, गुरुवर के रथ को ढक डाला।
घोड़ों को घायल बना दिया, सारथि का जीवन हर डाला॥
साधारण से बालका, देख भयंकर कार्य।
रक्तवर्ण नैना हुये, गरजे द्रौणाचार्य॥
लेकिन उस बालक के आगे, गुरुदेव न बल दिखलाय सके।
हरचन्द इन्होंने चाहा पर, उसके रथ को न फिराय सके॥
बढ़ता हि गया स्यंदन आगे, हो गया भंग वो दरवाजा।
अभिमन्यू भीतर जा पहुंचा, ये लखकर पांडव दल गाजा॥
इस बालक के पीछे पीछे, पांडव सेना भी घुस आई।
दे हांक गदाधर कूद पड़े, चट मार मचादी भयदाई॥
सेना बिचलाता हुवा, अभिमन्यू सकुमार।
पहुंचा दूजे द्वार जहां, जयद्रथ था सरदार॥
लख इकले बालक को सन्मुख, वह सिन्धुराज मन रुकाया।
बोला ओ! अर्जुन के लड़के, क्यों अपनी जां खोने आया॥
यदि जीवन रखना चाहता है, इस जां से वापिस फिरजा तू।
कहता हूं मैं तेरे हित की, मम शरजालों में मत आ तू॥

सुन वचन सुभद्रा सुत हँसकर, बोला क्यों बात बनाता है।
यदि बल रखता है दुष्ट नीच, तो क्यों न उसे दिखलाता है॥
बन में मम मात द्रौपदी को, हरकर के ले जाने वाले।
बस ठहर बात ज्यादा न बना, ओ यमपुर को जाने वाले॥
मैं आज गर्व तेरा पापी, बाणों द्वारा खंडन करदूं।
जिस व्यूह द्वार पर खड़ा है तू, उसको बल से भंजन करदूं॥
तू मुझे बाल ही जानता है, पर खाल तेरी जब फूटेगी।
चक्कर खा भूमि गिरेगा जब, और जीवन आशा छूटेगी॥
तब भी तू बाल कहेगा या, मुझ को निजकाल कहेगा तू।
ले जान भागजा शीघ्र मूर्ख, वरना अति दुःख सहेगा तू॥

जयद्रथ क्रोधित हो गया, सुन बालक की बात।
दांत पीस अभिमन्यु के, पहुंचाई आघात॥

बे गिनती शर छोड़े लेकिन, इस वीर ने सब सहजहि काटे।
फिर इसने धन्वा पर चढ़ाय, कर क्रोध करारे शर छांटे॥
घायल हो गया सिंधु राजा, गिर गया भूमि पर चक्कर खा।
नफरत की एक दृष्टि ड़ाली, अभिमन्यू ने उसके ढिंगजा॥
फिर सोचा बेसुध योधा को, बधना वीरों का काम नहीं।
ऐसा करने वाले नर का, होता जग में शुभ नाम नहीं॥
यह सोच अगाड़ी रथ हांका, इतने में सिंधुराज जागा।
एक बालक से पिट जाने पर, ये बहुत हि पछतावन लागा॥
झट टूटा व्यूह सुधार लिया, होगया खड़ा फिर धनुष चढ़ा।
इतने में पांडव दल सारा, इस द्वारपाल से आय भिड़ा॥

पांडव जब जाने लगे, भीतर दूजे द्वार।
क्रोधित हो जयद्रथ ने, मारे बान अपार॥

फिर बोला दुष्टों आज नहीं, मुझ से तुम जय पा सकते हो।
जब तक जिन्दा है सिन्धुराज, नहिं तुम भीतर जा सकते हो॥

यदि दूध पिया कुछ माता का, तो आज वीरता दिखलाओ।
मैं तुम्हें वीर तब मानूंगा, जब भीतर आज चले जाओ॥
सुन वचन इन्होंने क्रुद्ध होय, हरचंद वीरता दिखलाई।
पर बस न चला कुछ जयद्रथ से, मिलगई धूल में चतुराई॥
शिवजी ने इसे दिया था वर, जब किया था तप इसने बनमें।
अर्जुन के सिवा पांडवों को, जीतेगा तू एक दिन रन में॥
किस्मत से इसकी आज यहां, नहिं हाज़िर वीर धनंजय था।
थे केवल चारों ही भाई, बस इसीलिये ये निर्भय था॥
अस्तु उस वर के कारण से, पांडओं की दाल न गलने दी।
गो इन्होंने वार अनेक किये, पर एक न इनकी चलने दी॥

भाग्य विधाता आज थे, कुरु दल पर संतुष्ट।
घुसने देता था नहीं, भीतर जयद्रथ दुष्ट॥

उस तरफ गुरू ने बन्द किया, इस व्यूह का पहला दरवाजा।
लख इन्हें मध्य में फसा हुआ, हर्षित हो कौरव दल गाजा॥
इसलिये वीर अभिमन्यू की, रक्षा कोई भी कर न सका।
दुर्भाग्य विवश हो वो बालक, एकला ही दल में जाय फंसा॥
कुछ आगे बढ़ अभिमन्यू ने, दृष्टी जब पीछे को फेंकी।
हरसू कौरव हि नज़र आये, नहिं पांडु कटक बिलकुल देखी॥
रण हांक वृकोदर की क्रम से, बस धीमी होती जाती थी।
दल बादल सम कौरव सेना, लड़ने को बढ़ती आती थी॥

बोला सारथि से तुरत, वो बालक गुणखान।
सूत हमारे वाक्य को, सुनो लगाकर कान॥

उस दुष्ट सिन्धु के राजा ने, ताया चाचा अटकाये हैं।
हम दोनों ही इस काल सरिस, विकराल व्यूह में आये हैं॥
लेकिन मन में धीरज धरना, तुम पर न आंच आने दूंगा।
जब तक है धनुष बाण कर में, नहिं जान कभी जाने दूंगा॥

जिस तरह प्रचंड पवन पल में, मेघों के टूक बनाती है ।
त्योंही तुम लखना शक्ति मेरी, रिपुओं का खोज मिटाती है ॥
जो पिता से विद्या पाई है, उसको मैं आज दिखाऊंगा ।
इकला होने पर भी सारथि, लाखों का नाम मिटाऊंगा ॥
जितनी चतुराई है तुममें, रथ हांक आज दिखला देना ।
मैं जहां जिस तरफ कहूँ तुरत, तुम उधर ही रथ दौड़ा देना ॥

इतना कह अर्जुन कुंवर, लगा छोड़ने तीर ।
जिनसे वीरों के वहां, घायल हुये शरीर ॥

रथ टूटे घोड़े मृतक हुये, गज की चिंघाड़ सुनाई दी ।
उस एक वीर की अतुल शक्ति, सौ वीरों सरिस दिखाई दी ॥
यों करता हुआ नष्ट सेना, पहुँचा तृतीयः दरवाजे पर ।
क्या देखा तहं धनुबाण लिये, रविनंदन कर्ण खड़े तन कर ॥
लख इसे कर्ण यों कहन लगे, तू धन्य धन्य तेरी माई ।
तूने इकला ही हो करके, क्या खूब वीरता दिखलाई ॥
लेकिन अब खैर इसी में है, तू अब यहां से वापिस फिरजा ।
मुझको जयद्रथ सम मत समझे, जा अर्जुन सुत मत प्राण गंवा ॥
मेरी टक्कर सहने लायक, दुनिया में केवल अर्जुन है ।
या उसका सखा चक्रधारी, वो कृष्ण देवकी-नंदन है ॥

मेरी क्रोधा अनल में, तू मत बने पतंग ।
जा निज माता पास जा, छोड़ युद्ध का ढंग ॥

मेरा है वैर धनंजय से, उसही से युद्ध मचाऊंगा ।
तुझ सम नन्हें बालक को वध, क्या नाम जगत में पाऊंगा ॥
हो क्रोधित अभिमन्यू बोला, रण में कायर ही बात करें ।
जो वीर हैं वे सन्मुख आकर, वैरी से दो दो हाथ करें ॥
अभिमान भूलजा सूतपुत्र, अर्जुन के सन्मुख लड़ने का ।
उसके लड़के के ही सन्मुख, तू नहीं समर में डटने का ॥

यदि जान बचा तू भगा नहीं, तो यमपुर आज पठादूंगा ।
मैं ही अर्जुन का प्रण पूरा, करके यहां आज बतादूंगा ॥
मृग का शिकार करने वाले, लख सिंह होश में जल्दी आ ।
बातों से काम न होगा अब, कुछ बहादुरी करके दिखला ॥
मेरी माताजी को तू ने, दुर्वचन सुनाये हैं मुख से ।
उसके प्रतिफल का एवज पा, तू आज मरेगा अति दुख से ॥

रक्षा कर व्यूह द्वार की, खूब कड़ाकर जान ।
छुटते हैं अब धनुष से, विषधर सदृश बान ॥
इतना कह अभिमन्यु ने, छोड़े तीर अनेक ।
कर्ण शरों से टूट कर, हुये खंड कई एक ॥

रविनंदन उसके तीर काट, फिर अपने शर छोड़ने लगे ।
उनको अभिमन्यु बीच ही में, निज बाणों से तोड़ने लगे ॥
तब एक साथ दस बाण चला, छोड़े रविसुत ने गरमा कर ।
बचते बचते भी पार्थ कुंवर, घायल हो गया चोट खा कर ॥
फुंकार मारने लगता है, जिस तरह सर्प दब जाने से ।
बस वही हाल इसका भी हुआ, तन के घायल हो जाने से ॥
कर क्रोध तेज बाणों द्वारा, कर दिया खंड रिपु शारंग को ।
घायल हो गये कर्ण योधा, व्याकुलता भई तुरंङ्गों को ॥
इनके बेसुध हो गिरते ही, रथ को सारथी घुमाय गया ।
पा विजय कर्ण सम योधा से, बलवीर बहुत हरषाय गया ॥
झट रथ हँकवा आगे पहुँचा, कौरव सेना को विचलाता ।
काटता भटों के हाथ पांव, हाथी घोड़ों को दहलाता ॥

चिल्लाई कुरुसेन जब, इसको चोटें खाय ।
कृपाचार्य आये तहां, अपना रथ दौड़ाय ॥

घनघोर युद्ध होगया शुरू, कृप ने लड़कर मुंह की खाई ।
बालक से पिट बेहोश हुये, रण कौशलता न काम आई ॥

जा पहुंचा पंचम द्वारे पर, थे द्वारपाल अश्वत्थामा ।
निज पिता द्रोणसम महाबाहु, धन्वी रणपंडित बल धामा ॥
रण हांक वीर बालक की सुन, अपना कोदंड उठाय लिया ।
बधने के लिये पार्थ सुत को, झट सन्मुख रथ दौड़ाय दिया ॥
इनके शर सब करदिये वृथा, बलवान सुभद्रा नंदन ने ।
फिर धनु को भी दो टूक किया, गुणखान सुभद्रा नंदन ने ॥
द्रोणी ने धनुष दूसरा ले, जब तक बांधी उस पर डोरी ।
तब तक इसने दो टूक किया, रह गई आस मन में कोरी ॥
होगया भंग तृतीयः धनु भी, फुरती लख गुरु सुत दंग हुये ।
घायल होगया शरीर सभी, रण रंग तुरत बदरंग हुये ॥
आखिर मुरझाय गिरे रथ पर, ले इन्हें सारथी हवा हुआ ।
जय शंख बजाकर अर्जुन सुत, आगे को जानिब रवां हुआ ॥

पहुंचा छटवें द्वार पर, जहां धार धनुतीर ।
रक्षा करते व्यूह की, भूरिश्रवा बलवीर ॥

जब भूरिश्रवा ने श्रवण किया, छोटे से अर्जुन बालक ने ।
तोड़े हैं व्यूह के पांच द्वार, भुजबल से रिपुकुल घालक ने ॥
जहां द्रोण, सिन्धु नृप, कर्ण बली, कृप अश्वत्थामा रक्षक थे ।
डसने के लिये शत्रुकुल को, जो महा भयंकर तक्षक थे ॥
उनको रण में लाचार बना, ये यहां सजीव चला आया ।
हैरत है इस नन्हें से ने, अर्जुन से ज्यादा बल पाया ॥
लेकिन मेरे सन्मुख आकर, ये शायद ही जिन्दा जावे ।
ये थका हुआ दृष्टी आता, अस्तू मुमकिन है पिटजावे ॥
मेरे बानों द्वारा यदि जो, ये रण में जान गंवायेगा ।
तो द्रोण कर्ण कृप आदिक से, मेरा रुतबा बढ़ जायेगा ॥

असगुनि भूरिश्रवा बड़ा, छोड़े कठिन नराच ।
पर तन पै अभिमन्यु के, तनिक न आई आंच ॥

सारे तीरों के खंड किये, फिर कृष्ण अपने शर बरसाये ।
खा चोट महाबल भूरिश्रवा, चक्कर खाते भू पर आये ॥
मिल गई राह अभिमन्यू को, जा पहुंचे सप्तम द्वार बली ।
मग में इतनी सेना मारी, खूं की धारायें निकल चली ॥
रक्षक था इस द्वार का, दुर्योधन दुर्बुद्धि ।
इसे देखते ही हुआ, अर्जुन सुत अति क्रुद्ध ॥
लख आर्य जाति के भूपों की, बलदानी के मुख कारन को ।
अभिमन्यू क्रोधित हो मन में, जा पहुंचा सन्मुख मारन को ॥
और कहा नराधम दुष्ट नीच, तैंने हा आफ़त ढाई है ।
तेरे ही दुष्कर्मों द्वारा, भारत में मची लड़ाई है ॥
मैं आज तुझे यमलोक पठा, करदूंगा बंद लड़ाई सब ।
हर्षेंगे आर्य पुरुष सारे, होवेगी नष्ट बुराई सब ॥
इस मृत्युलोक में तुझ समान, पापी का नहीं ठिकाना है ।
तेरे रहने के लिये मूर्ख, मैंने रौरव अनुमाना है ॥
आवेंगे यम के दूत आज, और तुझे पकड़ लेजावेंगे ।
रौरव की महा हुताशन में, उलटा करके लटकावेंगे ॥
ज़हरीली गुफ्तार सुन, हुआ सुयोधन लाल ।
बोला बस खामोश रह, ओ दुर्बुद्धी बाल ॥
मन में आता है मार तुझे, पृथ्वी पर सुला दिया जावे ।
नन्ही सी जिव्हया को मुख से, बस बाहर निकाल लिया जावे ॥
यों कहकर शर छोड़ने लगा, पर असर हुआ नहीं बाणों का ।
उलटा घायल हो जाने से, पड़ गया सोच निज प्राणों का ॥
जब देखा अब ये जीव मेरा, तन छोड़ भागने वाला है ।
अर्जुन सुत की शर धारा में, ये तन अब गिरने वाला है ॥
तब दुर्योधन नामर्दों सम, बालक से पिंड छुड़ा भागा ।
यों धिक्कार करसे गया देख, इसके चित्त मांहि क्रोध जागा ॥

इतने में कुरुईश सुत, लक्ष्मण पहुँचा आय ।
अभिमन्यू कहने लगा, इससे अति झुंझलाय ॥
कुरुपति के भागन का बदला, तुझ से ही आज चुकाऊंगा ।
यदि पिता हाथ नहिं लगा मेरे, सुत को ही मार गिराऊंगा ॥
लक्ष्मण बस नजर घुमाके तू, झट तकले भूमण्डल सारा ।
कौरव सेना चाचा भाई, आदिक सब अपना परिवारा ॥
मिलना होगा इन लोगों से, फिर तो यमपुर में ही तेरा ।
ले संभल तीव्र विषधर समान, आता है शर घातक तेरा ॥
यों कह धनुष चढ़ाय के, दिया शीश पर बान ।
लगते ही लक्ष्मण गिरे, खोकर अपनी जान ॥
उसको लख मृतक दुशासन तब, अर्जुन सुत के सन्मुख आया ।
लख क्रूर अधर्माचारी को, अभिमन्यू को गुस्सा छाया ॥
हंसकर बोला आ सन्मुख आ, घंटों से तुझे ढूंढता था ।
अब तक तू मुझ से छिपा हुआ, क्या नारी का पय पीता था ॥
मेरी माता की साड़ी को, खेंचा था तूने हाथों से ।
और दुख बलवीर वृकोदर को, पहुंचाया था कटु बातों से ॥
उन सब पापों का आज तुझे, वो दंड मिलेगा भयदाई ।
बस ठहर खड़ा रह दुष्ट वहीं, तेरे सर पर मृत्यू आई ॥
खींचूंगा तेरे बाल पकड़, दोनों हाथों को तोडूंगा ।
जिस बुरी नजर से कृष्णा को, देखा था वो भी फोडूंगा ॥
इतना कह अभिमन्यु ने, मारे बाण कराल ।
दुःशासन घायल हुआ, गिरा होय बेहाल ॥
ये लख अर्जुनसुत कहन लगा, मैं तेरा वध करता पापी ।
सारे तन को कर छिन्न भिन्न, जां बुरी तरह हरता पापी ॥
लेकिन प्रण है ये वृकोदर का, मैं दुःशासन को मारूंगा ।
उसके शोणित से कृष्णा के, रणमांहीं बाल संवारूंगा ॥

बस इसीलिये तजता हूं तुझे, जा दुष्ट डूब कर मरजा तू ।
अथवा आंचल में नारी के, जा छिपजा मुंह मत दिखला तू ॥
ये इससे ऐसा कहता था, इतने में शकुनी आ पहुंचा ।
तज इसे सुभद्रा का नंदन, उससे लड़ने को जा पहुंचा ॥
बोला आ पापी तेरा भी, सारा अभिमान मिटाऊं मैं ।
तुझ को भी और शत्रुओं सम, यमपुर की हवा खिलाऊं मैं ॥
गंधार नगर के ज्वारी खल, चौपड़ तैंने हि बिछाई थी ।
उन धर्मराज के सन्मुख आ, अपनी माया फैलाई थी ॥
डाले पासे कपट के, किया हमें कंगाल ।
तेरे टूक बनायेंगे, ये मेरे शर जाल ॥
शकुनी को इतनी ताब न थी, सह लेता इसकी बातों को ।
अस्तू कर क्रोध पार्थ सुत पर, झट पहुंचाई आघातों को ॥
पर रण कौशल अभिमन्यू का, था इतना ज्यादा बढ़ा बढ़ा ।
जिससे हँसते हँसते उसने, शकुनी को दिया शीघ्र घबड़ा ॥
फिर उसका वध करने के लिये, झट बढ़ा सुभद्रा का नंदन ।
तलवार उठा उसके रथ पर, जा चढ़ा सुभद्रा का नंदन ॥
हाथों से उसके बाल पकड़, चाहा तलवार चलाऊं मैं ।
ज्वारी का शीश अलग करके, तन को निर्जीव बनाऊं मैं ॥
इतने में आया याद इसे, ये तो शिकार सहदेव का है ।
इस पर मेरा अधिकार नहीं, ये खल अहार सहदेव का है ॥
ये जान हाथ को रोक लिया, फिर कहा दुष्ट लाचारी है ।
तेरा शोणित पीने को नहीं, उद्यत तलवार हमारी है ॥
कुछ दिनों और तू जिन्दा रह, चाचा से मारे जाने को ।
तेरे खूं के प्यासे उनके, खांडे की प्यास बुझाने को ॥
गिरा दिया यों कह उसे, मार हृदय में लात ।
हुआ असुध वो वीरवर, लगी बुरी आघात ॥

टूटा सप्तम द्वार भी, हुई प्रतिज्ञा पूर्ण।
वीरबली ने कर दिया, रिपुओं का मद चूर्ण॥
फिर किया इरादा फिरने का, बोला सारथि से मुसकाई।
हे सूत प्रभू की किरपा से, कुरुओं पर पूर्ण विजय पाई॥
क्या अच्छा होता इस व्यूह से, जानता निकलने की युक्ती।
पर फिक्र नहीं मैं कर लूंगा, बरिआई से अपनी मुक्ती॥
है अब भी तन में बल यथेष्ठ, तरकस है अब भी बाण भरा।
कर डालूंगा टुकड़े रिपु के, रथको अब घर की तरफ फिरा॥
लगा लौटने पार्थ सुत, जय का शंख बजाय।
लेकिन फिर कुछ फौजने, घेरा इसको आय॥
कर क्रोध सुभद्रा नंदन ने, वो अतुल वीरता दिखलाई।
रथ टूटे ध्वज होगये भंग, गज अश्वों की शामत आई॥
बस त्राहि २ सब जगह हुई, कुरुवीर धड़ाधड़ गिरते थे।
कुंडल समेत सिर कट कट कर, जहां तहां लुढ़कते फिरते थे॥
कर पीठ पार्थ सुत की जानिब, भागे योधा व्याकुल होकर।
दुर्योधन मन में रिसा गया, सेना को यों कटते लखकर॥
कहा कर्ण से जाय तब, बतलाओ कुछ चाल।
अभिमन्यू के हाथ से, है सेना बेहाल॥
सुन समाचार जी घबड़ाता, इस दिन की विकट लड़ाई का।
अर्जुन सुत ने बध डाला है, चौथा हिस्सा कठकाई का॥
कहते बुद्धी चकराती है, कर श्रवण प्राण ये रोगे हैं।
जिन जिन वीरों को दुनियां से, इस पार्थ कुंवर ने खोये हैं॥
मर गये भतीजे पुत्र मेरे, इस बालक से लड़कर भाई।
हा! महारथी भी विमुख हुये, लख बच्चे की रण चतुराई॥
जिस तरफ तको रण भूमी में, लहाशें हि दृष्टि में आती हैं।
सुन्दर २ महाराजों को, चीलें लड़ २ कर खा

सेना का हाल बेहाल देख, मस्तक मेरा चकराता है।
जहां देखो वहीं सिंह सदृश, अभिमन्यू हांक सुनाता है॥
लखकर भी इस बालका, महा भयंकर कार्य।
शिष्य पुत्र मन जानकर, बधत नहीं आचार्य॥
बल्की उसका वीरत्व देख, फूले नहिं अंग समाते हैं।
शर चोटें खाते हैं तो भी, वे धन्य २ फरमाते हैं॥
यदि ये विकराल सुभद्रा सुत, जलदी नहिं मारा जावेगा।
तो आज शाम होते होते, कुल कटक नष्ट हो जावेगा॥
इसलिये प्रयत्न करो जल्दी, रवि—नंदन इसके बधने का।
जो शाम हो गई तो फिर ये, नहिं कभी युद्ध में मरने का॥
कहा कर्ण ने वीर ये, बाल नहीं है काल।
अर्जुन से बढ़कर हुआ, ये अर्जुन का लाल॥
साधारण इसे समझता था, लेकिन अब मुझको ज्ञात हुआ।
जब मेरे इस कठोर तन पर, इस बच्चे का आघात हुआ॥
घायल हो गया तुरत ही मैं, हुशियारी से लड़ने पर भी।
इसके रथ को नहिं रोक सका, पूरी हिम्मत करने पर भी॥
दुनिया भर में इस के समान, योधा न कोई दृष्टी आता।
अर्जुन नित घटता जाता है, और ये दिन २ बढ़ता जाता॥
यदि सप्त महारथी एक साथ, अभिमन्यू पर चढ़ कर जावें।
तो मुमकिन है निज बल दिखला, इससे लड़कर जय पा आवें॥

* गाना *

कैसा बलिष्ठ वीर ये अर्जुन का लाल है।
सब को हरा के रण में दिखाया कमाल है॥
है धन्य इसकी मात सुभद्रा व पिता पार्थ।
जिनने कि शुभ महूर्त में पाया ये लाल है॥

देवों के भूप इन्द्र भी इसको न हन सकें ।
फिरता है रण में ऐसा कि मानो ये काल है ॥
कौरव कटक के इकले वीर से ये पार्थ सुत ।
हरगिज न मारा जायगा ऐसा कराल है ॥
धावा करें यदि एक साथ, सात महारथी ।
तो इसको जीत लेंगे ये मेरा ख्याल है ॥
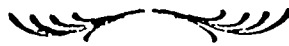
सुन कर कौरव राज ने, जमा किये रणधीर ।
शल्य राज, कृप, गुरु सुत, शकुनि दुशासन बीर ॥
कस कमर, आपभी खड़ा हुवा, रविनंदन भी तैयार हुये ।
यों सातों इससे लड़ने को, निज २ रथ पर असवार हुये ॥
जब इन्हें निकट आते देखा, वो बाल होगया अंगारा ।
भृकुटी चढ़गई धनुष सदृष, नफरत से इनको फटकारा ॥
हे ! हे !! निर्लज्ज महारथियों, हे ! पिटे हुये कायर पुरुषों ।
तुम चत्रि नहिं हो गीदड़ हो, हो श्वानों से बदतर नीचों ॥
तुम अभी हार कर भागे हो, सब शान आज ही चूर्ण हुई ।
क्या फिर भी मुझसे लड़ने की, इच्छा न तुम्हारी पूर्ण हुई ॥
तुम पिटे अभि तक अलग अलग, अब एक साथ लड़ने आये ।
चत्री योधा कहला जग में, क्यों ऐसे नीच ख्याल आये ॥
कुछ फिक्र नहीं मैं इकला ही, तुम सब लोगों को मारूंगा ।
पापिष्टों पैने बाणों से, तुम सब का हृदय विदारूंगा ॥
हे ! बीर कलंकों कसर न रख, पूरा पूरा बल दिखलाना ।
यदि चत्री हो तो भगना मत, मरजाना या बध के जाना ॥
पर उन दुष्टों ने नहीं, दिया तनिक भी ध्यान ।
चहुँ ओर से घेर कर, लई कमानें तान ॥

थी कई हजार फौज इम संग, बालक पर सारी घिरआई ।
इसके स्यंदन के चौतरफा, मारो मारो की ध्वनि छाई ॥
सेना थी मेघ घटा समान, धनुटंकोरें गर्जन ध्वनि थी ।
गिरते थे शर जल बूंदों सम, शर अनी तड़ित की चमकन थी ॥
परवत पर ओलों के समान, निज रथ पर शस्त्र बरसते लख ।
वो पुत्र सुभद्रा का मचला, रिपुओं के बुरे कार्य को तक ॥
बीजली की तड़प सरिस उसके, धनुवां ने शीघ्र रूप धारा ।
दावानल सम उत्पन्न हुई, उस योधा के शर की धारा ॥
होगये टूक रिपु बाणों के, सन्मुख न कोई योधा आया ।
जो बढ़ा अगाड़ी हिम्मत कर, उसको झट इसने पौढ़ाया ॥
चौतरफ बाण मारता हुवा, ये बनराजा सम फिरता था ।
जिसके सन्मुख जा ललकारा, वह होय अधमरा गिरता था ॥
सातों महारथि भी विकल हुये, रथ टूट किसी का चूर हुआ ।
मरगये किसी के घोड़े सब, सारथी किसी का दूर हुआ ॥

बस न चला तब वीर सब, भागे जान बचाय ।
तब इसने सब फौज के, टुकड़े दिये उड़ाय ॥

कुछ देर बाद ताजा दम हो, लेकर सेना भी साथ नई ।
वे फिर लड़ने को आ पहुँचे, फिर बालक ने फटकार दई ॥
धिक धिक भीरू पुरुषों तुमको, धिक्कार हजारों बार तुम्हें ।
पहुँचाते बार बार पीड़ा, निर्लज्जों मेरे वार तुम्हें ॥
तो भी अपना काला मुंह ले, मेरे सन्मुख आजाते हो ।
क्यों नहीं डूब मरते जल में, क्यों कुल में दाग लगाते हो ॥
आंखों से ओझल होजाओ, हैं तुम्हें मारना ठीक नहीं ।
कायर पुरुषों को वीरों का, रण में संहारना नीक नहीं ॥

फटकारा इतना इन्हें, फिर भी वे सब नीच ।
लगे चलाने शस्त्र निज, कर इसका रथ बीच ॥

फिर अभिमन्यू ने बल दिखला, इनका सब गर्व मिटाय दिया ।
कर छिन्न भिन्न सबके शरीर, लड़ने का होश भुलाय दिया ॥
भागे फिर जान बचाकर वे, फिर सन्मुख आ लड़ने लागे ।
इस तरह वीर वे सात वार, आये और पिटकुट कर भागे ॥
दुर्योधन को निज सेना में, जिन पर भरपूर भरोसा था ।
जिनकी हिम्मत से इस रण में, उसने जय पाना सोचा था ॥
उनकी बालक से हार देख, इसके मन में दुख विकट भया ।
आंखों में आंसू भरे हुये, ये गुरुदेव के निकट गया ॥
रण कौशलता निहारते थे, सुख से गुरुवर इस बालक की ।
अपने प्रिय शिष्य पार्थ सुत की, उस पांडु वंश के पालक की ॥

कहा सुयोधन ने गुरू, करता बाल अनर्थ ।
इसके सन्मुख सेन का, हुआ परिश्रम व्यर्थ ॥

नहिं शीघ्र कोई तदवीर हुई, तो सकल कटक नस जायेगा ।
गिन गिन कर हमको अर्जुन सुत, रण भूमी में पौढ़ायेगा ॥
जब से ये सिंह क्रुध होकर, इस चक्रव्यूह में आया है ।
पल भर भी मार मचाने से, ये वीर नहीं सुस्ताया है ॥
देखो ये शर छोड़ता हुआ, फिरता किस भांति सफाई से ।
इकला होने पर भी गुरुवर, नहिं दहलाता कटकाई से ॥

इसके बधने का गुरू, तुरत हि करो विचार ।
वरना इसके क्रोध से, होगा कुरु कुल चार ॥
मुसकाकर बोले गुरू, सुन राजा धर ध्यान ।
जब तक है इस वीर के, कर में तीर कमान ॥

यदि सहस्र महारथि आजावें, तो भी ये मार न खावेगा ।
इसलिये धनुष काटो इसका, तब ही ये बस में आवेगा ॥
ये सुन दुर्योधन चला गया, फिर सेना ले रण की ठानी ।
लेकिन इस बच्चे के सन्मुख, होगया जोश पानी पानी ॥

इसने बाणों से समर क्षेत्र, सब रुंड मुंडमय करडाला ।
हाथी घोड़े सारथि वधकर, वीरों का जीवन हरडाला ॥
लेकिन अब इसकी भी ताकत, पल पल में घटती जाती थी ।
चौतरफा से शर लगने से, तन पीड़ा बढ़ती आती थी ॥
उस तरफ सात थे महारथी, अनगिनती योधा संग लेकर ।
इस तरफ वीर ये इकला था, लड़ता था केवल भुजबल पर ॥
सब तन से खून टपकता था, फिर भी न भीरुता दिखलाई ।
रक्खी लज्जा मां के पय की, कुल कौरव सेना बिचलाई ॥
आखिर महारथी सूर्य सुत का, इस पर एक वार अचूक हुवा ।
जिससे रण भूमी में इसका, शारंग कटकर दो टूक हुवा ॥

धनुष टूटते ही निकट, आ पहूँचे सब बीर ।
इसके स्यंदन पर हुई, मार बहुत गंभीर ॥

आ पड़ा सारथी चक्कर खा, घोड़े मर कर वेजान हुये ।
रथ गिरकर चकना चूर हुवा, इतने भारी नुकसान हुये ॥
तो भी वो बालक डरा नहीं, ले शक्ति पांव पैदल धाया ।
मारी रविसुत के हृदय में, खा चोट उसे चक्कर आया ॥
फुरती से इधर उधर फिरता, वो बालक शक्ति घुमाता था ।
जो इसके सन्मुख आता था, तन छोड़ अमरपुर जाता था ॥
उसका पुरुषारथ देख देख, हो गये अनंदित गुरुराई ।
बोले अभिमन्यू धन्य है तू, है धन्य तेरी रण चतुराई ॥
जीवन है धन्य सुभद्रा का, जिसने ऐसा सुत प्रगटाया ।
अर्जुन भी धन्य धन्य जग में, जिसने पितु का दर्जा पाया ॥

कहते यों आचार्य थे, उत अभिमन्यू वीर ।
शक्ती द्वारा सेन को, पहूंचाता था पीर ॥

शक्ती भी कट दो टूक हुई, तलवार ढाल कर में धारी ।
कुछ समय इसी से लड़ा वीर, अगणित कौरव सेना मारी ॥

तलवार कहां रह सकती थी, उन तीक्ष्ण बाणों के आगे।
कट गिरी वो थोड़ी देर हि में, रिपुओं के ऐसे शर लागे॥
तब वो बालक रथखंभ उठा, शत्रू सेना सन्मुख आया।
मानो कर क्रोध प्राण हरने, यमराज दंड लेकर आया॥
कर दिये लाख बेगिनती सिर, लख उग्र मूर्ति रिपु थर्राये।
शर मारे उसके कटने के, आसार तुरत दृष्टी आये॥
आखिर वो भी कट भूमि गिरा, तो भी नहिं शत्रु वार झेला।
केवल एक चक्र रहा इस पै, ले उसको ये जी पर खेला॥

क्या सुंदर छबि वीर की, हुई समर मैदान।
भीज रहा तन खून से छिदे हुये थे बान॥

सब बाल हवा में उड़ते थे, सिर मुकट टूट गिर जाने से।
चहरा लाली दरसाता था, बेहद गुस्सा चढ़ आने से॥
था दक्षिण करमें बिजली सम, वो चक्र भयानक भयदाई।
मानो भगवान सुदर्शन ले, आ पहुँचे लड़ने के तांई॥
अब भी अभिमन्यू के तन में, आसुर बल दृष्टी आता था।
ले चक्र जिधर घुस जाता था, मैदान तहां हो जाता था॥
आखिर इसके भी कटने से, वो बालक शस्त्र विहीन हुआ।
ऐसा दृष्टी आया मानो, मणि खोकर फणि अति दीन हुआ॥

फुरती अबतक वीरने, दिखलाई भरपूर।
पर जब शस्त्र रहा नहीं, हुआ विवश मजबूर॥

होगया खड़ा कर शान्त भाव, हसरत से सब को तकता था।
लख उसकी ऐसी हालत भी, कुरुओं का जी न पिघलता था॥
तब भी निरस्त्र अभिमन्यू पर, वे तक तक तीर चलाते थे।
बालक के अंग प्रत्यंगों में, गहरी पीड़ा पहुंचाते थे॥
ये लख अर्जुन सुत बोल उठा, हे कौरव वीरो! न्याय करो।
मुझ को शस्तर से हीन देख, ऐसा न घोर अन्याय करो॥

बट्टा लगता क्षत्रीपन में, निर अस्त्र वीर को बधने से ।
तुम निश्चय दुर्गति पाओगे, ऐसे अधर्म के करने से ॥
मुझ को पहले शस्त्र दो, फेर चलाओ तीर ।
तब मैं देखूंगा तुम्हें, हो तुम कैसे वीर ॥
लाओ वीरों जल्दी लाओ, मेरा बल घटता जाता है ।
ये बाल प्राण भिक्षा न मांग, शस्तर की चाह जताता है ॥
ये सुन दुर्योधन गर्ज उठा, बोला अब मजा बताऊंगा ।
शसतर देने की एवज में, ठोकर से सिर टुकराऊंगा ॥
मारा है तूने पुत्र मेरा, सेना का होस भुलाया है ।
बस चुप हो यमपुर जा शत्रू, तव अंत समय अब आया है ॥
दुर्योधन की बात सुन, लगी बदन में आग ।
फुंकारा वो पार्थ सुत, जैसे काला नाग ॥
निर अस्त्र पर शस्त्र चलाता है, धिक्कार तेरे योधापन पर ।
धिक है क्षत्री कहलाने पर, धिक धिक है तेरे जीवन पर ॥
मैं तो इस में संदेह नहीं, अब शीघ्र हि मारा जाऊंगा ।
हथियार नहीं तब कितने पल, मैं अपना बदन बचाऊंगा ॥
लेकिन इस अधर्म का प्रतिफल, दुष्टों जल्दी ही पाओगे ।
हंसते हो क्या तुम कुल समेत, निश्चय यमलोक सिधाओगे ॥
मेरा मृत्यू संवाद पाय, पांडव क्या चुप रह जावेंगे ।
वे अपनी क्रोधाग्नी में, तुम सबको भस्म बनावेंगे ॥
तुम लोगों के मरने पर भी, सिर से कलंक नहिं जायेगा ।
जब तलक रहेगा मृत्यु लोक, तुम्हरे अपयश को गायेगा ॥

* गाना *

हे कायरों क्यों पूर्वजों के यश में दाग लगा रहे ।
किस लिये क्षत्रानियों के पय को हीन बना रहे ॥

क्षत्रियो ने आज तक नहिं धर्म को त्यागा कभी ।
होके उसही वंश के क्यो उसकी शान घटा रहे ॥
ध्यान कुल के मान का कुछ है तो बल से काम लो ।
"होते हैं क्षत्री भि कायर" क्यों ये जग को दिखा रहे ॥
याद रक्खो पापियों तुम सुख न पा सकते कभी ।
क्योकि डर उस जगनियंता का भी दिलसे भुला रहे ॥

यों कह कर अभिमन्यु ने, बन्द करलिये नैन ।
मनही मन कहने लगा, इस प्रकार के बैन ॥

हे ! माता तुम्हें प्रणाम मेरा, हे ! प्राण प्रिया धीरज धरना ।
होता है नष्ट तुम्हारा धन, सुन मृत्यु कथा न शोक करना ॥
हे ! ताया बाबा कहां हो तुम, हो मामा कहां चक्रधारी ।
जाने किस जगह उपस्थित हो, हे पितु गांडीव धनुष धारी ॥
तुम सबका प्राणों सम प्यारा, अन्याय से मारा जाता है ।
तुम सबको दुख जल में डुबोय, सुरधाम सिधारा जाता है ॥
हथियारों में यदि ताकत हो, मेरे खूं का बदला लेना ।
एक शस्त्रहीन के वधने का, क्या फल मिलता दिखला देना ॥

नारायण नरसिंह प्रभू, कृष्ण सच्चिदानंद ।
पुरुषोत्तम नटवर सुखद, जगताधार मुकुंद ॥

इतना कहकर वह वीर रत्न, गिरगया मही पै बेसुध हो ।
हो गई दुखित भारत भूमी, अपना बलवानी बालक खो ॥
लख उसे मूर्छाग्रस्त तुरत, दुःशासन का लड़का धाया ।
ले गदा वीर के मस्तक पर, आघात कठिन तर पहुंचाया ॥
फटगया मग्ज खूं रवां हुआ, सोगया हमेशा को योधा ।
उत्तरा का प्राण सुभद्रा सुत, पांडव कुल का उत्तम पोधा ॥

हुई शंख ध्वनी कटक में, हर्षाये कुरुवीर ।
जिसको सुनते ही तुरत, पांडव हुये अधीर ॥

सोचा क्या बालक ने लड़कर, निश्चय ही वीरगती पाई ।
क्या इसीलिये कौरव सेना, जय शंख बजाकर हर्षाई ॥
इतने में इनको खबर मिली, जो तुमने सोचा सच्चा है ।
अतुलित योधापन दिखला कर, लड़कर जूझा वो बच्चा है ॥
सुनते हि चित्रवत् हुये सकल, सब होश हवास भुलाय दिया ।
इतने में रवि ने अस्त होय, तहं अन्धकार फैलाय दिया ॥

शोकाकुल हो पांडुदल, आया वासस्थान ।
धर्मराज कहने लगे, कर अपना मुख म्लान ॥

हा! हृदय विदीर्ण हुआ मेरा, सुनकर इस अप्रिय बानी को ।
त्रिलोकी सून्य नजर आती, खो कुल दीपक बलवानी को ॥
था कैसा बल विक्रम उसका, किस आसानी से व्यूह तोड़ा ।
अगणित वीरों ने सन्मुख आ, उससे लड़कर जीवन छोड़ा ॥
दु:शासन शकुनी को बल में, करके भी जीवन नहीं हरा ।
हा ! वही वीर हो शस्त्र हीन, एक दिन अनाथ समान मरा ॥
हा ! तेरे सम आज्ञाकारी, सुत और कहां मैं पाऊंगा ।
तुझको खोकर अभिमन्यू किम, अर्जुन को मुंह दिखलाऊंगा ॥
जिस समय सुभद्रा पूछेगी, मेरा वो प्यारा बाल कहां ।
आंखों का तारा प्राण सरिस, सुन्दर व चमकता लाल कहां ॥
"लाओ मेरा धन" ये कहती, जब पुत्रि उत्तरा आवेगी ।
उसकी अति दीन दशा कैसे, आंखों से देखी जावेगी ॥

कहूँगा कैसे पार्थ को, उसका मरण वृतांत ।
हा ! वो भी सुन ये कथा, रहेगा क्यों कर शांत ॥

हा! हाय विजय की इच्छा कर, मैंने ही उसे फंसाया है।
अर्जुन, उत्तरा, सुभद्रा का, अति अप्रिय काम कराया है॥
जिसको उत्तम भोजन खिलवा, बहुमूल्य वस्त्र पहराना था।
सुन्दर गहनों से शोभित कर, अति हित से लाड़ लड़ाना था॥
उसको मैंने रिपु वृन्दों में, भिजवा जीवन हरवा डाला।
लग जाय आग इस बुद्धी को, तृष्णा पै टूट पड़े पाला॥

पराक्रमी सुत लाडले, अभिमन्यू बलवीर।
बिन तेरे जीवन विकल, बंधा आन कर धीर॥

सुन सुन कर रुदन युधिष्ठिर का, सब योधा अश्रु बहाते थे।
दुख से व्याकुल होने पर भी, तीनों भाई समझाते थे॥
इतने में देवयोग से तहां, श्री वेदव्यास चले आये।
राजा ने बहुत दुखित होकर, सब हाल ऋषी को बतलाये॥
फिर बोले हमसे सिन्धु भूप, यदि आज पराजय पा जाता।
तो अर्जुन का वह वीरपुत्र, मारा न शत्रुओं से जाता॥
क्योंकि हम उसके रक्षक बन, कुरुओं को मार भगा देते।
पांडव कुल के उजियाले पर, नहिं तनिक आंच आने देते॥

पर जयद्रथ से हम सभी, हुये आज लाचार।
इसीलिये मुनिवर मेरा, मारा गया कुमार॥

सुन बचन व्यास ने, जयद्रथ के, वर पाने का सब हाल कहा।
फिर कहा उसीके बल से ही, उसका बेहद कमाल रहा॥
जयद्रथ में इतना जोर नहीं, सब वर की ही प्रभुताई थी।
जिससे हि आज रणभूमी में, पांडव सेना बिचलाई थी॥

"श्रीलाल" ये सुन हुवा, नृप का कम दुखदाह।
लगे देखने धीर धर, हरि अर्जुन की राह॥

महाभारत ॐ अठारहवां भाग

जयद्रथ वध

श्रीलाल

महाभारत ॐ अठारहवाँ भाग

जयद्रथ बध

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—

महाभारत पुस्तकालय अजमेर

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

दूसरी बार
२०००

विक्रमी सम्वत् १९९२
ईस्वी सन् १९३५

मूल्य
।–) आने

❀ स्तुती ❀

(थियेट्रिकल-ताल कहरवा)

(तज—श्यामल बंसी वाला, नंदलाला, मनवाला गोकुल का है उजियाला)

दीनबन्धु गिरधारी, बनवारी, सुखकारी,
रक्षा कर नाथ हमारी।
जबसे जग में जन्म लिया है, काम क्रोध में चित्त दिया है।
भूला याद तुम्हारी, बनवारी...हमारी॥
किरपा कर अज्ञान मिटाओ, सत मारग क्या है बतलाओ।
दीजे बुद्धि सुधारी, बनवारी.. हमारी॥
जिस पर तेरी दया भई है, पल में उसकी पीर गई है।
हुआ है सर्व सुखारी, बनवारी.. हमारी॥
दीन जान मुझको अपनाओ, चरण कमल की भक्ति दिलाओ।
हे जन सुखद मुरारी, बनवारी...हमारी॥

मङ्गलाचरण

रक्ताम्बर धर विघ्न हर, गौरीसुत गणराज।
करना सुफल मनोर्थ प्रभु, रखना जन की लाज॥
सृष्टि रचन, पालन, हरन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश।
बानी, रमा, उमा सुमिल, रक्षा करहु हमेश॥
बन्दहुं व्यास विशाल बुधि, धर्म धुरंधर धीर।
महाभारत रचना करी, परम रम्य गम्भीर॥
जासु वचन रवि जोति सम, मेटत तम अज्ञान।
बन्दहुं गुरु शुभ गुण भवन, मनुजरूप भगवान॥

* ॐ *

नारायणं नमस्कृत्य, नरंचैव, नरोत्तमम् ।
देवी, सरस्वती, व्यासं ततो जय, मुदीरयेत् ॥

कथा प्रारम्भ ।

दिन मुंदते ही होगया, क्षत्रि जाति क्षय चन्द ।
विजय पाय लौटे तुरत, हरि अर्जुन सानंद ॥

लेकिन मग में चलते चलते, अपशगुन अपार दृष्टि आये ।
ये देख विजय आनंद भुला, वे वीर धनंजय घबराये ॥
बोले प्रभु से हे दीनबन्धु, मम बांयां नेत्र फड़कता है ।
आंखों से बहती अश्रुधार, दिल बारम्बार धड़कता है ॥
रोते हैं गीदड़ श्वान बहुत, उल्लू सिरपर मंडराते हैं ।
कई जीव पशू सम्मुख आकर, मुझको अति व्यथित बनाते हैं ॥
इन बातों में है भेद अवश्य, रथ शीघ्र ले चलो यदुराई ।
मालुम होता है आज मुझे, पांडवों पै कुछ विपता आई ॥

सर्वेश्वर को ज्ञात था, जो कुछ हुवा अनर्थ ।
पर समझाया पार्थ को, "है तेरा भ्रम व्यर्थ" ॥

लेकिन न इन्हें संतोष हुवा, मौनावस्था अख्त्यार करी ।
पर उठने लगीं हृदय भीतर, नाना कुभावना दुःख भरी ॥
कुछ देर बाद इनका स्यंदन, सेना शिबिरों के ढिंग आया ।
उनकी विचित्र हालत लखकर, अर्जुन का हृदय घबराया ॥

कहा पार्थ ने देखलो, अपशुगनों की बात ।
कहता था तब ही तुम्हें, हुआ है कुछ उत्पात ॥

ये शिविर खड़े आनन्द रहित, शंखों की ध्वनी न आती है ।
दुंदुभी न आज यहाँ बजती, सब उलटी बात लखाती है ॥
होगई निशा, दीपक न जले, सर्वत्र अंधेरा छाया है ।
पांडवों को जय का कोलाहल, क्यों नहीं आज सुन पाया है ॥
मेरे दल के योधा सारे, लख मुझको आँख चुराते हैं ।
कर नीची दृष्टि दुखित मन से, इत उत को भागे जाते हैं ॥
नितप्रति जब रिपुओं को वधकर, मैं पांडु शिविर में आता था ।
तब अभिमन्यू हर्षित होकर, सन्मुख आ शीश झुकाता था ॥
वह भी नहिं आज नज़र आया, आई है कुछ विपता भारी ।
अब यहां न ठहरा जाता है, झट चलो भूप पै गिरधारी ॥

आज किया था द्रोण ने, चक्रव्यूह निर्माण ।
किसी वीर ने क्या वहां, जाकर खोये प्राण ॥
ये कह हरि को साथ ले, श्री अर्जुन रणधीर ।
फुरती से चलते हुये, गये युधिष्ठिर तीर ॥

देखा दोनों भाई बैठे, आंखों से अश्रु बहाते हैं ।
और धर्मराज सिंहासन पर, वे सुध से दृष्टी आते हैं ॥
लख उन्हें विकल, अर्जुन बोले, ये कैसी दशा बनाई है ।
हे धर्मराज धर धीर कहो, ऐसी क्या विपता छाई है ॥
मुंह उतर रहा रंग बिगड़ रहा, हो रहे धूल में कच सारे ।
कित गया हर्ष क्यों तज आज, सुन्दर आभूषण रतनारे ॥

धर्मराज ने जब सुनी, अर्जुन की आवाज ।
लगे तड़फने हो विकल, पंख रहित ज्यों बाज ॥

बोले आंखें गीली करके, हे अर्जुन हे ओ गिरधारी ।
मत धर्मराज अब कहो मुझे, मैं हूं पापी हत्याकारी ॥
कर मेरा सिर छेदन भाई, मैंने ही आफ़त ढाई है ।
मन हि राज तृष्णा में फंस, भारत में रार लगाई है ॥

हा ! आज युद्ध की घटना का, वृत्तांत मुझे कल्पाता है ।
अभिमन्यू, रण में आज हाय, क्या कहूं कहा नहिं जाता है ॥
बस महाराजा सुन लिया, घटना का सब हाल ।
अपशगुनों ने प्रथम ही, लीना हृदय निकाल ॥
हे अभिमन्यू हे अभिमन्यू, हे जीवन धन बेटा प्यारे ।
तज मुझे अकेला कहां गया, हे पंकज लोचन सुकुमारे ॥
हो रहा दग्ध मेरा शरीर, रोते को धीर बंधाजा तू ।
ये तड़फ रहा है पिता तेरा, आजा सुन जल्दी आजा तू ॥
हे प्राण समान पुत्र मेरे, हे मम तिस के अमृत पानी ।
हे मम रुज की उत्तम औषधि, हे विपति सहायक सुखदानी ॥
हे पथ्य स्वास्थ के, हृदय मेरे, हे शून्य भवन के उजियाले ।
हे वृद्ध अवस्था की आशा, हे दुख को शान्ति प्रभावाले ॥
जीवन के जीवन चिरसंगी, आओ बेटा जल्दी आओ ।
हा ! हृदय विदीर्ण हुवा जाता, इस शोक ग्रस्त को समझाओ ॥
तुझ को इकटक लखने पर भी, ये मेरा हृदय न भरता था ।
तू सुखी रहे इसका प्रयत्न, हे पुत्र रात दिन करता था ॥
हुवा हृदय ये वज्र का, नहीं छोड़ता प्राण ।
अति प्रिय के विच्छेद का, सहता दुःख महान ॥
इतना कहते कहते अर्जुन, गिरगये तुरत बेसुध होकर ।
ढह जाता है भूधर जैसे, आघात बज्र की होने पर ॥
जो रण में वार शत्रुओं के, अपने शरीर पर सहते थे ।
घायल होजाने पर भी जो, कुछ शोक प्रगट नहिं करते थे ॥
हा असुध भूमि पर गिरे वेही, सुनकर निज सुत की मृत्यु कथा ।
हा ! कितनी दुखदायक होती, जग में लड़के की मरण व्यथा ॥
हुआ चेत जब पार्थ का, निकली यही जुबान ।
हा ! अभिमन्यू लाडिले, कहां हा मेरे प्राण ॥

अर्जुन को व्याकुल निरख, बोल उठे घनश्याम ।
ऐसी मृत्यू में सखा, नहीं सोच का काम ॥
जो वीर युद्ध में आगे बढ़, मुड़ने का लेते नाम नहीं ।
वेही ऐसी गति पाते हैं, कायर का इसमें काम नहीं ॥
अभिमन्यू ने रण में जाकर, सन्मुख लड़ प्राण गंवाया है ।
तब निश्चय है उस योधा ने, अति उच्च धाम को पाया है ॥
हम भी चाहते हैं यही बात, रण में लड़कर मारे जावें ।
जीवें जबतक रिपु नाश करं, तज जीवन स्वर्ग धाम पावें ॥
ये बात मुझे भी मालुम है, होता सुत शोक दुःखदाई ।
पर क्या कोई जग में आकर, रहता है अजर अमर भाई ॥

※ गाना ※

(तर्ज: नाही टरत है टारी करम गति ॥)

॥ क्यों व्याकुलता धारी धनंजय ॥

सुर, नर, नाग, असुर, किन्नर, मुनि आदिक सृष्टी सारी ।
जन्म किया है धारन जिसने अपनी देह बिसारी ॥
॥ धनंजय क्यों व्याकुलता धारी ॥

फिर यदि अभिमन्यू कायरता दिखला युद्ध मंझारी ।
मरता तब तो हमको तुमको होता संकट भारी ॥
॥ धनंजय, क्यों व्याकुलता धारी ॥

पर उसने तो प्राण दिये है भुजबल अति बिस्तारी ।
दिनभर कर संग्राम शत्रु की अतुलित सेना मारी ॥
॥ धनंजय, क्यों व्याकुलता धारी ॥

वीरों की जो गति होती वह मिली उसे शुभकारी ।
अस्तु सोच तज धीर धरो उर मानो बात हमारी ॥
॥ धनंजय, क्यों व्याकुलता धारी ॥

शोक छोड़कर पुत्र का, करो बैर परिशोध ।
कायरता तज दो सखा, प्रगटाओ जिय क्रोध ॥
कहा पार्थ ने भूप से, धार हृदय में धीर ।
बतलाओ तो किस तरह, मरा युद्ध में वीर ॥
किस दुष्ट नरक के कीड़े ने, ये पैशाचिक बर्ताव किया ।
है कौन दुराचारी पापी, जिसने बालक वध अयश लिया ॥
प्यारे लड़के की मृत्यू का, हा! हुवा है कौन मुख्य कारन ।
बतलादो उसका नाम मुझे, जाता हूँ अभी उसे मारन ॥
सुन वचन युधिष्ठिर हृदय थाम, बोले अति दुःख प्रगट करते ।
हे भाई कैसे बतलाऊँ, फटता है हृदय बात कहते ॥
उस वीर पुत्र अभिमन्यू ने, जो काम दिखाये हैं रण में ।
कुछ कसर नहीं दृष्टी आती, उसके सच्चे योधापन में ॥
दुर्भेद्य चक्रव्यूह को लखकर, जिस समय बहुत मैं घबराया ।
तब उसी वीर ने सन्मुख आ, उत्साह दिखा जी बहलाया ॥
पांडव सेना का नायक बन, घुसगया व्यूह में वीर बली ।
लख उसे रुद्र सम क्रोध युक्त, कौरव सेना भराय चली ॥
तोड़े सातों द्वारे उसने, सारे महारथी हराय दिये ।
लाखों हाथी घोड़े मारे, रथियों के होश भुलाय दिये ॥
आखिर वह होकर शस्त्र हीन, घिरगया सात महारथियों से ।
तब हो हताश तज दिये प्राण, हा! बच न सका आपतियों से ॥
उसकी रक्षा के किये, हमने यत्न अनेक ।
पर जयद्रथ के सामने, चली न मेरी एक ॥
शिवजी के * वरदान से, हमको दिया हराय ।
यही मुख्य कारण हुवा, जयद्रथ सिन्धूराय ॥

* जयद्रथ के वरदान पाने का हाल दसवें भाग में आचुका है पाठक देखलें ।

भाई की बातों को सुनकर, अर्जुन को क्रोध अपार हुवा।
हो गया खड़ा सारे तनका, झट रक्तवर्ण आकार हुवा॥
बोला अब कौरव वीरों का, धरनीतल में निस्तार नहीं।
मेरी प्रचंड कोपानल से, उन लोगों का उद्धार नहीं॥
गांडीव में कितनी ताक़त है, कल सारे सुरनर देखेंगे।
मेरे बाणों से रिपुओं को, विचलित होते अवलोकेंगे॥
होजाओ सजग कौरव वीरों, अब अन्त समय आ पहुँचा है।
अर्जुन ने कल तुमको रण में, वधने को मन में सोचा है॥
हे नटवर हे भ्रातगण, सुनो लगाकर कान।
प्रण करता है पार्थ अब, अपना शारंग तान॥
जो मेरे एक मात्र धन का, मम रक्त प्राण के प्यारे का।
मृत्यु का कारण हुवा है जो, उस मृदुल बाल सुकुमारे का॥
उस नीच सिन्धु के राजा को, कल रण में अवश्य संघारूंगा।
उसका मस्तक छेदन करके, टुकडे टुकड़े कर डारूंगा॥
हे चंद्रलोक गंधर्व लोक, सुनलो हे नागलोक वासी।
कल नर्क लोक में जावेगा, वो जयद्रथ खल सत्यानासी॥
तुम साक्षी रहना देवों सब, यदि शिव भी उसे बचावेंगे।
तो भी मेरे शर पापी के, जीवन का दीप बुझावेंगे॥
जयद्रथ के वध से प्रथम, वो होवेगा नष्ट।
जो मुझको इस काम में, पहुँचावेगा कष्ट॥
जो ये प्रण पूरा होय नहीं, हो जायँ नष्ट सुकृत धारे।
और इस गांडीव शरासन को, कल से न पार्थ कर में धारे॥
गुरु हत्या, विप्र, मातृ हत्या, हत्या स्त्री, सुत भाई, की।
हत्या पितु की व भगिनी की, हत्या अबला गौ माई की॥
दुनियां भर की सब हत्यायें, आकर मुझको स्पर्श करें।
मरकर भी मिले न शान्ति मुझे, सब पातक मुझको त्रस्त करें॥

मारूँगा उसको मैं अवश्य, मारूँगा कल दिन ही दिन में ।
प्यारे लड़के की हत्या का, बदला लूंगा दिन ही दिन में ॥
जो उसके वध से प्रथम, अस्त होगया भान ।
तो अर्जुन भी अग्नि में, तज देगा निज प्रान ॥
बस यही प्रतिज्ञा है मेरी, कल इसको सत्य बनाऊंगा ।
या तो मैं ही कल प्राण तजूं, या उसका खोज मिटाऊंगा ॥
हत्यारे जयद्रथ प्राण तेरे, अब बचेंगे नहीं बचाये मे ।
छूटेगा पिंड मेरे कर मे, धरनीतल से ही जाये से ॥
यदि प्राणों के भय से पापी, तू छिप जायेगा जंगल में ।
तो वो समूल जल जावेगा, पडकर मेरी क्रोधानल में ॥
गंभीर महासागर तक को, बाणों से शुष्क बना दूंगा ।
यदि वहां जाय तू छिपा दुष्ट, तो भी तुझ से बदला लूंगा ॥
चाहे पृथ्वी और नभ मंडल, हो जांय एक मिलकर पापी ।
तो भी मैं मारूंगा तुझको, नहिं बचेगा तू भगकर पापी ॥
बालक हत्या शीश पर, छाई तेरे दुष्ट ।
तुझको मारूंगा तभी, होऊंगा संतुष्ट ॥
अंतःपुर पहुँचा उधर, मृत्यू का संवाद ।
सभी नारियों में तुरत, छाया घोर विषाद ॥
रवि को अस्ताचल जाते लख, कर दूर नेत्र के जलकन को ।
उत्तरा चोरी सम हर्षी, पतिकाशशिमुखअवलोकनको ॥
इतने मैं दासी के मुख से, ये बाणी सुनने में आई ।
"अभिमन्यू ने रण भूमी में, जीवन तज वीर गती पाई" ॥
सुनते ही आशा भंग हुई, "हा ! नाथ" जोर से चिल्लाकर ।
वो सुकुमारी चक्कर खाती, गिरगई भूमि पै सुधि खोकर ॥
जब तलक दशा ये बनी रही, वो सुखी दिखाई देती थी ।
निश्चेष्ट अवनि पर पड़ी हुई, स्वाभाविक स्वांसें लेती थी ।

ये दशा भंग हो जाने पर, आते हि ध्यान में सब बातें ।
वह विधवा छाती मस्तक पै, बस लगी मारने आघातें ॥
क्षणमांहि खिले पंकज समान, जो मुख था वो कुम्हलाय गया ।
नैनों में खड्डे दृष्टि पड़े, तन पर पीलापन छाय गया ॥
आंखों से अविरल अश्रु बहें, मुख से 'हा! नाथ' निकलता था ।
सुन दुखिया का दुख भरा रुदन, पत्थर का हृदय पिघलता था ॥
हा ! नाथ नाथ कहती कहती, सहसा वह उठकर बैठ गई ।
फिर लगी देखने निज तन को, सुकुमारी अनुपम रूपमई ॥
पागल सम फिर वो कहन लगी, ऐ स्वर्णहार टुकड़े होजा ।
ओ साड़ी जल्द पलायन कर, सुख आश हमेशा को सोजा ॥
सिर की बेंदी ! झट जगह छोड़, ये नहीं रंडापे का बाना ।
ऐ बाजू बंदों छिटक पड़ो, सधवा के मनको बहलाना ॥

चूड़ी ! नहीं रहा तेरा, हाथों से संयोग ।
जैसे में सहती व्यथा, तू भी झेल वियोग ।

हाथों ! मेंहदी वाले हाथों !, लाली पर स्याही फिरवाओ ।
बालों ! वेनी का रूप तजो, खुल २ कर शीघ्र बिखर जाओ ॥
आखों ? अब किसे विलोकोगी, हे कान ! सुनोगे स्वर किसका ।
हे जिव्हा ! तू मृदुवचनों से, अब कथन करेगी गुन किसका ॥
हे तन ! किसका आलिंगन कर, तू हर्षित हो सुख पायेगा ।
हे मन ! तेरा है कौन यहां, जिसको दुख कथा सुनायेगा ॥

हे प्राणों ! अब चल पड़ो, प्राणेश्वर की ओर ।
अब इस सूने लोक में, तुम्हें नहीं है ठौर ॥

आती हूँ प्राणपति आती हूँ, हृदय में तनिक धीर धरना ।
अनउपस्थिती कुछ देरी की, दिखलाकर दया क्षमा करना
ये वाक्य तुम्हारे थे स्वामी, व्यूह तोड़ सांझ को आऊंगा ।
तब तुझे प्रेम से गले लगा, क्षण में सब व्यथा मिटाऊंगा ॥

तुम तो इन बातों को भुलाय, बनगये स्वर्ग के अनुगामी ।
क्या इसका ध्यान नहीं आया, मैं रहूंगी क्योंकर बिन स्वामी ॥
संध्या तक बाट निहारी है, अब रहा मेरा यह गेह नहीं ।
जो क्षण भर में पलटा खावे, वो पतिव्रता का नेह नहीं ॥
मुझ अबला के केवल स्वामी, जग में तुम एकसहारे थे ।
तुम्हरी ही सेवा करने को, ये प्राण बदन में धारे थे ॥

जब तुम रहे यहां नहीं, रहें किस तरह प्राण ।
आकर तुम्हरे ही निकट, होंगे सुखी महान ॥

आता है एक अचरज भारी, तुम मुझी पै प्रेम दिखाते थे ।
मेरे समान सुन्दर नारी, त्रिभुवन में नहीं बताते थे ॥
फिर क्यों मम ध्यान भुला तुमने, अप्सराओं से नाता जोड़ा ।
निज प्राण समान उत्तरा को, किस कसूर से यहां परछोड़ा ॥
अपशगुन देख कर बार बार, मेरे मन में कुछ धोखा था ।
बस इसीलिये हे जीवन धन, मैंने जाने से रोका था ।
प्रणवस तुमने नहिं ध्यान दिया, मेरे उस करुणा-क्रंदन पर ।
हा ! इसीलिये आ बनी नाथ, कुसमय में तुम्हरे प्राणन पर ॥
तुमने तो निज प्रण पूर्ण किया, लज्जा रक्खी क्षत्रीपन की ।
अब मैं भी रक्खूंगी स्वामी, लज्जा मेरे दासीपन की ।

*** गाना ***

पतिव्रता के लिए जगत में, प्राणों से बढ़कर के प्यारा पति है ।
है सर्व आशा की वोहि आशा, अंधेरे दिल का उजारा पति है ॥
चहे न व्रत हो, चहे न जप हो, चहे न पूजन, चहे न तप हो ।
मगर वो जाती है स्वर्ग नारी, कि जिसका केवल अधारा पति है ॥
कहूँ क्या ज्यादा सुख और दुख में, नफे व नुकसान भय अभय में ।
विवाह के उपरान्त उम्र भर तक, बस एक केवल सहारा पति है ॥

कभी न रहती है चांदनी जिमि, बस एक पल भी शशी को तजकर।
रहे न वैसे ही पत्नि पति बिन, सिधाती जहाँ पर सिधारा पति है॥

इतना कह कर उत्तरा, छोड़ जगत का नेह।
सती होन की चाह कर, गई सासु के गेह॥
उस तरफ सुभद्रा की हालत, आंखों से लखी न जाती थी।
फटता था हृदय श्रवण करके, जो कुछ वो वचन सुनाती थी॥
खाती थी भूमी पर पछाड़, कहकर अभिमन्यू अभिमन्यू।
हा! अभागिनी का त्यागन कर, तू गया कहां को रिपुदमनू॥
अब कौन मुझे माता कहकर, हा! बारम्बार बुलावेगा।
लख शून्य गोद किस तरह सुवन, ये हृदय धीरता लावेगा॥
लख किसका मुँह छाती ठंडी, मैं करूँगी मेरे सुकुमारे।
हा स्वप्न समान दर्श देकर, छिप गया कहां दृग के तारे॥
क्योंकर तू मारा गया, होकर पितु सम वीर।
क्या, पांडव नहिं कर सके, रक्ष तेरी रण धीर॥
क्या मेरा ही धन हरने को, ये युद्ध मचा था भारत में।
हा दृष्टि पांडओं की आया, क्या मेरा ही सुत आफत में॥
निर्दई विधाता क्या तुझको, बालक पर दया नहीं आई।
जो उसके प्राण हरे तूने, ऐसे कुसमय में वरिआई॥
मैंने तो अपने जीवन में, अपराध तुम्हारा किया नहीं।
फिर क्यों मेरे जीवन धन को, कुछ दिन तक जीने दिया नहीं॥
सुनकर करुण विलाप को, आ पहुँचे घनश्याम।
कहा बहन धीरज धरो, देख समय को बाम॥
लख भैया को सामने, उठी और भी पीर।
जोर जोर से कर रुदन, बोली होय अधीर॥

लुटगई हाय भैया मेरे, आँखों का तारा कहां गया ।
छिपगया किधर वो लाल मेरा, युवराज हमारा कहां गया ॥
पांडव घर का तेजोमय रवि, भानेज तुम्हारा कहाँ गया ।
मेरी गोदी का सुंदर सुत, अभिमन्यू प्यारा कहां गया ॥
हा ! बहिन तुम्हारी होकर भी, मैंने कैसा दुख पाया है ।
बोलो भैया तुम्हारे रहते, क्यों उसने जीव गंवाया है ॥
हा ! कितना अत्याचार है ये, इकले को सात सात मारें ।
वो भी कब, जब वो निरस्त्र हो, किस तरह प्राण धीरज धारें ॥
कहा कृष्ण ने शांत हो, मती बहा दृग धार ।
इस सारे संसार के, हैं सम्बन्ध असार ॥
जिसने जग में जीवन धारा, वो निश्चय प्राण गंवाता है ।
सब की ये ही हालत होती, सृष्टी क्रम यही बताता है ॥
अभिमन्यू की तू मौत न गिन, वो वीर रहेगा सदा अमर ।
तेरा भी जीवन धन्य हुवा, ऐसा योधा बालक जनकर ॥
उसने कर्तव पालन करते, नश्वर शरीर को छोड़ा है ।
उसका जितना हम गुण गावें, उतना हि इस समय थोड़ा है ॥
ऋषी मुनि वन में वर्षों तपकर, जिस गति के होंयँ न अधिकारी ।
वह गती मिली अभिमन्यू को, इसलिये छोड़ विपता सारी ॥
हो वीर मातु तुम, वीर पत्नि, और वीर ही की तुम जाई हो ।
हैं देवर जेठ वीर तुम्हरे, फिर वीर की वहन कहाई हो ॥
हो ऐसी वीरांगना, करती हो तुम शोक ।
आता है अचरज हमें, तेरा दुख अवलोक ॥
श्रीहरि ने इतना समझाया, पर अश्रुधार नहिं रुकपाई ।
हा जग में लड़के का बिछोह, होता है कितना दुखदाई ॥
बोली, भैया किम धीर धरूं, छाती भर भर कर आती है ।
अभिमन्यू बिन सारी दुनियां, मुझको अंधी दरसाती है ॥

क्या यही समय था मम सुत के, हा ! स्वर्गधाम में जाने का ।
कुरुओं के अत्याचारो में, फंसकर के जान गमाने का ॥
सुंदर व सुकोमल सैय्या पर, सुख से जो नित प्रित सोता था ।
वे गिनती सुघड़ दासियों से, हर समय जो सेवित होता था ।
सोता है कठिन धरातल में, हा ! आज वो बानों से विधकर ।
सुकुमार नारियों की बजाय, गीदड़ियों से सेवित होकर ॥
रक्षक मेरे पुत्र की, हुई न पांडव सेन ।
पांडव भी देखा किये, खोले दोनों नैन ॥
रोती थी ऐसे कृष्ण बहिन, इतने में तहां उतरा आई ।
लख तरुण बहू का दीन भेष, सास हो बेसुध मुर्झाई ॥
कर इसे होश में गिरधारी, बोले उत्तरा से सुनो बहू ।
ये कैसा भेष बनाया है, धर धीर हृदय में रो न बहू ॥
उन्मत्तों जैसा बुरा भेष, हे पुत्री शीघ्र बदल डालो ।
क्यों बनती हो इतनी अधीर, ले पानी मुंह को धो डालो ॥
जो भूतकाल में जन्मे थे, वे जगमें थोड़े दिन रह कर ।
मर गये अन्त में बचे नहीं, कर्मानुसार सुख दुख सहकर ॥
जो हैं जो आगे होवेंगे, उनका भी थोड़ा नाता है ।
संसार चक्र का नियम है ये, "जो आता है वो जाता है" ॥
दुखित किसी की मृत्यू से, होना है अज्ञान ।
अस्तु पुत्रि धीरज धरो, बनो नहीं नादान ॥
सुन वचन उत्तरा मुस्काकर, बोली ये भेष कुभेष नहीं ।
मामा अब इस जग में मुझको, करना धरना अवशेष नहीं ॥
पति के मरजाने पर जैसा, अर्धांगिनि भेष बनाती है ।
बस वही भेष धारा मैंने, इसमें हि हर्षती छाती है ॥
मैं विनय तुम्हारी करती हूँ, हे मामा तैयारी करदो ।
एक सुन्दर चिता रचो मेरी, जल्दी सब सामग्री धरदो ॥

पति के शुभलोक सिधाऊंगी, मैं इस अग्निपथ के द्वारा ।
ये हरा भरा होने पर भी, लगता है सूना संसारा ॥
सती नारियों की गती, एक पती ही होय ।
बिन पति पत्नि ना रहे, देखो चित में जोय ॥
बोले यदुनन्दन मातु, पिता, भाई, भगिनी, बेटा, नारी ।
दर असल किसी का कोई नहीं, ये सब नाते हैं संसारी ॥
कर्मानुसार एकत्रित हो, फिर अलग अलग होजाते हैं ।
आते हैं प्राण अकेले ही, तज ठाठ अकेले हि जाते हैं ॥
बस नदी नाव संयोग सरिस मिलना व बिछुड़ना पहिचानो ।
इस दुनिया की सारी बातें, स्वपने की बातों सम जानो ॥
जिसको तू प्रीतम समझे थी, वो शशि का लड़का था बेटी ।
एक मुख्य सबब था इसीलिये, वो भू पर जन्मा था बेटी ॥
अपनी आयू पूरी करके, वो चन्द्रलोक में चला गया ।
तेरा उसका संयोग पुत्रि, इतने दिन था वो पूर्ण भया ॥
कहा उत्तरा ने हुवा, जग का पूर्ण संयोग ।
चन्द्रलोक का है अभी, उनका मेरा योग ॥
मत डालो विघ्न यात्रा में, मामा मुझको वहां जाने दो ।
वे राह मेरी तकते होंगे, सेवा कर सुख पहुँचाने दो ॥
पति संग सती होजाने का, क्या मेरा है अधिकार नहीं ।
विधवा होने पर क्षत्राणी, क्या करती है ये कार नहीं ॥
मैंने कुछ नई न प्रगटाई, ये प्रीति की रीति पुरानी है ।
जिस जगह गये हैं पतीदेव, पत्नी भी वही सिधानी है ॥
फिर मैं क्यों उनसे अलग होय, यहां बिरह दुःख भोगूं मामा ।
बोलो इस सूनी दुनिया में, किसका तन अवलोकूं मामा ॥
जो कुछ है वो है पती, पत्नी प्राणाधार ।
कैसे उसको त्याग दूँ, देखो हृदय विचार ॥

कहा कृष्ण ने ठीक है, तेरे सभी विचार ।
तो भी पतिसंग जलन का, नहीं तेरा अधिकार ॥
इसका कारण है गूढ़ बहुत, मैं बतलाते सकुचाता हूँ ।
पर कहे बिना नहि बनती है, इसलिये साफ बतलाता हूँ ॥
जो नारी गर्भवती होती, वो सती नहीं हो पाती है ।
गर्भस्थ पुत्र का पूर्णतया, जग में रह भार उठाती है ॥
तू भी है गर्भवती बेटी, अस्तु यह भावना दूर करो ।
प्रिय चिन्ह का अपने प्रीतम के, लालन पालन भरपूर करो ॥
फिर वो बालक नहिं साधारण, होगा तेजस्वी गुणखानी ।
सम्राट बनेगा दुनिया का, कहता हूँ ये भविष्य बानी ॥
इतने में द्रुपदसुता को ले, कुन्ती भी तहाँ चली आई ।
लख इन्हें भी शोकाकुल हरि ने, कई उत्तम बातें समझाई ॥
सब भाँति उन्हें धीरज बंधवा, श्रीकृष्ण पार्थ के पास गये ।
उसका प्रण पूरा करने के, वे लगे सोचने यत्न नये ॥
हुई प्रतिज्ञा पार्थ की, जयद्रथ को मालूम ।
सत्य मौत आई समझ, गिरा मही पै धूम ॥
फिर घबराकर उस ओर गया, बैठा था जहां पर दुर्योधन ।
संग लेकर द्रोण, कर्ण, शकुनी, अश्वत्थामा और दुःशासन ।
वहां जाकर ये घबराता हुआ, बोला हे कुरुपति ध्यान धरो ।
मेरा जीवन प्रदीप बस अब, बुझना चाहता है रक्ष करो ॥
ये करी प्रतीज्ञा अर्जुन ने, मैं कल जयद्रथ को मारूंगा ।
नहिं तो पावक में जलकर के, झट अपनी देह बिसारूंगा ॥
सुन हृदय मेरा घबराया है, बोलो अब क्योंकर धीर धरूं ।
आपहुँचा मरण काल मेरा, किस तरह शान्ती लाभ करूं ॥
छाया आंखों में अंधकार, सब भूमि भयानक लगती है ।
मृत्यू वो कुसमय की मृत्यू, हा! मेरी ओर झपटती है ।

अर्जुन के प्रण को व्यर्थ करें, है शक्ति नहीं गंधर्वों की।
नर, नाग, असुर, यक्षों की भी, सुरपति समेत सुर सर्वों की॥
तीन लोक चौदह भवन, सात द्वीप नौ खंड।
थर्राते हैं पार्थ से, है ऐसा परचंड॥
या तो दे अभयदान मुझ को, रक्षा में तत्पर हो राजन।
वरना मुझको अन्यत्र कहीं, जाने की अनुमति दो राजन॥

गाना

(तर्जः—मेरे शंभु तू लीजो खबरिया मेरी)

राजन, अर्जुन के कर से बचाओ मुझे।
जीवन जाता है धीर बंधाओ मुझे॥
प्रतिज्ञा की है मुझे मारने की अर्जुन ने,
और कल दिन में ही संहारने की अर्जुन ने।
अपने तीरों से हृदय फारने की अर्जुन ने,
अस्तु बचने का मार्ग दिखाओ मुझे॥ राजन॥
धनंजय जैसा कोई जग में नहीं बलवानी,
धनुर्विद्या में है बस एक वही लासानी।
फेर उसके जो है रक्षक वे हैं शारंगपानी,
उसको मारोगे किस समझाओ मुझे॥ राजन॥
मुझे तो दीखता निज प्राण बचाना मुश्किल।
ऐसे रणधीर को रण मांहि हराना मुश्किल॥
होगया मेरा तो इस जग में ठिकाना मुश्किल,
करूं कैसी मैं यत्न बताओ मुझे॥ राजन॥

सुन दीन बचन सिन्धु-नृप के, बोला दुर्योधन हर्षा।
कृप, द्रौण, कर्ण के रहते तुम, हृदय क्यों घबराता॥

मेरी ये सिन्धु समान कटक, कल करेगी तुम्हरी रखवारी।
तुम भी हो महाबली योधा, फिर क्यों होते व्याकुल भारी॥
बस आज मुझे अति हर्ष हुवा, अर्जुन का ऐसा प्रण सुनकर।
आनन्द तरंगें उठती हैं, होगया दुगुन सीना तनकर॥
कृप, द्रौण, कर्ण के होते क्या, अर्जुन प्रण पूरा कर लेगा।
अय मित्र उसीका प्रण उसका निश्चय कल जीवन हरलेगा॥
यदि पार्थ अग्नि में भस्म हुआ, श्री धर्मराज मर जावेंगे।
ये लख कर वे तीनों पांडव, जीवित नहिं रहने पावेंगे॥
भाग्यानुसार अवसर आया, इस तरह शत्रु क्षय होने का।
हर्षो हर्षो हे सखा मेरे, ये समय नहीं है रोने का॥
इसको इस तरह दिलासा दे, फिर कहा द्रौण से, गुरुराई!।
अर्जुन की सौगंद को सुनकर, जयद्रथ की बुद्धी चकराई॥
अस्तु इसको दे अभय दान, तत्पर हो जाओ रक्षा में।
सुन इसके दीन वचन गुरुवर, दो दान प्राण का, भिक्षा में॥

अभय दान दे भूप को, बोले गुरु मुस्काय।
तुझे बचाऊँ पार्थ से, अद्भुत व्यूह बनाय॥

सौ अर्जुन भी नहिं तोड सकें, कल ऐसा व्यूह बनाऊँगा।
और सांझ तलक हरि अर्जुन को, द्वारे पर ही अटकाऊँगा॥
सुन वचन दूर सब दुःख हुवा, गुरुवर का जै जै कार हुवा।
बज उठी दुंदुभी तहां बहुत, सेना में हर्ष अपार हुवा॥

तीन पहर उपरान्त ही, भये गुरू असवार।
निशि में ही करने लगे, अपना व्यूह तयार॥

लग भग दो योजन जगह देख, अपनी सेना को फैलाई।
ऐसी उमडी वह सिन्धु सरिस, देता न अंत था दिखलाई॥
फिर खड़ी करी इस तरह उसे, जिसका आकार शकट सम था।
थे इसके अंदर कई व्यूह, जिनका भेदन अति दुर्गम था॥

सब से आगे था दुःशासन, हस्ती सेना को लिये हुये ;
इसके पीछे था मुख्य द्वार, जहां गुरुदेव थे खड़े हुये ॥
कई कोसों तक इनके पीछे, छोटे छोटे व्यूह राज रहे ।
जिन में अनगिनती वीर बली, मानिंद सिंह के गाज रहे ॥
सब से पीछे छः कोस दूर, शुचि नामक व्यूह बनाया था ।
जिस में दुर्योधन, कर्ण, शल्य, संग जयद्रथ को ठहराया था ॥
अद्भुत कौशल से भरे हुये, कुरुओं के व्यूहों को लखकर ।
सोचा जयद्रथ बच जावेगा, मरजावेगा अर्जुन जलकर ॥

कटक आठ अक्षौहणी, लेकर द्रोणाचार्य ।
खड़े हुये करने वहां, जयद्रथ का प्रिय कार्य ॥
प्रात काल के होत ही, उठे सच्चिदानन्द ।
रथ तयार करने लगे, अर्जुन का सानन्द ॥

रक्षा का भूप युधिष्ठिर की, अच्छा प्रबन्ध करके अर्जुन ।
रथ पर असवार हुये आकर, गांडीव तहां धर के अर्जुन ॥
भाई की कठिन प्रतिज्ञा का, कर ध्यान युधिष्ठिर घबराये ।
जिस जगह खड़े थे श्रीकृष्ण, आतुर हो तहां चलेआये ॥
अभिमन्यू की ताजा मृत्यु, इनको अति दुखित बनाये थी ।
अर्जुन को बातें किसी तरह, मन को धीरज बंधवाये थी ॥
अब उसी सहोदर भ्राता को, व्युह में इकला जाते लखकर ।
आखों मे आंसू भर आये, मुंह लगे भिजोने बहबह कर ॥
कृप, द्रौण, कर्ण आदिक सबके, आते हि ध्यान बाहूबल का ।
भूपाल युधिष्ठिर थिर न रहे, वे आब हाल ज्यां जलचर का ॥
अर्जुन का प्रण पूरा होगा, आशा तो थी इनको मन में ।
तो भी प्रेमाधिक होने से, कुछ घबराहट छाई तन में ॥
शंका होती थी बार बार, यदि प्रण नहिं पूरा हो पाया ।
तो क्या होगा हे भाग्य विधी, हा ! कैसा बुरा समय आया ॥

ऐही बातें सोचकर, विचलित हुये भुआर ।
सन्मुख आ गोपाल के, बोले धीरज धार ॥

हे कृष्ण सच्चिदानन्द प्रभू, हे पांडुवंश के सुखदायक ।
अर्जुन की भीषण सौगंद को, रक्षा करना त्रिभुवननायक ॥
जैसे सब देवों के अधार, हैं वज्रपाणि श्री सुरराई ।
तैसे ही हम सारे पांडव, हैं तुम्हरे आश्रित यदुराई ॥
हैं आप हमारे इष्ट देव, जन हैं हम आप जनार्दन हैं ।
हैं आपहि फल शुभ कर्मों के, हम भक्त आप प्रभु भगवन हैं ॥
हैं कर्म आप और धर्म आप, सम्पत अरुमत भी आप हि हैं ।
है भार हमारा तुमपर प्रभु, हमसब की गति भीआप हि हैं ॥
हे दीनबन्धु प्राणों समान, है प्रिय मुझको अर्जुन भाई ।
उसही को आज सौंपता हूं, भगवान की शरणाई ॥
तुमही एक मात्र सहारे हो, मेरी ये विनय हृदय धरना ।
जिस तरह प्रतिज्ञा पूर्ण होय, हे प्रभू वही कारज करना ॥

शरण आपकी हूं प्रभू, हे नटवर गोपाल ।
मेरी याद न भूलना, दीनानाथ दयाल ॥
बोले हरि तज फिक्र नृप, अर्जुन हैं बलवान ।
तो भी जहां तक होयगा, रक्खेंगे हम ध्यान ॥

इतना कहकर यदुनन्दन ने, कपिध्वज स्यंदन को दौड़ाया ।
उसका अति भीषण गड़गड़ाट, झट दसों दिशाओं में छाया ॥
बज उठे पांडुदल में बाजे, सब सेना व्यूहाकार हुई ।
चलदी हरि अर्जुन के पीछे, रण करने को तय्यार हुई ॥
जैसे नभमण्डल में बादल, गर्जन कर दौड़ मचाते हैं ।
बस त्योंही कोलाहल करते, गज अश्व रथादिक जाते हैं ॥
इस अपार दल से भूमि हिली, अहि के फण ने लचका खाया ।
चौतरफ धूलिकण उड़ने से, एक गुबार सा नभ में छाया ॥

कौरव सेना के निकट, जा पहुँचे सब वीर ।
पुत्र घातकों को निरख, अर्जुन हुये अधीर ।
कर क्रोध शीघ्र कोदंड तान, टंकोर सुनाई अर्जुन ने ।
दुःशासन की गज सेना को, भयभीत बनाई अर्जुन ने ॥
आखिर दोनां दल में रण का, झट श्रीगणेश प्रारम्भ हुवा ।
तत्काल हि हाथी अश्व तथा, वीरों का वध आरम्भ हुवा ॥
फुरती से वीर धनंजय ने, शर चढ़ा धनुष डोरी तानी ।
इमि बाण मारना शुरू किया, जैसे नभ से बरसे पानी ॥
आंखें आई थी बाहर निकल, दांतां से होठ काटते थे ।
कुंडल पहरे भूपां के सिर, गिर महि की धूल चाटते थे ॥
अस होता था रव मुंडां का, कटकर भूमी पर गिरने से ।
ज्यां पके फलां का होता है, वायू द्वारा तरु हिलने से ॥
आवेश में आकर रुंड कई, ले धानुष बाण इत उत धाते ।
कोई कर में तलवार धार, चमकाते हुये दृष्टि आते ॥
कुरु सेना को पार्थ तहां, धरे हुये शुभ छत्र ।
वेग सहित फिरता हुवा, दिखता था सर्वत्र ॥
उन मरने वाला वीरों को, सब जगह पार्थ ही दृष्टि पड़ा ।
कर क्रोध परस्पर भिड़ने को, हर एक वीर होगया खड़ा ॥
आखिर आपस में खूब ठनी, मरगये कई लड़ते लड़ते ।
बनवारी ने रथ रोक लिया, आश्चर्य सहित हंसते हंसते ॥
दुःशासन ये देखकर, सन्मुख पहुँचा आय ।
शर बरसाकर पार्थ के, रथ को दिया छिपाय ॥
तत्काल पार्थ ने तीर मार, शत्रू के सारे शर काटे ।
फिर विषधर सम अति ही कराल, अपने अनगिनत तीर बांटे ॥
हो गये शून्य हौदे अनेक, कितने हि गजां ने प्राण तजा ।
दुःशासन खुद भी घायल हो, गुरुवर की सेना तरफ भजा ॥

मध्यान काल में सूरज को, तकना जैसे मुशकिल होता ।
त्यों ही अर्जुन सन्मुख आते, वीरों का व्याकुल दिल होता ॥
हुई सेन तित्तर वितर, भागी जान बचाय ।
शकट व्यूह के द्वार पर, अर्जुन पहुँचे जाय ॥
गुरु को सन्मुख अवलोकत ही, अर्जुन को बहुत खुशी छाई ।
सिर झुका प्रणाम किया उनको, प्रमुदित मन से आशिष पाई ॥
कर विनय पार्थ ने हुक्म चहा, व्यूह के भीतर घुस जाने का ।
अन्याई जयद्रथ को उसके, पापों का मज़ा चखाने का ॥
लेकिन न द्रोण ने आज्ञा दी, बोले मुझसे लड़ कर जाना ।
हे अर्जुन परिच्छार्थ थोड़ा, मुझको रण कौशल दिखलाना ॥
आचार्य परिच्छा फेर कभी, ले लेना अब तो जाने दो ।
मेरे सुत के हत्यारों को, हे गुरुवर पाठ पढ़ाने दो ॥
पर तो भी गुरुवर हटे नहीं, उलटा कर क्रोध धनुष ताना ।
मजबूर होगये अर्जुन भी, लाचारी से धनु संधाना ॥
गुरु चेले लड़ने लगे, खूब प्रचार प्रचार ।
ओलों सम होने लगी, बाणों की बौछार ॥
अर्जुन साधारण वीर न थे, थे गुरुवर भी कमज़ोर नहीं ।
दोनों ने चाहा जीतें हम, पर चला सके कुछ ज़ोर नहीं ॥
वे महारथी इस फुरती से, तजते थे अपने बाणों को ।
की उनके धनु की प्रत्यंचा, छूती ही रहती कानों को ॥
कभि द्रोणाचार्य धनंजय से, कौशल में आगे बढ़ जाते ।
कभि पार्थ गुरु से कुछ ज्यादा, फुरती अपनी दिखला जाते ॥
घंटों तक युद्ध हुवा इनसे, सूरज मस्तक पर चढ़ आया ।
पर अर्जुन का रथ तिल भर भी, व्यूह में न अगाड़ी बढ़ पाया ॥
देख व्यर्थ संग्राम को, बोल उठे घनश्याम ।
समय रहा थोड़ा सखा, करना है अतिक्राम ॥

गुरु को रण कौशल दिखा चुके, अब बेहतर है आगे बढ़ना ।
सुत का ऐवज लेने के लिये, उन अधर्मियों से है लड़ना ॥
यों कह बनवारी ने रथ को, गुरु के सन्मुख से हटा लिया ।
और तरफ दूसरी लड़ने को, वायु सम गति से चला दिया ॥
गुरु को नहिं सम्भव जान पड़ा, अर्जुन के रथ को लौटाना ।
इसलिये द्वारपर रहकर ही, रक्षा करना उत्तम जाना ॥
रण मचा दिया पांडव दल से, होकर लचार गुरुराई ने ।
उस तरफ शत्रुओं के समीप, रथ पहुँचाया यदुराई ने ॥
बाम भाग को तोड़ कर, व्यूह में किया प्रवेश ।
निर्भय हो बढ़ने लगे, मृगगण मांहि मृगेश ॥
इस समय धनंजय ने यहांपर, जो समर वीरता दिखलाई ।
थी इतनी अद्भुत देख जिसे, सुरपति की बुद्धी चकराई ।
वन में दावानल लगने से, वनु पशु ज्यों शोर मचाते हैं ।
भगते हैं भाग नहीं पाते, अग्नी मुख में गिर जाते हैं ॥
त्यों अर्जुन की शर ज्वाला से, कौरव वीरों का हाल हुवा ।
गिर गये भूमि पर टुकड़े हो, सब तन शोणित से लाल हुवा ॥
हाथियों की सूंड समान भुजा, बाणों से कट कर उड़ती थीं ।
वायू में जा आपस में भिड़, आड़ी टेढी गिर पड़ती थीं ॥
वीरों के मस्तक धड़ से गिर, दधि कुंड समान फूटते थे ।
लोह निर्मित अनगिनती स्यंदन, चोटों के द्वारा टूटते थे ॥
महा प्रलय उपस्थित होने पर, जैसे रवि तजकर मर्यादा ।
त्रिलोकी भस्म बनाने को, सत्वर होजाता आमादा ॥
त्यों ही सुत-शोक-विकल अर्जुन, अति उग्ररूप करके धारण ।
हाथी घोड़ों को जहां तहां, तीरों से लागा संघारन ॥
बज्र चोट से गिर शिखर, ढह जावें हो चूर्ण ।
त्योंही हस्थी सेन भी, नष्ट हुई सम्पूर्ण ॥

ज्यों २ अर्जुन जिन बाणों से, शत्रू वध मार्ग बनाते थे ।
त्यों २ रथ हांकन कला दिखा, हरि घोड़ों को दौड़ाते थे ॥
मानो अर्जुन के तीर और, घोड़े स्पर्धा करते हैं ।
जयरूप पारितोषक लेने, फुरती से आगे बढ़ते हैं ॥
कुछ ही क्षण में कौरव सेना, बाणों से कटकर चूर्ण हुई ।
अनगिनत रुंड मुंडों द्वारा, धरती तहां पर परिपूर्ण हुई ॥
आते थे दृष्टि कहीं कुंजर, भूमी पर कटकर पड़े हुये ।
और कहीं गिरे थे सुघड़ अश्व, होकरके खंडित मरे हुये ॥
कहिं कहीं स्यंदनों का समूह, था अस्त व्यस्त दृष्टी आता ।
था बड़ा भयानक समर क्षेत्र, सर्वत्र खून ही दरसाता ॥

जहां तहां खूं देख कर, होता था ये ज्ञात ।
मानो नभ से हाल में, हुई रुधिर बरसात ॥

उस समय काल से प्रेरित हो, जो अर्जुन के सन्मुख आया ।
तत्काल हि टुकड़े टुकड़े हो, गिरगया नहीं उठने पाया ॥
लख उग्र मूर्ति कुन्ती सुत की, सेना में हाहाकार मचा ।
कोई भी ऐसा रहा नहीं, जो घायल होजाने से बचा ॥
यों मारे अनगिनती योधा, शोणित की नदी बहाय दई ।
हजारों क्षत्रि नारियों को, पति पुत्र विहीन बनाय दई ॥
तो भी इनका रथ जयद्रथ के, नजदीक नहीं जाने पाया ।
ढल गई दुपहरी रण करते, तीसरा पहर होने आया ॥
सूरज को जाते हुये देख, कुन्तीनंदन गर्माय गये ।
झट बाण चढ़ाकर शारंग पर, वे लगे छोड़ने तीर नये ॥

ताजा सेना आयकर, करन लगी संग्राम ।
महा मार रथ पर हुई, घायल होगये श्याम ॥

दिन भर विश्राम रहित रण कर, इस समय धनंजय वीर थके ।
घोड़े भी प्यासे होने से, जल्दी से आगे बढ़ न सके ॥

ये देख पांडु सुत बोल उठे, रथ को ठहरादो गिरधारी ।
कुछ देर यहां विश्राम करो, फिर मारेंगे सेना सारी ॥
तुम उतर पडो रथ से नीचे, चारों घोडों को मल डालो ।
मैं अभी नीर प्रगटाता हूँ, उत्तम है इनको जल प्यालो ॥
इतना कह कर वरुणास्त्र चढ़ा, अर्जुन ने भूमी में मारा ।
घुसगया तीर पाताल तलक, होगई प्रगट जल की धारा ॥
बन गया तुरत तालाव वहां, हरि ने घोडों को निल्हा दिया ।
मलकर शक्ती संपन्न किया, कुछ थोड़ा जल भी पिला दिया ॥
जितनी देरी तक श्रीकृष्ण, अपने कामों मे लगे रहे ।
तब तक बाणों की ज्वाला से, अर्जुन ने रिपु के बदन दहे ॥

रच तलाव, हरि, अश्व की, रक्षा की सब भांति ।
बाणों द्वारा मारकर, विचलाई रिपु पांति ॥

अर्जुन का ऐसा बल विलोक, कौरव सेना का दिल टूटा ।
विधि, हरि, हरसम कारज लखकर, सब वीरों का धीरज छूटा ॥
इतने में घोड़ों से जुतकर, अर्जुन का रथ तैय्यार हुवा ।
तब वीर धनंजय फुरती से, रिपु बधने को असवार हुवा ॥
होगया भंग वो शकट व्यूह, अर्जुन सजीव बाहिर आया ।
तब शुची व्यूह की ओर तुरत, हरि ने घोड़ों को दौड़ाया ॥

दुर्योधन ये बात लख, मन में गया रिसाय ।
पहुंचा द्रौणाचार्य ढिंग, बोला भृकुटि चढ़ाय ॥

आचार्य ! तुम्हारे रहते भी, अर्जुन भीतर घुस आया है ।
अग्नी ज्यों वन को नष्ट करे, त्यों मेरा दल विचलाया है ॥
थी आस तुम्हारे से गुरुवर, मुझको मेरे दल वालों को ।
जब तक तुम हो नहिं आसकता, अर्जुन भंगकर व्यूह जालों को ॥
सब आस आज निरआस हुई, होगया मैं आश्रय हीन गुरू ।
तुम हो पांडवदल के पक्षी, ये जान हुवा अति दीन गुरू ॥

शक्ती माफिक अन धन देकर, मैं सेवा तुम्हरी करता हूं ।
आदर सूचक वचनों द्वारा, तुमको प्रसन्न नित रखता हूं ॥
तो भी मम शत्रु पांडुओं को, तुम विजय लक्ष्मि देना चाहते ।
मेरे द्वारा पालित होकर, मेरा हि नाश करना चाहते ॥

रोके रहते आप जो, अर्जुन को गुरुराज ।
तो मेरी सब सेन का, होता नहीं अकाज ॥

इस समय तुम्हारी कहां गई, वे अभयदान वाली बातें ।
वे फ़िक खड़े सब तकते हो, शत्रू पहुंचाता आघातें ॥
कल निशि को गाल बजा तुमने, क्यों कहा था मैं रिपु भक्षक हूं ।
उस समय यही क्यों नहीं कहा, मैं तो अर्जुन का रक्षक हूँ ॥
कर आश आपके वचनों की, मैंने जयद्रथ को रोका है ।
उस समय नहीं ये ज्ञात हुवा, तुम्हरी बातों में धोका है ॥
यदि कुछ भी शुवा हुआ होता, उस दीन को शीघ्र भगा देता ।
बेचारा किसी जगह छिप कर, अपना तन बदन बचा लेता ॥
यम के हाथों में पड़ा मनुज, हे गुरुवर चाहे बचजावे ।
पर पार्थ अहित करने वाला, उम्मेद नहीं जीवन पावे ॥
अच्छा जो बीत गई सो गई, अब तो आगे का ध्यान धरो ।
अर्जुन का बढ़ना रोक तुरत, प्रभु जयद्रथ का कल्यान करो ॥

लख कर बहुत दुखी मुझे, क्रोध न करना आप ।
दीन जान करुणा करो, हरो मेरा सन्ताप ॥
क्रोध हँसी हँसकर गुरू, बोले सुन कुरुराज ।
दुष्ट मनुज करते स्वयं, अपना आप अकाज ॥

हे राजन तेरी बातें सुन, मुझको नहिं गुस्सा आता है ।
क्योंके जैसा है तू मनुष्य, वैसी ही बात बनाता है ॥
जो मनुज सदा दुष्कर्म करे, फिर चाहे अन्त विजय पाना ।
विष खाकर कैसे संभव हो, जग में जीवन का रह जाना ॥

तैंने खुद अपने हाथों से, निज सत्यानाश कराया है।
एक महा शक्तिशाली दल की, शक्ती को हीन बनाया है॥
तेरी बातें सुन वाध्य हुये, भीषम निज मृत्यु बुलाने पर।
इच्छा--मृत्यू होने पर भी, तय्यार हुये मर जाने पर॥
वे महारथी बाहूबल से, नित पांडु कटक को खपते थे।
जिसमें तेरा हो भला वही, उपदेश सुनाया करते थे॥
फिर भी तैंने कटु वाक्य सुना, उनका दिल चलनी कर डाला।
होता है दुर्बुद्धी मनुष्य, सन्तों का जी हरने वाला॥
ये नहीं सोचता पापी जन, जो दुःख इस समय मिलता है।
वो मेरे घोर कुकर्मों का, उद्यान फ़लता फलता है॥

करता है किन्तू वही, औरों को बदनाम।
राजन ऐसी बात का, होत न शुभ परिणाम॥

* गाना *

दुष्टजन पाते हैं क्या जग में कभी आराम भी।
क्या कभी बम्बूल से उतपन्न होता आम भी॥
पाप करने पर भी नर को जो सदा सुखही मिले।
तो जगत में पुन्य का लेगा न कोई नाम भी॥
है अनादी काल से संसार का ऐसा नियम।
जो करे जैसा निकलता वैसा ही परिणाम भी॥
अब क्यों पछताता है अपनी हार पर कौरवनरेश।
तेरेहि कर्मों से तू अब होरहा बदनाम भी॥
बल है जितना मुझ में उतना तो दिखादूँगा जरूर।
पर मुझे आशा नहीं हो पूर्ण तेरा काम भी॥

रख याद, सुकर्मी नर जग में, निर्बल होकर भी जय पाता।
बल होने पर भी दुष्कर्मी, निज पापों द्वारा नश जाता॥

मेरी है प्रीति पांडवों पर, जीऊँगा जब तक पालूँगा ।
लेकिन अपने बाहूबल से, तेरा ही काम सम्भालूँगा ॥
अर्जुन मुझको करके परास्त, व्यूह में नहिं घुसने पाया है ।
जा बांई तरफ जबरदस्ती, रथ को अन्दर पहुँचाया है ॥
है अर्जुन खुद ही महारथी, तिस पर सारथि हैं जगस्वामी ।
हैं उनके हाँके हुये अश्व, वायू से ज्यादा द्रुतगामी ॥
ऐसे स्यंदन को लौटाना, हे दुर्योधन आसान नहीं ।
तुझको गांडीव धनुपधारी, क्या पार्थ के बल का ज्ञान नहीं ॥
यदि मैं व्यूह द्वार छोड़ दूँगा, ये नष्ट भ्रष्ट होजायेगा ।
सारा पांडव दल अन्दर घुस, सेना में प्रलय मचायेगा ॥
इसलिये साथ ले कर्ण, शकुनि, अर्जुन को रोको बढ़ने से ।
तुम भी हो कुछ कमज़ोर नहीं, जीतोगे दृढ़ हो लड़ने से ॥

तुम्हें एक ऐसा कवच, पहरा दूँगा तात ।
सहलेगा जो वज्र को, हाथी ज्यों शिशुलात ॥

दुनिया का कोई अस्त्र शस्त्र, उसको न काटने पावेगा ।
निर्भय होजा दुर्योधन तू, अर्जुन को आज हरावेगा ॥
यों कह पवित्र कर मत्रों से, गुरुवर ने अद्भुत कवच उठा ॥
पहरा कर कौरवपति को झट, अर्जुन से लड़ने दिया पठा ॥

कर प्रणाम गुरु द्रौण को, दुर्योधन हर्षाय ।
आया अर्जुन के निकट, अपना रथ दौड़ाय ॥

इस समय कौरवों की सेना, अर्जुन द्वारा आहत होकर ।
फिरती थी इधर उधर मारी, जीवन की सब आशा खोकर ॥
रथ शूची व्यूह की जानिब को, बढ़ता जाता था आतुर हो ।
जहाँ जयद्रथ दिन के मुंदने की, तकता था राह भयातुर हो ।
रथ के बढ़ने में विघ्न डाल, बोला दुर्योधन मुस्काता ।
हे अर्जुन क्यों बलहीनो को, अपना बाहूबल दिखलाता ॥

यदि तुझ में कुछ भी शक्ती है, यदि दिव्य अस्त्र कुछ पाये हैं।
तो लड़कर कुछ ताक़त दिखला, तब सन्मुख कुरुपति आये हैं॥
ये सुनते ही पार्थ ने, मारे बाण अनेक।
लेकिन उसके सामने, चली न इनकी एक॥
उस दिव्य कवच से टकराकर, गिरते थे बाण अवनितल पै।
कौरव सेना ये देख देख, हर्षाती थी नृप के बल पै॥
निज तीर व्यर्थ जाते लखकर, अर्जुन ने मतलब जान लिया।
गुरुवर ने इसको दिव्य कवच, पहराया है पहिचान लिया॥
ये जान कवच भेदन छोड़ा, और उसका धनुष तोड़ डाला।
रथ खंडित कर घोड़े मारे, सारथि का शीश फोड़ डाला॥
आगे आकर कुरुसेना तब, इनका रस्ता रोकन लागी।
दिन थोड़ासा रह जाने से, हरि के हिय व्याकुलता जागी॥
सोचा प्रभु ने इस समय यदि, कुछ मदद हमें मिल जावेगी।
तो कौरव सेना क्षण भर में, सब नष्ट भ्रष्ट हो जावेगी॥
यदि अर्जुन लड़ा अकेला ही, अन्देशा है दिन मुंद जावे।
जयद्रथ है अब भी दूरी पर, मुमकिन है हाथ नहीं आवे॥
अस्तु मदद के वास्ते, दीन्हा शंख बजाय।
धर्मराज आवाज सुन, गये बहुत घबराय॥
झट बुला सात्यकी को सन्मुख, बोले भाई पर भीड़ पड़ी।
फूंका है शंख इसी कारण, सुन जिसे हमारी पीर बढ़ी॥
दुनियां में हरि अर्जुन से बढ़, कोई भी हमें न प्यारे हैं।
तुम हम समेत इस सेना के, वेही एकमात्र सहारे हैं॥
कौरव सेना इस समय, है वारीश समान।
इकला है अर्जुन तहां, अस्त होरहा भान॥
उनको विपता में पड़े देख, अस्थिर हो मन घबराया है।
जाओ तुम उनकी मदद करो, बस इसीलिये बुलवाया है॥

सुन वचन सात्यकी आदर से, बोला जो हुक्म तुम्हारा है ।
उसको मैंने सन्मान सहित, अपने मस्तक पर धारा है ॥
लेकिन चिन्ता निज भाई की, होती है तुम्हें ये अचरज है ।
वे उसके साथ गये रन में, जिसकी विभूति शंकर, अज है ॥
जो प्रेम पात्र गिरधर का हो, उसका आनन्द ठिकाना क्या ।
जो रहे सूर्य की ज्योती में, उसको दीपक दिखलाना क्या ॥
त्रिभुवन में कोई वीर नहीं, जो अर्जुन से बढ़कर होवे ।
गाँडीव से निकले बाणों को, सहने में जो दृढ़तर होवे ॥
अर्जुन का प्रण और पूर्ण न हो, ये बात कहां घटसकती है ।
हरि भक्तों की, हरि के होते, किम मर्यादा मिट सकती है ॥

तो भी जाता हूँ नृपति, हुक्म तुम्हारा मान ।
लेकिन द्रौणाचार्य्य से, रहना सजग महान ॥

यों कहकर शिष्य धनंजय का, झट शकट व्यूह की ओर चला ।
लख उसका अर्जुन के समान, भुज बल शत्रू का दल बिचला ॥
रिपुओं का वध करता करता, जा भिड़ा तुरत गुरुराई से ।
कुछ देर लड़ा फिर अर्जुन सम, घुस गया तुरत चतुराई से ॥

हुये स्वस्थ भूपाल नहिं, भेज सात्यकी वीर ।
अस्तु वृकोदर से कहा, तुम जाओ रणधीर ॥

भाई के वचनो को सुन कर, ले गदा गदाधारी धाये ।
शत्रु का दल चौपट करते, शीघ्र ही गुरु सन्मख आये ॥
अर्जुन और वीर सात्यकी के, व्यूह में जाने से क्रोधित हो ।
गुरुदेव खड़े थे सावधान, ले शारंग यम सम शोभित हो ॥
जब इनको भी घुसते देखा, बोले हे भीम कहाँ जाता ।
मैं खड़ा हुवा हूँ लड़ने को, क्या मुझसे लड़ता सकुचाता ॥
अथवा अर्जुन सम तूने भी, छल करने ही की ठानी है ।
पर तेरा छल न चलेगा यहाँ, आ देखूँ कितना पानी है ॥

मुझको तू अपना गुरु न गिन, गिन शत्रू आज गदाधारी ।
जब तक मुझको नहिं जीतेगा, व्यूह में घुसना मुश्किल भारी ॥
दौणगुरु की बात सुन, भीम गये रिसिआय ।
ऊँची गदा उठाय कर, बोले भृकुटि चढ़ाय ।
ब्रह्मन् मैं अबतक तुम्हें, गिनता था आचार्य ।
अब गिनता हूं शत्रू मैं, देख तुम्हारा कार्य ॥
छल करने में धृतराष्ट्र पुत्र, सारे जग में लासानी हैं ।
या उनका मामा शकुनी है, हम तुम इसमें अज्ञानी हैं ॥
अर्जुन को पुत्र घातकों के, वधने की ज्यादा जल्दी थी ।
अस्तू गुरु ऋण को दिये बिना, लाचार चाल वो चलदी थी ॥
फिर वही बात सात्यकी ने की, इसलिये आप गरमाये हैं ।
पर शान्त हूजिये भगवन अब, हम रण करने ही आये हैं ॥
गुरुवर मुझको कच्चा न गिनों, मैं ब्याज समेत चुकाऊंगा ।
मैं अर्जुन सम भोला हुँ नहीं, जो तुम पर दया दिखाऊंगा ॥
गुरु हो जबतक तुम स्नेह करो, यदि ललकारो तो दुश्मन हो ।
दुश्मन से भीम लड़े निश्चय, चाहे विरुद्ध सब त्रिभुवन हो ॥
इतना कह गुरु से भीम बली, रण करने को तैय्यार हुये ।
तत्काल तहां गुरु चेले के, आपस में वार अपार हुये ॥
गुरुदेव के बाण से, बिद्ध हुये जब भीम ।
गरजे काल समान तब, हुआ क्रोध निःसीम ॥
द्रौणागिरि कर में धारा था, जिस तरह वीर बजरंगी ने ।
त्यों लिया उठाय द्रौण का रथ, कर माहिं वृकोदर जंगी ने ॥
फिर गेंद समान उसे फौरन, फेंका तिरछा नभ मण्डल में ।
कुछ देर बाद कर महा शब्द, जा गिरा दूर अवनीतल में ।
वो स्यंदन वज्र समान कड़ा, गिरते ही चकनाचूर हुवा ।
सारथी सहित सब घोड़ों का, एक बारहि जीवन दूर हुवा ॥

थी आश भीम को गुरुवर अब, कुछ देर असुध हो जावेंगे ।
तबतक हम सेना बध व्यूह में, जाने का मार्ग बनावेंगे ॥
लेकिन ये आश अपूर्ण रही, गुरु बीच हि रथ से कूद पड़े ।
फिर एक दूसरा स्यंदन ले, रण करने को तत्काल बढ़े ॥
फिर फेंका रथ भीम ने, नभ में करके रोष ।
गिरा दूर करता हुवा, घन गर्जन सम घोष ॥
इस तरह फेंक रथ बार बार, दे समस्त ऋण गुरुराई का ।
झट व्यूह में घुस आरम्भ किया, विध्वंस शत्रु कटकाई का ॥
जैसे तरुवर गिर पडते हैं, अति प्रबल पवन से टकरा कर ।
त्योंही रिपु गिरने लगे वहां, बस चोट गदा की खाखाकर ॥
ये देख सुयोधन भ्रात सभी, कर क्रोध चौतरफ घिर आये ।
पर हो निर्जीव कुछी क्षण में, भूपर गिरते दृष्टी आये ॥
भागी सेना जानले, इन्हें मिलगई राह ।
गर्जन करते बेधड़क, बढ़े सहित उत्साह ॥
आगे जाते हि वृकोदर को, वो कपिध्वज स्यंदन दृष्टि पड़ा ।
मानो गम्भीर समुंदर में, मंदिर चल पर्वत अचल खड़ा ॥
लख कृष्ण सहित प्रिय भाई को, गरजे बलवीर गदाधारी ।
जिसको सुन भूप युधिष्ठिर के, मन में आनन्द हुवा भारी ॥
ऐसे योधा को आया लख, हरि अर्जुन भी हर्षाय गये ।
शंखों से सुख सूचक ध्वनि की, सुन जिसे शत्रु मुरझाय गये ॥
रण हांक सात्यकी योधा की, इतने में इन्हें सुनाई दी ।
आनन्द और भी दुगुन हुवा, जय की आशा दिखलाई दी ॥
बने चक्र रक्षक दोऊ, भीम सात्यकी वीर ।
रहे मध्य में कृष्णयुत, कुन्ती-सुत रणधीर ॥
तीनों ने यों संघठन बना, शत्रू बधना आरम्भ किया ।
कर खण्डन शुची व्यूह का फिर, आगे बढ़ना प्रारम्भ किया ॥

अर्जुन इन चक्र रक्षकों की, रक्षा भी करते जाते थे।
निज बाणों से शत्रूदल का, जीवन भी हरते जाते थे॥
कुरुओं ने जय की आश तजी, सिन्धू नरेश भी घबराये।
ये देख क्रोध कर भूरिश्रवा, रविसुत को ले आगे आये॥
दोनों का चक्र रक्षकों पर, बेदर्दी से आघात हुवा।
सात्यकी पै भूरिश्रवा का शर, कर्ण का भीम पै पात हुवा॥

हुवा वृकोदर कर्ण में, घोर भयानक युद्ध।
दोनों थे बाहूबली, दोनो ही थे क्रुद्ध॥

थे बढ़कर वीर वृकोदर से, रविनन्दन तीर चलाने में।
अस्तू कुछ श्रम करना न पड़ा, इनके शर वृथा बनाने में॥
ये देख भीम ने जान लिया, है व्यर्थ धनुष लेकर लड़ना।
इसलिये गदा द्वारा अब तो, चहिये शत्रू का वध करना॥
ये सोच भीम ने गदा उठा, फेंकी रविसुत के स्यंदन पर।
इस तरह चली मानो बिजली, आती हो सीधी वृक्षन पर॥

फुरती से रविपुत्र तो, चढ़े दूसरे यान
लेकिन हय, रथ, सारथी, गिरे युद्ध मैदान

कर क्रोद्ध कर्ण ने तब इनके, आघात कठिन तर पहुंचाई।
घायल हो गये भीम जिससे, बह चला खून सुस्ती आई॥
लख विपता अपने भ्राता पर, अर्जुन ने झट इमदाद करी।
शरमार कर्ण को घायल कर, दुख दे तबियत नाशाद करी॥

इधर सात्यकी से भिड़ा, भूरिश्रवा रिसिआय।
रोका बढ़ने से इसे, तीव्रबाण बरसाय॥

ये देख सात्यकी गर्ज उठा, कर क्रोद्ध शरासन को ताना।
तक मस्तक भूरिश्रवा का झट, छोड़े विषधर सम शर नाना॥

होगई शुरू शर धारायें, मानो बादल जल बरसाते ।
अथवा आमिष के टुकड़ों पर, चौतरफा से कौए धाते ॥
वे युद्ध केसरी बढ़ बढ़ कर, रण कौशलता दिखलाते थे ।
लख उनका युद्ध उपस्थित जन, आपस में हर्ष जताते थे ॥
कुछ देर बाद दोनो योधा, सारे शस्त्रों से हीन हुये ।
घायल भी हुये परस्पर वे, तो भी चहरे न मलीन हुये ॥
झट कूद पड़े रथ से नीचे, और मल्ल युद्ध की ठान लई ।
आ एक दूसरे के समीप, कर क्रोध मुष्टिका तान लई ॥

बढ़ बढ़ कर करने लगे, दोनो मुष्टि प्रहार ।
आपस में कुछ देर तक, हुई भयानक मार ॥

लड़ते लड़ते सात्यकी वीर, लाचार हुआ थक जाने से ।
हाथों में वह फुरती न रही, देरी तक युद्ध मचाने से ॥
बलवीर नरेश्वर भूरिश्रवा, अब भी वैसा ही लड़ता था ।
मानिंद सिंह के उछल उछल, इस पर आघात करता था ॥
जब लखा बहुत ही थकित इसे, तब भूरिश्रवा ने हाथों से ।
झट उठा भूमि पर दे मारा, और लगा मारने लातों से ॥
फिर पकड़ा शिर के बालों को, चाहा अब इस पर वार करूं ।
खांड़े द्वारा इसके तन के, टुकड़े टुकड़े कर जान हरूं ॥

दुखित देखकर शिष्य को, अर्जुन गये रिसाय ।
एक तीर विषधर सरिस, छोड़ा धनुष चढ़ाय ॥

इस विकट तीर के छुटते ही, कौरव दल कंपित गात हुवा ।
पल भर में उस रण भूमी में, नृप भूरिश्रवा बेहाथ हुवा ॥
ये देख सकल कुरु वीरों ने, धिक्कार सुनाई अर्जुन को ।
धोके से रिपु वधने की क्रिया, अनुचित बतलाई अर्जुन को ॥

उनके ऐसे बचनों को सुन, अर्जुन के मन में रोष हुवा ।
बोले आश्रित जन की रक्षा, करने में क्योंकर दोष हुवा
पापी नर अपनी तरफ न लख, औरों को बुरा बनाते हैं ।
जब खुद विपता में फंसते है, तब धर्मोपदेश सुनाते हैं ॥
जब सात जनो ने मिल जुलकर, बालक को रण में मारा था
उस समय बताओ तो दुष्टों, कहां धर्म विचार तुम्हारा था ॥
सुन बचन उधर तो अर्जुन के, सब कौरव दल चुपचाप हुवा ।
उस तरफ पराजित होने से, सात्यकी के मन संताप हुवा ॥

फुरती से तरवार को, लई हवा में तान ।
जिस ने पड़ते ही हरी, भूरिश्रवा की जान ॥

फिर हुये अग्रसर ये तीनो, रिपुओं का खोज मिटाने को ।
ये लख कृप, कर्ण, द्रौण के सुत, आये बाधा पहुँचाने को ॥
तत्काल तहां फिर एक बार, रण का कोलाहल छाय गया ।
इस तरह बाण छूटे मानो, जलधर जलबिंदु गिराय रहा ॥
इस तरफ तीन ही योधा थे, उस ओर असंख्य शस्त्र धारी ।
फिर भी इनकी फुरती लखकर, होगई विकल सेना सारी ॥
जिस तरह क्षुधित हो नील कंठ, चट करजाता है कीरों को ।
त्यों ही ये तीनों शरमुख से, खागये सैकड़ों वीरों को ॥

ज्यों २ रथ बढ़ने लगे, सिन्धू नृप की ओर ।
त्यों २ रण होने लगा, खूब भयंकर घोर ॥

कौरव योधा दिन मुंदता लख, मन में हर्षाते जाते थे ।
संघठन घना जीजान लड़ा, अर्जुन पर शर बरसाते थे ॥
अर्जुन ने भी क्रोधित होकर, वो अतुल वीरता दिखलाई ।
पल भर में निज बाणों द्वारा, सारी सेना को बिचलाई ॥

लेकिन शत्रू भी हीन न थे, थे वे भी पूरे बलवानी ।
इसलिये पार्थ से लड़ने में, नहिं करते थे आना कानी ॥
देते थे अर्जुन के शर का, वे उत्तर अपने शर द्वारा ।
अतएव वे विचलित हुये नहीं, गो बही वदन से खूं धारा ॥
अध घंटा दिन बाकी था अब, था दूर अभी सिन्धू राजा ।
वायू सम रथ के बढ़ने में, हो रहा विघ्न ताजा ताजा ॥
"अब सूरज छिपने वाला है", अर्जुन को बिलकुल ज्ञान न था ।
था ऐसा रण में लगा हुवा, निज शरीर तक का ध्यान न था ॥
टंकोर पार्थ के धन्वा की, घन के गर्जन सम होती थी ।
सर्वत्र इसी के बाणों ने, फैला रक्खी तहां ज्योती थी ॥
हाथी घोड़े अवनीतल में, मरकर पल पल में गिरते थे ।
हो छिन्न भिन्न अगणित योधा, कोलाहल करते फिरते थे ॥

खंड खंड हो रथ कई, गिरे भूमि तत्काल ।
भई प्रगट शोणित नदी, भयदायक विकराल ॥

उस समय विचारा भगवन ने, संध्या होने में देर नहीं ।
इस अल्प समय में जयद्रथ से, हरगिज होगी मुठभेड़ नहीं ॥
यदि मरा नहीं सिंधू नरेश, और भानु प्रथम ही अस्त हुवा ।
तो समझो भस्म चिता में हो, अर्जुन सचमुच ही नष्ट हुवा ॥
हैं पांडव मेरे परम भक्त, अर्जुन प्राणों से प्यारा है ।
यदि नष्ट होगया इसका प्रण, सब जग में अयश हमारा है ॥
मम भक्तराज मम आशा पर, प्रण कर निर्भय हो जाते हैं ।
फिर हम लज्जा रखने के लिये, उनके सब काम बनाते हैं ॥

करी प्रतिज्ञा पार्थ ने, मम भरोस उर धार ।
करूँगा उसको पूर्ण मैं, सारा काम बिसार ॥

श्रोताओं थोडा ध्यान धरो, प्रण तो अर्जुन ने कीन्हा है ।
पूरा करने का भार सकल, प्रभु ने अपने शिर लीन्हा है ॥
चिन्ता हरने वाले खुद ही, चिन्तित इस समय दृष्टि आते ।
ये है भक्ती का ही प्रताप, प्रभु भी बंधन में बंध जाते ॥
प्रहलाद टेर सुन कभी प्रभू, नरसिंह का रूप बनाते हैं ।
और कभी श्रवण कर गज पुकार, नंगे ही पांओं धाते हैं ॥
लख विपत कभी बृज जनता पर, गोवर्धन कर में धारा है ।
सुन कभी द्रौपदी की अवाज, तत्काल चीर विस्तारा है ॥
भक्तों की किञ्चित पीर कभी, नहिं देख सकें गिरवरधारी ।
ऐसे हैं दीनदयाल प्रभू, हैं धन्य धन्य जन हितकारी ॥

*** गाना ***

ऐसे प्रभु का ध्यान जो नर प्रेम से धरते नहीं ।
स्वप्न में भी वे कभी भवसिन्धु से तरते नहीं ॥
खर्च इक पाई न होती ईश के गुणगान में ।
शोक है फिर भी मनुज हरि का भजन करते नहीं ॥
और फिर कुछ वक्त की भी इसमे पावन्दी नहीं ।
तो भि नर प्रभु नाम लेकर पाप निज हरते नहीं ॥
प्रेम से लेते हैं हरि का नाम जो इकबार भी ।
वे कभी आवागमन के चक्र में परते नहीं ॥

आखिर लीलाधर ने लीला, जन की रक्षा हित दिखलाई ।
छिप गया तुरत रवि का प्रकाश, रण भूमी में संध्या छाई ॥
मधुर बोलियाँ बोलते, लौट पड़े नभचारि ।
कमल तुरत मुरझा गये, लख कर अस्त तमारि ॥

रवि के छिपते ही पार्थवीर, कंपित शरीर गत धीर हुये ।
सब श्रम विनष्ट हो जाने से, ले दीर्घ श्वांस दिलगीर हुये ॥
जिसके होने की आश न थी, वो अनहोनी होती लख कर ।
हत चेतन से हो बैठ गये, रख धनुष बाण अपने रथ पर ॥
रवि की ज्योती को लीन देख, कौरव सेना अति हर्षाई ।
मानो अनगिनत पपीहों ने, स्वांती जल की बूँदें पाई ॥
आनन्दित हो कौरव नरेश, जयद्रथ के निकट चला आया ।
बोला क्यों यहाँ खड़े हो अब, किसके डर से मन दहलाया ॥
दुर्योधन आज त्रिलोकी का, राजा है ऐसा पहिचानो ।
होकर स्वतन्त्र अब फिरो मित्र, अर्जुन का डर अब मत मानो ॥

सूर्य अस्त जैसे लखा, तुम ने हे रणधीर ।
पार्थ अस्त भी देखलो, तैसे ही बलवीर ॥
इतना सुन जयद्रथ बली, अर्जुन के ढ़िंग आय ॥
खड़ा हुआ अति गर्व से, निज मन में हर्षाय ॥

दिन भर पीछे जयद्रथ को लख, अर्जुन को अति गुस्सा आया ।
लेकिन कर याद दूसरा प्रण, वो वीर कमल सम मुरझाया ॥
श्रोताओं तनिक पूर्वजों का, सत धर्म नमूना तो पेखो ।
करते थे निज प्रण का कितना, क्षत्री सन्मान जरा पेखो ॥
अर्जुन के प्राण समान पुत्र, अभिमन्यू के वध का कारण ।
वो जयद्रथ निकट उपस्थित है, निर्भय भावों को कर धारण ॥
है अर्जुन कुछ डरपोक नहीं, गांडीव भी सही सलामत है ।
तरकश भी उत्तम बाणों के, द्वारा परिपूर्ण अभी तक है ॥
लेकिन उसको है धर्म का ध्यान, वो धर्म जो कि परलोकों में ।
होता है सुखदायक सदैव, और धीर बंधाता शोकों में ॥

धर उसी धर्म का ध्यान पार्थ, बस बैठा है खामोश हुआ ।
मानो समाधि सुख में योगी, सब सुध बिसरा बेहोश हुआ ॥
श्रोताओं धर्म का गर होवे, सन्मान तो अर्जुन जैसा हो ।
यदि सत की रक्षा का मन में, हो ध्यान तो अर्जुन जैसा हो ॥
जिस धर्मवीर की सौगंद का, पूरा विश्वास हृदय में धर ।
सन्मुख ही विचरन करते हैं, वे परम शत्रू निर्भय होकर ॥
ऐसे दृढ़ व्रती धनन्जय का, यदि चित्रण चरित किया जावे ॥
'बस धन्य है' इतना ही कह कर, खामोश लेखनी हो जावे ॥
अत किस्सा भीम सात्यकी भी, परिणाम सोच कर घबराये ।
हा ! भगवन ये उच्चारण कर, वे सुध हो भूमी पर आये ॥

उनकी हालत देखकर, अश्रुपूर्ण कर नैन ।
बोले अर्जुन कृष्ण से, समयोचित मृदु बैन ॥

हे कृष्ण बुद्धि, विद्या, भुजबल, सहायक आते हैं काम नहीं ।
जो कुछ किस्मत में लिक्खा हो, बस होता है परिणाम वही ॥
थे ऐसे शस्त्र पास मेरे, जिनसे दुनियाँ नस सकती थी ।
रक्षक थे तुम समान फिर क्यों, ऐसी घटना घट सकती थी ॥
प्रण प्रथम पूर्ण नहिं हुवा मेरा, अब द्वितिय पूरण करता हूँ ।
अग्नी से आलिंगन करके, जीते जी ही जल मरता हूँ ॥
है भार तुम्हारे ही ऊपर, मेरे चारों भ्राताओं का ।
कुन्ती, उत्तरा, सुभद्रा का, कृष्णा, आदिक ललनाओं का ॥

आप यहाँ से लौट कर, जाओ जब यदुनाथ ।
धर्मराज को धैर्य दे, समझाना इस भांत ॥

भूपाल ! धनंजय ने निज तन, बलिदान धर्म पर कीन्हा है ।
[illegible]

तुमसे भी है अनुरोध यही, जीते जी धर्म मती खोना ।
जब तक सब शत्रू नष्ट न हों, रण से हर्गिज न विमुख होना ॥
कर कृपा क्षमा करना भ्राता, अपराध हुये जो कुछ मुझसे ।
थे चारहिं सुत पांडू नृप के, ये जान सदा रहना सुख से ॥
अब कृपा सिन्धु करुणा करके, निज जन पर तनिक दया लाओ ।
ये अंत समय की भिक्षा है, लख मोंहि दीन प्रभु अपनाओ ॥
सुरलोक नहीं माँगूँ स्वामी, मुक्ती की ज़रा न इच्छा है ।
त्रिलोकी के सब सुःखों को, मैंने अब तृण सम समझा है ॥
कहती है आत्मा यही मेरी, जबतक बदला न चुकायेगा ।
तबतक अर्जुन तू कभी नहीं, स्थिर होकर सुख पायेगा ॥
अस्तु ऐसा वर दो मुझको, जब जन्म दूसरा पाऊं मैं ।
तब प्यारे सुत की मृत्यू का, हे गोविंद बैर चुकाऊं मैं ॥
जो पिछले जन्म किया होगा, दुष्कर्म वही सन्मुख आया ।
है उसका ही यह फल स्वामी, जो प्रण पूरा नहिं हो पाया ॥
हे विशम्भर अब करता हूँ, मैं बारम्बार प्रणाम तुम्हें ।
जो कुछ मैंने समझाया है, वह करना होगा काम तुम्हें ॥

अर्जुन कहते थे यहां, हरि से ऐसी बात ।
इतने में मुस्काय कर, बोल उठा कुरुनाथ ॥

अर्जुन रोने का समय नहीं, है समय पूर्ण प्रण करने का ।
उत्साह सहित कटि कस कर के, अग्नि में गिर कर जलने का ॥
क्यों वृथा मोह में फंसा है तू, क्यों रो रो जां को खोता है ।
शुभ काज होय जितना जल्दी, उतना ही अच्छा होता है ॥

दुर्योधन के वचन सुन, मुस्काये गोपाल ।
हुई नष्ट माया सकल, प्रगटा रवि तत्काल ॥

अस्ताचल गमनोद्यत रवि का, होने हि उजाला यदूराई ।
बोले अर्जुन से देख सखा, सूरज देता है दिखलाई ॥
ये सन्मुख सिन्धु-नरेश खड़ा, है समय प्रतिज्ञा पूर्ण करो ।
ले धनुष बाण शिर छेदन कर, इसका घमंड सब चूर्ण करो ॥
मिट गया दुःख सब अर्जुन का, लख सूरज को मुख कमल खिला ।
सात्यकी भीम ऐसे हरषे, चिन अम जनु ब्रह्मानंद मिला ॥
आनन्द सहित प्रभु चरण बन्द, गांडीव उठाया अर्जुन ने ।
इस तरफ संभाला स्यंदन को, ले रास हाथ में भगवन ने ॥
ये देख भगा सिन्धु नरेश, घबराकर हा हा कार किया ।
बोला विधना क्या दिखला कर, आखिर में कैसा कार किया ॥
हा ! अब मैं शरण गहूँ किसकी, है योधा भी नहिं पास कोई ।
हे ईश्वर कहां छिपूं जाकर, हा ! रही न जीवन आस कोई ॥
हे अंगराज, हे शकुनि वीर, हे द्रौणगुरु रक्षा करना ।
हे दुर्योधन तुम गये कहां, जल्दी आकर संकट हरना ॥
आ रहा पार्थ क्या करूं हाय, हे शंकर शरण तुम्हारी हूं ।
हे आशुतोष दो दर्श मुझे, तव चरनन पर बलिहारी हूं ॥

बोले अर्जुन दुष्ट अब, क्यों करता बकवाद ।
मृत्यु समय है मूर्ख कर, कृष्णचंद्र की याद ॥

इतना कह वीर धनंजय ने, निज धनुवां की डोरी तानी ।
टंकोर करी इमि शब्द हुवा, छोडें जनु बज्र वज्रपानी ॥
मय वीरों के कौरव सेना, सूरज को अस्त हुवा लखकर ।
फिरती थी खुशी मनाती हुई, अपने सब अस्त्र शस्त्र रखकर ॥

पर अब सूरज की ज्योति देख, आश्चर्य चकित हो घबराई ।
अर्जुन से रण करने के लिए, झटपट आयुध लेने धाई ॥
लेकिन जब तलक सुसज्जित हो, सन्मुख आवे रण करने को ।
तब तक जयद्रथ के ढिंग पहुँचा, अर्जुन उसका जी हरने को ॥
कुछ वीरों ने रस्ता रोका, लेकिन उनका श्रम व्यर्थ हुवा ।
वायू सम अर्जुन के रथ का, आगे बढ़ना अव्यर्थ हुवा ॥

देख धनंजय को निकट, जयद्रथ होय अधीर ।
गुस्से से इनकी तरफ, लगा छोड़ने तीर ॥

अर्जुन ने उनके टुकड़े कर, शंकर का मन में ध्यान किया ।
फिर तीर पाशुपत नामक ले, निज शारंग पर संधान किया ॥
जिस समय होगया अभिमंत्रित, वो दिव्य अस्त्र मंत्रों द्वारा ।
ऐसा चमका मानो निशि में, नभ मंडल में हो शुक्र तारा ॥
जैसे हि पार्थ द्वारा वो शर, धनु की डोरी से भिन्न हुवा ॥
वैसे ही जयद्रथ का मस्तक, धड़ से फौरन ही छिन्न हुवा ॥
नभ मंडल में उड़ जाता है, जिस तरह बाज चिड़िया लेकर ।
त्योंही वो बान गया नभ में, सिंधू नृप का सिर धारण कर ॥

पटका सिर को जायकर, उसके पितु की गोद ।
तप करता था एक जां, मन में भरे अमोद ॥

निज सुत का शीश गोद में लख, वो वृद्ध तुरत अकुलाय उठा ।
गिरगया शीश धरनी तल में, इससे उसका भी मगज* फटा ॥

---

* जयद्रथ के पिता ने ये वरदान मांगा था कि जो मेरे लड़के का शीश काटकर भूमि पर गिरावेगा उसके सिर के भी तत्काल ही सौ टुकड़े हो जावेंगे, ये बात कृष्ण ने अर्जुन को बतलादी थी इसलिए इन्होंने पाशुपत बान इस प्रकार चलाया कि जयद्रथ का मस्तक टूटकर उसके पिता की गोद में जा गिरा ये देखकर ज्योंही वह वृद्ध अकुला कर उठा तो उसी के द्वारा जयद्रथ का मस्तक भूमि पर गिरा इस कारण उसका मग्ज फट गया और वह मर गया ।

यों मरे पिता और पुत्र दोऊ, प्रण पूरण हुवा धनंजय का ।
अपने जन को हरषित विलोक, तन पुलकित हुवा निरामय का ॥
रख पांचजन्य अपने मुख पर, जय सूचक शब्द बजाय दिया ।
अर्जुन सात्यकी भीम ने भी, आनन्द का शोर मचाय दिया ॥
भूपाल युधिष्ठिर खुशी हुये, घबराई कुरु सेना भारी ।
छिप गया सूर्य रण बन्द हुआ, लौटे अर्जुन संग गिरधारी ॥

रण भूमी का देख कर, महा भयंकर हाल ।
अर्जुन से कहने लगे, हो प्रसन्न गोपाल ॥

हे अर्जुन तुमने भुज बल का, अति उच्च प्रमाण दिखाया है ।
लाखों वीरों का आज मित्र, दुनियां से नाम मिटाया है ॥
यदि स्वामिकार्तिक भी आते, तो भी जय पाना दुर्गम था ।
कौरव दल था कुछ तुच्छ नहीं, लंबा चौड़ा सिन्धू सम था ॥
है भाग्य प्रबल हम लोगों का, जो जयद्रथ ने मृत्यू पाई ।
तज तुम्हें नहीं कोई जग में, जो दिखलाता ये चतुराई ॥

धन्य धनंजय धन्य तुम, कुन्ती सुत गुणखान ।
तुम समान तिहुँ लोक में, वीर न कोई आन ॥
बात काट कर पार्थ ने, कहा सुनो भगवान ।
है तुम्हरी आदत यही, करो भक्त गुणगान ॥

मैं भूल नहीं सकता भगवन, तुमने जो ज्ञान बताया था ।
और क्या है माया का स्वरूप, इसको बहु विधि समझाया था ॥
मायेश ! इसी माया द्वारा, हम अज्ञानी चक्कर खाते ।
इसलिए आपका असलरूप, आसानी से नहिं लख पाते ॥

तुम विधि के विधि शिव के शिव हो, यम के यमराज दंड धारी ।
केवल भृकुटी विलास द्वारा, रचते हरते सृष्टी सारी ॥
ऐसे होकर मुझ जैसे की, करते जो आप बड़ाई हैं ।
हूँ मैं तो इसके योग्य नहीं, ये आप हि की प्रभुताई है ॥
बिन वायू के प्रभु किस प्रकार, तरु की पत्ती हिल सकती है ।
किस तरह रहित हो मल्हा से, नौका जल में चल सकती है ॥

इसी तरह बिन आपकी, मरजी जगदाधार ।
कैसे सिंधु नरेश का, हो जाता संघार ॥

दिन के होते भी दिनकर को, अस्त होता हुवा दिखा देना ।
अनुकूल समय पर फिर उसकी, ज्योती रण में फैला देना ॥
ये है सच्चा प्रमाण भगवन, भक्तों की रक्षा करने का ।
वरना जग आज धनंजय का, बस दृश्य देखता मरने का ॥
दिखती है पुतली नाच रही, पर मालिक उसे नचाता है ।
त्यों करता हरता तुमही हो, जाहिर में भक्त कहाता है ॥
इस सकल जगत के कृपासिंधु, बस तुम ही एक सहारे हो ।
करते हो सर्व काम तो भी, तुम रूप अलिप्त हि धारे हो ॥
हम तुच्छ बुद्धि क्या जान सकें, प्रभु कब क्या कर दिखलावेंगे ।
जीवित के प्राण हरें छिन में, मरते की जान बचावेंगे ॥

एक बात मुझको प्रभू, देती है दुख भूर ।
जन रक्षक होकर कभी, बन जाते हो क्रूर ॥

सूरज को छिपा दिया फौरन, और मुझे भेद नहिं बतलाया ।
मरने की नौबत आ पहुँची, है ये तुम्हरी कैसी माया ॥

जन को पहले दुख पहुँचा कर, आखिर में सुख दिखलाते हो ।
ये टेव तुम्हारी ठीक नहीं, क्यों उलटे मग पर जाते हो ॥

बचन पार्थ के श्रवण कर, मुस्काये नँदनन्द ।
हँसे सात्यकी भीम भी, छाया परमानन्द ॥

यों ही ये हँसते खुश होते, नजदीक पांडु दल के आये ।
ये सुध पाते ही धर्मराज, हर्षित हो कर सन्मुख धाये ॥
अर्जुन आदिक ने शीश झुका, आदर से उनको नमन किया ।
नृप ने सब को हृदय लगाय, हर्षित हो आशिर्वाद दिया ॥
फिर बोले माधव आगे बढ़, ये चरण प्रताप तुम्हारा है ।
जिससे ही वीर धनंजय ने, जयद्रथ को रण में मारा है ॥
अर्जुन को मम कर में तुमने, सौंपा था हे शत्रूघाती ।
लो राजन शीघ्र संभालो अब, मय शुभ यश के अपनी थाती ॥

मधुर वचन सुन कृष्ण के, गये भूप पुलकाय ।
गदगद हो प्रभु चरण में, दीन्हा शीश झुकाय ॥

चाहा कुछ कहना कह न सके, रोमांच हुआ इतना भारी ।
अति सुख होने से रुका कंठ, आँखों से अश्रु हुए जारी ॥
जिस समय वेग कुछ न्यून हुआ, तब पंकज सम निज आननको ।
पौंछा, फिर ऐसी गिरा कही, जो पहुँचावे सुख कानन को ॥
हे कमल नैन ! जगदीश प्रभू, हम पर जब कृपा तुम्हारी है ।
तो अर्जुन द्वारा जयद्रथ का, मरना नहिं अचरज कारी है ॥
जिस जन पै आप कृपालु बनें, विष अमृत सम हो जाता है ।
आचरण मित्र सम, शत्रु करे, बैतरनी गंगा माता है ॥

गिनते हैं नराकार तुम को, माया के वश हो अज्ञानी ।
पर ज्ञानी नर की दृष्टी में, हो निराकार शारंगपानी ॥
संसार चक्र तुम आज्ञा से, नित नियम पूर्वक चलता है ।
बिन इच्छा के तुम्हरी स्वामी, पत्ता तक भी नहिं हिलता है ॥
हे गुणातीत सृष्टी करता, हे निर्गुण सगुण कृपा कारी ।
जन सुखद आपकी जय होवे, जय दीनबन्धु भव भय हारी ॥
हैं आप आदि कारण जग के, अव्यक्त अजन्मा गुणराशी ।
शाश्वत और आदि अंत रहित, सर्वत्र व्याप्त घट २ वासी ॥
गौ विप्र धर्म के हित जग में, हे नर शरीर धरने वाले ।
करता हूँ सादर नमन तुम्हें, भक्तों का दुख हरने वाले ॥

यों कह धर्म कुमार ने, आरति लई मंगाय ।
प्रेम सहित करने लगे, हर्ष न हृदय समाय ॥

* गाना *

(तर्ज:—आरती)

जय यदुवंशमनी, स्वामी जय यदुवंशमनी ।
जय जय जय अविनाशी जय त्रिलोक्यधनी ॥
भू को भार उतारन मेटन अघकरनी ।
संतन कहँ सुखदेवन प्रभु प्रगटेउ धरनी ॥
दर्शन पाप नशावन लीला भव तरनी ।
कलिमल कष्ट निकंदन भक्ति सबन बरनी ॥
दुःख हरन सुख दायक दास सहाय करो ।
कृष्ण कृपालु तुम्हारे चरन में चित्तधरो ॥

तुम्हरी माया के बश होकर, सारा संसार बिचरता है ।
सुर असुर नाग नर मुनि योगी, कोई भी धीर न धीरता है ॥
तरता है भव से वही मनुज, जिसपर प्रभु कृपा तुम्हारी हो ।
मैं तुम्हें दंडवत करता हूँ, सब पूरी आश हमारी हो ॥
त्रिभुवन वालों के धेय गेय, जो कुछ हो एक तुमही तुम हो ।
है तुम से परे नहीं कोई, तुम सगुण होयकर भी गुम हो ॥
पाकर तुमको हे जगदीश्वर, कुछ पाना रहता शेष नहीं ।
जबतक ये नर पाता न तुम्हें, मिटते हैं जग के क्लेश नहीं ॥
तुमने उपकार असंख्य किये, हम लोगों पर हे बनवारी ।
हम प्रत्युपकार करें किस विध, हैं शरण आपकी गिरधारी ॥

करते रहना रक्त नित, जान हमें अज्ञान ।
दीन बन्धु भक्तन सुखद, त्रिभुवन पति भगवान ॥

इतना कहते कहते नृपवर, चरणों में गिरे मुग्ध होकर ।
मैं कौन कहाँ हूँ करता क्या, इन सब बातों की सुधि खोकर ॥
आगे बढ़कर हरि ने इनको, हृदय से तुरत लगाय लिया ।
मानो जगदीश्वर ने जनको, सब फंद छुड़ा अपनाय लिया ॥
ये देख सकल सेना वाले, खुश हो आनन्द मनाने लगे ।
भगवान कृष्ण और अर्जुन के, गुण गा जयकार सुनाने लगे ॥

इस प्रकार पूरी हुई, अर्जुन की सौगंद ।
'श्रीलाल' अब प्रेम से, कहो जयति बृजचन्द ॥

॥ श्री कृष्णार्पण मस्तु ॥

(पं० राधेश्यामजी की रामायण की तर्ज़ में

अमूल्य रत्न | श्रीमद्भागवत और महाभारत | छपगये

श्रीमद्भागवत क्या है ?

ये वेद और उपनिषदों का सारांश है, भक्ति के तत्वों का परिपूर्ण ख़ज़ाना है, परमार्थ का द्वार है, तीनों तापों को समूल नष्ट करने वाली महौषधी है, शांति निकेतन है, धर्म ग्रन्थ है, इस कराल कलिकाल में आत्मा और परमात्मा के ऐक्य करा देने का मुख्य साधन है, श्रीमन्महर्षि द्वैपायन व्यासजी की उज्वल बुद्धि का ज्वलन्त उदाहरण है तथा भगवान श्रीकृष्ण का साक्षात् प्रतिबिम्ब है।

महाभारत क्या है ?

ये मुर्दा दिलों में नया जीवन पैदा करने वाला है, सोये हुये मानव समाज को जगाने वाला है, बिखरे हुये मनुष्यों को एकत्रित कर उनका सच्चे स्वधर्म का मार्ग बताने वाला है, हिन्दू जाति का गौरव स्तम्भ है, प्राचीन इतिहास है, नीति शास्त्र है, धर्मग्रन्थ है और पांचवां वेद है।

ये दोनों ग्रन्थ बहुत बड़े हैं अस्तु सर्व साधारण के हितार्थ इनके अलग अलग भाग कर दिये गये हैं, जिनके नाम और दाम इस प्रकार हैं:—

श्रीमद्भागवत

सं०	नाम	सं०	नाम
१	परीक्षित शाप	११	उद्धव ब्रज यात्रा
२	कंस अत्याचार	१२	द्वारिका निर्माण
३	गोलोक दर्शन	१३	रुक्मिणी विवाह
४	कृष्ण जन्म	१४	द्वारिका विहार
५	बालकृष्ण	१५	भौमासुर बध
६	गोपाल कृष्ण	१६	अनिरुद्ध विवाह
	वृन्दावनबिहारी कृष्ण	१७	कृष्ण सुदामा
	[illegible]र्धनधारी कृष्ण	१८	वसुदेव अश्वमेध यज्ञ
	[illegible]सविहारी कृष्ण	१९	कृष्ण गोलोक गमन
	[illegible]स उद्धारी कृष्ण	२०	परीक्षित मोक्ष

[उप]रोक्त प्रत्येक भाग की कीमत चार आने

महाभारत

सं०	नाम	मूल्य	सं०	नाम	मूल्य
१	भीष्म प्रतिज्ञा	।)	१२	कुरुओं का गौ हरन	।-)
२	पांडवों का जन्म	।)	१३	पांडवों की सलाह	।)
३	पांडवों की अस्त्र शि.	।-)	१४	कृष्ण का हस्ति. ग.	।-)
४	पांडवों पर अत्याचार	।-)	१५	युद्ध की तैयारी	।)
५	द्रौपदी स्वयंवर	।)	१६	भीष्म युद्ध	।-)
६	पांडव राज्य	।)	१७	अभिमन्यु बध	।-)
७	युधिष्ठिर का रा. सू. य.	।)	१८	जयद्रथ बध	।-)
८	द्रौपदी चीर हरन	।-)	१९	द्रोण व कर्ण बध	।-)
९	पांडवों का बनवास	।-)	२०	दुर्योधन बध	।-)
१०	कौरव राज्य	।-)	२१	युधिष्ठिर का अ. यज्ञ	।)
११	पांडवों का अ. वास	।)	२२	पांडवों का हिमा. ग.	।)

✱ सूचना ✱

कथावाचक, भजनीक, बुकसेलर्स अथवा जो महाशय गान विद्या में योग्यता रखते हों, रोज़गार की तलाश में हों और इस श्रीमद्भागवत तथा महाभारत का जनता में प्रचार कर सकें तथा जो महाशय हमारी पुस्तकों के एजेण्ट होना चाहें हम से पत्र व्यवहार करें।

पता—मैनेजर—महाभारत पुस्तकालय, अजमेर.

महाभारत उन्नीसवां भाग

द्रोण व कर्ण वध

श्रीलाल

महाभारत ॐ उन्नीसवाँ भाग

द्रौण व कर्ण वध

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—

महाभारत पुस्तकालय, अजमेर

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

दूसरी बार
२०००

विक्रमी सम्वत् १९९२
ईस्वी सन् १९३५

मूल्य
।-) आने

॥ प्रार्थना ॥

(तर्जः—इतना तू करना स्वामी जब प्राण तन से निकलें)

प्रभु हूं शरण तुम्हारी दर्शन मुझे दिलादो ।
तुमही से लौ लगी है दिल की लगी बुझादो ॥

तुम हो दया के सागर गुणशील में उजागर ।
मुझ पर दया दिखाकर भवजाल से छुड़ादो ॥

जब से ये देहं धारी कीन्हे हैं पाप भारी ।
करके कृपा मुरारी मम दोष सब भुलादो ॥

आठों पहर रहे मन तव याद में हे निर्गुन ।
भूलें न तुमको इक छिन बरदान ये दिलादो ॥

मङ्गलाचरण

रक्ताम्बर धर विघ्न हर, गौरीसुत गणराज ।
करना सुफल मनोर्थ प्रभु, रखना जन की लाज ॥
सृष्टि रचन, पालन, हरन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश ।
बानी, रमा, उमा सुमिल, रक्षा करहु हमेश ॥
वन्दहुं व्यास विशाल बुधि, धर्म धुरंधर धीर ।
महाभारत रचना करी, परम रम्य गम्भीर ॥
जासु वचन रवि जोति सम, मेटत तम अज्ञान ।
वन्दहुं गुरु शुभ गुण भवन, मनुजरूप भगवान ॥

* ॐ *

नारायणं नमस्कृत्य, नरंचैव. नरोत्तमम् ।
देवीं, सरस्वतीं, व्यासं ततो जय, मुदीरयेत् ॥

कथा प्रारम्भ ।

जयद्रथ की मृत्यू खबर, सुन कुरुपति तत्काल ।
अश्रु बहा तड़फन लगा, मणि खोकर जिमि व्याल ॥

चहरे की रंगत पीत हुई, जय आश लता सब मुरझाई ।
धीरज छूटा अति दीन हुआ, सब तन की आभा कुम्हलाई ॥
सोचा मन में अर्जुन सदृष्य, जग में न कोई बलवानो है ।
कृप कर्ण आदि के होते भी, कीन्ही कितनी मम हानी है ॥
इस समय यदी गुरुदेव द्रौण, अपना पूरा बल दिखलाते ।
तो सम्भव था सिंधू नरेश, नहिं अर्जुन से मारे जाते ॥
पर आज उन्होंने तो दिन भर, मामूली सा संग्राम किया ।
नहिं बधा पार्थ को चेला गिन, और हम सबको बदनाम किया॥

बकता झकता इस तरह, मन में अति रिसियाय ।
जा पहुँचा गुरू के निकट, बोला भृकुटि चढ़ाय ॥

आचार्य तनिक देखो तो सही, इन मरे हुये भूपालों को ।
रणधीर वीर सुन्दर सुडौल, भारत के क्षत्री लालों को ।
इन सबने मेरे हित रण में, अपना पौरुष दिखलाया है ।
जिन्दावस्था में कभी नहीं, पीछे को पांव हटाया है ॥
है शोक आपके होते भी, मम सेना का क्या हाल हुआ ।
गाजर मूली की तरह कटी, पर तुम्हें न तनिक मलाल हुआ ॥

तुम्हरा भुजबल रण चतुराई, क्या आई मेरे काम गुरू ।
तुम्हरे आश्रित रख मित्रों को, उल्टाहि हुआ बदनाम गुरू ॥
हा किस प्रकार परलोक जाय, उनको निज मुख दिखलाऊंगा ।
त्रिभुवन में उनकी मृत्यू का, मैं ही कारण कहलाऊंगा ॥
अर्जुन के सन्मुख युद्ध न कर, हम सब की मौत बुलाई है ।
अक्षोहिणी पांच कटी मेरी, क्या येही कीन्ह भलाई है ॥

होता है इससे विदित, अर्जुन सम नहिं वीर ।
शक्ति आपकी व्यर्थ है, वृथा आप के तीर ॥

बिन जांचे हुये साथियों पर, जो मूर्ख भरोसा करते हैं ।
वे नर बस मेरे ही समान, निश्चय संकट में पड़ते हैं ॥
मित्रों की रण में मृत्यु देख, ये प्राण बहुत अकुलाते हैं ।
सूना लगता संसार मुझे, यहां के अब दृष्य न भाते हैं ॥
तुम रक्षा कर सकते हो नहीं, अस्तू मरना ही बेहतर है ।
मित्रों की यादगार में बस, ये जीवन भी न्यौछावर है ॥

वचन बाण से बिध गया, गुरु का सकल शरीर ।
मन में अति दुख पायकर, बोले वचन गम्भीर ॥

तुझको तो बस आता है यही, दुर्वचन सुना दुख पहुँचाना ।
क्या हंसी खेल ही समझा है, अर्जुन से रण में जय पाना ॥
त्रिलोकी में जिस योधा को, हम सबसे बड़ा समझते थे ।
सुर असुरों तक से हैं अवध्य, ये बात विचारा करते थे ॥
उन भीष्म को अर्जुन द्वारा, गिरते देखा रण में जब से ।
होगई नष्ट मन की थिरता, बस हे कौरव नरेश तब से ।
जब ऐसे योधा के होते, कोई भी पांडव मर न सका ।
तो इस में क्या अपराध हुआ, फिर यदि मैं रक्षा कर न सका ॥
उस द्यूत सभा में शकुनी ने, छल से जो थे पासे डाले ।
वे पासे अर्जुन के शर बन, हो गये जान हरने वाले ॥

नादान बुरे कर्मों के क्या, निरकाल में भी फल टलते हैं।
जो बोया था विष वृक्ष तैंने, उससे ही फल निकलते हैं।
फल पाप का शुरू हुआ ही है, क्यों अभी से न घबराता है।।
दुष्कर्मों का ऐवज राजन, टलना नहिं सिर पर आता है।।

* गाना *

(तर्ज—विधना ने दुख दिये भारी री, इन्हें कर्म फेर)

पापी न सुःख पायेगा, करो लाख जतन।
नियम प्रकृति का हैगा ऐसा, जो जस करे पाप फल देगा।
ये नहिं मेटा जावेगा।। करो लाख जतन।।
दो दिन का जीवन जगमाहीं, थिर ये बदन रहेगा नाहीं।
एक दिन नस जायेगा।। करो लाख जतन।।
अस्तू यदि सुख पाना चाहो, बुरे कर्म से चित्त हटाओ।।
गया समय नहिं आयेगा।। करो लाख जतन।।
अब भी संधी करले भाई, तज दे सब अपनी कुटिलाई।
वरना तू पछतायेगा।। करो लाख जतन।।

समझाया था विदुर ने, तुझको कितनी बार।
पर नृप मद में मत्त हो, कीन्हा नहीं विचार।।
अपने हितकारक पुरुषों का, जो मूढ़ अनादर करते हैं।
सुनकर के हितोपदेश उनका, उसके माफिक न विचरते हैं।।
उनका थोड़े ही समय बाद, सर्वस्व नाश हो जाता है।
सुन्दर औषधि तज देने से, क्या रोग कभी घट पाता है।।
होगये हैं चौदह दिन लड़ते, अब नहीं लौट घर जाऊंगा।
तेरे बचनों से बिंध कर भी, मैं अपनी जान लड़ाऊंगा।।
जितनी सेना आज के, रण में हुई संहार।
उतनी ही पांडव कटक, डालूंगा मैं मार।।

बस करदो रण की तैयारी, निशि में ही युद्ध मचावेंगे ।
पांडव वीरों को गिन गिन कर, भूमी पर शीघ्र सुलावेंगे ॥
सुनते ही धोंसा बजने लगा, हाथी घोड़े तैयार हुये ।
रण शंख बजाकर द्रोणगुरु, अपने रथ पर असवार हुये ॥

पांडव सेना भी हुई, लड़ने को तैयार ।
निशि में ही होने लगी, महा भयानक मार ॥

अगणित योधा बाणों से कट, गिरते थे चक्कर खा भूपर ।
लाखों स्यंदन विध्वंस हुये, आपस में टकरा टकरा कर ॥
थी प्रथमहिं अंधियारी रजनी, तिस पर धूली नभ में छाई ।
जिससे इतना तम फैल गया, नहिं देता था कर दिखलाई ॥
केवल अनुमानों पर योधा, आगे को बढ़ते जाते थे ।
दृग मींच दांत से होठ दबा, अति भीषण मार मचाते थे ॥
क्रम क्रम से बढ़ने लगा युद्ध, गुथ गये परस्पर धनुधारी ।
वह रण चतुराई दिखलाई, मृतकों से पटी भूमि सारी ॥
अर्जुन व वृकोदर, धृष्टद्युम्न, कृप, द्रोण, कर्ण अश्वथामा ।
अपने अपने बाणों द्वारा, करते थे रिपु क्षय बलधामा ॥
यों ही इकतो रण की रजनी, होती है भयानक भयदाई ।
तिस पर घायल वीरों की तहां, आती थी ध्वनी दुःखदाई ॥
इससे भीषणता बढ़ी अधिक, सेना में हा हा कार हुआ ।
वो घबराहट छाई पल में, दल भागन को तैयार हुआ ॥

सुना द्रोण ने सर्व कटक, तम के कारण है घबराया ।
व अपना शंख बजा फौरन, पैदल सेना को बुलवाया ॥
कहा, रात भर होयगा, ये संग्राम विशाल ।
अस्तु शस्त्र नज धारलो, जलती हुई मशाल ॥

सुनते हि हुक्म इन वीरों ने, प्रज्वलित मशालें उठालई ।
पांडव दल ने भी ऐसी ही, अनगिनत शिखायें जलालई ॥

इनसे रण का वो भयदायक, मैदान तुरत जगमगा उठा।
शस्तर समूह योधाओं का, बिजली सदृश चमचमा उठा।
स्वर्णभूषण, तनुत्राण मुकुट, कंचन के स्यंदन, स्वर्ण ध्वजा।
इनपर प्रकाश के पड़ते ही, होगई चक चौं [illegible]।
यों उजियाला होते ही सब, पैंतरा बदल कर [illegible]
और दांत किटकिटा कर फौरन, घमसान युद्ध में [illegible]
गुरु हुये सुशोभित दिनकर सम, इस समय में स्वर्ण कवच धारे।
सुन इनके रथ की गड़गड़ाहट, थर्राते थे शत्रु सारे।

घुसे सपाटे से गुरू, पांडव कटक मंझार।
उग्र मूर्ति लख कालसम, फैला हा हा कार॥

कर हिम्मत अगणित वीरों ने, इनको [illegible] से घेर लिया।
लेकिन आ पड़े कई भू पर, कितनों ने भट रण फेर लिया॥
आंधी जैसे कर देती है, टुकड़े टुकड़े बादल दल के।
त्योंही गुरु ने निज बाणों से, कर दिये [illegible] पांडव दल के।
हो रहा था गोलाकार धनुष, वज्जर सम तीर छूटते थे।
जिनसे सुभटों के हाथ पांव, धड़ जांघ सिरादिक टूटते थे॥
सारे रण में इनके धनु की, प्रत्यंचा शब्द सुनाती थी।
जहँ देखो वहीं खड़े गुरुवर, ये फुरती दिल दहलाती थी॥

लड़ते लड़ते हो गया, रजनी का अवसान।
पूर्व दिशा की ओर से, प्रगट होगया भान॥

इस समय और भी गुरुतन में, गुस्से का आविर्भाव हुआ।
चढ़गई भृकुटि दृग लाल बने, किरपा का पूर्ण अभाव हुआ॥
घन के समान गर्जन करते, यम सरिस लगे फिरने रन में।
और आने लगा प्रत्यंचा का, दामिनी सदृश रव कानन में॥
ज्यों गिरे थे देवा सुर रन में, निश्चर सुरपति के कर से मर।
तैसे हि धड़ाधड़ गिरने लगे, शत्रू इनके बारा कट कर॥

आतंक मच गया सेना में, हाथी घोड़े बेजार हुये।
मर गये सैकड़ों चोटें खा, घायल भी कई हज़ार हुये॥
भागे घबरा कर बुरी तरह, निज़ सेना के ही प्राण हरे।
चिलकार भयंकर कर कर के, कुछ देर बाद भू मांहिं गिरे॥
इनका अति विकट पराक्रम लख, द्रोपद, विराट् अति शरमाये।
निज निज स्यंदन को फुरती से, दौड़ा कर झट सन्मुख लाये॥
गुरु इनके सारे अस्त्र तोड़, तय्यार हुये जां लेने को।
आखिर दोनों को पठा दिया, यम सदन हाजिरी देने को॥
यों दुपहर होने तक गुरु ने, दो अक्षौहिणी कटक मारी।
वीरों की हिम्मत भंग हुई, बहचली रक्त सरिता भारी॥
पांड़व दल ने तजदई, सारी जीवन आश।
बगलों को तकने लगे, होकर निपट निराश॥
निज सेना का बेहाल देख, आनन्दकन्द गिरवरधारी।
अर्जुन से कहने लगे बचन, तत्काल समय के अनुसारी॥
हे बाल सखा गुरुवर के शर, सेना पर आफत ढाय रहे।
झुण्डों के झुण्ड मनुष्यों को, बधकर यमपुर पहुँचाय रहे॥
होगये हैं घायल वीर सभी, सन्मुख न कोई ठहराता है।
जो भी जाता है लड़ने को, निश्चय वह प्राण गमाता है॥
यदि इस फुरती से सन्ध्या तक, करते हि रहे रन गुरुराई।
तो सच जानो हम लोगों की, नस जावेगी सब कटकाई॥
ये शीघ्र सन्मुख चलकर, हे वीर गुरू से युद्ध करो।
और निज सेना के लोगों की, अश्वासन देकर पीर हरो॥
सिवा तुम्हारे है नहीं, कोई भी बलवान।
जिसके द्वारा युद्ध में तजें द्रोण गुरु प्रान॥
बनवारी के वाक्य सुन, लेकर लम्बी सांस।
कुन्ती सुत कहने लगे, सुनो प्रभु गुणरास॥

जिस दिन से वे भीषण प्रतिज्ञ, गंगानन्दन मेरे हारा ।
घायल हो गिरे तभी से मैं, पाता हूं प्रभु संकट भारा ॥
अब फिर मुझको क्यों नहं पीर. हे यदुनन्दन पहुंचाते हो ।
क्यों नहीं किसी योधा से कह, गुरुवर का वध करवाते हो ॥
करदो मुझको तो क्षमा प्रभू, मैं नहीं अधर्म कमाऊंगा ।
जीतेजी कभी गुरुजी पर, नहिं अपना धनुष उठाऊंगा ॥

कहा कृष्ण ने पार्थ तुम, भूलगये फिर धर्म ।
सोच छोड़ पालो सखे, क्षत्रि जाति का कर्म ॥

ये युद्धभूमि है प्रिय अर्जुन, यहां मती गिनो रिश्तेदारी ।
इस जगह तो अपने शत्रू को, वधना ही है अति शुभकारी ॥
देखो तो द्रौण की तरफ ज़रा, वे तुम्हरे गुरू कहाते हैं ।
लेकिन वे रण में क्या तुमपर, किंचित नरमी दिखलाते हैं ॥
वे तो निज करतव के माफिक, कर रहे भला दुर्योधन का ।
तुम भी करतब का ध्यान धार, बस नाश करो निज शत्रुन का ॥

यदुराई ने पार्थ को, समझाया इस तौर ।
पर उसने इस बात पर, किया नहीं कुछ गौर ॥

पांडवों के रक्षक श्री हरि ने, इनका जब ऐसा हाल लखा ।
तब धर्मराज के सन्मुख जा, बोले अर्जुन के बाल सखा ॥
हे महाराज देखो तो सही, सब सेना कटती जाती है ।
गुरुवर का बाहूबल लख कर, बस हार दृष्टि में आती है ॥
अर्जुन ये हाल देखकर भी, उनको न मारना चाहते हैं ॥
शिष होकर नहीं गुरू को वे, रण में संहारना चाहते हैं ॥
इसलिये उपाय रचो राजन, सेना की रक्षा करने का ।
कौशल द्वारा गुरु के कर से, सारे शस्त्रों को हरने का ॥
जब तलक रहेगा धनु कर में, ये कभी न जीते जावेंगे ।
सुरपति तक को भी सन्मुख पा, निश्चय ही मार

शस्त्र हीन जब होयँगे, गुरुवर द्रौणाचार्य ।
तव ही पांडव सेन का, होवेगा प्रिय कार्य
मैं युक्ति बताता हूँ तुमको, यदि इसके माफिक काम करो ।
तो शत्रु नाश करके सचमुच, दुख शोक सिंधु से शीघ्र तरो ॥
यदि उन्हें कोई ये कह देवे, अश्वत्थामा बेजान हुआ ।
तो समझो उनके हाथों से, झट अलग धनुष और बान हुआ ।
है कौनसा नर जो अचल रहे, लड़के की मृत्यु खबर सुनकर ।
बस इसी शोक से व्याकुल हो, वे तज देंगे सारे शस्तर ॥
ऐसी हालत में फिर उनका, वध करना क्या मुश्किल होगा ।
इसलिये शीघ्र ये काम करो, रण करना तो निष्फल होगा ॥
पांडव दल का विश्वास उन्हें, नहिं होगा यदि कहला देंगे ।
तुम झूंठ कभी नहि कहते हो, अस्तू वे भरोसा कर लेंगे ॥
संध्या तक गुरुवर यदी, रहे मारते मार ।
तो सच समझो सेन का, होगा पूर्ण संहार ॥
इसलिये कटक की रक्षा हित, ये युक्ति काम में लाओ तुम ।
कुछ इसमें बुरा नहीं है यदि, कौशल से काम बनाओ तुम ॥
जहां प्राणों का भय हो राजन, छल कपट न पाप गिना जाता ।
फिर नीती भी कहती है यही, वैरी छल से जीता जाता ॥
गुरु से उनके पुत्र का, कहो मृत्यु संवाद ।
शत्रु निधन हो हर्ष हो, होवे नष्ट विषाद ॥
लेकिन धर्म नृपाल को, जची नहीं ये बात ।
बोले झट भगवान से, करके ऊँचा हाथ ॥
हे नटवर ऐसा घोर कर्म, मुझसे नहिं होने पावेगा ।
जिसने बोली है सत्य सदा, किम झूंठ वाक्य फरमावेगा ॥
वो भी उनके सन्मुख जाकर, जिनको मैं पूज्य समझता हूं ॥
बस क्षमा करो हे यदुराई, मैं धर्म त्यागते डरता हूँ ॥

जिस तरह तीव्र विष खाने से, जीवों का प्राण चला जाता ।
या भ्रष्ट अन्न भक्षण से ज्यों, चित में न ज्ञान रहने पाता ॥
अथवा कुसंग में जाने से, लगने हैं जिमि पातक भारे ।
त्योंही प्रभु झूंठ बोलने से, नस जाने हैं सुकृत सारे ॥
चाहे मेरी फौज का, हो जावे संहार ।
मिले अन्त में जय मुझे, अथवा होवे हार ॥
लेकिन न कहूँगा झूंठ कभी, जाने जो तो है धनधारी ।
यदि मिथ्या भाषण करता तो, क्यों अबतक पाता दुखभारी ॥

※ गाना ※

हरगिज न बात मुख से झूठी सुनाऊंगा मैं ।
जबतक है प्राण अपयश नहीं कमाऊंगा मैं ॥
दुनिया में इससे बढ़कर कोई नहीं है पातक ।
फिर क्यों सुमार्ग तज के दुष्पथ में जाऊंगा मैं ॥
चाहे मिले पलक में त्रिभुवन का राज मुझको ।
लेकिन प्रभू कभी भी नहिं सत गमाऊंगा मैं ॥
अस्तू गुरू के बध की कोई और राह निकालो ।
जीते जी धर्म सुधि ना चित से भुलाऊंगा मैं ॥

यहां खड़े थे वीर वृकोदर भी, वे इन वचनों को सह न सके ।
पर गिन भूपति को जेष्ट भ्रात, इनके खिलाफ कुछ कह न सके ॥
इतने में इन्हें याद आया, कुरु दल में हैं इक भूपाला ।
जो रखते हैं अश्वथामा, नामक एक हाथी मतवाला ॥
यदि वो कुंजर मारा जावे, मिटजाय सकल सन्ताप अभी ।
बस यही युक्ति हेगो जिससे, नृप को न लगेगा पाप कभी ॥

ये कर विचार श्री भीमसेन, ले गदा यान पर चढ़ दौड़े ।
और जा उस हाथी के समीप, कर प्रहार सारे अंग तोड़े ॥
मरगया वो थोड़ी देरहि में, ये देख गदाधर हर्षाये ।
निज रथ को अति दौड़ाते हुये, पल में भूपति के ढिंग आये ॥
और कहा मैंने अश्वथामा, नामक एक हाथी है मारा ।
अस्तू अब तो जा, कहो, गया, है अश्वथामा संहारा ॥
तो भी ये बात युधिष्ठिर ने, मानी अति ही कठिनाई से ।
आखिर रथ चढ़ा चले आये, गुरु सन्मुख आतुरताई से ॥
और कहन लगे अति घबराकर, अश्वथामा संहार हुआ ।
नर हो या कुंजर हो लेकिन, पांडवों का हलका भार हुआ ॥
पहिला फिकरा नरराई ने बोला था अति चिल्ला करके ।
और कहा था अंतिम फिकरे को, धोरे से होठ चबा करके ॥
इसके सिवाय इक और चाल, खेली थी पांडव वीरों ने ।
अन्तिम फिकरा कहने के समय, फूँके थे शंख रणधीरों ने ॥
इसलिये गुरू ने यही सुना, अश्वथामा संहार हुआ ।
जिससे वे इतने घबराये, मानो सिर वज्र प्रहार हुआ ॥

जन्म युधिष्ठिर ने लिया, था जब से भू मांहि ।
तब से झूँठ जबान से, कभी कही थी नाहिं ॥

इस पूर्ण सत्यनिष्ठा के ही, कारण महाराजा का स्यंदन ।
भूमी से चार अंगुल ऊँचा, रहकर करता था सदा गमन ॥
पर जरा झूँठ के कहते ही, वो रथ जमीन से आय लगा ।
हा कितना दुख दायक होता, करनाभि किसीसंगतनिकदगा ॥
गो गुरू को आशा थी मम सुत, अति अद्भुत ताकत रखता है ।
फिर किस प्रकार आसानी से, उसका मरना हो सकता है ॥
लेकिन नृप को सचाई पर, गुरुवर को पूर्ण भरोसा था ।
ये कभी झूंठ नहिं बोलेंगे, इस बात का मन में तोसा था ॥

अस्तु बात को सच समझ, विकल हुये आचार्य ।
तजा धनुष और बाण सब, छूटा रण का कार्य ॥
होगये चेतना शून्य गुरु, जग अन्धकार सम जान पड़ा ।
तज जीवन आशा निश्चल हो, बैठे मस्तक में प्राण चढ़ा ॥
और त्रिभुवन पति जगदीश्वर को, बस लगे सुमिरने गुरुराई ।
होगये ध्यान में लीन तुरत, सारे तन की सुधि बिसराई ।
जब से आचार्य ने द्रौपद को, पटका था भूमी पर बल कर ।
तब ही से धृष्टद्युम्न मन में, रिसियाय रहा था गुरुवर पर ॥
अस्तू तलवार उठा दौड़ा, लखते हि विकल गुरुराई को ।
पांडव दल भौंचकसा होरहा, लख इसकी आतुराई को ॥
केवल अर्जुन ने रोका पर, इसने नहिं चित्त कुछ ध्यान दिया ।
जा चढ़ा तुरत गुरु के रथ पर, और शस्त्र चला सिर काट लिया
इस तरह युद्ध कर पाँच रोज, अति घोर भयानक भयकारी ।
होगये अस्त रवि के समान, रिपु त्रस्त बना गुरु धनुधारी ॥
इनके मरते ही कुरुदल में, अति भीषण हा हा कार हुआ ।
रण तजकर भगने लगे लोग, पल भर टिकना दुश्वार हुआ ॥
दुर्योधन, कृप आदिक ने भी, जब ये दुख दायक सुधि पाई ।
हो गये विकल शर छूट पड़े, मुखपर जरदी दी दिखलाई ॥
आखिर लड़ना छोड़कर, ये भी सब रणधीर ।
हवा हुये भयभीत हो, भर आँखों में नीर ॥
सेना का ऐसा हाल देख, अश्वत्थामा अति चकराया ।
होकर उत्कंठित हृदय में, झट कृपाचार्य के ढिग आया ॥

---

* धृष्टद्युम्न का जन्म द्रोणाचार्यजी को मारने के लिए ही हुआ था इसी लिये इन्होंने गुरुजी का सिर काटा परन्तु इसका असली कारण जानने के लिये पाठक गण तीसरा भाग देखें ।

और बोला मामा बात है क्या, क्यों अपना दल घबराता हुआ।
भागा जाता है युद्ध छोड़, आँखों से अश्रु बहाता हुआ॥
क्यों नहीं रोक कर आप इन्हें, रण करने को उकसाते हो।
हैं! क्या कारन है तुम खुद भी, शोकाकुल दृष्टी आते हो॥
फिर कुरुपति रविसुत आदिक भी, नीचा मुँह करके जाय रहे।
आई है कोई महा विपति, इनके चहरे दरसाय रहे॥
दल की ऐसी भयभीत दशा, मैंने अबतक न निहारी है।
बतलाओ क्या कारण है जो, सब ने व्याकुलता धारी है॥

अश्वत्थामा के वचन, सुन करके कृप वीर।
हुये शोक बस और भी, बहन लगा दृग नीर॥

आखिर अति मुश्किल से चित की, कर दूर तनिक व्याकुलताई।
टूटे फूटे शब्दों में कहा, जिस तरह मरे थे गुरुराई॥
सुनते ही पितु की मृत्यु कथा, रणधीर वीरवर धनुधारी।
अश्वत्थामा इकदम भू पर, गिरगया विकल होकर भारी॥
सुधि बिसर गई सारे तन की, पल में योधा बेहोश हुआ।
मुरझाय गया चहरा फौरन, पानी पानी सब जोश हुआ॥

आखिर कुछ ही देर में, जाग उठा बलवान।
गुस्से से दृग लाल कर, बोला भृकुटी तान॥

मामा! मामा!! वह दुष्ट नीच, खल धृष्टद्युम्न मेरे द्वारा।
संग्राम क्षेत्र में तन तजकर, जावेगा यमपुर हत्यारा॥
निर अस्त्र पिता का बध करते, पापी को दया नहीं आई।
होकर उत्तम कुल में पैदा, दिखलाई कितनी कुटिलाई॥
ये अश्वत्थामा आज यहाँ, वो अद्भुत बल दिखलायेगा।
अवलोक जिसे सब लोगों को, आश्चर्य बहुत ही छायेगा॥
देखेंगे सुर मुनि भी सारे, शत्रो मेरे शर जालों को।
होती है कितनी बरबादी, मुझ द्वारा क्षत्रो लालों को॥

मैं आज वह शर प्रगटाऊँगा, जो अस्त्र नरायण कहलाता ।
जिसके चलते ही दम भर में, संसार भस्म दृष्टी आता ॥
नहिं था ये ज्ञात भीष्मजी को, अर्जुन तक ने भि नहीं जाना ।
केवल एक पिता जानते थे, इसको तजकर फिर लौटाना ॥
किया उन्होंने हो खुशी, मुझे वह अस्त्र प्रदान ।
अस्तु देखना आज कस, करता हूँ घमसान ॥

*** गाना ***

जिधर मैं बान चलाऊंगा सफाई होगी ।
दिखाऊं शक्ति जो अबतक न दिखाई होगी ॥
चाहे रिपुओं की मदद करने इन्द्र भी आवे ।
युद्ध में आज किसी की न रिहाई होगी ॥
भस्म कर दूंगा कटक पांडवों की पलभर में ।
चतुरता हरि की भी नहिं आज सहाई होगी ॥
सोच तज शीघ्र मेरे पीछे चले आवो तुम ।
आज गुरु पुत्र की घनघोर लड़ाई होगी ॥

इतना कह अश्वत्थामा ने, निर्मल जल से आचमन किया ।
और बड़े प्रेम से जगदीश्वर, श्रीनारायण को नमन किया ॥
फिर मंत्र पढ़ा जिससे तत्क्षण, वो महा भयानक भयकारी ।
शर प्रगट हुआ, था जिसका अति, परकाश दिवाकर सम भारी ॥
इसके उत्पन्न होते ही झट, वायू ने प्रवल वेग धारा ।
बिन ही मेघों के करने लगा, अति गर्जन नभ मंडल सारा ॥
कपायमान होगई धरणि, वारीश तरंगाकार हुआ ।
गिरि शिखर गिरे तरुवर टूटे, सेना में भय संचार हुआ ॥

ऐसे दारुण शस्त्र को, अपने कर में धार।
अश्वत्थामा शीघ्र ही, रथ पर हुवा सवार॥
और बोला हे कौरव वीरों, निर्भय हो बढ़े चले आओ।
अर्जुन, भीमादिक से मन में, किंचित न आज दहशत खाओ॥
इस धृष्टद्युम्न के साथ सभी, पांडव संहारे जावेंगे।
मम पितु के जीवन हरने का, वे दुष्ट पूर्ण फल पावेंगे॥
यों कह सेना एकत्रित कर, बढ़गया द्रौण सुत लड़ने को।
आते निकट पांडवों के, आज्ञा देदी रण करने को॥
फिर दोनों फौजें क्रोधित हो, भिड़गई परस्पर गर्जन कर।
योधागण मारन लगे मार, घायल हो गिरे कई भू पर॥
इसी समय गुरुपुत्र ने, करके गर्ज महान।
किया नरायण अस्त्र को, धनुवा पर संधान॥
और ताक पांडवों के दल को, शर छोड़ दिया क्रोधित होकर।
छुटते ही ऐसा शब्द हुआ, जनु वज्र गिरा हो भूधर पर॥
वह शस्त्र प्रलय की अग्नि सरस, पांडवों का दल नाशन लागा।
मर गये सैकड़ों दम भर में, यह लख सबके हिय डर जागा॥
ज्यों ज्यों योधागन करने लगे, तदवीरें उसके रोकन की।
धर उग्र रूप वो हरने लगा, त्यों त्यों बस जानें लोगन की॥
ये देख विकल हो सेन सभी, भागी पर भाग नहीं पाई।
क्योंके उस शर से दसों दिशा, घिर गई थी अस्तू चकराई॥
त्राहि त्राहि सब जां हुई, थर्राये रण धीर।
देख हाल निज फौज का, अर्जुन हुये अधीर॥
तत्त्क्षण अपने तरकस में से, छांटे वे तीर धनंजय ने।
जो दिये थे इनको वरुण, इन्द्र, अग्नी, कुवेर, मृत्युंजय ने॥
और क्रम क्रम से धनु पर चढ़ाय, नारायण शर के खंडन को।
छोड़े पर वृथा गये, ये लख, दुख हुआ कुन्ति के नन्दन को॥

बढ़ता हि गया शर का प्रभाव, और कटने लगी कुल कटकाई ।
तब मुख्य मुख्य वीरों को बुला, बोले आतुर हो यदुराई ॥
हे योधाओं जल्दी जाकर, कहदो निज निज कटकाई को ।
सब शस्त्र व वाहन तज देवें, कर देवें बन्द लड़ाई को ॥
और होकर स्वस्थ, हृदय में सब, श्री नारायण का ध्यान धरें ।
फिर अपने अपने सिर झुकाय, इस शर को नमन प्रदान करें ॥
यदि इसको हथियारों द्वारा, तुम नष्ट बनाना चाहोगे ।
तो यह नहिं होगा शान्त कभी, लड़ते लड़ते मर जाओगे ॥

अपनी रक्षा के निमत, करो यही तुम काम ।
जिससे ये शर शान्त हो, शुभ फल हो परिणाम ॥

सुन आज्ञा सेनापतियों ने, सब जगह खबर ये पहुँचादी ।
करते हि श्रवण दलवालों ने, तज दिये शस्त्र वाहन आदी ॥
केवल एक वीर वृकोदर ने, प्रभु की आज्ञा नहिं स्वीकारी ।
झट गदा उठा गर्जन करके, कीन्ही लड़ने की तय्यारी ॥
और बोले चाहे जान जाय, लेकिन शर तजना धर्म नहीं ।
क्षत्रियों का रण की भूमी में, ऐसा करना शुभ कर्म नहीं ॥

इसीलिये श्री भीम के, चौतरफा तत्काल ।
लगी फैलने वेग से, शर की ज्वाल विशाल ॥

होने वाले थे भीम भस्म, इतने में हरि अर्जुन धाये ।
जबरन हथियार छीन इनको, रथ से घसीट नीचे लाये ॥
तब कहीं हुआ वह अस्त्र शान्त, ये लखकर सेना हर्षाई ।
लेकिन इस थोड़े समय में ही, शर ने अति हानी पहुँचाई ॥
चकराय गया अश्वत्थामा, निज अस्त्रको निष्फल जातेलख ।
आखिर क्रोधित हो अग्निवान, छोड़ा इसने पांडवों को तक ॥
इस शर ने भी दल में आकर, गहरा आतंक मचाय दिया ।
तब अर्जुन ने तज ब्रह्मअस्त्र, इसको भी शान्त बनाय दिया ॥

पांडव दल में आनन्द हुआ, और अश्वथामा मुरझाया
इतने में सूरज ने छिपकर, झट अंधकार वहाँ फैलाया।
लौट पड़े दोनों कटक, बंद हुआ संग्राम ।
निज निज डेरे जायकर, करन लगे आराम ॥
दुर्योधन इस रात को, हुआ बहुत बेचैन ।
मन ही मन कहने लगा, अश्रु पूर्ण कर नैन ॥
होचुकी होचुकी पूर्ण आज, रिपु से जीतन की अभिलाषा
भर गया अंधेरा चहूँ ओर, छागई हृदय में निरआशा
हा जिस दिन से संग्राम छिड़ा, हानी होती ही जाती है
जो भी तदवीर सोचता हूँ, उल्टा ही रंग दिखाती है
श्री भीषम सदृश्य युद्ध अजय, गुरुवर सम बाँके धनुधारी
जिनके एक तनिक क्रोध से ही, कांपे थी ये भूमी सारी
उनको गिन अपना मददगार, सेना का पती बनाया था
मारेंगे ये निश्चय रिपु को, ऐसा अंदाज लगाया था
लेकिन कुछ ही दिन रण करके, वे महारथी भट बलवानी
हो गये अस्त दिनकर समान, फिर गया उमेदों पर पानी
अब कोई आता नज़र नहीं, जिसको दुख कथा सुनाऊं मैं
हे विधना क्यों कर धीर धरूँ, क्या करूँ कहाँ अब जाऊँ मैं
इसी फिक्र में भूप को, नींद न आई रात ।
अश्रु बहाता ही रहा, आखिर हुआ प्रभात ॥
बचे हुये रणधीरों को, इसने अपने ढिग बुलवाया
और आजाने पर इन सब के, हो विकल इस तरह फरमाया
हे बुद्धिमान अवनीपतिगन, बोलो अब क्या करना चहिये
रण दुर्मद रिपु की सेना से, लड़ना या घर चलना चहिये
सुन वचन भूप के वीर सभी, रण का संकेत जताने लगे
ये लख हर्षित हो द्रोण पुत्र, नृप को इस तरह सुनाने लगे

भूपति ! हम लोगों के योधा, जो जग में अजय कहाते थे ।
नर की तो क्या गिनती जिन से, निश्चर तक भी थर्राते थे ॥
फिर थे देवों सम पराक्रमी, नितिज्ञ, चतुर, कोविद ज्ञानी ।
अव्वल दरजे के स्वामिभक्त, रण नीति विशारद गुणवानी ॥
वे तो क्षत्रिय धर्मानुसार, निज निज कर्तव्य का पालन कर ।
रिपुओं का खंडन करते हुये, बलिदान हुये रण भूमी पर ॥
तो भी जय पाने की आशा, हमको न कभी तजनी चहिये ।
हम भी बलवानो हैं अस्तु, चित में हिम्मत रखनी चहिये ॥
अच्छी नीती और युक्ती से, अनुकूल दैव भी होजाता ।
जिस जगह एकता हैं वहाँ पर, तत्काल सुःख दौड़ा आता ॥

अस्तु बनाकर कर्ण को, हम अपना सरदार ।
समर क्षेत्र में जाय कर, करें शत्रु दल क्षार ॥

हैं ये भी बाँके धनुधारी, शर विद्या के उत्तम ज्ञाता ।
रण पंडित अतिशय पराक्रमी, रिपुओं को यम सम भयदाता ॥
यदि इनको सेनप बना दिया, हम सब सनाथ हो जावेंगे ।
फिर पांडु सुतों की क्या गिनती, सुरपति तक से जय पावेंगे ॥
सुन द्रोण तनय के वचनों को, सारे राजा अति हर्षाये ।
कुरुपति भी मन भावन बातें, कर श्रवण बहुत ही पुलकाये ॥
भीषम व द्रोण की मृत्यु बाद, दुर्योधन की आशा सारी ।
रह गई थी केवल रविसुत पर, गिनकर इनका अति बलधारी ॥
इसलिये वाक्य सुन गुरुसुत के, इसका सारा दुख दूर हुआ ।
हो गई हरी जय की आशा, चहरा सतेज भरपूर हुआ ॥

संबोधन कर कर्ण को, कहन लगा कुरुराय ।
विनय एक मेरी सखे, करो श्रवण चितलाय ॥

इस समय सकल कटकाई के, तुम्हीं एक मात्र सहारे हो ।
यकता हो बल और बुद्धी में, फिर सच्चे हितू हमारे हो ॥

अस्तू सेनपपद कर गृहण, दुख से मेरा उद्धार करो ।
जो भीष्म द्रोण से हुआ नहीं, उस काम को पूरा यार करो ॥
गो वे दोनों बूढ़े योधा, थे अति ही बांके धनुधारी ।
यदि चाहते तो एक पल भर में, कर देते नष्ट भूमि सारी ॥
उनके ही पूर्ण भरोसे पर, मैं आया था रण करने को ।
अर्जुन भीमादिक वीरों का, पल भर में जीवन हरने को ॥
लेकिन वे दोऊ पांडवों पर, हृदय से नेह दिखाते थे ।
उत्तम अवसर आने पर भी, उनपर नहिं बाण चलाते थे ॥
था यही सबब जिससे मेरी, सेनायें पिटती जाती थीं ।
और उन बलहीन कायरों की, मूँछें ऊँची दरशाती थीं ॥

दिखते थे ये मित्र सम, पर थे शत्रु हमार ।
ऐसी हालत में कहो, किम हो रिपु संहार ॥

इस समय में उन दोनों में से, इक ने तो शर सैया पाई ।
और गया दूसरा स्वर्गलोक, रण में निज देही बिसराई ॥
होगया है अब कुरुदल अनाथ, कर कृपा हे मित्र सनाथ करो ।
सेनापति बन कर रण में जा, रिपुओं से दो दो हाथ करो ॥
तुम हो उन दोनों से बढ़कर, रण धीर वीर पंडित ज्ञानी ।
अस्तू तुम्हरे ही हाथों से, होगी निश्चय मम मनमानी ॥

दुर्योधन के वाक्य सुन, उठे कर्ण रणधीर ।
हृदय लगा कुरुईश को, बोले वचन गम्भीर ॥

सखा सोच तज दो सारा, अब मैं निज बल दिखलाऊँगा ।
कुरु दल का सेनापति बनकर, रिपुओं को मार भगाऊँगा ॥
जिस तरह प्रबल आँधी द्वारा, तरुवर समूह नस जाता है ।
त्योंही तकना ये कर्ण आज, कैसा आतंक मचाता है ॥
रवि नंदन के वचनों को सुन, दुर्योधन अतिशय हर्षाया ।
अभिषेक कर्ण का करन को, सामान तुरत ही मंगवाया ॥

विधि के माफिक कर दिया, इन्हें कटक सरदार ।
ये विलोक कुरु फौज में, गूँजी जय जयकार ॥
भीषम व द्रोण के मरने का, दुख भुला दिया सब ने पल में ।
अब मरेंगे निश्चय पांडव सब, ये ध्वनि छाई सारे दल में ॥
फिर रण का समय उपस्थित लख, रविनन्दन निज रथ मंगवा कर ।
हर्षित हो उसमें जा बैठे, निज इष्ट देव को सिर ना कर ॥
और सेना वालों को बुलवा, आज्ञा दी साज सजाने को ।
सुन हुक्म सभी तैयार हुये, शत्रू से युद्ध मचाने को ॥
श्रोताओं आज सोहलवा दिन, था इस घनघोर लड़ाई का ।
बुद्धी बस चक्कर खाती थी, लख हाल कुरु कटकाई का ॥
महाबली कर्ण ने अति अद्भुत, चातुर्य आज दिखलाया था ।
आकार मगर का होता है, वैसा एक व्यूह बनाया था ॥
इस व्यूहके मुखकी जगह, स्वयम यही रणधीर ।
खड़े हुये अति हर्ष से, चढ़ा धनुष पर तीर ॥
शकुनी उलूक तैनात हुये, दोऊ नेत्रों के स्थानों पर ।
आ जमे ठौर पर मस्तक की, अश्वथामा धनु धारन कर ॥
और हुये पीठ की जगह खड़े, कुरुपति संग ले कइ नरराई ।
सब से पीछे मुस्तैद रहे, नृप बाह्लीक रिपु भयदाई ॥
अब चारों पांव रहे जिन में, थे प्रथम पांव पर कृतवर्मा ।
दोयम पर कृपाचार्य योधा, सोयम पर शल भीषण कर्मा ॥
चौथे पर वीर त्रिगर्त भूप, थे खड़े लिये सेना भारी ।
यों कटक जमा रविनंदन ने, कीन्ही लड़ने की तैयारी ॥
ठीक ठाक लख व्यूह को, सूर्य पुत्र बलवान ।
धनुवा को टंकोर कर, गरजे सिंह समान ॥
फिर बड़ी ज़ोर से शंख बजा, भटमानी ने प्रस्थान किया ।
चल पड़ी सकल गुरु सेना भी, और कुरुक्षेत्र का मार्ग लिया ॥

चलते चलते आगये वहीं, होता था रण जहाँ नित्य प्रती ।
योधा आपस में भिड़ भिड़ कर, पाते थे जहाँ पर वीर गती ॥
देख कर्ण के ठाट को, धर्मराज घबराय ।
गये वहाँ जहँ थे खड़े, पार्थ और यदुराय ॥
और कहन लगे देखो तो जरा, इस सूत पुत्र की चतुराई ।
कैसे आश्चर्य जनक मग से, व्यूह बद्ध करी है कटकाई ॥
ऐसा अद्भुत और सुदृढ़ कोट, भीषम तक ने न बनाया था ।
श्री गुरुवर ने भी कभी नहीं, इस तरह से जाल रचाया था ॥
मैं तो केवल गिनता था इसे, धनुविद्या में ही लासानी ।
पर सेना संचालन में भी, निकला ये तो अति गुणखानी ॥
ये लख बदले हैं निश्चय में, बस आज मेरे अनुमान सभी ।
दुनियां में है न हुआ होगा, इसके समान बलवान कभी ॥
सुर असुर नाग किन्नर तक भी इससे नहिं जय पा सकते हैं ।
फिर हम जैसे इसके सन्मुख, क्या कोशल दिखला सकते हैं ॥
नहिं लगा था भय रणभूमी में, इतना भीषम और गुरुवर से ।
जितना लगता है आज मुझे, इस दिनकर पुत्र धनुर्धर से ॥
इसलिये शीघ्र ही तुम भी अब, व्यूह बद्ध करो निज कटकाई ।
और जैसे हो इस शत्रू को, कर डालो जल्द धराश्यायी ॥
इसके ही भय से मेरे, सूखत है नित प्रान ।
अस्तु इसे संहार कर, मेटो दुःख महान ॥
सुन भाई की बात को, अर्जुन ने मुस्काय ।
अर्ध चन्द्र आकार का, लीन्हा व्यूह बनाय ॥
जिसके बाईं दिश खड़ा किया, श्री भीमसेन बलवानी को ।
और रक्खा दक्षिण की जानिब, द्रौपदी भ्रात भटमानी को ॥
नृप सहित बीच में रहे स्वयम, पीछे सहदेव विराज गये ।
इस प्रकार सेनापतियां ने, रच लिये तहां व्यूह नये नये ॥

आते ही रण का समय, गरज उठे सब वीर ।
बाजों की भी शीघ्र ही, छाई ध्वनि गम्भीर ॥
लग गये हिन हिनाने घोड़े, हाथी चिंघाड़ मचाने लगे ।
गड़गड़ा उठे रथ के पहिये, शर चका चौंध फैलाने लगे ॥
बस इसी समय कर्णार्जुन ने, कर दिया इशारा बढ़ने का ।
अपने अपने शस्तर सम्भाल, पैंतरा बदलकर लड़ने का ॥
आज्ञा की केवल देरी थी, सुनते ही योधा गरमाये ।
भिड़गये परस्पर इस प्रकार, मानो दो पर्वत टकराये ॥
लग गये बरसने अस्त्र शस्त्र, पल में अति कोलाहल छाया ।
वीरों ने रण कौशल दिखला, वीरों को भू पर पौढ़ाया ॥
हलचल से गरद गुबार उठा, सूरज की ज्योति विलीन हुई ।
छागया घोरतर अंधियारा, पर कटक न तेरह तीन हुई ॥
बल्की दूनी हिम्मत उमंग, रणधीरों के मुखपर छाई ।
ऐसे मचले के दम भर में, शोणित की सरिता प्रगटाई ॥
होगया बंद रज कण उड़ना, इससे तहां तुरत प्रकाश हुआ ।
हर्षाय गये योधा सारे, ताकत का और विकाश हुआ ॥
ये प्रतीत होने लगा, देख घोर संग्राम ।
मानो सब का आज ही, होगा काम तमाम ॥
रण के आरम्भ में तो पैदल, पैदल में युद्ध मचाते रहे ।
घुड़ सवार घोड़े वालों के, सन्मुख जा शस्त्र चलाते रहे ॥
टकराते रहे स्यन्दनों से, स्यन्दन और हाथी से हाथी ।
यानी सब योधा लड़ते रहे, लख समान बलवाला साथी ॥
लेकिन रण का ये उच्च ढंग, कुछ ही देरी में भंग हुआ ।
अति अधिक क्रोध के आने से, वीरों का और हि रंग हुआ ॥
फौजों के व्यूह नस गये, बिखर गये सब वीर ।
आगे पीछे होयकर, लड़न लगे रणधीर ॥

इस समय महाबल भीमसेन, ले गदा हाथ में भयकारी ।
घुस गये शत्रुओं के दल में, और मारन लगे मार भारी ॥
कुछ ही देरी में योधा ने, गहरी हलचल फैलाय दई ।
चौथाई सेना को वधकर, रण भूमी में पौढ़ाय दई ॥
डगमगाने लगती है जैसे, टूटी नौका जलनिधि अन्दर ।
त्योंही कंपित कुरुसेन हुई, बस चोट गदा की खा खा कर ॥
इनके सन्मुख आ लड़ने में, कोई योधा न समर्थ हुआ ।
यहां तक कि इकट्ठे लोगों का, बल और परिश्रम व्यर्थ हुआ ॥
तब हार मान कुरुसेन ने, घबराय पीठ निज दिखलाई ।
ये लखकर गुरुसुत के तन में, गुस्से से झट लाली छाई ॥
आगया भीम के निकट तुरत, धनु तान बान बरसाने लगा ।
अंगों में कुन्ती नंदन के, गहरी पीड़ा पहुँचाने लगा ॥

देख पराक्रम होगये, वीर वृकोदर आग ।
फुंकारे रण भूमि में, जैसे काला नाग ॥

और गदा उठा दोउ हाथों से, द्रोणी की जानिब को धाये ।
एक हाथ दिया रथ टूट गया, घोड़े मरते दृष्टि आये ॥
तब चढ़कर और अपर रथ पर, झट अश्वत्थामा ललकारा ।
एक तीव्र बाण धनु पर चढ़ाय, कुन्ती सुत के उर में मारा ॥
होगया भयानक युद्ध शुरू, दोनों योधा टकराने लगे ।
कानों तक शारंग को चढ़ाय, अति गहरी मार मचाने लगे ॥

अद्वितीय थे शारिरिक, बल में भीम सुजान ।
पर धनु विद्या में चतुर, था गुरुपुत्र महान ॥

इसलिये वृकोदर पा न सके, जय अश्वत्थामा से लड़कर ।
बल्की कुछ देर बाद घायल, होकर गिरगये तुरत रथ पर ॥
आगई मूर्च्छा पीड़ा से, ले इन्हें सारथी हवा हुआ ।
तब द्रोणी अति गर्जन करके, पांडवों की जानिब रवां हुआ ॥

कुछ आगे बढ़ते ही इसको, रथ धृष्टद्युम्न का दृष्टि पड़ा ।
लखते ही पितु के घातक को, हृदय में अतिशय क्रोध चढ़ा ॥
जा पहुँचा इसके निकट और, बोला दृग लाल बना करके ।
रे दुष्टात्मन् तू आज नहीं, जा सकता जान बचा करके ॥
निरअस्त्र अवस्था में पितु का, जीवन हरने वाले पापी ।
कुछ देर और इस दुनियां को, लखले व हवा खाले पापी ॥
मैं सत्य वचन कहता हुँ तुझे, बस आज हरूँगा प्रान तेरा ।
कर भूमि लाल तव शोणित से, अरमान करूंगा पूर्ण मेरा ॥

धृष्टद्युम्न भी होगया, क्रोधित, सुनकर बैन ।
धनुष चढ़ा कहने लगा, रक्त वर्ण कर नैन ॥

हे मूर्ख कायरों के समान, क्यों कोरी बात बनाता है ।
यदि बल रखता है दुष्ट नीच, तो क्यों न उसे दिखलाता है ॥
जिन हाथों ने तेरे पितु को, बध कर यमपुर पहुँचाया है ।
उनसे ही मारूंगा तुझको, ये ही चित में ठहराया है ॥
ये सुनते ही लग गई आग, अश्वस्थामा के सब तन में ।
कर भृकुटि कुटिल धनु को चढ़ाय, वो योधा गर्ज उठा रन में ॥
और लगा छोड़ने तीव्र बाण, पर धृष्टद्युम्न ने सब काटे ।
फिर अपना भी अवसर विलोक, कर क्रोध करारे शर छांटे ॥
वे गुरुसुत ने कर दिये खंड, इस तरह ये दोनों बलवानी ।
बढ़ बढ़ कर युद्ध मचाने लगे, नहिं हुई किसी को हैरानी ॥
आखिर एक बार द्रुपदसुत ने, मौका पा एक बाण मारा ।
जिससे झट अश्वस्थामा का, होगया विदीर्ण हृदय सारा ॥
छुट पड़ा हाथ से धनुष बाण, बलवान तुरत बेहोश हुआ ।
पर आते ही चेतनताई, इसके चित में अति जोश हुआ ॥

कर में फिर धनु धारकर, बोल उठा ललकार ।
रे द्रौपद सुत शीघ्र हो, मरने को तैयार ॥

करले प्रयत्न तू कैसा भी, लेकिन न बचेंगे प्रान तेरे ।
दमभर में तुझे पठायेंगे, यम के घर अब ये बान मेरे ॥
इतना कहकर तरकस में से, छांटे शर तीन, धार वाले ।
जो थे ऐसे प्रचंड मानो, हों सपत्त त्रय विषधर काले ॥
और चढा एक ही साथ इन्हें, धनुवा पर, ये कुछ मुस्काना ।
कर लक्ष द्रुपदसुत का हृदय, शारंग कों कानों तक ताना ॥
फिर हांक मार शर छोड़ दिये, छुटते ही ध्वनी हुई भारी ।
सुनते हि जिसे होगई तुरत, कंपायमान सेना सारी ॥
वे तीर करारे जहर बुझे, नहि धृष्टद्युम्न से रुकपाये ।
बल्की इसका तन भेदन कर, भू में घुसते दृष्टी आये ॥
पल में लथपथ होगया, शोणित से ये वीर ।
वे सुध हो रथ में गिरा, त्याग धनुष और तीर ॥
ये लख इसका सर काटन को, आतुर हो द्रौण सुवन धाया ।
पर कुछ पांडव वीरों ने आ, उसको बीचहि में अटकाया ॥
लेकिन इन लोगों का प्रयत्न, होगया वृथा कुछ कर न सके ।
उस इकले से बहु विधि रन कर, कुछ देर बाद ये सभी थके ॥
आखिर को तेरह तीन हुये, ये सारे योधा घबरा कर ।
तब द्रौणपुत्र, द्रौपद सुत के, रथ के समीप पहुँचा जाकर ॥
और चहा तलवार से, दूं इसका तन चीर ॥
इतने ही में आ गये, तहां धनंजय वीर ॥
कर रहे थे ये रण पास हि में, इतने में इनको खबर मिली ।
कि गुरुसुत के कर से घायल, होगये हैं द्रौपद पुत्र बली ॥
ये सुनते ही ये चले और, आगये ठीक उस अवसर पर ।
जब अश्वत्थामा चाहता था, करना प्रहार उसके सिर पर ॥
अस्तु ये कुछ भी कर न रुका, फिर गया मनोरथ पर पानी ।
आखिर मजबूर होकर इसने, अर्जुन से लड़ने की ठानी ॥

दोनो थे रण बांकुरे, युद्ध केसरी वीर ।
हांक मार कर परस्पर, लगे छोड़ने तीर ॥
इस तरफ ये दोनो मतवाले, करते थे युद्ध भयंकारी ।
उस तरफ वीर रविनन्दन ने, अति ही भीषण मूरति धारी ॥
अपने रथ को मंडलाकार, रण भूमी में दौड़ाने लगे ।
और छांट छांट कर तीव्र बाण, रिपु सेना पर बरसाने लगे ॥
इनकी चोटों को सहने में, कोई भो नहीं समर्थ हुआ ।
यहां तक एकत्रित वीरों का, धावा व परिश्रम व्यर्थ हुआ ॥
हो विकल झुन्ड के झुन्ड हस्ति, भीषण चिंघाड़ मचाने लगे ।
होगये रथों के खंड खंड, घोड़े मर यमपुर जाने लगे ॥
कैसे बतलावें हाल तुम्हें, जो कुछ बीतो पैदल दल पर ।
इनके तो जत्थे के जत्थे, गिर गये भूमि पर जां खोकर ॥
धीरे धोरे वीर का, बढ़ा और भो जोश ।
जिसे देखकर होगये, बड़े बड़े बेहोश ॥
जिस तरह दानवों को रन में, मारा था शोघ्र पुरंधर ने ।
बस उसी तरह भुज बल दिखला, संहारा कटक वीरवर ने ॥
कब तोर निकाला और फिर कब, धनुवां पर रखकर रुंधाना ।
कब छोड़ा इसको ध्यान सहित, लखकर भी कोई नहीं जाना ॥
जिस तरफ दृष्टि डाला रन में, इनके ही शर दिखलाते थे
योधा भगने की राह न पा, बस घायल होते जाते थे ॥
आखिर में इनके वाणों ने, ऐसा बिकाल रूप धारा ।
मानिंद वज्र के गिरने लगे, कंपित हो गया कटक सारा ॥
सैनिक गण आखें मूंद मूंद, घबराकर इत उत जाने लगे ।
"हे वीर धनंजय मदद करो", यों आतुर हो चिल्लाने लगे ॥
सेना के बद हाल को, सके न नकुल निहार ।
हुआ क्रोध रवि-पुत्र पर, इनको बे शुम्मार ॥

आश्वासन दे निज लोगों को, अपने स्यंदन को दौड़ाया ।
और आकर रविनन्दन समीप, कर लाल नेत्र यों फरमाया ॥
रे पापात्मन् टुक धीर धार, मैं अभी कसर सब काढ़ता हूँ ।
कुरु पांडव सेना सन्मुख हो, तेरी सब शान बिगाड़ता हूँ ॥
तू ही जड़ है सब अनरथ की, शत्रुता की और लड़ाई की ।
तेरे हि सबब इस कुरु कुल को, नशने की घड़ी दिखाई दी ॥
अस्तू निर्जीव बनायेगी, खल तुझे आज मम शर धारा ।
कुछ भी कर, पर मेरे कर से, नहिं पा सकता तू निस्तारा ॥

वचन श्रवण कर नकुल के, मन ही मन मुस्काय ।
वीर कर्ण कहने लगे, नकली क्रोध दिखाय ॥

हे पान्डु कुंवर यदि तुझ में कुछ, बल है तो क्यों नहिं दिखलाता ।
किसलिये वृथा बातें बनाय, मम समय नष्ट करता जाता ॥
जो शूर हैं वे निज शक्ती की, नहिं कभी बड़ाई करते हैं ।
बल्कि अवसर पर बल दिखला, वे उसका परिचय देते हैं ॥
अस्तृ संभाल निज धनुवां को, झट दिखा पराक्रम सुकुमारे ।
मैं अभी ठिकाने करता हूं, तेरे होशो हवाश सारे ॥

नकुल क्रोध से भरगया, सुन रविसुत की बात ।
बान मार कर शीघ्र ही, पहुँचाई आघात ॥

भिड़गये परस्पर दोऊ वीर, फुरती से युद्ध मचाने लगे ।
कानों तक शारंग को चढ़ाय, अनगिनत तीर बरसाने लगे ॥
इतने में दैवयोग से इक, शर नकुल वीर का भय कारी ।
आ लगा कर्ण की छाती में, इससे वे विकल हुये भारी ॥
इसपर न क्रोध की हद रही, अति उग्र मूर्ति करके धारन ।
बलवीर तुरत तैयार हुये, माद्रीनंदन को संहारन ॥
तत्काल नकुल के शारंग को, शर द्वारा चकनाचूर किया ।
कर डाली चटनी घोड़ों की, सारथि का जीवन दूर किया ॥

पांडु तनय जब तक लगे, दूसर धनुष उठान ।
तब तक तो श्री कर्ण ने, कौतुक किया महान ॥
तनु त्राण के टुकड़े टुकड़े कर, कर दिया खंड सब स्यंदन को ।
यहां तक तरकस भी नष्ट किया, यों बना दिया व्याकुल इनको ॥
तब मजबूरन माद्री-नन्दन, रन तज कर फौरन हवा हुये ।
ये देख कर्ण भी मुस्काकर, झट इनके पीछे रवां हुए ॥
कुछ आगे जाकर निज धनु को, इनके गल मांही डाल दिया ।
फिर खींच के अपने रथ समीप, लाये और कहना शुरू किया ॥
अब कहां गई तेरी बड़ बड़, चुपचाप है क्यों बल दिखला तो।
झट तान धनुष को कानों तक, और मुझको यमपुर पहुँचा तो ॥
रख याद न अब आगे को कभी, कुरुवीरों के सन्मुख आना ।
जो तुझ सम ताकत रखतो हो, उनको ही भुजबल दिखलाना ॥
जाओ मैं छोड़े देता हूं, लड़ना न मेरे सन्मुख आकर ।
घर जा अथवा मुंह छिपा बैठ, अर्जुन के स्यंदन में जाकर ॥
यों कह छोड़ा नकुल को, रविसुत ने मुसकाय ।
जिससे वह अति हो दुखी, चला गया शरमाय ॥
इस समय कर्ण यदि चाहते हो, अरमान पूर्ण निज करलेते ।
बिन श्रम के अति आसानी से, माद्रीसुत की जां हर लेते ॥
पर दिया था जो कुन्ती मां को, एकबार बचन*उसकी सुधिकर।
इन धर्मात्मा ने छोड़ दिया, माद्री-नन्दन को पुलकाकर ॥

❀ नाना ❀

देश में थे कैसे प्रणधीर ।
फरमाते थे अपने मुख से जो कुछ भी तकरीर ।
उसे पूर्ण करके रहते थे चाहे जाय शरीर ॥

* इस वचन का हाल "कृष्ण के हस्तिनापुर गमन" नामक चौदहवें हिस्से में आचुका है।

धर्म विरुद्ध चलते न कभी थे रहते थे गम्भीर ।
सहते थे लाखों दुख लेकिन नहीं तजें थे धीर ॥
इकले ही त्रिभुवन जय करते थे इतने रणधीर ।
पर ऐसे रहते थे मानो शान्तमई तसवीर ॥
हम उनके ही बालक है पर वो न रही तौकीर ।
धर्म रहित हो गये इसीसे सब कुछ हुआ अखीर ॥

अलकिस्सा फिर सूर्यसुत, क्रोधित होय महान ।
पांडव दल पर वेग से, लगे छोड़ने बान ॥
ज्यों ज्यों दिन मणि नभ मण्डल में, ऊँचे को बढ़ते जाते थे ।
त्यों त्यों दिनकर सुत अधिक २, रण चतुराई दिखलाते थे ॥
आखिर दुपहर होते होते, योधा ने वो मूरति धारी ।
कि इनसे अपनी आँख मिला, नहिं सका कोई भी धनुधारी ॥
ये लखकर सहदेव तब, आपहुँचे गरमाय ।
वेग सहित लड़ने लगे, रण कौशल दिखलाय ॥
पर रवि-नन्दन ने नकुल सरिस, इनका भी पल में हाल किया ।
यानी इनको भी पकड़ और, कइ ताने देकर छोड़ दिया ॥
आखिर ये भी चल दिये तुरत, अपने मन में लज्जित होकर ।
फिर वीर केसरी सूर्य-पुत्र, झुक गये कुपित हो सेना पर ॥
इतने में वीर वृकोदर ने, यहां के सब समाचार-पाये ।
सुनते ही हाल बन्धुओं का, इनके लिलाट पर बल छाये ॥
देदिया हुक्म झट सारथि को, स्यन्दन को शीघ्रहि दौड़ाओ ।
और सूर्य पुत्र के निकट मुझे, जितनी जल्दी हो पहुँचाओ ॥
बलवीर धनंजय गुरुसुत से, लड़ने को उधर सिधाया है ।
यहाँ सेना को सूनी लखकर, उसने आतंक मचाया है ॥

बचन श्रवण कर सूत ने, दीन्हा रथ दौड़ाय।
रविनन्दन के सामने, लाकर दिया टिकाय॥
रविसुत पर दृष्टी पड़ते ही, श्रीभीम के नखसिखरिष व्यापी।
गर्जन करके यों कहन लगे, अब आँख मिला मुझसे पापी॥
साधारण लोगों को बधकर, किसलिये अकड़ता जाता है।
मैं तब सन्मुख आपहुँचा हूं, क्यों मुझे न हाथ दिखाता है॥
झूँठी सच्ची बातें कहकर, कुरुपति को बहकाने वाले।
हम सब को दुख देने के लिये, नई चालें बतलाने वाले॥
आगया है तेरा अन्त समय, अब करनी का फल पावेगा।
यदि कायर सम तू भगा नहीं, तो निश्चय मारा जावेगा॥
भीमसेन की श्रवण कर, जहर भरी गुफ्तार।
अरुण नेत्रकर क्रोध से, गरजे सूर्य कुमार॥
और कहन लगे क्यों वृथाहि तू, पागल सम प्रलाप बकता है।
अन खाकर बदन फुलाया है, बल का तो नाम न रखता है॥
मेरी एक अति साधारण सी, टक्कर भी सह न सकेगा तू।
सहदेव नकुल सम हार मान, पल भर में अभी भगेगा तू॥
अस्तू जा जा वापिस फिर जा, क्यों अपनी जांन गंमाता है।
किसलिये न मेरे सन्मुख तू, हरि अर्जुन को भिजवाता है॥
इनके बचन न सह सके, भीमसेन बलवीर।
तान शरासन कर्ण पर, मार करी गम्भीर॥
रविनन्दन को ये मालूम था, सहदेव नकुल से बढ़ चढ़ कर।
ताकत वर है ये भीम अस्तु, रण करन लगे सचेत रह कर॥
इस समय वृकोदर ने अपनी, सब रण चतुराई दिखलाई।
लेकिन 'बलशाली सूरज के, सुत पर न आंच बिल्कुल आई॥
उल्टे ये ही घायल होकर, पल पल में दबते जाते थे।
और बाण छोड़ते हुये कर्ण, आगे को बढ़ते आते थे॥

आखिर ये भी रथ शस्त्र रहित, होकर मनमें अति घबराये ।
इतने में अपना रथ बढ़ाय, रविसुत इनके सम्मुख आये ॥
और पकड़ लिया मज़बूत इन्हें, फिर कहन लगे मन मुस्काकर ।
हे भीम फुदकता फिरता था, मैंडक सम क्या इसही बल पर ॥
अब बोल कहे तो जीभ तेरी, मुख से निकाल बाहिर धरदूँ ।
अथवा करके प्रहार तुझ पर, तब शीश जुदा तन से करदूँ ॥
पर जा तुझ सम दुर्बल नर को, बधने से होगा न नाम मेरा ।
जब अर्जुन को संघारूँगा, बस तभी बनेगा काम मेरा ॥

अब आइन्दा को कभी, मेरे सन्मुख आय ।
रण मत करना याद रख, कहता हूँ समझाय ॥

ये सुनकर रणमें भीमसेन, आहत की तरह स्वांस लेते ।
अपने को अपने भुजबल को, धिक्कार बड़ी भारी देते ॥
आखिर कुछ ही आगे बढ़कर ये एक रथ पर असवार हुये ।
और चले शत्रुदल की जानिब, गुस्से से अति बेजार हुये ॥
इनको लखते ही दुशा:सन, रथ बढ़ा तुरत सन्मुख आया ।
और हँसकर बोला कहो भीम, अभिमान का कैसा फल पाया ॥
अब मत करना आगे को कभी, स्पर्धा कौरव वीरों से ।
वरना जीवन खो बैठोगे, नहिं बचोगे तीखे तीरों से ॥
रवि-नन्दन ने तो जाने क्या, करके खयाल अपने मन मैं ।
देदिया प्राण का दान तुम्हें, वरना हरता जीवन रण में ॥
लेकिन सब ही नहिं हो सकते, उसके सदृष्य दया धारी ।
इसलिये भीम वापिस जावो, क्यों करवाते तन की ख्वारी ॥

थे पहिले ही से कुपित, कुन्ती नन्दन भीम ।
सुनकर इसकी बात को, हुआ क्रोध नो:सीम ॥

घन के समान गर्जन करके, कई तीव्र बान ऐसे मारे ।
जिससे इसका रथ टूटगया, मरगये अश्व भी बेचारे ॥

सारथि भी छिन्न भिन्न होकर, भू पर गिरता दृष्टी आया ।
खुद भी घायल बे तरह हुआ, तब तो इसको गुस्सा छाया ॥
आतुर हो एक दूत से, मंगा दूसरा यान ।
चढ़कर उस पर क्रोध से, लगा छोड़ने बान ॥
लेकिन बलवान वृकोदर ने, कर दिये नष्ट सारे शायक ।
तब तो इसने अति खिजला कर, काढा अमोघ शर दुख दायक ॥
और मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर, इसको शारंग पर सन्धाना ।
ओर ताक भीम की छाती को, धनुवा को कानों तक तान ॥
फिर हांक मार कर छोड़ दिया, इससे न वृकोदर बच पाये ।
घायल हो करके बुरी तरह, गिर गये यान में मुरझाये ॥
कुछ देर बाद हो सजग और, कर याद कर्म दुःशासन के ।
ये ऊंचे स्वर से कहन लगे, पलटा कर तेवर आंखन के ॥
द्रौपद पुत्री के बाल पकड़, कुरु सभा मांहि लाने वाले ।
अपमान कटुक वाक्यों से कर, निज शेखी दिखलाने वाले ॥
कर सहन वार अब मेरा भी, हे दुर्बुद्धी अत्याचारी ।
मैं अभी तेरे शोणित द्वारा, करता हूँ लाल जमीं सारी ॥
इतना कह रथ से कूद तुरत, ले गदा गदाधारी धाये ।
भू को कंपित करते पल में, दुःशासन के सन्मुख आये ॥
और गदा उठाकर ऊपर को, गस्से से दांत किटकिटा कर ।
अपनी सारी ताकत लगाय, मारी पापी के मस्तक पर ॥
लगते हि करारी चोट शीघ्र, फटगया शीश दुःशासन का ।
गिरगया मूर्छित हो मानो, होगया खातमा स्वांसन का ॥
तब दौड़ वृकोदर ने इसकी, छाती पर अपना पांव दिया ।
सम्बोधन कर कुरु वीरों को, इस प्रकार कहना शुरू किया ॥
हे कृतवर्मा हे कृपाचार्य, हे कुरुपति हे अश्वस्थामा ।
हे मद्र देशपति शल्य वीर, हे शकुनी अतिशय बलधामा ॥

मैं अभी दुष्ट दुःशासन के, तन को निर्जीव बनाता हूँ ।
और करके इसका लहूपान, फौरन यमपुर पहुँचाता हूँ ॥
यदि तुम में कुछ ताकत हो तो, जल्दी से आगे बढ़ आओ ।
और इसे सहायता पहुँचाकर, मेरे पंजे से छुड़वाओ ॥
इतना कहकर भीम ने, ले तल्वार कराल ।
दुःशासन के हृदय में, घुसा दई तत्काल ॥
होगई वो पल में आरपार, बहचली खून की धार तुरत ।
कर पान तीन अंजुली भीम, कह उठे कहकहा मार तुरत ॥
उत्कृष्ट मधू, घृत, दही, दूध, अति स्वाद युक्त षटरस व्यंजन ।
यहां तक कि मधुर पय जननी का, और अति दुर्लभ अमृत पावन ॥
खूं के शतांश के योग्य नहीं, ये सब वस्तुऐं सरसता में ।
बस सब से बढ़ दृष्टी आता, शत्रू का लहू मधुरता में ॥
इसी समय के बीच में, आया इन्हें खयाल ।
इस खूं से पंचालि के, तर करने हैं बाल ॥
होगये हैं तेरह वर्ष पूर्ण, उन खुले हुये घुंघरालों को ।
अस्तू दुःशासन के खूं से, गीले कर बांधू बालों को ॥
ऐसा विचार कर शोणित ले, ये डेरों की जानिब धाये ।
और चित में अति हर्षाते हुये, जल्दी ही निकट चले आये ॥
फिर कहन लगे स्वर ऊंचा कर, हे प्राणप्रिया बाहिर आओ ।
शत्रू के खूं से बाल सींच, जूड़ा बांधों और हर्षाओ ॥
आई सुनते ही वचन, द्रुपद सुता तत्काल ।
पर दहलाई देखकर, भीमसेन का हाल ॥
सब कपड़े शोणित से तर थे, मुंह भी था बिल्कुल सना हुआ ।
इसके सिवाय कर में भी था, गाढा गाढा खूं भरा हुआ ॥
ये लखते ही द्रौपद पुत्री, भागी पर भाग नहीं पाई ।
आगे बढकर कुन्तीसुत ने, इसको बीच हि में अटकाई ॥

और गीले करके बाल सभी, मुस्काकर जूड़ा बांध दिया ।
फिर एक भारी गर्जन करके, बलवीर ने रण का मार्ग लिया ॥
लख अमानुषी कर्तब इनका, कौरव सेना अति घबराई ।
पलभर भी थिर रह सकी नहीं, डेरों की जानिब को धाई ॥
इस तरफ दुशासन को बधकर, श्री भीम ने निज*प्रण पूर्ण किया।
धनुविद्या अरु बाहू बल से, रिपुओं के मद को चूर्ण किया ॥
उस तरफ कर्ण फिर उग्रमूर्ति, धर कर सेना नाशन लागे ।
फिर पांडव दल वाले इनकी, चोटें खा घबराकर भागे ॥
तब स्वयम् पान्डु दल के नायक, महाराज युधिष्ठिर गरमाकर ।
आगये कर्ण से लड़ने को, अगणित वीरों को संग लेकर ॥
ये लखते ही रवि नन्दन ने, सेना को बधना छोड़ दिया ।
और अपने भीषण स्यंदन का, मुख झट पट इनकी ओर किया ॥
मारे शर फिर ताककर, तीव्र और विकराल ।
जिससे घायल होगये, धर्मराज भूपाल ॥
घी पड़ने से क्षणिक में, भड़क उठे ज्यों याग ।
तिमि लगते ही भूप के, गया क्रोध हिय जाग ॥
तत्काल इन्होंने स्वर्ण खचित, अपना विशाल शारंग ताना ।
और पर्वत तक को फोड़ सके, ऐसा एक शायक सन्धाना ॥
फिर ताक कर्ण के हृदय को, श्री धर्मराज गरजे भारी ।
आखिर कानों तक खींच धनुष, तज दिया वो बाण भयंकारी ॥
ये शर सूर्य कुमार के, तन में गया समाय ।
जिससे ये तत्काल ही, गिरे मूर्छा खाय ॥
लेकिन थोड़ी ही देरी में, कर लाभ पूर्ण चेतनताई ।
ये धर्मराज से कहने लगे, बस अब तेरी श्यामत आई ॥

---

* भीमसेन ने दुशासन को मारने तथा द्रौपदी के बाल सींचने का क्यों प्रण किया था इसका हाल आठवें भाग में आचुका है, पाठक देखलें ।

नहिं ज्यादा जीवित रह सकता, मुझको घायल करने वाला ।
होजा हुशियार पांडु नन्दन, रवि सुत तव जी हरने वाला ॥
यों सुना इन्होंने तीव्र बान, धनु तान छोड़ना शुरू किया ।
और इनके दृढ़तर स्यंदन को, तोड़ना फोड़ना शुरू किया ॥
जिससे रथ जल्दहि नष्ट हुआ, तब घोड़ों को यमपुर भेजा ।
एक बाण मार सारथि का भी, पल भर में फाड़ दिया भेजा ॥

आखिर धनु के भी किये, तीन टूक तत्काल ।
फिर निज धनु पर और इक, साधा बाण कराल ॥

जिसने छुटते ही भूपति के, तनुत्राण का चकना चूर किया ।
इतना हि नहीं बल्की तन को, वेधन कर दुख भरपूर दिया ॥
होगया बदन लोहू लुहान, तब क्रोधित होकर भूपति ने ।
मारी एक शक्ति मगर शर से, कर डाली वृथा सूर्य सुत ने ॥
फिर अतुल पराक्रम दिखला कर, सिर त्राण भी इनका उड़ा दिया ।
जो काम भीष्म, गुरु से न हुआ, उसको यों करके दिखा दिया ॥

कौरव सेना खिल उठी, देख कर्ण का काम ।
गुंजा दई जयकार कर, रण की भूमि तमाम ॥
अस्त्र शस्त्र से रहित हो, सब विधी धर्मकुमार ।
रण तज जाने के लिये, आखिर हुये तैयार ॥

लेकिन बलवान सूर्य सुत ने, इनको भी तत्क्षण पकड़ लिया ।
और लाकर निज रथ के समीप, यों ताने देना शुरू किया ॥
तू उत्तम कुल का क्षत्री हो, क्यों युद्ध छोड़ भागा जाता ।
रन में तन की परवा करना, ये महा कुलक्षण कहलाता ॥
मालुम होता है इससे तू, है क्षत्रि धर्म में कुशल नहीं ।
क्षत्राणी के पय को तेने, हे मूर्ख बनाया सुफल नहीं ॥
बस तुझे तो पूजन यज्ञआदि, ब्राह्मण का कर्म हि आता है ।
इसलिये तेरे सम निबल हृदय, रण में नहिं शोभा पाता है ॥

जा चलाजा शीघ्र हि भागजा अब, मैं जीव दान देता हूँ तुझे।
अब मेरे सन्मुख मत आना, बस यही बचन कहता हूँ तुझे॥
इतना कहकर कर्ण ने, छोड़े इनके हाथ।
चले हाथ मलते हुये, धर्मराज नर नाथ॥
तत्काल छावनी में जाकर, मल्लम पट्टी करवाने लगे।
लख अतुल पराक्रम रविसुत का, हृदय में अति भय पाने लगे॥
इनके पराड़मुख होते ही, पांडव सेना छबि छीन हुई।
रविनन्दन सन्मुख टिक न सकी, घबराकर तेरह तीन हुई॥
ये देख कर्ण ने विजय शंख, फूंका हृदय में हरषा कर।
इतने में सूरज अस्त हुआ, तम छायगया रण मैदां पर॥
कर युद्ध बंद बलवीर सभी, डेरों की जानिब बढ़ने लगे।
हरि अर्जुन भी निज रथ घुमाय, हर्षित हो वापिस चलने लगे॥
होगई भेट मग में इनकी, बलवानी वीर वृकोदर से।
लख इन्हें सुस्त आतुर होकर, पूछा अर्जुन ने आदर से॥
आज तुम्हारा भ्रातवर, है ये कैसा हाल।
किस चिन्ता में लीन हो, क्या है तुम्हें मलाल॥
ले दीर्घ स्वास भीम ने इन्हें, हालात युद्ध के बतलाये।
श्री धर्मराज को घायल सुन, बलवीर धनंजय घबराये॥
और बोले हरि से हे नटवर, स्यंदन को शीघ्र हि दौड़ाओ।
भूपाल युधिष्ठिर के समीप, जितना जल्दी हो पहुँचाओ॥
कर बचन श्रवण बनवारी ने, घोड़ों को हवा बनाय दिया।
और कुछ ही देरी में इनको, राजा के ढिंग पहुँचाय दिया॥
यहां आप रथ से उतर, पार्थ और यदुवीर।
डेरे में पहुँचे जहां, थे भूपति मतिधीर॥
लख इनको अच्छी हालत में, दोनो ने अति आनन्द पाया।
छू चरण सरोज नृपति के फिर, आदर से अपना सिर नाया॥

लख कृष्णार्जुन को अति प्रसन्न, महाराज ने अनुमान किया।
दोनों ने आज लड़ाई में, रविनन्दन को बेजान किया॥
अस्तू ये होकर अति प्रसन्न, चट बैठ गये उठ सैया पर।
और परम प्रेम दरसाते हुये, बोले दोनों से मुस्काकर॥
हे मधुसूदन हे पार्थ कहो, किस तरह कर्ण को संघारा।
था वो तो अति ही बलवानी, फिर किस प्रकार उसको मारा॥
उसके डर से मुझको निशि में, कभि सुख से नींद न आती थी।
अच्छा लगता था अन्न नहीं, और काया घुलती जाती थी॥
रहता था वो बस नित्य प्रती, हित करने में दुर्योधन का।
और जाल गूंथता था जिससे, हो अनिष्ट हम सब भ्रातन का॥
फिर भीष्म द्रोण से जो न हुआ, पल में वह काम किया उसने।
यानी भुजबल से पकड़ मुझे, प्राणों का दान दिया उसने॥
इससे मैं उत्कंठित होकर, उसकी मृत्यू सुधि पाने की।
तकता हूँ राह भुलाकर सुधि, अपने घायल हो जाने की॥

अस्तु देर अब मत करो, कहो समस्त वृतान्त।
किया युद्ध में किस तरह, उस खल का प्राणान्त॥

कर धर्मराज की बात श्रवण, बोले अर्जुन, हे नरराई।
गुरुसुत से लड़ते लड़ते ही, मुझको तो संध्या होआई॥
नहिं लखी कर्ण को शक्ल आज, पर सुन कर युद्ध कथा सारी।
मुझको अति संकट पहुँचा है, नहिं बचेगा वो अब धनुधारी॥
..त हूँ प्रण उसको रण में, कल निश्चय ही संघारुंगा।
. हो तुम्हरे श्री चरणों को, हे भाई आय निहारुंगा॥

ये सुनकर भूपाल को, दुःख हुआ अति घोर।
आखिर में गुस्सा चढ़ा, बदल गया सब तौर॥

बोले अर्जुन पर खिजलाकर, हे पार्थ हमारी सब आशा।
तू ही है तेरे ही बल पर, करता हूँ जय की अभिलाषा॥

तू ने कई बार शपथ की थी, उस सूत पुत्र के नाशन की।
अब वो प्रण तेरा गया कहां, किसलिये न सौगंद पूरन की ॥
डर उससे अश्वत्थामा संग, दिन भर तू युद्ध मचाता रहा।
इस तरफ रहे हम सब पिटते, उस तरफ तू खेल दिखाता रहा ॥
धिक्कार है तेरे पराक्रम को, धिकधिक उत्साह व भुजबल को।
ले जन्म वृथा ही कष्ट दिया, इस भारत के अवनीतल को ॥
यदि तू हम लोगों की रक्षा, संग्राम में कर सकता है नहीं।
और नाक में दम करने वाले, उस कर्ण को बध सकता है नहीं ॥
तो वृथा क्यों लादे फिरता है, गांडीव धनुष को कंधे पर।
जो तुझसे उत्तम हो उसको, क्यों नहीं इसे देता सत्वर ॥

ऐसे कड़वे बचन सुन, अर्जुन भी तत्काल।
आपे से बाहिर हुये, बोले दृग कर लाल ॥

क्या गिन कर तुमने हे राजन्, इस समय मेरा अपमान किया।
जो था कहने के योग्य नहीं, कह उसको दुःख महान दिया ॥
स्त्री सुत यहां तक प्राणों की, मम में बिलकुल परवाह न कर।
तुम्हरी हि भलाई करने में, रहता हूँ मैं हरदम तत्पर ॥
फिर भी तुमने क्या कर ख़याल, मुझको कटु बचन सुनाये हैं।
कुछ दिल में सोचो तो किसके, कर्मों से ये दिन आये हैं ॥

ना तुम जूआ खेलते, ना होता ये हाल।
अस्तू अपने दोष पर, करो मलाल नृपाल ॥

वहां तो पासे फैंकत फैंकत, नहिं तनिक हृदय में सकुचाये।
यहां लखते ही रण की सूरत, मानिन्द फूल के कुम्हलाये ॥
बस आज ही थोड़ा काम पड़ा, अपनी ताकत दिखलाने का।
और आज हि चढ़ आया बुखार, है नृप मुकाम शरमाने का ॥
अर्जुन के तानों को सुन कर, इनका सब गुस्सा हवा हुआ।
छाया दिल पर अत्यन्त शोक, आंखों से अश्रु जल रवां हुआ ॥

और बोले हे भाई अर्जुन, मेरे ही दुष्कर्मों द्वारा।
तुम सब लोगों ने आज तलक, पाया है जग में दुःख भारा।
और केवल मैं ही कारन हूँ, संग्राम घोर मचवाने का॥
क्षत्रियों को रण में कटवा कर, भारत को हीन बनाने का॥
अस्तु भ्रात मत देर कर, उठा शीघ्र तलवार।
इस पापी के शीश को, तन से तुरत उतार॥
लख जेठे भाई का चहरा, असुओं से पूर्ण वीर अर्जुन।
तत्काल क्रोध सब भूल गये, और मांगी माफी निज सिरधुन॥
खाकर फिर एक बार सौगन्द, रविसुत को मृतक बनाने की।
ये चले गये निज डेरे में, की तैयारी सो जाने की॥
गुप्तचरों से श्रवण कर, यहां का सारा हाल।
जा पहुँचे कुरुराज ढिग, सूर्य पुत्र तत्काल॥
और कहन लगे हे सखा सुनो, कई कामों में फस जाने से।
हम आज तो पृथक रह गये हैं, अर्जुन संग युद्ध मचाने से॥
लेकिन कल पूरी जान लड़ा, उसके संग युद्ध मचावेंगे।
या तो मर जावेंगे अथवा, उसको यमपुर पहुँचावेंगे॥
हम किसी तरह भी दीन नहीं, उससे भुजबल में नरराई।
पर एक वस्तु की कमी हमें, देती है निश्चय दिखलाई॥
वो ये है अर्जुन के सारथि, अति निपुण स्वयम बनवारी है।
यदि हमें भी उत्तम सूत मिले, तो निश्चय जीत हमारी है॥
नृप है मेरा मद्रदेश, पति शल स्यंदन दौड़ाने में।
रखते हैं योग्यता नटवर सम, बल्की हैं एक जमाने में॥
अस्तु यदि ये योधा मेरा, सारथ्य कर्म स्वीकार करे।
तो अर्जुन को बध कर्ण तुरत, कुरुओं का हल्का भार करे॥
सुन कुरुपति ने, शल्य के, पास जाय सिर नाय।
रविसुत के अभिप्राय को, दिया तुरत समझाय॥

नट गये ये तब दुर्योधन ने, इनका गुणगान अपार किया ।
तब इन्होंने करके एक शर्त, सारथि बनना स्वीकार किया ॥
कि रविनन्दन को भला बुरा, जो चाहूँगा मैं सुनाऊंगा ।
यदि उसने कुछ भी कोप किया, तो रथ त्यागन कर आऊंगा ॥

रविनन्दन ने मानली, वीर शल्य की बात ।
सोये फिर सब जायकर, आखिर हुआ प्रभात ॥

तब बुला शल्य को रविसुत ने, आज्ञा दी स्यंदन लाने की ।
और खुद ने यहां तयारी की, सेना का व्यूह बनाने की ॥
जितनी देरी में रथ आया, तैयार होगई कटकाई ।
ये देख कर्ण ने चलने की, आज्ञा दे दी अति हर्षाई ॥
खुद भी स्यंदन पर हो सवार, बोला सारथि ! रथ दौड़ाओ ।
जितनी जल्दी हो सके मुझे, रिपु दलके सन्मुख पहुँचाओ ॥
हम बहुत जल्द पांडव दल को, संग्राम में आज हरायेंगे ।
है कितनी शक्ति भुजाओं में, ये अर्जुन को दिखलायेंगे ॥
इस समय शल्य को याद आया, रविसुत का तेज हरना चहिये ।
जो धर्मराज से किया है* प्रण, उसको पूरन करना चहिये ॥

अस्तू इसकी बात सुन, मुस्का शल्य सुजान ।
कहन लगे ये बात तो, दिखती कठिन महान ॥

हे सूत पुत्र जिनके डर से, कपकपी काल को छूटती है ।
तेरी क्या बात त्रिलोकी तक, सुन जिनका नाम धूजती है ॥
उन महा धनुर्धर अर्जुन को, तू क्या निज बल दिखलायेगा ।
क्या दीपक कभी त्रिकाल में भी, सूरज की समता पायेगा ॥

---

* शल्य के इस प्रण का हाल तेरवें हिस्से में आचुका है ।

जब रण में होगी वज्रसरिस, आवाज पार्थ के शारंग की ।
दहला जायेगा हृदय तेरा, सुधि लुट जायेगी सब अंग की ॥
अस्तु तू नाम धनंजय का, क्यों अपने मुख पर लाता है ।
जो तुझ सम योधा हो उसको, किसलिये न बल दिखलाता है ॥

ये सुनते ही कर्ण को, आया क्रोध अपार ।
पर उसको मन में दबा, बोले आख़िर कार ॥

मैं सच कहता हूं या तो आज, अर्जुन को मार गिराऊँगा ।
अथवा खुद ही उसके हाथों, मर स्वर्ग लोक में जाऊंगा ॥
इस पर फिर शल्य लगे कहने, क्यों कोरी बात बनाता है ।
नादान अवज्ञा कर उसकी, किस बिरते पर इतराता है ॥
बन में गंधर्वसेन ने जब, श्री दुर्योधन को हराया था ।
लूटा था डेरों को यहाँ तक, स्त्रियों को पकड़ मंगाया था ॥
उस समय वहीं पर था तू भी, तब क्यों नहिं भुजबल दिखलाया ।
किसलिये पार्थ ने वहां आकर, उन सब लोगों को छुड़वाया ॥
फिर पुर विराट में भीष्म द्रोण, तुम सहित सकल कुरु कटकाई ।
पहुँची थीं गायें हरने को, तब क्यों न पार्थ से जय पाई ॥

उसने इकल्ले ही किया, तुम सब से संग्राम ।
लौटा आखिर विजय पा, लेकर गऊ तमाम ॥

मूर्ख चूहे और बिलाव में, गीदड़ में और पंचानन में ।
जतना अंतर दृष्टी आता, वो है तुम में और अर्जुन में ॥
सुनते हि बचन निज सारथि के, रवि सुत को अति गुस्सा आया ।
होगई कुटिल भृकुटी पल में, आंखों में लाल रंग छाया ॥
बोले गर्जन कर हे सारथि, क्यों अपनी जबां चलाता है ।
अर्जुन के मरने से पहिले, तू क्यों तन तजना चाहता है ॥

नादान पतंगा बनकर मैं, नहिं आग में गिरना चाहता हूँ ।
बल्की रिपु बल का पता लगा, लड़ने की चाह जताता हूँ ॥
जो शूर है वोही शूरों के, बल का अन्दाज लगा सकता ।
तुझ सम डरपोकों के द्वारा, वो कैसे जाना जा सकता ॥
करता है जो तू यत्न महा, अर्जुन से मुझे डराने का ।
ये व्यर्थ है क्योंकी सूत पुत्र, नहिं किसी से दहशत खाने का ॥
बल्की आया है ये जग में, अपना भुजबल दिखलाने को ।
रिपुओं की गर्दन छांट छांट, तत्काल नर्क भिजवाने को ॥
रे कुटुवादी मैं अभी तेरे, तन को निर्जीव बना देता ।
अपमान का कैसा फल मिलता, मैं तुझे अभी दिखला देता ॥
लेकिन दुर्योधन के सन्मुख, मैंने जो सौगंद खाई है ।
कर ध्यान उसी का छोड़ता हूँ, पर आगे नहीं भलाई है ॥

यदि जीवित रहना चहे, तो कर बंद जुबान ।
वरना मेरी गदा यह, हरलेगी तव प्राण ॥
कहन लगगऐ शल्य फिर, हे रविसुत गुण खान ।
मेरे ऊपर क्यों वृथा, करते क्रोध महान् ॥

मैं तुम्हरा सारथि हूं अस्तू, सारथि का फर्ज़ निभाता हूँ ।
यानी रिपु बल की ऊँच नीच, इस समय तुम्हें बतलाता हूँ ॥
ये काम बुराई योग्य नहीं, फिर क्यों तुम आँख दिखाते हो ।
मुझको बिल्कुल चुपचाप देख, सिरपर ही चढ़ते आते हो ॥

शान्त रहो वरना अभी, मैं भी क्रोध दिखाय ।
पलभर में ही आपके, दूंगा होश भुलाय ॥
आपस में ही इस तरह, होते देख विवाद ।
पल में तबियत हो गई, कुरुपति की नाशाद ॥

आगे आ तत्काल ही, अनुनय विनय सुनाय ।
इनके आपस की कलह, दीन्हीं तुरत मिटाय ॥

तज दिया क्रोध रविनन्दन ने, दुर्योधन को विनती सुनकर ।
दे दिया हुक्म स्यंदन हांको, श्री शल्य वीर को हर्षाकर ॥
आज्ञा की केवल देरी थी, सारथि ने हांक दिये घोड़े ।
कंपायमान धरती करते, अति ही आतुरता से दौड़े ॥
होगये रवाना कर्ण बली, पांडवों ने जब ये सुधि आई ।
तो झट वीरों को बुलवा कर, साजी अपनी भी कटकाई ॥

था भारत संग्राम का, सत्रहवाँ दिन आज ।
आ पहुँचे दोनों कटक, साज युद्ध का आज ॥

इस समय पार्थ बोले हे प्रभु, मेरे स्यंदन को दौड़ाओ ।
तज कर सब कौरव सेना को, रविसुत के सन्मुख पहुँचाओ ॥
मैं आज तीव्र बानों द्वारा, उसका सब गर्व मिटाऊंगा ।
संध्या होने से पहिले ही, जां ले यमपुर पहुँचाऊंगा ॥
लेकिन यदुपति को मालूम था, सुरपति की शक्ति भयंकारी ।
है पास कर्ण के इससे वो, कर सकता है इनकी ख़्वारी ॥
अस्तू जब तक उसके कर से, वो शक्ति निकल नहिं जावेगी ।
तब तक उस सन्मुख जाने की, शुभ घड़ी कभी नहिं आवेगी ॥

ये विचार कहने लगे, यदुनन्दन यदुराय ।
सखा अभी से किसलिये, जल्दी रहे मचाय ॥

घटोत्कच* को बुलवा, सेनापति आज बनाओ तुम ।
और रविनन्दन से लड़ने को, हर्षित हो उसे पठाओ तुम ॥

* पाठक घटोत्कच को न भूले होंगे परन्तु यदि विस्मर्ण होगया हो तो तत्काल ही चौथा भाग देख लें।

अव्वल तो वह निश्चयहि उसे, प्राणों से हीन बना देगा ।
वरना कुछ देर बाद यदुपति, तुमको वहां पर पहुँचा देगा ॥
ये सुनकर वीर धनंजय ने, श्री भीम के सुत को बुलवाया ।
और पीठ ठोक उत्साह दिला, रविसुत से लड़ने भिजवाया ॥

चला वीरवर साथ ले, रजनीचर समुदाय ।
एक पलक ही में तुरत, गया कर्ण ढिग आय ॥

इस समय किसी से युद्ध न कर, अपने स्यंदन को रविनन्दन ।
उस तरफ बढ़ाय रहे थे जहां, थे खड़े पार्थ और व्रजचंदन ॥
पर भीम पुत्र ने इनका रथ, धावा कर झट अटकाय लिया ।
तब हो मजबूर सूर्य सुत ने, निश्चर से लड़ना शुरू किया ॥
तत्कालहि दोनों वीरों में, संग्राम ठन गया भयकारी ।
इस समय परीक्षा हुई यहां, धनुविद्या, माया की भारी ॥
रविनन्दन के शारंग में से, शर झुंड निकलता आता था ।
इस तरफ घटोत्कच माया से, पत्थर व धूल बरसाता था ॥
यों घंटों तक संग्राम हुआ, लेकिन कोई नहिं घबराया ।
होते लख नष्ट समय को वृथा, दिनकर सुत को गुस्सा आया ॥
ले दिव्य बाण ये गर्जे उठे, और ताक घटोत्कच के मारे ।
घायल होगया बदन इसका, वह चले खून के परनारे ॥

तब तो इसने एकदम, माया रची प्रचंड ।
अन्धकार तहां छा गया, पल भर मांहि अखंड ॥

और जाने कहां से आय गया, निश्चरों का झुंड भयंकारी ।
जो इनपर करने लगा वृष्टि, अग्नी व पत्थरों की भारी ॥
दुर्दशा होगई रविसुत की, घोड़े मर कर बेजान हुए ।
रथ खंड खंड हो भूमि गिरा, सब छिन्न भिन्न सामान हुये ॥

आगये प्राण भी कंठों तक, तब तो ये अतिशय घबराये ।
उस तरफ शल्य भी घायल हो, तज जीवन आशा अकुलाये ॥

आखिर ये कहने लगे, चिल्लाकर भरपूर ।
कर्ण शीघ्र इस दुष्ट का, करो गर्व सब दूर ॥

यदि ये निश्चर बानों द्वारा, तत्काल न मारा जायेगा ।
तो बस हम दोनों का जीवन, सचमुच पूरन हो जायेगा ॥
हा ! सोचो तो कैसी अद्भुत, इसने माया फैलाई है ।
जिससे रवि की जोती में भी, देता न हाथ दिखलाई है ॥

कहा कर्ण ने एक है, शक्ती * मेरे पास ।
जिसके द्वारा दुष्ट का, हो सकता है नास ॥

लेकिन वो रक्खी है मैंने, बस अर्जुन के संहारन को ।
यदि छोड़ूं तो फिर उसके लिये, लाऊं कहां से शर मारन को ॥
फिर वो शक्ती मेरे कर से, छुटकर वापिस नहिं आयेगी ।
कर प्राण नाश इस शत्रू का, सीधी सुरलोक सिधायेगी ॥
अब बोलो ऐसा शर कैसे, इस मामूली पर मारूँ मैं ।
किसलिये न उसे काम में ला, अर्जुन को ही संहारूँ मैं ॥
कह उठे शल्य नादान तेरा, जब जीवन ही नस जायेगा ।
तो फिर उस शक्ती के द्वारा, तू किस को मार गिरायेगा ।
अर्जुन का बध तो कर लेना, कोई और करारा शर तजकर ।
पर अब तो शक्ती बान चला, इस खल को गिरा शीघ्र भू पर ॥
मजबूरन श्री कर्ण ने, शक्ती लई निकाल ।
ताक घटोत्कच का हृदय, छोड़ दई तत्काल ॥

* ये अमोघ शक्ती इनको इन्द्र से किस प्रकार प्राप्त हुई थी इसका हाल दसवें भाग में आगया है ।

छुटते ही इसने निश्चर का, पल मांहि कलेजा फाड़ दिया ।
और गिरा धरणितल में झट पट, बस इन्द्र लोक का मार्ग लिया ॥
होते ही अंत घटोत्कच का, माया भी तुरत बिलायगई ।
कर गया पलायन अंधकार, और स्वच्छ उजेरी छायगई ॥
कुरुओं ने जय जय कार किया, बलवीर वृकोदर कुम्हलाये ।
अर्जुन को भी अति शोक हुआ, लेकिन यदुनन्दन हरषाये ॥
जब पांडु नन्दनों ने पूछा, कारन इनके पुलकाने का ।
तब इन्होंने सारा हाल कहा, तहां निशिचर के भिजवाने का ॥

इतना कह, ले पार्थ को, नटवर नन्दकिशोर ।
लगे बढ़ाने शीघ्र रथ, कुरुसेना की ओर ॥

इस तरफ कर्ण भी हो सवार एक अति ही दृढ़तर स्यंदन पर ।
कंपायमान धरती करते, दौड़े झट कुंतीनन्दन पर ॥
आगये निकट कुछ देरी में, दोनों बलवीर धनुर्धारी ।
इनका उत्साह अवलोकन कर, हरषाय गई सेना सारी ॥
अपने अपने सेनापति का, पुलकाकर जय जयकार किया ।
फिर रण के बाजों ने बजकर, पल में तहाँ शोर अपार किया ॥

दोनों थे रण बांकुरे, धनुविद्या की खान ।
लगे विलोकन परस्पर, दोनों ही बलवान ॥

है मुझसे कर्ण बली ज्यादा, इस समय पार्थ ने अनुमाना ।
और दिनकर नन्दन ने निज से, बढ़ कुन्तीनन्दन को जाना ॥
लेकिन रविसुत का अर्जुन पर, कुछ ऐसा बिकट रोब छाया ।
ये लगे सोचने किस प्रकार, मैं करूंगा अपना मन चाया ॥
जाने होगा प्रण पूर्ण मेरा, अथवा अपूर्ण रह जावेगा ।
शायद ही मेरे हाथों से, रविसुत संहारा जावेगा ॥

अंतरयामी कृष्ण ने, जान लिया सब भेद।
बोले करते किसलिये, हे अर्जुन तुम खेद॥

तू भीष्म और गुरुद्रोण सरिस, बलवानो से नहिं हारा है।
इकले ही भुजबल दिखलाकर, अतुलित कौरव दल मारा है॥
फिर कर्ण को वधने की चिन्ता क्यों इतनी तुझे सताती है।
क्या ऐसा निबल हो बैठा, जो आज धड़कती छाती है॥

पर गिन भी लेना नहीं, रविसुत को सामान।
शर विद्या में वीर ये, है तुझ से बलवान॥

इस लिये बड़ी होशियारी से, इसके संग युद्ध मचाना तू।
जो विद्या गुरु से पाई है, उसको सम्पूर्ण दिखाना तू॥
और सुनले दुष्ट सुयोधन को, इसही पापी ने बहका कर।
विपता के पर्वत के पर्वत, ढाये हैं तुम सब लोगों पर॥
फिर था शामिल ये अस्त्र रहित, अभिमन्यू के वध करने में।
इस लिये पार्थ! मत देर करो, अब इसके जीवत हरने में॥

※ गाना ※

सोच तज शीघ्र धनुषवान उठाओ अर्जुन।
स्वल्प भी कर्ण का भय चित में न खाओ अर्जुन॥
तेरे बानों में वो शक्ति है भस्म जग होवे।
अस्तु वधने में इसे फुरती दिखाओ अर्जुन॥
बली होके भी बने जाते हो कायर बिल्कुल।
शोक है इसमे कुटिल भृकुटि बनाओ अर्जुन॥
मूल कारण है यही सारी आपदाओं का।
इसलिये रण में इसे शीघ्र सुलाओ अर्जुन॥

ये सुनते ही पार्थ को, आया जोश अपार।
बानों की करने लगे, रविसुत पर बौछार॥

श्री कर्ण भी मन में भृगुवर का, कर सुमिरन तीर चलाने लगे।
अर्जुन औ कृष्ण के अंगों में, गहरी पीड़ा पहुँचाने लगे॥
मुद्दत से इनके हृदय में, जो छिपी थी अभिलाषा रन की।
उसके पूरण होते हि लगे, ये निकालने निज निज मनकी॥
धरती कंपायमान करते, दोनों के रथ टकराने लगे।
आपस में जां हरने के लिये, ये निज ताकत दिखलाने लगे॥
और आने लगा प्रत्यंचा का, घन गर्जन सम रव कानन में।
छागये समस्त दिशाओं में, शायक बस आनन फानन में॥
इतने में अर्जुन के धनु का, गुन अति खिच जाने के कारन।
कर एक कड़ाका टूट गया, तब लगे ये एक और बांधन॥
इतने हि समय में रविसुत ने, वो कर लाघवता दिखलाई।
करके कृष्णार्जुन को घायल, बध डाली अतुलित कटकाई॥
और रथ भी अचल बनाय दिया, ये देख पार्थ चकराय गये।
झट तान शरासन रविसुत पर, ये लगे छोड़ने तीर नये॥
फिर एक अमोघ बान द्वारा, श्री कर्ण को घायल बना दिया।
कुछ देरी तक एक ही जगह, इनके रथ को भी टिका दिया॥

दब जाने से सर्प जिमि, उठता है फुंकार।
त्योंहि इन्होंने क्रोध कर, गर्जन किया अपार॥

और झट नागास्त्र नाम का शर, अपने तरकस में से लेकर।
अर्जुन की जां हरने के लिये, संधाना उसको धनुवांपर॥
फिर ताक निशाना मस्तक का, छोड़ा वो तीर भयंकारी।
छुटते हि प्रत्यंचा की अवाज, छाई रण भूमी में भारी॥

वो शायक सरसराट करता, मानिंद हवा के आने लगा।
ये लख अर्जुन उसके नाशन, हित अगनित तीर चलाने लगा॥
पर सब तरकीबें वृथा गई, स्यंदन तक वह शर आय गया।
ये देख कुन्ति सुत छिन भर में, घबराय गया अकुलाय गया॥

देख धनंजय वीर को, विकल और हैरान।
जन रक्षक जगदीश ने, कौतुक किया महान॥

एक पल भर में अपने तन को, यदुपति ने भारी बना लिया।
और डाल बोझ सब घोड़ों पर, उनको जमीन पर बिठा दिया॥
इससे नीचा होगया तुरत, आगे का हिस्सा स्यंदन का।
अस्तू वो शर नहिं बेध सका, मस्तक कुंती के नन्दन का॥
बस किरीट के टुकड़े करता, वो झट भूमी में समा गया।
तब साधा बान धनंजय ने, हो कुपित घोर रन मचा दिया॥

आखिर में एक तीव्र शर, शारंग पर संधान।
दिया कर्ण के हृदय में, धनु कानों लग तान॥

इससे रविनन्दन बच न सके, घायल होगया बदन उनका।
शोणित की धारा में झटपट, बस भीज गया सब तन उनका॥
मुट्ठी ढीली होजाने से, छुट पड़ा हाथ से शारंग भी।
कुम्हलाय गई मुख की आभा, होगये सुस्त सारे अंग भी॥
मुरझाय गिरे आखिर रथ पर", तब अर्जुन ने कर रोक लिया॥
"बेहोश को बधना अनुचित है", ये गिन शर तजना बन्द किया।

ये लख हरि कहने लगे, हुये शांत क्यों वीर।
येही उत्तम समय है, करो मार गम्भीर॥

कैसी भि अवस्था में रिपु हो, पर बधना ही सुखदाई है।
इसलिये धनंजय शर मारो, चुप रहने में न भलाई है॥

श्री हरि के उपदेशानुसार, अर्जुन रण को तैयार हुये।
इतने ही में दिनकरनन्दन, बेहोशी तज बेदार हुये॥
और झटपट अपना धनुष तान, अर्जुन पर शर बरसाने लगे।
सिर हाथ पांव धड मस्तक पै, गहरी चोटें पहुँचाने लगे॥
धीरे धीरे होगये प्रबल, इतने ये वीर धनुर्धारी।
और इस फुरती से करने लगे, संग्राम भयंकर भयकारी॥
कि लाख यत्न करने पर भी, श्री अर्जुन इनके वारों को।
नहिं रोक सके होगये बिकल, खा खा कर कठिन प्रहारों को॥

घोड़े भी घायल हुये, खा तीरों की मार।
यहां तलक यदुनाथ भी, हुये बहुत बेज़ार॥

इतने में रविसुत के रथ का, पहिया शोणित के दलदल में।
जा फंसा अचानक इससे बस, होगया अचल स्यंदन पल में॥
इस नई विपत को आई लख, दिनकरनन्दन घबराय गये।
रख दिया शीघ्र निज धनुषबान, तज रथ को नीचे आय गये॥
और कहा श्री पार्थ से, सुनले वीर सुजान।
तनिक देर मेरी तरफ़, नहीं चलाना बान॥

घुसगया है रथ का चक्र मेरा, भूमी में उसे निकालने दे।
और भड़क उठे हैं घोड़े सब, इनको भी ज़रासम्भालने दे॥
तू शूर है सच्चा क्षत्री है, बस इसी से विनती करता हूं।
कुछ तुझ से और मुरारी से, मैं नहीं हृदय में डरता हूँ॥
फिर शर विहीन को वध करना, है नहीं वीरवर का बाना।
इसलिये मुझे इस हालत में, वध, कायरता मत दिखलाना॥
श्री कर्ण का भाषण सुनते ही, गरमाय गये गिरवरधारी।
और बोले तैंनें खूब करी, इस समय धर्म की सुधि भारी॥

सच है जिस समय दुष्ट प्राणी, कठिनाई में पड़ जाते हैं।
तब उससे बचने की खातिर, वे धर्म धर्म चिल्लाते हैं॥
वरना सुख में तो रहते हैं, उनके दिमाग नभ मंडल पर।
मिलता पापों का दंड बुरा, नहिं इसे सोचते हैं पलभर॥
है यही तुम्हारा हाल कर्ण, कई बार तो खोटा काम किया।
अब मृत्यू सन्मुख लखते ही, घबराय धर्म का नाम लिया॥

सभा मांहि पंचालि का, हुआ था जब अपमान।
बता उस समय धर्म का, किया क्यों नहीं ध्यान॥

और फिर निरस्त्र अभिमन्यू पर, जब तेनें तीर चलाये थे।
उस समय धर्म के ख्यालों को, किस कोने मांहि छिपाते थे॥
तब तो कीन्ही निज मन मानी, अब धर्म दुहाई देने लगा।
पर इन फिजूल बातों को सुन, किसकायहांहृदय पिघलने लगा॥
कर वचन श्रवण यदुनन्दन के, रवि सुत का कष्ट हुआ भारी।
लेकिन मुख से एक शब्द न कह, कीन्ही लड़ने की तैयारी॥
झट वापिस चढ़ कर बैठ गये, उस कीच में स्थित स्यंदन पर।
और छांट छांट कर तीव्र बान, लग गये चलाने गरमा कर॥
इस समय इन्होंने जो फुरती, शर बरसाने में दिखलाई।
उसको सम्पूर्ण बताने को, शक्ती न लेखनी ने पाई॥

कब शर ले कब धनुप पर, रख कर दिया चलाय।
अन्दाजा इस बात का, सका न कोई लगाय॥

बस इनके धनु से लगातार, शर झुण्ड निकलते आते थे।
जिनसे बचते बचते भी तो, अर्जुन क्षत होते जाते थे॥
आखिर इनका एक तीव्र बाण, जा लगा पार्थ की छाती पर।
जिससे ये अति ही व्याकुल हो, गिर गये तुरत मूर्छित होकर॥

ये उत्तम अवसर देख कर्ण, झट स्यंदन छोड़ उतर आये।
रथ चक्र काढ़ने लगे मगर, वो हिला नहीं तब घबराये।
इतने में अर्जुन जाग उठे, और इनपर बान चलाने लगे।
मजबूरन फिर रविनन्दन भी, उनके संग युद्ध मचाने लगे॥
और मौका पाकर पारथ को, ये फिर बेहोश बना करके।
पहिये पर झुके मगर फिर भी, दुर्भाग्य विवश न निकाल सके॥

इसी तरह बेसुध बना, अर्जुन को कइ बार।
चक्र * काढने में किया, इन्होंने यत्न अपार॥

लेकिन वो टस से मस न हुआ, तब तो ये विकल हुये भारी।
और कहन लगे मन ही मन में, जगदीश्वर की है गति न्यारी॥
हा जिन हाथों ने बड़े बड़े, तरुवर उखाड़ डाले छिन में।
मकड़ी के जाले के सदृश, अगनित रिपु मल डाले रन में॥
फिर जिनकी चोटें खा खाकर, मदमत्त हस्ति बेजान हुये।
वे ही कर मामूली पहिया, काढन में अति हैरान हुये॥
इससे मालुम होता है मुझे, मम अन्त घड़ी नियराई है।
और कुरुपति दुर्योधन ने जय, किस्मत में नहीं लिखाई है॥

सोच रहे थे कर्ण यों, उधर चलाकर बान।
अर्जुन ने इनका बदन, घायल किया महान॥

होगये ये पीड़ा से व्याकुल, और जीवन आशा तज डाली।
पहिये का ध्यान भुला दिल से, रण करन लगे फिर बलशाली॥

* जिस समय कर्ण परशुरामजी के यहां धनुप विद्या पढ़ते थे उस वक्त जंगल मे शिकार खेलते समय धोखे से एक ब्राह्मण की गाय इनके हाथ से मारी गई थी, तब ब्राह्मण ने ये शाप दिया था कि घोर युद्ध के समय तेरे रथ का पहिया पृथ्वी मे घुस जायगा और तेरी मृत्यु होजायगी।

अर्जुन रथ को मंडलाकार, दौड़ाते शर बरसाते थे।
पर निश्चल रथ से ही जवाब, ये उनको देते जाते थे॥
यों घोर युद्ध करते करते, इनको सुस्ती सी आने लगी।
तन से अति खून निकलने से, दुर्बलता रंग दिखाने लगी॥
इस समय इन्होंने सोचा ये, कोई उत्तम शर मारूं मैं।
जिसके द्वारा श्री अर्जुन के, प्राणों को तुरत निकारूं मैं॥

पर भृगुवर के * शाप ने, भुला दिया सब ज्ञान।
अस्तु याद आया नहीं, कोई उत्तम बान॥

तब तो ये बहुत अधीर हुये, नहिं लगा युद्ध में मन इनका।
उस तरफ कुंति सुत ने घायल, कर दिया और भी तन इनका॥
जिससे खिजलाकर आखिर में, एक तीर इन्होंने भयदाई।
मारा अर्जुन के हृदय पर, जिससे उनको मूर्छा आई॥
लेकिन वे संभल गये फौरन, पर रविसुत ने नहिं ध्यान दिया।
इनको बेसुध हो गिन करके, पहिया काढ़न का यत्न किया॥
इस समय पार्थ ने फुरती से, अव्यर्थ बान धनुपर रखकर।
गुरु सेवा सत्य व जप तप का, रख दिया पुन्य उसमें सत्वर॥
और ताक कर्ण का सिर धनुकी, प्रत्यंचा कानों तक तानी।
फिर छोड़ा शर कट गया शीश, गिरगये सूर्य सुत बलवानी॥

इस प्रकार वध कर्ण को, पार्थ और भगवान।
विजय शंख फूंकन लगे, होकर खुशी महान॥

ये लखते ही कौरव सेना, घबरा कर तेरह तीन हुई।
ये सुनी खबर जब कुरुपति ने, उसकी आकृती मलीन हुई॥

---

* भृगुनंदन परशुरामजी ने इनको शाप क्यों दिया था इसका सम्पूर्ण हाल तीसरे हिस्से में आचुका है।

दोनों हाथों से मस्तक धुन, तत्काल गिरा मूर्छा खाकर।
तब अश्वत्थामा आदि इन्हें, लेकर पहुंचे झट डेरों पर ॥

"श्रीलाल" इसही समय, अस्त होगया भान।
बंद हुआ संग्राम तब, संध्या आई जान ॥

॥ सम्पूर्ण ॥

महाभारत ॐ बीसवां भाग

दुर्योधन वध

श्रीलाल

महाभारत बीसवाँ भाग

दुर्योधन वध

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—

महाभारत पुस्तकालय, अजमेर.

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

द्वितीयावृत्ति २००० | विक्रमी सम्वत् १९९४ ईस्वी सन् १९३७ | मूल्य ।-) आने

॥ स्तुति ॥

॥ छन्द ॥

श्री कृष्णचन्द्र कृपालु भजुमन हरन दुख, सुख दायकं ।
वृजचन्द, आनन्दकन्द, यसुदानन्द त्रिभुवन नायकं ॥
जगदीश, जगकर्ता, जगत्पति, जन हितैषि, जनार्दनं ।
अव्यक्त, अन्तरयामि, अनुपमछवि, अजन्मा, सुखकरं ॥
भज सच्चिदानन्द, सर्वरूप सुरेश, श्याम, सनातनं ।
गोविन्द, गरुड़ध्वज, गोपईश गदाधरं, गउपालकं ॥
रट कंसध्वंसी, कालिमर्दन, केशवं, कमलापतिं ।
करुणानिधि, अशरण शरण, संसार की अतिमगतिं ॥

मङ्गलाचरण

रक्ताम्बर धर विघ्न हर, गौरीसुत गणराज ।
करना सुफल मनोर्थ प्रभु, रखना जन की लाज ॥
सृष्टि रचन, पालन, हरन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश ।
बानी, रमा, उमा सुमिल, रक्षा करहु हमेश ॥
बन्दहुं व्यास विशाल बुधि, धर्मधुरंधर धीर ।
"महाभारत" रचना करी, परम रम्य गम्भीर ॥
जासु वचन रवि जोति सम, मेटत तम अज्ञान ।
वंदहुं गुरु शुभ गुण भवन, मनुजरूप भगवान ॥

* ॐ *

नारायणं नमस्कृत्य, नरंचैव, नरोत्तमम् ।
देवीं, सरस्वतीं, व्यासं ततो "जय", मुदीरयेत् ॥

कथा प्रारम्भ

रविनन्दन की मृत्यु से, विकल और बेज़ार ।
होकर अति तड़फनलगा, कौरव वंश भुवार ॥

ये लखकर कृपाचार्य जी के, हृदय में बहुत दया छाई ।
और आकर भूपति के समीप, बोले यों बानी सुखदाई ॥
हे कौरवेश इतने पर ही, कर डालो बन्द लड़ाई सब ।
विसरा कर सारा बैर भाव, मिल जाओ भाई भाई अब ॥
श्री भीष्म और गुरु के समान, अति पराक्रमी भट बलवानी ।
जयद्रथ सम सम्बन्धी, व भ्रात, दुःशासन सदृष्य गुणखानी ॥
इतना हि नहीं तव जेष्ठ पुत्र, आंखों का तारा प्रिय लक्ष्मन ।
और था जिसपर सब भार तेरा, वो वीर केसरी रविनन्दन ॥
जब ये सारे कुछ कर न सके, तो फिर हम क्या कर पावेंगे ।
लड़ते लड़ते बस एक रोज, हम भी संघारे जावेंगे ॥
इसलिये इस समय बचे हुये, योधाओं को मत कटवाओ ।
और कुन्तीसुत के पास तुरत, संदेश संधिका भिजवाओ ॥

धृतराष्ट्र और कृष्ण के, कहने से तत्काल ।
अर्धराज देंगे तुम्हें, धर्मराज भूपाल ॥

कुछ निज दुर्बलता के कारण, या अपने प्राण बचाने को ।
इस समय यहां नहिं आया हूं, तुमको सलाह बतलाने को ॥
बल्की मैं इससे कहता हूं, ताके आगे तुम सुख पाओ ।
कर धर्म सहित रैयत पालन, तज नश्वर देह स्वर्ग जाओ ॥

गाना (तर्ज–विहाग)

रण मे नाहि भलाई, सुन दुर्योधन भाई ॥
अब तो हट तजदे अभिमानी, करले सन्धी सुख की खानी ।
क्यों धारी निठुराई ॥ सुन दुर्योधन भाई ॥
रण से नसजाता है सब सुख, मिलता आखिर मे दुख ही दुख ।
होती और हंसाई ॥ सुन दुर्योधन भाई ॥
जहां सुमति तहं सम्पति आवे, जहां कुमति तहां विपता छावे ।
रीति यही चलि आई ॥ सुन दुर्योधन भाई ॥
भारत की मत शान गमा तू, जाती इसकी लाज बचा तू ।
कहता हूँ समझाई ॥ सुन दुर्योधन भाई ॥

इनकी बातें श्रवण कर, लेकर लम्बी स्वांस ।
दुर्योधन कहने लगा, होकर बहुत उदास ॥
हे कृपाचार्य संदेह नहीं, तुमने जो राह बताई है ।
वो हित कारक है और उसपर, चलने में मेरी भलाई है ॥
पर मरने वालों को जैसे, उत्तम औषधि नहिं भाती है ।
त्यों ही इस समय राय तुम्हरी, मुझको नहिं श्रेष्ठ लखाती है ॥
कुछ सोचो और खयाल करो, जिस नर का राज्य कपट द्वारा ।
करके अपहरन और जाने, पहुँचाया क्या क्या दुख भारा ॥
वो कैसे मेरे सन्धी के, संदेशे से हरषायेगा ।
और गिनकर अपना भ्रात मुझे, आनन्द से गले लगायेगा ॥
कर अपमान द्रौपदी का, श्री भीम का क्रोध बढ़ाया है ।
ैर निरस्त्र अभिमन्यू को बध, अर्जुन को दुख पहुंचाया है ॥
ां तक प्रभु की बातों पर भी, मैंने बिल्कुल नहिं ध्यान दिया ।
किन्तू क्रोधित हो उन्हें कैद, करने का ही सामान किया ॥
अस्तु करेंगे वे नहीं, मुझको क्षमा प्रदान ।
या तो देंगे प्राण या, लेंगे मेरी जान ॥

ऐसी हालत में कहो, संधी हो किस भांति ।
इससे लड़ना ही मुझे, उत्तम दृष्टो भ्रात ।।
फिर इस पृथ्वी को भोगा है, मैंने सम्राट् कहा करके ।
अब बतलाओ किस तरह रहूँ, उनके आश्रय में जाकर के ।।
तप कर भुवनेश भास्कर सम, सब राजाओं के मस्तक पर ।
किम मन समझाऊं कहला कर, पांडवों का साधारण अनुचर ।।
दुनियां में राज पाट आदिक, सारा वैभव क्षण भंगुर है ।
इससे स्थाहि कीर्ति ही, सम्पादन करना हितकर है ।।
वो बिना युद्ध मिल सके नहीं, अस्तू हथियार उठाऊंगा ।
घर में तन तजने के बजाय रण में मर स्वर्ग सिधाऊंगा ।।
येही क्षत्री धर्म है, यही मोक्ष की राह ।
चलने की इस मार्ग पर, है मेरी अति चाह ।।
फिर भीष्म, दुशासन द्रोण, कर्ण, जयद्रथ अति युद्ध मचा करके ।
मेरा हित करने में जां खो, बस गये स्वर्ग में जा करके ।।
इनके सिवाय लगभग सारे, सम्बन्धी भी बलिदान हुये ।
होगई शून्य ये बसुन्धरा, पूरे सुख के सामान हुये ।।
क्या करूंगा अब ले राज पाट, और किसको लख हर्षाऊंगा ।
इसलिये जहां प्रिय पुरुष गये, तन छोड़ वहीं मैं जाऊंगा ।।
ये सुनते ही चुप हुये, कृपाचार्य गुणखान ।
इतने में आये तहां, बचे हुये बलवान ।।
कौरव कुल के महाराजा को, आदर से शीश नवाकर के ।
जा टिके ये निज निज आसन पर, और बोले आज्ञा पा करके ।।
हे कौरवेश ! ये तो सच है, कि रण में आज बड़ा भारी ।
जो हम लोगों का रक्षक था, उसने निज देही तज डारी ।।
हम सब तो दुर्बल हुये हि हैं, पर रिपुओं की भी कटकाई ।
उस वीर के बाणों से कटकर, आधी भी नहिं रहने पाई ।।

ये सुनते ही आगया, इन सबको फिर जोश ।
दुर्योधन के नाम का, किया हर्ष जय घोष ॥
कुरुओं की ग्यारह अक्षौहिणि, सेना जो रण में आई थी ।
उसमें से अब दो अक्षौहिणि, जीवित देती दिखलाई थी ॥
उस तरफ पांडवों का दल भी, सात अक्षौहिणी में से घटकर ।
अक्षौहिणी डेढ़ रह गया था, उस कुरु क्षेत्र की भूमी पर ॥
अब तक तो कई विभागों में, होकर सेनायें लड़ती थीं ।
संग्राम की सारी भूमी को, चहुँ ओर फैल ढक-लेती थीं ॥
इस समय सुयोधन ने करली, एकत्रित सारी कटकाई ।
और एक बड़ा जत्था बनाय, रिपु से लड़ने की ठहराई ॥
अर्जुन ने भी ये हालत लख, सारे वीरों को बुलालिया ।
करके एक उत्तम व्युह निर्मित, कुरुओं से भिड़ने खड़ा किया ॥
महाभारत के युद्ध का, था ये अन्तिम दृश्य ।
लेकिन अब भी पूर्ण था, वीरों में उत्कर्ष ॥
शस्त्रों को वायू में उठाय, ललकार सुनाते थे योधा ।
रख अपना शीश हथेली पर, अति मार मचाते थे योधा ॥
आगे ही बढ़ते जाते थे, बिसरा पीछे की सुधि सारी ।
करते थे महा भयंकर रण, कम्पायमान थी भू सारी ॥
एक तरफ सुयोधन कृपाचार्य, गुरुद्रौण पुत्र अश्वस्थामा ।
गंधार नरेश सुवन शकुनी, कृतवर्मा आदिक बलधामा ॥
अपने अपने दृढ़ स्यन्दन को, वायू सदृष्य दौड़ाते हुये ।
फिर रहे थे सकल दिशाओं में, रिपुओं में प्रलय मचाते हुये ॥
तरफ दूसरी वीर वर, पांचों पांडु कुमार ।
धृष्टद्युम्न सात्यकि सहित, लिये हाथ हथियार ॥
कर रहे थे अति विक्रम प्रकाश, यम सरिस उग्र मूरति धरकर ।
जिससे रिपुगण निर्जीव होय, गिर रहे थे पल पल में भूपर ॥

जब ऐसा हत्याकाण्ड तहां, हाथी चिंघाड़े भय पाकर ।
अनगिनती कुत्ते रोने लगे, होगये जमा गीदड़ आकर ॥
इन अप शकुनों को लखकर भी, क्षत्री नहिं मन में दहलाये ।
बल्की दूनी फुरती दिखला, गुथगये परस्पर रिसियाये ॥
जिससे केवल दो घंटों में, दो अक्षौहिणी धराशायी ।
होगई और खूं की नदी, बहती इस जगह दृष्टि आई ॥
इस समय शकुनि ने अति प्रचंड, घुड़ सवार सेना मंगवा कर ।
कर दिया पांडुदल पर धावा, पीछे की जानिब से आकर ॥
तित्तर बित्तर हो जाते हैं, अति आंधी से बादल जैसे ।
त्यों ही पांडवदल बिखर गया, इस खल के शायक लगने से ॥
लख बुरा हाल निज सेना का, वे धर्म धुरंधर नरराई ।
सहदेव भ्रात को निकट बुला, बोले हृदय में दुख पाई ॥
दुर्बुद्धी शकुनी पीछे से, विषधर सम बान चलाय रहा ।
और अपनी कटकाई को बध, अतिशय हानी पहुँचाय रहा ॥
इसलिये वीर कुछ सेना ले, इस पापी के सन्मुख जाओ ।
जैसे हो सके आज निश्चय, इसको भूमी पर पौढ़ाओ ॥

ज्येष्ट भ्रात का हुक्म पा, माद्रि सुवन बलवीर ।
शकुनी की जानिब चले, ले संग में रणधीर ॥

चलते चलते मग में इनको, अपने प्रण का खयाल आया ।
जिससे सहदेव वीर फौरन, हृदय में अतिशय गरमाया ॥
जी से झट रथ को भगाय, आगया ये सन्मुख शकुनी के ।
र कहन लगा हे दुष्ट तेरे, हो गये पूर्ण अब दिन नीके ॥
धार देश के ज्वारी खल, तत्पर होजा मरने के लिये ।
अब तजता हूँ अति तीव्र बान, तेरा जीवन हरने के लिये ॥
छल के पासों को डाल हमें, कंगाल बनाया था तूने ।
तेरह वर्षों तक घोर दुःख, मूरख पहुँचाया था तूने ॥

ये युद्ध है छल की चाल नहीं, रे कुलांगार अब आगे आ।
यदि कुछ भी भुजबल रखता है, तो मर्दों सम मुझको दिखला॥
इतना कहकर माद्रीनन्दन, अति बेग से तीर चलाने लगे।
शकुनी के अंग अंग में ये, गहरी चोटें पहुँचाने लगे॥
घायल होते ही सुबल, पुत्र उठा ललकार।
बानों की करने लगा, ये भी अति बौछार॥
पर बेग माद्रि के नन्दन का, ये दुष्ट अधर्मी सह न सका।
जितनी धनुविद्या की शिक्षा, पाई थी सब दिखलाय थका॥
आखिर कर में भाला लेकर, रथ त्याग पांव पैदल धाया।
और भूमी को कंपित करता, सहदेव के निकट चला आया॥
कर भाले को सिर से ऊंचा, चाहा बस इसके मारूं मैं।
करके छाती के आर पार, पल भर में प्राण निकारूं मैं॥
जब देखा सहदेव ने, अब न बचेगी जान।
तब एक शर कोदंड पर, किया शीघ्र संधान॥
और ताक भुजायें शकुनी की, तज दिया तीर को रिसिया कर।
जिसने पल में दोउ हाथ काट, बस गिरा दिये धरनीतल पर॥
ये लखते ही सहदेव ने और, इक तीर धनुषपर चढ़ा लिया।
जिसके द्वारा उस पापी का, सिर भी भूमी पर गिरा दिया॥
इसके मरते ही घुड़सवार, तज रण को वापिस जाने लगे।
इतने में आये भीमसेन शर मार इन्हें पीड़ाने लगे॥
आखिर सबकी चटनी करदी, जिन्दा न किसी को जाने दिया।
इसके उपरान्त वीर वर ने, कुरु सेना बधना शुरू किया॥
धृत्तराष्ट्र के इस समय, एकादस सुकुमार।
बचे थे बाकी भीम ने, डाले थे सब मार।
इनमें से दुर्योधन को तज, ये दसों भीम पर चढ़ आये।
लेकिन बलवान वृकोदर ने, इन सब को यमपुर पहुँचाये॥

कुरु सेना की दुर्दशा देख, गुरुसुत रन तजकर हवा हुये।
कृप कृतवर्मा भी उसी समय, इनके पीछे ही रवां हुये॥
रहगया अकेला दुर्योधन, एक भट कुरु सेना में भारी।
पर इसको भी अंतिम रण में, हो गई ख्वार् मिट्टी सारी॥
केवल एक गदा रही इस पै, उसको कंधे पर धारन कर।
वो भारत का सम्राट चला, नंगे पावों सब छबि खोकर॥

यही चार प्राणी बचे, कौरव दलके मांय।
बाकी के तन त्याग कर, बसे स्वर्ग में जाय॥

पांडव सेना भी शेष हुई, थोड़े से योधा बच पाये।
बाकी के कुरु कटकाई ने, इस अंतिम रण में पौढ़ाये॥
इस तरह अठारह अक्षौहिणि, अट्ठारह दिन में नाश हुई।
अपने बलवानी पुत्रों को, खो भारत भूमि हताश हुई॥

कुरुपति की इस समय थी हालत बहुत खराब।
घायल होने से हृदय, था बिलकुल बेताब॥

इसके अतिरिक्त सहायक निज, कोई नहिं दृष्टी आता था।
आगे पीछे दाये बायें, बस अंधकार दरसाता था॥
कट चुकी थी सारी कुरु सेना, डेरे सुनसान लखाते थे।
पांडव अति आनंदित हो कर, इस तरफ को बढ़ते आते थे॥
इस समय बिचारा कुरुपति ने, मुझ को यदि रिपु लख पावेंगे।
तो निसन्देह जीवन हर कर, सत्वर पर लोक पठावेंगे॥
होगये अठारह दिन लड़ते, पर सुख से नींद न आई है।
[illegible]य पाने की उधेड़ बुन में, रातें बिनसोये बिताई है॥
होरही है मुझ को अति थकान, फिर घायल है यह तन सारा।
इस समय भागने के सिवाय, है और नहीं कुछ भी चारा॥
यदि आज रात को मुझको जो, सुखसे निद्रा आजावेगी।
तो फिर निश्चय मेरी तबियत, अति ही हलकी हो जावेगी॥

फिर समझूंगा पांडवों को मैं, इकला ही युद्ध मचाऊंगा ।
या तो उन को यमपुर भेजूं, अथवा मैं ही मर जाऊंगा ॥
ये बिचार कर अंध सुत, भागा जान बचाय ।
इतने में इसके निकट, संजय पहुँचा आय ॥
इसको लखते ही दुर्योधन, बोला एक दीर्घ स्वांस लेकर ।
हे वीर पिता से कह देना, तुम अभी शिघ्र जाकर घर पर ॥
हो गया है रण का आज अंत, कट मरी है सारी कटकाई ।
मेरे भी अंग प्रत्यंगों में, अगणित गहरी चोटें आई ॥
नहिं माना तुम्हरा कहा मैंने, इससे मैं अति पछताता हूँ ।
और तुमको अपना काला मुंह, दिखलाने में शरमाता हूं ॥
इस पासहि के सरवर में जा, अब तो आराम करूंगा मैं ।
कल प्रातकाल के होते ही अंतिम संग्राम लडूंगा मैं ॥
उस में या तो पांडवों को बध, यमपुर की हवा खिलाऊंगा ।
अथवा मैं ही जीवन तजकर, झटपट सुरलोक सिधाऊंगा ॥

※ गाना ※

जो उपदेश पर ध्यान लाता नहीं है ।
वो सुपने मे भी सुःख पाता नहीं है ॥
कहा तब तो माना न पर अब करूंगा क्या ।
गया वक्त फिर हाथ आता नहीं है ॥
सबर के सिवा अब नहीं कुछ भी चारा ।
नजर भाग्य फिरता अब आता नहीं है ॥
मगर कुछ नहीं दुख, जो बढ़ते वे गिरते ।
ये जग एकसा रंग दिखाता नहीं है ॥

इतना कहकर चल दिया, धृतराष्ट्र का लाल ।
और सरोवर के निकट, जा पहुँचा तत्काल ॥
मंत्रों से जल स्तम्भन कर, घुस गया उसी में कुरु राई ।
रख अपनी गदा सिराहने को, आराम करन की ठहराई ॥

इस तरफ दुखित होकर संजय, जैसे ही कुछ आगे आया।
कि उसको कृपाचार्य आदिक, तीनों वीरों ने लख पाया॥
आगये तुरत इसके समीप, ये निज घोड़े दौड़ाते हुये।
और अति विनीत कोमल स्वरसे, पूछा अतिशय सकुचाते हुये॥
संजय! हमने तो किसी तरह, मृत्यू से प्राण बचाये हैं।
पर पता नहीं कुरुपति जीवित, हैं या परलोक सिधाये हैं॥
यदि तुम्हें हाल कुछ मालूम हो, तो देर मत करो कहजाओ।
हम उनसे मिलना चाहते हैं, अस्तू सब बातें बतलाओ॥

संजय ने कुरुराज का, बता दिया सब हाल।
सुनते ही तालाब पर, पहुँचे ये तत्काल॥

और पुकार कर दुर्योधन को, ये कहन लगे हे कुरुराई।
इस समय आपका चुप रहना, उत्तम नहिं देता दिखलाई॥
आवो जल से बाहिर आवो, और रिपुओं से संग्राम करो।
वध करके उनको रण में फिर, वे फिक्री से आराम करो॥
इस अंतिम रण में रिपुओं की, अतुलित सेना संहार हुई।
जो बची है वह भी अति घायल, होजाने से बेकार हुई॥
है आश हमें यदि हम चारों, एकत्रित होकर धावेंगे।
तो निश्चय सकल पांडवों को, सेना के सहित हरावेंगे।

अवसर ये ही मुख्य है, जीतन का भूपाल।
अस्तू बाहिर आयकर, गहो शस्त्र तत्काल॥
इन तीनों की श्रवणकर, इस प्रकार की बात।
हो प्रसन्न कहने लगे, दुर्योधन नरनाथ॥

हे महाशयों! तुम तीनों को, जीवित लखकर हम हरषाये।
वरना रण में जीवन तजते, अच्छे अच्छे दृष्टी आये॥
लेकिन वीरों ये समय नहीं, उत्तम है युद्ध मचाने का।
जय पाये हुये पांडवों को, वध कर भूमी पै गिराने का॥

क्यों कि हम लोगों ने मिलकर, अट्ठारह दिन संग्राम किया ।
इन दिनों में एक रात भर भी, नहिं पूर्णतया आराम किया ॥
इससे तबियत अलसाती है, फिर घायल भी है तन मेरा ।
तुम भी हो थके हुये अस्तु, है नहीं युद्ध को मन मेरा ॥
बस आजकी निशिमें तो हम सब, बे फिक्री से आराम करें ।
होते ही प्रातः काल मित्र, रण करने का सामान करें ॥
तुम वीर हो सच्चे योधा हो, तुम्हरी उमंग वीरोचित है ।
पर ऐसे कुसमम में लड़ना, लगता मुझको अति अनुचित है ॥

ये सुनते ही कह उठा, गुरू पुत्र तत्काल ।
कल तक चुप रहना मुझे, जचा नहीं भूपाल ॥

लगरही है आग कलेजे में, वह उसी समय बुझ पायेगी ।
जब सब सेना पांडवों सहित, भूमी पै सुलादी जायेगी ॥
इस समय बड़ी ही पोड़ा से, कट रहा है इक इक पल मेरा ।
इसलिये आज ही देखेगी, पांडव कटकाई बल मेरा ॥
प्रण है कल दिन उगते उगते, सब रिपुओं को संहारूंगा ।
और तभी वदन से लोह निर्मित, अपना ये कवच उतारूंगा ॥

सलाह कर रहे थे यहां, जब ये चारों वीर ।
तभी चंद व्याधे तुरत, आये सरवर तीर ॥

ये भीम के प्रेम पात्र थे सब, आरहे थे कुछ शिकार लेकर ।
और हित से अर्पण करने को, जा रहे थे वीर बृकोदर पर ॥
रस्ते में इन को लगी प्यास, इस से ये यहां चले आये ।
और सुन कर इनकी बात चीत, हृदय में अतिशय हर्षाये ॥
सोचा कुरुपति का पता बता, श्री भीम को प्रसन्न बनावेंगे ।
लेकर उनसे गहरा इनाम, सुखसे जिन्दगी बितावेंगे ॥

ये विचार कर व्याध सब, चले शीघ्र उस ओर ।
ढूंढ रहे थे पांडु सब, कुरुपति को जिस ठौर ॥

आतेहि इन्होंने आदर से, सब पांडु सुतों को सिरनाया।
फिर दुर्योधन के छिपने का, सब हाल तुरत ही बतलाया॥
सुनते ही सकल बंधुओं के, हृदय में सुःख अपार हुआ।
और दुर्योधन को बधने का, इन सबका तुरत विचार हुआ॥
होकर सवार सब, निज निज रथ, तालाब की ओर चलाने लगे।
ये लख कर कृपाचार्य आदिक, दुर्योधन से फरमाने लगे॥
महाराजा जाने किस कारन, पांडव सारे यहां आते हैं।
उनकी नजरों से बचने को, हम बन की तरफ सिधाते हैं॥

यों कह ये तो चलदिये, झट जंगल की ओर।
इतने में पांडव सकल, आ पहुँचे उस ठौर॥

लख छिपा हुआ दुर्योधन को, बोले पांचो यदुराई से।
भगवन बतलाओ कुरुपति को, काढ़ें हम किस चतुराई से॥
जब तक ये सब झगड़े की जड़, यमपुर न पठाया जावेगा।
तब तक हमको सुपने में भी, हरगिज आनंद न आवेगा॥
बोले नटवर कुछ कठिन नहीं, इस खल को बाहिर बुलवाना।
लेकर अधार कुछ कौशल का, कर डालो अपना मन माना॥
कह दो कुछ जली भुनी बातें, जिससे वह क्रोधित हो जावे।
और तुमसे रण करने के लिये, आतुर हो बाहर चला आवे॥

गिरधारी के वाक्य सुन, धर्मराज नरनाथ।
आगे बढ़ कहने लगे, कुरुपति से यों बात॥

हे दुष्ट अधर्मी छली धूर्त, कुल कलंक पापी अभिमानी।
क्या इसी वीरता के बल पर, लड़ने की थी तूने ठानी॥
अपने प्रिय रिश्तेदारों का, संग्राम में नाश करा करके।
यहां तक सब क्षत्री वीरों को, मरवा यमपुर पहुँचा करके॥
आ छिपा यहां तू कायर सम, क्या तुझको ग्लानि नहीं आती।
हे मूर्ख क्षत्रियों की इज्जत, ऐसा करने से नस जाती॥

कहां गई अकड़ इस समय तेरी, वह मान गर्व कित बिलागया ।
क्या हुई शान तव पापात्मा, बड़ बड़ करना कहां समागया ॥
यदि पिया है पय चत्रानी का, यदि लाज है कुछ क्षत्रीपन की ।
तो मर्दों सम बाहिर आकर, कर डालो तैयारी रन की ॥
या तो हम सबका बध करके, निष्कंटक राज चलाओ तुम ।
वरना हमरे हाथों से मर, सुरपुर को ओर सिधाओ तुम ॥
यदि इतनी प्रिय थी जान तुझे, तो किस कारण संग्राम किया ।
क्यों नहीं हमारा राज पाट, हमको देकर शुभ काम किया ॥
कटवादी ग्यारह अक्षौहिणी, अब भगकर बदन छिपाया है ।
ओ दुष्ट निकल जल्दी बाहिर, तब अंत समय नियराया है ॥

छिप रहने से अब यहां, नहीं बनेगा काम ।
अस्तु आवो बाहर झट, और करो संग्राम ॥
अभिमानी कौरवपती, धर्मराज के बैन ।
सुनते ही कहने लगा, रक्तवर्ण कर नैन ॥

हे नृप निज निज तनपर सबको, ममता होती ही भारी है ।
फिर उसे बचाने की खातिर, छिपना नहिं अचरज कारी है ॥
लेकिन मैं सच्चा चत्री हूँ, और उच्च वंश में जाया हूँ ।
इससे जीवन रक्षा निमित्त, इस समय यहां नहिं आया हूँ ॥
बल्की होकर स्यंदन विहीन, और अस्त्र शस्त्र कटजाने से ।
फिर चोटों के कारण तन में, बेहद पीड़ा बढ़ जाने से ॥
मैं थककर अति लाचार हुआ, इसलिये तनिक सुस्ताने को ।
आ बैठा हूं इस सरवर में, तनको विश्राम दिलाने को ॥
इसलिये भूप खामोश रहो, क्यों घाव पै नमक लगाते हो ।
कटु बचन सुनाकर क्यों मेरे गुस्से को और बढ़ाते हो ॥
यदि कुछ ताकत है तो ठहरो, मैं तुरत ही बाहिर आता हूँ ।
बड़ बड़ करना तुम लोगों का, पल भर में शीघ्र भुलाता हूं ॥

क्षत्री सह सकता नहीं, रिपु की कडुवी बात ।
रहो अभी करता हूँ मैं, तुमसे दो दो हाथ ॥
भूपाल युधिष्ठिर कहन लगे, करतेहि श्रवण इसकी बानी ।
बस बस ज्यादे बातें न बना, आ बाहिर झटपट अभिमानी ॥
घण्टों तक ढूंढा है तुझको, तब कहीं दृष्टि तू आया है ।
इतनी देरी तक निर्भय हो, बेफिक्री से सुस्ताया है ॥
अब व्यर्थ की सब बकवाद छोड़, रण कर हम लोगों से आकर ।
यातो मर सुरपुर जा अथवा, बध हमें, राज कर हरषा कर ॥
कहा सुयोधन ने सुनो, धर्मराज नरनाह ।
पाने को अब राज को, नहिं है मेरी चाह ॥
जिन बंधु बांधवों की खातिर, मैं राज का था अति अभिलाषी ।
वे रण भूमि में प्राण त्याग, होगये सभी सुरपुर वासी ॥
इसके अतिरिक्त जगत भर के, सब क्षत्री भी बलिदान हुये ।
पाताल गया वैभव सारा, महलात सरिस समशान हुये ॥
गो हिम्मत है अब भी मुझ में, तुम सब को बध जय पाने की ।
लेकिन अब इच्छा नहीं रही, राजा बन राज चलाने की ॥
पलटा खागये विचार मेरे, दुनियवी प्रेम सब दूर हुआ ।
होते हि ज्ञान के हृदय में, बस उजियाला भरपूर हुआ ॥
जिस राजपाट के लेने को, तुम ने इतने पापड़ बेले ।
बरसों तक जंगल में रहकर, जाने क्या क्या संकट झेले ॥
आखिर में बाहूबल दिखला, शोणित की नदी बहाई है ।
और जननी जन्म भूमि को भी, बीरों से हीन बनाई है ॥
तो भी तुम्हें मिला नहीं, अब तक अपना राज ।
जैसे के तैसे रहे, वृथा हुआ सब आज ॥
लेकिन मैं आज खुशी होकर, देता हूं तुम्हरा राज तुम्हें ।
बल्की हस्तिनापुर तक का भी, बख्शे देता हूं ताज तुम्हें ॥

वैभव विहीन इस भूमी पर, निर्भय हो राज चलाओ तुम ।
मैं तो अब बन में जाता हूँ, तज मुझको अब घर जाओ तुम ॥
जब तलक रहूँगा जीवित मैं, तुमको नहिं शक्ल दिखाऊंगा ।
एकान्त जाय कर अब तो मैं, अति हित से हरि गुण गाऊंगा ॥

बोल उठे कुन्ती सुवन, क्यों चलाता चाल ।
चाल चलीं तैंनें कई, अब न गलेगी दाल ॥

कुछ लाभ नहीं होगा तेरा निष्कारन रुदन मचाने से ।
अब हृदय पिघल सकता है नहीं, मेरा, तेरे पिघलाने से ॥
स्वामित्व नष्ट होगया तेरा, अब तुझको कुछ अधिकार नहीं ।
किम राज का दान दिलाता है, क्या इतना तुझे बिचार नहीं ॥
यदि होता तू अधिकारी भी, तो भी मैं दान नहीं लेता ।
कर विरुद्ध आचरण किस कारन, क्षत्रियों का धर्म गमां देता ॥
इन्साफ से मांग रहे थे हम, जब राज पाट तुझ से अपना ।
तब तो तैंने परवाह न की, कुछ करी नहीं हमरी गणना ॥
बोला सुई नोक बराबर भी, मैं भूमि नहीं दिलवाऊंगा ।
उन लोगों का सारा जीवन, जंगल में ही कटवाऊंगा ॥

अब तू देना चाहता, सकल राज का दान ।
तेरी बातें कर श्रवण, अचरज होत महान ॥

नहिं चहिये ऐसा राज हमें अबतो भुजबल दिखला करके ।
हम राज्य करेंगे निष्कंटक, तुझको यमपुर पहुँचा करके ॥
इसलिये शीघ्र आ बाहिर तू, क्षत्रियों सरिस कर रन पापी ।
अब बात बनावे मत फिजूल, तज निष्कारन रोदन पापी ॥
तू और मैं जबतक जीवित हैं, जग में ये शंका छाई है ।
दुर्योधन, कुन्तीसुत में से, जाने किसने जय पाई है ॥

अस्तु वृथा मत खो समय, झट पट बाहिर आव ।
यदि कुछ भी ताकत है तो, हे पापी दिखलाव ॥

कुन्तीनन्दन का कटुक वचन, दुर्योधन से नहिं सहा गया ।
बेहद गुस्सा आजाने से, नहिं पलभर भी चुप रहागया ॥
आगया तुरत जल से बाहिर, कर मांहि गदा को लिये हुये ।
और कहनलगा अतिक्रोधित हो, भृकुटी को टेढ़ी किये हुये ॥
तत्पर होजाओ कापुरुषों, अपने प्रिय प्राण गमाने को ।
कौरव कुल के महाराजा के, कर से मर यमपुर जाने को ॥
मेरे हित साधन में जो जो, मर कर यमलोक सिधाये हैं ।
उनका ऋण सकल चुकाने को, दुर्योधन रण में आये हैं ॥
पर एक बात ध्यान में रहे, रथ से इस समय विहीन हूँ मैं ।
फिर इकला हूँ और घावों की, पीड़ा से अति ही दीन हूँ मैं ॥
इसलिये इस समय तुम सारे, मुझ पर एकदम न टूट पड़ना ।
पलकी क्षत्रिय धर्मानुसार, बारो बारी से रण करना ॥
ऐसा होने से अब भी मैं, अपना भुजबल दिखला दूंगा ।
मैं सच्चा क्षत्री हूँ अथवा, कायर हूँ ज्ञात करा दूंगा ॥

अट्ठारह दिन तक हुआ, युद्ध महा घनघोर ।
पर नहिं पूर्ण तया मिली, गदा युद्ध को ठौर ॥

इसलिये करूंगा गदा युद्ध, जिसमें ताकत हो बढ़ आवे ।
और मेरे सन्मुख खड़ा होय, दो चार हाथ तो दिखलावे ॥
तब देखूंगा तुम सबके सब, कितने बल पर इतराते हो ।
रण में मेरा बध करते हो, या खुद निज प्राण गमाते हो ॥

ये सुनते ही क्रोध कर, गदा हाथ में धार ।
वीर वृकोदर होगये, लड़ने को तैयार ।

और बोले मूढ़ तुही जड़ है, इस घोर युद्ध मचवाने की ।
इस जन्म दात्री भूमी को, वीरों से हीन बनाने की ॥
गो हमने बचपन से तेरे, संग में नहिं तनिक बुराई की ।
तो भी तेरी तबियत हम पर, नहिं कभी साफ दिखलाई दी ॥

बचपन में मुझको जहर दिया, फिर सबहि भस्म करना चाहा ।
छल से जूये में राज छीन, पत्नी का सत हरना चाहा ॥
अस्तू हे कुटिल ध्यान धरले, अपने दुष्कर्मों का सारा ।
बस कुछ ही देरी में अब तू, जावेगा यहां पर संहारा ॥
तेरे ही कृत्यों के फल से, तेजस्वी बाल ब्रह्मचारी ।
वे भीष्म पितामह पतन हुये, ये सख दुख हुआ हमें भारी ॥
इनके उपरान्त गुरूजी भी, मर कर सुरलोक सिधाये हैं ।
श्री कर्ण ने भी तेरेहि सबब, अपने प्रिय प्राण गमाये हैं ॥
पर हे अधमाधम कुलांगार, तू है अबतक जिन्दा यहां पर ।
लेकिन कुछ फिक्र नहीं तुझको, मैं अभीं गिराता हूं बध कर ॥

*** गाना ***

निश्चय तब जान जायेगी पापी । ऐंठ अब रंग लायेगी पापी ॥
दु:ख देने का मजा अब तुझको । गदा पल मे दिखायेगी पापी ॥
तैने जो की है बुराई वो अब । हस्ति तेरी मिटायेगी पापी ॥
होजा हुशियार वार सहने को । अब न कुछ चलने पायेगी पापी ॥

वीर वृकोदर के श्रवण, कर जहरीले बैन ।
दुर्योधन कहने लगा, लाल लाल कर नैन ॥

जो जो तैने दुष्कर्म कहे, हां किये हैं वे मैंने सारे ।
इनके अतिरिक्त और भी कई, पहुंचाये हैं संकट भारे ॥
अपने भुजबल व पराक्रम से, मैंने तुमको बनवास दिया ।
ये मेरा ही भय था जिसने, तुमको विराट का दास किया ॥
और रण में भी यदि भीष्म द्रौण, रवि सुत आदिक बलिदान हुये ।
तो इन दिवसों में तुम्हरे भी देखो कितने नुकसान हुये ॥
जो सगे और सम्बन्धी थे, मरगये वे द्रुपद विराटेश्वर ।
वो अभिमन्यू भी स्वर्ग गया, था तुम लोगों का नेह जिसपर ॥

पर जो कुछ बीत गई सो गई, जाने दो उन सब बातों को ।
बस अब जल्दी से संभल जाव, सहने को मम आघातों को ॥
इस गदा युद्ध में नहीं कोई, मम बराबरी करने वाला ।
तत्कालहि मारा जाता है, मुझ सन्मुख आ लड़ने वाला ॥
हारा न किसी से आजतलक, रण में मैं गदा युद्ध करके ।
आगे भी हार नहीं सकता, चाहे सुरपति देखें लड़के ॥

यों कह कुरुपति ने गदा, लई हवा में तान ।
इतने में आये तहां, श्री बलराम सुजान ॥

महाभारत होने से पहिले, ये तीर्थाटन को धाये थे ।
सब तरफ यात्रा करते हुये, अब कुरुक्षेत्र में आये थे ॥
यहां आते ही मालूम हुआ, दुर्योधन और वृकोदर में ।
होवेगा गदा युद्ध ये सुन, लखने की चाह हुई उर में ॥

अस्तु शीघ्र ही वीर ये, पहुंचे वहां पर आय ।
जहां खड़े थे भीम अरु, अंध तनय कुरुराय ॥

लखतेहि इन्हें सबने हित से, आगे आ शीघ्र जुहार किया ।
बिठला इक उत्तम आसन पर, समयोचित अति सत्कार किया ॥
इसके उपरान्त अखाड़े में, वे दोनों योधा आकरके ।
निज निज फुरती दिखलाने लगे, आपस में गदा चला करके ॥
थे दोनों ही कट्टर शत्रू, बढ़ बढ़ कर मार मचाते थे ।
अद्भुत से अद्भुत दांव पेच, क्रोधित हो करते जाते थे ॥
बढ़ जाते थे आगे को कभी, और कभी सरक जाते पीछे ।
ऊपर को उछलते कभी कभी, कभि फौरन झुक जाते नीचे ॥
कभि चक्कर लगा अखाड़े में, वे गदा की चोट बचा लेते ।
और कभी न कुछ बन पड़ता तो, निज गदा से गदा भिड़ा देते ॥

धीरे धीरे युद्ध ने, धारा रूप प्रचन्ड ।
पर ये विमुख हुये नहीं, लड़ते रहे अखन्ड ॥

निश्चय ही गदा चलाने में, दुर्योधन अति अभ्यासी थे ।
और कुन्ती सुवन वृकोदर बस, केवल भुजबल की रासी थे ॥
इसलिये सुयोधन ने इनके, तन पर कई चोटें पहुंचाई ।
पर भीम ने सहन करी सारी, घबराहट तनिक न दिखलाई ॥
ये लख गुस्से से हो अधीर, दुर्योधन ने अवसर पाकर ।
एक गदा वृकोदर के मारी, लगतेहि इन्हें आया चक्कर ॥
लेकिन तत्कालहि संभल गये, और गर्जन करके ललकारे ।
फिर दांत किटकिटा कर धाये, कई हाथ सुयोधन के मारे ॥
पर रक्त अधिक होने के सबब, कुरुपति ने चोट बचाय लई ।
तब तो ये अति ही खिजलाये, गुस्से से भृकुटि चढ़ाय लई ॥

अपना सारा बल लगा, फेंकी गदा घुमाय ।
इत्तफाक से लग गई, दुर्योधन के जाय ॥

जिससे घायल होगया बदन, और वह निकली शोणित धारा ।
ये देख पांडुदल वालों ने, बोला इनका जय जय कारा ॥
लेकिन तारीफ वृकोदर की, वो अंध पुत्र सह सका नहीं ।
बेहद उत्तेजित होने से, आपे तक में रह सका नहीं ॥
कर क्रोध से लोचन लाल लाल, कई दाव पेच दिखलाने लगा ।
पल पल में वीर वृकोदर के, तन पर चोटें पहुँचाने लगा ॥
टुकड़े होगया कवच इनका, सिरत्राण भी चकनाचूर हुआ ।
अति रक्त निकल जाने के सबब, चित में भी दुख भरपूर हुआ ॥
यदि और कोई होता तो वो, परित्याग अखाड़ा चल देता ।
अथवा अपना जीवन तजकर, झट पट सुरपुर का मग लेता ॥
पर भीम महा बलवानी थे, इससे वे डटे रहे वहां पर ।
और अपने वार भी करते रहे, दुर्योधन पर अवसर पाकर ॥

आखिर हालत होगई, इनकी बहुत खराब ।
ये लखते ही होगये, श्री कृष्ण बेताब ॥

तब भीम को चेताने के लिये, निज जंघा पर थपकी देकर ।
ये ऊंचे स्वर से कहन लगे, हृदय में अति ही पुलका कर ॥
शाबास वृकोदर लड़े जाव, प्राणों का मोह भुलादो तुम ।
कुरुसभा में किये हुये प्रण को, सच्चा करके दिखलादो तुम ॥
ये सुनते ही भीम को, आया पिछला ध्यान ।
जांघ ताक कुरुराज की, लई गदा को तान ॥
फिर अपनी सब शक्ती लगाय, झट गदा रान पर दे मारी ।
जिसके लगते ही कुरुपति की, होगई चूर्ण हड्डी सारी ॥
एक चीख मार गिर गया तुरत, पल में योधा वेहोश हुआ ।
इतने पर भी कुन्ति सुत का, हलका नहिं बिल्कुल जोश हुआ ।
मारी एक लात सुयोधन के, मस्तक पर दांत किटकिटा कर ।
लख इतना क्रूर कर्म हलधर, आये आगे गुस्सा खाकर ॥
और बोले दुष्ट ! नाभि नीचे, नहिं कभी गदा मारी जाती ।
फिर क्यों तैने भंग नियम किया, तू वध के योग्य है उत्पाती ॥
मैं अभी तुझे मूसल द्वारा, भूमी पर मार गिराता हूँ ।
और नियम उलंघन करने का, पापात्मा मज़ा चखाता हूं ॥
ये कहकर मूसल उठा, दौड़े श्री बलराम ।
पर बीचहि में रोककर, बोल उठे घनश्याम ॥
हे भ्रात क्रोध तज शांति गहो, ये हुआ पाप का काम नहीं ।
कुरुपति का यों वध करने से, कुछ हुआ भीम बदनाम नहीं ॥
[illegible]धन ने कुरु सभा मांहि, जब अपनी जंघा दिखलाके ।
[illegible]ाली से यों कहा था कि, द्रौपदी बैठ जा यहां आके ॥
[illegible] समय जांघ के तोड़न की, इस वीर ने थी सौगंद खाई ।
बस वही प्रतिज्ञा आज यहां, इस तरह पूर्ण कर दिखलाई ॥
इस प्रकार प्रभु ने समझाया, पर हुआ इन्हें संतोष नहीं ।
दोनों दृग लाल बने ही रहे, कम पड़ा ज़रा भी रोष नहीं ॥

आखिर स्यंदन पर हो सवार, ये वीर भीम पर रिसियाते ।
चल दिये द्वारिका की जानिब, रथ को फुरती से दौड़ाते ॥
इधर धूल धूसरित लख, दुर्योधन का हाल ।
नकुल आदि सब कह उठे, हरषा कर तत्काल ॥
हे भीम आज भुजबल दिखला, दुनियां में नाम किया तुमने ।
वध कर इस कट्टर शत्रू को, एक भारी काम किया तुमने ॥
बुझ गई बैर की अग्नि सकल, अब कहीं परम सुख छाया है ।
बरषों पीछे ये जगत आज, रिपु रहित दृष्टि में आया है ॥
ये सुनकर गिरधर कहन लगे, दुर्वचन सुनाना ठीक नहीं ।
इस बुरे वक्त में शत्रू को, अब और सताना नीक नहीं ॥
जिस समय से इसने भीष्म विदुर, आदिक का कहा न माना था ।
बस तभी से हमने इस खल को, मानिन्द मृतक अनुमाना था ॥
अब पड़ा है ये लकड़ी की तरह, चेतना रहित हो भूमी पर ।
इसलिये करो त्यागन इसका, और वापिस लौटो हरषा कर ॥
तिरस्कार मय श्रवणकर, कृष्णचन्द्र की बात ।
पीड़ा को मन में दबा, बोल उठा कुरुनाथ ॥
ओ कृष्ण प्रपंची छली धूर्त, तैने ही आफ़त ढाई है ।
तेरी हि कुचालों में फंस कर, वीरों ने जान गमाई है ॥
पर फिक्र नहीं जिस समय ये भू, परि पूर्ण थी सुख सामानों से ।
और अति छबिवाली दिखती थी, घिर कर अगणित बलवानों से ॥
उस समय कहा कर छत्रपती, मैंने यहां राज चलाया है ।
शत्रुओं को अपनी ताकत से, पावों के तले दबाया है ॥
फिर जो जो सुख ऐश्वर्य विभव, दुर्लभ है अन्य नरेशों को ।
वो मैंने सारे भोगे हैं, नहिं कभी निहारा क्लेशों को ॥
और अब भी अंतावस्था में, जिस गति को क्षत्री चाहते हैं ।
जिससे बढ़ कर नहिं कोई वस्तु, ये वेद शास्त्र बतलाते हैं ॥

उस सर्व श्रेष्ट गति को पाकर, मैं तो जाता हूँ सुरपुर में ।
और तुम इस शोक पूर्ण भूपर, बस राज करो हरषा उर में ॥
दुर्योधन के बचन सुन, पांडव हुये उदास ।
ये लख समझाने लगे, इनको प्रभु गुणरास ॥
सब तरह इन्हें धीरज बंधवा, आखिर में चलने की ठानी ।
अस्तू कुरुपति को छोड़ यहीं, ये लौट पड़े सब बलवानी ॥
इस प्रकार से ये विकट युद्ध, अट्ठारह दिन में पूर्ण हुआ ।
अन्यायी छली सुयोधन का, सबविधि घमंड बस चूर्ण हुआ ॥
सन्ध्या होने ही वाली थी, जब पांडव डेरों में आये ।
हर्षित हो भाट चरणों ने, इन सबके बहुविधि गुण गाये ॥
इस समय पांडवों की सेना, पांचेक सहस्र बच पाई थी ।
वो भी थी घायल बुरी तरह, और बिल्कुल थकी थकाई थी ॥
बलवानी पांचों पांडव और, पांचों सुत द्रुपद दुलारी के ।
सात्यकी शिखंडी धृष्टद्युम्न, मय आनन्दकन्द बिहारी के ॥
इस मनुज नाशकारी रन से, बस जीवित रहने पाये थे ।
बाकी के सब योधा मर कर, सीधे सुरलोक सिधाये थे ॥
यहां आय इन सबों ने, खोल दिये हथियार ।
भोजन करके होगये, सोने को तैयार ॥
आखिर थोड़ी ही देरी में, इन सबको घोर नींद आई ।
इस समय छोड़ अपना डेरा, बाहिर आये श्री यदुराई ॥
ौर अर्जुन के कपिध्वजरथको, ये पूरी तरह सजा करके ।
ुँचे पांचों पांडवों के ढिंग, फिर बोले उन्हें जगा करके ॥
ो ! इस समय नींद त्यागो, पहिले उठ कर एक काम करो ।
पीछे आकर वे फिक्री से, इस सैया पर आराम करो ॥
हम सबने रन में कई बार, झूंठी बातें फरमाई हैं ।
कई प्रकार के कौशल रच कर, रिपु पर विपतायें ढाई हैं ॥

अस्तू उन सबका प्रायश्चित, करना इस समय जरूरी है ।
गो वक्त है ये आराम का पर, क्या करें महा मजबूरी है ॥
ये कह इन सबको किया, स्यन्दन पर असवार ।
सात्यकि को भी साथ ले, चले सहर्ष मुरार ॥
जाकर एक नदी किनारे पर, भगवान ने रथ को ठहराया ।
मांगलिक काम करने के लिये, पुलकित हो सबको फरमाया ॥
अस्तू ये तो अपने अपने, इष्टों का सुमिरन करने लगे ।
और जन रक्षक जगदीश ईश, सुखसे बन माहिं विचरने लगे ॥
उस तरफ कटक को मिली नहीं, सुधि इनके बाहिर जाने की ।
इससे तकलीफ करी न तनिक, उन सबने उठने उठाने की ॥
निर्भय हो सोते रहे, अपने पांव पसार ।
इधर हाल जो कुछ हुआ, सुनो सभी सरदार ॥
जब कुरुपतिको छोड़कर, लौटे पांडव वीर ।
तब कृप गुरुसुत आदि ये, आये इसके तीर ॥
क्या देखा कटे हुये तरु सम, महाराज पड़े हैं भूमीपर ।
पीड़ा से चित अति व्याकुल है, खूं से सब तन होरहा है तर ॥
ये लखकर दुख सीमा न रही, इन महा बली रणधीरों की ।
आंखें जलधार बहाने लगी, व्याकुल होने से वीरों की ॥
आखिर झट स्यंदन से उतरे, और भूपति के ढिंग जा करके ।
ये रुंधे कंठ से कहन लगे, आदर से शीश झुका करके ॥
भूप तुम्हारा हाल लख, होता यही विचार ।
इस असार संसार में, नहिं है कुछ भी सार ॥
तुम्हरे सन्मुख हज़ारों ही, अवनीपति शीश झुकाते थे ।
और एक इशारा पाते ही, सेवक सम इत उत धाते थे ॥
सुरपती सरिस होने पर, फिर, तेजस्वी भुजबल की खानी ।
क्या हुई तुम्हारी दशा ये लख, होता है हृदय पानी पानी ॥

बढ़ता आता है मुझे, महा भयंकर क्रोध ।
करूंगा निश्चय बैर का, मैं आजहि परिशोध ।
हरि भजन कीर्तन धर्म कर्म, जो कुछ मैंने अब तलक किया ।
और श्रद्धा माफिक जीवन में, जितना भी मैंने दान दिया ॥
इस समय प्रतिज्ञा करता हूँ, उन सब को साक्षि बना करके ।
कि आजहि सब अन्यायों का, मैं रहूंगा बदला ले करके ॥
ये करने ही से मुझे, होगा नृप आराम ।
अस्तु हुक्म दो ताकि मैं, पूर्ण करूं निज काम ॥
अश्वस्थामा के वचनों को, कर श्रवण सुयोधन हरषाया ।
और कृपाचार्य जी के हाथों, तत्कालहि पानी मंगवाया ॥
फिर किया इसे अंतिम सेनप, और कहा वीर अब जाओ तुम ।
जिस तरह बने उन दुष्टों से, अपना सब बैर चुकाओ तुम ॥
इससे हर्षित हो गुरुसुत ने, कुरुपति को हृदय लगाय लिया ।
और भीषण सिंहनाद करके, सारी दिशाओं को कंपा दिया ॥
इसके उपरान्त वीर तीनों, ले विदा तुरत ही उठ धाये ।
चढ़ निज निज रथ पर घोड़ों को, पांडवों की जानिब दौड़ाये ॥
थी कृष्ण पक्ष की रात्री ये, छारहा था चहुँदिशि अंधियारा ।
कुछ भी नहिं दृष्टी आता था, बिल्कुल निस्तब्ध था मग सारा ॥
चलते चलते ये वीर सभी, पांडवों की सेना के ढिंग आ ।
बिन शब्द किये खामोशी से, उतरे रथ से मन में हरषा ॥
सन्नाटा था कटक में, करते थे सब सैन ।
अश्वस्थामा देख ये, कहनलगा मृदु बैन ॥
हे कृपाचार्य हे कृतवर्मा, मैं तो डेरों में जाता हूं ।
और काल सदृष्य भ्रमण करके, सब को यमलोक पठाता हूँ ॥
तुम दोनों वीर द्वार पर रह, अपना बाहू बल दिखलाना ।
जो इधर से भगता दृष्टि पड़े, बध उसे भूमि पर पौढ़ाना ॥

इतना कहकर अश्वस्थामा, तलवार हाथ में लिये हुये ।
घुसगया तुरत कटकाई में, अति भीषण आकृति किये हुये ॥
सब से पहिले दुष्ट ये, धाया उसही ओर ।
रहता था अति सुःख से, धृष्टद्युम्न जिस ठौर ॥
इसने डेरे में आते ही, क्या देखा सुन्दर सैया पर ।
सोरहा है द्रौपद का लड़का, थकजाने से बेसुध होकर ॥
फूलों की अगणित मालायें, उसके चहुँ ओर लखाती हैं ।
और हवा के झोके से चहुँदिशि, उत्तम खुशबू फैलाती हैं ॥
लख पिता के घातक को सन्मुख, गुरु पुत्र हुआ क्रोधित भारी ।
और दांत किटकिटा एक लात, उस सोते योधा के मारी ॥
जैसे ही वो चैतन्य हुआ, इसने बालों को पकड़ लिया ।
दे धक्का पूरी ताकत से, उस वीर को भू पर गिरा दिया ॥
घोर नींद के एक दम, होजाने से भंग ।
शिथिल हो रहे थे सकल, धृष्टद्युम्न के अंग ॥
फिर एक साथ अपने तनपर, आक्रमण देख वे घबराये ।
बस इससे अश्वस्थामा के, पंजे से निकल नहीं पाये ॥
अस्तु इसको भूपर गिराय, गुरुपुत्र जोर दिखलाने लगा ।
लातें और घूंसे मार, मार, वे हद पीड़ा पहुँचाने लगा ॥
लख द्रोण पुत्र का क्रूर कर्म, ये भी गुस्से से लाल हुआ ।
लेकिन वे बस हो जाने से, इसके चित मांहि मलाल हुआ ॥
कुछ और तो करते बना नहीं, केवल अपने नाखूनों से ।
स खल के तनको खुरच खुरच, कर दिया खूब तर खूनों से ॥
पर आखिर में जब ये देखा, ये दुष्ट बाज नहिं आवेगा ।
पशुओं की तरह मेरा जीले, कर ही ये यहां से जावेगा ॥
तब बोले पंचालेश तनय, गुरु सुत मुझको यों मत मारो ।
हथियार कोई पैना लाकर, मेरे जीवन को संहारो ॥

शस्त्र चोट से वीर जो, खोता है निज प्रान।
जाकर सीधा स्वर्ग में, पाता सुःख महान॥
सुन धृष्टद्युम्न के बचनों को, आचार्य पुत्र फरमाने लगा।
रे कुलांगार तेरे ऊपर, मैं क्यों हथियार चलाने लगा॥
निरअस्त्र अवस्था में पितु का, जी हरने वाले अन्यायी।
तू कभी स्वर्ग के योग्य नहीं, पावेगा नर्क हिं दुखदाई॥
इतना कह और लगाने लगा, ये पूरी ताकत से लातें।
जिससे तत्कालहि प्राण तजे, उस वीर ने खा खा आघातें॥
कर श्रवन द्रौपदी भ्राता का, चिल्लाना अंतावस्था का।
एक दम पलटा खागया हृष्य, डेरों की सकल व्यवस्था का॥
सारे योधागन जाग उठे, और लेले धनुष बान धाये।
अश्वत्थामा के ढिंग आकर, एक साथ अमित शर बरसाये॥
पर गुरु सुत था अतिही प्रवीण, शारंग से बान चलाने में।
अस्तू उसने कुछ देर न की, इन सबको मार गिराने में॥
फिर निज कर में तलवार धार, ये चहुँदिशि फिरने फिराने लगा।
निद्रित व अध जगे वीरों के, भूमी पर शीश गिराने लगा॥
द्रौण पुत्र का इस समय, था स्वरूप बिकाल।
खड्ग हाथ में था उठा, खूं से था तन लाल॥
ये लख पांडव दल वालों ने, इसको सच मुच निश्चर जाना।
अस्तू वहां से चल देने को, सबने अपने चित में ठाना॥
आखिर ये सब भागते हुये, ज्यों ही दरवाजे पर आये।
त्यों ही कृतवर्मा और कृप ने, बध इन्हें यमसदन पहुँचाये॥
उस तरफ द्रौपदी के पांचो, पुत्रों ने जब ये शोर सुना।
ले धनुष बान दौड़े फौरन, गुस्से से इनका हृदय भुना॥
और ढिंग आ अश्वत्थामा पर, अति पैने तीर चलाने लगे।
पर बश न चला उलटे घायल, होकर ये वापिस जाने लगे॥

लेकिन गुरुसुत ने घेर इन्हें, निर्दयता से संहार किया।
फिर आगे जाय शिखंडी का, तलवार से फौरन प्राण लिया॥
गज अश्वों ने श्रवण कर, कोलाहल अति घोर।
डर के मारे एक दम, डाले बंधन तोर॥
और अति फुरती से डेरों में, वे इत उत दौड़ लगाने लगे।
इनके पांवों से दब दब कर, अगणित नर जान गमाने लगे॥
यों पांच चार घंटों में ही, होगया तबाह कटक सारा।
मानों कर मदद गुरु सुत की, मृत्यू ने सबको संहारा॥
कृतवर्मा को इस समय, आया एक विचार।
डेरों में अग्नी लगा, करदें सबकी छार॥
ये सोच आग सुलगा जल्दी, इसने सब तरफ लगाय दई।
इस पावक को वायू ने भी, चल जल्द मदद पहुँचाय दई॥
होगया अग्निमय शिवर तुरत, सब बचे हुये बेजान हुये।
इस प्रकार से इन दुष्टों के, पूरे दिल के अरमान हुये॥
श्री कृष्णचन्द्र के कौशल से, सात्यकी और पांचो भाई।
जीवित रहगये और बाकी, सबने निज देही बिसराई॥
प्रातकाल से प्रथम ही, ये तीनों हरषाय।
दुर्योधन ढिंग आगये, अपने रथ दौड़ाय॥
वहां लखा अचेत पड़े हैं नृप, खूं धार बदन से जारी है।
आरहे स्वांस धीमे धीमे, और मरने की तैयारी है॥
फिर गीदड़ स्वान स्यार आदिक, घेरा डाले हैं खड़े हुये।
इन कुल के महाराजा का, आमिष खाने को अड़े हुये॥
यद्यपि राजा का अन्त समय, अब बिल्कुल पास लखाता है।
होरहे हैं अंग शिथिल सारे, और हिला जुला नहीं जाता है॥
तोभी वे किसी तरह अपने, हृदय को धीर बंधा करके।
कर रहे निवारण पशुओं का, निज सीधा हाथ उठा करके॥

देख भूप के हाल को, हुये ये बहुत उदास ।
आंसू ढरकाते हुये, आये इनके पास ॥
कुछ देर बाद अश्वत्थामा, बोला हे कौरव कुलराई ।
यदि प्राण बदन में बाकी हैं, तो सुनो बात एक चित लाई ॥
हमने इस निशि में शत्रु कटक, जो बचा था सब संहारा है ।
पंचाली के सब पुत्रों को, मय धृष्टद्युम्न के मारा है ॥
इस समय बचे जीवित केवल, अर्जुन आदिक पांचों भाई ।
सात्यकी और गिरधारी सहित, बाकी सब ने देह बिसराई ॥
यदि ये भी सातों मिलजाते, तो इनका भी जी हरलेता ।
और आजहि महाराजा तुमको, मैं बिना शत्रु के करदेता ॥
पर मालुम होता है सब को, ले महा चतुर वो बनवारी ।
छिपगया है किसी जगह जाकर, पाकर मुझसे दहशत भारी ॥
पर फिक्र नहीं अन्यायों का, मैंने ऐवज भरपूर लिया ।
बस आज हो रही खुशी मुझे, दुख रंज शोक सब दूर किया ॥
ये सुनते ही धुर्योधन के, तन में कुछ चेतनता आई ।
और मृत्यु समय पर भी उसके, चहरे पर मुस्काहट छाई ॥
धीमे धीमे स्वर से बोला, हे वीर खूब ही काम किया ।
मरती बिरियां ये सुखदायक, बातें सुनाय आराम दिया ।
अब मिलूंगा तुम से सुरपुर में, इस समय न बोला जाता है ।
लो धन्यवाद अब दुर्योधन, तन तजकर स्वर्ग सिधाता है ॥
इतना कह कुरुराज ने, छोड़दिये निज प्राण ।
तीनों वीरों को हुआ, ये लख दुःख महान ॥
आखिर भूपति को हृदय से, वे बारंबार लगा करके ।
पांडवों के डर से चले तुरत, निज निज स्यंदन दौड़ा करके ॥
हस्तिनापुर पहुँचे कृपाचार्य, कृतवर्मा द्वारावति धाया ।
और व्यासदेव के आश्रम में, गुरुसुत ने निज को पहुँचाया ॥

धृष्टद्युम्न का सारथी, था एक चतुर महान ।
किसी तरह इस कत्लसे, भागा लेकर प्रान ॥
और प्रातकाल के होते ही, वो इत उत चक्कर खाने लगा ।
आतुरता से श्रीकृष्ण सहित, पांडवों का पता लगाने लगा ॥
इतने में वन में से आता, इसको कपिध्वजरथ दृष्टि पड़ा ।
ये लख बस हाय हाय करता, ये घबरा कर उस ओर बढ़ा ॥
पांडु सुतों से कहदिया, जाकर सारा हाल ।
सुनते ही ये सुधि भुला, गिरे भूमि तत्काल ॥
कर इन्हें होश में किसी तरह, ले आये तहां गिरधर झटसे ।
जहां दैवयोग से एक शिविर, रहगया था बाकी जलने से ॥
यहां आते ही पांचों भाई, हो व्याकुल रुदन मचाने लगे ।
सब से ज्यादा श्री धर्मराज, अपने मन में दुख पाने लगे ॥
इतने में आई द्रुपद सुता, अकुलाती रोती चिल्लाती ।
लेती पांचों पुत्रों का नाम, और बार बार धुनती छाती ॥
आते ही इनके निकट, गिरी मूर्छा खाय ।
होश हुआ जिस समयतो, निकली मुख से हाय ॥
फिर धर्मराज से कहने लगी, मेरे प्रिय भाई बलवानी ।
और पांच वीर सुत दिनकर सम, छटवां अभिमन्यू सुखदानी ॥
इन सबको यम के अर्पण कर, पालिया राज तुमने भारी ।
होगई आपकी आज्ञा में, सह सागर वसुंधरा सारी ॥
पर जब से मैंने सुना है ये, अश्वत्थामा ने यहां आकर ।
निद्रा में बेसुध पुत्रों को, बध, पठा दिया यम के घर पर ॥
तब से उनकी दुख अग्नि मुझे, बस भस्मीभूत बनाती है ।
उस दुष्ट अधर्मी गुरुसुत पर, बेहद रिस बढ़ती आती है ॥
अस्तू जब तक उस पापी का, संहार किया नहिं जावेगा ।
तब तक महाराजा कभी नहीं, ये हृदय शान्ती पायेगा ॥

बस धनुष बान धारन करके, झट उस खल के पीछे धाओ ।
और जैसे भी होसके उसे, बध करके यमपुर पहुँचाओ ॥
यदि वो पापी मारा न गया, मैं कभी न भोजन खाऊंगी ।
इस महाशोक में घुल घुलकर, अपने भी प्राण गमाऊंगी ॥

धर्मराज अति दुखित थे, अस्तु न दिया जवाब ।
पे लखकर द्रौपद सुता, हुई बहुत बेताब ॥

और आकर भीमसेन के ढिंग, बोली जलधार बहा करके ।
बिन तुम्हरे और नहीं कोई, जो मम दुख मेटे जा करके ॥
जिस तरह आपने जंगल में, जयद्रथ से मुझे बचाया था ।
फिर पुर विराट में कीचक बध, मेरा सब शोक घटाया था ॥
बस इसी तरह उसको संहार, पुत्रों का बदला ले डालो ।
तुम ही हो अतुलित बलशाली, इससे मेरा संकट टालो ॥

❀ गाना ❀

धरुं मैं धीरज हे ईश क्योंकर, मिला है कैसा हा दुःख भारी ।
सिधारे पांचो हि पुत्र इकदम, करी है किस्मत ने कैसी ख्वारी ॥
लिया है बस जन्म मैंने जबसे, मिला नहीं पल भी सुःखतबसे ।
ये दुःख सहते वो दुःख सहते, फिकर मे बीती है आयुसारी ॥
हैं पाच पति सब गुणो की खानी, समर की विद्या है पूर्ण जानी ।
सिवाय इनके हैं वे भी रक्षक, कि जो कहाते हैं वृजविहारी ॥
ऐसे उत्तम जनों के होते, भी मेरे पांचों सुतों को सोते ।
सिधारा वो पापी प्राण लेके, लगा है दिल पर ये जख्मकारी ॥
अस्तू सिधावो हे प्राण प्रीतम, लगादो खल को ठिकाने इकदम ।
तभी मिटेगा हृदय से ये गम, मरेगा जब वो अधर्माचारी ॥

द्रुपद सुता का रुदन सुन, गरज उठा वो वीर ।
कहा प्रिये धीरज धरो, बनो न अधिक अधीर ॥

मैं अभी कुकर्मी गुरुसुत को, यमपुर की ओर पठा देता ।
बदला लेकर प्रिय पुत्रों का, तुम्हरा सब शोक मिटा देता ॥
लेकिन क्या करूं विप्र है वो, यदि मुझ से मारा जावेगा ।
तो ब्रह्म हत्या का अति भीषण, पातक आ मुझे दबावेगा ॥
इसलिये द्रौपदी धीर धरो, अपने चित को मत कलपाओ ।
होते हैं विप्र अवध्य सदा, ये जान हृदय को समझाओ ॥

द्रुपद सुता कहने लगी, अच्छा हरो न जान ।
लेकिन इक अरमान तो, पूरा करो सुजान ॥

आजन्म से ही उसके सिरपर, एक मणि है बहुत प्रभावाली ।
उसको ही बस ले आओ तुम, खुश हो जावेगी पंचाली ॥
ये सुन हरषाये भीमसेन, सारथी नकुल को बना लिया ।
गुरुसुत से मणि लेने के लिये, स्यंदन पर चढ़कर गमन किया ॥
इस समय विचारा भगवन ने, अश्वस्थामा है धनुधारी ।
श्री भीम के इकले जाने से, संभव है कुछ होवे ख्वारी ॥
इसलिये मदद करने के लिये, अर्जुन को भी जाना चहिये ।
जिस तरह बने उस पापी से, वो सुंदर मणि लाना चहिये ॥

ये विचार भगवान ने, स्यंदन लिया सजाय ।
चले पिछाड़ी भीम के, अर्जुन को बैठाय ॥

चलते चलते ये दोनों रथ, श्री व्यास के आश्रम में आये ।
क्या देखा ऋषियों से घिरकर, बैठे हैं गुरुसुत मुरझाये ॥
खतेहि सुतों के घातक को, गरजे बलवीर गदाधारी ।
झट उसके सन्मुख जाकर, कीन्हीं लड़ने की तैयारी ॥
जब अश्वत्थामा ने देखा, बलवान वृकोदर आता है ।
और उसके पीछे कपिध्वज रथ, हरि अर्जुन सहित लखाता है ॥
तब दहशत खा सोचने लगा, ये प्राण अब निश्चय जावेंगे ।
ये दोनों वीर मुझे पल में, भूमी पर पर तुरत सुलावेंगे ॥

नहिं है तनुत्राण मेरे तन पर, धनु और तरकस भी पास नहीं ।
ये ऋषि मुनि मुझे बचा लेंगे, इसकी भी बिलकुल आस नहीं ॥
इतने में आया इसे, ब्रह्म अस्त्र का ध्यान ।
सोचा बस येही फकत, रख लेगा मम जान ॥
ये विचार अश्वस्थामा ने, एक बड़ा सा तिनका उठा लिया ।
ब्रह्मास्त्र मन्त्र से मंत्रित कर, इस प्रकार कहना शुरू किया ॥
किस लिये यहां पर आये हो, हे भीम हे अर्जुन गिरधारी ।
क्या तुमको भी नहिं लगती है, अपनी अपनी जानें प्यारी ॥
जिस तरह रात में उन सबको, मैंने यम धाम पठाया है ।
बस उसी तरह तुम भी जाओ, तुम्हारा भि समय नियराया है ॥
यह कहकर अश्वस्थामा ने, उस तिनके को कर में धारा ।
"पांडवों से रहित भूमि होवे", ये दारुण फिकरा उच्चारा ॥
फिर छोड़ दिया वायू में उसे, छुटतेहि गगन थराय गया ।
कपकपा उठी धरती सारी, एक गुबार रविपर छाय गया ॥
अर्जुन ने भी शीघ्र ही, ब्रह्म अस्त्र प्रगटाय ।
छोड़ दिया गरमाय कर, अपना धनुष चढ़ाय ॥
भिड़गये परस्पर दोनों शर, मचगया कुलाहल त्रिभुवन में ।
चहुँदिशि में अग्नी फैल गई, अति भय उपजा सबके मन में ॥
ये लखते ही आतुर होकर, आये तहां व्यास मुनी ज्ञानी ।
और कहन लगे तुम दोनों ने, क्यों जग के नाशन की ठानी ॥
तुम से पहिले होगये यहां, सैकड़ों महारथि धनुधारी ।
पर उन्होंने जग में कभी नहीं, छोड़ा ब्रह्मात्र भयंकारी ॥
फिर तुमने क्यों हानी कारक, ऐसे साहस का काम किया ।
तुम दोनों ही अपराधी हो, दोनों ने सबको दुखःदिया ॥
अस्तु शीघ्र लौटाय लो, अपने अपने यान ।
वरना इस ब्रह्मांड की, होनी हानि महान ॥

ये सुनते ही अर्जुन ने तो, अपने शर को लौटाय लिया।
पर लौट सका नहिं गुरुसुत से, गो उसने बहुत प्रयत्न किया॥
इसका था यही सबब इस ने, निद्रित पुरुषों को मारा था।
इस महा भयंकर पातक से, इसने निज तेज बिसारा था॥
लौटा सका न तीर जब, तब ये हुआ उदास।
कहन लगा अति नम्र हो, सुनो व्यास गुणरास॥
कल निशि को कुकर्म करने से, मैंने सब तेज गमाया है।
बस इसीलिये ये ब्रह्मअस्त्र, मुझसे न लौट ने पाया है॥
अब नहीं रहूँगा यहां पर मैं, जंगल में तुरत सिधाऊंगा।
कर ईश भजन निज जीवन के, अंतिम दिन वहीं बिताऊंगा॥
शर तो फिर सकता नहीं मगर, पांडवों की जान बचाता हूँ।
और उत्तरा के गर्भस्थ पुत्र, पर इसको शीघ्र चलाता हूँ॥
श्रीकृष्ण ने बात ये, मान लई तत्काल।
चुप रहकर कुछ देर फिर, बोले दीन दयाल॥
तूने जीवन में कई बार, हे मूरख पाप कमाया है।
अब अन्त में इस बालक को वध, सिर पर अति बोझ बढ़ाया है॥
इसलिये मणी देकर हमको, जा द्रौण पुत्र वनमें जा तू।
जीतेजी दुनियां वालों को, निज काला मुंह मत दिखला तू॥
बे वश हो अश्वस्थामा ने, झट अपनी मणी निकाल दई।
और व्यासदेव को शीश झुका, फौरन हिमगिर की राह लई॥
इस तरह मणी ले भीमार्जुन, वापिस निज डेरां में आये।
लख कुशल पूर्वक इन सब को, श्री धर्मराज अति हरषाये॥
कृष्णा भी मणि देख कर, गई बहुत पुलकाय।
धर्मराज के मुकुट पर, दीन्हीं उसे लगाय॥
इस समय एक आश्चर्य हुआ, जिस वक्त पार्थ और बनवारी।
गुरु के सुत अश्वस्थामा से, ले आये थे मणि द्युतिकारी॥

जैसे ही ये डेरों में आ, उतरे नीचे कपिध्वज रथ से ।
त्योंही वह बज्जर सरिस कड़ा, स्यंदन होगया भस्म झट से ॥
पांडवों ने जब हरि से पूछा, इसके जल जाने का कारन ।
तब हृदय में कुछ सुस्ता कर, यों कहन लगे जग के तारन ॥
श्री भीष्म, द्रौण और कर्णआदि, वीरों के दिव्य शरों द्वारा ।
होगया था दग्ध कभी का ये, सुन्दर कपिध्वज स्यंदन सारा ॥
लेकिन हमने निज शक्ती से, इसको अब तलक चलाया है ।
अब युद्ध होगया पूर्ण अस्तु, सब प्रभाव मैंने हटाया है ॥

वचन श्रवण कर कृष्ण के, सबको हुआ अनन्द ।
शीश झुका कहने लगे, जय जन सुखद मुकुंद ॥
इस प्रकार पूरी हुई, महा भयङ्कर रार ।
तब उदास हो धर्म सुत, करने लगे विचार ॥

बोले, अब किसके हाथों ये, दारुण संदेश भेजा जावे ।
है कौन जो धृतराष्ट्र पै जा, उनको सब बातें बतलावे ॥
डर है, रन का वृत्तान्त सुनकर, यदि कुपति होगई गंधारी ।
और उसने यदि कुछ शाप दिया, तो होगी हम सब की ख़्वारी ॥
इतनी महनत से प्राप्त करी, ये जय निष्फल हो जावेगी ।
हे कृष्ण कहो तुमही कैसे, ये घोर विपत्ति टलपावेगी ॥
बोले नटवर धीरज रक्खो, हम ही हस्तिनापुर जावेंगे ।
कर कुछ भी यत्न तुम्हें तो हम, उसके गुस्से से बचावेंगे ॥

यों कह दीनानाथ प्रभु, पहुँचे पुर में जाय ।
संक्षेप से भूप को, दिया हाल बतलाय ॥

फिर कहा तुम्हारे पुत्रों ने, सन्मुख लड़ प्राण गमाये हैं ।
इससे निश्चय ही वे सारे, सीधे सुरलोक सिधाये हैं ॥
इसमें न दोष पांडवों का है, थे तुम्हरे सुत अत्याचारी ।
उन धर्म धुरीनों को हरदम, देते हि रहे संकट भारी ॥

गो मैंने सभा मांहि आकर, उन सबको बहु विधि समझाया ।
लेकिन भावी के वश होकर, नहिं कीन्हा मेरा मनचाया ॥
आखिर ये घटना घटी, हुये सभी बेजान ।
होता है महाराज बस, होनहार बलवान ॥
धर धीरज अपने पुत्रों का, अब ध्यान छोड़दो नरराई ।
जिस जिसने जग में जन्म लिया, निश्चय निज देही बिसराई ॥
निज पिता सरिस पालन तुम्हरा, करने को पांडव तत्पर हैं ।
क्योंकि आजन्म से ही वे सब, ज्ञानी और धर्म धुरंधर हैं ॥
यह कह कर श्रीकृष्णने, किया तुरत प्रस्थान ।
धृतराष्ट्र ने खबर सुन, पाया दुःख महान ॥
गंधारी और कुन्ती मां भी, सुनते ही अश्रु बहाने लगी ।
श्रीमान विदुर की तबियत भी, बस बुरी तरह घबराने लगी ॥
आखिर सबने धीरज धरकर, झट कुरुक्षेत्र प्रस्थान किया ।
कुरुओं की सब नारियों को भी, अनगिनत रथों पर चढ़ा लिया ॥
बाजारों से जब जाने लगी, अति शोक ग्रसित ये ललनायें ।
तब रैयत भी दुख पा दृग से, लगगई बहाने धारायें ॥
कुरुक्षेत्र में आगये, जब ये सब नर नार ।
तब तो इनके दुःख का, रहा न पारा वार ॥
कोसों तक ये रण की भूमी, थी पटी हुई लहाशों द्वारा ।
छोटी मोटी सरिता समान, बहती थी शोणित की धारा ॥
ी रहे थे हिंसक पशू रुधिर, कौवे अति शोर मचाते थे ।
ते लोथों को फाड़ फाड़, हड्डी और मांस चबाते थे ।
प्रय पती पुत्र भ्राताओं की, ऐसी खराब हालत लखकर ।
स्त्रियां रही नहिं आपे में, गिरगईं भूमी पै खा चक्कर ॥
धृतराष्ट्र ने इस समय, संजय को बुलवाय ।
पूछा युद्ध वृतान्त सब, उससे अति दुख पाय ॥

सुनतेहि बचन महाराजा के, संजय ने हाल कहा सारा ।
जिस तरह पांड़वों ने मिलकर, कौरव वीरों को संहारा ॥
जब नृप को ये मालूम हुआ, इकलेहि भीम ने बल दिखला ।
मेरे सौ के सौ पुत्रों को, बधकर भूमीपर दिया सुला ॥
तब तो इसको अति क्रोध हुआ, पर उसको मन में दबा लिया ।
और भीम कहां है, बार बार, बस यही पूछना शुरू किया ॥
ताड़ गये नटवर तुरत, इसके मन को बात ।
करना चाहता वृद्ध ये, गुस्से से प्रतिघात ॥
इसलिये भीम के ही समान, लोहे का पुतला बनवा कर ।
रक्खा इस बुड्ढे के आगे, कुछ देर बाद प्रभु ने लाकर ॥
नृप धृतराष्ट्र की गुस्से से, बुद्धी थी नहीं ठिकाने पर ।
किस तरह भीम का प्राण हरूं, सब ध्यान था इसी निशाने पर ॥
इसलिये द्वेष में आ करके, ये उस पुतले से लिपट गया ।
और उसेहि असली भीमसमझ, बल सहित दबाना शुरू किया ॥
गो सौ वर्षों से अधिक उम्र, अंधे की होने आई थी ।
लेकिन अब भी अद्भुत शक्ती, तन में देती दिखलाई थी ॥
अस्तू ज्योंही दाबा इसने, प्रतिमा को दांत किटकिटा कर ।
त्योंही वह बज्र सरिस मूरति, गिर पड़ी भंग हो भूमी पर ॥
इसके भी उर में चोट लगी, और मुख से खून निकल आया ।
जिससे ये ईर्षालू बुड्ढा, सुधि खो गिरता दृष्टी आया ॥
कुछ देर बाद जब होश हुआ, तब भीम भीम चिल्लाने लगा ।
मस्तक पर दोनों हाथ मार, दृग से जलधार बहाने लगा ॥
इसकी हालत देखकर, नँद नंदन गोपाल ।
सन्मुख आये और झट, बता दिया सब हाल ॥
फिर बोले हे नृप धृतराष्ट्र, तू ने सब नीती जानी है ।
व्यवहार नीति, सद्धर्म नीति, और राज नीति पहचानी है ॥

तो भी तूने श्री भीष्म विदुर, और गुरु का कहना नहीं किया ।
निज अत्याचारी पुत्रों को, रण से नहिं रोका, लड़ने दिया ॥
इसलिये तुही अपराधी है, तेरेहि सबब से प्रिय भारत ।
खोकर अपने बलवानी सुत, होगया आज बिल्कुल गारत ॥
इतना करवा कर भी तेरे, चित में नहिं तनिक विचार हुआ ।
अब भी बलवीर वृकोदर को बधने के लिये तयार हुआ ॥
क्या इसका जीवन हरने से, तेरे सुत जीवित होजाते ।
अब तो संभलो महाराजा तुम, क्यों निज मुख काला करवाते ॥

गाना (तर्ज–सोरठा)

अब तो सोचो भूप वृथा मत पाप कमाओरे ॥
भीष्म विदुर ने कहा था तुमको, पुत्रन को समझाओरे ।
हरी भरी भारत भूमी को नृप मत हीन बनाओरे ॥
किया नहीं उनका कहना तब अब फिर क्यों पछताओरे ।
बोया था जैसा कि वृक्ष तैंने वैसा ही फल पाओरे ॥
बीत गई सोगई मगर नृप अब तो चित समझाओरे ।
अन्तिम दिन अपने जीवन के हरि के हेतु लगाओरे ॥

गंधारी ने भी सुना, रण का जब सब हाल ।
तब इसकी भी क्रोध से, भृकुटी हुई कराल ॥
था गुस्सा सारा नटवर पर, सोचा इसने ही चाल चला ।
पांडवों के द्वारा मम सुत के, वीरों को यमपुर दिया पठा ॥
दि ये छल कपट नहीं करता, दुर्योधन निश्चय जय पाता ।
काहे को हम लोगों के, यह दिवस देखने में आता ॥
कर ये विचार गंधारी ने, श्री गिरधारी को श्राप दिया ।
कि पावेगा तू उसका फल, जो कुछ कि यहां अनर्थ किया ॥
यानी विध्वंस कराया है, जैसे तैंने मेरे कुल का ।
बस उसी तरह सम्पूर्ण नाश, हो जावेगा तेरे कुल का ॥

गंधारी के शाप को, सुनकर दीनानाथ ।
मुसका कर चुप हो रहे, कही न कुछ भी बात ॥
इसके उपरान्त युधिष्ठिर ने, संजय को निकट बुला करके ।
बोले वीरों की दहन क्रिया, की सब चीज़ें लाओ जाके ॥
ये सुनते ही इसने अगणित, दूतों को पुर में भिजवाया ।
और मृतक संस्कारों का सब, सामान तुरत ही मंगवाया ॥
इसके उपरान्त नारि नर सब, रोते रण भूमी में आये ।
और मरे हुये सब वीरों को, तत्काल इकट्ठे करवाये ॥
कुछ देर बाद होकर तयार, अनगिनत चितायें जलने लगीं ।
होगईं सती पत्नियां कई, कई मातायें तड़फने लगीं ॥
यहां कीविधिसम्पूर्णकर, रोते रोते वीर ।
जा पहुँचे कुछ देर में, गंगा जी के तीर ॥
और तर्पण करने लगे सभी, इससमय कुन्ति अतिबिलखाई ।
आंखों से अश्रु बहाती हुई, श्री धर्मराज के ढिंग आई ॥
और बोली हे सुत, अर्जुन ने, जिस धनुधारी को मारा है ।
और जिसको तुम सबने अबतक, कह सूत पुत्र उचारा है ॥
वह महाबली तेजस्वी कर्ण, था तुम सब का जेठा भाई ।
श्री सूर्यदेव का दिया हुआ, मेरा ही सुत* था सुखदाई ॥
इसलिये उसे भी जलांजली, अपना भाई कह करके दो ।
हो गई आज मैं महा दुखी, ऐसा बलवानी बालक खो ॥
करते हि श्रवण इन बचनों को, दुख हुआ युधिष्ठिर को भारी ।
चारों भ्राताओं ने भी झट, बिसरादी तन की सुधि सारी ॥
दीर्घ स्वांस परित्याग कर, बोले धर्म कुमार ।
माता तैंने इस समय, दीन्हा दुःख अपार ॥

* कर्ण का जन्म वृतान्त दूसरे भाग मे आचुका है पाठक देखलें ।

यदि ये पहिले बतला देती, कि कर्ण हमारे भाई हैं ।
तुमसे ही प्रगट हुये हैं अरु, श्री सूर्यदेव वरदाई हैं ॥
तो विड़म्बना पंचाली की, नहिं सभा मांहि होने पाती ।
टल जाते वन के दुख सारे, तबियत नित रहती हरषाती ॥
यहां तक मचता नहिं भारत में ये युद्ध भयानक भयकारी ।
रहती यस हरदम हरी भरी, ये जननी जन्म भूमि प्यारी ॥
क्यों तैंने सब बातें छिपाय, हम लोगों पर विपता ढाई ।
हां ऐसा उत्तम भ्रात गमा, किस तरह धीर धारें माई ॥

※ गाना ※

हाय ये कैसा बुरा दुष्कर्म हमने कर दिया ।
निज सहोदर भ्रात का हाथो से जीवन हर लिया ॥
था नहीं भाई हमारा हाय साधारण मनुज ।
देवताओं तक को देकर दान मुख उज्वल किया ॥
धनुर्विद्या में भी उसके सम नहीं था भूमि पर ।
करके उससे शत्रुता कोई नहीं जग मे जिया ॥
उसके गुणगन याद करके चित फटा जाता मेरा ।
जय तो पाई है मगर हरषायेगा नहि मम जिया ॥

यों कह जलांजलि दई, रविसुत को तत्काल ।
ठहरे कुछ दिन के लिये, फेर यहां भूपाल ॥
इतने में आये तहां, नारद व्यास मुनीश ।
"श्रीलाल" लखकर इन्हें, सबने नाया शीश ॥

॥ इति शुभम् ॥

(पं० राधेश्यामजी की रामायण की तर्ज़ में)

अमूल्य रत्न | # श्रीमद्भागवत और महाभारत | छपगये

श्रीमद्भागवत क्या है ?

ये वेद और उपनिषदों का सारांश है, भक्ति के तत्वों का परिपूर्ण ख़ज़ाना है, परमार्थ का द्वार है, तीनों तापों को समूल नष्ट करने वाली महौषधी है, शांति निकेतन है, धर्म ग्रन्थ है, इस कराल कलिकाल में आत्मा और परमात्मा के ऐक्य करा देने का मुख्य साधन है, श्रीमन्महर्षि द्वैपायन व्यासजी की उज्वल बुद्धि का ज्वलन्त उदाहरण है तथा भगवान श्रीकृष्ण का साक्षात् प्रतिबिम्ब है।

महाभारत क्या है ?

ये मुर्दा दिलों में नया जीवन पैदा करने वाला है, सोये हुये मानव समाज को जगाने वाला है, बिखरे हुये मनुष्यों को एकत्रित कर उनको सच्चे स्वधर्म का मार्ग बताने वाला है, हिन्दू जाति का गौरव स्तम्भ है, प्राचीन इतिहास है, नीति शास्त्र है, धर्मग्रन्थ है और पांचवां वेद है।

ये दोनों ग्रन्थ बहुत बड़े हैं अस्तु सर्व साधारण के हितार्थ इनके अलग अलग भाग कर दिये गये हैं, जिनके नाम और दाम इस प्रकार हैः—

श्रीमद्भागवत

सं०	नाम	सं०	नाम
१	परीक्षित शाप	११	उद्धव व्रज यात्रा
२	कंस अत्याचार	१२	द्वारिका निर्माण
३	गोलोक दर्शन	१३	रुक्मिणी विवाह
४	कृष्ण जन्म	१४	द्वारिका बिहार
५	बालकृष्ण	१५	भौमासुर वध
६	गोपाल कृष्ण	१६	अनिरुद्ध विवाह
७	वृन्दावनविहारी कृष्ण	१७	कृष्ण सुदामा
८	गोवर्धनधारी कृष्ण	१८	वसुदेव अश्वमेध यज्ञ
	[illegible]विहारी कृष्ण	१९	कृष्ण गोलोक गमन
	[illegible]उद्धारी कृष्ण	२०	परीक्षित मोक्ष

[illegible] प्रत्येक भाग की कीमत चार आने

महाभारत

सं०	नाम	मूल्य	सं०	नाम	मूल्य
१	भीष्म प्रतिज्ञा	।)	१२	कुरुओं का गौ हरन	।-)
२	पाडवों का जन्म	।)	१३	पाडवों की सलाह	।)
३	पाडवों की अस्त्र शि.	।-)	१४	कृष्ण का हस्ति ग.	।-)
४	पाडवों पर अत्याचार	।-)	१५	युद्ध की तैयारी	।)
५	द्रौपदी स्वयंवर	।)	१६	भीष्म युद्ध	।-)
६	पाडव राज्य	।)	१७	अभिमन्यु बध	।-)
७	युधिष्ठिर का रा. सू. य	।)	१८	जयद्रथ बध	।-)
८	द्रौपदी चीर हरन	।-)	१९	द्रौण व कर्ण बध	।-)
९	पाडवों का वनवास	।-)	२०	दुर्योधन वध	।-)
१०	कौरव राज्य	।-)	२१	युधिष्ठिर का अ यज्ञ	।)
११	पाडवों का अ. वास	।)	२२	पाडवों का हिमा ग	।)

❊ सूचना ❊

कथावाचक, भजनीक, बुकसेलर्स अथवा जो महाशय गान विद्या में योग्यता रखते हों, रोज़गार की तलाश में हों और इस श्रीमद्भागवत तथा महाभारत का जनता में प्रचार कर सकें तथा जो महाशय हमारी पुस्तकों के एजेण्ट होना चाहें हम से पत्र व्यवहार करें।

पता—मैनेजर-महाभारत पुस्तकालय, अजमेर.

महाभारत ॐ इक्कीसवां भाग

युधिष्ठिर का अश्वमेध यज्ञ

महाभारत ॐ इक्कीसवाँ भाग

युधिष्ठिर का अश्वमेधयज्ञ

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—

महाभारत पुस्तकालय, अजमेर.

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

द्वितीयावृति १००० | विक्रमी सम्वत् १९९५, ईस्वी सन् १९३८ | मूल्य ।) आने

॥ स्तुति ॥

दर्श निज दास को गिरधर दिखादोगे तो क्या होगा।
मेरी बिगड़ी हुई को गर बनादोगे तो क्या होगा॥
फँसी है आन कर नैया मेरी मंझधार में भगवन्।
कृपा कर के उसे तटपर लगादोगे तो क्या होगा॥
उबारे हैं कई पापी अधर्मी दीन जन तुमने।
मेरे आवागमन को भी छुड़ा दोगे तो क्या होगा॥
दान, पूजन, भजन, सुमिरन नहीं कुछ मुझको आता है।
भिखारी हूँ दया का गर दिखादोगे तो क्या होगा॥

मङ्गलाचरण

रक्ताम्बर धर विघ्न हर, गौरीसुत गणराज।
करना सुफल मनोर्थ प्रभु, रखना जन की लाज॥
सृष्टि रचन, पालन, हरन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश।
बानी, रमा, उमा सुमिल, रक्षा करहु हमेश॥
वन्दहुं व्यास विशाल बुधि, धर्म धुरंधर धीर।
महाभारत रचना करी, परम रम्य गम्भीर॥
जासु वचन रवि जोति सम, मेटत तम अज्ञान।
वन्दहुं गुरु शुभ गुण भवन, मनुजरूप भगवान॥

* ॐ *

नारायणं नमस्कृत्य नरंचैव, नरोत्तमम् ।
देवीं, सरस्वतीं, व्यासं ततो जय मुदीरयेत् ॥

कथा प्रारम्भ

जन्में थे जिस रोज से, धर्मराज मति धीर ।
तब से लेकर आज तक, रहे सदां गम्भीर ॥
गो संकट पड़े अनेकों ही, सब राज पलक में दूर हुआ ।
अपमान प्रिया पंचाली का, कुरुओं द्वारा भरपूर हुआ ॥
फिर बारह वर्षों तक बन में, कई प्रकार की विपता पाई ।
इसके उपरान्त साल भर तक, की पुर विराट में सेवकाई ॥
घन घोर युद्ध में भी कितनी, बातें अवलोकी दुखकारी ।
लेकिन श्रीमान कुन्ति नंदन, हर समय रहे धीरज धारी ॥
पर रण समाप्त होने के बाद, जब कुरुक्षेत्र की भूमी पर ।
नृप ने निज रिश्तेदारों की, ल्हाशें अवलोकी इधर उधर ॥
और सुना दिल हिलाने वाला, विधवाओं का करुणा क्रंदन ।
तो इकदम श्री महाराजा का, व्याकुल होगया तमाम बदन ॥
तिसपर आई जब इन्हें, वीर कर्ण की याद ।
तबतो तबियत और भी, हुई बहुत नाशाद ॥
वह चली दृगों से अश्रुधार, और चहरा तेजोहीन हुआ ।
मणि खोये हुये सर्प सदृष्य, वो भारतेश्वर दीन हुआ ॥
बहुतेरा यत्न किया अपने, हृदय को धीर बंधाने का ।
गुजरी बातों पर धूल डाल, तबियत को शाँत बनाने का ॥
लेकिन प्रयत्न सब व्यर्थ हुआ, पल पल में ये दुख बढ़ने लगा ।
जिससे मानिन्द बालकों के, नृप घबराकर तड़फने लगा ॥

कुछ देर बाद जब न्यून हुआ, आवेश और थिरता आई।
तब भ्राताओं से कहन लगे, ये धर्म धुरन्धर नरराई॥
हा! नाशवान राज्य के लिये, हमने कैसा दुष्काम किया।
निज कुल के साथ साथ सारे, क्षत्रियों का काम तमाम किया॥
इतना हि नहीं बल्की सुजान, रणधीर वीर पंडित ज्ञानी।
निज प्रण का पालक दयावान, और हरिश्चन्द्र सदृष्य दानी॥
उस कर्ण सहोदर भ्राता को, रणभूमी में संहारा है।
हा! हाय हमारे सम जग में, कोई न अधम हत्यारा है॥
अब तो येही श्रेष्ठ है, सकल राज्य परित्याग।
करें विपिन में जाय कर, ईश्वर से अनुराग॥
बिन ऐसा किये नहीं होगा, प्रायश्चित इन दुष्कर्मन का।
अस्तू भगवत का सुमिरण कर, हम करेंगे बोझ हलका मनका॥
महाराजा का ऐसा विचार, भाइयों को पसन्द नहीं आया।
आश्चर्य और दुख हुआ इन्हें, आखिर में अति गुस्सा छाया॥
सोचा अपराध कौरवों के, हम बचपन से सहते आये।
तनमें ताकत होने पर भी, नहिं कभी क्रोध उन पर लाये॥
अतिशय विडम्बना पत्नी की, और जंगल के संकट भारी।
हम रहे भोगते किसी तरह, हृदय में अति धीरज धारी॥
आखिर प्रण के माफिक पूरी, तेरह वर्षों की अवधी कर।
हमने निज राजपाट मांगा, दुष्टों से अति विनीत होकर॥
दिया उन्होंने तब दुख पा, हम लोगों ने संग्राम किया।
दिन श्रम कर बाहूबल से, दुष्टों का काम तमाम किया॥
राज्य धर्मानुसार, तब कहीं सुख घड़ी आई है।
नृपत के दिल में जाने, फिर भी क्यों कुमति समाई है॥
तजरहे हैं धर्म क्षत्रियों का, होकर भी अतिशय ज्ञानी ये।
और हम सब की आशाओं पर, चाहते हैं फेरना पानी ये॥

ऐसा मन में सोचकर, चारों पांडु कुमार ।
परित सहित कहने लगे, सुनो धर्म अवतार ॥
ये समझ आपकी कैसी है, क्यों उल्टे मग पर जाते हो ।
किसलिये हमारी महनत को, अब अन्त में वृथा बनाते हो ॥
पहिले तो क्षत्रि धर्मानुसार, रण में बाहूबल दिखलाया ।
और कर विध्वंस शत्रुओं का, निज राज्य भूमि पर फैलाया ॥
अब इन सब का त्यागन करके, बनना चाहते हो सन्यासी ।
क्या यही धर्म शुभ कहलाता, बोलो हे ? भ्राता गुणरासी ॥
हम लोगों के विचार से तो, ऐसा कुकर्म करने वाला ।
नहिं कभी स्वर्ग का सुख लखता, पाता है नर्क हि मतवाला ॥
यदि तुमको तप ही करना था, तो क्यों कुरुओं का नास किया ।
क्यों नहीं प्रथम ही कर विचार, जंगल में ही सन्यास लिया ॥
भाई यदि कर्म त्यागने से, मिलजाती सिद्धी सुखकारी ।
तो पर्वत और वृक्ष आदिक, बनजाते सिद्ध बड़े भारी ॥
सच तो ये है जो चले, नित निज धर्मनुसार ।
वही पुरुष अति श्रेष्ट है, वही जाय भव पार ॥
हैं आप क्षत्रि कुल के भूषण, फिर नृप की पदवी पाई है ।
इसलिये प्रजा पालन व यज्ञ, करना ही अति सुखदाई है ॥
यदि इस स्वधर्म का त्यागन कर, तुम जंगल मांहि सिधाओगे ।
तो सच जानो राजन् मन में, नहीं कभी सद्गती पाओगे ॥
भ्राताओं के वाक्य सुन, बोले धर्म—कुमार ।
चाहे कितना भी कहो, हमसे तुम इस बार ॥
लेकिन सुमार्ग छोड़ेंगे नहीं, वो करेंगे जो चित धारी है ।
इस नाशवान दुनियां में तो, आदि से अन्त तक ख्वारी है ॥
हम फँसे थे मोह में इसीलिये, निश दिन दुख ही दुख पाया है ।
अब कहीं प्रभू की किरपा से, सत ज्ञान हृदय में छाया है ॥

अस्तू सन्यास ग्रहण करके, हम निश्चय वन में जावेंगे ।
हरि के चरणों में चित्त लगा, तत्काल शान्ती पावेंगे ॥
तुम सभी वीर व्रतधारी हो, अस्तू रण बातों में निश्चय ।
दे सकते हो उपदेश कई, जिससे आखिर में होवे जय ॥
किन्तु धर्म सम्बन्ध में, तुम्हें हमारी बात ।
चहिये हरदम माननी, सुनो परम प्रिय भ्रात ॥
है ध्यान ये तुम्हरा वैभव से, बढ़कर जग में कोई चीज नहीं ।
लेकिन मेरे विचार से तो, ये बात आपकी ठीक नहीं ॥
इसमें फँसनेवाला न कभी, सुख और शान्ती पाता है ।
पर ब्रह्म ज्ञान जाना जिसने, वो ही आनन्द उड़ाता है ॥
ये सुनते ही महर्षी, वेदव्यास सुजान ।
हाथ उठा कहने लगे, सुनो भूप गुणखान ॥
भ्राताओं की आशाओं को, एकदम मत वृथा बनाओ तुम ।
कुछ दिन इनके संग रहकर नृप, अति सुख से राज चलाओ तुम ॥
इसके उपरान्त विपिन में जा, श्री जगदीश्वर के गुण गाना ।
और करके सचा ज्ञान प्राप्त, उस श्रेष्ठ मोक्ष पद को पाना ॥
इस कुरुक्षेत्र की भूमी पर, संग्राम हुआ जो भयकारी ।
इसमें नहिं तुम्हारा दोष तनिक, ये भी हरि की इच्छा सारी ॥
अस्तु सोच तज चित्त में, धीर धरो तत्काल ।
उत्तर दाता हो नहीं, तुम इसके भूपाल ॥
ी वेद व्यास मुनीश्वर ने, राजा को इस विधि समझाया ।
उनके संशययुत चित को, नहिं समाधान होने पाया ॥
दीनबंधु करुणानिधान, जगदीश जगत्पति गिरधारी ।
अति नम्र भाव से कहन लगे, हे भूप तजो चिन्ता सारी ॥
संग्राम क्षत्रि जाती के लिये, अनुचित नहिं कभी बनाया है ।
जब से ये सृष्टि हुई तब से, ऐसा ही होता आया है ॥

निज राजा की रक्षा के निमित्त, रिपु वधना कभी अधर्म नहीं ।
अस्तू ये रण करके तुमने, कुछ किया भूप दुष्कर्म नहीं ॥
फिर यहाँ पर जो जो मृतक हुये, वे क्षत्रि जाति के भूषण थे ।
डरपोकपना और कायरता, आदिक नहिं उनमें दूषण थे ॥
उन लोगों ने धर्मानुसार, सन्मुख लड़ जान गमाई है ।
तब इसमें भी सन्देह नहीं, सब ही ने शुभ गति पाई है ॥
ऐसों के लिये शोक करना, ये कहां की बुद्धीमानी है ।
है खुशी का अवसर फिर तुमने, क्यों दरसाई हैरानी है ॥

* गाना *

धरो धीर भूपाल चिन्ता बिसारी,
टले नाहि होनी किसी से भी टारी ।
हुआ है यहां युद्ध जो ये भयंकर,
थी इसमें विधाता की ही चाह सारी ।
तजा है यहां फेर जिस जिसने जीवन,
वे कायर नहीं थे, थे अति शक्तिधारी ।
इसी से वदन छोड़ते ही उन्हे बस,
मिला है तुरत स्वर्ग का सुःख भारी ।
है बिल्कुल वृथा सोच ऐसो का करना,
ये मौका खुशी का है हे धर्मधारी ।

अस्तु सोच तज भूप अब, चलो नगर तत्काल ।
करो धर्म अनुसार बस, रैयत की प्रतिपाल ॥
तिसपर भी कुछ शक है तुमको, तो नरराई एक काम करो ।
सब के कथनानुसार पहिले, निज सिंहासन पर पांव धरो ॥
इसके उपरान्त शातनू सुत, भीषम के पास सिधाना तुम ।
और जितनी भी शंकायें हों, सबको निर्मूल बनाना तुम ॥

उन ब्रह्मचारी ने बड़े बड़े, ऋषियों से शिक्षा पाई है ।
इसलिये ज्ञान में उन समान, देता न कोई दिखलाई है ॥
जिस समय मृत्यु होगी उनकी, तब भारत की भूमी सारी ।
एक उत्तम रत्न गमा करके, हो जावेगी व्याकुल भारी ॥
सूरज जब तक दक्षिण दिशि से, उत्तर दिशि में नहिं आवेंगे ।
तब तक वे सच्चे व्रतधारी, निज प्राणों को ठहरावेंगे ॥
उनकी मृत्यू से प्रथम, चलना उनके पास ।
उपदेशामृत कर श्रवण, करना शंका नास ॥
आनन्दकंद के वचनों को, नहिं टाल सके श्री नरराई ।
उठ खड़े हुए और नगरी में, जाने की इच्छा जतलाई ॥
ये सुनते ही सब हर्ष उठे, चलने का साज सजाने लगे ।
घोड़ों से जुते हुये स्यंदन, अति गड़गड़ाट फैलाने लगे ॥
हुए जिस समय यान पर, धर्मराज असवार ।
सुन्दरता उस वक्त की, थी बस अपरम्पार ॥
सोलह सफेद घोड़ों से जुता, स्यंदन था नृप का द्युतिकारी ।
थे जिस पर सारथि महावीर, बलवानी भीम गदाधारी ॥
फिर उत्तम छत्र लगाये थे, अर्जुन राजा के मस्तक पर ।
और ढुला रहे थे चंवर आदि, सहदेव नकुल हर्षित होकर ॥
इनके दाहिनि दिशि शोभित थे, आनन्द कन्द श्री यदुराई ।
सात्यकी सहित रथ में बैठे, चल रहे थे चित में पुलकाई ॥
आगे आगे ऋषि मुनी कई, शुभ मंत्र सुनाते जाते थे ।
पीछे थे रिश्तेदार सभी, भूपति संग बढ़ते आते थे ॥
इस प्रकार ये चलते चलते, सब हस्तिनापुर के ढिंग आये ।
इनके आने की सुधि पाकर, सारे पुरवासी हरषाये ॥
झट सजा दिये घर दर अपने, कई पताकायें फहराने लगीं ।
वायू में मिल भीनी भीनी, खुशबू की लपटें आने लगीं ॥

ये लख अति हर्षित हुये, धर्मराज गुणखान ।
घुसे नगर में कर हृदय, इष्ट देव का ध्यान ॥
और जा पहुँचे कुछ देर वाद, महलों के भीतर नरराई ।
फिर श्रेष्ट महूरत आने पर, राज्याभिषेक की ठहराई ॥
ऋषियों ने अति हर्षित होकर, एक स्वर्ण सिंहासन मंगवाया ।
और निल्हा धुला कुंती सुत को, आदर से उसपर वैठाया ॥
पहिले तो धौम्य * पुरोहित ने, आनंदित हो काढ़ा टीका ।
बाद इसके ऋषि मुनि मित्रों ने, अरमान निकाला निज जीका ॥
इस तरह युधिष्ठिर ने पाया, वापिस निज विस्तृतराज सभी ।
और करन लगे दुख शोक भुला, रैयत पालन का काज सभी ॥

कुछ दिन में निज राज्य का, करके उचित प्रवंध ।
गये कुन्तिसुत एक दिन, हरि के घर सानंद ॥

क्या लखा सुघड़ रत्नों से जड़े, एक अति उत्तम सिंहासन पर ।
आसनासीन हैं गिरधारी, कुछ अद्भुत शोभा धारन कर ॥
दैदीप्यमान है क्रीट मुकुट, मस्तक पर श्री यदुराई के ।
और वक्षःस्थल पर शोभित है, कौस्तुभ मणि जन सुखदाई के ॥
श्यामल शरीर पर पीतांवर, अति ही सुन्दर दरसाता है ।
तन से एक अद्भुत तेज निकल, चहुँदिशि प्रकाश फैलाता है ॥
पत्थर की मूरति सम प्रभु के, निश्चल हैं अंग प्रत्यंग सभी ।
नेत्र भी वंद हैं अस्तु दृष्टि, आते समाधि के ढंग सभी ॥

ध्यानावस्थित देख कर, हरि को पांडु कुमार ।
मन ही मन कहने लगे, विस्मित होय अपार ॥

अचरज है जगदीश्वर होकर, कर रहे हैं किसका ध्यान प्रभू ।
है कौन भाग्यशाली जिस की, हैं याद में ये गुणखान प्रभू ॥

* धौम्य ऋषि का हाल पांचवें भाग में आया है पाठक देख लें ।

ब्रह्मा से लेकर मच्छर तक, सब तो इनके गुण गाते हैं ।
पाने के लिये दर्श इनका, अनगिनती जन्म गमाते हैं ॥
फिर भी उनमें विरला हि कोई, इतना किस्मतवर होता है ।
जो निहार कर प्रत्यक्ष इन्हें, निज जन्म मरण को खोता है ॥
किन्तु आज क्यों बहरही, है ये उल्टी गंग ।
त्रिभुवनपति को भी लगा, ध्यान करन का रंग ॥
इस तरह सोचते हुये भूप, कर जोड़ मौन धारन करके ।
हो रहे खड़े प्रभु के सन्मुख, चरणों में शीश नमन करके ॥
और लगे देखने हर्षित हो, अद्भुत छवि श्याम विहारी की ।
कंसारी, दीन दुःख हारी, जन सुखकारी गिरधारी की ॥
कुछ देर बाद यदुनन्दन के, अंगों में चेतनता आई ।
होगया पूर्ण वो ध्यान तुरत, खुलगये विलोचन सुखदाई ॥
लखकर निज सन्मुख राजा को, आनन्दकंद मन मुस्काये ।
और बोले भूपति कुशल तो है, फरमाओ यहां कैसे आये ॥
कहा भूप ने आप की, दया से करुणाकंद ।
सब प्रकार से हर समय, रहता है आनन्द ॥
लेकिन यहां आते ही मुझ को, एक शंका छाई है भारी ।
कर दया दृष्टि उसको तुरन्त, दीजिये मिटा हे गिरधारी ॥
कर रहे थे किसका ध्यान आप, आंखें मीचे तन्मय होकर ।
क्या तुमसे भी बढ़कर कोई, है इस ब्रह्मांड में हे नटवर ॥
जग के कर्त्ता, भर्त्ता, हर्त्ता, यदुराई तुम्हीं कहाते हो ।
हो आदि अंत से रहित और, पुरुषोत्तम माने जाते हो ॥
फिर निराकार, आकार सहित, दोनों ही रूप तुम्हारे हैं ।
है गुणों का पारावार नहीं, गा गा कर सुर नर हारे हैं ॥
ऐसे होकर हे भक्त सुखद, कर रहे थे आप याद किसकी ।
है ऐसा श्रेष्ट कौन तुम्हरे, चित में बसगई शक्ल जिसकी ॥

यदि इस रहस्य के सुनने का, मैं अधिकारी हो सकता हूँ ।
तो दीनबन्धु किरपा करके, कह दीजे बिनती करता हूँ ॥
धर्मराज के वाक्य सुन, मंद मंद मुस्काय ।
लीलाधर कहने लगे, सुनो भूप चितलाय ॥
जिनके पितु का दरजा जग में, नृप शांतनू ने पाया था ।
और जिनको तरन तारनी श्री, गंगाजी ने उपजाया था ॥
फिर पिता को खुश करने के लिये, छोड़ा था राज जिनने सारा ।
और देवों से भी हो न सके, वह ब्रह्मचर्य व्रत था धारा ॥
अथवा जो इकले ही काशी, कन्याओं को हर लाये थे ।
खुद परशुरामजी भी रण कर, जिनको न हराने पाये थे ॥
जिनके धनुका गुन घन गर्जन, सम कठोर शब्द सुनाता था ।
जो धनुर्वेद ही थे जिन सम, योधा न कोई दरसाता था ॥
फेर जिन्होंने पढ़ा था, चार वेद का ज्ञान ।
धर्म विषय में जिन सरिस, था नहिं जग में आन ॥
अथवा कर युद्ध जिन्होंने अब, उत्तम शर शैया पाई है ।
और उतरायण रवि आने तक, स्वासों की गति ठहराई है ॥
बस उन्हीं धीर गम्भीर वीर, श्री भीष्म बाल ब्रह्मचारी की ।
सुन्दर मूरति इस समय मैंने, अपने हृदय में धारी थी ॥
क्योंके वे ध्यान कर रहे हैं, इस समय शुद्ध चित से मेरा ।
अस्तू मेरे भी प्राणों ने, बस किया था जाय वहीं डेरा ॥
हैं भीष्म हमारे परम भक्त, प्राणों से बढ़कर प्यारे हैं ।
भक्तों का ध्यान धरें निशदिन, ये ही कर्तव्य हमारे हैं ॥

* गाना *

सुन राजन बचन हमारे, मुझे लगते हैं भक्त पियारे ॥
सच्चे मन से एकहि वारा, ध्यान मेरा जिस जिसने धारा ।
मेटे हैं संकट सारे, सुन राजन बचन हमारे ॥

भक्तो को दुनियां के मांही, हे कुन्ती सुत पलभर नाहीं।
सकता हूँ देख दुखारे, सुन राजन वचन हमारे ॥
इस जग में है लाखो ही नर, भक्त बहुत कम होते हैं पर।
कहता हूँ सत्य पुकारे, सुन राजन वचन हमारे ॥
भक्तों से मैं दूर नहीं हूँ, भक्त जहां हैं मैं भी वहीं हूँ।
भक्त हैं प्राण पियारे, सुन राजन बचन हमारे ॥

बात एक अब कुन्ति सुत, सुनो लगाकर ध्यान।
कुछ ही दिन में भीष्मजी, छोड़ेंगे निज प्रान ॥
तब जैसे शशि के छिपते ही, हो जाती तेज हीन रजनी।
त्योंही इनकी मृत्यु से हीन, बन जावेगी भारत अवनी ॥
इसलिये चलो उनके समीप, उन के मरजाने से पहले।
और पूछो, "धर्म" वस्तु क्या है, निज राज चलाने से पहले ॥
उनके सदृष्य अनुभवी मनुज, नहिं कहीं भी देता दिखलाई।
उनके मरते हि जान लेना, छिप गया ज्ञान का दिनराई ॥

यदुराई की बात सुन, हरषाये भूपाल।
तैयारी करने लगे, चलने की तत्काल ॥

बुलवा कर सब भ्राताओं को, आज्ञा दी साज सजाने की।
फिर की नटवर से भी विनती, भीषम के पास सिधाने की ॥
आखिर अपने संग ले सब को, रणधीर वीर कुन्ती नन्दन ॥
जा पहुँचे कुरुक्षेत्र में जहां, शोभित थे श्री गंगानन्दन।
और देखा दादा के चहुंदिशि, बैठे हैं अगणित सन्यासी ॥
इनके सिवाय दृष्टी आते, यहां नारद मुनी भी गुणरासी।
जैसे उपासना करते हैं, इन्द्र की देवता हरषाकर।
त्योंही ऋषि मुनि भीषमजो के, गा रहे हैं गुणगण पुलकाकर ॥

सबने इनके निकट जा, लेले अपना नाम।
शीश टिकाकर भूमिपर, किया सहर्ष प्रणाम॥
लख पांचों पांडु कुमारों को, हरषाये गंग तनय भारी।
और सबके सिर पर हाथ फेर, दीन्ही आशिष अति सुखकारी॥
फिर अपने दोनों हाथ जोड़, गिरधारी की अस्तुति कीन्ही।
इसके उपरान्त इन सबों को, तहं बैठन की आयसु दीन्ही॥
कुछ देर तलक तो शांति रही, फिर कहने लगे श्री यदुराई।
हे पितामहा ये कुन्ति सुवन, आये हैं शिक्षा के तांई॥
अस्तु कर किरपा श्री मुख से, कुछ धर्मोपदेश सुना दीजे।
जो जो इनकी शंकायें हैं, उनको निर्मूल बना दीजे॥
गंग तनय कहने लगे, सुनो सच्चिदानन्द।
पूर्ण आपके हुक्म को, करता मैं सानन्द॥
लेकिन क्या करूं विवश हूं मैं, घायल है सकल शरीर प्रभो।
अति अधिक पीर होने के सबब, छुट रहा मेरा सब धीर प्रभो॥
होगई मूढ़ बुद्धि भी मेरी, मूर्छा दमदम पर आती है।
मैं बहुत रोकता हूं तो भी, तबियत घबराई जाती है॥
बस केवल कृपा तुम्हारी से, मैं रखे हुए हूं प्रान मेरा।
इसलिये क्षमा करिये भगवान्, हो रहा ध्यान बे ध्यान मेरा॥
इसके सिवाय जब आप यहां, हैं विद्यमान अंतरयामी।
तब गैर की क्या आवश्यकता, उपदेश सुनाने की स्वामी॥
जहां सूर्य प्रकाशित हो वहां पर, दीपक क्या भला कहायेगा।
अमृत मिलने पर कौन है जो, सरिता के जल से न्हायेगा॥
हे ईश धर्म के धर्म हो तुम, वेदों के वेद कहाते हो।
हो ज्ञान के ज्ञानरु शास्त्रों के, निर्माता माने जाते हो॥
इसलिये आप ही श्री मुख से, नृप को उपदेश सुनाइयेगा।
जो कुछ भी इनकी शंका हो, उसको तत्काल मिटाइयेगा॥

गुरु के सन्मुख शिष्य जिमि, दे न सके उपदेश।
तिमि तुम्हरे सन्मुख प्रभू, करूं मैं किम आदेश॥
सुन कर भीषम के वचनों को, नटवर का हृदय भर आया।
हो गये खड़े और हाथ उठा, कर इस प्रकार से फरमाया॥
मेरे वर से हे गांगेय, नश जायेंगे तुम्हरे क्लेश सभी।
वेदना मूर्छा आदिक का, रहने न पायेगा लेश कभी॥
फिर भूख प्यास भी तुम्हें कभी, अब नहीं सताने पायेगी।
राजस और तामस छोड़ बुद्धि, सात्विकपन को अपनायेगी॥
और रहेगी दिव्य दृष्टि तुम्हरी, मरते दम तक हे गुणखानी।
मुनियों को भी जो दुर्लभ है, पावोगे वह गति सुखदानी॥
श्रीकृष्ण के वाक्य सुन, हरषाये मुनिवृन्द।
प्रेम सहित सब कह उठे, जयति सच्चिदानन्द॥
वरदान से कुंज विहारी के, भीषम का सब दुख दूर हुआ।
आ गई बदन में शक्ति तुरत, चित्त में उछाह भरपूर हुआ॥
दोउ हाथ जोड़ कर कहन लगे, हे दीनबन्धु हे गिरधारी।
हे भक्तों के आनन्दायक, हे त्रिभुवन पति हे बनवारी॥
हे विधि के विधि तुम्हरे वर से, हो गई दूर सब पीर मेरी।
आ गई सावधानी चित में, बन गई बुद्धि गम्भीर मेरी॥
अब तत्पर हूं कहने को उसे, जो ज्ञान दास ने पाया है।
ले करके ही जिसका आश्रय, अपना सब जन्म बिताया है॥
इतना कह कर गंगासुत ने, महाराजा को संकेत किया।
और विषय में निज शंकाओं के, पूछन का खुश हो हुक्म दिया॥
भीष्म पितामह के वचन, सुन हर्षे भूपाल।
शीश झुका कर जोड़कर, कहन लगे तत्काल॥
हे दादा सब कोई मुझ से, कहते हैं राज चलाने को।
लेकिन असमर्थ हूं मैं बिलकुल, ये भारी बोझ उठाने को॥

अस्तू सबसे पहले मुझको, बस राज धर्म समझा दीजे।
क्या कर्तब है राजाओं का, इसको सम्पूर्ण बता दीजे॥
राजा के वचनों को सुन कर, हरषाये गंग तनय भारी।
और कहन लगे हे कुन्तिसुवन, तेरी बुद्धी पर बलिहारी॥
अति ही उत्तम है प्रश्न तेरा, सुन मुझको आनन्द छाया है।
धरकर धीरज अब श्रवण करो, जो शास्त्रों ने बतलाया है॥
ये राज्य धर्म सब धर्मों में, सर्वोपरि माना जाता है।
सारी दुनियां का बस येही, आधार भूत कहलाता है॥
जिस प्रकार अंकुश होता है, गज को बस में रखने के लिये।
अथवा जैसे लगाम होती, घोड़ा काबू करने के लिये॥
त्यों ही करने को वशीभूत, जग के सब जीवों को राजन्।
ये राज्य धर्म ही होता है, ऐसा चित में समझो राजन्॥

जिमि रवि तम का नाश कर, उजियाला फैलाय।
तिमि ये मेट कुमार्ग को, सतमारग दिखलाय॥

अब मैं तुझको हे पान्डु पुत्र, नृप के कर्तव्य सुनाता हूँ।
कैसा राजा उत्तम होता, ये सारी बात बताता हूँ॥
अव्वल तो हर एक अवनि पति, बस धर्म शील होना चहिये।
और प्रजा के हित के लिये उसे, निन दान धर्म करना चहिये॥
फिर रहना चहिये नित्यप्रती, उत्साही अरु अति उद्योगी।
है यही कर्म जो होता है, राज्य के लिये अति उपयोगी॥
यदि किसी कार्य में देती हो, नृप को निष्फलता दिखलाई।
तो कभी नहीं अपने चित्त में, आने देवे व्याकुलताई॥
बल्की दूनी हिम्मत से उसे, पूरा करने में लग जावे।
और जबतक सफल मनोर्थ न हो, नहिं पीछे हटे न घबरावे॥

नृप को चहिये सत्य से, कभी न मोड़े मुःख।
यही वस्तु संसार में, पहुँचाती है सुःख॥

जिसने सचाई को तजकर, झूठी बातों को अपनाया ।
वो भूप जगत में थोड़े ही, दिवसों रहता दृष्टी आया ॥
अस्तू चाहे कितना भी दुख, मस्तक पर आकर छाजावे ।
धरकर धीरज सब सहन करे, लेकिन न सत्य को बिसरावे ॥
फिर शासन करते समय भूप, दिखलावे अति नरमी भी नहीं ।
और जिससे सब ही डर जावें, दरसावे वो गरमी भी नहीं ॥
किन्तू बसंत के सूरज सम, बस हाल रखे हरदम अपना ।
तज पक्षपात को न्याय करे, अघ का न कभी देखे सपना ॥
गर्भिणी नारि जैसे अपने, मनका प्रिय काम न करती है ।
बल्की जो गर्भ को हितकारक, होता वो चित में धरती है ॥
त्योंही राजा का धर्म है ये, तजकर अपने आरामों को ।
हर समय करे रैयत को सुख, पहुंचाने वाले कामों को ॥
रहता जिसके चित्त में, नित संशय का वास ।
करना जो न त्रिकाल, कोई का विश्वास ॥
फिर जिसका सच्चा और सरल, बर्ताव न दृष्टी आता है ।
निज वशीभूत रैयत का जो, सर्वस्व लूटना चाहता है ॥
ऐसे दुष्कर्मी राजा का, रहता निष्कंटक राज नहीं ।
दिन रात उपद्रव होते हैं, सजता न शांति का साज कहीं ॥
सच तो ये है पितु के घर में, जिमि सब सुत मौज उड़ाते हैं ।
[illegible]ोंही जिस नृप के पुरवाले, निर्भय हो समय बिताते हैं ॥
[illegible]र होते हैं जो पूर्ण तथा, अन्याय न्याय जानन हारे ।
कर्तव्य कर्म में चतुर तथा, होते उदार वृत्ती वारे ॥
फिर जो नृप को जीवन अर्पण, करने में भय नहिं लाते हैं ।
रहते झगड़े टंटों से अलग, और राजनिष्ठ कहलाते हैं ॥
ऐसी रैयत वाला नृपति, सब भूपों में सर्वोत्तम है ।
पर जो न प्रजा पालन करता, वो दुष्ट मूर्ख अधमाधम है ॥

एक बात फिर और है, सुनलो कुन्ति कुमार ।
हो जाता है समय भी, राजा के अनुसार ॥
जिस समय भूप अपना कर्तव, सच्चे हृदय से करना है ।
तो कलियुग भी निज देह पलट, सतयुग का बाना धरना है ॥
किन्तू जो नृप मद मत्त होय, अपना सद्धर्म भुला देना ।
तो आनन्ददायक सतयुग भी, कलियुग का रूप बना लेना ॥
फिर एक बात का ध्यान और, रक्खे चित में नित नरराई ।
दुर्बलों को संकट पहुंचाना, होता न कभी भी सुखदाई ॥
प्रभु ने राजा को भेजा है, दुष्टों का जी हरने के लिये ।
और दीन गरीब विचारों की, सब विपत दूर करने के लिये ॥
जो अवनीपति इस कर्तव को, नहिं पूरी तरह निभाना है ।
तो जीते जी कई दुख पाकर, मर अंत नरक में जाता है ॥
चित माहिं कदाचित कुटिल भूप, दे निबल को दुख इतराता हो ।
"कमज़ोर मेरा क्या करलेंगे", ऐसा अंदाज लगाता हो ॥
पर उसको इस बात का, रखना चाहिये ध्यान ।
दुर्बल दुर्बल हैं नहीं, किन्तु हैं सबल महान ॥
जो शक्ति नहीं होती अच्छे, अच्छे वीरों की बाहों में ।
उससे भी कई गुनी ज्यादा, होती निर्बल की आहों में ॥
जिमि मृतक चर्म की फूंकों से, फौलाद भस्म हो जाती है ।
तैसे ही आह गरीबों की, अति सबलका खोज मिटाती है ॥
सरदी से ठिठरे हुये और, पापी पुरुषों से सताये हुए ।
रोग से ग्रसित भूखे प्यासे, हर तरह हीन कुम्हलाये हुये ॥
ऐसों की रक्षा करने की, जिस नृप ने हृदय नहीं धारी ।
जिस राज में ऐसे दीन मनुज, पाते हि रहे संकट भारी ॥
उस दुष्ट बुद्धि वाले नृप पै, ईश्वरी कोप छाजायेगा ।
हो जायगा नष्ट राज सारा, और वंश भी तुरत बिलायेगा ॥

अस्तु याचना से प्रथम, करे निबल का काम ।
यही भूप के लिये है, सुखद और सुख धाम ॥
जिस नरराई ने राग द्वेष, मद काम क्रोध को जीत लिया ।
शास्त्रों में वर्णन किये हुए, शुभ राज धर्म को ग्रहण किया ॥
जिसके पुर में दीनो धनाढ्य, आनन्द से उमर बिताते रहे ।
धन धान्य पूर्ण रहकर हर दम, राजा के गुण गण गाते रहे ॥
बस नींव उसी अवनीपति के, राज्य की सुदृढ़ है पहिचानो ।
है वही मनुज नृप की पदवी, पाने लायक ये अनुमानो ॥
हे धर्मराज अव्वल तो है, अति मुश्किल नर शरीर पाना ।
यदि दैवयोग से मिल भी गया, तो सहज नहीं नृप बनजाना ॥
अनगिनती जन्मों के सुकर्म, जब एकत्रित हो जाते हैं ।
तब कहीं जीव को परमात्मा, राजा का पद दिलवाते हैं ॥
ऐसे उत्तम दर्जे को पा, जो नर बन जाते अभिमानी ।
तजकर सतपथ को कुपथ में जा, करने लगते निज मनमानी ॥
वे महामूर्ख हैं हीरे की, कुछ कदर न कर बिसराते हैं ।
और खरीद कर बदले में कांच, हरषाते हैं पुलकाते हैं ॥
फल ये होता पुन्य सब, हो जाते झट नष्ट ।
जाकर वे पशु योनि में, पाते हैं फिर कष्ट ॥
इतना कहकर चुपचाप रहे, कुछ देर तलक गंगानन्दन ।
फिर हाथ उठा कर कहन लगे, धर ध्यान सुनो हे कुन्तिसुवन ॥
...के अति उत्तम कर्मो को, नृप पद पानेवाला प्रानी ।
होता स्वभाव से ही धार्मिक, सतवादी सब गुण की खानी ॥
लेकिन बद सोहबत पल भर में, उसका सब ज्ञान भुलाती है ।
और जमा के अपना पक्का रंग, बस नीच कर्म करवाती है ॥
आगे पीछे भूप के, लगजाते दो नीच ।
रखते हैं उसको सदां, अंधकार के बीच ॥

इन दो नीचों में से इक तो, नर चुगल खोर कहलाता है।
और चापलूस के नाम से बस, दूसरा पुकारा जाता है॥
है इनका काम सज्जनों की, चुगली नित राजा से खाना।
और नृप के चित्त में जुये अहि, व्यसनों की इच्छा उपजाना॥
इनको करने के लिये ये खल, ऐसा कुछ ढोंग रचाते हैं।
होकर विनीत चिकनी चुपड़ी, कुछ ऐसी बात बनाते हैं॥
कि इनको अपना हितू समझ, नृप चक्कर में फस जाता है।
इनके वचनों को वेद वाक्य, गिनकर निज काम चलाता है॥

अस्तु भूप को चाहिये, खुशामदी से दूर।
रहे सदा और शिष्ट को, अपनावे भरपूर॥

हे पांडुपुत्र सारांश है ये, नृप धर्मवान होना चहिये।
रणधीर वीर कोविद ज्ञानी, पंडित सुजान होना चहिये॥
फिर चहिये अपनी रैयत की, सुतवत रक्षा करने वाला।
दुष्टों और देश द्रोहियों को, अति कड़ा दंड देने वाला॥
इसके अतिरिक्त नाय प्रियता, इन्द्रिय दमन और सचाई।
मय दया, अहिंसा क्षमा, धर्म, आदिक गुण धारे नरराई॥

*** गाना ***

अपने हृदय मे जिसने ये राज धर्म धारा।
समझो उसी नृपतिने निज जन्म को सुधारा॥
मदमत्त होके जिसने दीनों का दिल दुखाया।
उसने ये लोक और वह परलोक भी बिगारा॥
पालन प्रजा का करना दुष्टों को दण्ड देना।
इतना हि कर्म नृप को देता है सुःख भारा॥
दुर्लभ नृपति के पद को पाकर ये चहिये नर को।
त्यागे कभी न सत को पाले स्वधर्म सारा॥

यही भूप के कर्म हैं, यही राज्य का सार।
जो इसके माफिक चले, पावे सुःख अपार॥
इस तरह भीष्म ने रण समाप्त, होने से लेय दिवाकर के।
उतरायण आने तक नितप्रति, उपदेश दिया हरषाकर के॥
इस राज धर्म के अतीरिक्त, तप धर्म, मोक्ष के धर्मों का।
अध्यात्म योग, वर्णाश्रमादि, अनगिनती उत्तम कर्मों का॥
अति गूढ़ रहस्य छप्पन दिनतक, श्री धर्मराज को समझाया।
जिसको सुनकर नृप सहित सभी, लोगों के चित में सुख छाया।
आखिर उत्तरदिशि की जानिब, आये जैसे ही दिनराई।
त्योंही श्री गंगानन्दन ने, तन के तजने की ठहराई॥
होगये जमा स्त्रियों सहित, भीषम के रिश्तेदार सभी।
और अपना अपना नाम सुना, बस करने लगे जुहार सभी॥
लख इन्हें शान्तनू-नंदनने, अति पुलका कर आशिष दीन्ही।
फिर प्राण त्यागने खातिर, ऋषि मुनियों से आज्ञा लीन्हीं॥
सबसे सब विधि भेंटकर, अंत में इनके नैन।
चले उस तरफ थे जहाँ, नटवर करुणाऐन।
गिरधर से आखें मिलते ही, भीषम को परमानन्द हुआ।
कर अंत समय प्रभु के दर्शन, चित में उछाह चौचन्द हुआ॥
कर जोड़ प्रेम से मन ही मन, आनन्द कंद को सिर नाया।
द गद होगया हृदय सारा, रोमांच बदन में हो आया॥
खिर जैसे तैसे अपने, हृदय को धीर बंधा कर के।
स्तुति करने लगे तुरत, यदुराई की पुलका कर के॥
हे जगदीश्वर जगपते, गिरधर राजिवनैन।
खुशी हूजिये कर श्रवण, मेरे अंतिम बैन॥
हे अजर अमर हे दोष रहित, हे पवित्र धाम वाले स्वामी।
हे मन और बुद्धी से अगम्य, हे दीनबंधु अंतरयामी॥

हे हिरण्य-गर्भ हे आत्मरूप, हे अविनाशी हे यदुराई ।
हे वेद जनक हे आदि पुरुष, आया हूँ तुम्हरी शरणाई ॥
हे अनंत जिनको पूर्णतया, नहिं किसीनेभी अबतक जाना ।
थक गये शेष शारद महेश, सुर असुर नाग किन्नर नाना ॥
इस सकल जगत को निज बल से, जो इकले ही प्रगटाते हैं ।
कर पालन पोषण अन्त में जो, फिर उसको नष्ट बनाते हैं ।

कहलाते हैं फेर जो, जन रक्षक सुख धाम ।
ऐसे दीनदयाल को, सादर करहुँ प्रणाम ॥

फिर जिनको खुश करने के लिये, नित यज्ञ रचाया जाता है ।
अर्चन वन्दन पूजन करके, जिनका यश गाया जाता है ॥
जो रहते हैं सबके चित में, सबके आत्मा कहलाते हैं ।
सब को सब विधि जानते हैं जो, जो व्यापक माने जाते हैं ॥
फिर जिनको परंब्रह्म कहकर, सम्बोधन करते हैं योगी ।
और जिनका अतुल विराट रूप, हृदय में धरते हैं योगी ॥
जो सर्वरूप सर्वज्ञ आदि, नामों से पुकारा जाता है ।
उस महापुरुष को गंग-तनय, आदर से शीश नवाता है ॥

जिनके बलका आज तक, मिला नहीं है पार ।
अनगिनती ब्रह्मांड जो, लेते सहजहि धार ॥

फिर जिनका तेज है रवि से बढ़, शीतलता अधिक सुधाकर से ।
वायू से श्रेष्ठ पराक्रम है, गम्भीरता है अति सागर से ॥
जिनका स्वरूप है बुद्धि और, इन्द्रियों के जानन योग नहीं ।
जो सत व असत दोनों ही हैं, जिनकान आदि और अंत कहीं ॥
उन जगत्पती आनन्द कंद, श्री कृष्णचन्द्र जगसांई को ।
मैं प्रणाम करता हूँ हित से, कर दूर सकल दुचिताई को ॥
फिर जिनको सकल पुराणों ने, पुरुषोत्तम कह उच्चारा है ।
जिनके सुन्दर पद पद्मों से, प्रगटी गंगा की धारा है ॥

जो एक होय कर भी अनेक, रूपों में देते दिखलाई।
तज दिव्य सेज को जिन्होंने है, श्री शेष की शैया अपनाई॥
जिनका स्वरूप वर्णन करते, मनका मनत्व मारा जाता।
द्रष्टा बन जाता दृश्य तुरत, और वक्ता वक्तव हो जाता॥
अस्तु जिन्हें कोई नहीं, सका प्रत्यक्ष निहार।
उस अव्यक्त स्वरूप को, प्रणवहुँ बारम्बार॥
हे विश्वम्भर हे विश्वात्मन, हे विश्व को प्रगटाने वाले।
हे लीलाधर हे मोक्ष रूप, हे सकल भुवन के उजियाले॥
है नमस्कार मम बार बार, हे भक्त सुखद सादर तुमको।
कर दया दयानिधि दीनबंधु, भवसागर पार करो मुझको॥
हे हृषीकेष तुमने दी है, जो दिव्य दृष्टि उसके द्वारा।
मैं तुम्हरा प्राकृत रूप न लख, लखता हूँ विराट रूप सारा॥
पुंडरीकाक्ष! तुम्हरा मस्तक, हो रहा है व्याप्त सकल घन में।
पांवों में पृथ्वी समा रही, छा रहा तेज सब त्रिभुवन में॥
वास्तव में जगदीश तुम, हो अनादि अव्यक्त।
किन्तु भक्त के वास्ते, बन जाते हो व्यक्त॥
हे प्रभु मैंने मुनि सेवा में, वर्षों का समय बिताया है।
तव कहीं उन्होंने थोड़ा सा, तुम्हरा प्रभाव बतलाया है॥
सौ यज्ञ रचाने वाला भी, निश्चय भूमी पर आता है।
पर कृष्ण का यश गाया जिसने, वह तुरत मोक्ष पद पाता है॥
चलते फिरते सोते जगते, जो कृष्ण का नाम सुमिरते हैं।
करते हैं कृष्ण का ही पूजन, और कृष्ण का ही वृत रखते हैं॥
वे तजते ही नश्वर शरीर, नहिं जरा भटकने पाते हैं।
चल्की झट होकर कृष्ण रूप, श्री कृष्ण में जाय समाते हैं॥
अस्तु हे अलसी-पुष्प सरिस, अति ही सुन्दर कांती धारी।
हे अच्युत हे गोविंद प्रभू, हे पीताम्बर धर बनवारी॥

मैं प्रणाम करता हूँ तुमको, हे कृपा सिंधु किरपा लाओ।
इस दीन हीन का सोच मिटा, जल्दी स्वधाम में पहुँचाओ॥

* गाना *

बिन, तुम्हरी दया गिरधारी नहीं होते है जीव सुखारी॥
चाहे अतुलित दान दिलावे, यज्ञ करे चहे तीरथ जावे।
पर न मिटे दुख भारी॥ बिन०॥
पर प्रभु जिन पर कृपा दिखावें, जन्म मरन उनके मिट जावें।
पावें गति सुखकारी॥ बिन०॥
दीन जान मुझ पर भी स्वामी, दया दिखाओ अंतरयामी।
आया हूँ शरण तुम्हारी॥ बिन०॥

इस प्रकार करके विनय, गंग तनय बलधाम।
तनिक देर चुपचाप रह, फिर बोले हे श्याम॥
उत्तर में रवि आ पहुँचे हैं, इसलिये प्रभू आज्ञा दीजे।
ताके प्राणों का त्याग करूं, इतना कहना मेरा कीजे॥
कर वचन श्रवण सच्चिदानन्द, भीषम के पास चले आये।
और प्रेम दृष्टि से देख इन्हें, यों कहन लगे अति हरषाये॥
हे शान्तनू-नन्दन तुमने, नहिं कोई पाप कमाया है।
हर समय स्वच्छ आचरण राख, अपना सब जन्म बिताया है॥
अस्तू खुश हो देता हूँ तुम्हें, आज्ञा वसुलोक* सिधाने की।
जहां से आये थे भूमी पर, बस उसी भुवन में जाने की॥
आयसु पा गोविंद की, हरषे गंग-कुमार।
बंद किये दोउ नेत्र झट, कृष्णरूप हिय धार॥
फिर योग से ज्यों ज्यों प्राणों को, वे ब्रह्मांड में लेजाने लगे।
त्यों त्यों नीचे के अंग सभी, तेजस्वी दृष्टी आने लगे॥

* वसुलोक का हाल पहिले भाग मे आ चुका है।

आखिर उनके मस्तक में से, एक ज्योति निकल बाहर आई ।
इस तरह महा मनि भीषम ने, अपनी देही को बिसराई ॥
भीषम सदृश्य अनुभवी, सकल गुणों की खान ।
इस वसुंधरा पर कहीं, हुआ नहीं कोई आन ॥
इनके जीवन के कामों की, यदि समालोचना की जावे ।
तो सिवाय धर्माचरणों के, कुछ और नहीं दृष्टी आवे ॥
जब भी जो इन्होंने काम किया, था नहीं सचाई से खाली ।
बस आदि से लेकर अंत तलक, शास्त्रों की मर्यादा पाली ॥
केवल निज पितु के सुख के लिये, आजन्म ब्रह्मचर्यः धारा ।
अति ही दुर्लभ सब राज्य और, पत्नी के सुख को तज डारा ॥
फिर भ्राताओं के पुत्रों को, पाला और सद् उपदेश दिया ।
होते हि योग्य उनको झटपट, अति हित से राज्यभिषेक किया॥
ये मालुम होते हुये भी कि, कौरव सब दुष्ट अधर्मी हैं ।
और पांडव पूरे सतवादी, कर्तव्य निष्ट और धर्मी हैं ॥
ये केवल निज कर्तव्य समझ, दुर्योधन के साथी बनकर ।
लड़ने के लिये तयार हुये, हथियार हाथ में धारन कर ॥
इनके सब बर्ताव पर, करते जब हम गौर ।
यही विदित होता है कि, इस सम हुआ न और ॥
अल किस्सा इनके मरते ही, सब ही को दुःख हुआ भारी ।
फिर अति सुन्दर एक चिता बना, की दग्ध करन की तैयारी ॥
.रके अंतेष्टि क्रिया आखिर, ये सब आये गंगा तट पर ।
ौर देने लागे जलांजली, चितमें अति शोकाकुल होकर ॥
इस समय फेर श्री धर्मराज, व्याकुल हो रुदन मचाने लगे ।
तब कृष्ण व वेद व्यास मुनी, इनको उपदेश सुनाने लगे ॥
और कहा अंत में भूप तुम्हें, अब अश्वमेध करना चहिये ।
चित की अशान्ति दुखशोक सभी, इसके द्वारा हरना चहिये ॥

इन दोनों के वचन सुन, धर्मराज भूपाल ।
अति उदास हो चित्त में, कहन लगे तत्काल ॥

भगवन् मुझ को ये मालुम है, यह यज्ञ सकल सुख करता है ।
मन के व वचन के कर्मों के, सारे पापों को हरता है ॥
लेकिन मुझको ये अनुष्ठान, करना लगता अति ही भारी ।
क्योंकि इस महा घोर रण में, होगई नाश सम्पति सारी ॥
फिर आस पास के राजपुत्र, और प्रजा है दीन अवस्था में ।
इस हालत में यज्ञ करने की, किस तरह से करूं व्यवस्था मैं ॥

ये सुनकर कहने लगे, मुनिवर वेद व्यास ।
धन के लिये नृपाल तुम, होउ न तनिक उदास ॥

हम यत्न बताते हैं जिससे, इतनी सम्पति मिल जायेगी ।
इस एक यज्ञ की बात है क्या, सौ में भी नहीं चुक पायेगी ॥
एक समय किसी महाराजा ने, हिमिगिर पर यज्ञ रचाया था ।
उस समय दक्षिणा में उसने, धन इतना अधिक दिलाया था ॥
कि चल न सका वो विप्रों से, तब वे सारे मजबूर हुये ।
और छोड़ द्रव्य को उसी जगह, वे तुरत वहां से दूर हुये ॥
वो ढेर स्वर्ण का अभी तलक, है पड़ा वहीं पर नरराई ।
उसको अपने घर में लाकर, ये यज्ञ रचाओ सुखदाई ॥

इतना कह मुनिराज ने, जगह दई बतलाय ।
ये सुन धन लाने चले, पांचों पांडव भाय ॥

जाती विरियां प्रभु से बोले, एक बात सुनो हे जगदीश्वर ।
हम तो पांचों ही जाते हैं, धन लाने शैल हिमालय पर ॥
और कृप्या आप यहां रहकर, ताया को ज्ञान सुनाते रहें ।
है उन्हें सुतों का शोक बहुत, अरु धीरज बंधवाते रहें ॥

इतना कह कुछ फौज को, लेकर अपने साथ ।
धौम्य पुरोहित के सहित, चले शीघ्र नर नाथ ॥

अगणित सरितायें वन उपवन, कई उत्तम नगर विहा करके ।
कुछ दिनों बाद बर्फ से ढके, गिरवर पर पहुँचे जा करके ॥
और फिर ढूंढी वह जगह तुरत, जो व्यास ने इन्हें बताई थी ।
और जिसने अपने गर्भ मांहि, अतुलित सम्पत्ति छिपाई थी ॥

यहां आ डेरे डाल कर, धर्मराज नर नाह ।
लगे देखने शुभ दिवस, के आने की राह ॥

आते ही उत्तम दिन सबने, हर्षित होकर उपवास किया ।
और बड़े प्रेम से अष्ट प्रहर, कैलाशनाथ का नाम लिया ॥
फिर अति उत्तम सामग्री से, पूजा कीन्हीं त्रिपुरारी की ।
देवेश, उमेश, महेश, प्रभो, कमारी, जन दुख हारी की ॥
इसके उपरान्त द्रव्य स्वामी, श्री कुबेर जी को सिर नाया ।
तब कहीं भूमि के खोदन का, हो खुशी हुक्म झट फरमाया ॥

आज्ञा पाते ही उठे, नृप के दास तमाम ।
भूमि खोदने का तुरत, शुरू कर दिया काम ॥

कुछ ही देरी के बाद वहां, अतुलित दौलत दृष्टी आई ।
निकले कई घड़े कढ़ाव आदि, ये लख हर्षे पांचों भाई ॥
फिर सारे धनको लदवा, ऊंटों और रथों खचरों पर ।
हस्तिनापुर की ओर चले, यज्ञ करनकी इच्छा चित में धर ॥
श्रोताओं नगरी के समीप, ये तो कई दिन में आवेंगे ।
तब तक जो हाल रहगया है, उसको हम तुम्हें सुनावेंगे ॥
ये तुम्हें याद होगा जब के, अभिमन्यू स्वर्ग सिधाया था ।
तब उनकी पत्नि उत्तरा ने, जलकर मर जाना चाया था ॥

पर श्री कृष्ण ने रोक इसे, यों कहा था तू है गर्भवती ।
इसलिये पति के साथ में तू, हरगिज नहिं हो सकती है सती ॥

बैठ गई थी उत्तरा, ये सुनकर मन मार ।
पुत्र दर्श की चाह से, चित में धीरज धार ॥

आगया जन्म लेने का समय, इसवक्त निकट उस बालक का ।
पांडवों के कुलके, नहीं नहीं, सब कौरव कुलके पालक का ॥
आखिर लड़का उत्पन्न हुआ, पर बिल्कुल ही छवि छीन था वो ।
हो रहा था स्याह बदन सारा, और फिर प्राणों से हीन था वो ॥
ब्रह्मास्त्र १ ने अश्वत्थामा के, इसको निर्जीव बनाया था ।
अपनी ज्वाला से गर्भहि में, जीवन को तुरन्त सुखाया था ॥
इस रण में पांडु कुमारों के, सब सुतों ने जान गमाई थी ।
अब आगे कौन भूप होगा, सबको ये चिन्ता छाई थी ॥
द्रौपदी, सुभद्रा, कुन्ति आदि, अभिमन्यू के इस बालक पर ।
बस आशा लगाकर बैठी थीं, सारे कुल का अधार गिनकर ॥

पै अकाल में ही इसे, प्राण हीन अवलोक ।
सभी नारियों को हुआ, महा भयानक शोक ॥

जिसमें उत्तरा की हालत तो, बस नहीं बखानी जाती थी ।
वो तरूणांगी निज मस्तक धुन, भूमी पै पछाड़ें खाती थी ॥
मर चुका था पति बचपन में हो, फिर थी जिस पर आशा सारो ।
वह प्रथम पुत्र भी नष्ट हुआ, ये लख उपजा संकट भारी ॥
अस्तू अति ही ऊंचे स्वर से, ये बाला रुदन मचाने लगी ।
हा भगवन् अब कैसी होगी, यों कह जल धार बहाने लगी ॥

१ देखो २० वाँ भाग ।

❋ गाना ❋

करूं मैं कैसी हे दीनबंन्धू धरूं हृदय मे हा धीर क्यों कर ।
होगी न कोई भी नारि मेरे सरिस अभागिन जहां के अंदर ॥
युवा अवस्था हुई है जबसे मिला नहीं कुछ भी चैन तब से ।
चले गये हैं गिराके प्रीतम पहाड़ दुख का हमारे सिर पर ॥
थी आशा मेरी भुवन पै सारी होऊंगी इसको लख सुखारी ।
मगर जनमते ही ये भी तन तज सिधाया है हाय कालके घर ॥
कहा था प्रभु ने वचन है मेरा बनेगा राजा ये पुत्र तेरा ।
दिखाया किस्तम ने कृष्ण के भी वचन को बिल्कुल गलत बनाकर ॥
ये सत्य है जबके वक्त फिरता हितू भी मुखसे न बात करता ।
बस अबतो येही उचित है मुझको तजूं ये जीवन चिता में जलकर ॥

एकाएकी श्रवण कर, शोर रुदन का घोर ।
अंतःपुर पहुंचे तुरत, नटवर नंद किशोर ॥

इनको लखने हि स्त्रियों का, होगया शोक दूना पल में ।
अति ही कातर स्वर से रोकर, सारी गीरगई अवनितल में ॥
आखिर ज्यों त्यों कर कुन्ती ने, अपने चित में धीरज धारा ।
और मृतक पुत्र के होने का, नटवर से हाल कहा सारा ॥
फिर कहा अंत में हे गिरधर, हे वासुदेव शारंगपानी ।
महा बाहु यदुकुल जीवन, हे भक्तसुखद सब गुणखानी ॥

तुम्हीं प्रतिष्ठा अरु गती, हो हमरी भगवान ।
तुम्हीं से जीवित पांडु कुल, है जग के दरम्यान ॥
अस्तृ हे यदुवंशी योधा, एक विनय हमारी हृदय धरो ।
निज प्रियः भानजे के सुत को, कर किरपा जिन्दा शीघ्र करो ॥

जा रही थी जब जलने के लिये, उत्तरा पती १ के मरने पर ।
तब तुमने इससे कहा था ये, क्या करेगी तू तन बिसराकर ॥
है गर्भ में जो तेरे लड़का, वो नहिं साधारण प्राणी है ।
बल्कि है अति ही तेजस्वी, और सारे गुण की खानी है ॥
एक समय आयगा जब ये सुत, भारत का राज चलायेगा ।
कई राजाओं से पूजित हो, सम्राट की पदवी पायेगा ॥
पर केशव ये तो जन्मते ही, यमराज के भवन सिधारा है ।
अब कौन बनेगा महाराजा, कहां रहा वह वाक्य तुम्हारा है ॥

अस्तु प्रभू इस बालको, दे प्राणों का दान ।
सच्चा अपने वाक्य को, करिये कृपानिधान ॥

पुंडरीकाक्ष ! ये ही बच्चा, पांडव कुल का आधारा है ।
यदि ये जीवित नहिं हुआ तो फिर, नस जायेगा कुल सारा है ॥
इसलिये देवकीनन्दन इस, बालक में प्राण बुलाओ तुम ।
कौरव और पांडव वंशों को, होने से नष्ट बचाओ तुम ॥
यदि तुम चाहो कर सकते हो, जिंदा ये मरा हुआ त्रिभुवन ।
फिर इस एक नन्हें बालक की, क्या बात है सोचो तो भगवन ॥
इतना कह अति दुख के कारन, गिरगई कुन्ति बेसुध होकर ।
तब उठा इसे और धीरज दे, यों कहन लगे गिरधर नागर ॥

बुआ कभी नहिं होयगा, मेरा वचन अलीक ।
जो कुछ मैंने है कहा, होगा निश्चय ठीक ॥

इतना कहकर जगदीश ईश, आनन्दकंद श्री यदुराई ।
इन सब को सम्बोधन करके, यों बोले बानी सुखदाई ॥

१ देखो १८ वां भाग ।

मैंने निज मुख से झूंठ बात, यदि कभी नहीं फरमाई हो।
होकर रण से पराङमुख यदि, मैंने न पीठ दिखलाई हो॥
और गऊ ब्राह्मण यदि मुझको, प्यारे हों प्राणों से बढ़कर।
करते हों बस हरदम निवास, यदि सत्य धर्म दिल के अंदर॥
फिर न्याय पूर्वक यदि मैंने, केशी व कंस संहारा है।
यदि चला हूँ मैं धर्मानुसार, अघ को न कभी चित धारा है॥
तो ब्रह्म-अस्त्र द्वारा मृत्यू, को प्राप्त हुआ बस बालक ये।
फौरन ही जिन्दा हो जाये, कुरु पांडु वंश का पालक ये॥
होते ही प्रभु की बात पूर्ण, लड़के में चेतनता आई।
हिल उठे हाथ और पांव दोऊ, चहरे पर सुन्दरता छाई॥

ये लखते ही छागया, अंतःपुर में सुःख।
प्रभु अस्तुति होने लगी, हवा हुआ सब दुःख॥

लड़के का नाम परीक्षित रख, आनन्दकंद बाहिर आये।
इस घटना के एक मास बाद, पांडवों के समाचार पाये॥
कि धन लेकर आरहे हैं वे, ये सुनते ही शारंगपानी।
झट नगरी के बाहिर आये, और कीन्हीं सादर अगवानी॥
सब हाल श्रवण कर कुन्ती से, अति सुखी हुये पांचों भाई।
और हाथ जोड़कर शीश झुका, यदुनन्दन की अस्तुति गाई॥
फिर किया पौत्र का जन्मोत्सव, सज उठा हस्तिनापुर सारा।
जलसे के कुछ दिवस बाद, श्री व्यास ने पुर में पगधारा॥

पदवंदन कर व्यास के, बोले धर्म-कुमार।
अश्वमेध यज्ञ के लिये, हैं अब हम तैयार॥

जलदी से शुभ मुहूर्त लखकर, यज्ञ करने का कारज कीजे।
और चाह हो जिन २ चीज़ों की, उनको हमसे मंगवालीजे॥

ये सुन ऋषि ने शुभ समय देख, सामान यज्ञ का मंगवाया ।
और दीक्षित करके राजा को, एक श्याम कर्ण हय छुड़वाया ॥
इस घोड़े की रक्षा के लिये, अति पराक्रमी भट बलवानी ।
अर्जुन को पास बुला करके, यों कहन लगे नृप गुणखानी ॥
हे भाई तुमही लायक हो, घोड़े के संग जाने के लिये ।
चहुंदिशि के राजाओं से लड़, इसको वापिस लाने के लिये ॥
जो बिना लड़े कर दे देवे, उसकी तो कुछ भी बात नहीं ।
लेकिन जो अकड़े उसका भी, हे भ्राता करना घात नहीं ॥

केवल थोड़ा बल दिखा, बस में करना वीर ।
जाओ प्रभु रक्खे सदां, तुम्हरा कुशल शरीर ॥

आज्ञा पाते ही बली पार्थ, अपना प्यारा गांडीव उठा ।
चल दिये तुरत रथ पर चढ़ कर, कुछ चतुरंगिनि सेना सजवा ॥
कई काम जरूरी होने से, नृप ने गिरधर को ठहराये ।
इसलिये कुन्ति नन्दन अर्जुन, इस समय अकेले ही धाये ।
भारत की घोर लड़ाई में, कट मरे थे सारे बलवानी ।
उनके बेटे पोते थे मगर, वे नहीं थे उन सम भटमानी ॥
अस्तू जहां जहां वो अश्व गया, सब "कर" देते दृष्टी आये ।
कुछ हठी युवा नृप लड़े किन्तु, वे हार मान वापिस धाये ॥

इससे बिन कुछ विघ्न के, फिरता देश विदेश ।
गया अंत में अश्व ये, त्रिगर्तियों के देश ॥

यहां वीर सुशर्मा का लड़का, रविवर्मा महा धनुर्धारी ।
करता था राज काज सारा, ले अपने संग सेना भारी ॥
निज पिता के घातक अर्जुन को, अपने पुर में आया सुन कर ।
ये महाराजा गरमाय उठा, पड़ गये तुरत बल भृकुटी पर ॥

अपने सेनप को बुला, बोला ये भूपाल ।
सेनापति जाकर सजो, कटकाई तत्काल ॥

और इसके द्वारा अश्व पकड़, घुड़शाला भीतर पहुँचाओ ।
फिर भुजबल दिखा परम शत्रू, अर्जुन को यमपुर भिजवाओ ॥
ये सुन सेनप ने करी तुरत, सेना सजने की तैयारी ।
और इधर भूप भी रण को चला, धारन करके आयुध भारी ॥
आकर इन लोगों ने समीप, घोड़े को फौरन पकड़ लिया ।
चहुँदिशि से नाका बंदी कर, अर्जुन से लड़ना शुरू किया ॥
रविवर्मा के शर तजने की, फुरती अवलोक कुन्तिनन्दन ।
हो खुशी इसे बच्चा गिन कर, बस करन लगे साधारन रन ॥
फिर कहन लगे हे त्रिगर्तनृप, निश्चय ही तुम बलवानी हो ।
निज पिता सुशर्मा के सदृश्य, रण पंडित हो भटमानी हो ॥

हरषाये हम चित्त में, लख कर युद्ध तुम्हार ।
अब जल्दी से लाय कर दे दो अश्व हमार ॥

बहलाय दिया है मन तुम्हरा, हमने मामूली रण करके ।
अब घर जाओ नृप हरषा कर, मेरा उपदेश हृदय धरके ॥
भूपाल युधिष्ठिर ने चलती, बिरियां, ढिंग मुझे बुलाया था ।
और अति ही कोमल बानी से, ऐसा उपदेश सुनाया था ॥
मत किसी नरेश को तुम, जहां तक सम्भव हो हे भाई ।
इसीलिये हम इस रण में, दिखलाय रहे हैं नरमाई ॥
यदि तुमने कहा नहीं माना, तो क्रोध अग्नि बढ़ जावेगी ।
जिससे पल भर में ही तुम्हरी, सब शान नष्ट हो जावेगी ॥

कुन्ति नन्दन पार्थ ने, समझाया इस तौर ।
पर उस हठी नरेश ने, किया नहीं कुछ गौर ॥

उल्टे क्रोधित हो धनुष चढ़ा, उसने एक ऐसा शर मारा ।
जिस ने लगते ही अर्जुन का, घायल कर दिया हाथ सारा ॥
ये लख गुस्से की हद न रही, इस पांडु पुत्र बलधारी की ।
गांडीव तानकर राजा को, बस बधने की तैयारी की ॥
दो चारहि शर छोड़े होंगे, कि वह लड़का घबराय गया ।
और हार मान घोड़ा देकर, फौरन निजभवन सिधाय गया ॥

यहां से मुक्ती पायकर, फेर अश्व तत्काल ।
पहुँचा जहां भगदत्त का, लड़का था भूपाल ॥

था ये भी अपने पिता सरिस, बलवानी वीर धनुर्धारी ।
इसने भी घोड़ा पकड़ तुरत, कीन्हीं लड़ने की तैयारी ॥
और आकर अर्जुन के समीप, बोला ये घमंडी राज कुंवर ।
हे पार्थ छोड़कर अश्व यहीं, बस लौट जाओ अपने घर पर ॥
वरना तुम्हरी रण चतुराई, बस धूल में अभी मिला दूंगा ।
सारी सेना को मार काट, यमपुर की तरफ पठा दूंगा ॥

कहा पार्थ ने वृथा ही, अपने गाल बजात ।
यदि कुछ बल है तो उसे, क्यों न मूर्ख दिखलात ॥

ये सुनते ही भगदत्त सुवन, एक वृहत हस्ति पर चढ़ धाया ।
और धनुष तान अति क्रोधित हो, शर झुंड पार्थ पर बरसाया ॥
लेकिन बलवान कुन्ति सुत ने, इस नृप की एक न चलने दी ।
बहुतेरा उसने यत्न किया, पर जरा दाल नहिं गलने दी ॥
पल पल में होता गया भूप, घायल इनके शर खाकर के ।
आखिर फिर जब कुछ बस न चला, तो भागा जान बचाकर के ॥
उपरान्त इसके घोड़े समेत, फिर अर्जुन सिंधु देश आये ।
जयद्रथ की मृत्यू की सुधिकर, यहां के कई योधा गरमाये ॥

साज कटक चतुरंगिनी, ये सब पहुँचे आय ।
करन लगे रण पार्थ से, अति उत्साह दिखाय ॥

कुन्ती सुत के धनुवां से भी, कई तरह के तीर बरसने लगे ।
जिनसे घायल हो शत्रु कई, गिरकर भूमी पर तड़फने लगे ॥
पर हटे नहीं ये लख कर के, अर्जुन ने उग्रमूर्ति धारी ।
कुछ तीव्र बाण तज कर उनको, कर दिया विकल पल में भारी ॥
धृतराष्ट्र की पुत्रि दुःशला ने, जो थी जयद्रथ की पटरानी ।
जब यहां का सारा हाल सुना, तो चित में अतिशय अकुलानी ॥
अपने नन्हे से पौते १ को, ले गोद में रोती चिल्लाती ।
चढ़कर स्यंदन पर तहां आई, जहां खड़े थे अर्जुन रिपुघाती ॥

पांडु पुत्र के चरण में, इस बालक का शीश ।
रख कर ये मांगन लगी, उसके लिए अशीश ॥

लख विधवा भगनी को सन्मुख, कुन्ती सुत हुये विकल भारी ।
रख दिया धनुष नीचे फौरन, और कहन लगे धीरज धारी ॥
प्रभु इस बच्चे को खुश रक्खे, ये आशिर्वाद सुनाता हूँ ।
अब जाओ बहन भवन जाओ, मैं भी बस आगे जाता हूँ ॥
यों कह घोड़े के साथ साथ, श्री पाँडु पुत्र आगे धाये ।
कई जगह युद्ध कर वीरों से, जय पाते मणिपुर में आये ॥
यहाँ के नृप बभ्रूवाहन ने, जब सुना कि पिता पधारे हैं ।
तो अति हरषाकर कहन लगा, धन धन सौभाग्य हमारे हैं ॥

यों कह दौड़ा शीघ्र ये, तज कर सारा काम ।
और पार्थ के पास आ, करने लगा प्रणाम ॥

---

१ जयद्रथ के पुत्र ने जब सुना कि अर्जुन ने पुर पर धावा किया है तो डर के मारे उसने आत्महत्या कर ली अस्तु दुःशाला पौते को लेकर आई थी ।

दैवयोग से आ गई, यहां उलूपी नारि।
बभ्रूबाहन को निख, बोली कुछ फटकारि॥

रण की इच्छा से आये हुए, योधा का तू आगत स्वागत।
नामर्दों सदृश्य करता है, तेरे क्षत्रीपन पर लानत॥
अस्तू पहिले भुजबल दिखला, निज पिता को खुशी बनाओ तुम।
इसके उपारन्त मुदित होकर, चरणों में शोश झुकाओ तुम॥
कर चाह हृदय में लड़ने की, पितु हो, गुरु हो वा भाई हो।
हो चाहे रिश्तेदार कोई, या इष्ट मित्र सुखदाई हो॥
यदि अपने घर पर आ जावे, तो कभी न भय खाना चहिये।
बल्की क्षत्रिय धर्मानुसार, निज शक्ती दिखलाना चहिये॥
मैं तेरी सौतेली मां हूँ, इसलिये मेरा कहना मानो।
तजकर सब संशय को बेटा, निज पितु से लड़ने की ठानो॥
इसके उत्साहित करने से, बभ्रू रण को तैयार हुआ।
फिर पिता पुत्र में घण्टों तक, तीरों से युद्ध अपार हुआ॥
आखिर दे हांक पार्थ सुत ने, एक ऐसा तीक्षण शर मारा।
जिसने लगते ही अर्जुन के, हृदय को तुरत बेध डारा॥

जिससे थोड़ी देर में, तजे पार्थ ने प्राण।
ये लखते ही हो गया, बभ्रू दुखी महान॥

हा पिता हा पिता चिल्लाता, गिर गया तुरत चक्कर खाकर।
ये सुनकर चित्रांगदा तुरत, आ पहुँची घटना स्थल पर॥
और अपने लोचन लाल बना, उस नाग सुता को धिक्कारा।
फिर कहा पती को मरवाकर, क्या पाया तैनें यश भारा॥
अब या तो इसको जिन्दा कर, वरना मैं भी मरजाऊंगी।
जिस जगह गये हैं पति देव, पल भर में वहां सिधाऊंगी॥

ये सुन दुख पाय नाग कन्या, अति आतुर हो यहां से धाई ।
और कुछ ही देरी में लेकर, संजीवन मणि * वापिस आई ॥

रक्खी मणि को पार्थ के, हृदय पर सुखमान ।
जिससे कुछ ही देर में, जाग उठे बलवान ।

ये सारा हाल श्रवण करके, इनको अत्यंत खुशी छाई ।
फिर हृदय लगाय पत्नियों को, आगे जाने की ठहराई ॥
दे यज्ञ का न्योता इन सबको, श्री कुन्ति सुवन आगे धाये ।
भ्रमते भ्रमते कुछ दिनों बाद, आखिर हस्तिनापुर में आये ॥

इसके आने की खबर, पाकर पांडव वीर ।
चले चित्त में हर्षते, लेकर संग यदुवीर ॥

पुर के बाहिर आ अर्जुन से, इन सब लोगों ने भेंट करी ।
और अति ही उत्तम गंधयुक्त, मालायें इनके कंठ धरी ॥
फिर इन्हें साथ लेकर पहुँचे, यज्ञशाला में चारों भाई ।
इसके उपरान्त व्यास मुनि ने, यज्ञ के करने की ठहराई ॥

आखिर कुछ दिन में किया, यज्ञ इन्होंने पूर्ण ।
हर्ष मित्र व शत्रु का, हुआ गर्व सब चूर्ण ॥

इस यज्ञ के बाद पांडवों का, कुल राज उपद्रवहीन हुआ ।
[illegible] ही वर्णों के लोगों का, मन धर्म मांहि लवलीन हुआ ॥
[illegible] कुछ दिनों बाद यदुपति, आनन्दकंद शारंगपानी ।
भूपाल युधिष्ठिर के ढिंग आ, बोले विनीत कोमल बानी ॥
हे धर्मराज कई दिवस हुये, मुझको द्वारावति से आये ।
तब से पितु माता के सुंदर, दर्शन नहिं आंखों ने पाये ॥

* उलूपी ने अर्जुन को जिलाने की प्रतिज्ञा की थी, इसका हाल छटे भाग मे आ गया है ।

अस्तू यदि आज्ञा हो तो मैं, आनंद सहित निज पुर जाऊं ।
और रिश्तेदारों के दर्शन, करके हृदय को बहलाऊं ॥
प्रभु का कहना कुन्तीसुत ने, अति ही कठिनाई से माना ।
फिर कहा, कृष्ण ! हम लोगों को, कहिं घर जाकर न भूल जाना ॥

यों कहकर नृप ने लिया, सब सामान मंगाय ।
तत्पर चलने के लिये, हुये तुरत यदुराय ॥

प्रभु के जाने के समाचार, पल में हस्तिनापुर में छाये ।
दर्शन की चाह हृदय में धर, आतुर हो पुर वाले धाये ॥
केवल थोड़ी ही देरी में, हो गई जमा रैयत सारी ।
और लगी दिखाने नटवर के, दर्शनों की उत्कंठा भारी ॥
ये लखकर वीर युधिष्ठिर ने, सब लोगों का सत्कार किया ।
"दरबार आम होगा" ऐसा, हरषा कर फौरन हुक्म दिया ॥

ये सुन सारे खुश हुये, हुआ फेर दरबार ।
जिसमें थे छोटे बड़े, पुर के सब नरनार ॥

यहां मध्य में एक सिंहासन पर, आसनासीन थे बनवारी ।
जिसके समीप ही बैठे थे, नृप धर्मराज शोभाधारी ॥
दायें बायें भीमार्जुन और, सहदेव नकुल के आसन थे ।
और वहां विदुर धृतराष्ट्र के भी, कंचन मंडित सिंहासन थे ॥
विद्वान् विदुर की गोदी में, कुछ दिन का वह नन्हा बालक ।
युवराज परिक्षित बैठा था, कौरव पांडव कुल का पालक ॥
दरबार के एक तरफ थे सब, सेना के क्षत्री बलधारी ।
और तरफ दूसरी शोभित थे, मुनि योगी बाल ब्रह्मचारी ॥
इनके आगे सब पुर वाले, बैठे थे चुप्प लगाये हुये ।
सच्चिदानंद के चहरे पर, बस इकटक दृष्टि जमाये हुये ॥

सन्नाटा लख सभा में, धर्म राज मतिधीर।
करके सम्बोधन सबहि, बोले वचन गम्भीर॥

हे सकल उपस्थित सरदारों, हम लोगों के मंगलकारी।
अति स्नेही सुख देने वाले, सच्चिदानंद गिरवर धारी॥
जिनके गुण गण को अष्ट प्रहर, सुर असुर नाग नर गाते हैं।
वे कृष्ण आज हम लोगों को, तजरूर द्वारावति जाते हैं॥
गो हमें खटकता है अतिशय, श्री कुंजविहारी का जाना।
पर बेबस हैं अस्तू चित को, ज्यों त्यों कर होगा समझाना॥
इन यदुनंदन के किये हैं जो, उपकार अमिन हम लोगों पर।
उन सबका तो वर्णन करना, है मेरे लिये महा दुष्कर॥
लेकिन जो कुछ हैं याद मुझे, उनको ही मैं बतलाता हूँ।
टूटे फूटे शब्दों द्वारा, यदुराई के गुण गाता हूँ॥
ये इन्हीं की किरपा है जिससे, मैं बना राज का अधिकारी।
करके विध्वंस शत्रुओं को, बस में कीनी भूमी सारी॥
जब राजसूय १ यज्ञ करने की, हम लोगों ने ठहराई थी।
तब इन्हीं महात्मा ने हमको, कर दया मदद पहुँचाई थी॥
अति बली जरासंध इनके ही, कौशल द्वारा संसार हुआ।
शिशुपाल भी इनही के बल से, मरने के लिये तयार हुआ॥

कुरु सभा में फेर जब, दुःशासन दुख मूल।
द्रौपद की प्रिय पुत्रिका, खींचन२ लगा दुकूल॥

प भी कर दया इन्होंने ही, साड़ी बेहद बढ़ाई थी।
यों दुष्ट अधम के हाथों से, अबला की लाज बचाई थी॥
वन ३ में भी धीरज दीन्हा था, हम सबको इन्हीं मुरारी ने।
और शाप ४ से दुर्वासा के भी, रक्षा की थी गिरधारी ने॥

१ देखो ७ वा भाग। २ देखो ८ वा भाग। ३ देखो ९ वा भाग। ४ देखो १० वा भाग।

फिर बारह बरसों की अवधि, पूरी करके दुर्योधन से ।
मांगा था हम सबने अपना, कुल राजपाट सीधेपन से ॥
लेकिन नट करके जब उसने, ठानी थी युद्ध मचाने की ।
तब इन्हो ने विपति उठाई थी, यहां आ उसको समझाने[1] की ॥
प्रभु जानते थे यदि युद्ध हुआ, भारत गारत हो जायेगा ।
वर्षों प्रयत्न करने पर भी, इस हालत में नहिं आयेगा ॥
इसलिये स्वयं ये दूत बने, हो करके भी त्रिभुवन नायक ।
पर कौरव पति ने सुने नहीं, इनके हित बचन सुःख दायक ॥
आखिर सब पहुँचे कुरुक्षेत्र, कर में लेले हथियारों को ।
वहां पर हम लोगों के अधार, अर्जुन लख रिश्तेदारों को ॥
फंस गये मोह में और युद्ध, करने से जब इन्कार किया ।
तब इन्हीं दयामय ने देकर, उपदेश[2] उन्हें तैयार किया ॥
दादा[3] से लड़ते समय भी हम, जब नित्य प्रति घबराते थे ।
तब ये ही अमृत वचन सुना, हमको धीरज बंधवाते थे ॥

आगे जब जयद्रथ[4] नहीं, लगा पार्थ के हाथ ।
संध्या होने आगई, छिपन लगे दिननाथ ॥

तब इन्हीं ने ही माया द्वारा, सूरज पलमांहि छिपाया था ।
यों सिन्धु भूप को वध करवा, अर्जुन का प्राण बचाया था ॥
वरना प्रण के माफिक भाई, अग्नी में जलकर मर जाता ।
तो हम चारों में से भि नहीं, कोई जिन्दा रहने पाता ॥

अस्तू हम सब के रखे, दीन बंधु ने प्राण ।
जय जन दुख हारी प्रभो, जयति जयति भगवान ॥

---

१ देखो १४ वा भाग । २ देखो १५ वा भाग । ३ देखो १६ वां भाग । ४ देखो १८ वा भाग ।

गुरुसुत के नारायण शरसे१, भी यही बचाने वाले हैं ।
और यही कर्ण के नाग अस्त्र२, को वृथा बनाने वाले हैं ॥
आगे फिर जब नृप धृतराष्ट्र, पुत्रों की मृत्यु कथा सुनकर ।
अति क्रोधित होय वृकोदर को, तैयार हुये थे वधनेपर ॥
तब यही मूरती थी जिसने, श्री भीम३ की जान बचाई थी ।
लोहे को प्रतिमा आगे कर, ताया की प्यास बुझाई थी ॥
और लखो विदुर की गोदी में, जो बालमूर्त्ति दृष्टि आती ।
ये इन्हीं की किरपा का फल है, वरना ये कभी की नस जाती ॥
दे जीवन दान परिक्षित४ को, अनुपम उपकार किया प्रभुने ।
इस नसते हुये पांडु कुलको, कर दया उबार लिया प्रभुने ॥

सिवाय इनके सैंकड़ों, किये हमारे काम ।
ऋणी रहेंगे कृष्ण के, हम सब आठों याम ॥

*** गाना ***

(तर्जः—वेदो का डंका आलम मे... ...)

त्रिभुवन में सुन्दर यश अपना फैला दिया श्याम विहारी ने ।
जन हेतु निगुण से सगुण बना दिखला दिया श्याम विहारी ने ॥
जग मे बढ़ गये अधर्मी थे, संतों को दुख देने वाले ।
उनका पल भर में नामो निशां, उठवा दिया श्याम बिहारी ने ॥
हो चला था सच्चा धर्म गुम, सब ओर पाप छाजाने से ।
कर दया उसे फिर से प्रचलित, करवा दिया श्याम बिहारी ने ॥
तज के दुनिया की आश सभी, जिन शरण गही थी नटवर की ।
उनको निज धाम सुनाम सहित, पहुँचा दिया श्याम विहारी ने ॥

१ देखो १९ वां भाग । २ देखो १९ वा भाग । ३ देखो २० वां भाग । ४ यह कथा इसी भाग में आ चुकी है ।

आ जन्म स्वार्थ मे फंसे रहे, नहि नाम प्रभू का लिया कभी ।
करके किरपा ऐसों को भी, अपना लिया श्याम बिहारी ने ।

इतना कहकर कुन्ती सुत ने, अति प्रेम से इनको सिरनाया ।
सब सभासदों ने भी सुखपा, भक्ती से इनका गुण गाया ॥
फिर यदुपति का एक ही स्वर से, सब जय जय कार सुनाने लगे ।
आखिर जब ये सब बंद हुवा, तब बनवारी फरमाने लगे ॥
हे धर्मराज तारीफ मेरी, श्री मुख से आप जो करते हैं ।
इससे हम अपने जीवन को, सचमुच ही धन्य समझते हैं ॥
पर असल में यदि देखा जावे, तो हम न बड़ाई योग्य कभी ।
ये आपके धर्माचरणों का, है भूप प्रत्यक्ष प्रभाव सभी ॥
तुमने बचपन से ले अबतक, हर समय धर्म को धारा है ।
बस वही मदद देने वाला, पद पद पर बना तुम्हारा है ॥
जो सत्य के होते अनुयायी, धर्मानुसार जो चलते हैं ।
उन महा पुरुषों की सत्य धर्म, निशि दिन रखवाली करते हैं ॥
क्या कहूँ अधिक धर्मात्मा से, मृत्यु भी हृदय डराती है ।
उसके तेजो प्रभाव को लख, सन्मुख आते थर्राती है ॥

अभिवादन अब गृहन मम, करो भूप सुखमान ।
द्वारावति को शीघ्र ही, करूंगा मैं प्रस्थान ॥

इतना कहकर आनन्द कंद, सबसे सब तरह भेंट करके ।
चल दिये द्वारका की जानिब, अपने सुन्दर रथ पर चढ़ के ॥
इनके कुछ दिनों बाद कुन्ती, धृतराष्ट्र विदुर और गंधारी ।
चल दिये विपिन में तप करने, तन पर वल्कल वस्तर धारी ॥
शतयूप मुनि के आश्रम में, रह सभी तपस्या करने लगे ।
आनन्दायक परमात्मा का, अति हित से नाम सुमरने लगे ॥

एक रोज जेष्ठ कुन्तीसुत के, दिल में ये उत्कंठा छाई ।
मांका दर्शन करना चहिये, अस्तु ये चले अति हर्षाई ॥
होगई भेट सब से पहिले, श्रीमान विदुर जी से इनकी ।
देखा मुख तो तेजो मय है, पर हालत दुर्बल है तनकी ॥

विदुर इन्हें अवलोक कर, इनपर दृष्टि जमाय ।
देरी तक लखते रहे, हिय में अति पुलकाय ॥

लखते लखते हि महात्मा ने, निज प्राण योग बलके द्वारा ।
अति आसानी से छोड़ दिये, निर्जीव कर लिया तन सारा ॥
ये देख युधिष्ठिर दुखी हुये, फिर धृष्टराष्ट्र के ढिग आये ।
कर प्रेम से इन सब के दर्शन, हस्तिनापुर पहुँचे मुरझाये ॥
कुछ दिनों बाद इस जंगल में, अति घोर प्रचंड अग्नि छाई ।
जिस में जलकर कुन्ति[१] आदिक, तीनों ने ही देह बिसराई ॥

सुनकर सारा हाल ये, धर्म राज गुणखान ।
बच्चों सम तड़फन लगे, होकर दुखी महान ॥
समझाया जब व्यास ने, तब हृदय को थाम ।
"श्रीलाल" करने लगे, फेर राज का काम ॥

१ इनके साथ संजय भी गये थे, ये किसी तरह आग में जलने से बच गये और हिमालय तपस्या करने चल दिये ।

महाभारत ॐ बाईसवाँ भाग

पांडवों का हिमालय गमन

श्रीलाल

महाभारत ॐ बाईसवाँ भाग

पांडवों का हिमालय गमन

रचयिता—

श्रीलाल खत्री

प्रकाशक—

महाभारत पुस्तकालय, अजमेर.

मुद्रक—के. हमीरमल लूनिया, दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

द्वितीयावृति २००० | विक्रमी सम्वत् १९९४ ईस्वी सन् १९३७ | मूल्य ।) आने

॥ स्तुति ॥

विनय मम सुनिये कृपानिधान ।

लोभ, मोह, मद आदि हृदय से शीघ्रहि करें पयान ।
रहे चित्त में निशदिन तुम्हरे श्री चरणों का ध्यान ॥
सुख, दुख, यश, अपयश में मनकी होवे वृत्ति समान ।
कभी क्रोध अंकुर नहिं उपजे मान हो या अपमान ॥
नाम मात्र जग के जीवों को अंश तुम्हारे जान ।
भेद बुद्धि तज सच्चे दिल से करूं सदा सन्मान ॥
जन्म मरण के चक्कर में फंस पाया दुःख महान ।
आवागमन दया कर अबतो मेटिये श्री भगवान ॥

मङ्गलाचरण

रक्ताम्बर धर विघ्न हर, गौरीसुत गणराज ।
करना सुफल मनोर्थ प्रभु, रखना जन की लाज ॥
सृष्टि रचन, पालन, हरन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश ।
बानी, रमा, उमा सुमिल, रक्षा करहु हमेश ॥
बन्दहुं व्यास विशाल बुधि, धर्मधुरंधर धीर ।
"महाभारत" रचना करी, परम रम्य गम्भीर ॥
जासु वचन रवि जोति सम, मेटत तम अज्ञान ।
वंदहुं गुरु शुभ गुण भवन, मनुजरूप भगवान ॥

* ॐ *

नारायणं नमस्कृत्य, नरंचैव, नरोत्तमम् ।
देवीं, सरस्वतीं, व्यासं ततो "जय", मुदीरयेत् ॥

कथा प्रारम्भ

कुरुक्षेत्र में रण हुये, बीते छत्तिस साल ।
और लगा सैंतीसवां, वर्ष आय जिसकाल ॥
बस इसी समय गंधारी का, वो [1]शाप सफल होने आया ।
यादवों की बुद्धी भ्रष्ट हुई, सिर पर तत्काल काल छाया ॥
ब्राह्मणों, देवताओं पर ये, अति राग द्वेष दिखलाने लगे ।
गउओं से श्रद्धा हटा लई, बूढ़ों का मान मिटाने लगे ॥
बस निशदिन पी करके सराब, सब चूर नशे में रहते थे ।
करते थे मन माने कुकर्म, हरि तक से भी नहिं डरते थे ॥
लख इनके दुर व्यवहारों को, यदुराई को चिन्ता छाई ।
पर अंत समय नजदीक समझ, बोले नहिं कुछ त्रिभुवन साईं ॥

एक दिवस मधु पान कर, कइ एक यादव वीर ।
दिल बहलाने के लिये, पहुँचे सागर तीर ॥

इस जगह एक तरु के नीचे, सुन्दर मृगचर्म बिछाये हुये ।
कइ ऋषि मुनि बैठे थे सुख से, जगदीश का ध्यान लगाये हुये ॥
थे नेत्र बंद इन लोगों के, और अंग शांति दरसाते थे ।
जो कुछ समाधि के ढंग होते, वे सारे दृष्टी आते थे ॥
मृत्यू से प्रेरित यदुवंशी, अवलोक इन्हें मुसकाने लगे ।
और उल्टी सीधी बातें कह, मुनियों की हंसी उड़ाने लगे ॥

---

1 इस शाप का हाल २० वें भाग मे आगया है ।

इसके उपरान्त कृष्ण सुत को, जो साम्ब पुकारा जाता था।
थी जिसकी उम्र बहुत ही कम, चेहरा सुन्दर दरसाता था॥
उसको स्त्री के वस्त्र पिन्हा, ये सब ऋषियों के पास गये।
कर कुटिल भाव से नमन उन्हें, कर जोड़ इस तरह कहत भये॥
ये स्त्री है गर्भ से, सुनो मुनी धर ध्यान।
सुत, कन्या में से कहो, क्या होगी संतान॥
उन तेजस्वी मुनि वृन्दों ने, सब, ज्ञान दृष्टि से जान लिया।
ये सारे हम से छल करते, ये मर्म तुरत पहचान लिया॥
अस्तू गुस्से से हो अधीर, आंखों को लाल बना करके।
वे योगी कहने लगे तुरत, ऊंचे निज हाथ उठाकर के॥
हे यदुराई की संतानों, क्यों मधु पोकर इतराते हो।
साधुओं से करते हुये हंसी, किसलिये न तुम शरमाते हो॥
इस हंसी मसखरी का प्रतिफल, दुष्टों जल्दी ही पावोगे।
बस शाप से हम लोगों के तुम, सब वंश सहित नश जावोगे॥
इसके मूसल पैदा होगा, तुम सबकी जां हरने वाला।
इस हरी भरी द्वारावति को, समशान भूमि करने वाला॥
ये सुनते ही सब यदुवंशी, हृदय में अतिशय अकुलाये।
और फौरन ही हरि के सुत के, स्त्री के वस्त्र उतरवाये॥
इनमें से तत्काल ही, निकला मूसल एक।
लखते ही जिसको हुये, सारे विगत विवेक॥
आखिर ज्यों त्यों धीरज धरकर, ये सब द्वारावति में आये।
और उग्रसेन के निकट जाय, हालात शाप के बतलाये॥
जिसको सुनकर नृप दुखी हुये, फिर मूसल को रितवा करके।
जल निधि में झट डलवाय दिया, और बोले दूत बुला करके॥
मेरा ये हुक्म सुना आओ, पुर में जाकर तुम इसी समय।
"बस आज से कोई भी यादव, मधुपान करे नहिं किसी समय"॥

यदि आगे थोड़ी सी भि किसी, के घर शराब मिल जायेगी ।
तो उसको घर वालों समेत, झट सूली देदी जायेगी ॥
नृप की आज्ञा का किया, सब ही ने सन्मान ।
उसी रोज से एक दम, छोड़ दिया मधुपान ॥
तिसपर भी शापों का प्रभाव, दिन पर दिन रंग दिखाने लगा ।
उत्पात चहुँदिशि होने लगे, ज्यों २ अंतिम दिन आने लगा ॥
रूखी कठोर और धूल सहित, कंकरियें बरसाने वाली ।
अति पचंड वायू चलने लगी, चित में भय उपजाने वाली ॥
गिर गये उखड़ तरुवर अनेक, गिरि शिखर टूट कर चूर हुये ।
ढह पड़े अमित महलात भवन, कई नरों के जीवन दूर हुये ॥
सरितायें जहां से आई थीं, पल्टा खाकर उतही धाई ।
जल गये बहुत से जंगल भी, ऐसी कुछ दावानल छाई ॥
नक्षत्र टूट भूमि पै गिरे, घन अंगारे बरसाने लगे ।
मध्यान दुपहरी में दिनमणि, धुंधले से दृष्टी आने लगे ॥
वसुन्धरा हिलने लगी, दिन में बारम्बार ।
नगरी में आने लगे, चहूँ ओर से स्यार ॥
सारस ने निज बोली तजकर, उल्लू की बोली स्वीकारी ।
बकरे गीदड़ सम बोल उठे, यों बदलगई प्रकृती सारी ॥
फिर गौ ने जन्म दिया खर को, खच्चरी ने हाथी उपजाया ।
उत्पन्न किया कुत्ती ने चूहा, बिल्ली ने न्योला प्रगटाया ॥
जो वक्त पूर्वी हवा का था, उस समय पश्चिमी चलने लगी ।
अग्नी अपना असली स्वरूप, तज नीली पीली दिखने लगी ॥
खुशबू में बदबू प्रगट हुई, नदियों का खारा नीर हुआ ।
बनगया सिंधु मीठा पल में, रोगों से ग्रसित शरीर हुआ ॥
यादवों की अर्धांगिनियों को, सुपने में देता दिखलाई ।
मानो एक श्याम वर्ण नारी, मुस्काती घर में घुस आई ॥

और सुहाग सूचक चिन्हों की, चोरी कर भागी जाती है ।
नगरी में चहुँदिशि नाच नाच, हर्षित हो दौड़ मचाती है ॥
पुरुष स्वप्न में देखते, यदुवीरों का मास ।
गिद्ध आय कर खारहे, चित में भरे हुलास ॥
इसके अतिरिक्त मुरारी का, चल दिया चक्र नभ मंडल में ।
घोड़े रथ सहित अलच्च हुये, ध्वज टूट गिरा अवनीतल में ॥
फिर तेरस के दिन महा दुखद, अति भयदायक मावस आई ।
लखकर इन सब अपशकुनों को, होगये सोच सब यदुराई ॥
और मुख्य मुख्य यदुवीरों को, झटपट अपने ढिंग बुलवाया ।
आजाने पर इन लोगों के, अति दुखित हृदय से फरमाया ॥
भारत के रण के समय में जो, अपशकुन हुये थे भयकारी ।
वे फिर दिखलाई देते हैं, अस्तू होता है शक भारी ॥
इसमें कुछ भी सन्देह नहीं, हम लोगों की हानी होगी ।
इसलिये चलो यात्रा करने, बस वोही सुख दानी होगी ॥
मान कृष्ण के वचन को, यदुवंशी घर आय ।
तैयारी करने लगे, यात्रा की हरषाय ॥
मच उठा तुरत ही कोलाहल, सब निज २ यान सजाने लगे ।
खाने पीने की चीजें ले, चलने की जल्दी मचाने लगे ॥
कुछ ही देरी में ये प्रभास, चेत्र के निकट आकर छाये ।
[illegible] रहने लायक, कपड़ों के, अति उत्तम डेरे तनवाये ॥
परान्त इसके अति मधुर सरस, कई तरह के व्यंजन बनने लगे ।
[illegible]न्हों खा खा कर यदुवंशी, मनमानी जगह विचरने लगे ॥
फिर प्रभु के सन्मुख ही सबने, मधु पान करन की ठहराई ।
ये देख कृष्ण ने आगे आ, यों कहा कि मत पीओ भाई ॥
लेकिन न किसी ने सुना जरा, कर दिये पात्र अगणित खाली ।
आगया नशा सब लोगों को, आंखों में झट छाई लाली ॥

हो मस्त नाचने लगा कोई, कोई कुछ गीत सुनाने लगा ।
लगगया कूदने कोई मनुज, कोई हंसने व हंसाने लगा ॥

इसी समय सात्यकि गया, कृतवर्मा के पास ।
मुस्काकर कहने लगा, ओ कुरुपति के दास ॥

तैंने अश्वत्थामा के संग, सोते *वीरों को मारा है ।
इस पातक से ये लोक और, अपना परलोक बिगारा है ॥
नहिं देखा चाहता मुख तेरा, जा दुष्ट यहां से भग जा तू ।
वरना तव जीवन हरलूंगा, अस्तू दृग ओझल होजा तू ॥
श्री हरि के पुत्र प्रद्युम्न ने भी, हरषा सात्यकि का साथ दिया ।
इनकी देखा देखी कितने, वीरों ने भी अपमान किया ॥
ये सुनते ही कृतवर्मा को, आगया क्रोध पल में भारी ।
भृकुटी चढ़गई धनुष सदृष्य, आंखों ने लाल रंगत धारी ॥

हाथ उठा कहने लगा, सात्यकि से ललकार ।
चुप होकर जा बैठ खल, क्यों करता तकरार ॥

कट गये थे जिसके हाथ दोऊ, भारत की घोर लड़ाई में ।
जो शस्त्र हीन होकर तुरन्त, बैठा था व्याकुलताई में ॥
उस भूरिश्रवा† पर दुष्ट तैंने, अपनी तलवार चलाई थी ।
हथियार रहित का बध करते, क्यों तुझे न गैरत आई थी ॥
अस्तू हे यादव-कुल-कलंक, धिक्कार तेरे बाहूबल को ।
जाने क्या सोच बिहारी ने, जीवित रक्खा तुझ सम खलको ॥

लेकिन अब खामोश हो, करले बन्द जबान ।
वरना मेरा शस्त्र झट, हरलेगा तव प्रान ॥

सुनते हि बचन कृतवर्मा के, सात्यकी वीर आपा तजकर ।
दौड़ा तलवार उठा करके, उसको बधने की चित में धर ॥

* इसका हाल २० वें भाग में आगया है ।
† इसका हाल जानने के लिये पाठकों को १८ वां भाग देखना चाहिये ।

और कहन लगा रे कुलांगार, नृप भूरिश्रवा जहां धाया है ।
बस वहीं पहुँचने का अवसर, इस समय तेरा भी आया है ॥
झट देखले सब को एक नजर, मैं अब तलवार चलाता हूं ।
दुर्वचन सुनाने का प्रतिफल, सिर काट अभी बतलाता हूँ ॥
इतना कह कर सात्यकि ने निज, खांडे को तुरत चलाय दिया ।
सब के सन्मुख कृतवर्मा का, भूमी से नाम मिटाय दिया ॥
ये लखते ही उसके साथी, सात्यकी के निकट चले आये ।
और घेर के उसको चहुँदिशि से, कई तरह के शस्तर बरसाये ॥

देख भीड़ निज मित्र पर, कृष्ण पुत्र तत्काल ।
धाया लड़ने के लिये, करके आंखें लाल ॥

ठनगया तुरत घरघोर युद्ध, दोनों बढ़ बढ़ कर भिड़ने लगे ।
जिनसे प्रति चण में कई मनुज, गिर कर भूमि पर लुढ़कने लगे ॥
पर उनकी संख्या ज्यादा थी, अस्तू ये ज़रा देर लड़कर ।
होगये धराशायी आखिर, अपना प्यारा जीवन तज कर ॥

प्रभु के दृग सन्मुख हुआ, इनका काम तमाम ।
लेकिन उलटा वक्त लख, रहे चुप्प घनश्याम ॥

महाराजा उग्रसेन जी ने, जिस मूसल को रितवाकर के ।
डलवाय दिया था जलनिधि में, दूतों द्वारा भिजवा करके ॥
पर दैवयोग से वहा नहीं, बल्की समुद्र तट पर आकर ।
ोगया इकट्ठा वह सारा, वायू को सुभग मदद पाकर ॥
ां पाय तरी जलकी उसमें, विधि वश कई कुल्ले फूटगये ।
र कुछ दिन में एक मूसल के, अनगिनती मूसल उगत भये ॥

बचा था टुकड़ा एक जो, रितने के उपरंत ।
उसका भी जल में बहा, कर डाला था अंत ॥

हरि इच्छा से इस टुकड़े को, लखते ही मछली निगल गई ।
कुछ दिवस बाद एक व्याधा ने, निज जाल में उसको फंसालई ॥

घर लाय पेट जब चाक किया, तब वो टुकड़ा बाहिर आया ।
लख इसे नुकीला व्याधा ने, शर फल की ऐवज लगवाया ॥
अलकिस्सा जब सात्यकी, और प्रद्युम्न कुमार ।
यदुवंशिन से मृत्यु पा, गये स्वर्ग आगार ॥
तब बचे हुये यदुवीरों ने, संग्राम भयंकर मचा दिया ।
हो काल से प्रेरित आपस में, मारना काटना शुरू किया ॥
उस समय में कुछ यादववंशी, सहसा हथियार रहित होकर ।
तट पर के उगे हुये डंडे, लेले धाये लड़ने सत्वर ॥
होगये शस्त्र से भी पैने, मुनि शाप से ये डंडे सारे ।
जिसके सिर पर पड़ जाते थे, बह जाते थे खूं के नारे ॥
अस्तू जब इन लोगों ने लखा, इनका प्रभाव शर से ज्यादा ।
तो सबही ये डंडे उखाड़, होगये लड़न को आमादा ॥
आखिर सब अस्त्र शस्त्र छूटे, और इनसे ही रण होने लगा ।
जिससे यादवों का झुंड तनिक, देरी में जीवन खोने लगा ॥
लड़ते लड़ते सब शेष हुये, बस महारथी कुछ बच पाये ।
वे भी मृत्यू के वश होकर, हलधर के निकट चले आये ॥
और लगे अकड़ने ये लखकर, बलराम ने हल मूसल द्वारा ।
इन बचे हुये यदुवीरों को, थोड़ी ही देर में संहारा ॥
इस प्रकार पूरा हुआ, ये यदुवंश तमाम ।
बचे फकत हलधरसहित, श्रीकृष्ण बलधाम ।
गो अपने सन्मुख ही प्रभुने, बेटे पोते लड़ते देखे ।
कुछ देर बाद आपस में फिर, सबको कटते मरते देखे ॥
यदि चाहते तो गिरवरधारी, यों नाश नही होने देते ।
अपने बलवान कुमारों को, जीवन न कभी खोने देते ॥
थी इतनी शक्ति दयामय में, लेकिन इस तरफ न ध्यान दिया ।
बल्की शापों को ही पूरा, करने का सब विधि काम किया ॥

अस्तू जब सब संहार हुये, तब इन्होंने दारुक बुलवाया ।
और अर्जुन को लाने के लिये, झट हस्तिनापुर में भिजवाया ॥
ये सुन दारुक तो गया, पांडु सुतों के तीर ।
आ पहुँचे निज महल में, इधर कृष्ण यदुवीर ॥
निज पिता को सारा हाल बता, आखिर में बोले बनवारी ।
जो होनी होती है वो कभी, नहिं टले स्वप्न में भी टारी ॥
इस कुल का था ये ही भविष्य, अस्तू फिजूल है दुख करना ।
इस समय यही लाज़िम है पिता, ज्यों त्यों करके धीरज धरना ॥

* गाना * तर्ज-(शहाना)

न रहता कभी एक सा नित ज़माना,
है बिल्कुल वृथा चित्त इसमे फंसाना ।
नज़र जगमें आती हैं जो आज बातें,
कल उनका ज़रा भी न रहता ठिकाना ।
है ऐसी ही हालत पिता ! स्वर्ग की भी,
वहां भी उपस्थित है आना व जाना ।
नियम है प्रकृतिका "बदलना" सदा ही,
है अस्तू उचित चित्त मे धीर लाना ।

अच्छा मैं तो अब जल्दी ही, हलधर के पास सिधाऊंगा ।
बाकी के दिवस जिन्दगी के, तप करके कहीं बिताऊंगा ॥
ूँ यहां पर आता होगा, उसको सब द्रव्य बता देना ।
बचे हुये यदु लोगों को, हस्तिनापुर तुरत पठा देना ॥
फिर तप करना आप भी, किसी विपिन में जाय ।
यों कह शीश नवाय कर, चले तुरत यदुराय ॥
आते ही जंगल में हरि ने, क्या लखा एक तरु के नीचे ।
मस्तक में प्राण चढ़ाये हुये, बैठे हलधर आंखें मीचे ॥

कुछ देर बाद उनके मुख से, बिल्कुल सफेद और द्युतिकारी ।
थे जिसके मुंह हजार ऐसा, निकला एक नाग बड़ा भारी ॥
और कर प्रणाम यदुराई को, जाकर समुद्र में लीन हुआ ।
इसके जाते ही हलधर का, तन तुरत प्राण से हीन हुआ ॥
भाई के जाने पर प्रभु ने, अपने चलने की भी ठानी ।
अस्तू एक वृक्ष तले आकर, झट लेट गये शारंगपानी ॥
एक पांव के घुटने पर रखकर, निज पांव दूसरा यदुराई ।
होगये योग निद्रा में मग्न, तन की सारी सुधि बिसराई ॥

इसी समय मृग ढूढता, एक व्याध बलधाम ।
आया उस वन में जहां, सोते थे घनश्याम ॥

ये वही शिकारी था जिसने, मछली का पेट चीर करके ।
एक तीर बनाया था अपना, उस मूसल का टुकड़ा लेके ॥
इस समय उसी शर को अपने, धनु पर वह व्याध चढ़ाये हुये ।
फिर रहा था वन में आतुर हो, हिरनों का ध्यान लगाये हुये ॥
इतने में इसको दृष्टि पड़ी, श्री कृष्णचन्द्र के पावोंपर ।
लख पद्म तुरत सोचा इसने, बैठा यहां एक हिरन छिपकर ॥

ये विचार कर व्याध ने, दिया तीर झट मार ।
लगते ही यदुवीर के, हुआ पांव के पार ॥

तब लेने को अपना शिकार, ज्यों ही व्याधा आगे आया ।
त्योंही दृग पड़े बिहारी पर, ये लख वो चित में घबराया ॥
फिर गिरधर के चरणों पर निज, सिर बार बार वो धरने लगा ।
आंखों से अश्रु बहाता हुआ, प्रार्थना क्षमा की करने लगा ॥
इसको धीरज देते देते, आनन्दकंद त्रिभुवन स्वामी ।
निज दिव्य तेज फैलाते हुये, बनगये स्वर्ग के अनुगामी ॥
जगदीश को आते हुये देख, यम, इन्द्र, वरुण, किन्नर सारे ।
अति हर्षा कर ऊंचे स्वर से, बस करन लगे जय जय कारे ॥

बज उठे सैकड़ों दिव्य वाद्य, अपसरायें गीत सुनाने लगीं ।
नंदन वन के शुभ पारिजात, खुश हो प्रभु पर बरसाने लगीं ॥

दिव्य सिंहासनपर बिठा, केशव को सानन्द ।
पूजन कर सुर ईश ने, पाया परमानन्द ॥
राज रहे यहां पर परम, सुख से दीनदयाल ।
सुनो सज्जनों ध्यान धर, अब दारुक का हाल ॥

पाते हि हुक्म यदुराई का, दारुक रथ पर असवार हुआ ।
और चला पांडु पुरको जानिब, दुख से चित में बेजार हुआ ॥
हो रहे थे पुर में पहिले ही, अपशकुन भयानक भयकारी ।
जिनको लखकर पांडव सारे, हो रहे थे शोकाकुल भारी ॥
कहरहे थे जाने किस्मत अब, हमको क्या रंग दिखायेगी ।
रहगया कौन सा दुख बाकी, अब जिसे हमें भुगवायेगी ॥
इतने में दारुक ने आकर, अपना संदेशा भिजवाया ।
जिसको सुनते हि युधिष्ठिर ने, उसको निज सन्मुख बुलवाया ॥

आकर दारुक ने दिया, दारुण हाल सुनाय ।
जिसको सुनते ही गिरे, पांडव मूर्छा खाय ॥

कुछ देर बाद जब होश हुआ, तो सब जलधार बहाने लगे ।
"हे समय तेरी बलिहारी है", यों कहकर सब पछताने लगे ॥
आखिर श्रीमान् युधिष्ठिर ने, यों कहा पार्थ से जाओ तुम ।
विधवा स्त्रियों व बच्चों को, एकत्रित कर ले आओ तुम ॥

*** गाना ***

अब वक्त क्या क्या रंग निज हमको दिखाता जायेगा ।
पा चुके अत्यन्त दुख क्या और भी कलपायेगा ॥
आ नहीं सकती हमारे ध्यान मे चालें तेरी ।
क्या खबर किस वक्त कैसा दृश्य तू दिखलायेगा ॥

किस तरह माने इसे रचक है जिसके खुद प्रभू ।
वो श्रेष्ठ कुल एकबारगी ही धूल मे मिलजायेगा ॥
सत्य है जग मे कोई हरदम न थिर रहता कभी ।
आज जो आया है निश्चय कल यहां से जायेगा ॥

आज्ञा पा अर्जुन वीर चले, कुछ दिन में द्वारावति आये ।
अवलोक यहां का दुखद दृष्य, हृदय में अतिशय अकुलाये ॥
जो नगरी गिरधर के सन्मुख, सब विधि सुंदर दरसाती थी ।
इस समय सकल शोभा खोकर, विधवा सम दृष्टी आती थी ॥
पुर में नहिं कोई तरुण रहा, जहां देखो बूढ़े दिखते थे ।
स्त्रियें थीं वे सब विधवा थीं, कुछ बालक इत उत फिरते थे ॥
देख दुर्दशा नगर की, पांडु तनय बलवीर ।
अश्रु बहाने लग गये, धर न सके मन धीर ॥
आखिर ये ज्यों त्यों मन समझा, पहुँचे मन्दिर यदुराई के ।
श्री कृष्णचन्द्र आनन्द कंद, सच्चिदानन्द सुखदाई के ॥
जिस महल को लखके किसी समय, देवों का चित ललचाता था ।
था आज वो ऐसा श्रीविहीन, लखने को जी नहिं चाहता था ॥
यहां पार्थ के आने की सुधि पा, रुक्मणी आदि झट उठधाईं ।
और आकर अर्जुन के समीप, गिरगईं धरणि पर अकुलाईं ॥
इनको मुश्किल से धीर बंधा, बसुदेव निकट फिर पार्थ गये ।
निज नाम सुना आदर समेत, श्रीमामाजी के पांव गहे ॥
श्रीकृष्ण की मृत्यु खबर सुनकर, सुख से आहें भर रहे थे ये ।
छवि छीन हो भूमी पर गिरकर, दुख से विलाप कर रहे थे ये ॥
अर्जुन को सन्मुख निरख, अपना हाथ उठाय ।
कहन लगे बसुदेव यों, सुनो पार्थ चितलाय ॥

तुम्हरे प्रियमित्र मुकुट धारी, यदुवंश नाश होजाने पर ।
यहां आये थे और कहा था ये, मुझको सब विधि धीरज देकर ॥
विधवा स्त्रियों व बच्चों की, हे पिता आप रक्षा करना ।
कई प्रकार से इनको समझा, हर समय धीर देते रहना ॥
मैंने दारुक को भेजा है, कुछ दिन में अर्जुन आवेंगे ।
वे इन सब को एकत्रित कर, हस्तिनापुर में लेजावेंगे ॥
इसलिये मित्र के कहने के, माफिक सब काम करो अर्जुन ।
निज घर लेजा इनके पालन, पोषण का ध्यान धरो अर्जुन ॥
दृग से जलधार बहाते हुये, अर्जुन ने सब स्वीकार किया ।
कर इन्हें इकट्ठे निजपुर को, चलने का फेर बिचार किया ॥

इतने में वसुदेव ने, होकर खुशी महान् ।
कृष्ण, कृष्ण कइ बार कह, छोड़े अपने प्रान ॥

इनके संग इनकी पत्नीयें, देवकी रोहिणी सती हुईं ।
जो गति पाई वसुदेवजी ने, वो ही इनकी भी गती हुई ॥
तब इनकी उत्तर विधि करके, अर्जुन ने नगरी त्याग दई ।
स्त्री बच्चों को संग लेकर, अपने पुर की झट राह लई ॥
बस इसी समय द्वारावति में, जलनिधि का पानी भर आया ।
जिसने कुछ ही देरी में सकल, पुर को पेंदे में बैठाया ॥

ये लखकर विस्मित हुये, पांडु पुत्र गुणरास ।
चलते चलते अंत में, पहुँचे क्षेत्र प्रभास ॥

यहां आ हरि, हलधर आदिककी, सब विधि उत्तर किरिया कीन्ही ।
जा सिंधु तीर व्याकुल चित से, फिर सबको जलांजली दीन्ही ॥
इस काम से छुट्टी पा अर्जुन, रथ पर असवार हुये आकर ।
और प्रभु का नाम सुमिरते हुये, चल दिये हृदय में धीरज धर ॥
इस समय साथ में अर्जुन के, बालक व वृद्ध तो कमती थे ।
लेकिन वस्त्राभूषण धारे, स्त्रियों के झुंड अनगिनती थे ॥

चल रहे थे महा शब्द करते, सैकड़ों यान शोभा वाले।
रवि किरणे पड़ने से चहुँ दिशि, छा रहे थे जिनके उजियाले॥
गो सभी नारियां विधवा थीं, अस्तू अति मूल्यवान गहने।
और रेशम आदिक के वस्तर, थे नहीं किसी ने भी पहने॥

तो भी सबके पास में, जो कुछ था सामान।
था लाखों के मूल्य का, हो नहिं सके बखान॥

इसके अतिरिक्त द्वारका का, था कोष भी अर्जुन के संग में।
इस तरह अमित धनवान बने, चल रहे थे ये बन के मग में॥
चलते चलते कुछ दिनों बाद, एक बड़ा गहन जंगल आया।
ये देख पांडु सुत ने सबको, इसके समीप ही ठहराया॥
और कहा भजन पूजन करके, यहां थोड़ा सा विश्राम करो।
फिर खाकर अति उत्तम भोजन, आगे चलने का काम करो॥

अस्तु यहां ठहरे सकल, स्त्रि पुरुष अरुबाल।
तैयारी करने लगे, भोजन की तत्काल॥

इस जंगल में एक बहुत बड़ा, जत्था भीलों का रहता था।
जो आने जाने वालों को, लूटा और मारा करता था॥
जब लखा उन्होंने अतुल द्रव्य, केवल एक अर्जुन के संग में।
तो इसे छीन लेने के लिये, उपजे विचार सबके तन में॥
सोचा यदि ये धन हाथ लगा, सुख से जीवन कट जायेगा।
और वंश में सौ पीढ़ी तक भी, धनका न कोई दुख पायेगा॥
ये सोच शीघ्र हथियार उठा, ये सब बन के बाहिर आये।
और ठहरे थे जहां यदुवंशी, आतुर हो उसी तरफ धाये॥
झट चहूँ ओर से घेर इन्हें, मारो मारो चिल्लाने लगे।
कर करके लोचन लाल लाल, सबको धमकी दिखलाने लगे॥

उग्र मूर्ति इनकी निरख, गये सभी दहलाय ।
त्राहि त्राहि करने लगे, दृग से अश्रु बहाय ॥
फिर कहन लगे हे पांडु पुत्र, जल्दी से रक्षा को धाओ ।
इन दुष्ट लुटेरों को वध कर, तत्काल यम सदन पहुँचाओ ॥
तुम्हरे रहते ये पापात्मा, धनको ले भागे जाते हैं ।
स्त्रियों के गहने छीन छीन, उनको अति त्रास दिखाते हैं ॥
यदि तुमने ज़रा भी देर करी, ये वक्त हाथ नहिं आयेगा ।
अबलाओं की दुर्गति होगी, सारा धन भी लुट जायेगा ॥
नहिं रहा ठिकाना गुस्से का, इनका करुणा क्रंदन सुनकर ।
अस्तू वे कुन्ती पुत्र तुरत, दौड़े अपना धनुवा लेकर ॥
और निकट जाय उन भीलों के, ये कहन लगे गर्जन करके ।
नीचो ! यदि जीवन चाहते हो, तो भागो द्रव्य यहां धरके ॥
वरना तुम सब लोगों को मैं, प्राणों से हीन बनादूंगा ।
करके तन के टुकड़े टुकड़े, भूमी पर शीघ्र सुलादूंगा ॥
सब भीलों को पार्थ ने, समझाया इस तौर ।
पर उन लोगों ने नहीं, किया तनिक भी गौर ॥
किन्तु दूना उत्साह दिखा, वे लूट और मार मचाने लगे ।
तब तो गुस्से से हो अधीर, अर्जुन निज धनुष चढ़ाने लगे ॥
पर लाख यत्न करने पर भी, उसको ये नहीं चढ़ाय सके ।
एड़ी से लेकर चोटी तक, अपना सब जोर लगाय थके ॥
जिस बाहु बल से धनुप तान, लाखों वीरों को मारा था ।
वो अद्भुत बल इस अवसर पर, जाने किस ओर सिधारा था ॥
ये देख धनंजय चकित हुये, आगया क्रोध इनको भारी ।
अति मुशकिल से निज धनुष चढ़ा, कीन्हीं लड़ने की तैयारी ॥
जल बूंदों सम अनगिनत बान, ये तान तान बरसाने लगे ।
एक एक पल में कई भीलों को, बधकर भूमी पै गिराने लगे ॥

लेकिन एक अचरज और हुआ, जो थे इनके अक्षय तरकस ।
होगये तुरत ही शर विहीन, ये लखकर पार्थ हुये बेबस ॥
तब सोचा दिव्यस्त्रों से ही, अब मुझे यहां लड़ना चहिये ।
जैसे भी हो इन भीलों का, सम्पूर्ण नाश करना चहिये ॥
पर हा इस अवसर पर वे भी, अर्जुन को याद नहीं आये ।
राहू से ग्रसित चन्द्रमा सम, तब तो ये योधा कुम्हलाये ॥

धनुष नोक ही से लगे, आखिर मारन मार ।
लेकिन भीलों का नहीं, हुआ पूर्ण संहार ॥

वे इस बुड्ढे धनुधारी के, जिसने अपने भुजबल द्वारा ।
कई बार अनेकों वीरों को, था समर क्षेत्र में संहारा ॥
फिर जिसके हाथों की शक्ती, लख त्रिपुरारी* हरषाये थे ।
महाबली विकट आनन निश्चर, भय के मारे थर्राये थे ॥
उसके सन्मुख ही ये दस्यू, लेगये लूट कर धन सारा ।
दुर्दशा करी अबलाओं की, बूढ़े व बालकों को मारा ॥
यह समय की सब बलिहारी है, ये क्षुद्र को बड़ा बना देता ।
और कभी बड़ों को छोटा कर, उनका शुभ सुयश मिटा देता ॥

अलकिस्सा हो चित्त में, अर्जुन बहुत उदास ।
बचे हुओं को साथ ले, पहुँचे पुर के पास ॥

बस इसी जगह एक आश्रम में, श्री वेदव्यास मुनि रहते थे ।
दिन रात प्रेम से सुमिरन अरु, कीर्तन ईश्वर का करते थे ॥
लखते ही इनकी पर्ण-कुटी, अति स्वच्छ मनोहर सुखदाई ।
श्री पांडुतनय ने मुनिवर के, दर्शन करने की ठहराई ॥
अस्तू एक उत्तम जगह देख, साथियों को वहां पर बैठाकर ।
कुन्ती नन्दन इकला हि तुरत, पहुँचा मुनि के आश्रम जाकर ॥

---

* अर्जुन ने अपना भुजबल दिखा किस प्रकार महादेव जी को प्रसन्न किया था इसका हाल जानने के लिये पाठकों को ९ वा भाग देखना चाहिये ।

इस समय धनंजय के मुखपर, अति उदासीनता छाई थी।
आरही थी लम्बी स्वांस, देह, दुर्बल देती दिखलाई थी॥
आंखों से टपटप लगातार, बह रही थी अविरल जलधारा।
फिर घायल होजाने के सबब, शोणित से तर था तन सारा॥
ऐसी हालत से अर्जुन ने, मुनि के आश्रम में गमन किया।
और भूमी पर मस्तक झुकाय, आदर से उनको नमन किया॥
महा तपस्वी व्यास मुनि, लख अर्जुन का हाल।
आतुर हो पूछन लगे, क्या है तुम्हें मलाल॥
होरहा है क्यों मुख आज सुस्त, लम्बी स्वांसें क्यों आती हैं।
क्या सबब है जिससे सब तनपर, शोणित की बूंद लखाती हैं॥
क्या किसी से रण में हार गया, इसलिये ही तू छवि छीन हुआ।
या हुई और कुछ दुघटना, कहदे तू क्यों असदीन हुआ॥
अर्जुन बोले क्या कहूँ मुनी, कहते मस्तक चकराता है।
ये समय भी आनन फानन में, क्या उलट फेर दिखलाता है॥
विख्यात थे जो भूमण्डल पर, कांपे था जिनसे जग सारा।
उन यदुओं को मुनि शाप ने इक, पलभर में मर्दन कर डारा॥
होगई यादवों रहित धरा, सब मरे परस्पर लड़ भिड़कर।
दुख देने वाली हुई है ये, घटना प्रभास के तीरथ पर॥
इनके संग, "जिनका बदन, मेघ सरिस था श्याम।
और चाल थी सिंह सम, थे जो बल के धाम॥
फिर जिनके सिर पर क्रीट मुकुट, हरदम देता था दिखलाई।
सुन्दर मन हरन लोचनों ने, शोभा थी पंकज सम पाई॥
मकराकृत कुंडल फिर जिनके, कानों की शान बढ़ाते थे।
जिनके मुख की सुन्दरता लख, सैकड़ों मदन शरमाते थे॥
और जिनका कंठ सुशोभित नित, बस कौस्तुभ मणि से रहता था।
शुभ पीताम्बर जिनके तनकी, अति छबी बढ़ाया करता था॥

फिर गोबरधन धारन करके, जिनने ब्रज की रच्छा की थी ।
कर दिया था जमुना जलविषसम, उस नाग को शुभ शिच्छा दी थी ॥
और जो रखते थे सदां, मुरली अपने पास ।
कंस आदि का था किया, जिन्होंने सत्यानाश ॥
इसके सिवाय जो महापुरुष, भारत की घोर लड़ाई में ।
सारथी बने थे मेरे और, की थी रच्छा कठिनाई में" ॥
वे कृष्ण भी श्रीबलराम सहित, निज धाम गये हे मुनिराई ।
बिन उनके ये भूमी मुझको, देती है सूनी दिखलाई ॥
फिर एक दुर्घटना हुई और, आते ही जिसका ध्यान प्रभू ।
मस्तक में चक्कर आता है, बनता है चित हैरान प्रभू ॥
वो ये है मैं द्वारावति से, आता था स्त्रि बच्चे लेकर ।
कि कुछ चण्डाल लुटेरों ने, धावा कर दिया मेरे ऊपर ॥
ये लखते ही चाहा मैंने, गांडीव चढ़ाकर शर मारूं ।
इन दुष्ट लुटेरों को बधकर, तत्कालहि भूमी पर डारूं ॥
लेकिन मुनिवर जिस धनुवां को, मैं बिन ही कष्ट चढ़ाता था ।
और सुबह से लेकर संध्या तक, अनगिनती बाण चलाता था ॥
चढ़ा एक तो धनुष वो, अति महनत के साथ ।
फिर अच्छय तरकस हुये, शर विहीन मुनिनाथ ॥
इसके सिवाय मैं भूल गया, दिव्यस्त्रों को भी प्रगटाना ।
चलदिये लुटेरे लूट मुझे, ये लख मैंने अति दुखमाना ॥
हे तपोराशि ! इन बातों में, क्या भेद है मुझको समझाओ ।
क्यों घटी ये सब दुर्घटनायें, इनका रहस्य अब कह जाओ ॥
सुन अर्जुन की बात को, मुनिवर आंखें मींच ।
कुछ देरी तक हो रहे, मगन ध्यान के बीच ॥
आखिर बोले हे कुन्ति सुवन, इन बातों का मत सोच करो ।
ऐसा ही होने वाला था, बस ये बिचार कर धीर धरो ॥

यदुराई में इतना बल था, यदि वे चाहते तो त्रिभुवन को ।
कर देते उलट पुलट पल में, और होता नहिं कुछ श्रम उनको ॥
फिर इन साधारन बातों का, पलटा देना क्या मुश्किल था ।
पर करी उपेक्षा जान बूझ, क्योंकि उनका येही दिल था ॥
वे महा पुरुष यहां आये थे, भूमी का भार उतारने को ।
सतधर्म की रक्षा करने को, दुष्टों का दल संहारने को ॥
अस्तू करके सब काम पूर्ण, वे अपनें लोक सिधाये हैं ।
और हे प्रिय अर्जुन तुम्हरे भी, जाने के दिन नियराये हैं ॥

कृत्य कृत्य तुम भी हुये, कर देवों का काम ।
अस्तू तैयारी करो, जाने की निज धाम ॥

हे वीर जगत के दृश्यों को, पल में पलटाने का कारण ।
बस एक "समय" है यही बात, अपने चित मांहि करो धारण ॥
ये समय हि जग का बीज है बस, येही रचनायें रचता है ।
छिन में रंकों को नृप बनाय, नृप को फिर रंक भी करता है ॥
पा समय फूलता है तरुवर, फिर समय पाय नस जाता है ।
ये आदि, अंत, उत्थान, पतन, सब समय का खेल कहाता है ॥
बस इसी तरह तेरे शर भी, अपना कुल कर्तव दिखलाके ।
हो गये गुप्त अब समय पाय, अस्तू बैठो मन समझाके ॥

❀ गाना ❀

चित मे सोच करो मत अर्जुन समय की सब बलिहारी रे ।
समय रंक को राव बनादे भूपहि करे भिखारी रे ॥
इस दुनिया के भीतर नर का शत्रु मित्र कोउ नाहीं रे ।
मगर समय के फेर में पड़कर घटती घटना भारी रे ॥

समय पाय अति पवन चले अरु समय पाय नस जावे रे ।
समय से सरदी समय से गरमी समय की महिमा सारी रे ॥
समय सु.ख मे दुख दिखलादे दुख मे सुख पहुँचावे रे ।
समय को जानो इस त्रिभुवन मे सबसे बड़ा खिलारी रे ॥

ये सुनकर कुन्ती सुवन, सारा दुःख भुलाय ।
अपने दल में आगया, मुनि को शीश झुकाय ॥
फिर सबको अपने संग लेकर, ये वीर हस्तिनापुर आये ।
और हुये थे जो द्वारावति में, हालात सभी वे बतलाये ॥
इसके उपरान्त लुटेरों की, कुल बात कही लज्जित होकर ।
फिर सुना दिया वो हुआ था जो, श्री व्यास मुनी के आश्रम पर ॥
जिसको सुनकर श्री धर्मराज, बोले बस अब हम लोगों के ।
होगये दिवस संपूर्ण भ्रात, दुनियां के सारे भोगों के ॥
अपने प्रिय मित्र हितू बांधव, बूढ़े बुजुर्ग सत व्रत धारी ।
चलदिये छोड़ कर धरा धाम, अब के जानो अपनी बारी ॥
इसलिये भाइयों राज पाट, धनधाम आदि से नेह तजो ।
और चल करके एकान्त जगह, उस जगदीश्वर का नाम भजो ॥
पौत्र परीच्छित होगया, सब प्रकार हुशियार ।
अस्तू सारे राज का, देदो इसको भार ॥
आगया पसंद भाइयों को, जो धर्मराज ने फरमाया ।
इससे सबने होकर तयार, चलने को चित में ठहराया ॥
फिर शुभ दिन देख इन सबों ने, हरषा अंतिम दरबार किया ।
छोटे मोटे दीनों अमीर, सबको हित से बुलवाय लिया ॥
आजाने पर सब लोगों के, श्री धर्म धुरंधर नरराई ।
नम्रता पूर्वक कहन लगे, मीठी बानी अति सुखदाई ॥

"प्रिय प्रजा गणों और सरदारो, हमने इस दुनियां में आकर ।
देवों को भी जो दुर्लभ है, आराम किये वे हरषाकर ॥
करते करते आनन्द चैन, वृद्धावस्था आछाई है ।
पर डायन तृष्णा अब भी नहीं, घटती देती दिखलाई है ॥
अस्तू अब हमने सोचा है, जग के सारे झगड़े छोड़ें ।
और बन में जाकर अंत में अब, जगदीश्वर से नाता जोड़ें ॥
क्योंकी आयू का पता नहीं, जाने कब होजाये पूरन ।
इसलिये त्याग सब राजपाट, करना चाहते प्रभु का सुमिरन ॥
फिर क्षत्रि धर्म भी कहता है, वृद्धावस्था के आने पर ।
कर्तव्य है हर एक नृप का ये, तप करे तुरत बन में जाकर ॥

पौत्र परीक्षित* होयगा, अब यहां का भूपाल ।
करेगा धर्मनुसार नित, तुम सब की प्रतिपाल ॥

है आश मुझे मेरी बिनती, स्वीकार करेंगे आप सभी ।
मेरे सदृष्य परीक्षित से, बस प्यार करेंगे आप सभी" ॥
इतना कहके अभिषेक किया, निज पोते का हरषा करके ।
फिर बोले वत्स मेरा कहना, सुन चित को शांत बना करके ॥
जब तक तू रहे जमाने में, धर्मानुसार हरदम चलना ।
करना न कभी मिथ्या भाषण, प्रण का परिपूर्ण ध्यान रखना ॥
फिर भूले से भी मित्रों को, कड़वी बातें न सुनाना तू ।
र एक का सहसा निज मन में, विश्वास कभी मत लाना तू ॥

जुआ कभी मत खेलना, है ये दुख का मूल ।
इसके व्यसनी से सदा, रहते प्रभु प्रतिकूल ॥

* इन्हीं महाराज परीक्षित के पुत्र जन्मेजय हुये जिन्होने महाभारत की कथा वेद व्यास जी के शिष्य वैशम्पायन द्वारा सुनी, जिसका हाल प्रथम भाग की प्रस्तावना मे आगया है पाठक देखलें ।

इसके अतिरिक्त प्रजा को तू, बे बात पीर मत पहुँचाना ।
बल्की सुतवत पालन करके, हर समय प्रेम ही दिखलाना ॥
देना दुष्टों को दंड कड़ा, अन्याय मार्ग गहना न कभी ।
रखना विप्रों को सदा खुशी, दी हुई वस्तु लेना न कभी ॥
फिर एक धर्म की बात और, हे तात तुझे बतलाता हूं ।
रक्षा करना नित गउओं की, बस ये आदेश सुनाता हूँ ॥
जिस जगह प्रेम के सहित पौत्र, ये गायें पाली जाती हैं ।
वहां दुख दरिद्र नहिं रह सकता, रिद्धी सिद्धी छा जाती हैं ॥

देख पराये द्रव्य को, ललचाना मत प्रान ।
किन्तू रहना दूर ही, उसको विष सम जान ॥

फिर परस्त्री को भी चित में, गुरु स्त्री सरिस समझना तू ।
मत फँसना छओं विकारों में, बल्की उनको बस करना तू ॥
नित दान धर्म करते रहना, भक्ती न छोड़ना भगवत् की ।
बस यही चंद बातें मैंने, बतलादी हैं तेरे हित की ॥

इस प्रकार निज पौत्र को, समझा धर्म कुमार ।
हाथ शीश पर फेर कर, आशिष दई अपार ॥

इसके उपरान्त युयुत्सू को, कुन्ती सुत ने बुलवाय लिया ।
और हित से प्रेम बचन कहकर, मन्त्री के पद पर नियत किया ॥
फिर धौम्य को राज पुरोहित कर, "गुरु" कृपाचार्य को ठहराया ।
श्रीकृष्ण के पोते बज्र* को झट, दे इन्द्रप्रस्थ सुख पहुँचाया ॥
श्रीकृष्ण की बहन सुभद्रा को, फिर राज मातु का पद देकर ।
इन सब की रखवाली करने, कर दिया नियत अति हर्षाकर ॥
इन सब बातों से छुट्टी पा, द्रौपदी सहित पांचों भाई ।
सुख से अति दान दिलाने लगे, याचकों को निज ढिंग बुलवाई ॥

* 'वज्र' के साथ तमाम यादव स्त्रिये व बच्चे इन्द्रप्रस्थ मे ही रहने लगे, रुक्मणी आदि चिता मे जलगई और सत्यभामा तथा अन्य स्त्रियें तपस्या करने चली गई ।

इस समय इन्होंने जो बांटा, वो दौलत थी इतनी ज्यादा ।
जिसका गिनना एक ओर रहा, लग नहीं सका था अन्दाजा ॥
फेर पति सह पांडु सब, त्याग राजसी चीर ।
झट धारण करने लगे, वल्कल बसन शरीर ॥
करके मुनियों सम ठाठ बाठ, प्रभु का शुभ नाम सुनाते हुये ।
ये चले महा यात्रा करने, मुख से आनन्द दिखाते हुये ॥
इस समय प्रजा ने पाया जो, दुख, उसे बताना मुश्किल था ।
जिसके मुखपर थी हाय नहीं, ऐसा न वहां कोई दिल था ॥
केवल थे बस पांडव प्रसन्न, क्योंके जग के झंझट तजकर ।
जो था सब विधि आनंददायक, जारहे थे ये उस रस्ते पर ॥
जैसे ही इन सब का समूह पुर त्याग विपिन में बढ़ने लगा ।
त्योंही एक कुत्ता भी इनके, बस पीछे पीछे चलने लगा ॥
थे सब से आगे धर्मराज, पीछे थे भीम गदा धारी ।
इनके पीछे अति बलशाली, चलरहे थे पार्थ धनुर्धारी ॥
थे फिर क्रम से श्री नकुल, अरु सहदेव सुजान ।
इनके पीछे द्रौपदी, तिस पीछे था स्वान ॥
इस तरह इन्होंने क्रम बानाय, निशि दिन चलना अख्तियार किया ।
और सब भूमी की परिक्रमा, देने का हृदय विचार किया ॥
अस्तु सबसे पहिले पांडव, बस पूर्व दिशा की ओर चले ।
तहां बन उपवन नद नदी नगर, आदिक अवलोके भले भले ॥
और जाकर सिंधु किनारे तक, निज पांव बढ़ाना रोक दिया ।
इस जगह पार्थ ने धनुष* और, तरकस पानी में फेंक दिया ॥
इसके उपरान्त इन्होंने फिर, दक्षिण दिशि चलने की ठानी ।
आखिर अपनी इच्छानुसार, होगये अग्रसर गुणखानी ॥

* विश्व विख्यात गांडीव धनुष और अक्षय तरकस अर्जुन को किस प्रकार मिले थे इसका हाल सातवें भाग में आगया है ।

करते अनेक तीरथ दर्शन, ये सब रामेश्वर ढिंग आये ।
कर इनकी पूजा प्रेम सहित, फिर पश्चिम की जानिब धाये ॥
चलते चलते कुछ दिनों बाद, पहुँचे द्वारावति के ढिंग आ ।
जल मग्न नगर के दर्शन कर, फिर उत्तर दिशि पद दिया बढ़ा ॥

थोड़े दिन में आगया, शैल हिमालय पास ।
देख पांडवों ने इसे, पाया परम हुलास ॥

यहां का प्राकृतिक दृष्य लखकर, श्री धर्मराज हर्षाय गये ।
रोमांच बदन में प्रगट हुआ, नेत्रों में जलकन छायगये ॥
अति कठिनाई से इस सुख को, अपने मन मांहि दबा करके ।
ये भ्राताओं से कहन लगे, निज स्वर को दीर्घ बना करके ॥
बन्धुओ ! उम्र भर में हमने, नाना प्रकार के सुख पाये ।
भोगे कई उत्तम राज भोग, सब दिन आनन्द में बिसराये ॥
संसारी जीवों को दुर्लभ, कई उत्तम यज्ञ किये हमने ।
विप्रों को ऋषियों मुनियों को, अनगिनती दान दिये हमने ॥
रण भूमी में भी कई बार, अति अधिक बीरता दिखलाई ।
फिर सकल नृपों को बस में कर, सम्राट की भी पदवी पाई ॥
पर शान्ति आत्मा को न मिली, नहिं मिटी चित्त वृत्तियां कभी ।
मद, लोभ, मोह, क्रोधादिक ये, दिन रात सताते रहे सभी ॥

किन्तु छोड़ते ही सकल, जग के मिथ्या फन्द ।
चित में अजब प्रकार का, छाय गया आनन्द ॥

इस समय आत्मा पूर्णतया, सुख शान्ति मई दरसाती है ।
चित की वृत्तियां भी गुप्त हुई, अब जरा दृष्टि नहिं आती है ॥
इसके अतिरिक्त भवन में तो, सरदी गरमी भी सताती थी ।
खाने पीने की घटत बढ़त, चित में अशान्ति उपजाती थी ॥

पर यहां इन बातों की परवा, ये हृदय तनिक नहिं करता है ।
जो समय के माफिक मिलजावे, उसही में धीरज धरता है ॥
फिर रमता जाता है दिन दिन, उस परम पिता के सुमिरन में ।
होगया हमारा जन्म सफल, आगये जो हम घर तज बन में ॥
अस्तू है धन्यवाद प्रभु को, जिसने सदबुद्धी उपजाई ।
छुड़वा कर विषय वासना सब, आनन्दमई राह दिखलाई ॥

जबके इतना सुख मिला, तजते ही संसार ।
तो आगे उसका नहीं, होगा पारा वार ॥

भाई के बचनों को सुनकर, अर्जुन और भीम गदाधारी ।
हर्षाये भ्रात व पत्नि सहित, फिर बोले बानी सुखकारी ॥
हे धर्मराज जो कुछ तुमने, इस समय बात फरमाई है ।
इसमें कुछ भी संदेह नहीं, वो सच्ची है सुखदाई है ॥
हमको तुम्हरी ही सत्ता ने, दिखलाया वो मारग सुन्दर ।
जिसको हम कभी नहीं पाते, चाहे करते श्रम आयू भर ॥
मद मोहादिक की रस्सी में, थे बंधे हुये हम तो सारे ।
कहां धरा था हमरे भाग्य में जो, लखते हम ये आनन्द भारे ॥

अस्तु ऋणी हम आपके, रहेंगे नित नरनाथ ।
लोहा भी क्षण मात्र में, तरा काठ के साथ ॥

प्रकार ये बातें करते, आगे को बढ़ते जाते थे ।
स बर्फ से ढके हिमालय के, ऊपर को चढ़ते जाते थे ॥
कि इतने में अति सरदी पा, वो द्रुपद नन्दनी घबराई ।
गिरगई तुरत ही भूमी पर, और तत्क्षण देही बिसराई ॥
इसको एकाएक मृतक देख, श्री भीम बहुत चकराते हुये ।
श्री धर्मराज से कहन लगे, हृदय से दुःख दिखाते हुये ॥

ये आर्य! सुखद पंचाली ने, नहिं कभी अधर्म किया कोई ।
हम सबकी नित आज्ञा पाली, नहिं किसी को दुःख दिया कोई ॥
फिर क्या कारण है जो इसने, तत्काल प्राण बिसराया है ।
यदि मालुम हो तो कह डालो, किस पाप का प्रतिफल पाया है ॥

धर्मराज कहने लगे, भीम से सहित सनेह ।
एक कर्म के कारणे, छोड़ी इसने देह ॥

"हम पांचों को सम भावों से, देखे," था यही धर्म इसका ।
नहिं करे स्वप्न में भी दुर्भांति, था ये ही श्रेष्ठ कर्म इसका ॥
लेकिन इसने ऐसा न किया, और पार्थ पै ज्यादा प्रेम रखा ।
बस यही सबब है इस प्रकार, तन छोड़ यहां पर गिरने का ॥
इतना कह बिन ही अवलोके, पत्नी की हालत धर्म कुंवर ।
भ्राताओं को अपने संग ले, चलदिये अगाड़ी को सत्वर ॥
ये बढ़े हि थे कि इसी समय, सहदेव वीर भी चक्कर खा ।
जा पड़ा वर्फ की भूमी में, एक पल में अपने प्राण गमा ॥
ये देख भीम फिर बोल उठे, इससे ऐसा क्या काम हुआ ।
जिसकी ऐवज में इसका भी, पत्नी सम काम तमाम हुआ ॥
इनके वचनों को फिर सुनकर, वे धर्म धुरंधर नरराई ।
चलते ही चलते बोल उठे, इसका भी भेद सुनो भाई ॥
ये अपने चित में गिनता था, मुझ सम नहिं बुद्धिमान कोई ।
हैं सभी अधूरे मेरे सम, नहिं सर्व गुणों की खान कोई ॥
बस इसी दोष के कारण से, ये गिरा यहां जीवन खोकर ।
जैसा कुछ होनहार होता, वह निश्चय रहता है होकर ॥

ये कह फिर बढ़ने लगे, धर्मराज गुण खान ।
तजे फेर कुछ देर में, नकुल ने अपने प्रान ॥

बंधुओं पै नेह रखने वाले, बलवीर वृकोदर ने सिरना ।
पूछा भाई से, नकुल के भी, गिरने का कारण देहु बता ॥
ये तो आरम्भ से ही हम पर, सच्चा सनेह दिखलाता था ।
चलता था नित धर्मानुसार, मुख से न झूंठ फरमाता था ॥
ऐसा आज्ञाकारी भाई, क्यों हमको छोड़ सिधाया है ।
हे धर्मराज ये दृश्य देख, मेरा हृदय घबराया है ॥
ये सुनकर फिर धर्मावतार, गम्भीर धीर कोविद ज्ञानी ।
वे कुन्ती नन्दन कहन लगे, हे भीम सुनो सत की बानी ॥

गोद्विज पालकजनसुखद, जग के सिरजन हार ।
कभी किसी भी जीवका, सकें न गर्व निहार ॥

ब्रह्मा से लेकर मच्छर तक, चाहे कोई भी हो प्रानी ।
यदि गर्व करे तो वे पल में, खंडन कर देते सुखदानी ॥
ये नकुल भी अपने स्वरूप को, लख लख कर नित इतराता था ।
दूसरे रूपवानों को ये, अपने से हीन बताता था ॥

इसके ही फल से गिरा, यहां नकुल मुरझाय ।
हरि इच्छा में भ्रातवर, कुछ नहिं पार बसाय ॥

पत्नी और निज भ्राताओं की, लख दशा पार्थ घबराते थे ।
ख से तो कुछ नहिं कहते थे, पर दृग से धार बहाते थे ॥
र दुख से अति व्याकुल हो कुछ बरफ की भी सरदी पाकर ।
गये अवनितल में ये भी, अपने प्राणों को बिसराकर ॥
के समान तिहुँ लोको में, था नहीं कोई भी धनुधारी ।
जिसके सन्मुख आ लड़ने में, थर्राते थे निश्चर भारी ॥
फिर था जो नरों में सिंह सरिस, सुरपति सदृष्य गुणखानी था ।
था जिसे हराना महा कठिन, बाहू बल में लासानी था ॥

ऐसे भाई को गिरा देख, बलवीर वृकोदर अकुलाये ।
लगगया घूमने सिर इनका, आंखों में अश्रूकन छाये ॥
आखिर अति ही कठिनाई से, हृदय में धीरज धर करके ।
निज ज्येष्ठ भ्रात से कहन लगे, आंखों का नीर पोंछ करके ॥
हे अजातशत्रू देखो तो, हा ये कैसे आसार भये ।
महा बली धनंजय भी हम से, नाता तज स्वर्ग सिधार गये ॥
इस वीर ने तो सुपने में भी, नहिं पाप में चित्त फंसाया है ।
फिर किसके कारण से इसने, ऐसा खोटा फल पाया है ॥

वीर युधिष्ठिर कहउठे, सुनो भीम धर ध्यान ।
इसको भी निज शक्ति का, था पूरा अभिमान ॥

रण छिड़ने से पहिले इसने, यों कहा था मैं निज बल द्वारा ।
बस एकहि दिन में करदूंगा, कुरुओं का भस्म कटक सारा ॥
लेकिन इस बल के गर्वी ने, वो किया नहीं जो फरमाया ।
बस उस ही मिथ्या भाषण का, ऐसा प्रतिफल इसने पाया ॥
अस्तू हे भाई बढ़े चलो, दुख में न हाथ कुछ आयेगा ।
जैसा निश्चित है जिसके लिये, वो वैसा ही फल पायेगा ॥
ऐसा कह कर कुन्ती नन्दन, बिन तनिक शोक सन्ताप किये ।
आगे को चलने लगे तुरत, प्रभु के चरणों को धार हिये ॥
ये कुछ ही दूर गये होंगे, के भीम की भी बारी आई ।
इनके भी धुसने लगे पांव, उस बरफ में अरु सरदी छाई ॥
बहुतेरा यत्न किया अपने, पांवों को बाहिर लाने का ।
लेकिन प्रयत्न सब वृथा हुआ, अपना कुल जोर लगाने का ॥

तब अपनी भी मृत्यु को, निकट देख ये वीर ।
भाई से कहने लगे, बचन, धार उर धीर ॥

हे धर्मराज बाहूबल से, मैंने कई वृक्ष उखाड़े हैं।
मदमत्त हाथियों को कर से, भूमी पर तुरत पछाड़े है॥
लेकिन इस समय शक्ति मेरी, तज मेरा साथ सिधाई है।
इससे ये जाहिर होता है, मम अंत घड़ी नियराई है॥
अस्तू अपने प्रिय भ्राता का, अंतिम प्रणाम स्वीकारो तुम।
कर क्षमा सकल अपराधों को, किरपा दृष्टी से निहारो तुम॥
और यदि तुमको कुछ मालुम हो, कारण मेरे गिरजाने का।
तो कहो जिसे सुनकर प्रयत्न, मैं करूंगा मन समझाने का॥
सुन वीर वृकोदर की बातें, बोले कुन्ती सुत मृदुबानी।
हे भीम तू भी निज शक्ती का, था अपने चित में अभिमानी॥
गिन के न दूसरों को कुछ भी, तू निज बल से इतराता था।
और जो भी तबियत आती थी, औरों को वाक्य सुनाता था॥

इसीलिये तेरी हुई, दशा ये आखिरकार।
"गर्व नाश का मूल है", कहते शास्त्र पुकार॥

* गाना *

गर्व किसी का आजतक, थिर न रहा जहान मे।
जिसने किया घमंड वो, नष्ट हुआ एक आन मे॥
एक से एक बढ़के नर, हुये बली जमीन पर।
लेकिन गरूर गरते ही, दाग लगा था शान मे॥
आदत है करुणासींव की, निर अभिमान जीव की।
करते हैं रात दिन मदद, आफतो के दरम्यान मे॥
अस्तू हरएक नरको ये, चहिये न गर्व कभी करे।
बढ़जावे कितना भी चहे, रहे प्रभू के ध्यान मे॥

इस तरह पति के साथ साथ, भ्राताओं के मरजाने पर ।
रहगये युष्टिष्ठिर ही इकले, उस महा विशाल हिमालय पर ॥
और वह कुत्ता भी था जो के, पुर से इनके संग आया था ।
जिसने प्राणों को सरदी से, नहिं अभी तलक बिसराया था ॥
अस्तू इसको ही स्नेह सहित, ले साथ युधिष्ठिर चलने लगे ।
जगदीश का नाम सुमिरते हुये, गिरवर के ऊपर चढ़ने लगे ॥
बस इसी समय रथ सुरपति का, निज दिव्य तेज फैलाता हुआ ।
आकाश व पृथ्वी को अपनी, गम्भीर ध्वनी से कंपाता हुआ ॥
आकर कुन्ती सुत के समीप, ठहरा, तब देवों के नायक ।
उसमें से उतर निकट आकर, बोले हित बचन सुःखदायक ॥
हे पान्डु कुंवर आजन्म तूँने, हित से निज धर्म निभाया है ।
अस्तू ऋषियों को भी दुर्लभ अति उत्तम पद को पाया है ॥
अब मेरे रथ पर हो सवार, शीघ्र ही स्वर्ग में पांव धरो ।
वहां जो कुछ मिले आनन्द तुम्हें, हरषा उसको स्वीकार करो ॥

देख इन्द्र को सामने, चरणों शीश नवाय ।
धर्मराज कहने लगे, श्रवण करो सुरराय ॥

मेरे प्रिय भ्राता पत्नि सहित, गिर पड़े हैं अभी हिमालय पर ।
इनको यहां पर ही छोड़ प्रभू, क्या करूंगा मैं सुरपुर जाकर ॥
यह सुनकर वज्रपाणि बोले, प्रिय पत्नि सहित तेरे भाई ।
गिरते ही स्वर्ग सिधाये हैं, तहां उनसे मिलना हरषाई ॥
बस देर न कर आजा रथ में, और बड़े बड़े पुन्यों द्वारा ।
जो स्वर्ग धाम पाया तूंने, भोगो उसका आनन्द सारा ॥
ये सुन कुन्ती सुत सुख पाकर, बोले भगवन मैं चलता हूँ ।
पर एक विनय मम श्रवण करो, जो कुछ इस दम मैं कहता हूँ ॥

वो ये है हस्तिनापुर से ही, ये स्वान संग में आया है ।
यदि इसे भी स्वर्ग ले चलो तो, होवे मेरा मन चाया है ॥
जाने क्या कारण है मुझ पर, ये अतिशय भक्ति दिखाता है ।
इसलिये इसे यहां तजने को, मेरा हृदय नहिं चाहता है ॥

फेर आर्यों का प्रभू, है ये ही शुभ कर्म ।
अपने जनको त्यागकर, करे न कभी अधर्म ॥

सुरपति बोले आजन्म तेंने, धर्मानुसार चलकर राजन ।
पाया वैभव यश कीर्ति और, स्वर्गीय सुःख हितकर राजन ॥
उसको एक कुत्ते के कारण, क्यों तू बिसराना चाहता है ।
है स्वान महा अपवित्र जंतु, तजदे, क्यों समय गमाता है ॥
जब के तेंने बल से जीते, कुल राजपाट को छोड़ा है ।
सुर दुर्लभ ऐसे सुःख और, दौलत से मुंह को मोड़ा है ॥
यहां तक हि नहीं बलकी तेंने, त्यागा पत्नी भ्राताओं को ।
फिर इसे छोड़ने में मुख से, क्यों भरता है तू आहों को ॥

धर्मराज कहने लगे, सुनो शची भर्तार ।
राज पाट धन धाम सब, नसते आखिर कार ॥

अस्तू उन नश्वर चीजों को, तज देना ही था हितकारी ।
इसीलिये तजकर उनको, पाया मैंने आनन्द भारी ॥
भ्राताओं को जीते जी, मैंने न कभी भी त्याग किया ।
में दुख में यश अपयश में, हरदम उनसे अनुराग किया ॥
लेकिन जब वे गिरपड़े यहां, अपना अपना जीवन खोकर ।
तो जान डाल नहिं सकने के, कारण छोड़ा लचार होकर ॥
लेकिन ये कुत्ता जीवित है, फिर किम इसको विसराऊं मैं ।
क्या है इसका कुसूर सुरपति इससे अनुराग हठाऊं मैं ॥

अस्तु इसको तज कभी नहीं, मैं स्वर्ग लोक में जाऊंगा।
चाहे कुछ भी हो लेकिन मैं, हरगिज न अधर्म कमाऊंगा॥
खुशी होगये बचन सुन, इनके वे सुरभूप।
कुत्ता भी तत्काल ही, तजकर अपना रूप॥
यमराज बनगया और बोला, लेने के लिये इमतिहां तेरा।
मैंने इस कुत्ते का स्वरूप, हे कुन्ति सुवन स्वीकार करा॥
लख तुझको पूरा धर्मात्मा, ये हृदय बहुत हरषाया है।
अब चलो वहां, निज पुन्यों से, जो लोक तैंने सुत पाया है॥
ये सुनते ही कुन्ती सुत ने, आदर से इन्हें प्रणाम किया।
फिर इन्द्र के स्यंदन में चढ़कर, तत्काल स्वर्ग का मार्ग लिया॥
जा पहुँचे कुछ देर में, ये सारे सुरधाम।
कहा इन्द्र ने रह यहां, भोगो नृप आराम॥
उस सूर्य तेज सम तेजस्वी, सुरपुर में जाकर नरराई।
सब तरफ से अपना ध्यान हटा, लागे ढूंढन निज प्रिय भाई॥
लेकिन अति श्रम करने पर भी, नृप ने न उन्हें कहिं लख पाया।
पर एक बात देखी जिससे, इनके चित में अचरज छाया॥
वो ये थी एक सिंहासन पर, कई भूषण धारण किये हुये।
चहरे से खुशी दिखाता हुआ, अति दिव्य तेज को लिये हुये॥
बैठा है अंध-सुत दुर्योधन, ये लखते ही श्री नरराई।
पल में गुस्से से लाल हुये, बोले सुरपति से चिल्लाई॥
ले देवराज! इस दुष्ट क्रूर, पापी कौरवपति के संग में।
रहने को मैं नहिं आया हूं, ये कांटा था हमरे मग में॥
इस नीच ने बचपन से ही, हम सबका अति अपमान किया।
धोखा दे वीर वृकोदर के, भोजन में विष* को मिलादिया॥

* इसका हाल जानने के लिये २ तीसरा भाग देखना चाहिये।

फिर लाखा* गृह बनवा इसने, चेष्टा की हमें जलाने की ।
और छल से राजपाट हरके, की युक्ति विपिन भिजवाने की ॥

फेर सभा में पत्नि की, साड़ी† को खिचवाय ।
पापी ने सब तौर से, दीन्हा हृदय जलाय ॥

फिर येही दुष्ट अधर्मी है, जिसके कारण सब नरराई ।
मरगये परस्पर लड़भिड़ कर, होगई हीन भारत माई ॥
मैं नहीं समझता सबब है क्या, जो ऐसे अत्याचारी को ।
तो इस सुरपुर में जगह मिली, तजकर मर्यादा सारी को ॥
और जिन्होंने दुनियां में रहकर, हरदम निज धर्म निभाया है ।
लाखों क्रोड़ों का दान दिया, हित से हरि का गुण गाया है ॥
वे हमरे भ्रातागण जाने, किस लोक को प्राप्त हुये जाकर ।
क्या यही न्याय करते हैं प्रभू, त्रिभुवन में न्यायी कहलाकर ॥
अच्छा कुछ भी हो लेकिन मैं, नहिं यहां तनिक रहना चाहता ।
जहां पाप कर्म करने वाला, सन्मान का पात्र गिना जाता ॥
इससे जितनी जल्दी हो मुझे, भ्राताओं के ढिंग पहुँचाओ ।
मत देरी करो सुरेश किसी, अनुचर को फौरन बुलवाओ ॥

स्वर्ग वही मम है जहां, हैं मेरे प्रिय भ्रात ।
अस्तु शीघ्र ही वहां मुझे, पहुँचाओ सुरनाथ ॥

यहां उपस्थित नारद भी, ये कहन लगे अवसर पाई ।
हे धर्म धुरंधर चित में क्यों, ये व्यर्थ विकलता प्रगटाई ॥
ये नहीं है मृत्यु लोक राजन, रख याद ये स्वर्ग कहाता है ।
यहां राग ईर्षा आदिक का, नामो निशान नहिं पाता है ॥

---

* देखो ४ चौथा भाग । † देखो ८ आठवा भाग ।

इसलिये इन्हें चित से निकाल, बाहिर रखदो हे कुन्ति सुवन ।
और स्वर्ग के दुर्लभ सुःखों को, अपनाकर हरदम रहो मगन ॥
है मिली नरक में जगह तेरे, भाई व रिश्तेदारों को ।
उस अशुभ जगह में जाने के, तज डालो सकल बिचारों को ॥
निज भोग भोग कर जब वे सब, इस स्वर्ग लोक में आवेंगे ।
तब हम उनसे निश्चय तेरी, हे राजन् भेट करावेंगे ॥
पर समाधान इनको न हुआ, तब इन्द्र ने धावन बुलवाया ।
और उसके संग पांडु सुतको, झट नरक देखने भिजवाया ॥

इनके संग कुछ दूर तक, चलकर धर्म कुमार ।
पहुँचे आखिर जायकर, शीघ्र नरक के द्वार ॥

छारहा था यहां कुछ अंधकार, वायू अति गर्म लखाती थी ।
फिर पीप मांस रक्तादिक की, चहुँ दिशि से बदबू आती थी ॥
यहां पर बैठे यमदूत कई, हाथों मैं छुरी घुमाते थे ।
और काट काट पापियों का तन, पापों का मजा चखाते थे ॥
ये अंधकार, तो खतम हुआ, यहां से कुछ आगे जाने पर ।
फिर गर्म अग्नि सम बालू का, आया इनको मैदान नजर ॥
यहां बिछे हुये थे बड़े बड़े, नोकीले कांटे अनगिनती ।
जिसमें चलने से होती थी, पांवों की बहुत ही बुरी गती ॥
इसके अतिरिक्त युधिष्ठिर ने, देखी कहीं आग धधकती हुई ।
कहीं शिलायें पत्थर लोहे की, दुष्टों के सिर पर पड़ती हुई ॥
और कहीं तेल से भरे पात्र, अग्नी से खौलते हुये लखे ।
फिर कहीं गिद्ध अति हो दारुण, शब्दों से बोलते हुये लखे ॥
है गरज ये कि यहां की हरएक, वस्तू नफरत उपजाती थी ।
दिखती थी भयानकताई ही, जिस तरफ दृष्टि उठजाती थी ॥

पापी हत्यारे कुलांगार, धारा था जिन्होंने धर्म नहीं ।
जीवन भर पाप कमाया था, कभि किया कोई शुभकर्म नहीं ॥
उन जीवों को यम के अनुचर, कई तरह की त्रास दिखाते थे ।
जिससे दुख पाकर ये प्राणी, दारुण स्वर से चिल्लाते थे ॥
लख यहां का ऐसा विकट दृश्य, चित में भय उपजावन हारा ।
श्रीमान् कुन्ति के नन्दन का, कंपित होगया बदन सारा ॥

अस्तु दूत से कह उठे, चलेगा कितनी दूर ।
यहां की चीजें देखकर, होता दुख भरपूर ॥

यह सुनकर देवदूत बोला, यदि बिगड़ गई हालत चितकी ।
वो वापिस अपनी पीठ मोड़, मैं कहता हूँ तेरे हितकी ॥
करते हि श्रवण दुख से घबरा, लौटे ज्यों ही ये नरराई ।
त्यों ही चहुंदिशि से दर्द भरी, अनगिनती आवाजें आई ॥
हे धर्मराज! हे राज ऋषी, हे दयालु चित पांडू नन्दन ।
कर कृपा खड़े कुछ देर यहीं, तुम रहो हमारे मान बचन ॥
इस जगह आपके आते ही, हम लोगों का दुख दूर हुआ ।
मिट गई वेदनायें सारी, चित में आनन्द भरपूर हुआ ॥
सुनते ही दीन वाणियों को, नृप के चित में करुणाछाई ।
रहगये खड़े वे उसी जगह, और कहन लगे अति बिलखाई ॥
दीन वचन कहने वालो, तुम कौन हो कहां से आये हो ।
किया है ऐसा अघ तुमने, जो इतना कष्ट उठाये हो ॥

ये सुनते ही वे सकल, बोल उठे इक साथ ।
कुन्ती नन्दन ध्यान धर, सुनो हमारी बात ॥

मैं कर्ण हूँ, मैं हूँ भीमसेन, मैं अर्जुन और नकुल हूँ मैं ।
समझो सहदेव मुझे हे नृप, और द्रुपद सुता व्याकुल हूं मैं ॥

फिर जानो मुझको धृष्टद्युम्न, हम सकल द्रौपदी नन्दन हैं ।
मैं द्रुपद हूँ और विराट हुं मैं, हम सारे यहां दुखित मन हैं ॥
कर बचन श्रवण इन लोगों के, महाराज युधिष्ठिर अकुलाये ।
कुछ देर बाद फिर गुस्से से, इनके लिलाट पर बल आये ॥
और कहन लगे दुर्योधन ने, ऐसा क्या काम किया भारी ।
जिसके शुभ फल की ऐवज में, वो बना स्वर्ग का अधिकारी ॥
और मेरे सब भ्राताओं तथा, गुणवाले रिश्तेदारों ने ।
उस पतिव्रता द्रौपदी और, उसके पांचों सुकुमारों ने ॥
क्या पाप किया जिसके कारन, स्थान नरक में पाया है ।
ओ देव ! किया तैंने ये क्या, दिखलाई कैसी माया है ॥

यही सोचते सोचते, धर्मराज मति धीर ।
सम्बोधन कर दूत को, बोले बचन गंभीर ॥

हे भाई जिनका दूत है तू, उनके ढिंग जाकर कह देना ।
वो जेष्ट कुन्ति सुत चाहता है, दिनरात नर्क में ही रहना ॥
क्योंकि मेरे यहां रहने से, मेरे प्रिय पाते सुख भारी ।
इसलिये स्वर्ग में आने की, मैंने सब इच्छा तज डारी ॥

गया दूत ज्यों ही निरख, धर्मराज के तौर ।
त्यों ही वहां का होगया दृष्य और का और ॥

वो नरक एकदम गुप्त हुआ, बदबू तत्काल बिलाय गई ।
दुखभरी पुकार प्राणियों की, क्या जाने कहां समाय गई ॥
और इन चीजों की एवज में, छागया तुरत तहां उजियाला ।
मन भावन वायू चलने लगो, ये लख चकराये भूपाला ॥
इतने में इन्द्र, कुबेर, बरुण, यम आदि देव मुस्काते हुये ।
आगये तहां कुन्ती सुत की, मुख से जयकार सुनाते हुये ॥

और चकित विलोक पांडु सुतको, बोले सुरपति आगे आकर ।
हे भूप न्याय करते हैं सदा, प्रभु पक्षपात को विसराकर ॥
जो दुर्योधन ने किये कई, दुष्कर्म भयानक भयकारी ।
पर एक पुन्य से मिला उसे, कुछ देर स्वर्ग का सुखभारी ॥
वो ये था उसने अंत समय, क्षत्री का धर्म निभाया था ।
शत्रू के सन्मुख लड़कर के, निज जीवन को विसराया था ॥

अस्तु स्वर्ग का पायकर, आनंद अपरम्पार ।
देखेगा वो शीघ्र ही, आय नर्क का द्वार ॥

और तेरे भ्रात पत्नि आदिक, थे उच्च कर्म करने वाले ।
धर्मानुसार चलते थे और, थे दीन दुःख हरने वाले ॥
किन्तू थोड़े पाप के सबब, सबने ये नर्क निहारा है ।
पर अब मत फिक्र करो राजन्, मिलगया उन्हें छुटकारा है ॥
फिर तैंने भी जो एक बार, निज मुख से झूंठ सुनाया था ।
अश्वस्थामा की मृत्यु खबर, फैला गुरुको* मरवाया था ॥
बस इसीलिये तुझको भी नर्क, देखना पड़ा है नरराई ।
अच्छे व बुरे कर्मों का फल, होता निश्चय सुख दुखदाई ॥

तू अपने चित में कहीं, करना ये न विचार ।
आया था मैं नर्क में, निज इच्छा अनुसार ॥

की सच तो ये है जैसी, होनी होने को होती है ।
ही बुद्धी होकर के, अपनी सब सुधबुध खोती है ॥
अब तुम आनन्द सहित, इस देव नदी में स्नान करो ।
दुख शोक क्लेश संताप सकल, चित से निकाल कर बाहिर धरो ॥

* इसका हाल जानने के लिये १९ वाँ भाग देखिये ।

और चलो हमारे साथ वहां, जहां है तुम्हरे चारों भाई ।
प्रिय द्रुपद दुलारी, सुत, बांधव, और इष्ट मित्र सब सुखदाई ॥
ये सुनकर ज्यों ही राजा ने, नभ गंगा में गोता मारा ।
त्योंही मनुष्य तन छूट गया, होगया शरीर दिव्य सारा ॥
इसके उपरान्त विमानों में, चढ़ सुरो सहित कुन्ती नंदन ।
चहुँ ओर तेज फैलाते हुये, आये सुरपति के सभा भवन ॥

बंधु बांधवों से यहां, मिलकर पांडु कुमार ।
इतने हरषे बह चली, आंखों से जलधार ॥

इस समय सभा की रौनक का, वर्णन करना आसान नहीं ।
था ऐसा यहां नहीं कोई, जो तेजो बल की खान नहीं ॥
गंधर्व यक्ष किन्नर सुर गण, और बड़े बड़े ऋषि मुनिराई ।
बैठे थे महा अनंदित हो, अति ही उत्तम शोभा पाई ॥
इनके अतिरिक्त यहां वे सब, जो धीर वीर व्रतधारी थे ।
फिर चले थे जो धर्मानुसार, और दीनों के हितकारी थे ।
और इनके संग भूपाल सकल, जिन युद्ध में प्राण गमाया था ।
इन सबने यहां उपस्थित हो, इस सभा का मान बढ़ाया था ॥
थे इनमें मुख्य शान्तनू-सुत, महा मती विदुर पंडित ज्ञानी ।
धृतराष्ट्र, द्रौण गुरु, कर्ण वीर, भूपाल युधिष्ठिर गुणखानी ॥
श्री भीम, पार्थ, सहदेव, नकुल, पंचाल नरेश, विराटेश्वर ।
अभिमन्यू, धृष्टद्युम्न, और वे, पंचाली के सब सुत सुंदर ॥

पांडु भूप भी थे यहां, कुन्ति, माद्री साथ ।
द्रुपद सुता, गंधारि भी, थी यहां पुलकित गात ॥

इनके सिवाय यदुवंशी भी, यहां सारे दृष्टी आते थे ।
लख एक दूसरे को सन्मुख, हृदय से हर्ष जनाते थे ॥

इतने ही में सच्चिदानन्द, आनन्दकंद जन सुखदाई ।
भूभार हरन करने वाले, वे कृष्णचन्द्र त्रिभुवन साई ॥
निज दिव्य तेज से चकाचौंध, सब दिशाओं में फैलाते हुये ।
इस सभा भवन में आपहुँचे, मन मंद मंद मुस्काते हुये ॥
लखते हि इन्हें सुर मुनि आदिक, होगये खड़े एकदम सारे ।
और बिठलाकर एक अति उत्तम, आसन पर बोले जयकारे ॥

फिर निज निज कर जोड़कर, प्रेम से शीश नवाय ।
"श्रीलाल" करने लगे, स्तुति सब हरषाय ॥

* स्तुति *

(तर्ज—थियेट्रिकल)

जय हो दीनन हितकारी, हम हैं सब शरण तुम्हारी ।
जब जब जग मे उपजें निश्चर, तब तब नर का तन धारन कर ।
हरते हो विपता सारी ॥ जय हो० ॥
आदि अंत तुम्हरा नहि स्वामी, जन सुखदायक अंतरयामी ।
कीरति जग विस्तारी ॥ जय हो० ॥
प्रेम सहित जो तुमको ध्यावे, रोग शोक उनके मिट जावें ।
पावें आनन्द भारी ॥ जय हो० ॥
बार बार मांगे सिरनाई, देहु दयाकर त्रिभुवन साई ।
चरण भक्ति सुखकारी ॥ जय हो० ॥

पूर्ण विनय के होत ही, पूर्ण होगया ग्रंथ ।
श्रोताओं हित से कहो, जय जय रुक्मणि कंथ ॥

❀ इति श्रीकृष्णार्पणमस्तु ❀